



श्रीसच्चिदानन्दब्रह्मणे नमः ।

प्रस्तावना ।



हे पाठकगण! उस सच्चिदानंद परब्रह्मको हम कोटिशः धन्यवाद देतेहैं कि, जिसने वेदांत-सिद्धांत वाक्यरूप कतरनियोंसे हमारा मायाजाल कतरकर उद्धारकियाहै, और आनंदमय अपना धाम दरशायाहै अहो! उस दयालु प्रभुकी दयालुताको हम कैसे वर्णन करसकतेहैं? कि, जिसने चौरासी लक्ष योनियोंमें भ्रमतेहुए हमलोगोंको मनुष्यशरीर दिया, फिरभी हमारा अज्ञान नष्ट करनेके लिये वेदांतशास्त्र प्रकट किया । हाय! तिसपर भी हम न समझें तो हमारी ऐसी मूर्खता है कि, जैसे हथेलीपर आयाहुवा अमृत अज्ञानसे त्यागदेना, और खाना नहीं अब प्रकृतको अनुसरण करतेहैं कि, हे पाठकगण! उसी वेदांतसिद्धांतशास्त्रमें यह एक ग्रंथ योगवासिष्ठ है जो कि महर्षि वाल्मीकिजीने निर्माणकियाहै; और वशिष्ठजी महाराजने रघुवंशमणि श्रीरामचंद्रजीके प्रति उपदेशकियाहै । अहो इस ग्रंथकी शैलीको क्या अन्य ग्रंथ प्राप्त हो सकताहै? कदापि नहीं कि जिसमें वेदांतके गूढ पदार्थ कथारूपकरके ऐसी सरलरीतिसे दरशायेहैं कि, मानो कर-तलमें आमलक, अब इस आबालवृद्ध विख्यात अतिअवदात ग्रंथकी अविज्ञात ग्रंथके समान प्रशंसा करनी उचित न समझकर इस भाषाग्रंथके विषयमें लिखताहूँ कि, यह योगवाशिष्ठ भाषा-ग्रंथ ऐसा कदापि न जानना चाहिये कि, अज्ञानभ्रमको दूर नहीं करसके, यह अवश्य ही अज्ञानभ्रमको दूर करताहै क्योंकि, किसी महात्माने युक्तिके साथ कहाहै जैसे कि–

दोहा–ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित, ताकी वाणी वेद ।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद ॥ १ ॥

इसलिये जब अन्य ब्रह्मज्ञानीजननकी भाषावाणी भी अज्ञान दूरकरनेकेलिये वेदरूप है तो फिर महर्षि वाल्मीकिजीके ग्रंथके भाषानुवादका तो कहनाही क्या है, यद्यपि यह ग्रंथ अक्षरार्थानुरूप अनुवादित नहीं कियागया किंतु कथानुरूप अनुवादित कियागयाहै तथापि इसके कथादृष्टांतोंको दार्ष्टांतिकोंपर ऐसा समेटाहै कि, मानो सागरका जल गागरमें भरलियाहै इसका कथानुरूप अनुवाद होनेका कारण भिन्नभिन्नप्रकारसे सुनाजाताहै कोई तो कहतेहैं कि, कोई महात्मा कहीं योगवासिष्ठकी कथा श्रवणकरके आयाकरते और अति दयालुतासे मुमुक्षुजनोंके हितार्थ उतनीही कथाको कंठसे लिखलियाकरतेथे; और कोई ऐसा कहतेहैं कि अबसे १००

वर्ष पूर्व पंजाबदेशके अंतर्गत सर्वविज्ञात पटियाला नाम राजधानीमें श्रीसाहबसिंह नामवाले राजा हुए उनकी दो बहिन विधवायें थीं उनकी अद्वैतमतमें अत्यंत निष्ठा थी इसलिये वेदांतशास्त्रकी ही कथा श्रवण कियाकरतीथी, एक समय निरंजनी साधु रामप्रसादजीके मुखसे इन्होंने इस योगवासिष्ठकी कथा श्रवणकरी पश्चात् वेदांतसिद्धांतका प्रकाशक सूर्यरूप इस ग्रंथको समझकर इन्होंने विचार किया कि, यह उत्तम ग्रंथ देववाणीमें होनेसे सर्वोपयोगी नहीं इसलिये इसकी भाषा कराकर हम ऐहलौकिक यश और पारलौकिक कल्याणको प्राप्तहोवें ऐसा विचारकर फिर उसी (उक्त) साधुसे कथाका प्रारंभ कराया और दोपंडित लिखनेके वास्ते बैठादिये, जैसे जैसे ये साधु कथाका व्याख्यान करतेगये वैसे वैसेही पंडित लिखतेगये आशय यह कि, व्याख्यानरूप यह योगवासिष्ठकी सम्पूर्ण कथा पंजाबीमिश्र हिंदुस्थानीभाषामें लिखीगई और दोनों पुस्तकोंको मिलानकर शुद्ध एक प्रति बनाईगई। पश्चात् अतिउत्तम होनेके कारण शीघ्रही यह ग्रंथ सब देशोंमें प्रचलित होगया इसलिये इन पूर्वोक्त उपकारपरायणोंको हम कोटिशः धन्यवाद देतेहैं कि जिनने परलोकसुखसाधन यह ग्रंथ प्रचलितकरके परम उपकार किया। इस ग्रंथके वैराग्यआदि षट् ६ प्रकरण हैं उनमें तिस तिस नामवाले प्रकरणमें तिस तिस विषयका ऐसा वर्णन कियाहै कि, मानो साक्षात् मूर्त्तिमान् यह विषय उपस्थितहै इसलिये वेदांतसिद्धांत इसमें ऐसा दरशाया कि, जिसका श्रवण मनन और निदिध्यासन करनेसे अवश्यही मनुष्य प्रपंचजालसे छूटकर मोक्षपदका भागी होजाताहै यह ग्रंथ अति शुद्ध कराकर मैंने अपने यन्त्रालयमें प्रकाशित कियाहै और महात्माओंकी यथारुचिके कारण मैंने यह दोप्रकारसे मुद्रित कियाहै एक ग्रंथसाइज व दूसरा बुकसाइज तथापि बुकसाइज सुनहरी काम कराकर अति उत्तम बनवायाहै और यह सर्व समय विचारोपयोगी होनेके कारण बुकसाइजके दो विभाग कियेगयेहै। और महात्माओंसे निवेदनहै कि, इसमें कहीं दृष्टिदोषसे अशुद्धि हों सो क्षमा करें।



आपका कृपाकांक्षी—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष,—बंबई.

योगवासिष्ठकी अनुक्रमणिका।



सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक

वैराग्यप्रकरणकी अनुक्रमणिका १

मुमुक्षुप्रकरणकी अनुक्रमणिका २

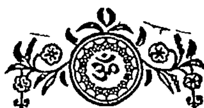
उत्पत्तिप्रकरणकी अनुक्रमणिका ३

स्थितिप्रकरणकी अनुक्रमणिका ४

उपशमप्रकरणकी अनुक्रमणिका ५

इति





परमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

वैराग्यप्रकरण प्रारभः ।

प्रथमः सर्गः १

अथ कथारभ वर्णनम् ।

सत्-चित्-आनदरूप जो आत्मा है तिसको नमस्कार है सो कैसा है जिसते यह सब भासत है, अरु जिसविषे यह सर्वलीन होत है, अरु जिस विषे यह सब स्थित है, तिस सत्य आत्माको नमस्कार है ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, कर्त्ता, करण, क्रिया, जिसकरके सिद्ध होता है, ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है, तिसको नमस्कार है जिस आनदके समुद्रके कणसो सपूर्ण विश्व आनदवान् है, अरु जिस आनंद करि सर्व जीव जीवते है, तिस आनद आत्माको नमस्कार है

कोई एक सुतीक्ष्ण अगस्त्यमुनिका शिष्य होत भया तिसके मनमे एक सशय उत्पन्न हुआ, तिसको निवृत्त करनेके अर्थ अगस्त्यमुनिके आश्रमको गमन किया जायकर विधिसंयुक्त प्रणाम करि स्थित भया, और नम्र भावसों प्रश्न करने लगा

सुतीक्ष्णोवाच, हे भगवन् । सर्वतत्त्वज्ञ, सर्व शास्त्रोंके ज्ञाता, एक संशय मुझको है सो तुम कृपा करके निवृत्त करो मोक्षका कारण कर्म है, कि ज्ञान है, कि दोनों, है ? याते जो मोक्षका कारण होय सो कहो.

अगस्त्योवाच, हे ब्रह्मण्य । केवल कर्म मोक्षका कारण नहीं और केवल ज्ञानते भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता दोनों करके मोक्षकी प्राप्ति होती है

करके अंत'करण शुद्ध होता है मोक्ष नही होता. अरु अत.करणशुद्धि बिना केवल ज्ञानते भी मुक्ति नहीं होती, अर्थ यह जो शास्त्रका तात्पर्य ज्ञानका निश्चय अंत'करण शुद्ध हुए बिना ज्ञानकी स्थिति नही होती ताते दोनों करके मोक्षकी सिद्धि होती है कर्म करके प्रथमअत.करणकी शुद्धि होती है बहुरि ज्ञान उपजता है, तव मोक्षकी सिद्धि होती है जैसे दोनों पंख करके पक्षी आकाशमार्गको सुखेन सो उडता है तैसे कर्म अरु ज्ञान दोनों कर मोक्षसिद्ध होता है हे ब्रह्मण्य! इस अर्थके अनुसार एक पुरातन इतिहास है, सो तू श्रवण कर.

एक कारण नाम ब्राह्मण अग्निवेशका पुत्र था, सो गुरुके निकट जायकर चार वेद षडङ्ग सहित अध्ययन करत भया अध्ययन करके घरको आवत भया और कर्मते रहित होय कर चुप रहा, अर्थ यह जो सशययुक्त होय कर्मते रहित भया तव पिताने देखा जो यह कर्म ते रहित होयकर स्थित भया है ऐसा देखके इस प्रकार कहत भया–

अग्निवेशोवाच, हे पुत्र! कर्मकी पालना क्यों नही कर्त्ता और तू कर्मके न करनेते सिद्धताको कैसे प्राप्त होवेगा? जिसकरके तू कर्मते रहित हुवा है, सो कारण कहिदे.

कारणोवाच, हे पिताजी! एक संशय मुझको उत्पन्न हुवा है. तिस करके मैं कर्मते चुप रहा हौं, सो श्रवण करो वेदने एक ठौर कहा है कि, जबलग जीवता रहै तबलग कर्मको करना जो अग्निहोत्रादिक कर्म है, सो करताई रहै अरु और ठौर कहा है कि, धन करके मोक्ष होत नाहीं और कर्म करके मोक्ष होत नाही, और पुत्रादिक करके मोक्ष होत नाही केवल त्यागते मोक्ष होता है। इन दोनों विषे मुझको क्या कर्त्तव्य है? यह संशय है। सो तुम कृपा करके निवृत्तकरो, कि क्या कर्त्तव्य है?

अगस्त्योवाच, हे सुतीक्ष्ण! ऐसे जव कारणने पिताको कहा, तव तिसका वचन सुन अग्निवेश कहत भया.

अग्निवेशोवाच, हे पुत्र! एक कथा मुझते तू श्रवण कर जो पहिले हुई है, तिसको सुनकर हृदय विषे धरके, आगे जो तेरी इच्छा होय सोई करना

एक सुरुचि नाम अप्सरा हती, सो जेती कुछ अप्सरा हतीं, तिनके विषे उत्तम थी सो एक समय हिमालयके शिखरपर बैठी थी सो हिमालय पर्वत कैसा है? कि कामना करके संपन्न जो हृदयमें विचारे, सो पावे तहां देवता अरु किन्नरके गण अप्सराके साथ क्रीडा करते हैं और कैसा है जहा गंगाजीका प्रवाह लहरी देत चला आवत है सो गंगा कैसी है कि, महा पवित्र जल है जिसका, ऐसे शिखरपर सुरुचि अप्सरा बैठी थी, तिसने इंद्रका दूत अंतरिक्षते चला आवत देखा जब निकट आया, तब अप्सराने कहा अहो सौभाग्य देवदूत! तू देवगणमें श्रेष्ठ है, तू कहांते आया और कहा जायगा? सो कृपा करके कहि दे

देवदूतोवाच, हे सुभद्रे! तैंने पूछा है सो श्रवण कर, अरिष्टनेमि एक राजर्षि था, वाने अपने पुत्रको राज्य देकर वैराग्य लिया, संपूर्ण विषयोंकी अभिलाषा त्याग करके गंधमादन पर्वतमे जायकर भयंकर तप करने लगा, अरु धर्मात्माथा तिसके साथ मेरा एक कार्यथा, सो कार्य करके मैं अब इंद्रके पास चला जाता हौं तिसका मैं दूत हौं संपूर्ण वृत्तांत निवेदन करनेको चला हौं

अप्सरोवाच, हे भगवन्! वृत्तांत कौनसा है? सो मुझसे कहो. मेरेको तू अति प्रिय है, यह जानकर पूछती हूं और जो महापुरुष हैं, तिनसो कोई प्रश्न करता है, तब वह उद्वेगते रहित होकर उत्तर देता है, ताते तू कहि दे.

देवदूतोवाच, हे भद्रे! जो वृत्तान्त है सो सुन विस्तार करके मैं तुझको कहता हौं वह जो राजा गंधमादन पर्वतमें तप करने लगा, सो बड़ा तप किया. तब देवतोंके राजा जो इंद्र है तिसने मुझको बोलाय कर आज्ञा करी कि, हे दूत! तू गंधमादन पर्वतमें जा और विमान, अप्सरा, नाना प्रकारकी सामग्री, गंधर्व, यक्ष, सिद्ध, किन्नर, ताल, मृदंग आदि वाजित्र, संग लेजा और वह गंधमादन पर्वत कैसा है? जो नाना प्रकारकी लता वृक्ष करके पूर्ण है, तहां जायके राजाको विमानपर बिठायके, इहां ल्याव हे सुंदरी! जब इंद्रने ऐसा कहा, तब मैं विमान अरु सामग्री सहित तहां आया अरु राजासे कहा-हे राजन्! तेरे कारण विमान ले आयाहूं,

वैठके तू स्वर्गको चल और देवतानके भोग भोगु जव मैं ऐसे कहा तव मेरा वचन सुनकर राजा वोलत भया.

राजोवाच, हे देवदूत ! प्रथम स्वर्गका वृत्तांत तूँ मुझसे कह कि, तेरे स्वर्गमें दोप कहा अरु गुण कहा है ? तिनको सुनकै मै हृदयमें विचारों पाछे जो मेरी इच्छा होवेगी तो आऊगा.

देवदूतोवाच. हे राजन् ! स्वर्गमें वडे दिव्य भोग है सो स्वर्ग वड़े पुण्यसों जीव पाते हे जो वड़े पुण्यवाले होतें है, सो उत्तम सुख स्वर्गको पाते हैं, जो मध्यम पुण्यवाले है सो मध्यम सुख स्वर्गको पाते है अरु जो कनिष्ठ पुण्यवाले हैं सो कनिष्ठ सुख स्वर्गको पाते है यह तो गुण स्वर्गमें हैं सो तोसों कहे है और स्वर्गके जो दोप हैं सो सुन-हे राजन् ! जो आपते ऊंचे वैठे दृष्टि आवते हैं, अरु उत्तम सुख भोगते हैं, तिनको देखके ताप उत्पत्ति होती है क्योकि, उनकी उत्कृष्टता सही नही जाती है अरु जो कोई अपने समान सुख भोगते हैं, तिनको देखके क्रोध उपजत है, कि मेरे समान क्यों वैठे है, अरु जो अपने नीचे वैठे हैं कनिष्ठ पुण्यवाले, तिनको देखके आपको अभिमान उपजत है कि, मै इनते श्रेष्ठ हौं और एक और भी दोप है कि जव उसके पुण्य क्षीण होते हैं, तव तिसी कालमें उसको मृत्युलोकमें गिराय देते हैं, एक क्षणभी रहने देते नहीं हे राजन् ! यह जो दोप कहे सो स्वर्गमे हैं जो तैंने पूछा सो मैंने गुण अरु दोप कहे

हे भद्रे ! जव इसप्रकार राजासे मैंने कहा तव मोको राजाने कहा-हे देवदूत ! इस स्वर्गके योग्य हम नही है, अरु हमको इच्छाभी नहीं है हम उग्र तप करेंगे तप करके इस देहको भी त्याग देंगे जैसे सर्प अपनी त्वचाको पुरातन जानिके त्याग करता है, तैसे हम भी त्याग कर देंगे हे देवदूत ! तुम अपने विमानको जहाते लाये हो, तहां लेजाओ, हमारे तो नमस्कार है

हे देवी ! जव इस प्रकार राजाने मुझको कहा, तव विमान अप्सरा आदि सवको लेके स्वर्गमें गया, अरु संपूर्ण वर्त्तमान इंद्रसे कहा तव इंद्र प्रसन्न हुवा अरु सुंदर वाणी करके मुझसे कहत भया-हे दूत ! तू

वहुरि जहां राजा है तहां जा वह संसारते उपराम हुआहै. इसकी अव आत्मपदकी इच्छा हुई है इसको साथलेके वाल्मीकि जिसने आत्मतत्त्वको आत्मा करि जाना है, तिसके पास ले जाय मेरा सदेशा कहना कि, हे महाऋषि। इस राजाको तत्त्ववोधका उपदेश करना, क्योंकि यह वोधका अधिकारी है काहेते कि, इसको स्वर्गकी भी इच्छा नहीं, अरु औरकीभी वांछा नहीं, ताते तुम इनको तत्त्ववोधका उपदेश करो, जो तत्त्ववोधको पाय करके ससार दु खते मुक्त होवे

हे सुभद्रे। जव इस प्रकार देवराजाने मुझसे कहा, तव मै चला जहां राजाथा, तहां जाइ करिकै मैने कहा-कि हे राजन्। ससार समुद्रते मोक्ष होनेके निमित्त वाल्मीकिके पास चल, वाल्मीकि तुझको उपदेश करैगा तव तिसको साथ लेकर, मैं वाल्मीकिके स्थानपर आय प्राप्त भया तिस स्थानमे राजाको विठाया, अरु इंद्रका सदेशा कह दिया जो वहां वृत्तान्त भया सो सुन—जव वहां गये, अरु प्रणाम कर वैठे, तव वाल्मीकिने कहा-हे राजन्। कुशल है ?

राजोवाच, हे भगवन्। परम तत्त्वज्ञ और वेदांत जाननेवालोंमें श्रेष्ठ। मै अव कृतार्थ हुआ तुम्हारे दर्शन करकै अव मुझको कुशल हुआ है अरु कछु पूछता हों कृपा करके उत्तर कहना, जिससे संसार-वंधनते मुक्ति होय

वाल्मीकिउवाच, हे राजन्। महारामायण औपध तुझसे कहता हो सो श्रवण करके तात्पर्य हृदय विपे धारणेका यत्न कर जव तात्पर्य हृदय विपे धारेगा, तव जीवन्मुक्त होयकर विचरेगा, हेराजन्। वशिष्ठजी अरु रामचद्रजीका सवाद है तिसमे सव कथा मोक्षके उपायकी कही है तिसको सुनके जैसे रामचद्रजी अपने स्वभाव विपे स्थित हुए, अरु जीवन्मुक्त होयके विचरे है तैसे तूभी विचरेगा

राजोवाच, हेभगवन्। रामचद्रजी कौन था, अरु कैसाथा, अरु कैसे होकर विचऱ्या है ? सो कृपा करके कहो

वाल्मीकिउवाच, हे राजन्। शापके वशते, हरि जो विष्णु तिनने

वैठके तू स्वर्गको चल और देवतानके भोग भोगु जब मैं ऐसे कहा तब मेरा वचन सुनकर राजा वोलत भया

राजोवाच, हे देवदूत ! प्रथम स्वर्गका वृत्तांत तू मुझसे कह कि, तेरे स्वर्गमें दोप कहा अरु गुण कहा है ? तिनको सुनकै मै हृदयमें विचारों पाछे जो मेरी इच्छा होवेगी तो आऊगा

देवदूतोवाच हे राजन् ! स्वर्गमे वडे दिव्य भोग है. सो स्वर्ग बड़े पुण्यसों जीव पाते है जो वड़े पुण्यवाले होतें है, सो उत्तम सुख स्वर्गको पाते हैं, जो मध्यम पुण्यवाले हैं सो मध्यम सुख स्वर्गको पाते हैं अरु जो कनिष्ठ पुण्यवाले हें सो कनिष्ठ सुख स्वर्गको पाते है यह तो गुण स्वर्गमें है सो तोसो कहे है और स्वर्गके जो दोप हैं,सो सुन-हे राजन् ! जो आपते ऊंचे वैठे दृष्टि आवते है, अरु उत्तम सुख भोगते हैं, तिनको देखके ताप उत्पत्ति होती है क्योंकि, उनकी उत्कृष्टता सही नही जाती है अरु जो कोई अपने समान सुख भोगते हैं, तिनको देखके क्रोध उपजत है, कि मेरे ममान क्यों वैठे है, अरु जो अपने नीचे वैठे है कनिष्ट पुण्यवाले, तिनको देखके आपको अभिमान उपजत है कि, मै इनते श्रेष्ट हौ और एक और भी दोप है कि जव उसके पुण्य क्षीण होते हैं, तव तिसी कालमें उसको मृत्युलोकमें गिराय देते हैं, एक क्षणभी रहने देते नहीं हे राजन् ! यह जो दोप कहे सो स्वर्गमें हैं जो तेंने पूंछा सो मैंने गुण अरु दोप कहे

हे भद्रे ! जव इसप्रकार राजासे मैंने कहा तव मोको राजाने कहा-हे देवदूत ! इस स्वर्गके योग्य हम नहीं है, अरु हमको इच्छाभी नहीं है हम उग्र तप करेंगे तप करके इस देहको भी त्याग देंगे जैसे सर्प अपनी त्वचाको पुरातन जानिके त्याग करता है, तेसे हम भी त्याग कर देंगे हे देवदूत ! तुम अपने विमानको जहाते लाये हो, तहां लेजाओ, हमारे तो नमस्कार है

हे देवी ! जव इस प्रकार राजाने मुझको कहा, तव विमान अप्सरा आदि सवको लेके स्वर्गमे गया, अरु सपूर्ण वर्त्तमान इंद्रसे कहा तव इंद्र प्रसन्न हुवा अरु सुदर वाणी करके मुझसे कहत भया-हे दूत ! तू

वहुरि जहां राजा है तहा जा वह संसारते उपराम हुआहै इसकी अव आत्मपदकी इच्छा हुई है इसको साथलेके वाल्मीकि जिसने आत्मतत्त्वको आत्मा करि जाना है, तिसके पास ले जाय मेरा सदेशा कहना कि, हे महाऋषि ! इस राजाको तत्त्ववोधका उपदेश करना, क्योंकि यह वोधका अधिकारी हे काहेते कि, इसको स्वर्गकी भी इच्छा नहीं, अरु औरकीभी वांछा नहीं, ताते तुम इनको तत्त्ववोधका उपदेश करो, जो तत्त्ववोधको पाय करके ससार दु खते मुक्त होवे.

हे सुभद्रे ! जव इस प्रकार देवराजाने मुझसे कहा, तव मै चला जहां राजाथा, तहा जाइ करिकै मैंने कहा-कि हे राजन् ! ससार समुद्रते मोक्ष होनेके निमित्त वाल्मीकिके पास चल, वाल्मीकि तुझको उपदेश करैगा तव तिसको साथ लेकर, मैं वाल्मीकिके स्थानपर आय प्राप्त भया तिस स्थानमें राजाको विठाया, अरु इंद्रका सदेशा कह दिया जो वहां वृत्तान्त भया सो सुन—जव वहां गये, अरु प्रणाम कर वैठे, तव वाल्मीकिने कहा—हे राजन् ! कुशल है ?

राजोवाच, हे भगवन् ! परम तत्त्वज्ञ और वेदांत जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! मै अव कृतार्थ हुआ तुम्हारे दर्शन करकै अव मुझको कुशल हुआ है अरु कछु पूछता हों कृपा करके उत्तर कहना, जिससे ससार-वंधनते मुक्ति होय

वाल्मीकिउवाच, हे राजन् ! महारामायण औषध तुझसे कहता हों सो श्रवण करके तात्पर्य हृदय विषे धारणेका यत्न कर जव तात्पर्य हृदय विषे धारेगा, तव जीवन्मुक्त होयकर विचरेगा, हेराजन् ! वशिष्ठजी अरु रामचंद्रजीका संवाद है तिसमे सव कथा मोक्षके उपायकी कही है तिसको सुनके जैसे रामचंद्रजी अपने स्वभाव विषे स्थित हुए, अरु जीवन्मुक्त होयके विचरे हैं तैसे तूभी विचरेगा.

राजोवाच, हेभगवन् ! रामचंद्रजी कौन था, अरु कैसाथा, अरु कैसे होकर विचऱ्या है ? सो कृपा करके कहो

वाल्मीकिउवाच, हे राजन् ! शापके वशते, हरि जो विष्णु

छल करके मनुष्यका देह धरा सो अद्वैत ज्ञानकर संपन्न है तौभी कछुक अज्ञानको अंगीकार करके, मनुष्यका शरीर धरा था

राजोवाच, हे भगवन् ! चिदानंदरूप जो हरि हैं तिनको शाप किस कारण हुआ,अरु किसने दिया ? सो कहो.

वाल्मीकिरुवाच, हे राजन् ! एक कालमे सनत्कुमार जो निष्काम हैं सो ब्रह्मपुरीमे बैठे थे; अरु त्रिलोकीका पति जो विष्णु भगवान्, सो वैकुंठते उतरके ब्रह्मपुरीमें आये, तब ब्रह्मासहित सर्व सभा उठके खडीहुई अरु पूजन किया, अरु सनत्कुमारने पूजन किया नहीं तिसको देखकर विष्णु भगवान् बोलत भया-हे सनत्कुमार ! तुझको निष्कामताका अभिमान है, ताते तूं काम करके अवतार पावेगा, अरु स्वामिकार्त्तिक तेरा नाम होवेगा जब विष्णु भगवान्ने ऐसा कहा, तब सनत्कुमार बोले हे विष्णु ! सर्वज्ञताका अभिमान तुझको है सो तेरी सर्वज्ञता कोई काल निवृत्त होवेगी, अरु अज्ञानी होवेगा हे राजन् ! एक तो यह शाप हुआ और भी सुन

एक कालमे भृगुकी स्त्री जात रही थी; तिसके वियोग कर वह ऋषि तपायमान हुआथा तिसको देखके विष्णुजी हँसे तब भृगुब्राह्मणने शाप दिया–हे विष्णु ! मेरे तईं देखि तैने हांसी करी है, सो मेरी नाईं तू भी स्त्रीके वियोग कर आतुर होवेगा

एक दिन देवशर्मा ब्राह्मणने नरसिंह भगवान्को शाप दिया था, सो सुन–एक दिन नरसिंह भगवान् गंगाके तीरपर गयेथे, तहां देवशर्मा ब्राह्मणकी स्त्री थी, तिसको देखके, नरसिंहजी भयानक रूप दिखायके हँसे तिनको देखके ऋषिकी लुगाईने भय पाय प्राण छोडदिये तब देवशर्माने शाप दिया कि, तुमने मेरी स्त्रीका वियोग किया, ताते तुमभी स्त्रीका वियोग पाओगे

हे राजन् ! सनत्कुमार अरु देवशर्माके शाप करके विष्णु भगवान्ने मनुष्यका शरीर धरा, सो राजा दशरथके घरमें प्रगटे हे राजन् ! यह जो शरीर धरा है अरु आगे जो वृत्तांत हुआहै, सो सावधान होय श्रवण कर. दिव्य जो है देवलोक, अरु भू जो है पृथ्वीलोक, अरु पाताललोक

ऐसी त्रिलोकीको प्रकाशता है, अरु अंतर बाहर आत्मतत्त्वकरि पूर्ण है ऐसा अनुभवात्मक मेरा आत्मा है, तिस आत्माको नमस्कार है

हे राजन्! यह शास्त्र जो आरंभ किया है. तिसका विषय क्या है, अरु प्रयोजन क्या है, अरु संबंध क्या है, अरु अधिकारी कौन है? सो श्रवण कर सत्, चित् आनंदरूप, अचिंत्य, चिन्मात्र आत्माको जनावता है, सो विषय है अरु परमानंद आत्माकी प्राप्ति अरु अनात्म अभिमान् दुःखकी निवृत्ति, यह प्रयोजन इसमें है अरु ब्रह्मविद्या मोक्ष उपायकर आत्मपदका प्रतिपादन है, सो संबधहै अरु जिसको यह निश्चय है कि, मै अद्वैत ब्रह्म, अनात्म देहका साथी हुआहों, सो किसी प्रकार छूटो,ऐसा ज्ञानवान् है, अरु मुमुक्षु है, ऐसा जो विकृति आत्मा है, सो इहां अधिकारी है

इस शास्त्रका मोक्ष उपाय है परंतु कैसा है? मोक्ष उपाय परमानंदकी प्राप्ति करनहारा है जो पुरुष इसको विचारे सो ज्ञानवान् होवे. बहुरि जन्म मृत्युरूप ससारमें न आवे हे राजन्! यह महारामायण जो है सो पावन है श्रवणमात्रसे सब पापका नाशकर्त्ता है, जिस विषे रामकथा है सो, प्रथम मै अपने भारद्वाज शिष्यको श्रवण कराई है

एक समय भारद्वाज चित्तको एकाग्र करके मेरे पास आया था, तिसको मैं उपदेश किया था तिसको श्रवण करके वचनरूपी समुद्रते साररूपी रत्नको हृदय विषे धरके एक समय सुमेरु पर्वतपर गया तहां पितामह जो ब्रह्मा सो बैठेथे अरु भारद्वाजने जायकर प्रणाम किया, अरु पास बैठा, अरु ब्रह्माजीको यह कथा सुनाई तब ब्रह्माने प्रसन्न होयकर भारद्वाजसे कहा-हे पुत्र! कछु वर मांग, मैं तुझपर प्रसन्न हुवा हौं हे राजन्! जब इस प्रकार ब्रह्माजीने कहा, तब परम उदार जिसका आशय है, ऐसा जो भारद्वाज सो कहत भया-हे भूत भविष्यके ईश्वर! जो तुम प्रसन्न हुए हो, तो यह वर देहु-कि, संपूर्ण जीव संसार दुःखते मुक्त होहिं, अरु परमपदको पावहिं, सो उपाय कहो

ब्रह्मोवाच, हे पुत्र! तू अपने गुरु वाल्मीकिके पास गमन कर. बहुरि जो तिसने आत्मबोध महारामायण अनिंदित शास्त्रका आरभ

किया है तिसको सुनकर जीव महामोह संसारसमुद्रते तरैंगे. कैसा शास्त्र है महारामायण ? जो संसारसमुद्र तरनेको पुल है; अरु परम पावन है

वाल्मीकिरुवाच, हे राजन्! जब इस प्रकार कहा, तब आप परमेष्ठी ब्रह्मा, भारद्वाजको साथ लेकर मेरे आश्रममें आये. तब मैंने भले प्रकारसों इसका पूजन किया. सो ब्रह्माजी कैसे हैं ? जिसकी सर्व भूतके हितमें प्रीति है सो मुझसे कहत भये.

ब्रह्मोवाच, हे मुनि! श्रेष्ठ वाल्मीकि यह जो रामके स्वभावके कथनका आरंभ तुमने किया है तिस उद्यमका त्याग नहीं करना. इसको आदिते अंतपर्यंत समाप्त करना केसा है यह मोक्षउपाय ? जो संसाररूपी समुद्रके पार करनेको जहाज है इस करिकै सर्व जीव कृतार्थ होवेंगे

वाल्मीकिरुवाच, हे राजन्! इस प्रकार ब्रह्माजी मुझसे कहिके अंतर्द्धान होगये, जैसे समुद्रते आवर्त्त चक्र एक मुहूर्त्त पर्यंत उठके बहुरि लीन होजाताहै तैसे ब्रह्माजी अंतर्द्धान होगये तब मैं भारद्वाजसे कहा हे पुत्र! ब्रह्माजीने क्या कहा ?

भारद्वाजोवाच, हे भगवन्! तुमको ब्रह्माजीने ऐसा कहा कि, हे मुनिश्रेष्ठ! तुमने रामके स्वभावके कथनका उद्यम किया है, तिसका त्याग नहीं करना, अंतपर्यंत समाप्ति करना. काहेते कि, इस संसारसमुद्रके पार करनेको यह कथा जहाज है. इसकरिके अनेकजीव कृतार्थ होवेंगे, अरु संसारसंकटते मुक्त होवेंगे

वाल्मीकिरुवाच, हे राजन्! जब इस प्रकार ब्रह्माजीने मुझको कहा, तब ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार मैंने ग्रंथ किया; अरु भारद्वाजको कहा हे पुत्र! वसिष्ठजीके उपदेशको पाय कर जिसप्रकार रामजी निःशंक होइ विचरे हैं, तैसे तू भी विचर. तब उनने प्रश्न किया

भारद्वाजोवाच.हे भगवन्! जिसप्रकार रामचंद्रजी जीवन्मुक्त होकर विचरेहैं, सो आदिसों क्रम करके मुझको कहो

वाल्मीकिरुवाच, हे भारद्वाज! रामचंद्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, कौसल्या, सुमित्रा, दशरथ ये आठों अष्टमंत्री, अष्ट गुण आदि लेकर जीवन्मुक्तहोय विचरे हैं, तिनके नाम सुन-रामजीसे लेके दशरथ पर्यंत

आठ तो ये कृतार्थ हुए हैं अविरोध, परमबोधवान् भये हैं और कृतभासी १, शतवर्धन २, शुकधाम ३, विभीषण ४, इंद्रजीत ५, हनुमंत ६, वशिष्ठ ७, वामदेव ८ ये अष्ट मंत्री सो निःशंक होय चेष्टा करत भयेहैं, अरु सदा अद्वैतनिष्ठ हुएहैं इनको कदाचित् स्वरूपते द्वैतभाव नही फुर्या है अनामय पदविषे स्थितिमें तृप्त रहे, जो केवल चिन्मात्र, शुद्धपद, परमपावन ताको प्राप्त हुए हैं

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कथारंभ वर्णननाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २



अथ तीर्थयात्रावर्णनम्।

भारद्वाजोवाच, हे भगवन्! जीवन्मुक्तकी स्थिति कैसी है? अरु रामजी कैसे जीवन्मुक्त हुयेहैं? सो आदिते लेकर अतपर्यंत सब कहो

वाल्मीकिरुवाच, हे पुत्र! यह जगत जो भासता है सो वास्तविक कछु नहीं उत्पन्न भया अविचार करके भासता है विचार कियेते निवृत्त होजाता है जैसे आकाशमे नीलता भासती है, सो भ्रम करके है जब विचारकरके देखिये तब नीलता प्रतीति दूर होजाती है तैसे अविचार करके जगत् भासता है अरु विचारते लीन होजाता है हे शिष्य! जबलग सृष्टिका अत्यत अभाव नहीं होता, तबलग परमपदकी प्राप्ति नहीं होती जब दृश्यका अत्यंत अभाव होय जावे, तब पाछे शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता भासेगी कोई इस दृश्यको महाप्रलयमें कदाचित् अभाव कहते हैं, परतु मैं तुझको तीनोंई कालका अभाव कहता हों सो शत शास्त्रकर इस शास्त्रमें श्रद्धा संयुक्त आदिते लेकर अत पर्यंत श्रवण कर, अरु तिनको धार, तब तिसकी भ्राति निवृत्त होय जावे. अरु अव्याकृत पदकी प्राप्ति होवे हे शिष्य! ससार भ्रममात्र सिद्ध है, इसको भ्रममात्र जानकर विस्मरण करना सो मुक्ति है अरु इसको बंधनका कारण वासना है वासना करके भटकत फिरता है

वासनाका क्षय होजाय, तव परमपदकी प्राप्ति होवे जो वासनामें फिरता है, तिसका नाम मन है जैसे जल शरदीकी दृढ जडता पायके वर्फ होता है, पाछे सूर्यके तापसे वहुरि गलकर जल होता है, तव केवल शुद्ध जल होय रहता है, तैसे आत्मारूपी जल है तिसविषे संसारकी सत्यतारूपी जडता शीतलताहै तिस करके मनरूपी वर्फका पुतला हुआ है जव ज्ञानरूपी सूर्य उदय होवेगा, तव ससारकी सत्यतारूपी जडता, शीतलता, निवृत्त होजावेगी.

जव संसारकी सत्यता अरु वासना निवृत्त हुई, तव मन नष्ट होजावेगा जव मन नष्ट हुआ, तव परम कल्याण हुआ ताते इसके वंधनका कारण वासनाहै अरु वासनाके क्षय हुयेते मुक्तिहै सो वासना दोप्रकारकी है, एकशुद्ध अरु दूसरी अशुद्ध सो अपने वास्तविक स्वरूपके अज्ञानते अनात्मा जो देहादिक, तिनमें अहकार करना,सो जव अनात्ममें आत्म अभिमान हुआ तव नाना प्रकारकी वासना उपजती है तिसकरके घटी यंत्रकी नाई चक्र भ्रमता है हे साधु ! यह जो पचभूतका शरीर तू जो देखता है. सो सव वासनारूपहै वासना सो चक्र है जैसे मणके धागेके आश्रयते खड़े होते है और जव धागा टूट पडा, तव मणका न्यारा न्यारा होय पडता है, अरु ठहरता नहीं है तैसे वासनाके क्षय हुए पंचभूतका शरीर नहीं रहता ताते सव अनर्थका कारण वासना है अरु जो शुद्ध वासना है तिनमें जगत्का अत्यन्त अभाव निश्चय होताहै. हे शिष्य ! अज्ञानीका जो निश्चय है, सो वासना कर वहुरि जन्मका कारण हो जाता है अरु ज्ञानीकी वासना है सो वहुरि जन्मका कारण नहीं होताहै जैसे एक कच्चा वीज होता है, दूसरा दग्धवीज होताहै तिसमे जो कच्चा है सो वहुरि उगता है; अरु जो दग्ध हुआ है सो वहुरि नहीं उगता. तैसे अज्ञानीकी वासनाहै सो रससहित है, सो जन्मका कारण है, अरु ज्ञानीकी वासना है सो रसरहित है सो जन्मका कारण नहीं. ज्ञानीकी चेष्टा स्वाभाविक गुण करके खडीहोती है और किसी गुणके साथ मिलकर अपनेमें चेष्टा नहीं देखता खाता है, पीता है, देता है, वोलता है, चलता है, विचार करता है, परन्तु अतर सदा अद्वैत निश्चयको धरता है. कदा-

चित् द्वैतभावना तिसको फुरती नहीं है अपने स्वभावविषे स्थितहै ताते निर्गुण अरु अरूपहै ताकी चेष्टा जन्मका कारण नहीं है, जैसे कुम्हारका चक्र है, सो जबलग उसको फेर चढ़ावे, तबलग वह फिरता है और जब फेर चढावना छोड दिया, तब स्थीयमान गतिसे उतरत उतरत फिरके स्थिर रह जाता है तैसे जबलग अहंकार सहित वासना होती है, तबलग जन्म पावता है जब अहंकारते रहित हुआ तब बहुरि जन्म नही पावता हे साधु! यह जो अज्ञानरूपी वासना है, तिसको नाश करनेका उपाय एक ब्रह्मविद्या श्रेष्ठ है ब्रह्मविद्या मोक्ष उपायका शास्त्र है जब इसते और शास्त्रमे गिरैगा तब कल्पपर्यंतहू अव्याकृत पदको न पावेगा अरु जो ब्रह्मविद्याका आश्रय करैगा तो सुखसों आत्मपदको प्राप्त होवेगा हे भारद्वाज! यह मोक्षउपाय रामजी अरु वशिष्ठजीका संवाद सो विचारने योग्य है, बोधका परम कारण है. ताते आद्यत पर्यंत मोक्ष उपाय श्रवणकर जैसे रामजी जीवन्मुक्त होय विचरे हैं सो सुन

एक दिन रामजी विद्या पढके अध्ययन शालाते अपने गृहमे आये, अरु संपूर्ण दिन विचार करत व्यतीत करदिया बहुरि मनमें तीर्थ, ठाकुरद्वाराका संकल्प धर पिता दशरथके पास आये पितासों मिलके जो संपूर्ण प्रजाको सुखमे राखते थे, अरु सब प्रजा तिसके निकट रहिकें सुख पाती तिस दशरथका चरण श्रीरघुनाथजीने ग्रहण किया जैसे सुदर कमलको हस ग्रहण करै तैसे पिताका चरण ग्रहण किया जैसे कमलके तरे कोमल तारियां होतीहैं, तिन तारियों सहित कमलको हस पकडता है, तैसे दशरथजीकी अँगुरीनको रामजीने ग्रहण किया अरु बोले कि, हे पिता! मेरा चित्त तीर्थ अरु ठाकुरद्वाराके दर्शनको उठा है ताते तुम आज्ञा करो तो मैं तीर्थका अरु ठाकुरद्वारेका दर्शन कर आऊं मैं तुम्हारा पुत्रहूं तुमको पालना करनी योग्य है और आगे भे कभी कहा नहीं, यह प्रार्थना अब करी है ताते तुम आज्ञा देहु, जो मैं जाऊ यह वचन मेरा फेरना नहीं काहेते कि, ऐसा त्रिलोकीमें कोऊ नहीं है, जिसका मनोरथ इस घरते सिद्ध हुआ नहीं है, सबका मनोरथ सिद्ध हुआ है ताते मुझको कृपा कर आज्ञा देहु

वाल्मीकिरुवाच, हे भारद्वाज ! इस प्रकार जब राम जीने कहा तब वशिष्ठजी पास बैठेथे तिनने भी दशरथसे कहा-हे राजन् ! रामजीको आज्ञा देहु सो तीर्थ कर आवें क्योंकि, इनका चित्त उठा है. राजकुमार है, इनके साथ सेना दीजे, धन दीजे, मंत्री दीजे, ब्राह्मण दीजे, जो ये दर्शन कर आवे.

हे भारद्वाज ! जब ऐसे विचार किया, तब शुभ मुहूर्त्त देखकर रामजीको आज्ञा दीनी. जब चलने लगे, तब पिता अरु माताके चरण लगे अरु सबको कंठ लगाइ रुदन करने लगे. तिनको मिलकर आगे चले अरु लक्ष्मण आदि जो भाई हैं और मंत्री थे, तिनको साथ लेकर, अरु वशिष्ठ आदि जो ब्राह्मण विधिकी जाननेवारे थे अरु बहुत धन, बहुत सेना तिनको साथ ले चले और दान पुण्य करके जब गृहके बाहर निकले, तब वहाके जो लोग थे अरु स्त्रियाथी तिन सबने रामजीके ऊपर फूल अरु फूलोंकी मालाकी वर्षा करी सो वर्षा बरफ बरसती है ऐसी दीखतीथी अरु रामजीकी जो मूर्त्ति है सो हृदयमें धरलीनी इस प्रकार रामजी वहांसे चले तहां ब्राह्मण अरु निर्धनोंको दान देते देते तीर्थ जो गंगा, यमुना, सरस्वती आदि देके हैं, इसमें स्नान विधि सयुक्त कर पृथ्वीके चारों कोन उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिमको दान किया अरु चारों ओर समुद्रके स्नान किये अरु सुमेरु पर्वतपर गये. हिमालय पर्वतपर गये. अरु शालग्राम, बद्री, केदार, आदिगंगामें स्नान किये अरु दर्शन किये ऐसे सब तीर्थ, स्नान, दान, तप, ध्यान, विधिसंयुक्त यात्रा करत भये जैसी जैसी जहा विधि थी तैसी तैसी तहां करी, एक वर्षमें संपूर्ण यात्रा करके रामजी बहुरि अपने घरमें आये

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे तीर्थयात्रा वर्णनंनाम द्वितीय सर्ग ॥२॥

तृतीयः सर्ग. ३.



अथ विश्वामित्रागमन वर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच, हे भारद्वाज ! जब रामजी यात्रा करके अपनी अयोध्यामें आवत भये तब नगरके वासी लोग पुरुष और स्त्री फूलनकी

वर्षा करत भये अरु जयजय शब्द मुखते उच्चारने लगे अरु प्रेमहास्य करने लगे और जैसे इंद्रका पुत्र अपने स्वर्गमें आवत है, तैसे रामचद्रजी अपने घरमें अ॰ । पहिले राजा दशरथको प्रणाम कर, फिर वशिष्ठजीको प्रणाम कर, फिर सब सभाके लोगोंको यथायोग्य मिले, फिर अंतःपुरमे आवत भये तहां कौशल्या आदि जो माताथीं, इनको यथायोग्य नमस्कार किये और जो भाई बांधव कुटुंब थे तिन सबको मिले

हे भारद्वाज! इस प्रकार रामजीके आवनका उत्साह सप्तदिन पर्यंत होता रहा वा समयमे कोऊ मिलने आवे कोऊ कछु लेने आवे तिनको दान पुण्य करत बाजे बजत उत्साह हुआ. भाट आदि स्तुति करने लगे तदनंतर रामजीका आचरण हुआ, सो सुन प्रातःकालमें उठके स्नान सध्यादिक सत्कर्म करते,बहुरि भोजन करते, बहुरि भाई बंधुको मिल अपने तीर्थकी कथा कहते देवद्वारके दर्शनकी वार्त्ता करते इस प्रकार सों उत्साह कर दिन रातको बितावतेथे

एक दिन प्रात कालमे उठके पिताजी दशरथको देखे सो जैसे इंद्रका तेज है, तैसा तेजवान् देखा अरु वशिष्ठादिककी सभा बैठीथी, तहां वशिष्ठजीके साथ कथा वार्त्ता रामजी करते हुए,तहां एक दिन राजा दशरथ कहत भये, हे रामजी! तुम शिकार खेलने जायबो करो ता समयमे रामजीकी अवस्था वर्ष १६ मे थोरेक महीना कमतीथी तब राजकुमार रामजीके साथ लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न भाई थे, भरत नहानेको गयेथे, फिर तिनके साथ स्नान सध्यादिक नित्य कर्म करके, भोजन करके शिकार खेलने जाते तहां जो जीवको दुःख देनेहारे जानवर देखे तिनको मारते अरु अवर लोकको प्रसन्न करते, इस प्रकार दिनको शिकार खेलते रात्रिको निसान बाजते अपने घरमे आवते ऐसे करत केतेक दिन बीते तामे रामजी अपने अत पुरमें आइ सबका त्याग करके एकातमें चितन करत बैठि रहते

हे भारद्वाज! जेती कछु राजकुमारकी चेष्टा सो सबको रामजीने त्याग कर दीनी थी जेते कछु रस सयुक्त इन्द्रियोके विषय है, इनको त्यागके शरीरते दुर्बल जैसे हो मुखकी कांति घट गई, पीत वर्ण होगये जैसे

है, आदि, मध्यअंतते रहित अविनाशी है, ऐसा जो अकृत्रिम आनंदहै, सो तुम्हारे दर्शन कर मुझको प्राप्त हुआ दृष्टिमें आवताहै. हे भगवन् ! आज मेरे वडे भाग्य हुए हैं, जो मैं धर्मात्माके गिननेमे आऊंगा काहेते कि जो तुम मेरे कुशलनिमित्त आये हो हे भगवन् !तुम्हारा आवना हमारे लक्षमें नहीं था अरु तुमने वडा अनुग्रह किया है जैसे सूर्य कोई कार्य करनेको पृथ्वी पर आवे, तैसे तुम मुझको दृष्टि मे आवते हो. अरु सबते उत्कृष्ट दृष्टिमें आवते हो काहेते कि तुममें दो गुण हैं, एक तो क्षत्रियका स्वभाव तुम्हारेमें है, अरु दूसरा ब्राह्मणका स्वभाव भी तुम्हारे मे भासता है. अरु शुभ गुण कर संपूर्ण हो हे मुनीश्वर तुम क्षत्रियमेंते ब्राह्मण भये हो. ऐसी कोईकी सामर्थ्य नही देखी अरु तुम्हारा शरीर प्रकाशमान दीखता है अरु जिस मार्ग से तुम आये हो, अरु जिस मार्गमें तुम दृष्टि करत आये हो, तहां ते अमृत वृष्टि करत आये हो ऐसा दृष्टि आवता है. हेमुनीश्वर ! तुम आये सो तुम्हारे दर्शन कर मुझको वडा लाभ हुआ है

हे भारद्वाज ! इस प्रकार राजा दशरथ विश्वामित्रसे बोले. अरु वशिष्ठजी आयकर विश्वामित्रको कंठ लगायके मिले. और जो मंडलेश्वर राजाथे सो बहुत प्रणाम कर इस प्रकार सब मिले. तब विश्वामित्रको राजा दशरथ घरमें ले आये जहां राजसिंहासन था, तहां आनकर बिठाया अरु वशिष्ठ, वामदेव को बिठाये और राजा दशरथने विश्वामित्रका पूजन किया अरु अर्घ्य पादार्चन करके प्रदक्षिणा करी. बहुरि वशिष्ठजीने विश्वामित्रका पूजन किया अरु विश्वामित्रने वशिष्ठजीका पूजन किया. ऐसे अन्योन्य पूजन हुआ इस प्रकार पूजन करके सब अपने अपने आसनपर यथायोग्य बैठे तब–

राजा दशरथ बोले हे भगवन्! हमारे वडे भाग्य हैं जो तुम्हारा दर्शन हुआ. जैसे कोऊ तप्तको अमृत प्राप्ति होवे, अरु जन्मांधको नेत्र प्राप्त होवे, सो आनंद पावे जैसे निर्धनको चिंतामणि प्राप्त होवे, अरु आनंदको पावे. अरु जैसे किसीका बांधव मुआ होय, सो विमान पर चढा हुआ आकाशते आवे, उसको जैसा आनंद प्राप्त होवे, तैसे

तुम्हारे दर्शन कर, मै आनदको प्राप्त हुआ हूं हे मुनीश्वर ! तुम्हारा आवना जिस अर्थ हुआहै, सो कृपा कर कहो अरु जो तुम्हारा अर्थ हो सो पूर्ण हुआ जानो. काहेते कि ऐसा पदार्थ कोई नहीं है, जो तुमको देना कठिन है सब कछु मेरे विद्यमान है जो तुम्हारा अर्थ है सो निश्चय कर जानने योग्य होय रहा है जो कछु तुम आज्ञा करोगे सो मैं देऊगा

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्य प्रकरणे विश्वामित्रागमनवर्णनं
नाम तृतीय. सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

अथ विश्वामित्रेच्छावर्णनम्.

वाल्मीकिरुवाच, हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार राजा दशरथने कहा, तव मुनिनमे शार्दूल जो विश्वामित्र, वहुत प्रसन्न भये, अरु रोम खडे हो आये, जैसे पूर्णमासीके चद्रमाको देखके क्षीरसागर प्रसन्न होताहै, तैसे प्रसन्न होकर कहत भये-हे राजशार्दूल ! तुम धन्य हो ! ऐसा क्यों न होवे, जो तुम्हारेमें दो गुण श्रेष्ठ है एक तो रघुवशी हो दूसरा वशिष्ठजी तुम्हारा गुरु है, ताकी आज्ञामे चलते हो ताते

हे राजन् ! जो कछु मेरा प्रयोजन है सो तुम्हारे आगे प्रगट करता हों, श्रवण करो दशरात्र यज्ञका मैंने आरंभकिया है, सो जव यज्ञको करने लगताहूँ तव राक्षस खर अरु दूपण उस यज्ञको तोर डारते है जहां जहां मै जायकर यज्ञ करता हू, तहा तहां आय कर अपवित्र जो रुधिर अरु मांस, अरु अस्थि सो डारते हैं, सो स्थान यज्ञ करने योग्य नहीं रहता और वहुरि मैं और ठौर करने लगताहूं, तहां भी उसी प्रकार अपवित्र कर जाते हैं तिसके नाश करनेके निमित्त मै तुम्हारेपास आया हूँ कदाचित् ऐसे कहो कि तुम भी तो समर्थ हो तो हेराजन् ! मैंने यज्ञका आरभ कियाहै तिसका अंग क्षमाहै. जो उनको मैं शाप देऊं, तो वह भस्म होजावें, परंतु शाप क्रोध विना होत नाहीं अरु क्रोध कियेते यज्ञ निष्फल होजाताहै अरु जो मैं चुपहो रहों तो वह राक्षस अपवित्र —

डार जाते है तातें मैं तुम्हारी शरण आयाहों, मेरा कार्य करो हे राजन्! तेरा जो रामजी पुत्र है,सो कमलनयन काकपक्ष संयुक्त है. अर्थ यह जो वालक दूसरी शिखा सहित रहे है. तिसको मेरे साथ देहु, जो राक्षसोंको मारे, तव मेरा यज्ञ सफल होय और तुमको ऐसा शोक करना नहीं चाहिये कि मेरा पुत्र वालक है यह तो वडे इन्द्रके समान शूरवीर है इनके समीप वह राक्षस ठहर न सकेंगे जैसे सिंहके सन्मुख मृगके वचे ठहर नहीं सकते, तैसे तेरे पुत्रके सन्मुख राक्षस न ठहर सकेंगे. तातें मेरे साथ उनको तुम देहु जो तुम्हारा भी धर्म रहै अरु यशभी रहै मेरा कार्य भी होवे इसमें संदेह नहीं करना

हे राजन्! ऐसा पदार्थ त्रिलोकीमें कोई नहीं जो रामजीका किया कछु न होवे इसीसे मैं तेरे पुत्रको लिये जाता हूं यह मेरे करसों ढांपा रहेगा, अरु इसको कोई विघ्न मैं होने न देऊंगा, अरु जो तेरे पुत्र वस्तु हैं सो मैं जानताहूं; और वशिष्ठजीहू जानते है. और जो ज्ञानवान् त्रिकालदर्शी होवेगा, सो भी इनको जानता होयगा और कोईकी सामर्थ्य नहीं है जो इनको जानसके तातें तुम इनको मेरे साथ देहु जो मेरे कार्यकी सिद्धि होय.

हे राजन्! जो समयपर कार्य होता है, सो थोरे करने सेभी वहुत सिद्धि पावता है जैसे द्वितीयाके चन्द्रमाको देखके एक तंतुका दान किया होय सो भी वहुत है, पीछे वस्त्रका दान कियेते भी तैसा कार्य सिद्धि नहीं होता तैसे समयपर थोडा कार्य भी वहुत सिद्धिको देताहै अरु समय विना वहुत कार्य भी थोरे फलको देताहै. तातें तुम मेरे साथ रामजीको दीजे

खर, दूषण, ये वडे दैत्य है सो आय कर मेरा यज्ञ खंडन करते है; जव रामजी आवेंगे तव वह भाग जायँगे रामजीके आगे खडे न होय सकेंगे. इनके तेजसे वह सव अल्प वल होजावेंगे जैसे सूर्यके तेज करिके तारागणका प्रकाश छिप जाता है; तैसे रामजीके दर्शनसे वह स्थित न रहेंगे जैसे गरुडके आगे सर्प नहीं ठहर सक्ते, तैसे रामजीके आगे राक्षस न ठहर सकेंगे. देखकर भाग जायँगे तातें तुम मेरे साथ देहु जो मेरा कार्य होवे, अरु तुम्हारा धर्म भी रहे रामजीके निमित्त संदेह मत करना

उस राक्षसकी सामर्थ्य नहीं जो रामजीके निकट आवे अरु मैं भी रामजीकी रक्षा करूंगा

वाल्मीकिरुवाच, हे भारद्वाज! जब विश्वामित्रने ऐसा कहा, तब राजा दशरथ सुनकर चुपरहा अरु गिरपडा एक मुहूर्त्त पर्यंत पड़ा रहा

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रेच्छा वर्णनं नाम चतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५.

अथ दशरथोक्ति वर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच,हे भारद्वाज! एक मुहूर्त्त पीछे राजा उठे अरु महादीन से होगये, अरु महा मोहको प्राप्त हो गये, धैर्य ते रहित होकर बोले

राजोवाच, हे मुनीश्वर! तुमने क्या कहा रामजी अभी तो कुमार हैं शस्त्रविद्या,अस्त्रविद्या भी सीखे नहीं हैं अभी तो फूलनकी शय्यापर शयन करने वारे हैं, वह युद्धको क्या जानै अंतःपुरमें स्त्रियनके पास बैठने वाले हैं, राजकुमार बालकनके साथ खेलनेवाले हैं, और कदाचित् रणभूमि देखीहू नही है, भ्रुकुटीको चढायके कदाचित् युद्ध भी नहीं किया अरु कमलकी नाईं जिसके हाथहैं, अरु कोमल जिसका शरीर है, वह राक्षसके साथ युद्ध कैसे करैगा, कहू पत्थरका अरु कमलका भी युद्ध हुआ है। रामजीका वपु कमल समान कोमल है, अरु वह महा क्रूर पत्थरकी नाईं हैं, उनके साथ युद्ध कैसे होवेगा

हे मुनीश्वर! मैं नव सहस्र वर्षका हुआ हू, अब दशवां सहस्र लगा है वृद्ध हुआ हूं यह वृद्धावस्थामें मेरे घर पुत्र हुवे हैं, सो चारोंके मध्य रामजी कमल नयन कछु षोडश वर्षका हुआ है अरु मुझको बहुत प्रियतम है अरु मेरा प्राण है. रामजी बिन मैं एक क्षणभी रहि नहीं सकता जो तुम इनको ले जाओगे, तो मेरा प्राण निकल जायगा! मै मृतक हो जाऊंगा

हे मुनीश्वर! केवल मेराही ऐसा सनेह सो नहीं है उसका भाई जो

लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न,अरु उसकी माता जो है, सो सबहीके प्राण रामजी हैं जो तुम रामजीको ले जाओगे, तो हम सबही मर जायँगे वियोग करके जो हमको मारने आये हो तो ले जाओ, हे मुनीश्वर ! मेरे चित्तमें रामही फुर रहा है तिसको मैं तुम्हारे साथ कैसे देऊं, मैं उसको देखत देखत प्रसन्न होता हो जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाको देख कर क्षीर समुद्र प्रसन्न होता है, अरु चंद्रको देखकर चकोर प्रसन्न होता है, अरु मेघ बूंदको देखकर पपीहा प्रसन्न होता है, तैसे रामजीको देखकर मैं प्रसन्न होता हू तब रामजीको वियोग कर मेरा जीवना कैसा होयगा, हे मुनीश्वर ! मेरेको रामजी जैसी प्रिय स्त्री भी नहीं अरु धनभी ऐसा प्रिय नही, अरु राज्यभी ऐसा प्रिय नही और पदार्थ भी मुझको कोई रामके समान प्रिय नहीं है ऐसा रामजी प्यारा है

हे मुनीश्वर ! तुम्हारे वचन सुनके बड़े शोकको प्राप्त हुआ हू. मेरे बडे अभाग्य आये है, जो तुम्हारा आवना इस निमित्त हुआ है. तुम्हारे वचन सुन कर जैसे कमलके ऊपर पत्थरकी वर्षा होय ऐसी व्यथा मेरेको होती है. अरु पत्थरकी वर्षाते जैसे कमल नष्ट हो जाते है, तैसे तुम्हारे वचनते मेरी नष्टता हो जायगी जैसे बडा मेघ चढ आवे, तामें बडा पवन चले तब मेघकी गभीरताका अभाव होय जाय, तैसे तुम्हारे वचनते मेरी बडी प्रसन्नताका अभाव होय जाता है। जैसे वसन्तऋतुकी मंजरी, ज्येष्ठ आषाढमें सूख जाती है तैसे तुम्हारे वचन सुन मेरे हृदयकी प्रसन्नता जर जाती है। हे मुनीश्वर ! रामजीको देनेमे मैं समर्थ नहींहू जो तुम कहो तो एक अक्षौहणी सेना मेरी है, सो वडे शूरवीरकी है, जिसको शस्त्र-विद्या, अस्त्रविद्या, मन्त्रविद्या, सब आवती है. और सबे युद्धमें चतुर है तिनके साथ म तुम्हारे संग चलता हौं वहां जायके मैं उनको मारूंगा अरु हस्ती, घोडा, रथ, प्यादे, ऐसी चतुरंगिनी सेनाको साथ ले जाओ, अरु जो तुम्हारे यज्ञके खंडनहारे हैं तिनको नाश करो, अरु एकके साथ मैं युद्ध न करसकूंगा, जो कदाचित् यज्ञ खंडनहारा कुबेरका भाई, अरु विश्रवाका पुत्र, रावण होवे तो उसके साथ युद्ध करनेको मैं समर्थ नहीं.

हे मुनीश्वर ! आगे मेरेमें बडा [illegible] किसीको

नहीं था. जो मेरे निकट मारनेको आता, तो वाको मैं मार देता. अव मेरी वृद्धावस्था हुई है, अरु देह जर्जरी भावको प्राप्त हुआ है इस कारण रावणके साथ युद्ध करनेको मै समर्थ नहीं हूं

हेमुनीश्वर ! मेरे वडे अभाग्य हैं जो तुम्हारा आना इस निमित्त हुआ है अव मेरा वैसा पराक्रम नहीं मैं रावण सों कॉपता हों केवल मैं ही नही कॉपता, इन्द्रादिक देवता सव रावणसे कॅपते है, अरु राक्षस सव उसके वश वर्त्तते है. अव किसीको शक्ति नहीं है जो रावणके साथ युद्ध करै ? इस कालमे वह वडा शूरवीर है.

हे मुनीश्वर ! जव मेरी सामर्थ्यता भी नहीं रही,तो राजकुमार रामजी कैसे समर्थ होवें गे, अरु जिस रामजीको लेने तुम आये हो, सो रोगी हो रहा है, उसको चिता ऐसी आय लगी है, जिससे वह महादुर्वल होगया है, अरु अत.पुरमें एकांतमें वैठा रहता है, खाना पीना इत्यादिक जो राजकुमारकी चेष्टा है सो सव उसको विरस होगई है, अरु मैं नही जानता कि उसको क्या दुःख प्राप्त हुआ है, जैसे कमल सूखके पीत वर्ण होजाता है, तेसा उसका मुख होगया है, उसको युद्ध करनेकी सामर्थ्यता नहीं अरु अपने स्थानते वाहरकी पृथ्वी भी नहीं देखी है, सो युद्ध कैसे करैगे

हे मुनीश्वर ! वह युद्ध करनेको समर्थ नही हैं, अरु हमारे प्राण वही हैं जो उसका वियोग होवेगा तो हमारा जीवना नहीं होवेगा, जेसे जल विना मछली जीवतीनहीं है, तैसे हम रामजी विना कैसे जीवेंगे, अरु जो राक्षसके युद्ध निमित्त कहो तो हम तुम्हारे साथ चलैं,अरु रामजी युद्ध करनेको योग्य नही

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्य प्रकरणे दशरथोक्ति वर्णन नाम पंचम' सर्ग ॥५॥



षष्ठः सर्ग. ६.

अथ रामसमाज वर्णनम्

वाल्मीकिरुवाच, हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार राजा दशरथने कहा, तब महादीन जैसे मोह सहित अधीर्यवान् वचन सुनकर, क्रोधसों विश्वामित्र कहत भये

विश्वामित्रोवाच, हे राजन् ! तू अपने धर्मको सुमिरण कर यह प्रतिज्ञा तैंने करीहै, "जो तेरा अर्थ होवेगा सो पूर्ण करूगा; और पूर्ण हुआ जानना" ऐसा तुमने कहा है, अब तू अपने धर्मको त्यागताहै और जो तू सिंह हुआ मृगोंकी नाईं भागता है तो भाग, परंतु आगे रघुवंशमे ऐसा कोई नहीं हुआ जैसे चंद्रमाके मंडलमे शीतलता होती है, अग्नि निकसता नहीं है, तैसे तुम्हारे कुलविषे ऐसा कदाचित् नहीं हुआ; अरु जो तू करता है तो कर, हम उठ जायँगे काहेते कि शून्य गृहते शूनेई जाता है परंतु यह तुमको योग्य नथा अरु तुम वसते रहो, राज्य करते रहो, अरु जो कछु होवेगा सो हम समझ लेयँगे. अरु जो अपने धर्मको तू त्यागता है, तो त्याग दे

वाल्मीकिरुवाच, हे भारद्वाज ! इस प्रकार जब अत्यंत क्रोधवान् होकर विश्वामित्र बोला, तब इसके क्रोध करनेसे पचास कोटि पृथ्वी कँपने लगी अरु इन्द्रादिक देवता भी भयको प्राप्त हुए,कि ये क्या हुवा, तब वसिष्ठ जी बोले

वशिष्ठोवाच, हे राजन् ! इक्ष्वाकुके कुलमें सब परमार्थी हुए है. और तू अपने धर्मको क्यों त्यागता है मेरे विद्यमान तैंने कहा है, "जो तुम्हारा अर्थ होवेगा, सो मैं पूर्ण करूगा." अब तू क्यों भाजता है ? रामजीको इसके साथ दे. अरु यही तेरे पुत्रकी रक्षा करेंगे जैसे सर्पते अमृतकी रक्षा गरुड करता है, तैसे तेरे पुत्रकी रक्षा यह करेगा अरु यह कैसा पुरुष है, सो श्रवण कर इसके समान बल किसीका नहीं. साक्षात बलकी मूर्त्ति है अरु धर्मात्मा है. साक्षात् धर्मकी मूर्त्ति है अरु ऐसा तपस्वी कोऊ नहीं है. अरु तपकी खानि है अरु इसके समान

कोऊ बुद्धिमान् नहीं है अरु इसकेसमान कोई शूरमा नही है, अरु अस्त्र शस्त्र विद्यामें भी इसके तुल्य कोऊ नहीं है काहेते कि, जो दक्ष प्रजापतिकी दो पुत्री थीं, एक जय,अरु दूसरी सुभगा,सो ये ऋषिको दीनी है, अरु जयथी, तिसमें दैत्योंके मारने निमित्त पांचसौ पुत्रोको प्रगट किये थे, अरु सुभगाके भी पांचसौ पुत्र भये थे सो सब दैत्योके नाश निमित्त उत्पत्ति कियेथे सो स्त्रियां इसके विद्यमान मूर्त्ति धरके स्थितहुई है, ताते इसको जीतनेको कोऊ समर्थ नहीं है, जिसका साथी विश्वामित्र होवे सो त्रिलोकीमें काहू सो नही डरै, ताते इसके साथ तू अपना पुत्र दे, अरु संशय मतकर किसीकी सामर्थ्य नहीं जो इसके होते तेरे पुत्रको कछु कोऊ कहिसके इसकी दृष्टिके देखनेते दुःखका अभाव होजाता है जैसे सूर्यके उदयते अंधकारका अभाव होजाताहै तैसे

हे राजन्। इसके साथ तेरे पुत्रको खेद कहां होवे तू इक्ष्वाकुके कुलका है, अरु दशरथ तेरा नामहै सो तेरे जैसे धर्म्मात्मा जब अपने धर्ममें स्थित न रहे तो और जीवते धर्मकी पालना कैसे होयगी, जो कछु श्रेष्ठ पुरुष चेष्टा करतेहैं तिनके अनुसार और जीव करते है जो तुम सारखे अपने वचनकी पालना न करैंगे, तब और सों कहा बनैगी अरु तुम्हारे कुलमे ऐसा कबहू नही हुवा ताते अपने धर्मको त्यागना योग्य नहीं तू अपने पुत्रको दे, अरु जो तू उनके भयकर शोकमान होवे, तोभी ना मतिकहे, और मूर्त्तिधारी काल आयकर स्थित होवे तोभी विश्वामित्रके विद्यमान तेरे पुत्रको कछु होवे नहीं, तू शोक मतकर, अपने पुत्रको इसके साथ दे, अरु जो नदेगा, तौ दो प्रकारका तेरा धन नष्ट होवेगा-एक धन यह है कि जो कूप, बावडी, ताल, कराये होयँगे, तिनका जो पुण्य है, सो नष्ट हो जावेगा अरु तप, व्रत, यज्ञ, दान, स्नानादिकका जो पुण्य है, अरु किया है तिस सबका फल नष्ट होजावेगा, औ तेरा गृह निरर्थ होय जावेगा ताते मोह अरु शोकको त्याग, अरु अपने धर्मका सुमिरण कर, रामजी इसकेसाथ दे, तेरे सब कार्य्य सफल होवेंगे

हे राजन्। जो इस प्रकार तुमको करना था तो प्रथमही विचारकर कहना था काहेसे कि विचार विना काम करनेका परिणाम दुःख होता है, ताते इसके साथ अपने पुत्रको देहु

वाल्मीकिरुवाच, हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार वसिष्ठजीने कहा, तब राजा दशरथ धैर्यवान् होकर, भृत्योंमें जो श्रेष्ठ भृत्यथा, वाको बुलायकर कहत भया, हे महाबाहु ! रामजीको ले आओ. तब इसके साथ जो चाकर अंतर बाहर आवने जावने वारा था, अरु छलते रहित था, सो राजाकी आज्ञा लेकर रामजीके निकट गया, और,एक मुहूर्त्त पाछे पीछा आया, अरु कहत भया हे देव! रामजी तो बडी चितामे बैठे हैं. मैने रामजीसे वारवार कहा कि अब चलिये, तब वह कहते हैं कि चलें हैं ऐसे कहि कहि चुप हो रहते है.

हे भारद्वाज ! इस प्रकार जब राजाने श्रवण किया तब कहा, रामजीके मन्त्री अरु टहलुए सब बुलावो, सेवक सबको बुलाय निकटलाये, तब राजा आदरसों कोमल सुंदर वचन युक्तिसे कहत भया, हे रामजीके प्यारे ! रामजीकी कहा दशाहै और ऐसी दशा क्यों कर हुई है. सो सब क्रम करके कहो.

मंत्री उवाच, हे देव ! हम कहा कहैं, जेते हम कछु दृष्टि आवते हैं सो सब आकार अरु प्राण देखनें मात्र हम हैं. अरु हम सब मृतक हैं काहेते कि हमारा स्वामी रामजी बडी चिंताको प्राप्त हुआ है. हे राजन् ! जिस दिनसे रघुनाथजी तीर्थ कर आये हैं तिस दिनसे चिंताको प्राप्त भये हैं जब उत्तम भोजन हम ले जाते हैं, और पान करनेका पदार्थ, और पहरनेका पदार्थ, अरु देखनेका पदार्थ कछु लेजाते हैं,सो सुखदाई पदार्थ रससहित तिसे देखके किसी प्रकार प्रसन्न होते हमने नहीं देखाहै ऐसी चिताके विषे वह लीनहै कि देखता भी नहीं, अरु जो देखताहै तो क्रोध करताहै, अरु सुखदाई पदार्थका निरादर करताहै, अरु अंतःपुरमें इनकी माता नानाप्रकारके हीरे अरु मणि के भूषण देतेहि,तो उनको भी डारदेताहै, नहीतो किसी निर्धनको देदेताहै, प्रसन्न किसी पदार्थ पै होते नहीं हैं सुदर स्त्रियां खडी विद्यमान होती है, नानाप्रकारके भूषणहू सहित महा मोद करनेहारी निकट होइकर लीलाकरती हैं, कटाक्षहू सहित प्रसन्न करने निमित्त; तौभी विषवत जानतेहैं, उनकी ओर देखता भी नहीं. जैसे पपैया और जलको देखता भी नहीं जब अत पुर विषे निकसता है, तब उनको देखकर क्रोधवान् होता है

हे राजन् । और कछु उसको भला नहीं लगता किसी वड़ी चिंता विषे मग्नहै और तृप्त होकर भोजन भी नहींकरता, क्षुधावंत रहता है और न कछु पहरने, खाने, पीनेहु की इच्छा रखताहै, न राज्यकी इच्छाहै न किसी इंद्रिय के सुखकी इच्छा है,महा उन्मत्तकी न्याई वैठा रहता है अरु जव कोई सुखदाई पदार्थ फूलादिक लेजाते है, तव क्रोध करता है, हम नहीं जानते कि क्या चिंता उसको भई है, एक कोठरींमें पद्मासन करि अरु हाथमे मुख धरके वैठा रहताहै, अरु जो कोऊ वडा मंत्रीआयके पूछता है, तव उससे कहताहै, कि तुम जिसको संपदा मानते हो सोई आपदा है, जिसको आपदा जानते हो सो आपदा नही है, अरु नानाप्रकारके संसारके पदार्थ जो रमणीय कर जानते हो, सो सवझूठे है, याहीमें सव डूवे है, ये सव मृगतृष्णाके जलवत्हैं, तिनको सत्य जान मूर्ख जो हरिण सो दौरते है, अरु दुःख पाते हैं

हे राजन्। कदाचित् वोलते है तो ऐसे वोलते हैं और कछु उनके उरमें सुखदायी नही भासताहै अरु जो हम हांसीकी वार्त्ता करते हैं तो वह हँसता नहीहै जिसपदार्थको प्रीति संयुक्त लेते थे तिस पदार्थको अव डारि देतेहैं अरु दिन दिनपै दुर्वल हुये जातेहै अरु जव अंत पुरमें स्त्रियोंके पास वैठताहै, अरु वह नानाप्रकारकी चेष्टा रामजीको प्रसन्न करनेके निमित्त देखावती है उनको भी देखके प्रसन्न नहीं होता अरु जैसे मेघकी वूंदते पर्वतचलायमान् नहीं होते हैं, तैसे आप चलायमान नहीं होतेहैं अरु जो वोलताहै तो ऐसे कहता है-न राज्य सत्य है,न भोग सत्य है, न जगत् सत्य है, न मित्र सत्य है, मिथ्यापदार्थके निमित्त मूर्ख परे यत्न करते हैं जिनको सत्य जानते हैं अरु सुखदायक जानते हैं, सो वधनका कारणहै, और कहा कहिये जो उनके कोई पास राजा अथवा पंडित जावे तिनको देखकर कहता है यह पशु हैं, आशारूपी फांसीसे वाधे हुये हैं

हे राजन्। जो कछु भोग्य पदार्थ हैं तिनको देखकर उसका चित्त प्रसन्न नहीं होता, अरु देखके क्रोधवान् होताहै जैसे,पपैया मारवाडमें आवे, अरु मेघकी वूंदहु देखता नही है अरु खेदवान होता है, तैसे रामजी

विषय हूते खेदवान् होताहै, हे राजन्! इन करके हर्षवान् नही होता, ताते हम जानते हैं कि इनको परमपद पानेकीइच्छा है, परन्तु कदाचित मुखते सुना नही है, अरु त्यागका अभिमान् भी कदाचित् सुना नहीं है, कवहूं गाता है, अरु बोलता है तव ऐसे कहता है, हाय हाय! मैं अनाथ मारा गया हूं, अरे मूर्ख तुम संसार समुद्रमे क्यों डूवते हो, यह संसार परम अनर्थका कारण है, इसमें सुख कदाचित् हू नहीं है, इससे छूटनेका उपाय करो.

हे राजन्! ऐसा भी कभी हम सुनते हैं, अरु किसीके साथ वोलता नहीं है, न हँसता है न मंत्रीके साथ, न अपने अंतःपुरनकी स्त्रियोंके साथ, न माताके साथ वोलता है, किसी परमचितामे मग्न है, अरु किसी पदार्थकर आश्चर्यवान् नही होता, जो कोऊ कहे कि आकाशमें वाग लगाहै, तिसमें फूल फूले है तिनको मैं ले आया हू तिसको सुनकर भी आश्चर्यवान् नही होता, सब भ्रम मात्र देखता है, न किसी पदार्थसे उसको हर्ष होता है, न किसी पदार्थसे उसको शोक होताहै, किसी वडी चितामें मग्न है सो किसीको चिता निवारनेमें हम समर्थ नहीं देखते है, वह तो चिताके समुद्रमें मग्न हैं, हेराजन् यह चिता हमको लगरही हैं; कि रामजीको न खानेकी इच्छा है, न पहिरनेकी इच्छा है, न वोलने की, न देखनेकी इच्छारही है न किसी कर्मकी इच्छा रही है ताते मृतक नहो जावे ऐसी हमें चिता है अरु जोकोऊ कहता है कि तू चक्रवर्त्ती राजा है,तेरो वडा आयुर्वल होइ,अरु वडे सुखको पाओ तव तिसके वचन सुन कठोर वोलता है.

हे राजन्! केवल रामजीहीको ऐसी चिता नहीं,लक्ष्मण अरु शत्रुघ्नको भी ऐसी चिता लगरही है रामको देखकर जो कोऊ इनकी चिता दूर करनेहारा होवे तो करे नहींतो वडी चिता मध्य डूवे रहेंगे किसी पदार्थकी इच्छा उनको नहीं रहती है.

हे राजन! अव कहा कहते हो?तेरा पुत्र अव अतीत में रहा है. एक वस्त्र उपरना ओढकर वैठा है ताते सोई उपाय करो।जिससे उसकी चिता निवृत्त होवे

विश्वामित्रोवाच, हे साधु! जो रामजी ऐसे हैं तो हमारे पास विद्यमान लाओ, हम उसका दुःख निवृत्त करैगे हे राजा दशरथ! तू वडा धन्य है कि जिसका पुत्र विवेकअरु वैराग्यको प्राप्त भया हे राजन्! हम तेरे पुत्रको परमपदकी प्राप्ति करैंगे अभी सव दुःख उनके मिट जायँगे हम वसिष्ठादि जो बैठेहै सो एक युक्तिकर उपदेश करैंगे तिस करके उनको आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी तव वह दशा तेरे पुत्रकी होवेगी जो लोष्ट पत्थर अरु सुवर्णको समान जानेंगे अरु जो कछु तुम्हारे क्षत्रियकीप्रवृत्तिका आचरणहै सो करैंगे अरु हृदयमे प्रेमते उदासीहोवेंगे ताते हेराजन्! उस करके तुम्हारा कुल कृतकृत्य होवेगा ताते रामजीको शीघ्र वोलावहु

वालमीकिउवाच, हे भारद्वाज!ऐसे मुनीन्द्रके वचन सुनकर राजादशरथ मंत्री अरु नौकरोसे कहत भयाकि रामजीअरु लक्ष्मण अरु शत्रुघ्नको लेआओ जैसे हरिणीको हारेण ले आताहै तैसे ले आओ जव राजा दशरथने ऐसा कहा, तव मत्री अरु भृत्य रामजीके पास जायके कहा, तव रामजीआये सो आवत आवत राजा दशरथ, अरु वशिष्ठजी, अरु विश्वामित्रको देखे,कि, तीनोंके ऊपर चमर होयरहे है, अरु वडे मंडलेश्वरवैठेहैं तिननेहू रामजीको देखे जो शरीरते कृश होय रहे हैं जैसे महादेवजी स्वामिकार्त्तिकको आवत देखे, तैसे रामजीको आवत राजादशरथ देखत हैं तहां रामजी आयकर राजा दशरथजीके चरणोपे मस्तक लगाय नमस्कार किया फिर तैसेई वशिष्ठजीको अरु विश्वामित्रजी को नमस्कार किया वहुरिसभामे जो ब्राह्मण वडे वडे वैठे थे, तिनकोहू नमस्कार किये अरु जो वडे वडे मंडलेश्वर वैठेथे तिनने उठकर रामजीको प्रणाम किया फिर-

राजा दशरथने रामजीको गोदमे वैठाया अरु देखकर मस्तक चूमा अरु वहुत प्रेम पुलकित होय रामजीसोंकहत भया हेपुत्र! केवळ विरक्तता कर परमपदकी प्राप्ति नही होतीहै अरु वशिष्ठजी गुरु हैं, तिनके उपदेशकी युक्ति कर परमपदकी प्राप्ति होयगी

वशिष्ठोवाच, हे रामजी! तुम धन्यहो, अरु वडे शूरमें हो, जो विषय

रूपी शत्रु तुमने जीते हैं जो विषय अजीत है, अरु दुष्ट है ताको तुमने जीता ताते तुम धन्य हो धन्य हो।

विश्वामित्रोवाच, हे कमलनयन राम ! अपने अंतरकी चपलताहै, तिसको त्याग करके, जोकछु तुम्हारा आशय होय सो प्रगट कर कहो. हे रामजी! यह जो तुमको मोह प्राप्त हुआहै, सो कैसे अरु किस कारण हुआहै ? अरु केताकहै ? सो कहो अरु जो अब कछु तुमको वाछित होय सो कहो, हम तुमको तिसीपदमें प्राप्त करेंगे, जिसमें दुःख कदाचित होवे नहीं. और आकाशको चूहा काटिनहीं सकत है, तैसे तुमको पीडा कदाचित् नहोवेगी हे रामजी! तुम्हारे संपूर्ण दुःख नाश कर देयेंगे; तुम संशय मतकरो. जोकुछ तुम्हारा वृत्तांत होय सो हमसे कहो.

वाल्मीकिरुवाच, हेभारद्वाज!जब ऐसे विश्वामित्रने कहा सो सुनकर रामजी बहुत प्रसन्न भये; अरु शोकको त्यागदिया जैसे मेघको देखके मोर प्रसन्न होता है; तैसे विश्वामित्रके वचन सुन रामजी प्रसन्न हुए. अरु अपने हृदयमें निश्चय किया अब मुझको उस पदकी प्राप्ति होवेगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे राम समाज

वर्णनं नाम षष्ठःसर्ग ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७

अथ रामेण वैराग्य वर्णनम्.

वाल्मीकिरुवाच, हे भारद्वाज! ऐसे मुनीश्वरके वचनको रामजी सुनके बहुत प्रसन्न होयके बोले

श्रीरामोवाच, हे भगवन्! जो वृत्तात है सो तुम्हारे विद्यमान क्रम करके कहता हों, इस राजा दशरथके घरमें जो मैं उत्पन्न भया हों, बहुरि क्रम करके बडा हुआ हों, उपवीतपाया हों अरु चारों वेद पढकर ब्रह्मचर्यादि व्रतपायाहों, तापाछे एक दिन पढके मै घरमें आया तब मेरे

हृदयमे वात आय रही कि तीर्थाटन करो, अरु देवद्वारमे जायके देवनके दर्शन करों, तव मैं पिताकी आज्ञा लेकर तीर्थको गया अरु गंगा आदि संपूर्ण तीर्थमे स्नान किया, अरु शालिग्राम अरु केदार आदि ठाकुरके विधिसंयुक्त दर्शन किये, अरु यात्रा करके इहां आया फिर उत्साह हुआ

तव मेरे में विचार आया, कि प्रातःकाल उठके स्नान संध्यादिक कर्म करना, वहुरि भोजन करना, ऐसे इस प्रकारसों केतेकदिन व्यतीत भये, तव मेरे हृदयमें विचार उत्पन्न हुआ, सो विचार मेरे हृदयको खैचले गया–जैसे नदीके तटपर तृण लता होते हैं, तिसको नदीका प्रवाह खैंच लेजाता है, तैसे मेरे हृदयमें जो कछु जगत्‌की आस्थारूप तृणलता थी, सो विचार रूपी प्रवाहलेगया. तव मै जानता भया कि राज्य करके क्या है ? अरु भोगते क्या है ? अरु जगत् क्या है ? सव भ्रम मात्र है इसकी वासना मूर्ख रखते है. यह स्थावर जंगम रूपी जेता कछु जगत् है सो सव मिथ्या है

हे मुनीश्वर ! जेते कछु पदार्थ हैं, सो मनसो करके हैं सो मनभी भ्रममात्रहै अनहोता मन दु:खदायी हुआहै मन जो पदार्थ सत्य जानकर दौरता है, अरु सुखदायक जानता है, सो मृगतृष्णाके जलवत् है जैसे मृगतृष्णाको देखकर मृग दौरते है, अरु है नहीं, सो मृग दौरत दौरत थकके पड़जाता है, तौहू जल तिसको प्राप्त नहीं होता तैसे मूर्खजीव पदार्थ को सुखदायी जानकर भोगनेका यत्न करता है, अरु शांतिको नहीं पाता है तैसे–

हे मुनीश्वर ! इद्रियनके भोग सर्पवत् है, जिनका मारा हुआ, जन्म मरनको पाता है जन्मते जन्मांतरको पाता है भोग अरु जगत् सव भ्रममात्र है तिन विषे जो आस्था करते है, सो महामूर्ख है ऐसा मैं विचार करके जानता हों, जो सव आगमापाई है अर्थ यह जो आवतेहूहैं, अरु जाते हू हैं ताते जिस पदार्थका नाश न होय सो पदार्थ पावने योग्य है, इसी कारण से मैंने भोगका त्याग किया है

हे मुनीश्वर ! जैसे कछु संपदारूपपदार्थ भासते हैं, सो सव आपदा है इनमें रंचकहू सुख नहीं है जव इनका वियोग होता है, तव कंटककी

नाई मनमें चुभता है जब इंद्रियको भोग प्राप्त होता है, तब रोग दोषकर जलता है, अरु जब नहीं प्राप्त होता तब तृष्णा कर जलता है ताते भोग दुःखरूपहै जैसे पत्थरकी शिलामें छिद्र नहीं होता, तैसे भोगरूपी दुःखकी शिलामें रंचकभी सुखरूपी छिद्र नहीं होता है

हे मुनीश्वर! विषयकी तृष्णामें वहुत कालसों जलता रहा हों जैसे हरे वृक्षके छिद्रमें रंचक अग्नि धरा होय, तव धुंवा होय थोरा थोरा जलता रहता है, तैसे भोगरूपी अग्नि करके मन जलता रहता है यह विषयमें सुख कछु हू नहीं, अरु दुःख वहुत है इनकी इच्छाकरनी सोई मूर्खता है जैसे खाईके ऊपर तृण अरु पात होता है तिसकर खाई आच्छादित होय जाती है तिसको देखके हरिण कूद परता है, अरु दुःख पावता है, तैसे मूर्ख भोगको सुखरूप जानके भोगनेकी इच्छा करता है, जब भोगता है तब जन्मते जन्मांतर रूप खाईमे जाय परते हैं अरु दुःख पावते हैं

हे मुनीश्वर! भोगरूपी चोर है सो आज्ञानरूपीरात्रिमें लूटने लगताहै सो आत्मरूपी धनहै तिसको ले जाता है, तिसके वियोगते महादीन रहताहै अरु जिस भोगके निमित्त यह यत्न करताहै, सो दुःखरूपहै शांतिको प्राप्त नही होता अरु जिस शरीरके अभिमान करके यह यत्न- करताहै, सो शरीरक्षणभग होताहै, अरु असारहै जिसको सदा भोगकी इच्छा रहतीहै, सो मूर्ख अरु जडहै, इसको वोलना चालनाभी ऐसाहै, जैसे सूखे वाँसके छिद्रमें पवन जाताहै, अरु पवनके वेगकर शब्द होता है, तैसे उस मनुष्यकी वासनाहै जैसे थका हुआ मनुष्य मारवाड़के मार्ग- की इच्छा नहीं करता तैसे दुःख जानकर मै भोगकीइच्छा नहीं करताहू

अरु यह जो लक्ष्मी है सो परम अनर्थकारी है जब लग इसकी प्राप्ति नही होती, तव लग तिसके पावनेका यत्न होता है अरु अनर्थ करके प्राप्ति होती है अरु जव प्राप्ति हुई तव सव गुणका नाश कर देती है शीलता, संतोष, धर्म, उदारता, कोमलता, वैराग्य, विचार, दयादिक गुणका नाश करती है जव ऐसा गुणका नाश हुआ, तव सुख कहांते होय परम आपदा प्राप्त होती है परमदुःखका कारण जानकर

मैंने इस्का त्याग किया है हे मुनीश्वर ! इसमें गुण तब लग है. जब लग लक्ष्मी नहीं प्राप्त भई. जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई तब सब गुण नाश होजाता है जैसे बसतऋतुकी मंजरी हरियावल तबलग रहती है, जब लग ज्येष्ठ आषाढ नही आया, जब ज्येष्ठ आषाढ आया, तब मजरी जर जाती है तैसे जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई तब सब शुभ गुण जरजाते हैं अरु मधुर वचन तब लग बोलता है, जब लग लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं होतीहै जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई कोमलताका अभावहोय कठोर होजाता है जैसे जल पतला तब लग रहता है जब लग शीतलताका संयोग नहीं होय जब शीतलताका सयोग होताहै, तब वर्फ होकर कठोर दुःखदायक हो जाता है तैसे यह जीव लक्ष्मी पाकर जड होजाता है

हेमुनीश्वर ! जो कछु संपदा है सो आपदा का मूल है, काहेते कि जब लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है तब बड़े सुखको भोगता है, अरु जब तिसका अभाव होता है, तब तृष्णा करके जलता है जन्मते जन्मान्तरको पावता है लक्ष्मीकी इच्छा है सोई मूर्खता है यह तो क्षणभंग है याते भोग उपजता है, अरु नाश भी होता है जैसे जलते तरंगउपजते है, अरु मिट जाते हैं अरु बिजुली स्थिर नहीं होती है, तैसे भोगहू स्थिर नहीं रहते अरु पुरुषमे शुभ गुण तब लग है, जबलग तृष्णाका स्पर्श नहीं किया जब तृष्णा भई तब शुभ गुणका अभाव हो जाता है जैसे दूधमें मधुरता तब लग है जब लग उसको सर्प ने स्पर्श नहीं किया, जब सर्प ने स्पर्श किया तब दूधहै सो विषरूप होजाता है

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे रामेण वैराग्य वर्णनं नाम सप्तम. सर्ग. ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.



अथ लक्ष्मीतिरस्कारवर्णनम

श्रीरामोवाच, हे मुनीश्वर ! लक्ष्मी देखने मात्रको ही सुंदर है, अरु जब इस्की प्राप्ति हुई, तब सद्गुणका नाशकर देतीहै. जैसे विषकी लता

देखने मात्रको सुंदर है अरु स्पर्श कियेते मार डारती है, तैसे लक्ष्मीकी प्राप्ति हुए आत्मपदते मृतक होता है अरु महादीन होय जाता है. जैसे किसीके घरमें चिंतामणि दवी रही, ताको खोदकर लेवे नहीं, तवलग दरिद्री रहता है, तैसे अज्ञान कर ज्ञान विना महादीन जैसा हो रहता है आत्मानंदको पाय नहीं सकता आत्मानंदके पानेका जो मार्ग है, तिसकी नाश करनहारी लक्ष्मी है. इसकी प्राप्तिते जीव महाअंध होय जाता है

हे मुनीश्वर ! जव दीपक प्रज्वलित होता है, तव उसका वडा प्रकाश दृष्टि आवताहै, जव दीपक वुझ जाताहै, तव प्रकाशका अभाव होय जाता है, अरु काजरकी समक्षता रहजाती है, जो वारंवार वासना उपजती थी, सो रहती है; तैसे जव इस लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, तव वडे भोग उनको भुगवाती है, अरु तृष्णा रूप काजर उससे उपजता रहता है. जव लक्ष्मीका अभाव होता है, तव वासना तृष्णाकी समक्षता छाड जाती है तिस वासना तृष्णा करके अनेक जन्मको पाता है, शांतिको कदाचित् नहीं प्राप्त होता.

हेमुनीश्वर ! जव जिसको लक्ष्मीकी प्राप्ति होतीहै,तव शांतिके उपजावनहारे गुणका नाश करतीहै जैसे जवलग पवन नहीं चलता, तवलग मेघ रहता है, जव पवन चला कि मेघका अभाव होजाता है, तैसे लक्ष्मी की प्राप्ति हुए गुणका अभाव होता है, अरु गर्वकी उत्पत्ति होती है

हे मुनीश्वर ! जो शूरमा होके अपने मुखते अपनी वडाई न कहै, सो दुर्लभ है. अरु समर्थ होय किसीकी अवज्ञा न करे, सवमें समबुद्धि राखै सो दुर्लभ है तैसे लक्ष्मीवान् होकर शुभ गुण संयुक्त होय सोभी दुर्लभहै

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी जो सर्प है,तिसको वढाने का स्थान लक्ष्मी रूपी दूध है, सो पीवत पवन रूपी भोगका आहार करत कदाचित् अवात नहीं अरु महा मोहरूप उन्मत्त हस्ती है, तिसको फिरने का स्थान पर्वतकी अटवी रूपी लक्ष्मी है. अरु गुण रूप जो सूर्यमुखी कमल है, तिसकी लक्ष्मी रात्रि है, अरु भोग रूपी चंद्रमुखी कमल है

तिनका लक्ष्मी चद्रमा है अरु वैराग्य रूप जो कमलिनी है, तिसके नाशकरनेहारी लक्ष्मी वर्फ है अरु ज्ञानरूपी जो चद्रमा है तिनका आच्छादन करनेहारी लक्ष्मी राहु है अरु मोहरूपी जो उलूक है तिसकी यह रात्रि है अरु दुःखरूपी जो विजुरी है तिसको लक्ष्मी आकाश है अरु तृष्णारूपी जो लता है, तिसको वढावनहारी लक्ष्मी मेघ है, अरु तृष्णारूप जो तरग है, तिसकी लक्ष्मी समुद्र है अरु भोगरूपी पिशाच है, तिसका लक्ष्मी स्थान है. अरु तृष्णारूपी भवँरको लक्ष्मी कमलिनी है जन्मके दुःख रूप जलको यह लक्ष्मी ताल है

हे मुनीश्वर। देखनेमात्रको यह सुंदर लगती है अरु दुःखका कारण है जैसे खड्गकी धारा देखने मात्रको सुंदर होती है अरु परश कियेते नाश करती है, तैसी यह लक्ष्मी है अरु विचाररूपी मेघका नाश करनेमें लक्ष्मी वायु है

हेमुनीश्वर। यह मैंने विचारकर देखाहै, इसमें सुख कछूहू नहीं अरु सतोपरूपी मेघका नाश करनहारा यह शरत्कालहै. अरु इस मनुष्यमें शुभ गुण तवलग दृष्टि आवै, जवलग लक्ष्मीकी प्राप्ति नही भई. जव लक्ष्मी की प्राप्ति भई, तव गुण नाश पाते है.

हे मुनीश्वर। लक्ष्मी ऐसी दु खदायक जानकर इसकी इच्छा मैंने त्यागदीनी है यह भोग मिथ्या रूपहै जैसे विजुरी प्रगट होय छिपजाती है तैसे यह लक्ष्मीहू प्रगट होय छिप जाती है जैसे जल है सो हिम है, तैसे लक्ष्मीजीकी ज्योतिहै, सो मूर्ख जडकेआश्रयतेहै इस्को छलरूप जानकर मैंने त्याग किया है

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे लक्ष्मी तिरस्कार वर्णनं नाम अष्टम' सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९

अथ ससारसुखनिषेधवर्णनम्.

रामोवाच, हे मुनीश्वर। जो वाको देखकर प्रसन्न होता है. सो जैसे पत्रके ऊपर जलकी वूंद नही रहती है तैसे लक्ष्मी क्षणभंग है जैसे जलके तरंग होयके नाश पाताहै, तैसे लक्ष्मीहोयके नाश पाती है.

देखने मात्रको सुंदर है अरु स्पर्श कियेते मार डारती है, तैसे लक्ष्मीकी प्राप्ति हुए आत्मपदते मृतक होता है अरु महादीन होय जाता है. जैसे किसीके घरमें चितामणि दवी रही, ताको खोदकर लेवे नहीं, तवलग दरिद्री रहता है, तैसे अज्ञान कर ज्ञान विना महादीन जैसा हो रहता है. आत्मानंदको पाय नही सकता आत्मानदके पानेका जो मार्ग है, तिसकी नाश करनहारी लक्ष्मी है इसकी प्राप्तिते जीव महाअंध होय जाता है

हे मुनीश्वर ! जव दीपक प्रज्वलित होता है, तव उसका वडा प्रकाश दृष्टि आवताहै; जव दीपक बुझ जाताहै, तव प्रकाशका अभाव होय जाता है, अरु काजरकी समक्षता रहजाती है, जो वारंवार वासना उपजती थी, सो रहती है, तैसे जव इस लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, तव वडे भोग उनको भुगवाती है, अरु तृष्णा रूप काजर उससे उपजता रहता है जव लक्ष्मीका अभाव होता है, तव वासना तृष्णाकी समक्षता छाड जाती है. तिस वासना तृष्णा करके अनेक जन्मको पाता है, शांतिको कदाचित् नही प्राप्त होता.

हेमुनीश्वर ! जव जिसको लक्ष्मीकी प्राप्ति होतीहै,तव शातिके उपजावनहारे गुणका नाश करतीहै जैसे जवलग पवन नही चलता, तवलग मेघ रहता है, जव पवन चला कि मेघका अभाव होजाता है, तैसे लक्ष्मी की प्राप्ति हुए गुणका अभाव होता है, अरु गर्वकी उत्पत्ति होती है.

हे मुनीश्वर ! जो शूरमा होके अपने मुखते अपनी वडाई न कहे, सो दुर्लभ है अरु समर्थ होय किसीकी अवज्ञा न करे, सवमें समवुद्धि राखे सो दुर्लभ है तैसे लक्ष्मीवान् होकर शुभ गुण संयुक्त होय सोभी दुर्लभहै.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी जो सर्प है,तिसको वढाने का स्थान लक्ष्मी रूपी दूध है, सो पीवत पवन रूपी भोगका आहार करत कदाचित् अघात नहीं. अरु महा मोहरूप उन्मत्त हस्ती है, तिसको फिरने का स्थान पर्वतकी अटवी रूपी लक्ष्मी है. अरु गुण रूप जो सूर्यमुखी कमल है, तिसकी लक्ष्मी रात्रि है, अरु भोग रूपी चंद्रमुखी कमल है

तिनका लक्ष्मी चंद्रमा है अरु वैराग्य रूप जो कमलिनी है, तिसके नाशकरनेहारी लक्ष्मी वर्फ है अरु ज्ञानरूपी जो चंद्रमा है तिनका आच्छादन करनेहारी लक्ष्मी राहु है अरु मोहरूपी जो उलूक है तिसकी यह रात्रि है अरु दुःखरूपी जो विजुरी है तिसको लक्ष्मी आकाश है अरु तृष्णारूपी जो लता है, तिसको वढावनहारी लक्ष्मी मेघ है, अरु तृष्णारूप जो तरंग है, तिसकी लक्ष्मी समुद्र है. अरु भोगरूपी पिशाच है, तिसका लक्ष्मी स्थान है. अरु तृष्णारूपी भवँरको लक्ष्मी कमलिनी है जन्मके दुःख रूप जलको यह लक्ष्मी ताल है

हे मुनीश्वर ! देखनेमात्रको यह सुंदर लगती है अरु दुःखका कारण है जैसे खड्गकी धारा देखने मात्रको सुंदर होती है अरु परश कियेते नाश करती है, तैसी यह लक्ष्मी है अरु विचाररूपी मेघका नाश करनेमें लक्ष्मी वायु है

हेमुनीश्वर ! यह मैंने विचारकर देखाहै, इसमें सुख कछूहू नहीं अरु संतोषरूपी मेघका नाश करनहारा यह शरत्कालहै. अरु इस मनुष्यमें शुभ गुण तवलग दृष्टि आवे, जवलग लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं भई. जव लक्ष्मी की प्राप्ति भई, तव गुण नाश पाते है

हे मुनीश्वर ! लक्ष्मी ऐसी दुःखदायक जानकर इसकी इच्छा मैंने त्यागदीनी है यह भोग मिथ्या रूपहै. जैसे विजुरी प्रगट होय छिपजाती है तैसे यह लक्ष्मीहू प्रगट होय छिप जाती है जैसे जल है सो हिम है, तैसे लक्ष्मीजीकी ज्योतिहै सो मूर्ख जडकेआश्रयतेहै इस्को छलरूप जानकर मैंने त्याग किया है

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे लक्ष्मी तिरस्कार वर्णन नाम अष्टम सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

अथ संसारसुखनिषेधवर्णनम्

रामोवाच, हे मुनीश्वर ! जो वाको देखकर प्रसन्न होता है. सो जैसे पत्रके ऊपर जलकी वूंद नहीं रहती है तैसे लक्ष्मी क्षणभंग है जैसे जलके तरग होयके नाश पाताहै, तैसे लक्ष्मीहोयके नाश पाती है.

हे मुनीश्वर ! पवनको रोकना कठिन है सोभी कोऊ रोकरहे, अरु आकाशका चूरन करनाअति कठिन है, सो भी कोऊ चूरन करडारे, अरु विजली को रोकना अति कठिनहे, सोभी कोऊ रोकलेवे, परन्तु लक्ष्मी पायके कोई स्थिर होवे सोनहीं जैसे शशाके सींग सो कोऊ मार नहीं सकता, अरु आरसीके ऊपर जैसे मोती नहीं ठहरता है. जैसे तरंगकी गांठ नहीं परत है तैसे लक्ष्मीहू स्थिर नहीं रहती है लक्ष्मी विजुलीकी चमक जैसी है, तैसे होतीहू है अरु मिट भी जाती है, अरु लक्ष्मी पायके आपको अमर हुआ चाहै सो महामूर्ख जानना अरु लक्ष्मीको पायकर जो भोग की वाछा करत है सो महाआपदाका पात्र है, तिनको जीनेते मरना श्रेष्ठ है जीनेकी आशा मूर्ख करतेहैं, सो अपने नाशके निमित्त करते हैं जैसे स्त्री जो गर्भकी इच्छा करती है, सो अपने नाशके निमित्त करती है

अरु जो ज्ञानवान् पुरुप हे, जिनकी परमपद [illegible]में स्थिति है, अरु तिसकर तृप्ति पायेहैं, तिनका जीना सुखके नि[illegible]त्तहे तिनके जीनते औरका कार्य्यभी सिद्ध होजाताहै तिनका जीना [illegible] चिंतामणिकी नाईं श्रेष्ठ है. अरु जिनको सदा भोगकी इच्छा रहती है, उ[illegible]और आत्मपदते विमुख है. तिनका जीना किसी सुखके निमित्त नही है व[illegible]ह मनुष्य नहीं, गर्दभ है, अरु जैसे वृक्ष, पक्षी, पशुका जीवनाहै, तैसे तिस[illegible]का भी जीवना है,

हे मुनीश्वर ! जो पुरुप शास्त्र पढा है, अ[illegible]रु पाने योग्य पद नहीं पाया. तव शास्त्र उसको भाररूप है जैसे औरका भार[illegible] होता है, तैसे पढनेकाभी भारहे अरु पढके विचार चर्चा करता है, और ति[illegible]के सारको नहीं ग्रहण करता, तो यह विचार चर्चाहू भार है

हे मुनीश्वर ! मन जो है, सो आकाशरूपहे, सो मे[illegible]नमें जो शांति न आई, तो मनहू उसको भारहे. अरु जो मनुष्य शरीरको पाया है उसका अभिमान नहीं त्यागता है तो यह शरीरभी उसको भारहे. यह शरीरका जीनना तवहीं श्रेष्ठहे, जव आत्मपदको पावे, अन्यथा उसका जीना व्यर्थ है और आत्मपदकी प्राप्ति अभ्याससे होती है जैसे जल पृथ्वीके खोदेते निकसता है तैसे अभ्यास कर आत्मपदकी प्राप्ति होती है अरु

जो आत्मपदते विमुखहोय, आशाकी फांसी में फँसे हैं सो ससारमें भटकते रहते है

हे मुनीश्वर! संसारके तरंग अनेक कालसो उत्पन्न होय नष्टहोय जातेहै, तैसे यह लक्ष्मीहू क्षणभगहै, इसको पायके जो अभिमान करते हैं सो मूर्ख है जैसे बिल्ली चूहाको पकड़नेके लिये परी रहती है, तैसे लक्ष्मी उनको नरकमें डारनेके लिये घरमें परी रहती है जैसे अजलीमें जल नहीं ठहरता, तैसे लक्ष्मी चली जाती है, ऐसी क्षणभग लक्ष्मी अरु शरीरको पायकर जो भोगकी तृष्णा करते हैं, सो महामूर्ख हैं सो मृत्युके मुखमें परे हुए जीनेकी आशा करते हैं जैसे सर्पके मुखमें मेढक पडता है, सो मच्छरको खानेकी इच्छा करता है, याते सो महामूर्ख है, तैसे यह पुरुष मृत्युके मुखमें परा हुआ भोगकी वांछा करता है, सो महामूर्ख है

अरु युवा अवस्था नदीके प्रवाहकी नाईं चली जाती है, बहुरि वृद्धावस्था प्राप्त होती है, तामे महादु:ख प्रगट होते हैं, अरु शरीर जर्जर होय जाता है, फिर मरता है इक क्षणहू मृत्यु इनको विसारता नहीं है, सदाई देखत रहताहै, जैसे महाकामी पुरुषको सुदर स्त्री मिलती है, तब उसको देखनेका त्याग नही करता, तैसे मृत्यु मनुष्यको देखे विना नही रहता है

हे मुनीश्वर! मूर्ख पुरुषका जीना दु खके निमित्त है जैसे वृद्ध मनुष्यका जीवना दु:खका कारणहै, तैसे अज्ञानीका जीवना दुःखका कारण है उसको बहुत जीवनेते मरना श्रेष्ठहै जिस पुरुषने मनुष्य शरीर पायकर आत्मपदपानेका यत्न नहीं किया तिनने आपई अपना नाश किया है; सो आत्महत्यारा है

हे मुनीश्वर! यह माया बहुत सुदर भासती है अरु आखिर नाशको पाती है जैसे वृक्षको अतरते घुण खाय जाता है अरु बाहरते बहुत सुंदर दीखता है, तैसे यह पुरुष बाहरते सुदर दृष्टि आता है, अरु अंतरते इनको तृष्णा खाय जाती है जो पदार्थको सत्य अरु सुखरूप जानकर सुखके निमित्त आश्रय करता है, सो सुखी नही होता है जैसे नदीमें सर्पको पकरके पार उतरा चाहे, सो पार नही उतरता है, वह मूर्खता

करके डूबेंगा, तैसे जो ससारके पदार्थको सुखरूप जानकर आश्रय करता है,सो सुख नहीं पाता ससारसमुद्रमेंही डूबजाता है

हे मुनीश्वर ! यह ससार इंद्रधनुषकी नाईं है जैसे इंद्र धनुष बहुत रंगका दृष्टिमे आताहै, अरु तिसते अर्थ सिद्धि कछु नहीं होती है, तैसे यह ससार भ्रममात्र है इसमें सुखकी इच्छा रखनी व्यर्थ है इस प्रकार जगत्को मैने अस्तरूप जानकर निर्वासना होनेकी इच्छा करी है

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणसे संसारसुख निषेधवर्णन नाम नवमः सर्ग ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

अथ अहंकारदुराशावर्णनम्.

श्रीरामउवाच, हे मुनीश्वर ! यह जो अहंकार उदय हुआ सो अज्ञानते महादुष्ट है अरु यही परमशत्रु है इसने मेरेको भार प्राप्त किया है अरु मिथ्या है जेते कछु दुःख हैं तिन सबकी खानि अहंकारहै जबलग अहंकार है, तबलग पीडाकी उत्पत्तिका अभाव कदाचित् नहीं होता है

हे मुनीश्वर ! जो कछु मैने अहकारसों भजन किया अरु पुण्य किया है, अरु जो लिया दिया है, और कछु किया है, सो सब व्यर्थ है इसकर परमार्थकी सिद्धि कछु नहीं है. जैसे राखमें आहुति धरी व्यर्थ होजातीहै तैसे जानत हौं अरु जेते कछु दु:ख हैं तिनका बीज अहंकार है, इसका नाश होवे तब कल्याण होवे. ताते तुम इसका उपाय मुझको कहो, जिसकर अहंकार निवृत्त होवे

हे मुनीश्वर ! जो वस्तु सत्य है तिसका त्याग करनेमें दु ख होजाताहै अरु जो वस्तु नाशवान् अरु भ्रमकरके दिखती है, तिसके त्याग करनेते आनदहै । अरु शाति रूप जो चद्रमाहै तिसको आच्छादन करनेका अहकार रूपी राहुहै जब राहु चद्रमाका ग्रहण करताहै, तब उसकी शीतलता अरु प्रकाश ढपजाता है तैसे जब अहंकार उपजताहै, तब समता ढप जाती है जब अहंकाररूपी मेघ गर्जके वरसता है तब

तृष्णारूपी कटकमजरी वढ जाती है, सो कदाचित् घटत नहीं जव अहकारका नाश होवे तव तृष्णाका अभाव होवे. जैसे जवलग मेघहै तवलग विजुरी है जव विवेकरूपी पवन चलै, तव अहकाररूपी मेघका अभाव होयके विजुरी नाश पाती है जैसे जव लग तेल अरु वातीहै, तव लग दीपका प्रकाशहै, जव तेल वातीका नाश होताहै, तव दीपका प्रकाशभी नाश पाता है तैसे जव अहकारका नाश होवे, तव तृष्णाका भी नाश होताहै

हे मुनीश्वर। परमदुःखका कारण अहकारहै जव अहकारका नाश होवे, तव दु खका भी नाश होजाय हे मुनीश्वर। यह जो मैं रामहों सो नही, अरु इच्छा भी कछु नही काहेते जो मै नहीं तो इच्छा किसको होवे अरु इच्छा होइ तो यही होइ जो अहंकारके रहित पदकी प्राप्ति होवे जैसे जनींद्रको अहकारका उत्थान नहीं हुआ, तैसा मै होऊ, ऐसी मुझको इच्छाहै

हे मुनीश्वर। जैसे कमलको वर्फ नाश करताहै, तैसे अहंकार ज्ञानका नाश करताहै जैसे पारधी जालसों पक्षीको वधन करताहै, तिसपर पक्षी दीन होजाते हैं, तैसे अहकाररूपी पारधीने तृष्णारूपी जाल डारके जीवको वधन कियाहै, तिसकर महादीन होगयाहै जैसे पक्षी अन्नके कनको सुखरूप जानकर चुगनेको आताहै, फिर चुगते फिरते जालमें वँध जाताहै, तिस वधनकर दीन होजाताहै, तैसे यह पुरुप विपयभोगकी इच्छा कि येते तृष्णारूपी जालमें वंध होय महादीन हो जाताहै ताते हे मुनीश्वर। मुझको सोई उपाय कहो जिसकर अहंकारका नाश होवे जव अहकार का नाश होवेगा तव मैं परमसुखी होऊगा जैसे विंध्याचल पर्वतके आश्रयते उन्मत्त हस्ती पडे गर्जतेहै तैसेअहकाररूपी जो विंध्याचल पर्वतहै, तिसके आश्रयते मनरूपी उन्मत्त हस्ती नानाप्रकारके सकल्प विकल्परूपी शब्द करताहै, ताते सोई उपाय कहो जिसकर अहंकारका नाश होवे, सो अहकार अकल्याणका मूलहै जैसे मेघका नाश करनहाराशरत्काल है; तैसे वैराग्यका नाशकरनहारा अहकारहै मोहादिक विकाररूप जो सर्प है, तिनको रहनेके अहकाररूपी विलहै, अरु

अहंकार कामीपुरुषकी नाईं है जैसे कामी पुरुष कामको भुगतताहै अरु फूलकी माला गरेमें डारके प्रसन्न होताहै, तैसे तृष्णारूपी तागा है, अरु मनुष्यरूपी फूलके मनके है सो तृष्णारूपी तागेके साथ पिरोयेहैं सो अहंकाररूपी कामीपुरुष गरेमें डारताहै अरु प्रसन्न होताहै

हे मुनीश्वर ! आत्मारूपी सूर्य्य है, तिसका आवरण करनहारा मेघरूपी अहंकारहै, जब ज्ञानरूपी सूर्यउदयका काल आवे तब अहंकाररूपी बादरका नाश हो जाताहै अरु तृष्णारूपी तुषारका भी नाश होवे

हे मुनीश्वर ! यह निश्चय कर मैंने देखाहै, कि जहां अहंकार है तहां सब आपदा आय प्राप्त होतीहै जैसे समुद्रमें सब नदी आयके प्राप्त होती है, तैसे अहंकारमें सब आपदाकी प्राप्तिहै ताते सोई उपायकहो जिसकर अहंकारका नाश होवे

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अहंकार दुराशा वर्णन नाम दशम सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

अथ चित्तदौरात्म्यवर्णनम्

श्रीरामोवाच, हे मुनीश्वर ! यह जो मेरा चित्त है सो काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णादिक दुःख कर जर्जरी भाव होगयाहै. अरु महापुरुषके जो गुण वैराग्य, विचार, धैर्य, संतोष, तिनकी ओर नहीं जाता, सर्वदा विषयकी गिरदमें उड़ता है जैसे मोरका पंख पवनके लागे ठहरता नहीं, तैसे यह चित्त सर्वदा भटकता फिरताहै, अरु इसको लाभ कछु प्राप्त नहीं होता जैसे श्वान द्वार द्वारपे भटकता फिरता है, तैसे यह चित्त पदार्थके पावने निमित्त भटकता फिरता है, और प्राप्त कछु नहीं होता अरु जो कछु प्राप्त होताहै तिसकरि तृप्त नहीं होता. अंतर तृष्णा रही आवत है जैसे पिटारेमें जल भरिये, तासों वह पूर्णनहीं होता, क्योंकि

छिद्रते जल निकस जाताहै, अरु पिटारा शून्यका शून्य रहता है. तैसे चित्तको भोग पदार्थप्राप्त होता है, तासों संतुष्ट नहीं होता है सदा तृष्णाई रहत है.

हे मुनीश्वर। यह चित्तरूपी महामोहका समुद्र है,तिसमें तृष्णारूपी तरग उठतेई रहत हैं, सो कदाचित् स्थिर नहीं होते, जैसे समुद्रमें तीक्ष्ण वेगकर तरंग होता है, सो तटके वृक्षको लागता है, अरु जलमें वहजातेहै, तैसे चित्तरूपी समुद्रमें विषय वहिजाते हैं, वासनारूपी तरंगके वेगसों मेरा जो अचल स्वभाव था, सो चलायमान् होगया है सो इस चित्तसों मैं महादीन हुआ हूँ जैसे जालमें परा पक्षी दीन होजाता है तैसे चित्तसे धीवरकी वासनारूपी जालमे बँधा हुआ मैं दीन होगया हूं, जैसे मृगके समूहते भूली मृगी अकेली खेदवान होती है, तैसे मैं आत्मपदते भूला हुआ चित्तमें खेदवान हुआ हूं

हे मुनीश्वर। यह चित्त सदा क्षोभवान रहता है, कदाचित् स्थिर नही होता, जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल करके क्षोभवान हुआ था, तैसे यह चित्त संकल्प विकल्प कर खेद पावत है,जैसे पिजरेमे आया सिह पिजरेमें फिरता है, तैसे वासनामें आया चित्त स्थिर नही होता

हे मुनीश्वर। इस चित्तने मेरेको दूरते दूर डारा है, जैसे भारी पवनसो सूखा तृण दूरते दूर जाय पडताहै तैसे चित्तरूपी पवनने मुझको आत्मानंदते दूर डाराहै जैसे सूखे तृणको अग्नि जरावत है, तैसे मोको चित्त जारता है. जैसे अग्निते धूम निकलता है, तैसे चित्तरूपी अग्निते तृष्णा रूपी धूम निकलता है, तिसकर मै परम दुःख पावत हों, यह चित्त हंस नहीं वनता है जैसे राजहंस दूध अरु जल मिलेको भिन्न भिन्न करता है, तिसकीनाई मै आनात्मामें अज्ञानकरके एकसा होगया हूं, तिसको भिन्न नहीं करसकता हूँ, जव आत्मपद पानेका यत्न करता हूं, तव अज्ञान प्राप्त करने नही देता. जैसे नदीका प्रवाह समुद्रमे जाता है, तिसको पहाड़ सूधे नही चलने देता है. अरु समुद्रकी ओर जाने नही देता है. तैसे मुझको चित्त आत्माकी ओरते रोकता है, सो परमशत्रुहै हे मुनीश्वर। ताते सोई उपाय कहो, जिसकर चित्तरूपी शत्रुका नाश होवे

यह तृष्णा मेरा भोजन करती रहती है, जैसे मृतक शरीरको श्वान अरु श्वाननी भोजन करते हैं, तैसे आत्माके ज्ञानबिन मैं मृतक समान हों जैसे बालक अपनी परछाहींको बैताल मानकर भयको पाता है. सो जब विचार करके समर्थ होता है, तब बैतालका भय पातानहीं तैसे चित्तरूपी बैतालने मेरा स्पर्श किया है, तिसकरके मै भयको पाता हूँ, ताते तुम सोई उपाय कहो, जिससे चित्तरूपी बैताल नष्ट होय जावे.

हे मुनीश्वर ! अज्ञान करके मिथ्या बैताल चित्तमें दृढहोरहाहै, तिसके नाश करनेको मैं समर्थ नहीं हो सकता हों अग्निमें बैठना सो भी मैं सुगम जानता हों, और चलके बडे पर्वतके ऊपर जाना, सो भी मैं सुगम मानता हों अरु बडे वज्रका चूरन करना यह भी मैं सुगम मानता हों, परन्तु चित्तका जीतना महा कठिन है, ऐसा मै जानता हों. चित्त सदाई चलायमान स्वभाववाला है जैसे थंभके साथ बांधाहुआ बानर कदाचित् स्थिर होय नहीं बैठता, तैसे चित्त वासनाके मारे स्थिर कदाचित् नहीं होता है हे मुनीश्वर ! बडा समुद्रका पान करजाना सुगम है, अरु अग्निकाभक्षण करनाभी सुगम है, और सुमेरुका उल्लंघन करना सोभी सुगम है, परन्तु चित्तको जीतना महाकठिन है, जो सदा चलरूप है जैसे समुद्र अपना द्रवस्वभावका कदाचित् नहीं त्याग करता, अरु महाद्रवीभूत रहता है, तिसकर नानाप्रकारके तरंग होते हैं, तैसे चित्तभी चंचलस्वभावको कभी नहीं त्यागता है नानाप्रकारकी वासना उपजती रहतीहैं, अरु बालककी नाईं चंचलहै, सदा विषयकी ओर धावताहै कहूं पदार्थकी प्राप्ति होती है, परन्तु अंतरते सदा चंचल रहता है, जैसे सूर्यके उदय हुए ते दिन होताहै अरु अस्त हुएते नाश पाताहै, तैसे चित्तके उदयहुए त्रिलोकीकी उत्पत्तिहै, अरु चित्तके लीन हुएते लीन होजाती है.

हे मुनीश्वर ! किसी समुद्रमें जल गंभीरहै, तिसमें बडेसर्प रहते हैं, सो जब कोऊ समुद्रमें प्रवेश करे, तब वे सर्प उनको काटतेहैं, तिनको विष चढ जाताहै, तिसकरके बडादुःख पाताहै, सो दृष्टांत सुनिये चित्तरूपी समुद्रहै अरु वासनारूपी जलहै, तिसमें छलरूपी सर्प है, जब

जीव उसके निकट जाताहै, तव भोगरूपी सर्प उसको काटताहै तव तृष्णारूपी विप पसरताहै, तिसकर मरता है

हे मुनीश्वर! जो भोगको सुखरूप जानकर चित्त दौडताहै, सो भोग दुःखरूपहै, जैसे तृणसो खाई आच्छादित होय जातीहै तिसको देखकर-मूर्ख मृग खानेको दौरता है तव खाईमें गिर पडताहै अरु दुःख पाताहै तैसे चित्तरूपी मृग भोगका सुख जानकर भोगनेको लगताहै तव तृष्णा-रूपी खाईमे गिर पडताहै अरु जन्मान्तर दुःखको भोगताहै

हे मुनीश्वर! यह चित्त कवहू वडा गभीरहो वैठताहै,और जव भोगको देखताहै,तव तिनकी ओर चीलकी नाईं लगि गिर पडताहै जैसे गीदड पक्षी आकाशमे चढा फिरताहै, सो जव पृथ्वीपर मासको देखताहै, तव तहांते आय पृथ्वीपर वैठताहै, अरु मांसको लेताहै, तैसे यह चित्त कभी निराला उडताहै, जव विपय देखे तव आसक्ति पाय विपयमे गिर जाताहै, अरु यह चित्त वासनारूपी शय्यामें सोता रहताहै, अरु आत्मपदमे जागता नही इस चित्तकी जालमे मैं पकराया हो सो कैसा जालहै तामें वासनारूपी सूत्रहै, अरु संसारकी सत्यतारूपी ग्रंथि है अरु भोगरूपी तिसमे चूनहै इसको देखके मैं फँसाहो, कवहू पातालमे, कवहू आकाशमें वासनारूपी जेवरीकर घटी यन्त्रकी नाईं वँधाहों, ताते हे मुनीश्वर! तुम सोई उपाय कहो जिसकर चित्तरूपी शत्रुको जीतों

अव मुझको किसी भोगकी इच्छा नहीं अरु जगत्की लक्ष्मी मुझको विरस भासतीहै, जैसे चंद्रमावादरकी इच्छा नही करता, अरु चतुर्मासमें आच्छदित होय जाताहै, ताते म भोगकी इच्छा नही करता और जगत्की लक्ष्मीको मैं नही चाहता, अरु मेरा चित्तहै सो परमशत्रुहै

हे मुनीश्वर! महापुरुप जो जीतनेका यत्न करतेहैं, सो जव चित्तको जीते तव परम पदको पावे ताते मुझको सोई उपाय कहो, जिसकर मनको जीतों दुःख इसके आश्रयते रहतेहैं, जैसे पर्वतपर वनहै सो पर्वतकेआश्रयते रहताहै

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे चित्तदौरात्म्य वर्णन नाम एकादश सर्ग ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

अथ तृष्णागारुडीवर्णनम्.

श्रीरामउवाच हे ब्रह्मन् । चैतन्यरूपी आकाशमें जो तृष्णारूपी रात्रि आई है तामें काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक घुवडँ विचरतेहैं, जब ज्ञानरूप सूर्य उदय होवे तब तृष्णारूपी रात्रिका अभाव होयजावे जब रात्रि नष्ट भई, तब मोहादिक उलूकभी नष्ट होजाते हैं जब सूर्यका उदय होताहै, तब बर्फ उष्ण होय पिघल जाताहै तैसे संतोषरूपी रसको तृष्णारूपी उष्णता सुखातीहै बहुरि तृष्णा कैसीहै जैसे शून्य वनमें पिशाचनी अपने परिवारसहित फिरती रहती है, अरु प्रसन्न होतीहै सो वन अरु पिशाच कैसाहै, आत्मपदते शून्य जो चित्त सो भयानक शून्यवनहै तिसमें तृष्णारूपी पिशाचनी है,अरु मोहदिक उसका परिवार है, उनको साथ लेकर फिरती है

हे मुनीश्वर । चित्तरूपी पर्वतहै, तिसके आश्रयते तृष्णारूपी नदीका प्रवाह चलताहै अरु नानाप्रकारके सकल्परूपी तरगको पसारतेंह जैसे मेघको देखकर मोर प्रसन्न होताहै, तैसे तृष्णारूपी मोर भोगरूपी मेघको देखके प्रसन्न होताहै, ताते परमदुःखका मूल तृष्णाहै जब मैं किसी सतोपादि गुणका आश्रयकरता हो, तब तृष्णा तिसको नाश करदेतीहै जैसे सुदर सारगीको चूहा तोरडारताहै, तैसे संतोपादि गुणको तृष्णा नाश करतीहै

हे मुनीश्वर । सबते उत्कृष्ट पदमें विराजनेका मैं यत्न करता हो तब तृष्णा विराजने नहीं देती-जैसे जालमें फँसाहुआ पक्षी आकाशमें उडनेका यत्न करता है परतु उड नहीं सकता है तैसे मैं अनात्मपदमेंते आत्मपदको प्राप्त नहीं हो सकता. स्त्री, पुत्र, अरु कुटुंबने जाल विछायाहै. तामें फँसा हों सो निकस नहीं सकता सो आशारूपी फांसीमें बँधा हुआ, कबहू ऊर्ध्वको जाता हों, कबहू अध पात होता हों, सो घटीयंत्रकी नाई मेरीगति है. जैसे इंद्रका धनुप मेघमें मलीन होता है. सो बडा अरु बहुत रंगोंसों भरा है.परंतु मध्यते शून्यहै तैसे तृष्णा मलिन

अंतःकरणमें होती है सो वडी है अरु गुण रूपी रंगते रँगी है देखने मात्रको सुदर है, परंतु इससे कार्य्य सिद्धि कछु नही होती

हे मुनीश्वर । तृष्णारूपी मेघ है, तिससे दुःखरूपीबुंद निकसते है. अरु तृष्णारूपी काली नागनी है, उसका स्पर्श तो कोमल है, परतु विप करके पूर्ण है, तिसके डसेते मृतक होजाता है अरु तृष्णारूपी वादर है, सो आत्मरूपी सुर्यके आगे आवरण करताहै जव ज्ञानरूपीपवन निकसे तव तृष्णारूपीवादरका नाश होवे, अरु आत्मपदका साक्षात्कार होवै, अरु अज्ञानरूपी कमलको संकोच करनहारी तृष्णारूपी निशा है, अरु तृष्णारूपी महा भयानक कालीरात्रिहै, जिसकर वडे धीरजवान भी भयभीत है, अरु नयनवारेको भी अध कर डारती है, जव यह आवती है, तव वैराग्य अरु अभ्यासरूपी नेत्रको अध कर डारती है, अर्थ यह जो सत्य असत्यको विचारने नही देती

हे मुनीश्वर । तृष्णारूपी डाकनी है, सो सतोपादिक पुत्रोको मार डारती है, अरु तृष्णारूपी कदरा है तिसमें मोहरूपी उन्मत्त हस्ती गर्जते हैं अरु तृष्णारूपी समुद्र है, तिसमें आपदा रूपी नदी आय प्रवेश करतीहै ताते सोईउपाय मुझको कहो, जिसकर तृष्णारूपी दु खते छूटौं

हे मुनीश्वर । अग्निसों भी ऐसा दुःख नहीं होता अरु इद्रके वज्रकर भी ऐसा दुःख नहीहोता, जैसे दु.ख तृष्णाकर होता है सो तृष्णाके प्रहारसों घायल वडेदु.खको पाता है, अरु तृष्णारूपी दीपकमे परा-जरता है, तिसमें सतोपादिक पतगे जर जाते है जैसे जलमे मछली रहतीहै, सो जलमे ककरी, रेती आदि को देख, मास जानकर वह मुखमें लेती है, ताते उसका अर्थ सिद्धि कछु नही होता तैसे तृष्णा भी जो कछु पदार्थ देखती है, तिसके पास उडती है, अरु तृप्ति किसी कर नही होती, अरु तृष्णारूपी एक पखनीहै, सो सव कहूं उडजाती है, अरु स्थिर कवहू नहीं होती, तैसे तृष्णाभी कवहू किसी पदार्थको, कवहू किसीको ग्रहणकरतीहै, परतु स्थिर कवहूं नही होती, अरु तृष्णारूपी वानर है, सो कवहू किसी वृक्षपर, कवहू किसीके ऊपर जाता है, स्थिर कवहूं नहीं होता है जो पदार्थ नही प्राप्त होता तिसके

कारणते नहींकि, इसते कार्य भी होता है, अरु चैतन्य इस कारणते नहीं कि इसको आपते ज्ञान कछु नहीं होता; ताते मध्यमभावमें है काहेते जो चैतन्य आत्मा इसमें व्याप रहा है, सो लोह अग्निकी नाईं जानत हों, अरु आपते अपवित्ररूप अस्थि, मास, रुधिर, मूत्र, विष्ठा करि पूर्ण अरु विकारवान्, ऐसी जो देह है सो दुःखका स्थान है, अरु इष्टके पायेते हर्षवान् होती है, अरु अनिष्टके पाये ते शोकवान् होतीहै, ताते ऐसे शरीरकी मुझको इच्छानहीं यह अज्ञान कर उपजताहै.

हे मुनीश्वर ! ऐसे अमंगलरूपी शरीरमें जो अहपना फुरता है, सो दुःखका कारण है, यह ससारमें स्थित होकर नाना प्रकारके शब्द करता है अरु तूष्णी कवहू नहीं धारता है, अरु अहकाररूपी विलाडा देहमें रहा हुआ, अह, अहं, करता है, चुप कदाचित् नहीं रहता है, हेमुनीश्वर ! जो किसीके निमित्त शब्द होवे सो सुदर है, अन्यथा शब्द व्यर्थ है जैसे जयके निमित्त ढोलका शब्द सुन्दर होता है; तैसे अहंकारते रहित जो पद है, सो शोभनीकहै, और सव व्यर्थ है

अरु शरीररूपी नौका भोगरूपी रेतीमें परीहै इसको पार होना कठिन है जव वैराग्यरूपी जल वढै अरु प्रवाह होवे; अरु अभ्यासरूपी पतवारीका वल होवे तव संसारके पाररूपी किनारेपै पहुँचे अरु शरीररूपी वेडाहै, अरु संसाररूपी समुद्र और तृष्णारूपी जलमें पराहै, अरु वडा प्रवाहहै. अरु भोगरूपी तिसमें मगरहै, सो शरीररूपी वेडाको पार लगने नहीं देता जव शरीररूपी वेडाके साथ वैराग्यरूपी वायु लगे, अरु अभ्यासरूपी पतवारीका वललगे, तव शरीररूपी वेडा पारको पावे, हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषने ऐसे वेडको उपायकर आपको ससारसमुद्रते पार कियाहै, सो सुखी भया है, अरु जिसने नहीं किया, सो परम आपदाको प्राप्त होताहै सो इस वेड़कर उलटे डुवेंहैगे जैसे वेडेमें छिद्र होवें और वामें जल प्रवेश कर आवे, तव वह डूव जाताहै, अरु तिसमें जो मच्छहै सो खाइजाताहै, सो इहां, शरीररूपी वेडका तृष्णारूपी छिद्रहै, तिस करके इहां संसार समुद्रमें डूव जाताहै अरु भोगरूपी मगर इसको खाताहै अरु यह आश्चर्यहै कि, वेडा अपने

निकटनहीं भासता है, अरु मनुष्य सो मूर्खता करके आपको मानता है, अरु तृष्णारूपी छिद्र करके दुःखपाताहै.

अरु शरीररूपी वृक्षहै, तामें भुजारूपी शाखा है अरु अंगुरी इसके पत्र है, अरु जंघा इसका स्तभहैं, अरु वासना इसकी जडहै अरु सुख दुःख इसके फूलहैं, अरु तृष्णारूपी घुनहै, सो शरीररूपी वृक्षको खाता रहताहै जव इसको श्वेत फूल लगे, तव नाशका समय पाताहै कारण जो मृत्युके निकटवर्त्ती होताहै वहुरि शरीर रूपी इसके टासहैं, अरु गिटे इसका गुंछाहै अरु दात फूलहैं जघा स्तभहैं, अरु कर्म जलकर वढजाता है, जैसे वृक्षते जल निकसताहै, सो चिक्टाहै तैसे जल शरीरके द्वार निकसता रहताहै अरु तृष्णारूपी विषते पूर्ण सर्पिनी रहती हैं, अरु जो कामनाके लिये इस वृक्षका आश्रय लेताहै, तव तृष्णारूपी सर्पिनी तिसको डसतीहै तिस विपसों वह मरि जाताहै हे मुनीश्वर! ऐसा जो अमंगलरूपी शरीर वृक्षहै, तिसकी इच्छा मुझको नहीं है यहपरम दुःखका कारणहै

जव लग यह पुरुष अपने परिवारमें बँधा हुआहै तवलग मुक्ति नहीं होती, जव परिवारका त्याग करै तव मुक्ति होवे. देह, इद्रिय, प्राण, मन, वुद्धि, इसका परिवार है इनमें जो अहभावहै, ताका त्याग करै तव मुक्तिहोवे अन्यथामुक्ति नहीं होती

हे मुनीश्वर! जो श्रेष्ठ पुरुषहै,सो पवित्रही स्थानमे रहते है, अपवित्रमे नही रहते सो अपवित्र स्थान यह देहहै इसमें रहनेवाला भी अपवित्र है, अरु अस्थिरूपी इस घरमें लकड़े हैं, तामें रुधिर, मूत्र,विष्ठाका इसमें कीच लगायाहै, और मांसकी कहगील करीहै, अरु अहकाररूपी इसमें श्वपच रहताहै अरु तृष्णारूपी श्वपचनी इसकी स्त्रीहै, अरु काम, क्रोध,मोह, लोभ इसके वेटे है आंत अरु विष्टादिककरि पूर्ण भराहुआ है ऐसा जो अपवित्र स्थान अमगलरूप जो शरीर तिसका मै अगीकार नही करता यह शरीर रहो चाहे मत रहो इसके साथ मेरा अव कछु प्रयोजन नहीं

हे मुनीश्वर! एक वडा घरहै,तिसमे वडे पशु रहतेहैं,सोधूरको उडावते

हैं, सो गृहमें कोऊ जाताहै तब सींगसो मारने लगते हैं अरु धूड़
इसके ऊपर गिरती है सो शरीररूपी वडा गृहहै, तिसमें इंद्रियरूपी प
है, जव इस गृहमें पैठताहै, तव वडी आपदाको प्राप्त होताहै तात्प
यह जो इसमें अहंभाव करताहै, तव इद्रियरूपी पशु सो विषयरू
सींगसों मारते हैं अरु तृष्णारूपी धूड इसको मलीन करतीहै,
मुनीश्वर । ऐसे शरीरको मै अगीकार नही करता

जिसमें सदा कलह पडेही रहते हैं, तिसमे ज्ञान रूपी सपदा प्रवे
नहीं होती ऐसा जो शरीर रूपी गृह है, तिसमें तृष्णारूपी वडी स्त्री
रहती है. सो इद्रियरूपी द्वारसों देखती रहती है, सो सदा कल्पन
करत रहती हैं, तिसकर शमदमादिरूप संपदाका प्रवेश नहीं होता ति
घरमें एक शय्या है, जब उसके ऊपर विश्राम करता है, तव कछुक सुर
पाता है, परंतु तृष्णाका जो परिवार है सो विश्राम करने नहीं देता
सो सुषुप्तिरूपी शय्या है, जब उसमें विश्राम करता है,तव काम क्रोधादिव
रुदन करते हैं. अरु ए चंडी स्त्रीका जो परिवार, काम, क्रोध, लोभ,
मोह, इच्छा है सो उठाय देते हैं, विश्राम करने नहीं देते हे मुनीश्वर
ऐसा दु:खका मूल जो शरीर रूपी गृह है, तिसकी इच्छा मैंने त्याग
दीनी है यह परमदु ख देनेहारा है,इसकी इच्छा मुझको नहीं है.

हे मुनीश्वर ! शरीररूपी वृक्ष है, तिसमें तृष्णारूपी कौवानी आय
स्थित भई है सो जैसे कौवानी नीच पदार्थके पास उडती है तैसे तृष्णा-
रूपी कौवानी भोगरूपी मलिन पदार्थ के पास उड़ती है. बहुरि तृष्णा
वदरीकी नाई शरीररूपी वृक्षको हिलाती है वृक्षको स्थिर होने नहीं
देती अरु जैसे उन्मत्त हस्ती कीचमें फँस जाता है, अरु निकस
नहीं सकता, अरु खेदवान होताहै, तैसे अज्ञान रूपी मद कर उन्मत्त
हुआ जीव शरीररूपी कीचमें फँसा है, सो निकस नहीं सकता है,
पराया दुःख पावता है. ऐसे दु:ख पावनेनारा शरीर है, तिसका मैं
अंगीकार नहीं करता.

हे मुनीश्वर। यह शरीर अस्थि, मांस, रुधिर करि पूर्णहै, सो अपवित्र
है. जैसे हस्तीके करन सदाही हिलते हैं तैसे इसको मृत्यु परा हिलाता

ः कछु कालका विलंब है, परतु मृत्यु इसका ग्रास कर लेवेगा. ताते मैं इस शरीरका, अंगीकार नही करता हों

यह शरीर कृतघ्न है, भोग भुगतता है, वडे ऐश्वर्यको प्राप्त करताहै, परंतु मृत्यु इनकी सखापन नहीं करताहै जब जीवइसको छांड कर परलोकको जाता है, तब अकेलाही जाता है, और शरीरको छोड देता है, जीव इसके सुख निमित्त अनेक यत्न करताहै, परंतु संगमें सदा नहीं रहता ऐसा जो कृतघ्न शरीर है इसका मैने मनसों त्याग किया है, जो यह दुःख देनहाराहै

हे मुनीश्वर ! और आश्चर्य देखो,-जो वाईका भोग करता है, तिसके साथ चलता नही, जैसे धूर कर मार्ग भासनेते रहजाता है, तैसे यह जीव जब चलने लगता है तब शरीरके साथ क्षोभवान होता अरु वासनारूप धूर सयुक्त चलता है, परंतु दीखता नही कि, कहां गया जब परलोकको जाता है, तब वड़ा कष्ट होता है, काहेते कि, शरीरके साथ स्पर्श किया है.

हे मुनीश्वर ! यह शरीर क्षणभगर है जैसे जलकी बूंद पत्रके ऊपर गिरती है, सो क्षणमात्र रहती है, तैसे शरीर भी क्षणभगहै, ऐसे शरीरमें आस्था करनी सो मूर्खता है, अरु ऐसे शरीरके ऊपर उपकार करना भी दुःखके निमित्त है, सुख कछु नहीं है और जो धनाढ्य शरीरसों वड़े भोग भुगतते है अरु निर्धन थोडे भोग भुगतते है, परंतु जरावस्था अरु मृत्यु दोनोको होते हैं इसमें विशेषता कछु नहीं शरीरका उपकार करना और भोग भुगतना सो तृष्णा करके उलटा,दुःखका कारण है जैसे कोऊ नागिनी घरमे रखके उसको दूध प्यावे, सोई आखिर उसको काटके मारेगी,तैसे जीवने तृष्णारूपी नागिनीके साथ सखाई करी है, सो मरेगा, क्योंकि नाशवंत है इसके निमित्त जो भोग भुगतनेका यत्न करना सो मूर्खता है. जैसे पवनका वेग आता है, अरु जाता है, तैसे यह शरीर नाशवत है इससों प्रीति करनी, सो दुःखका कारण है सब जीव इसकी अवस्थामें वाधे हुए है, इसका त्याग कोई विरलानेही किया है जैसे कोई विरला मृग होता है, सो मरुथलके जलकी आस्था त्यागता है और सब ऐसे भ्रमते हैं

हे मुनीश्वर ! बिजलीका अरु दीपकका प्रकाशभी आता जाता दीखता है, परंतु इस शरीरका आदि अंत नही दिखता है कि, कहांते आता है, अरु कहां जाता है. जैसे समुद्रमें बुद्बुदे उपजते हैं, अरु मिट जाते हैं,तिसकी आस्था करनेते कछु लाभ नहीं,तैसे यह शरीरकी आस्था करनी योग्य नही. यह अत्यंत नाशरूपहै, स्थिर कदाचित् नहीं होताहै. जैसे बिजुरी स्थिर नहीं होती तैसे शरीर भी स्थिर नही रहता, इसकी मैं आस्था नहीं करता इसका अभिमान मैंने त्यागा है. जैसे कोई सूखे तृणको त्याग देता है, तैसे मैंने अहंममता त्यागी है

हे मुनीश्वर ! ऐसे शरीरको पुष्ट करना, सो दुःखके निमित्तहै यह शरीर किसी अर्थ आवने योग्य नहीं जलावने योग्य है. जैसे लकडी जलाये बिन और काममें नहीं आती है, तैसे यह शरीरभी जड अरु गूंगा जलावनेके अर्थ है.हे मुनीश्वर ! जिन पुरुषोंने काष्ठरूपी शरीरको ज्ञानाग्नि कर जलाया है, तिनका परम अर्थ सिद्ध भया है. अरु जिनने नहीं जलाया, सो परमदुःख पाया है.

हे मुनीश्वर ! न मैं शरीर हों, न मेराशरीर है, न इसकामैं हों, न यह मेरा है, अब मुझको कामना कोई नहीं है. मैं निराशी पुरुष हों. अरु शरीरके साथ मुझको प्रयोजन कछु नहीं है. ताते तुम सोई उपाय कहो जिसकर मैं परमपदकी प्राप्ति पाऊं

हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषने शरीरका अभिमान त्यागा है, सो परमानंद रूप है; और जिसको देहका अभिमान है, सो परमदुःखी है जेते कछु दुःख हैं सो शरीरके सयोग करि होते हैं मान, अपमान, जरा, मृत्यु, दंभ, भ्रांति,मोह शोक, आदि सर्व विकार देहके संयोग कर होते हैं. जिसको देहमें अभिमान है तिसको धिक्कार है और सब आपदाभी तिसको प्राप्त होती हैं जैसे समुद्रमें नदी आयकर प्रवेश करती है, तैसे देहाभिमानमें सर्व आपदा आय प्रवेश करती हैं.जिसको देहका अभिमान नहीं, सो पुरुषोंमें उत्तम है, अरु वंदना करने योग्य है, ऐसेको मेरा नमस्कार है, अरु सर्व संपदाभी तिसको प्राप्त होती हैं. जैसे मान स[illegible]में सब हंस आय रहते हैं तैसे जहां देहाभिमान नहीं र[illegible] [illegible] रहती हैं

हे मुनीश्वर ! जैसे अपनी छायामें बालक वैताल कल्पता है, अरु तिसकर भय पाताहै, जब इसको विचारकी प्राप्ति होती है, तब वैतालका अभाव होजाता है तैसे अज्ञानकर मुझको अहंकाररूपी पिशाचने शरीरमें दृढ आस्था बताई है, ताते सोई उपाय कहो, जिस कर अहंकाररूपी पिशाचका नाश होवे अरु आस्था रूपी फांसी टूटे

हे मुनीश्वर ! प्रथम जो मुझको अज्ञानकर सयोग था सो अहंकाररूपी पिशाचका था, तिससे अनंतर शरीरमें आस्था उपजीहै जैसे बीजते प्रथम अकुर होताहै, फिर अकुरते वृक्ष होताहै तैसे अहकारसे शरीरकी आस्था होतीहै हेमुनीश्वर ! इस अहंकाररूपी पिशाचने सब जीवनको दीन किये हैं जैसे बालकको छायामें वैताल भासताहै अरु दीनताको प्राप्त होताहै तैसे अहंकाररूपी पिशाचने मुझको दीन किया है सो अहंकाररूपी पिशाच अविचारते सिद्ध है, अरु विचार कियेते अभावको प्राप्त होताहै जैसे प्रकाशकर अंधकार नाश होजाताहै, तैसे विचार कियेते अहंकारनाश होजाताहै

हेमुनीश्वर ! जो शरीरमें आस्था रक्खीहै, सो शरीर जलके प्रवाहकी नाईं स्थिर नहीं होता,ऐसा चलहै. जैसे बिजुरीकी चमक स्थिर नहीं होती, अरु गंधर्वनगरकी आस्था व्यर्थ है, तैसे शरीरकी आस्था करनी व्यर्थ है हेमुनीश्वर ऐसे शरीरकी आस्था करके अहंकार करते हैं, अरु जगत्के पदार्थ निमित्त यत्न करते है वे महामूर्ख हैं. जैसे स्वप्न मिथ्याहै, तैसे यह जगत् मिथ्याहै. तिसको सत्य जानकर जो इसका यत्न करता है सो अपने बंधनके निमित्त करताहै जैसे घुरान गुफा बनाती है, सो अपने बंधनके निमित्तहै, अरु पतंग दीपक की इच्छा करताहै सो अपने नाशके निमित्त है तैसे अज्ञानी जो अपने देहका अभिमानकर भोगकी इच्छा करताहै, सो अपने नाशके निमित्तहै

हेमुनीश्वर ! मैंतो इस शरीरका अंगीकार नहीं करता इस शरीरका अभिमान परमदुःख देनहाराहै. जिसको देह अभिमान नहीं रहा तिसको भोगकी इच्छा भी न रहैगी. ताते मैं निराशहौं, अरु परमपदकी इच्छाहै, जिसके पायेते बहुरि संसार समुद्रकी प्राप्ति नहोवे

इति योगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे देहनैराश्य वर्णन नाम त्रयोदशः सर्ग १३

चतुर्दशः सर्ग. १४.

अथ बालावस्था वर्णनम्.

रामोवाच, हेमुनीश्वर ! इस संसारसमुद्रमें जो जन्म पायाहै, तामें बालक अवस्था इसको प्राप्त भई है, सोभी परमदुःखका मूलहै, तिसमें परमदीन होजाताहै, अरु जेते अवगुण इसमे आय प्रवेश करते हैं, सो कहताहों. अशक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता अरु दुःख, संताप एते विकार इसको आय प्राप्त होतेहैं. यह बालावस्था महा विकारवानहै अरु बालक पदार्थकी ओर धावता है, एक वस्तुका ग्रहणकर दूसरीको चाहताहै, स्थिर नही रहताहै, फिर औरमें लग जाताहै. जैसे वानर ठहरके नहीं वैठता, अरु जो कोऊ ऊपर क्रोधकरताहै, तब अंतरतें परा जलताहै, अरु बडी बडी इच्छा करताहै, तिसकी प्राप्ति नहीं होती;सदा तृष्णामें रहताहै अरु क्षणमें भयभीत होजाताहै, शांतिको प्राप्त नहीं होता; फिर महादीन हो जाताहै. जैसे कदली वनका हस्ती सांकरसों बांधाहुआ दीन होजाताहै,तैसे यह चेतन्य पुरुष, बालक अवस्थाकर दीन होजाताहै. जो कछु इच्छा करताहै, सो विचारविना करताहै, तिसकर दुःख पाताहै. अरु मूढ गुग अवस्थाहै, तिसकर कछु सिद्धि नही होती, कोऊ पदार्थकी प्राप्ति होतीहै तिसमें क्षणमात्र सुखी रहताहै, बहुरि तपने लगताहै. जैसे तपती पृथ्वीपर जलडारिये तब एक क्षण शीतल होती है, फिर उसी प्रकारसों तपतीहै, तैसे वह भी तपता रहताहै जैसे रात्रिके अंतमें सूर्य उदय होताहै तिसकर उलूकादि कष्टवान् होतेहैं,तैसे इस जीवको स्वरूपके अज्ञान कर बालावस्थामें कष्ट होताहै

हे मुनीश्वर ! जो बालक अवस्थाकी संगति करताहै सो भी [illegible] काहेते कि, यह विवेकरहित अवस्थाहै, अरु [illegible] पदार्थकी ओर धावताहै, ऐसी मूढ अरु दी[illegible] नहीं जिस पदार्थको देखताहै तिसकी [illegible] अपमानको पाता है. जैसे कूकर क्षण क्षणमें अपमान पाता है. तैसे बालक [illegible] मान

सदा माता अरु पिताका भय रहता है, बांधवका सदा भय रहता है, अरु आपते बडे बालकका भी भय रहता है, अरु पशु पक्षीहूका भय रहता है हे मुनीश्वर ! ऐसी दुःखरूप अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं जैसे स्त्रीके नयन चंचल हैं, अरु नदीका प्रवाह चचल है, इसते भी मन अरु बालक चचल हैं, ऐसे जानता हों, अत्र सब चंचलता बालकते कनिष्ठहै, बालक सबते चचल है. जैसा मन चंचल है, तैसा बालक भी चंचल है मनका रूप बालक ह.

हे मुनीश्वर ! जैसे वेश्याका चित्त एक पुरुषमे नहीं ठहरता, तैसे बालकका चित्त एक पदार्थमें नहीं ठहरता कि, इस पदार्थ कर, मेरा नाश होवेगा, ऐसा विचार भी तिसकोनहीं,अरु इसकर मेरा कल्याण होवेगा सो विचार भी नहीं. ऐसेई परा चेष्टाकरता है, अरु सदा दीन रहता है, अरु सुख दुःख इच्छा दोप करके तपायमान रहता है, जैसे ज्येष्ठ आषाढमें पृथ्वी तपायमान होती है, तैसे बालक तपताई रहता है, शातिको कदाचित् नहीं पाता.

अरु जब विद्यापढने लगताहै, तब गुरुसों बडा भयभीत होता है, जैसे कोई यमको देखके भय पावे, और गरुडको देखके जैसे सर्प भयपावे, तैसे भयभीत होजाताहै. जब शरीरको कोई कष्ट आय प्राप्त होताहै, तब बडे दुःखको प्राप्त होता है परन्तु दुःखके निवारणमें समर्थ नहीं होता, अरु सहनको भी समर्थ नहीं अतरते परा जलता है, अरु दुःखते कछु बोल सकता नहीं जैसे वृक्ष कछु नहीं बोल सकता, अरु जैसे अपर तिर्यक् योनि दुःख पावते है अरु कहि नहीं सकते हैं अरु दुःखका निवारण नहीं कर सकते, न संहार कर सकते, अतरते परे जलते हैं, तैसे बालकगूँगामूढहुआ दुःख पाता है हे मुनीश्वर ! ऐसी जो बालककी अवस्था तिनकी जो स्तुति करताहै, सो मूर्ख है.

यह तो परमदुःखरूप अवस्थाहै, इसमें विवेक विचार कछु नहीं एक खानेको पाता है, अरु रुदन करताहै ऐसी अवगुण रूप अवस्था मुझको नहीं सुहाती है जैसे बिजुरी अरु जलके बुदबुदे स्थिर नहीं रहते तैसे बालकहू स्थिर कदाचित नहीं होता

हे मुनीश्वर । यह महामूर्ख अवस्थाहै, कवहूं कहताहै. हेपिता । मुझको वर्फका टुकडा भूनि दे. कवहूं कहताहै:—मुझको चंद्रमा उतार दे, ये सब मूर्खताके वचन है, ताते ऐसी मूर्खावस्थाको मैं अंगीकार नहीं करता; जैसे दुःखका अनुभव वालकको होता है, सो हमारे स्वप्नमें भी नहीं आया तात्पर्य यह कि, वालावस्था में वडा दु:ख है; यह वालावस्था अवगुणका भूपणहै, सो अवगुण कर सोभती है; ऐसी नीच अवस्थाको मै अंगीकार नहीं करता. इसकी स्तुति करनी सो मूर्खता है इसमें गुण कोई भी नहीं है

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे वालावस्थावर्णन नामचतुर्दशः सर्गः १४

पंचदशः सर्गः १५.



अथ युवागारुडीवर्णनम्.

रामउवाच, हे मुनीश्वर । दु:खरूप वालावस्थाके अनतर जो युवा अवस्था आती है, सो नीचेते ऊची चढतीहै,सो भी उत्तम गिनवेके निमित्त नहींहै अधिकदु:खदायक है, जव युवा अवस्था आती है, तव काम रूपी पिशाच आय लगता है सो कामरूपी पिशाच युवा अवस्थारूपी गढेलेमें आय स्थित होता है, चित्त फिराता है अरु इच्छामें पसारता है. जैसे सूर्यके उदय हुये सूर्यमुखी कमल खिल आताहै अरु पँखुरीनको पसारता है, तैसे युवा अवस्था रूपी सूर्य उदय होता है. तव नाना प्रकारकी इच्छा फुरती है अरु कामरूपी पिशाच इसको स्त्रीमें डार देता है, तहाँ परा दु ख पाताहै जैसे कोईको अग्निके कुडमें डार दिया होय, अरु वह दु:ख पावे, तैसे कामके वश हुआ दु:खको पाता है

हे मुनीश्वर ! जो कछु विकार है, सो सव युवा अवस्थामें आयके प्राप्त हुए है जैसे धनवानको देखके निर्धन सव धनकी आशा करते है तैसे युवा अवस्थाको देखकर सव दोप आय इकट्ठे होते है. अरु जो भोगको सुखरूप जानकर भोगकी इच्छा करता है, सो परम दु:खका कारण है जैसे मद्यका घट भरा हुआ देखने मात्रको सुंदर लगता है, परन्तु जब उसका

पानकरै तव उन्मत्त हो जाय, तिस उन्मत्तता कर दीन होजाताहै, अरु निरादरको पाता है. तैसे यह भोग देखनेमात्रको सुंदर भासता है परतु जव इसको भुगतता है, तव तृष्णाकर उन्मत्त होजाता है अरु पराधीन हो जाताहै.

हे मुनीश्वर! यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार सव जो चोर है, सो युवारूपी रात्रिको देखकर लूटने लगते हैं। अरु आत्मज्ञानरूपी धनको चोर ले जाते हैं, तिसकर यह दीन होता है, यह पुरुप आत्मानदके वियोग कर दीन हुआ है. हे मुनीश्वर! ऐसी जो दु.ख देनहारी युवावस्था, तिसका मैं अंगीकार नहीं करता, अरु शांति जो है, सो चित्त स्थिर करनेके लिये है, सो चित्त युवा अवस्थामें विपयकी ओर धावता है जैसे वाण लक्षके ओर जाता है, तव उसको विपयका संयोग होता है, सो विपयकी तृष्णा निवृत्त नहीं होती अरु तृष्णाके मारे जन्मते जन्मांतर रूप दु'खको पाता है हे मुनीश्वर! ऐसी दु.खदायक युवा अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं है

हे मुनीश्वर। जेते कछु दुःख है, सो सव युवा अवस्था मे आयकर प्राप्त होते है काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, चपलता, इत्यादिक जो दु'ख हैं, सो सव युवा अवस्थामें स्थिर होते है,; जैसे प्रलयकालमें, सव रोग आय स्थिर होते हैं, तैसे युवा अवस्थामें सव उपद्रव आय मिलते है और क्षणभग है जैसे विजुरीका चमक होयके मिटजाता है, अथवा जैसे समुद्रमें तरंग होतेंहै अरु मिटि जातेहैं तैसे युवाअवस्था होयके मिट जाती है जैसे स्वप्नमें कोई स्त्री विकारकर छल जाती है, तैसे अज्ञानकर युवा अवस्था छल जाती है

हे मुनीश्वर। युवा अवस्था जीवकी परमशत्रु है जो पुरुप इस शत्रुके शस्त्रते वचे हैं, वो धन्य है। इसके शस्त्र काम क्रोध, हैं जो इसते छूटा है सो वज्रके प्रहार करभी छेदा न जावेगा जो इनकर वाँधा हुआ है, सो पशु है.

हे मुनीश्वर! युवावस्था देखनेमें तो सुदर है, परतु अतरते तृष्णा करके जरजरित हैं जैसे वृक्ष देखनेमें तो सुंदर होय, अरु अंतरते घुन

लगा हुआ है, तैसे युवावस्था जो भोगके निमित्त यत्न करती है, सो भोग आपात रमणीय है. कारण यह कि, जबलगइंद्रिय अरु विषयका संयोगहै, तबलग अविचारित भला लगताहै, अरु जब वियोग हुआ तब दुःख होताहै. ताते भोग करके मूर्ख प्रसन्न होतेहैं, अरु उन्मत्त होतेहैं, तिनको शांति नहीं होती. अरु अंतरसे सदा तृष्णा रहतीहै. स्त्रीमें चित्तकी आसक्ति रहतीहै जब इष्ट वनिताका वियोग होताहै, तब तिसके स्मरण करके जलताहै. जैसे वनका वृक्ष अग्निकरके जलताहै तैसे युवावस्थामें इष्टवियोग करके जीव जलताहै जैसे उन्मत्त हस्ती सांकर करके बंधन पाता है, तब स्थिर होता है; कहू जाय नहीं सकता, तैसे कामरूपी हस्ती है, तिसको सांकररूप युवावस्था बंधन करतीहै, अरु युवावस्थारूपी नदी है, तिसमें इच्छारूपी तरंग उठतेहै सो कदाचित् शांतिको नहीं पातेहैं; अरु-

हे मुनीश्वर! यह युवावस्था बडी दुष्टहै. कोऊ बडा बुद्धिवान् होवे, अरु सदा निर्मल प्रसन्न होवे, एते गुण करके प्रसन्न होवे; तिसकी बुद्धिको भी युवावस्था मलिन कर डारतीहै जैसे निर्मल जलकी बडी नदी होवे, अरु जब वर्षाकाल आवे, तब मलीन होय जावे; तैसे युवावस्थामें बुद्धि मलीन होय जातीहै

हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्षहै तिसमें युवावस्थारूपी वल्ली प्रगट होती है; सो पुष्ट होता है, तब चित्तरूपी भँवरा आय बैठताहै; सो तृष्णारूपी तिसकी सुगंधकरके उन्मत्त होताहै; अरु सब विचार भूल जाताहै. जैसे जब प्रबल पवन चलताहै, तब सूखे पत्रको उडाय लेजाताहै; अरु रहने नहीं देता; तैसे युवावस्था आवती है, तब वैराग्य, संतोषादिक गुणका अभाव करतीहै; अरु दुःखरूपी कमलका युवावस्थारूपी सूर्य है; युवावस्थाके उदयते सब दुःख प्रफुल्लित हो आते है; ताते सब दुःखका मूल युवावस्थाहै. जैसे सूर्यके उदयते सूर्यमुखी कमल खिल आतेहैं, तैसे चित्तरूपी कमल संसाररूपी पँखुरी अरु सत्यतारूपी सुगंध कर खिल आताहै अरु तृष्णारूपी भौंरा तिसपर आय बैठताहै, अरु विषयकी सुगंध लेताहै

हे मुनीश्वर! संसाररूपी रात्रिहै, तिसमें युवावस्था रूपी तारागण

प्रकाशते हैं, कारण यह जो शरीर युवावस्थाकर सुशोभित होता है, अरु युवावस्था शरीरको जर्जरी भाव करके हो आतीहै जैसे धानका छोटावृक्ष हरा तवलग रहता है जवलग उसको फूल नहीं आया जव फूल आते है तव सूखनेको लगताहै, अरु अन्नके कन परिपक्क होतेहैं, तव अन्नके छोटे वृक्ष जर्जरभावको पाते हैं उसकी हरियावल नहीं रहसकती तैसे जव लग जवानी नहीं आई, तवलग शरीर सुंदर कोमल रहताहै जव जवानी आई तव शरीर क्रूर होजाताहै, फेर परिपक्क होकर क्षीण होजाता है, अरु वृद्ध होताहै ताते

हेमुनीश्वर ! ऐसी दुःखकी मूलरूप युवावस्थाहै तिसकी मुझको इच्छा-नहीं, जैसे समुद्र वड़े जलकर पूर्ण है तरंगको पसारताहै; अरु उछलताहै, तोभी मर्यादाका, त्याग नही करता, ईश्वरकी आज्ञा मर्यादामे रहनेकीहै, अरु युवावस्थातो ऐसी है जो शास्त्रकी मर्यादा, अरु लोककी मर्यादा मेटके चलतीहै, अरु तिनको अपना विचार नही रहता जैसे अंधकारमें पदार्थका ज्ञान नहीं होता, तैसे युवावस्थामे शुभ अशुभका त्याग नहीं होता. जिसको विचार नही रहा तिसको शांति कहांते होवे, सदा व्याधि तापमें जता रहताहै, जैसे जल विना मच्छको शाति नही होती, तेसे विचार विना सदा पुरुप जलता रहताहै

जव युवावस्थारूप रात्रि आती है, तव काम पिशाच आयके गर्जता है, तिसकर इसको यही सकल्प उठते है, जो कोऊ कामी पुरुप आवे, तिसके साथमें यही चर्चा करों–हे मित्र ! वह कैसी सुंदर है ? अरु कैसे उसके कटाक्ष है ? सो किस प्रकार मोको प्राप्त होय हे मुनीश्वर ! इस इच्छाके साथ वह सदा जरतारहता है जैसे मरुस्थलकी नदीको देख मृग दौरता है, अरु जलकी अप्राप्ति कर जलता है तैसे कामीपुरुप विपयकी वासना करके जलता है, अरु शांति नही पाता है

हे मुनीश्वर ! मनुष्य जन्म उत्तम है, परतु जिनके अभाग्य है, तिनको विपयते आत्मपदकी प्राप्ति नही होती जैसे चिंतामणि कोईको प्राप्त होवे, तो तिसका निरादर करे और उसको जाने नही और डारि देवे, तेसे जो पुरुप मनुष्य शरीर पाकर आत्मपद नहीं पाया, सो वडा

लगा हुआ है, तैसे युवावस्था जो भोगके निमित्त यत्न करती है, सो भोग आपात रमणीय है. कारण यह कि, जबलगइंद्रिय अरु विषयका संयोगहै, तबलग अविचारित भला लगताहै, अरु जब वियोग हुआ तब दुःख होताहै. ताते भोग करके मूर्ख प्रसन्न होतेहैं, अरु उन्मत्त होतेहैं, तिनको शांति नहीं होती अरु अंतरसे सदा तृष्णा रहतीहै स्त्रीमें चित्तकी आसक्ति रहतीहै जब इष्ट वनिताका वियोग होताहै, तब तिसके स्मरण करके जलताहै. जैसे वनका वृक्ष अग्नि करके जलताहै तैसे युवावस्थामें इष्टवियोग करके जीव जलताहै जैसे उन्मत्त हस्ती सांकर करके बंधन पाता है, तब स्थिर होता है, कहूं जाय नहीं सकता, तैसे कामरूपी हस्ती है, तिसको सांकररूप युवावस्था बंधन करतीहै, अरु युवाव[illegible] मगर, बडे देह; तिसमें इच्छारूपी तरंग उठतेहैं सो कदाचित् शांतिके [illegible] सुगम मानता हों,

हे मुनी[illegible] [illegible] दुस्तर [illegible] युवावस्था का तरना महा कठिन है; कारण यह कि, युवावस्थामें निर्दोष रहना कठिन है ऐसी संकटवारी जो युवावस्था है, तिसमें चलायमान नहीं होते सो पुरुष धन्यहैं, अरु वंदना करने योग्यहैं हे मुनीश्वर ! यह युवावस्था चित्तको मलीन कर डारती है. जैसे जलकी बावड़ी है, तिसके निकट राख कांटे रहे होयँ, सो पवन चलनेते सब आय बावड़ीमें गिरें, तैसे पवनरूपी युवावस्था दोषरूपी धूरकांटेनको चित्तरूपीबावड़ीमें डारके मलीन कर देतीहै ऐसे अवगुण करके पूर्ण जो युवावस्था, तिसकी इच्छा मुझको नहीं है.

युवावस्था ! मेरे पर यही कृपा करनी, जो तेरा दर्शन नहीं होवे, तेरा आवना मैं दुःखका कारण मानता हूं जैसे पुत्रके मरनेका संकट पिता शोष नहीं सकता अरु सुखका निमित्त नहीं देखता, तैसा तेरा आवनामें सुखका निमित्त नहीं देखता ताते मुझपर दया करनी जो अपना दर्शन न होवे.

हे मुनीश्वर ! युवावस्थाका तरना महा कठिन है जो कोऊ यौवनवान होवे, सो नम्रता संयुक्त होवे और शास्त्रके गुण, वैराग्य, विचार, संतोष, शांति, इनकर संपन्न होवे सो दुर्लभ है. जैसे आकाशमें वन होना आश्चर्य है, तैसे युवावस्थामें, वैराग्य, विचार, शांति, संतोष पावना यह बडा

प्रकाशते हैं, कारण यह जो शरीर युवावस्थाकर सुशोभित होता है, अरु युवावस्था शरीरको जर्जरी भाव करके हो आतीहै जैसे धानका छोटावृक्ष हरा तवलग रहता है जवलग उसको फूल नही आया जव फूल आते हैं तव सूखनेको लगताहै; अरु अन्नके कन परिपक्व होतेहैं, तव अन्नके छोटे वृक्ष जर्जरभावको पाते हैं उसकी हरियावल नहीं रहसकती तैसे जव लग जवानी नहीं आई, तवलग शरीर सुंदर कोमल रहताहै जव जवानी आई तव शरीर क्रूर होजाताहै, फेर परिपक्व होकर क्षीण होजाता है, अरु वृद्ध होताहै ताते

हेमुनीश्वर । ऐसी दुःखकी मूलरूप युवावस्थाहै तिसकी मुझको इच्छा-है जैसे यंत्रोंकी वेड़े जलकर पूर्ण है तरंगको पसारताहै, अरु उछलताहै, है, तैसे यह अस्थि, मांस नहीं करता, ईश्वरकी आज्ञा मर्यादामे रहनेकीहै, कर नहीं देखता तिसको रमणीक दीखती है जैसे पर्वतके शिखर मर्यादा सुंदर अरु निकटते असारहैं पत्थरई पंडे दीखते हैं, तैसे स्त्री, वस्त्र अरु भूषणसों करि सुदर भासती है, अरु जो अगको भिन्न भिन्न विचार कर देखो तो सार कछु नही है जैसे नागनीके अग वहुत कोमल होते हैं, परंतु उसका स्पर्श करो तो काटके मार डारती है तैसे जो कोई स्त्रीको स्पर्श करते हैं तिनको नाश कर डारती है जैसे विषकी वेलि देखनेमात्रको सुंदर लगती है, परंतु स्पर्श कियेते मार डारती है जैसे हस्तीको जंजीर से वाँधो तव जिस द्वारपै रहता है, तहाँई स्थिर रहता है, तैसे अज्ञानीका जो चित्तरूपी हस्ती है सो कामरूपी जंजीरसे वंधा हुआ स्त्रीरूपी एक स्थानमें स्थिर रहता है, वहाँसे कहूं जाय नहीं सकता और जव हस्तीको महावत अंकुशका प्रहार करता है, तव वंधनको तोरके निकस जाता है तैसे यह चित्तरूपी मूर्खहस्ती है, सो महावतरूपी गुरुका उपदेशरूपी अंकुशका वारवार प्रहार करता है तव सो भी निर्वंध होय जाता है.

हे मुनीश्वर । कामीपुरुष जो स्त्रीकी वाञ्छा करता है, सो अपने नाशके निमित्त करता है, जैसे कदली वनका हस्ती, कागजकी हस्तिनी देखकर छल पायके वंधनमें आता है, ताते परमदुःख पाता है, तैसे परमदुःखका मूल स्त्रीका संग है, हे मुनीश्वर । जैसे वनके दाहकी अग्नि

सबको जलावती है, तैसे स्त्रीरूपी अग्नि तिसते अधिक है; काहेते जो उस अग्निके परश कियेते तप्त होते हैं; और स्त्रीरूपी अग्नि तो स्मरण मात्रमें जलाती है और जो सुख रमणीय दिखता है, सो आपात रमणीय है जब स्त्रीके सुखका वियोग होता है, तब मुर्देकी नाईं होजाता है तिस कालमें भी (स्त्रीसंयोगकाल) शव (मुर्दा) जैसा हो जाता है.

हे मुनीश्वर! यह तो अस्थि, मांस, रुधिरका पिंजरा है, सो अग्निमें भस्म होजायगा, अथवा पशु पक्षीको खानेका आहार होयगा. जिसको देखकर पुरुष प्रसन्न होता है, तिसके प्राण आकाशमें लीन होजाते हैं; ताते इस स्त्रीकी इच्छा करनी सो मूर्खताहै, जैसे अग्निकी ज्वालाके ऊपर श्यामता है, तैसे स्त्रीके शीशऊपर श्यामकेशहैं. जैसे अग्निके स्पर्श कियेते जलता है, तैसे स्त्रीके स्पर्श कियेते पुरुष जलताहै ताते जलना दोनोंमें तुल्य है हे मुनीश्वर! इसको नाश करनहारी स्त्रीरूपी अग्नि है. जो स्त्रीकी इच्छा करते हैं सो महामूर्ख अज्ञानीहैं; सो अपने नाशके निमित्त इच्छा करते हैं, जैसे पतंग अपने नाशके निमित्त दीपककी इच्छा करते हैं, तैसे कामीपुरुष अपने नाशके निमित्त स्त्रीकी इच्छा करताहै.

हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी विषकी वेलि है; अरु हस्त पाँवके अग्र तिसके पत्र हैं, अरु भुजा डारी है, और अस्थिरूप गुच्छेहैं नेत्रादिक इंद्रिय तिसके फूल हैं, अरु कामीपुरुषरूपी भौरे आय बैठते हैं; अरु कामरूपी धीवरने स्त्रीरूपी जाल पसारी है; तिसपर कामीपुरुषरूपी पक्षी, आय फँसते हैं कामरूपी धीवर तिसको फँसायकर परमदुःखप्राप्त करता है ऐसे दुःखके देनहारीस्त्रीकी जो वांछा करते हैं; सो महामूर्ख है

हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी सर्पनी है; जब तिसका फुंकार निकलता है, तब तिसके निकट कमल फूल सब जल जाते हैं; ऐसी स्त्रीरूपी सर्पनी है, तिसका इच्छा रूप फुंकार जब निकलता है, तब वैराग्यरूपी कमल जर जाते हैं, अरु जब सर्पनी डसती है तब विषचढताहै. और स्त्रीरूपी सर्पनी जर चिंतानि करी तब अंतरते आपेहि विष चढ जाता है.

हे मुनीश्वर! जैसे व्याध छलकर मच्छीको फँसावता है, तैसे कामी

पुरुप मच्छीवत,सुदर स्त्रीरूपीजाल देखके फँसता है और स्नेहरूपी तागेसों कामीपुरुप वंधन पाय खैंचा चला जाता है, फिर तृष्णारूपी छुरीसों काम मार डारता है हेमुनीश्वर ! ऐसे दु.खके देनेहारी स्त्रीकी मुझको इच्छा नहीं अरु कामरूपीपारधीहै,तिसते रागरूपी इद्रियसों जाल विछाय कामीपुरुपरूपी मृगको आसक्त कर डारताहै, अरु स्त्रीतो स्नेहरूपी डोरी है, तिसकर कामी पुरुषरूप वेलसों वँधा है अरु स्त्रीका मुखरूपी जो चन्द्रमा है तिसको देखकर कामी पुरुषरूपी कमलनी खिलि आती है, जैसे चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमाको देखकर प्रसन्न होते है, और सूर्यमुखी नही होते, तैसे यह कामी पुरुप भोगहू कर प्रसन्न होते हैं, अरु ज्ञानवान प्रसन्न नही होतेहैं. जैसे नकुल सर्पको विलमे ते निकासके मारता है, तैसे कामी पुरुपको स्त्री, आत्मानदमेते निकालके मार डारती है जव स्त्रीके निकट जाता है, तव उसको भस्म कर डारती है जैसे सूखे तृण अरु घृतको अग्नि भस्म कर डारती है, तैसे कामीपुरुपको स्त्रीरूपी नागनी भस्म कर डारती है

हे मुनीश्वर ! स्त्रीरूपी जो रात्रि है, तिसका स्नेह रूपी अंधकार है, तिसके काम क्रोधादिक उलूक अरु पिशाच हैं. हेमुनीश्वर ! जो स्त्रीरूपी खड्गके प्रहारते युवारूपी सग्रामते वचा है, सो पुरुप धन्य है ! तिसको मेरा नमस्कार है स्त्रीकासयोग परमदु'खका कारण है, ताते मुझको इसकी इच्छा नही हे मुनीश्वर ! जो रोग होता है, तिसके अनुसार औपधिकरताहै, तव रोग निवृत्त होता है अरु कोऊ कुपथ्य दिये, वाका प्रवल होताहै, रोग वढ जाताहै, ताते मेरे रोगके अनुसार औपधि करो–

सो मेरा रोग सुनिये-जरा अरु मृत्यु मुझको वडा रोगहै, तिसके नाश की ओपधि मुझको दीजिये और स्त्री आदिक जो भोग हैं, सो सव इस रोगके वृद्धि कर्त्ता हैं जैसे अग्निमें घृत डारिये, तव वढ जाती है, तैसे भोग सों जरा मृत्यु आदिरोग वढता है, ताते इस रोगकी निवृत्तिका औपधकरो, नहीं तो सवका त्याग कर वनमें जाय रहूगा.

हे मुनीश्वर ! जिसको स्त्रीहै तिसको भोगकी इच्छा भी होती है, और जिसको स्त्री नहीं तिसको स्त्रीकी इच्छा भी नहीं. जिसने स्त्रीका त्याग

कियाहै, तिसने ससारकाभी त्याग कियाहै, सोई सुखीहै. संसारका बीज स्त्री है, ताते मुझको स्त्रीकी इच्छा नहीं, मुझको सोई ओषधि दीजिये, जिससे जरा मृत्यु आदि रोगकी निवृत्ति होय.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे स्त्रीदुराशा वर्णन नाम षोडश॰ सर्ग॰ १६

सप्तदशः सर्गः १७.

अथ जराअवस्थावर्णनम्.

श्रीराम उवाच, हेमुनीश्वर ! बालक अवस्थातो महाजड है, अरु अशक्त है; और जब युवावस्था आती है, तब बालावस्थाको ग्रहण कर लेती है. तिसके अनंतर वृद्धावस्था आती है, तब शरीर जर्जरीभूत होजाता है अरु बुद्धि क्षीण होजातीहै, बहुरि मृत्युको पाताहै. हेमुनीश्वर ! इस प्रकार अज्ञानीका जीवना व्यर्थ है, कछु अर्थकी सिद्धि नहीं होतीहै जैसे नदीके तटपर वृक्ष होते हैं सो जलके प्रवाहकर जर्जरीभूत होजातेहैं, तैसे वृद्धावस्थामें शरीर जर्जरीभूत होजाता है, जैसे पवनसों पत्र उडजाता है, तैसे वृद्धावस्थामें शरीर नाश पाताहै. जेतेकछु रोगहै, सो सब वृद्धावस्थामें आय प्राप्त होतेहैं; अरु शरीर कृश होय जाताहै; अरु स्त्री पुत्रादिक सब वृद्धका त्याग करते हैं; जैसे पके फलको वृक्ष त्याग देताहै, तैसे वृद्धको कुटुंब त्याग देताहै, अरु देखकर हँसते हैं जैसे बावरेको देख हँसके बोलतेहैं; कि, इनकीबुद्धि सब जात रही. जैसे कमल फूलनके ऊपर बरफ पडता है, अरु कमल जर्जरीभूत होजाता है, तैसे जरा अवस्थामें पुरुष जर्जरीभाव को प्राप्त होताहै, अरु शरीर कुबरा होजाताहै; केश श्वेत होजातेहैं; शक्ति क्षीण होजातीहै. जैसे चिरकालका बडा वृक्ष होताहै, तिसमें घुन होताहै; तैसे शक्ति कछु रहती नहीं.

हेमुनीश्वर ! औरहू सब कृति क्षीण होजातीहै, परंतु एक आशक्ति मात्र रहतीहै जैसे बडे वृक्षपै वल्कल आय रहतेहैं; तैसे इसमें क्रोध शक्ति आय रहतीहै और शक्ति सब क्षीण होजाती हैं हे मुनीश्वर ! जरा अवस्था दुःखका घर है जब जरा अवस्था आतीहै, तब सब दुःख इकट्ठे होतेहैं

तिनकर महादीन होजातेहैं अरु युवाअवस्थाका जो कामका वल रहताहै, सो जरामें क्षीण होजाताहै, अरु इंद्रियकी आशक्ति घट जातीहै, तिनते चपलताका अभाव होजाता है जैसे पिताके निर्धन हुए पुत्र दीन होजाताहै, तैसे शरीर निर्वल हुए इंद्रियाहू निर्वल हो जातीहैं, और एक तृष्णा उन्मत्त हो वढ जाती है

हे मुनीश्वर ! जव जरारूपी रात्रि आतीहै, तव खांसी रूपी गिदडी आय शब्द करती है, अरु आधिव्याधि रूपी उलूक आय निवास करते है हे मुनीश्वर । ऐसी जो नीच वृद्धावस्था है तिसकी मुझको इच्छा नहीं यह देह जरा आयेते कूवरी होय जातीहै, जैसे फलपकनेसो वृक्ष झुक जाताहै, तैसे जराके आयेते देह कुवरी होजातीहै जो युवावस्थामें स्त्री पुत्रादिक चाहते थे, अरु टहल करते थे, सो सव उसको त्याग देते हैं. जैसे वृद्ध वेलको वेलवारा त्याग देताहै, तैसे इसको वंधु त्याग देते है, और देखके हँसते हैं, अरु अपमान करते हैं. तिनको ऊटकी नाई भासता है हे मुनीश्वर ऐसी जो नीच अवस्था है तिसकी मुझको इच्छा नहीं. अव जो कछु कर्तव्य मुझको कहो सो मैं करों

इस शरीरकी तीनों अवस्थामें कोऊ सुखदाई नहीं है, क्योंकि वाला वस्था महामूढ है अह युवावस्था महा विकारवान है, अरु जराअवस्था महादुःखका पात्रहै वालावस्थाको युवावस्था गृहण कर लेतीहै अरु युवा-वस्थाको जरा अवस्था गृहण कर लेती है अरु जरावस्थाको मृत्यु गृह्णण कर लेता है यह अवस्था सव अल्प कालकी हैं, इनके आश्रय करके मेरेको कहां सुख होना है, ताते मुझको सोई उपाय कहो, जिसकर इस दुःखसे मुक्त होजाऊं

हे मुनीश्वर ! जव जरा अवस्था आतीहै तव मरना भी निकट आता है जैसे सध्याके आये रात्रि तत्काल आय जाती है, और जो संध्याके आये दिनकी इच्छा करतेहै सो महामूर्ख हैं, तैसे जराके आये जीवनेकी आशा रखनी सो महामूर्खताहै हे मुनीश्वर ! जैसे विल्ली चितोनी करती है, जो चूहा आवे तो पकर लेउँ तैसे मृत्यु चितवत है कि, जरा अवस्था आवे तो मे इसका गृहण कर लेऊ अरु जरा अवस्था मानो कालकी

सखी है रोगरूपी मशालकर शरीररूपी मांसको सुखाती है, तब काल जो इसका स्वामी है, सो आयकर भोजन कर लेता है अरु शरीररूपी घर है, तिसका स्वामी काल है जब काल घरमें आवे, तब तिसके आगे तीन पटरानी आती है, पहिली अशक्तता, दूसरी अंगमें पीडा, तीसरी खांसी, सो शीघ्र श्वासको चलावतीहै, अरु श्वेत केश होतेहैं, सो चमरकी नाईं झुलते हैं ऐसी जो कालकी सहेली है सो प्रथमही आइ प्रवेश करती है, अरु जरा रूपी कलँगी शरीरको बनावती है, तब जो वाका स्वामी काल है, सो आय प्रवेश करता है.

हे मुनीश्वर! जो परमनीच अवस्था है, सो जराहीहै, सो जब आतीहै तब शरीर जर्जरीभूत कर देती है, कँपनेको लगती है, अरु शरीरको निर्बल कर देतीहै अरु क्रूर कर देतीहै जैसे कमलपर बरफकी वर्षा होवे अरु जर्जरी भूत होय जाय तैसे शरीरको जर्जरीभूत कर डारती है. जैसे वनमें वाघिन आयके शब्द करतीहै अरु मृगका नाश करतीहै, तैसे खासी रूपी वाघिन आय मृगरूपी बलका नाश करतीहै

हे मुनीश्वर! जब जरा आती है तब मृत्यु प्रसन्न होता है जैसे चंद्रमाके उदयते कमलनी खिल जाती है, तैसे मृत्यु प्रसन्न होताहै, अरु यह जरा अवस्था बडी दुष्टहै, बडे बडेयोद्धेहुएहैं तिनकोभी दीन करदिये है;यद्यपि बडे शूरमा ने संग्राममें शत्रुको जीते हैं, सो उनकोहू जराने जीतलिये है, अरु बडे पर्वतके चूर्ण करडारे हैं ताको हू जरा पिशाचनीने महादीन कर दिये हैं यह जरारूपी जो राक्षसी है, तिसने सबको दीन कर दिये हैं, सो सबको जीतनेवारी है

हे मुनीश्वर! यह जरा शरीरको अग्निकी नाईं लगती है. जैसे अग्नि वृक्षमें लगतीहै, तब धूम निकसता है, तैसे शरीररूपी वृक्षमें जरारूपी अग्नि लगके तृष्णारूपी धुँवा निकसता है. जैसे डब्बेमें बडे रत्न रहते हैं. तैसे जरारूपी डब्बेमें दुःखरूपी अनेक रत्न रहते हैं. अरु जरारूपी बसंतऋतु है, तिस करके शरीररूपी वृक्ष दुःखरूपी रस करके पूर्ण होता है. जैसे हस्ती साँकरसों बँधा हुआ दीन होजाताहै, तैसे जरारूपीसाँकर करके बँधा पुरुष दीन होजाता है, अरु अंग सब शिथिल हो जाता है,

वल क्षीण होजाता है, अरु इंद्रियांभी निर्वल हो जाती हैं, अरु शरीर जर्जरी भावको प्राप्त होता है,परंतु तृष्णा नहीं घटती है, नित्य वढ़ती चली जातीहै जैसे रात्रि आती है तव सूर्य वशी कमल सव मुंद जाते है, तव पिशाचनी आय विचरने लगती है अरु प्रसन्न होती है, तैसे जरारूपी रात्रिके आयेते सव शक्तिरूपीकमल मूंद जाते है अरु तृष्णा-रूपी पिशाचनी प्रसन्न होती है

हे मुनीश्वर! जैसे गंगा तटपर वृक्ष रहते है, सो गगाजलके वेगसों जर्जरीभूत होजाते हैं, तैसे जो आयुरूपी प्रवाह चलता है, तिसके वेगकर शरीर जर्जरीभूत हो जाता है जैसे मांसके टुकडेको देख आकाशसे उडती चील्ह नीचे आय ले जाती है, तैसे जरा अवस्थामे शरीररूपी मांसको काल ले जाता है हे मुनीश्वर! यह तो कालका ग्रास वना हुआ है जैसे सुदर वृक्षको हस्ती खाय जाता है तैसे जरा अवस्था वाले शरीर को, काल देखके भोजन कर जाता है

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्य प्रकरणे जरा अवस्था निरूपण नाम सप्तदश· सर्ग ॥ १७॥

अष्टादशः सर्गः १८.



अथ कालवृत्तांतवर्णनम्

रामउवाच, हे मुनीश्वर! ससाररूपी गर्त है, तिसमें अज्ञानी गिराहै सो ससाररूपी गर्त अल्पहे, अरु अज्ञानी तो वडा होगयाहै सकल्प विकल्पकी अधिक्यताते वढा है अरु जो ज्ञानवान् पुरुष है सो ससारको मिथ्या जानते है, फिर ससाररूपी जालमे फँसते नहीं है अरु जो अज्ञानी पुरुष है सो ससारको सत्य जानकर संसारकी आस्थारूपी जालमें फँस-ताहै अरु ससारके भोगकी वांछा करता है सो ऐसाहै जैसे दर्पणमें प्रतिविंव देखकर वालक पकरनेकी इच्छा करताहै, तैसे अज्ञानी ससा-रको सत्य जानकर जगत्के पदार्थकी वांछा करता है यह मेरेको होवे, यह मेरेको नहीं होवे अरु यह जो सुख है सो नाशात्मक है, अभिप्राय

यह जो आवते हैं अरु जातेहैं, सो स्थिर नही रहते हैं; इनका काल ग्रहण करता है जैसे पक्के अनारको चूहा खाय जाता है, तैसे सब पदार्थनको काल खाता है.

हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ हैं, सो काल ग्रसित हैं, वडे वडे वली सुमेरु जैसे गभीर वलवारे पुरुषोंको कालने ग्रास किये हैं जैसे सर्पको नकुल भक्षण कर जाता है, तैसे वडे वलीका ग्रास काल कर जाता है अरु जगत् रूपी एक गूलरका फल है, तिसमें जो मच्छा है सो ब्रह्मादिक हैं, सो फलका जो वृक्ष है तिनका जो वन है, सो ब्रह्मरूप है, तिस ब्रह्मरूप वनमें जेते कछु वन हैं सो सब इसका आहार है, सबका भक्षण काल कर जाता है

हे मुनीश्वर! यह काल वडा वलिष्ठ है, जो कछु देखनेमें आता है, सो सब इसने ग्रास कर लिया है, तब औरकी कहा कहनी है और हमारे जो वडे ब्रह्मादिक तिनका भी काल ग्रास कर जाता है, जैसे मृगका ग्रास सिंह कर लेता है, और काल किसी करके जाना नहीं जाता छिन, घरी, प्रहर दिन, मास और वर्षादिक कर जानिये सो काल है और कालकी मूर्त्ति प्रगट नहीं है, ऐसा अप्रगट रूप है, अरु किसीकी स्थिति होने नहीं देता. अरु एक वेलि कालने पसारी है, तिसकी त्वचा रात्रि है, अरु फूल तिसका दिन है, और जीवरूपी भौंरे तिसपर आय वैठते हैं

हे मुनीश्वर! जगतरूपी गूलरका फूल है, तिसमें जीवरूपी मच्छर बहुत रहते हैं, तिस फूलका भक्षण काल कर जाता है जैसे अनारका भक्षण तोता करता है, तैसे काल भक्षण करता है अरु जगतरूपी वृक्ष है, अरु जीवरूपी तिसके पत्र हैं, तिसका कालरूपी हस्ती भक्षण कर जाता है अरु शुभ अशुभरूपी भैंसानको कालरूपी सिंह छेद छेदके खाताहै.

हे मुनीश्वर! यह काल महाक्रूरहै, सो किसीपर दया नहीं करता, सबका भोजन कर जाता है जैसे मृग सब फूलनको खाय जाता है, तिससे कोऊ रहता नहीं है, परन्तु एक कमल उसमे बचे हैं, सो कमल कैसाहै? शांति अरु मैत्री तिसके अंकुरहैं, अरु चेतनता मात्र प्रकाशहै, इस कारणते वह बचाहै, सो कालरूपी मृग इसको पहुँच नहीं सकता. इससे

प्राप्तहुवा कालभी लीन होजाता है और जेता कछु प्रपचहै, सो सब कालके मुखमेंहै. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, कुवेर, आदिकर सब मूर्त्ति काल की धरी हुईहैं, फिर तिनको भी अंतरध्यान करदेताहै हे मुनीश्वर! उत्पत्ति, स्थिति, अरु प्रलय, सब कालते होतेहैं अनेक वेर महाकल्पकाहू ग्रहण करलेताहै, अरु अनेक वेर करैगा अरु कालको भोजन कियेते तृप्ति कदाचित् नहीं होती, अरु कदाचित् होनहारीहू नही जैसे अग्नि घृतकी आहुतिसों तृप्त नहीं होता, तैसे जगत् अरु सब ब्रह्मांडका भोजन करतेहू काल तृप्त नहीं होता, अरु इसका ऐसा स्वभाव है, जो इद्रको दरिद्री कर देताहै, अरु दरिद्रीको इंद्र कर देताहै और सुमेरुको राई वनाता है, अरु राईका सुमेरु करता है, सबते वडे ऐश्वर्यवारेको नीच करडारता है, सबते नीचको ऊच करडारता है अरु बूंदका समुद्र करडारता है, अरु समुद्रका बूंद करता है ऐसी शक्ति कालमें है अरु जीवरूपी जो मच्छ हैं, तिनको शुभाशुभ कर्मरूपछुरे सों छेदत रहता है, फिर कैसा है? जो काल कूपका चक्र है, जी वरूपी टटको शुभ अशुभ कर्मरूपी रसरीसों वांधकर लिये फिरता है फिर कैसाहै? जीवरूपी वृक्षको रात्रि अरु दिनरूपी कुहारा कर छेदताहै

हे मुनीश्वर! जेता कछु जगत् विलास भासता है, सो सबका ग्रहण काल कर लेवेगा अरु जीवरूपीरत्नका काल डव्वा है, सो अपने उदरमे डारता जाता है, और खेल करताहै अरु चंद्र सूर्यरूपी गेदको कवहू अर्द्ध उछालता है, कवहू नीचे डारताहै अरु जो महापुरुष है सो उत्पत्ति प्रलयमें जो पदार्थ हैं, तिनमें स्नेह किसीके साथ नहीं करते तिसका नाश करनेको काल समर्थ नहीं जैसे मुडकी माला महादेवजी गरेमे धरते हैं, तैसे यह भी जीवकी मालागरेमें डारता है

हे मुनीश्वर! जो वडे वडे वलिष्ठ हैं, तिनका भी काल ग्रहण कर लेता है, जैसे समुद्र वडा है, तिसका वडवाग्नि पान करलेता है और जैसे पवन भोजपत्रको उडाता है, तैसा कालका वल है किसीकी सामर्थ्य नहीं, जो इसके आगे स्थित रहै

हे मुनीश्वर! शांति गुण प्राधान्य जो देवताहैं, अरु रजोगुण प्राधान्य

जो वडे राजाहैं, अरु तमोगुण प्राधान्य जो दैत्य राक्षस है, तिनमें कोऊ समर्थ नहीं, जो इसके आगे स्थित होवे जैसे टोकनीमे अन्न अरु जल धरके अग्निपर चढाय दियेते फिर उछलते है, सो अन्नके दाने कडछी कर कवहू ऊर्ध्व और कवहू नीचे जाते है, तैसे जीवरूपी अनेक दाने जगत रूपी टोकनीमें परे हुए राग द्वेष रूपी अग्निपै चढे है, अरु कर्मरूपी कडछीकर कवहूँ ऊर्ध्व जाते है, कवहूं नीचे जाते है हे मुनीश्वर ! यह काल किसीको स्थिर होने नही देता, महा कठोर है, दया किसी पर नहीं धरता इसका भय मुझको रहता है ताते सोई उपाय मुझको कहो. जिसकर मै कालते निर्भय होजाऊ

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालवृत्तात निरूपणं नाम अष्टादश. सर्ग ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९

अथ कालविलासवर्णनम्

श्रीराम उवाच हे मुनीश्वर ! यह काल वडा वलिष्ठ है. जैसे राजाके पुत्र शिकार खेलने जाते है, तव वनमें वड़े पशु पक्षी देखते हैं, फिर मारते है. तैसे यह ससाररूपी वनहै, तिसमे प्राणी मात्र पशु पक्षी है, जव कालरूपीराजपुत्र तिसमें शिकार खेलने आताहै तव सव जीव भयको पाते है, फिर तिसकोई मारता है.

हे मुनीश्वर ! यह काल महाभैरव है, सवका ग्रास कर लेता है. प्रलयमें सवका प्रलय कर डारता है अरु इसकी जो चंडिका शक्ति है, तिसका वड़ा उदर है, अरु कालिका सवका ग्रास करती है, पाछे, नृत्य करती है जैसे वनके मृगको सिंह अरु सिंहनी भोजन करते है और नृत्य करते है, तैसे जगतरूपी वनमें जीव रूपी मृगका भोजन करके काल अरु कालिका नृत्य करते हैं वहुरि इनते जगतका प्रादुर्भाव होता है नाना प्रकारके पदार्थनको रचते है पृथ्वी, वगीचे, वागी, आदि सव पदार्थ इनही ते उत्पन्न होते है, अरु सुदर जीवकी हू उत्पत्ति इनते होती है, और एक सम

यमें उनका नाशभी कर देती है सुंदर समुद्र रचके फिर वामे अग्नि लगाय देती है अरु सुंदर कमल को वनायके फिर वाके ऊपर वरफकी वरसा करती है, इत्यादि नाना पदार्थनको रचिके तिनका नाश करती है जहां वड़े स्थान वसते है तिनको उजाड कर डारती है फिर उजाड़मे वस्ती कर धरती है अरु नाशभी करती है, स्थिर रहने किसीको नही देती. जैसे वागमे वानर आयके वृक्षको ठहरने नही देता तैसे कालरूपी वानर किसी पदार्थको स्थिररहने नही देता

हे मुनीश्वर! इस प्रकारसों सव पदार्थ कालसों कर जर्जरी भूत होते हैं, तिसका मै आश्रय किस रीतिसो करों? मुझको तो नाशरूप भासता है ताते अव मुझको किसी जगतके पदार्थकी इच्छा नही

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालविलासवर्णनं नाम एकोन विंशतितम सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०.

अथ कालकालिकावर्णनम्

राम उवाच, हे मुनीश्वर! इस कालका महा पराक्रम है, इसके तेजके सन्मुख रहनेको कोई समर्थ नही क्षणमें ऊंचको नीच कर डारता है, अरु नीचको ऊच कर डारताहै, तिसका निवारण कोऊ नही कर सकता, सव इसीके भयसे परे कॉपते हैं यह महाभैरव है सव विश्वका ग्रास कर लेता है अरु इसकी चंडिकारूप शक्ति है सो वलवान् है सो नदीरूप है, तिसका उल्लंघन कोई नही कर सकता है, अरु महाकालरूप काली है, तिसका वडा भयानक आकार है, अरु कालरूप जो रुद्र है, तिसते अभिन्नरूपी कालिका है, सो सवका पान कर लेती है, पाछे भैरव अरु भैरवनी नृत्य करते है सो काल कालिका कैसी है, वडा जिसका आकाशमें शीश है, अरु जिसके पातालमें चरण है दशोंदिशा जिसकी भुजा है, सप्त समुद्र जिसके हाथमें कंकन हैं, सपूर्ण पृथ्वीरूप तिसके हाथमें पात्र है, तिसके ऊपर जीव है सो भोजन योग्य है हिमालय अरु सुमेरु पर्वत

दोनों कानमे बडे रत्न हे,चंद्रमा सूर्य जिसके लोचन हैं, अरु सब तारागण वाके मस्तकमे विंदु हैं, अरु हाथमें त्रिशूल अरु मुशल आदि शस्त्र हैं, अरु जिसके हाथमे तद्रा फांसा हे, तिसकर जीवको मारता हे ऐसी जो कालिका देवी हे, सो सब जीवका ग्रास करके महाभैरव जो रुद्र है तिसके आगे नृत्य करती हे अरु अट्ट, अट्ट ऐसा शब्द करती है, अरु जीवका भोजन करके उनकी रुडमाला गरेमें धारण करती हे, सो भैरवके आगे नृत्य करती हे अरु भैरव कैसा हे ? कि जिसके सन्मुख रहनेकी शक्ति कोईमे नही हे, अरु जहाँ उजार हे तहाँ क्षणमे वस्ती करडारते हें, अरु जहाँ वस्ती होवे तहाँ क्षणमें उजार करते हे इसीसे तिनका नाम देव कहते हैं, अरु तिसको कृतांत भी कहते हें काहेसे कि, वडे २ पदार्थ होते हे अरु तिसका नाश भी करता है, अरु स्थिर किसीको रहने नहीं देता, तिसते इसका नाम कृतांत हे, अरु नित्यरूपीहू यही हे. जो यह आदि धरा हे सोई कर्त्ता अरु कर्म रूप हे, काहेते कि, परिणाम जिसका अनित्यरूप हे, इसीते इसका कर्म नाम हे, सो कैसे नाश करता हे ? जब अभावरूपी धनुप हाथमे धरता है, तिसकर राग द्वेप रूपी वाण चलाता हे तिस वाणसे जर्जरीभूत करके नाश करता हे,अरु उत्पत्ति नाशमें उसको यत्न भी कछु करना नहीं पडता हे,इसको तो खेल जैसा हे. जैसे वालक मृत्तिकाकी सेना वनाता हे फिर उठाय कर नाशभी करदेताहे, तैसे कालको उपजावने अरु नाश करने में यत्न करना नहीं पडता हे हे मुनीश्वर ! कालरूपी धीवर हे, तिसने क्रियारूपी जाल पसाराहे, तिसविषे जीव रूपी पक्षी पडे फँसतेहे, सो फँसे हुए शांतिको नहीं प्राप्त होतेहें हे मुनीश्वर ! यह तो सब नाशरूप पदार्थ हें इनमें आश्रय किसका करना, जिसकर सुखी होवे ! स्थावर जगम जगत् तो सवकालके मुखमेंहे यह सब नाशरूप मुझको दृष्टिमें आवेहे, ताते जो निर्भयपद होय सो मुझसों कहो

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे काल कालिका वर्णन नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशतितमःसर्गः २१.

अथ कालविलासवर्णनम्

श्रीरामउवाच, हे मुनीश्वर जेते कछु पदार्थ भासते है सो सब नाशरूपहै, ताते किसकी इच्छा करो ? और कौनको आश्रय करों ? इतनी इच्छा करनी सो मूर्खता है अरु जेती कछु चेष्टा अज्ञानी करताहै सो सब दुःखके निमित्तहै अरु जीवनेमें अर्थकी सिद्धि कछु नहीं है, काहेते जो बालक अवस्था होतीहै, तब मूढता रहतीहै, विचार कछु नहीं रहता अरु जब युवा अवस्था आती है, तब मूर्खता करके विषयको सेवतेहैं, अरु मान मोहादि विकारोसे मोहेहुए जाते है, तामें भी विचार कछु नहीं होता अरु स्थिरभी नहींरहते, फिर दीनका दीन रहके विषयकी तृष्णा करताहै शांतिको नही पाताहै

हे मुनीश्वर ! आयुष्य जो है सो महाचचलहै, अरु मृत्यु निकट है, वाको अन्यथा भाव नहीं होता है हे मुनीश्वर ! जेते कछु भोगहैं सो रोगहै, अरु जिसको संपदा जानतेहैं, सो आपदाहै, अरु जिसको सत्य कहतेहै, सो असत्यरूप है, अरु जिस जिस स्त्री पुत्रादिकको मित्र जानतेहै, सो सब बंधनका करताहै अरु इंद्रिय जो हैं सो महा शत्रुरूपहै सो मृगतृष्णाके जलवतहैं अरु यह देह है सो विकार रूप है, अरु मन महाचचल है, और सदा अशांतरूप है, अरु अहंकार जो है सो महानीच है इसनेही दीनताको प्राप्त कियाहै इसकर जेते कछु पदार्थ इसको सुखदायक भासते है, सो सब दुःखके देनहारेहै तिसकर इसको कदाचित् शांति नही होती, ताते मुझको इतनी इच्छा नहीं यद्यपि देखने मात्रको सुंदर भासते है, तो भी इनमें सुख कछु नहीं, सो पदार्थ स्थिर रहनेका नहीं. जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग भासतेहै, सो सब वडवाग्निकर नाश होतेहैं तैसे यह पदार्थभी नाशको पाते हैं मैं अपनी आयु विषे कैसे आस्था करो

हे मुनीश्वर ! बडे समुद्र जो दृष्टि आते हैं अरु सुमेरु आदि बडे पदार्थ हैं सो सब नाशको पाते है, तब हम सारिखेकी कहा वार्त्ता है और बडे बडे दैत्य राक्षस हू होयके नाश पाय गये है, तो हम सारिखेकी कहा

दोनो कानमें बडे रत्न है,चंद्रमा सूर्य जिसके लोचन हैं, अरु सब तारागण वाके मस्तकमें विंदु हैं, अरु हाथमें त्रिशूल अरु मुशल आदि शस्त्र हैं, अरु जिसके हाथमे तद्रा फासा है, तिसकर जीवको मारता है ऐसी जो कालिका देवी है, सो सब जीवका ग्रास करके महाभैरव जो रुद्र है तिसके आगे नृत्य करती है अरु अट्ट, अट्ट ऐसा शब्द करती है, अरु जीवका भोजन करके उनकी रुंडमाला गरेमें धारण करती है, सो भैरवके आगे नृत्य करती है अरु भैरव कैसा है ? कि जिसके सन्मुख रहनेकी शक्ति कोईमें नही है, अरु जहाँ उजार है तहाँ क्षणमे वस्ती करडारते हैं, अरु जहाँ वस्ती होवे तहाँ क्षणमे उजार करते है इसीसे तिनका नाम देव कहते है, अरु तिसको कृतात भी कहते है काहेसे कि, बडे २ पदार्थ होते है अरु तिसका नाश भी करता है, अरु स्थिर किसीको रहने नही देता, तिसते इसका नाम कृतात है, अरु नित्यरूपीहू यही है. जो यह आदि धरा है सोई कर्त्ता अरु कर्म रूप है, काहेते कि, परिणाम जिसका अनित्यरूप है, इसीते इसका कर्म नाम है, सो कैसे नाश करता है ? जब अभावरूपी धनुप हाथमें धरता है, तिसकर राग द्वेप रूपी वाण चलाता है तिस वाणसे जर्जरीभूत करके नाश करता है,अरु उत्पत्ति नाशमें उसको यत्न भी कछु करना नही पडता है,इसको तो खेल जैसा है जैसे वालक मृत्तिकाकी सेना वनाता है फिर उठाय कर नाशभी करदेताहै, तैसे कालको उपजानने अरु नाश करने में यत्न करना नही पडता है. हे मुनीश्वर ! कालरूपी धीवर है, तिसने क्रियारूपी जाल पसाराहै, तिसविपे जीव रूपी पक्षी पडे फँसतेहै, सो फँसे हुए शांतिको नहीं प्राप्त होतेहै. हे मुनीश्वर ! यह तो सब नाशरूप पदार्थ हैं इनमें आश्रय किसका करना, जिसकर सुखी होवे ! स्थावर जंगम जगत् तो सबकालके मुखमेंहै यह सब नाशरूप मुझको दृष्टिमें आवेंहै, ताते जो निर्भयपद होय सो मुझसों कहो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे काल कालिका वर्णनं नाम विंशतितम सर्ग. ॥ २० ॥

एकविंशतितमःसर्गः २१.

अथ कालविलासवर्णनम्

श्रीरामउवाच, हे मुनीश्वर जेते कछु पदार्थ भासते है सो सव नाशरूपहैं, ताते किसकी इच्छा करों ? और कौनको आश्रय करो ? इतनी इच्छा करनी सो मूर्खता है अरु जेती कछु चेष्टा अज्ञानी करताहै सो सव दुःखके निमित्तहै अरु जीवनेमें अर्थकी सिद्धि कछु नही है, काहेते जो वालक अवस्था होतीहै, तव मूढता रहतीहै, विचार कछु नही रहता अरु जव युवा अवस्था आती है, तव मूर्खता करके विषयको सेवतेहैं, अरु मान मोहादि विकारोसे मोहेई जाते है, तामे भी विचार कछु नहीं होता अरु स्थिरभी नहीरहते, फिर दीनका दीन रहके विषयकी तृष्णा करताहै शांतिको नही पाताहै

हे मुनीश्वर ! आयुष्य जो है सो महाचचलहै, अरु मृत्यु निकट है, वाको अन्यथा भाव नही होता है हे मुनीश्वर ! जेते कछु भोगहैं सो रोगहैं, अरु जिसको संपदा जानतेहैं, सो आपदाहै, अरु जिसको सत्य कहतेहै, सो असत्यरूप है, अरु जिस जिस स्त्री पुत्रादिकको मित्र जानतेहै, सो सव वधनका करताहै अरु इंद्रिय जो हैं सो महा शत्रुरूपहै सो मृगतृष्णाके जलवतहै अरु यह देह है सो विकार रूप है, अरु मन महाचचल है, और सदा अशांतरूप है, अरु अहकार जो है सो महानीच है इसनेही दीनताको प्राप्त कियाहै इसकर जेते कछु पदार्थ इसको सुखदायक भासते है, सो सव दुःखके देनहारेहै तिसकर इसको कदाचित् शांति नही होती, ताते मुझको इतनी इच्छा नही यद्यपि देखने मात्रको सुंदर भासते है, तो भी इनमे सुख कछु नही, सो पदार्थ स्थिर रहनेका नही. जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग भासतेहै, सो सव वडवाग्निकर नाश होतेहं तैसे यह पदार्थभी नाशको पाते हैं मैं अपनी आयु विषे कैसे आस्था करों.

हे मुनीश्वर ! वडे समुद्र जो दृष्टि आते है अरु सुमेरु आदि वडे पदार्थ हैं सो सव नाशको पाते हैं, तव हम सारिखेकी कहा वार्त्ता है और वडे वडे दैत्य राक्षस हू होयके नाश पाय गये है, तो हम सारिखेकी कहा

वार्त्ता है ? अरु देवता, सिद्ध, गंधर्व, हुयेहैं सो सब नाशको पाते हैं. तिनकी नाम संज्ञाभी नहीं रहती तब हम सारिखेकी कहा वार्त्ता ! पृथ्वी, जल, अरु अग्नि जो दाहक शक्ति धरनेहारे अरु पवन जोहै सो वीर्य सहित सब नाश हो जायँगे, कछु इनकी सत्ताभी न रहेगी, तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता, अरु यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र, बडे तेजवारे हैं सो सब नाश पावेंगे तो हम सारिखेकी कहा कहानी है, और तारामंडल जो दृष्टि आते है, सो सब गिरपडेंगे-जैसे सूखे पात वृक्षते वायुसो गिरजाते है, तैसे तारे गिरतेहै तब हम सारिखेकी कहा वार्त्ता है हे मुनीश्वर ! ध्रुव, जो स्थिर भासता है सो भी अस्थिर होय जायगा, अरु चद्रमा अमृतमय मंडलका दृष्टिमें आता है और सूर्य अखंड मंडल है जिसका, ऐसा जो प्रकाश सयुक्त दृष्टि आता है, सो सब नाश हो जावहिगे, तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता है औरकीहू कहा वार्त्ता है यह जो बडे ईश्वर जगतके अधिष्ठाता है तिनका भी अभाव हो जाता है परमेष्ठी जो ब्रह्मा है, तिसका भी अभाव हो जाता है, हरि जो विष्णु सो भी हरे जायँगे, महा भैरव रूप जो इन्द्र सो भी शून्य हो जायँगे; तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता करनी ? अरु काल जो सबका भक्षण करने हाराहै सोभी टूक टूक होयके नाशको प्राप्त होवेगा अरु कालकी स्त्री जो नेती है, सोहू अनेतताको प्राप्त होवेगी, अरु सबका आधार जो आकाश है सो भी नाश होजायगा तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता ? अरु जेता कछु जगत अर्थ कर सिद्ध होताहै, सो सब नाश हो जावेगा. कोऊहू स्थिर रहनेका नहीं तब हम किसकी आस्था करें, अरु किसका आश्रय करें यह जगत मन भ्रममात्रहै अज्ञानीकी इसमें आस्था होती है और हमारी नहीं है कि, जगत् भ्रम कैसे उत्पन्न भयाहै, अरु मै इतना जानता हो कि, ससारमें जितने दु खी होते है, सो अहंकारने किये है

हे मुनीश्वर हमका जो परमशत्रु अहंकार है, इस करके भटकता फिरता है जैसे जेवरीमें बाँधा हुआ पतंग कबहू ऊर्ध्व कबहू नीचे जाता है स्थिर कबहूँ नहीं रहता. तैसे जीवहू अहंकार करके कबहू ऊर्ध्व कबहू अधो जाता है. स्थिर कबहू नहीं होता जैसे अश्वते आरूढ रथ तिनके

ऊपर बैठके सूर्य आकाश मार्गमें भ्रमता है तैसे यह जीव भ्रमता है स्थिर कदाचित् नहीं होता हे मुनीश्वर, यह जीव परमार्थ सत्य स्वरूपते भूलाहुआ भटकता है अरु अज्ञान करके ससारमे आस्था करता है अरु भोगहूको सुखरूप जानकर तिसमें तृष्णा करता है और जिसको सुखरूप जानता है सो रोग समान है और विपकर पूर्ण सर्प जैसे है सो जीवका नाश करनहारे हैं और जिसको सत्य जानता है, सो असत्य है सब कालके मुखमें ग्रसे हुए है

हे मुनीश्वर! विचार विना अपना नाश आपही करता है, काहेते कि, इसका कल्याण करनेहारा बोध है जो सत्य विचार बोधके शरण जाय तो कल्याण होवे और जेते पदार्थ है, सो स्थिर कोई नहीं, इनको सत्य जानना दुःखके निमित्त है हे मुनीश्वर! जब तृष्णा आती है, तब आनंद अरु धैर्यको नाश करदेती है; जैसे वायु मेघका नाश कर डारता है, तैसे तृष्णा नाश कर डारती है ताते मुझको सोई उपाय कहो, जिसकर जगत्का भ्रम मिट जावे, अरु अविनाशीपदकी प्राप्ति होवै. इस भ्रमरूप जगत्की आस्था मैंनहीं देखता; ताते इच्छा चाहे तैसी करो, परंतु सुख दु ख इसीको होने हैं सो होइँगे, मिटनेके नहीं भावे पहाड़की कदरामे बैठो, भावे कोटमें बैठो, परतु जो होनेका सो मिथ्या नहीं होवै है, इस निमित्त यत्न करना मूर्खता है

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालविलास वर्णन नाम एकविंशतितम सर्ग. ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितम सर्गः २२.

अथ सर्व पदार्थाभाव वर्णनम्

रामउवाच, हे मुनीश्वर! यह जो नानाप्रकार के सुदर पदार्थ भासते है सो सब नाशरूप है इनकी आस्था मूर्ख करते हैं, यह तो मनकी कल्पना करके रचे हुए हैं तिनमें किसकी आस्था करों?

हे मुनीश्वर! अज्ञानी जीवका जीवना व्यर्थ है, काहेते जो जीवनेते

उसका अर्थ सिद्धि कछु नहीं होता जब कुमार अवस्था होती है, तब मूढ बुद्धि होती है, तिसमें विचार कछु नहीं होता जब युवावस्था आती तब काम क्रोधादिक विकार उत्पन्न होते हैं तिसकर सदा ढांपे रहते हैं जैसे जालमें पक्षी बँध जाता है, अरु आकाश मार्गको देख नहीं सकता है, तैसे काम क्रोधादिक करि ढपा हुआ विचार मार्गको देख नहीं सकता जब वृद्धावस्था आती है, तब शरीर जर्जरीभूत होजाता है, अरु महादीन होता है. बहुरि शरीरका भी त्याग देता है जैसे कमलके ऊपर बरफ पडता है तब तिसका भौंरा त्याग करता है, तैसे जब शरीर रूपी कमलको जराका स्पर्श होता है, तब जीव रूपी भौंरा त्याग कर देता है.

हे मुनीश्वर! यह शरीर तबलग सुंदर है, जबलग वृद्धावस्था प्राप्त नहीं होती-जैसे चंद्रमाका प्रकाश राहुदैत्यने आवरण नहीं किया तबलग रहता है, जब राहु दैत्य आवरण करता है, तब प्रकाश नहीं रहता है तैसे जरा अवस्थाके आये युवा अवस्थाकी सुंदरता जाती रहती है, हे मुनीश्वर! जराके आयेते शरीर कृश होजाता है, अरु तृष्णा बढ जाती है, जैसे वर्षाकालमें नदी बढ जाती है, तैसे जरा अवस्थामें तृष्णा बढ जाती है, अरु जो पदार्थकी तृष्णा करता है, सो पदार्थ भी दु:खरूप है, तृष्णा करके आपही दु:ख पाता है

हे मुनीश्वर तृष्णारूपी समुद्र है तिसमें चित्तरूपी बेडा परा है; राग द्वेषरूपी मच्छ कबहूँ ऊर्ध्व जाते हैं, कबहूँ नीचे आते हैं. स्थिर कदाचित् नहीं रहते हे मुनीश्वर! कामरूपी वृक्ष है, सो वृक्षमें तृष्णारूपी लता लगती है तिसमें विषयरूपी फल हैं; जब जीवरूपी भौंरा तिसके ऊपर बैठता है, तब विषयरूपी बेलिसों मृतक हो जाता है हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी एक बडी नदी है, तिसमें राग द्वेषादिक बडे मच्छ रहते हैं; तिस नदीमें परे हुए जीव दु:ख पाते हैं, अरु जो संसारकी इच्छा करता है सो नाशरूप है

हे मुनीश्वर! उन्मत्त हस्ती अरु तुरंगके समूह ऐसा जो रणरूपी समुद्र है तिसको तर जाते हैं; तिसको भी मैं शूर नहीं मानता परंतु जो इंद्रियरूपी समुद्र, तिसमें मनोवृत्तिरूपी तरंग उठते हैं, ऐसे समुद्रको जो

तरजाता है, तिसको शूर मानता हों जिसके परिणाममे दुःख होवे, तैसी क्रिया अज्ञानी जीव आरंभ करते हैं, और जिसके परिणाममें सुख है, तिसका आरंभ नहीं करताहै और कामके अर्थकी धारना करता है, ऐसे आरभ कियेते शरीरकी शांति और सुखकी प्राप्ति नहीं होती ऐसेई कामना करके सदा जलते रहते है, अनात्म पदार्थकी तृष्णा करते है, सो शांतिको कैसे प्राप्त होवें।

हे मुनीश्वर! यह तृष्णारूपी नदी है, तिसमे वडा प्रवाहहै, तिसके किनारे वैराग्य अरु संतोप दोनो वृक्ष खडे है, सो तृष्णा नदीके प्रवाहते उन दोनोंका नाश होता है हे मुनीश्वर तृष्णा वडी चचल है, किसीको स्थिर होने नहीं देती अरु मोहरूपी एक वृक्ष है, तिसके चहूँफेर स्त्रीरूपी वेलि है, सो विपकरके पूर्ण है, तिसपर चित्तरूपी भौंरा आय वैठता है तव स्पर्शमात्रते नाश पाता है जैसे मोरका पुच्छ हिलता रहताहे तैसे अज्ञानीका चित्त चचल चलता है, सो मनुष्य पशु समान है, जैसे पशु दिनको जगलमे जाय आहार करते चलते फिरते हैं, अरु रात्रिको आय घरमें खूँटासों वधन पाते है तैसे मूर्ख मनुष्यहू दिनको घर छोडके व्यवहारमे फिरते है अरु रात्रिको आय अपने घरमे स्थिर होते है ताते परमार्थकी सिद्धि कछु नही होती जीवना वृथा गवाँते है

वालक अवस्थामें शून्य रहतेहै, अरु युवा अवस्थामे काम करि उन्मत्त होते हैं सो काम करके चित्तरूपी उन्मत्त हस्ती स्त्रीरूपी कदराम जाय स्थित होतेहै, सोभी क्षणभंगुरहे वहुरि वृद्धावस्था होतीहै, तिसकर शरीर कृश होजाताहै, जैसे वर्फते कमल जर्जरीभावको प्राप्त होताहे, तैसे जरा करके शरीर जर्जरी भावको प्राप्त होता है, अरु सव अंग क्षीण होजाता है, अरु एक तृष्णावढजाती है.

हे मुनीश्वर! यह पुरुप महापशु है, सो आकाशके फूल लेनेकी इच्छा करताहै,जैसे वडे पर्वतपर चढकर आकाशका फूल लेनेकी इच्छा करताहै, सो फिर वडी कदरा अरु वृक्षमें गिर पडताहै, तैसे यह जीव मनुप्यरूपी पर्वतपर आय रहाहै, अरु आकाशके फूलरूपी, जगत्के पदार्थकी इच्छा करताहै, सो नीचेको गिर पडनेको है सो राग द्वेपरूपी कटक वृक्षमें जाय

पडेगा हे मुनीश्वर । जेते कछु जगतके पदार्थ हैं सो सब आकाशके फूलकी नाई नाशवान्‌है इनमें आस्था करनी सो मूर्खता है, यह तो शब्दमात्र जैसाहै, तिसते अर्थ सिद्धि कछु नहीं होती अरु-

जो ज्ञानवान् पुरुषहै, तिनको विषय भोगकी इच्छा नहीं रहती, काहेते जो आत्माके प्रकाशकर इनको मिथ्या जानतेहैं हे मुनीश्वर । ऐसे ज्ञानवान् पुरुष सो दुर्विज्ञेय हैं हमको तो स्वप्नमेभी नहीं भासतेहैं. और यह विरक्तात्मा दुर्लभहै; जिनको भोगकी इच्छा नहीं है, सर्वदा ब्रह्मकी स्थितिकर भासते हैं, ऐसे पुरुष को संसारकी इच्छा कछु नहीं रहती काहेते जो यह पदार्थ सब नाशरूपहैं हे मुनीश्वर । पर्वतको जिस ओर देखिये तहां पत्थर कर पूर्ण दृष्टि आताहै, अरु पृथ्वी पूर्ण मृत्तिका करि दृष्टि आती है, अरु वृक्ष काष्ठकरि पूर्ण दृष्टि आता है, समुद्र जलकर पूर्ण दृष्टि आताहै तैसे शरीर अस्थि, मासकर पूर्ण भासताहै ये सबपदार्थ पांचतत्त्वकरिपूर्ण है और नाशरूपहै ऐसा रूप ज्ञानी जानके किसीकी इच्छा नहीं करता

हे मुनीश्वर । यह जगत् सब नाशरूपहै, देखते देखते नाशको पाताहै तिसमें मैं किसका आश्रय करके सुख पाऊँ जब युगकी सहस्र चौकरी होती है, तब ब्रह्माका एक दिन होताहै, तिस दिनके क्षय हुएते सब जगत्‌का प्रलय होताहै; बहुरि ब्रह्माहू कालकर नाश होजाताहै; अरु ब्रह्माहू जितने होगयेहैं । तिनकी संख्या नहीं होती असंख्य ब्रह्मा नाश होगये हैं तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता करनी है ? हम किसी भोगकी वासना नहीं करते, क्यों कि सब चलरूप है, कछु स्थिर रहनेका नहीं. सब नाशरूप हैं इनकी आस्था मूर्ख करते हैं तिसके साथ हमको कछु प्रयोजन नहीं जैसे मृग मरुस्थलको देख जल पान करनेको दौडता है अरु शांतिको नहीं पाता, तैसे मूर्ख जीव जगतके पदार्थको सत्य मानकर तृष्णा करते हैं, परन्तु शांतिको नहीं पाते, काहेते कि, सब असाररूप है. अरु-

जो स्त्री, पुत्र, कलत्र भासते हैं, सो जबलग शरीर नष्ट नहीं हुआ तबलग भासते हैं, जब शरीर नष्ट हो जायगा तब जानियेमेंभी न आवेंगे कि, कहां गये अरु कहांते आयेथे ? जैसे तेल अरु वर्त्तीकर दीपक

प्रकाशता है तव वडा प्रकाशवान् दृष्ट आता है, पाछे जव वुझजाता है, तव जाना नहीं जाता कि कहाँ गया, तैसे वत्तीरूप वांधव हैं और तिसविषे स्नेहरूपी तेलहै, तिसकर जो शरीर भासता है सो प्रकाश है जव शरीररूपी दीपकका प्रकाश वुझ जाता है तव जाना नही जाता कि कहां गया हे मुनीश्वर! यह वधुका मिलाप है सो जैसे तीर्थ यात्राका संग चलाजाता होवे सो सव एक क्षणमे वृक्षकी छाया नीचे वैठते है फिर न्यारे न्यारे होय जाते हैं, तैसा वाधवका मिलाप है जैसे उस यात्रामे स्नेह करना मूर्खता है. तेसे इनमेभी स्नेह करना मूर्खता है

हे मुनीश्वर! अहंममताकी जेवरीके साथ वांधे हुए घटीयत्रकी नाईं सव भ्रमते फिरते है तिनको शांति कदाचित् नहीं होती यह देखने मात्रको चेतन दृष्ट आवता है, परतु पशु अरु वदर इनते श्रेष्ठ हैं. जिनकी संमति देह इद्रियनके साथ वाधी हुई है अरु आगमा पाई है इसमे आस्था रखनी सो महामूर्खता है, उनको आत्मपदकी प्राप्ति होनी कठिन है जैसे पवनकर वृक्षके पात टूटके उड जाते है, फिर उनको वृक्षके साथ लगना कठिन है, तैसे जो देहादिक साथ वाधे हुए है, तिसको आत्मपद पाना कठिन है

हे मुनीश्वर! जव आत्मपदते विमुख होता है तव जगत्के भ्रमको देखता है, अरु जव आत्मपदकी ओर आता है, तव संसार इसको वडा विरस लगता है और ऐसा पदार्थ जगत्में कोई नही कि, स्थिर रहैगा जो कछु पदार्थ है सो नाशको प्राप्त होते हैं, ताते मै किसकी आस्था करों? और किसका आश्रय करों? सव नाशवत भासते है, वह पदार्थ मुझको कहो, जिसका नाश न होवे

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सर्वपदार्थाभाव वर्णनं नाम द्वाविंशतितम सर्ग ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्ग· २३.

अथ जगद्विपर्ययवर्णनम्

श्रीरामउवाच, हे मुनीश्वर! जेता कछु स्थावर जगम जगत् दीखता है, सो सव नाशरूप है, कछु भी स्थिर रहनेका नही जो खाई थी सो

हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ हैं, सो सब नाशरूप हैं; जैसे बिजुरीका चमत्कार होय छिप जाता है, अरु अंजलीमें जल नहीं ठहरता, तैसे विषय भोग अरु आयुष्य नाश हो जाते हैं, ठहरते नहीं. जैसे कंढीकर मच्छी दुःख पावती है, तैसे भोगकी तृष्णा कर जीव दुःख पावते हैं,ताते मुझको किसी पदार्थकी इच्छा नहीं जैसे किसीने मरीचिकाके जलको सत्य जान जलपानकी इच्छा करी और दौंन्या सो जल पावत नहीं ताते मैं किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता

इति श्री योगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सर्वांतप्रतिपादनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशतितमः सर्गः २५.

अथ वैराग्यप्रयोजनवर्णनम्

श्रीरामउवाच, हे मुनीश्वर! संसाररूपी गढेलेमें अरु मोहरूपी कीचमें मूर्खका मन गिर जाता है, तिसकर परा दुःख पाता है, शांतवान कबहू नहीं होता जब जरा अवस्था आती है, तब सर्व,शरीर जर्जरीभूत होकर कांपने लगते हैं; जैसे पुरातन वृक्षके पत्र पवनकर हिलते हैं, तैसे जरा अवस्था कर अंग हिलते हैं, अरु तृष्णाकी वृद्धि हो जातीहै; जैसे नीमका वृक्ष ज्यों २ वृद्ध होता है त्यों त्यों कटुता बढती है, तैसे तृष्णा बढती है हे मुनीश्वर! जिस पुरुषने देह, इंद्रियादिकनका आश्रय अपने सुख निमित्त लिया है, सो मूर्ख संसार रूपी अंधकूपमें गिरता है, निकस नहीं सकता; अरु अज्ञानीका चित्त भोगका त्याग कदाचित् नहीं करता है. हे मुनीश्वर! जगतके पदार्थमें मेरी बुद्धि मलीन होगई है जैसे वर्षाकालमें नदी मलीन होती है अथवा जैसे मार्गशीर्ष मासमें मंजरी सूखि जाती हैं, तैसे जगत् की शोभा देखत देखत विरस होजाती है जैसे जगतका पदार्थ मूर्खको रमणीय भासता है;जैसे पानीका गढेला तृणकरि आच्छादित होता है, अरु मृगके बालक तिस तृणको रमणीय जानकर खाने जाते हैं, फिर गिर जाते हैं; तैसे यह मूर्ख भोगको रमणीय जानि भुगनके

गिर परे है फिर महादुःख पाते हैं जैसे मृग मृगतृष्णाकर उडता है, सो सुखी नहीं होता, तैसे यह मृगतृष्णारूप ससारके पदार्थनके ऊपर मनरूपी मृग उडनहारा कैसे सुखी होवे

हे मुनीश्वर ! जगत्के पदार्थनसों मेरी बुद्धि चचल हो गई है, ताते सोई उपाय कहो, जिसकर पर्वतकी नाईं मेरी बुद्धि निश्चल होवे सो पद कैसा है ? कि, परमानंदके यत्नमें रहते है, अरु निर्भय, निराकार पद जिसके पायेते संसार कछु भी नही रहता है, वहुरिं पावना कछु नहीं रहता है, तैसे संपूर्ण जगतकी नानाप्रकारकी रचना सब दब जाती है; तिस पद पानेका उपाय मुझको कहो हे मुनीश्वर ! ऐसे पदते मेरी बुद्धि शून्य है, ताते मै शांतिमान नहीं होता यह संसार अरु ससारके कर्म मोहरूप हैं, इसमें पडे हुए शांतिको प्राप्त नही होते अरु—

जनकादिक संसारमे रहे हुए कमलकी नाईं निर्लेप रहते हैं, तैसे शाति मान संसारमें निर्लेप रहतेहै सो जैसे कोऊ कीचसों पूर्ण होय,अरु कहै कि, मुझको कीचका परश नहीं हुआ, तैसे राजाके विक्षेपरूपी कीचमें परे हुए शातिमान कैसे निर्लेप रहे हैं, तिसकी समुझ कहा है, सो कृपा कर कहो. अरु तुम जैसे जो संतजन है सो विषयको भुगतते दृष्टि आवते है अरु जगत्की चेष्टा सब करते हैं, सो निर्लेप कैसे रहते है, सो युक्ति कहो जेसे तुम जल कमलवत् रहते हो सो कहो यह बुद्धि तो मोह करि मोही ज़ाती है जैसे तालमें हस्ती प्रवेश करता है और पानी मलीन हो जाता है, तैसे मोह करि बुद्धि मलिन होय जाती है, ताते सोई उपाय कहो, जिसकर बुद्धि निर्मल होवे यह सतोपमें बुद्धि स्थिर कवहूँ नहीं रहती जैसे मूलसों कुहारे कर काटा वृक्ष स्थिर नही होता,तैसे वासनासों कटी बुद्धि स्थिर नही रहती. हे मुनीश्वर ! संसाररूपी विषूचिका मुझको लगी है, ताते सोई उपाय कहो, जिसकर दृश्यका नाश होवे, इसने मुझको वडा दुःख दिया है. अरु आत्मज्ञान कब प्रकाश होय, जिसके उदय हुए मोहरूपी अधकारका नाश होवे हे मुनीश्वर ! जैसे बादरसों चन्द्रमा आच्छादित होय जाता है, तैसे बुद्धिकी मलीनता कर मै आच्छादित हुआ हूँ, ताते सोई उपाय कहो जिसकर आवरण दूर होवे अरु, जो

आत्मानद सो नित्य है, जिसके पायेते बहुरि पावना कछु नहीं रहता, इसते सपूर्ण दुःख नष्ट हो जाते हैं. अरु अंतर शीतल हो जाताहै, ऐसा जो पदहै,तिसकी प्राप्तिका उपाय मुझसे कहो हे मुनीश्वर ! आत्मज्ञानरूपी चंद्रमाकी मुझको इच्छा है, जिसके प्रकाशकर बुद्धिरूपी कमलनी खिल आती है, अरु जिसकी अमृतरूपी किरनकर तृप्त वृत्ति होती है सो कहो. हे मुनीश्वर ! अव मुझको गृहमें रहनेकी इच्छा नहीं,अरु वन विषे जानेकी भी इच्छा नहीं, मुझको तो इसी पदकी इच्छा है, जिसके पाये ते भीतर शांति हो जाय

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे वैराग्यप्रयोजनवर्णन नाम पचविंशतितमः सर्ग ॥ ५ ॥

षड्विंशतितमः सर्ग. २६.

अथ अनन्यत्यागवर्णनम्.

श्रीरामउवाच, हे मुनीश्वर ! जो जीवनेकी आस्था करते हैं, सो मूर्ख हैं, जैसे पत्रपर जलकी बूंद ठहरती नहीं तैसे आयुष्यहू क्षणभंगुर है. जैसे वर्षाकालमें दर्दुर बोलते हैं तब उनका कंठ चंचल सदा फरकता रहता है, तैसे आयुर्दा छिन छिनमें चचल हो जाती है जैसे शिवजीके कपालमें चद्रमाकी रेखा कछुसी है, तैसा यह शरीर है हे मुनीश्वर ! जिसको इसमें आस्था है, सो महामूर्ख है, यह तो कालका ग्रास है जैसे बिल्ली चूहेको पकर लेती है, तैसे सबको काल पकर लेता है जैसे बिल्ली चूहेको संभाल करने नहीं देती, तैसे सबको काल अचानक ग्रहण कर लेता है, अरु किसीको भासता नहीं

हे मुनीश्वर ! जब अज्ञानरूपी मेघ आय गर्जता है, तब लोभरूपी मोर प्रसन्न होयके नृत्य करता है जब अज्ञानरूपी मेघ वर्षा करता है, तब दुःखरूपी मंजरी बढ़ने लगती है, अरु लोभरूपी बिजुरी छिनछिनमें होय होय नष्ट हो जाती है, अरु तृष्णारूपी जालमें फँसे हुए जीवरूपी पक्षी परे दुःख पातेहैं, शांतिकी प्राप्ति नहीं होती.

हे मुनीश्वर ! यह जगतरूपी वडा रोग लगा है तिसके निवारण करने का कौनसा पदार्थहै, जो पाने योग्यहै जिसकर भ्रमरूपी रोग निवृत्त होवे, सोई उपाय कहो यह जगत् मूर्खको रमणीय दीखताहै, ऐसे पदार्थ पृथ्वी-पर, अरु आकाशमें, अरु देवलोकमें, अरु पातालमें कोऊ नही जो ज्ञानवान्को रमणीय दीखें ज्ञान वान्को सव भ्रमरूप भासते है, अरु अज्ञानी जगत्में आस्था करता है हे मुनीश्वर ! चन्द्रमामें जो कलंक है, तिसकर शोभा सुंदर नहीं लगती, जव कलक दूर होय जाय, तव सुंदर लगे, तैसे मेरे चित्तरूपी चद्रमामें कामरूपी कलंक लगा है, तिसकर उज्ज्वल नहीं भासता ताते सोई उपाय कहो,जिसकर कलक दूर होजाय

हे मुनीश्वर ! यह चित्त वहुत चंचलहै, स्थिर कदाचित् नहीं होता. जैसे अग्निमे डारदियापारा उडजाता है तैसे चित्तभी स्थिर नही होता, विषयकी तरफ सदा धावता है, ताते सोई उपाय कहो, जिसकर चित्त, स्थिर होवे. और संसाररूपी वनमें भोगरूपी सर्प रहतेहै, सो जीवका दंश करतेहै, तिनसें वचनेका उपाय कहो, अरु जेती कछु क्रियाहै, सो राग द्वेषके साथ मिली हुई है, ताते सोई उपाय कहो जिसकर राग द्वेपका प्रवेश न होय, तैसे यह संसारमें परेहे तिसको तृष्णा रूपी जलका परश न होय, ऐसा उपाय कहो, जिसकर इसको राग द्वेपका परश न होय, अरु मनमें जो मनन रूपी सत्ताहै, सो युक्तिसों दूर होती है अन्यथा दूर नहीं होती सो निवृत्तिके अर्थ आप मेरेको युक्ति कहो, और आगे जिसको जिस प्रकार निवृत्ति हुई है, सो कहो अरु जिसप्रकार तुम्हारे अतरमें शीतलता हुई है,सो कहो हे मुनीश्वर ! जैसे तुम जानते हो सो कहो अरु जो तुम्हारे विद्यमान वह युक्ति नही पाई, तव मैं तो कछु नहीं जानता तो मैं सव त्यागकर निर अहंकार होय रहोंगा जवलग वह युक्ति मुझको न प्राप्त होवेगी तवलग मै भोजन नहीं करूँगा, अरु जलपान-भी नहीं करूँगा अरु स्नानादिक क्रियाभी नहीं करूँगा. संपदाका कार्य भी नहीं करूँगा, और आपदाका कार्यभी नहीं करूँगा निर अहंकार होऊँगा. और ये न मेरी देहहै, और न मैं देहही सव त्याग करके वैठि रहोंगा जैसे कागजके ऊपर मूर्ति चित्रित होतीहै, तैसे होय

रहोंगा श्वास आते जाते आपही क्षीण होय जायँगे जैसे तेल विना दीपक बुझता है, तैसे अर्थ विन देह होय जायगा तब महाशांतिको प्राप्त होऊंगा.

वाल्मीकि उवाच, हे भारद्वाज! ऐसे कहि करि रामजी चुप होय रहे. जैसे वडे मेघको देखके मोर शब्द करके चुप होजाता है

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अनन्य त्याग दर्शनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥२६॥

सप्तविंशतितमः सर्गः २७.

अथ देवसमाजवर्णनम्

वाल्मीकि उवाच, हे पुत्र! जब इस प्रकार रघुवंशरूपी आकाशके रामचन्द्ररूपी चन्द्रमा बोले, तब सबही मौन होगये, अरु सबके रोम खडे होआये, मानो रोमहू खडे होकर रामजीके वचन सुनतेहैं, अरु जेते कछु सभामें बैठेथे, सो सब निर्वासनारूपी अमृतके समुद्रमें मग्न होगये. वशिष्ठ, वाम देव, विश्वामित्र, आदि जो मुनीश्वरथे और जेते दृष्टि आदिक जो मन्त्रीथे, और राजा दशरथ अरु जेते मंडलेश्वरथे, और जेते नौकर चाकर थे और माता कौशल्या आदिक सब मौन होगये अर्थ यह तो अचल होगये अरु पिंजरेमें पक्षी जोथे सोभी मौनहोगये अरु बगीचेमें पशु आदिथे; सोभी मौन होगये अरु चारा तृण खात रहिगये अरु जो पक्षी आलयमें बैठे थे; सोभी सुनकर मौन होगये, अरु आकाशके पक्षी जो निकट थे, सोभी स्थिर होगये; अरु आकाशमें देव, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, किन्नरथे; सोभी आय सुनने लगे, अरु फूलोंकी वर्षा करने लगे, सब धन्य धन्य शब्द करनेलगे और फूलोंकी वर्षामई सो मानो- बर्फकी वर्षा होती है; अरु क्षीरसमुद्रके तरंग उछलते आवते होयँ. अरु मोतीकी मालाकी वृष्टि आवत होय; और जैसे माखनके पिंड वहते होयँ. इस प्रकार आधी घडी पर्यंत फूलनकी वर्षा भई, अरु बडी सुगंध आय पसरी; अरु फूलोंपर भौंरे फिरनेलगे और बडा विलास तिस कालमें होता अरु नमोनमः शब्द करने लगे

देवउवाच, हे कमलनयन रघुवंशी आकाशमे चंद्रमारूप आप रामजी! तुम धन्य हो! तुमने वडे श्रेष्ठ स्थान देखे हैं, अरु वहुत प्रकारके वचन सुनेहै, याते जैसे आप वचन कहे हैं ऐसे वचन कवहूं नही सुने, इस वचन सुनके हमारा जो देवताका अभिमान था सो सव निवृत्तिभया है. अमृतरूपी वचन सुनकर हमारी वुद्धि पूर्ण होगई है हे रामजी! जैसे वचन तुमने कहे हैं, ऐसे वचन बृहस्पतिहू कहनेको समर्थ नहीं, तुम्हारे वचन परमानंदके करनहारे हैं, ताते तुम धन्य हो

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे देवसमाजवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः॥ २७॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः २८.

अथ मुनिसमाजवर्णनम्

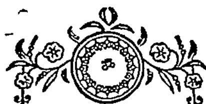
वाल्मीकिउवाच, हे भारद्वाज! ऐसे वचन देवता कहके विचार करत भये रघुवंशका कुल पूजने योग्य है, तिसमें रामजी वडे उदार वचन मुनीश्वरके विद्यमान कहे हैं, अव जो मुनीश्वरका उत्तर होयगा, सोभी श्रवण किया चाहिये जैसे फूलके ऊपर भौंरा स्थिर होते हैं, तैसे व्यास, नारद, पुलह, पुलस्त्य, आदि सव साधु सभामें आय स्थित भये, तव वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि मुनीश्वर उठके खडे हुये, अरु तिनकी पूजा करने लगे. प्रथम पूजा राजा दशरथने करी, फिर नानाप्रकारसों सवने उनकी पूजा करी और यथायोग्य आसनके ऊपर वैठे, सो कैसेहै? जो नारद वहुतसुंदर मूर्त्ति धारे हाथमें वीणालेयके वैठे अरु श्याममूर्त्ति व्यास आय वैठे और नाना प्रकारके रंगसो रजित वस्त्र पहिरे हुए, मानो तारामें महा श्याम घटा आई है ऐसे अरु दुर्वासा, वामदेव, पुलह, पुलस्त्य, अरु बृहस्पतिके पिता अंगिरा, अरु भृगु और मैं भी तहां था, और ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि, देवता, मुनीश्वर सव आयके सभामें स्थित हुए किसीके वडीजटा है, कोई मुकुट पहरे हैं, किसीने रुद्राक्षकी माला पहरी है, किसीने मोतीकी माला पहरी हैं, किसीके कंठमें रत्नकी माला हैं, और हाथमें कमंडलु, मृगछाला

किसीके महा सुंदर वस्त्र; ऐसे वडे तपस्वी आयके बैठे. तामें कोई राजसी स्वभावके, कोई सात्त्विक स्वभावके, ऐसे वडे वडे आये, अरु सब विद्वत् वेद पढनहारे प्राप्त हुए. और किसीका सूर्यवत्, किसीका चंद्रवत्, किसीका तारावत्, ऐसे वडे प्रकाशवाले पुरुषार्थ पर यत्न करनहारे, सो यथायोग्य आसन पर स्थिर भये, और मोहनी मूर्त्ति रामजी अरु दीन स्वभाववारे हाथ जोरके सभामें बैठे, तिनकी सब पूजा करत भये कहते हैं कि, हे रामजी ! तुम धन्य हो ! और-

नारद सबके विद्यमान कहत भये कि, हे रामजी ! तुमने वडे विवेक अरु वैराग्यके वचन कहे, सो सबको प्यारे लगे, सबके कल्याण करनेहारे हैं और परम बोधकेकारण हैं हे रामजी ! तुम वडे बुद्धिमान् उदारात्मा दृष्टि आवते हो, अरु महा वाक्यका अर्थ तुमते प्रगट होता है ऐसा उज्ज्वल पात्र साधुमें और अनन्त तपस्वियोंमें कोई एक होते हैं अरु जेते कछु मनुष्य हैं सो सब पशु जैसे दृष्टिमें आवते हैं क्योंकि जिसको संसार समुद्रके पार होनेकी इच्छा है और जो पुरुषार्थ पर यत्न करते हैं. सोई मनुष्य हैं. हे साधो ! वृक्ष तो वहुत होतेहैं, परंतु चंदनका वृक्ष कोई होता है तैसे शरीर धारी वहुत हैं, परंतु ऐसा कोई होता है; और सब अस्थि मांसके पुतरे साथ मिले हुयेभटकते फिरते हैं, सो जैसी यन्त्रीकी पुतरी होती है, तैसे अज्ञानी जीव हैं, और हस्ती तो वहुत हैं, परंतु जिसके मस्तकमेंसे मोती निकसता है. सो विरला है तैसे मनुष्य तो वहुत हैं, परंतु पुरुषार्थपर यत्न करने हारे कोई होते हैं ऐसे पात्रको थोरा अर्थ कहा भी हो वहुत जाता है;जैसे तेलकी बूंद थोरी जलमें डारी विस्तारको पाती है; तैसे थोरे वचन सों आपके हियेमें वहुत होते हैं; आपकी बुद्धि वहुत विशेष है; अरु दीपक जैसी प्रकाशवारी है, अरु बोधका परमपात्र है, और कहने मात्रते आपकोशीघ्र ज्ञान होवेगा, अरु हमारे विद्यमान आपको ज्ञान होवेगा ऐसानिश्चय करि जानना.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे मुनिसमाजवर्णन नाम अष्टाविंशतितमः॥

इति योगवासिष्ठे



परमात्मनेनमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे-

मुमुक्षुप्रकरणप्रारंभ ॥ २ ॥

प्रथमः सर्गः १.

अथ शुकनिर्वाणवर्णनम्

वाल्मीकि उवाच, हे साधो! यह जो वचन हैं सो परमानंदरूप हैं, अरु कल्याणके कर्त्ता हैं इसमे श्रवणकी प्रीति तव उपजती है, जब अनेक जन्मके बडे पुण्य आय इकट्ठे होते हैं, जैसे कल्पवृक्षके फलको बड़े पुण्यसों पाते हैं, तैसे जिसके वडे पुण्य कर्म इकट्ठे आय होते हैं तिसकी प्रीति इन वचनोंके श्रवणमें होतीहै अन्यथा प्राप्ति नही होती ये वचन परम बोधके कारण है, हे भारद्वाज! इस प्रकार जब नारदजीने कहा तव विश्वामित्रजी वोले.

विश्वामित्र उवाच, हे ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ रामजी! जेता कछु जानने योग्यथा सो तुमने जाना है, इसते जानना और नही रहा अरु तिसमे विश्राम पावने निमित्त कछुक मार्जन करना है जैसे अशुद्ध आदर्शकी मलिनता दूर करी होय, तब मुख स्पष्ट भासता है तैसे कछु उपदेशकी तुझ को अपेक्षा है हे रामजी! तेरे जैसा भगवान् व्यासजीका पुत्र शुकदेवजी भया है, सोभी वडा बुद्धिमान् था, तिसने जो जानने योग्यथा सो जाना है अरु विश्रामके निमित्त तिसको भी अपेक्षा थी सो विश्रामको पाय शातिमान्भये हैं

राम उवाच हे भगवान्! शुकजी कैसा बुद्धिमान् अरु ज्ञानमान् थे,

अरु कैसी विश्रामकी अपेक्षा थी, फिर कैसे विश्रामको पावत भये? सो कृपा करिके कहो

विश्वामित्र उवाच, हे रामजी! अजनके पर्वतकी नाईं जिनका आकार है, ऐसे जो भगवान् व्यासजी ये स्वर्णके सिंहासन पर राजा दशरथके पास बैठे हैं अरु सूर्यकीनाईं प्रकाशमान् जिसकी कांति है. तिसके पुत्र शुकजी सो सब शास्त्रके वेत्ताथे. सत्यको सत्य जानतेथे असत्यको असत्य जानते थे, सो शांतिरूप और परमानद रूप, आत्मामें विश्राम न पावते भये तब उसको विकल्प उठा कि, जिसको मैं जाना हूं, सो न होवेगा काहेते कि, मुझको आनंद नहीं भासता है सो सशयको धरके एक कालमे व्यासजी सुमेरु पर्वतकी कंदरामें बैठेथे, तिनके निकट आयकर कहत भये हे भगवन्! यह ससार सब भ्रमात्मक कहांसे भया है, वाकी निवृत्ति कैसे होयगी और आगे कोईको इसकी निवृत्ति भई है? सो कहो.

हे रामजी! इस प्रकार जब शुकजीने कहा, तब विद्वत् वेद शिरोमणि जो वेदव्यासजी है, सो तत्काल उपदेश करते भये तब शुकजीने कहा- हे भगवन्! जो कछु तुम कहो हो, सो तो मैं आगेसों जानता हों, इसकर मुझको शांति प्राप्त नहीं होती

हे रामजी! जब इस प्रकार शुकजीने कहा तब सर्वज्ञ जो वेदव्यासजी है, सो विचार करतभये कि, मेरे वचनकर इसको शांति प्राप्त न होवेगी, क्योंकि, अब पिता पुत्रका सबध भासताहै; ऐसे विचार करके व्यासजी कहते भये-हे पुत्र! मैं सर्व तत्त्वज्ञ नहीं तू राजा जनकके निकटजावे, वे सर्व तत्त्वज्ञहैं अरु शान्तात्माहैं, उनसों तेरा मोह निवृत्ति होवेगा

हे रामजी! जब इसप्रकार व्यासजीने कहा तब शुकदेवजी वहां सों चले, तब जो मिथिला नगरी राजा जनककी थी, तिसमें आयकर राजा जनकके द्वारपै स्थित भये. तब ज्येष्ठीने जायकर राजा जनकको कहा कि, व्यासजीके पुत्र शुकजी आय खडेहैं,तब राजाने जाना कि,इसको जिज्ञासा है, तब कहा खडा रहो, तब खडेहरहे इसी प्रकार ज्येष्ठी जाय कहा, तब सात दिन खडे रहत बीत गये; तब राजाने फिर पूछा शुकजी खडे हैं कि,

चलते रहेहैं ? तव ज्येष्ठीने कहा खडे है.तव राजाने कहा आगे ले आओ, तव आगे ले आये, उस दरवज्जेपै भी सात दिन खडे रहे. वहुरि राजानें पूँछा कि, शुकजी है ? तव ज्येष्ठीने कहा कि, खडे है तव राजाने कहा अंतःपुरमें ले आओ. उसको नानाप्रकारके भोग भुगताओ तव अंत. पुरमे लेगये, वहाँ स्त्रियनके पास सात दिन खडेरहे, तव राजाने ज्येष्ठीसे पूछा कि,तिसकी दशा कैसीहै और आगे कहा दशाथी ? तव ज्येष्ठीने कहा जो आगे निरादर करके न शोकवान हुवाथा, अरु अव भोगकर न प्रसन्न हुआ है, इष्ट अनिष्टमें समानहै जैसे मद पवनकरके मेरु चलायमान नहीं होवे, तैसे यह वडे भोगका निरादरकर चलायमान नहीं भये जैसे पपैयेको मेघके जल विना नदी, ताल, आदिके जलकी इच्छा नहीं होती, तैसे उसको किसी पदार्थकी इच्छा नहीं तव राजाने कहा इहाँ ले आओ, तव सो लेआये

जव शुकजी आये, तव राजा जनकने उठके खडे हो प्रणाम किया, फिर दोऊ वैठ गये, तव राजाने कहा कि, हे मुनीश्वर ! तुम किस निमित्त आये हो, तुमको कहा वांछा है ? सो कहो, किसकी प्राप्ति मै करदेऊं

श्रीशुकउवाच, हे गुरु ! यह संसारका आडवर कैसेउत्पन्न हुआ है, फिर कैसे शांत होवेगा, सो तुम कहो.

विश्वमित्रउवाच,हेरामजी ! जव इस प्रकार शुकदेवजीने कहा तव राजा जनकने यथाशास्त्र उपदेश जो कछु व्यासजीने कहा था, सोई कहा. वहुरि शुकजीने कहा–हे भगवन्, जो कछु तुम कहोहो, सोई मेरा पिताजी कहताथा, अरु सोई शास्त्र कहताहै और विचारसों मै भी ऐसा जानताहों कि, यह ससार अपने चित्तमे उत्पन्न होताहै अरु चित्तका निर्वेद हुए भ्रमकी निवृत्ति होती है, फिर विश्राम मुझको नहीं प्राप्त होताहै.

जनकोवाच, हे मुनीश्वर ! जो कछु मैने कहा है, अरु जो तुम जानतेहो, इससे और उपाय कछु है, ऐसा जानना नहीं, अरु कहनाभी नहीं यह ससार चित्तके सवेदनकर हुआ है जव चित्त फुरनेते रहित होता है, तव भ्रमनिवृत्त होजाता है, अरु आत्मतत्त्व नित्य शुद्ध है, अरु परमानंद स्वरूप है केवल चैतन्य है तिसका अभ्यास करेगा तव तू विश्रामको

पावेगा; अरु तू मुक्ति स्वरूप है. काहते कि,तेरा यत्न आत्माकी ओर है, दृश्यकी ओर नहीं, ताते तू वडा उदारात्माहै. हे मुनीश्वर ! तू मोको व्यासते अधिक जान मेरे पास आयाहै; और तू मेरे तेभी अधिक है; काहेते कि, हमारी चेष्टा वाहिरते दृष्ट आवती है और तुम्हारी चेष्टा वाहरते कछुभी नहीं अरु अतरते हमारी कछुभी नहीं.

विश्वामित्रउवाच, हे रामजी ! जव इस प्रकार राजा जनकने कहा, तव शुकजी नि सग, निःप्रयत्न निर्भय होकर चले सुमेरु पर्वतकी कंदरामें जाय निर्विकल्प समाधि दश सहस्र वर्ष ताई करी वहुरि निर्वाण होगये जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होजाता है, तैसे निर्वाण होगये, जैसे समुद्रमें बूद लीन होजाताहै जैसे सूर्यका प्रकाश सध्याकालमें सूर्यके पास लीन होजाता है, तैसे कलनारूप कलंकको त्यागकर ब्रह्मपदको प्राप्त भये

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे शुकनिर्वाण
वर्णन नाम प्रथमः सर्ग ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

अथ विश्वामित्रोपदेशवर्णनम्

विश्वामित्रउवाच, हे राजा दशरथ ! जैसे शुकजी शुद्ध बुद्धिवारे थे, तैसे रामजी भी हैं जैसे शातिके निमित्त उसका कछुक मार्जन कर्त्तव्यथा, तैसे रामजीको विश्रामके निमित्त कछुक मार्जन चाहिये; काहेते कि, आवरण करनहारे भोग हैं, सो इच्छा तिनते निवृत्ति भई है,अरु जो कछु जानवे योग्य था सो जाना है अव हमको कछुक युक्ति करनी है, जिस करके उसको, विश्राम होवेगा जैसे शुकजीको थोडेसे मार्जन करके शातिकी प्राप्ति भई थी, तैसे इनको भी होवेगी

हे राजन् ! अव रामजीको भोगकी इच्छा स्पर्श नहीं करती जैसे ज्ञानवान्को अध्यात्मक आदि दु ख स्पर्श नहीं करते, तैसे रामजीको भोगकी इच्छा स्पर्श नहीं करती भोगकी इच्छा सवको दीन करती है, इसकाही

नाम बंधन है, अब भोगकी वासनाका क्षय करना इसका ही नाम मोक्ष है. ज्यो ज्यों भोगकी इच्छा करता है, त्यों त्यों लघु हो जाता है; अरु ज्यों ज्यों भोगकी वासना क्षय होती है, त्यों त्यो गरिष्ठ होता है जबलग इसको आत्मानंद प्रकाश नहीं होता, तबलग विषयकी वासना दूर नहीं होती, जब आत्मानंद प्राप्त होता है, तब विषय वासना कोई नहीं रहती जैसे मरुस्थलमें लताकी उत्पत्ति नहीं होती, तैसे ज्ञानवान्‌को विषय वासनाकी उत्पत्ति नही होती

हे साधो ! ज्ञानवान् जो विषय भोगका त्याग करता है, सो किसी फलकी इच्छा करके नहीं करता, स्वभाव तेई ज्ञानवान्‌की विषय वासना उठजाती है जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकारका अभाव हो जाता है, तैसे रामजीको अब किसी भोग पदार्थकी इच्छा रही नहीं, अब विदित वेद हुआहै, अब आप विश्रामकी इच्छा चाहता है, ताते जो कहो, सोई करो, जिसकर विश्रामवान् होय

हे राजन् ! यह जो भगवान् वशिष्ठजी हैं, इनकी युक्ति करके शांत होवेगा, अरु आगे भी सोई रघुवंश कुलके गुरु है, इनके उपदेश द्वारा आगे भी रघुवंशी ज्ञानवान् भये है जो सर्वज्ञ है, अरु साक्षिरूप हैं; और त्रिकालज्ञ हैं और ज्ञानके सूर्य हैं, इनके उपदेशकर रामजी आत्मपदको प्राप्त होवेगा

हे वशिष्ठजी ! वह ब्रह्माका उपदेश तुम्हारे स्मरणमें है क्योकि, जब तुम्हारा हमारा विरोध हुआथा, तब उपदेश किया और जो सब ऋषी-श्वर अरु वृक्ष करि पूर्ण है, ऐसा जो मंदराचल पर्वतमे आयकर ब्रह्मा जीने संसार वासनाके नाश निमित्त उपदेश किया था, अरु तुम्हारा ह-मारा विरोध था, तिसके निमित्त अरु और जीवके कल्याण निमित्त जो उपदेश किया था, अब वही उपदेश तुम रामजीको करो यह भी निर्मल ज्ञानपात्र हैं अरु ज्ञानभी वही है; अरु विज्ञान भी वही है, अरु निर्मल युक्ति वही है कि, शुद्ध पात्रमें अर्पण होवे, अरु पात्र विना उपदेश नहीं सुहाता है, अरु जिसमें शिष्यभाव न होवे , अरु विरक्तता न होवे, ऐसा जो अपात्र मूर्ख होवे, तिसको उपदेश करना व्यर्थ है अरु जो विरक्त

होवे, अरु शिष्य भावना न होवे, तऊभी उपदेश नहीं करना, अरु दोनों करि सपन्न होवे तब करना पात्र विना उपदेश व्यर्थ होता है; अर्थ यह कि, अपवित्र होजाता है जैसे गौका दूध महापवित्र है, परन्तु श्वानकी त्वचा में डारिये तब वह अपवित्र हो जाता है तैसे अपात्रको उपदेश करना व्यर्थ है हे मुनीश्वर। जो शिष्य वैराग्य करि संपन्न होता है, अरु उदार आत्मा है, सो तुम्हारे उपदेशके योग्य है, तुम कैसे हो, कि वीतराग हो, भय अरु क्रोधते रहित हो, परम शातिरूप हो, सो तुम्हारे उपदेशका पात्र रामजी है

वाल्मीकिउवाच, इसप्रकार जब विश्वामित्रने कहा तब नारद अरु व्यासादिकनने साधो, साधो, करके कहा अर्थ यह कि, भला, भला, कहा, ऐसेई यथार्थ है तब राजा दशरथके पास बहुत प्रकारके साधु बैठे हुए थे

वशिष्ठउवाच, ब्रह्माजीके पुत्र वशिष्ठजीने तिनसे कहा कि-हे मुनीश्वर। जो कछु तुमने आज्ञा करी है, सो हमने मानी है ऐसा समर्थ कोऊ नहीं, जो संतकी आज्ञा निवारण करै हे साधो। जेते कछु राजा दशरथके पुत्र हैं, तिन सबके हृदयमें जो अज्ञानरूपी तम है, सो मैं ज्ञानरूपी सूर्यकर निवारण करोंगा, जैसे सूर्यके प्रकाशकर अंधकार दूर होताहै हे मुनीश्वर। जो कछु ब्रह्माजीने उपदेश किया था, सो मुझको अखड स्मरण है, सोई उपदेश करोंगा जिसकर रामजी नि सशय पदको प्राप्त होवेगा.

वाल्मीकिउवाच, इस प्रकार वशिष्ठजीने विश्वामित्रसे कहा ताके अनंतर मोक्षका उपाय सब रामजीको कहत भया

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विश्वामित्रोपदेशो नाम द्वितीय·सर्ग·॥२॥

तृतीयः सर्गः ३.

अथ असंख्यसृष्टिप्रतिपादनवर्णनम्.

वशिष्ठउवाच, हे रामजी, जो कछु कमलज जो ब्रह्माजी, तिमने मुझको जीवके कल्याण निमित्त उपदेश किया है, सो भले प्रकार मेरे सुमिरणमें आता है, सो अब तुमको कहता हों

श्रीरामउवाच, हे भगवन्! कछुक प्रश्न करनेका अवसर आया है, अव एक संशयको दूर करो मोक्ष उपाय जो कहते हो, सो सव तुम कहोगे, परंतु यह जो तुमने कहा कि, शुकदेवजी विदेहमुक्त होगये, तो भगवान् व्यासजी जो सर्वज्ञ है, सो विदेहमुक्त क्यों न हुए

वशिष्ठउवाच, हे रामजी! जैसे सूर्य किरण सों त्रिसरेणु उडती देख परती है, तिनकी संख्या कछु नही होती,तैसे परम सूर्यके सवेदन रूपी किरणमे त्रिलोकी रूपी त्रिसरेणु हैं, सो असख्य है, और अनत होकर मिट जाते है,अरु और अनत होते है, और अनत त्रिलोकी ब्रह्म समुद्रमें होवेंगे, तिसकी संख्या कछु नहीं

श्रीरामउवाच, हे भगवन् जो आगे व्यतीत होगये हैं और जो आगे होवेंगे, तिनकी सख्या केती है अरु वर्त्तमानको तो जानता हों

वशिष्ठउवाच, हेरामजी! अनंत कोटि त्रिलोकीके गण उपजे हैं, अरु मिट गये है, अरु कई होवे है, अरु कई होवेंगे, गिननेकी संख्या कछु नही काहेते कि, जीव असंख्य है, अरु जीव जीव प्रति अपनी अपनी-सृष्टि है जव यह जीव मृतक हो जाते हैं तव उसी स्थानमें अपने अंतवाहक संकल्परूपी पुरविषे इसका वांधव भास आता है अरु इसी स्थानमें परलोक भास आता है, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश पच-भूत भासताहै, अरु नानाप्रकार की वासनाके अनुसार अपनी अपनी सृष्टि भास आतीहै, वहुरि जव वहाँते मृतक होताहै तव वही सृष्टिभास आतीहै नाम रूप सयुक्त वही जाग्रत सत्य होकर भास आतीहै वहुरि जव वहाँते मरताहै, तव इस पचभूत सृष्टिका अभाव होजाता है और अपर भासतीहै अरु तहांके जो जीव होतेहै, तिनको भी इसी प्रकार अनुभव होताहै इसी प्रकार एकएक जीवकी सृष्टि होतीहै, अरु मिट जाती है, तिसकी सख्या कछु नही, तव ब्रह्माकी सृष्टिकी संख्या कैसे होवे.

जैसे पुरुष फेर लेताहै, अरु तिसको सव पदार्थ भ्रमते दृष्टि आवतेंहै, अरु जैसे नौकामें वैठे हुए नदी तटके वृक्ष चलते दृष्टि आतेंहै, जैसे नेत्रके दोषकर आकाशमें मोती की माला दृष्टि आती है जैसे स्वप्नेमें सृष्टि भासतीहै, तैसे जीवको भ्रम करके यह लोक परलोक भासताहै वास्तवते

जगत् कछु उपजाई नहीं, एक अद्वैत परमात्मतत्त्व अपने आपविषे स्थितहै, तिसविषे द्वैत भ्रमअविद्या करके भासता है जैसे वालकको अपने परछैयामें वेताल भासताहै, अरु भयको पाताहै, तैसे अज्ञानीको अपनी कल्पना जगतरूप हो भासतो है

हे रामजी ! यह व्यासदेव वत्तीस वेर मेरे देखनेमे आयाहै, तिसमें दशतो एक आकार रूपहै, अरु एकही जैसी क्रिया, अरु एकही जैसे निश्चयहुआहै ? अरु अपर दश समानहीं सम हुएहै. अरु वारे विलक्षण आकार विलक्षण क्रिया चेष्टावारे हुएहै जैसे समुद्रमें तरंग होते हैं, तामें कई सम अरु कई विलक्षण उपजते है. तैसे व्यास, हुए हैं, अरु सम जो दश हुये हैं तिनमें दश व्यास यही हैं, अरु आगे भी अष्टवेर यही होवेगा, वहुरि महाभारत कहेगा वहुरि नौमी वेर ब्रह्मा होकर विदेहमुक्त होवेगा, अरु हमभी होवेंगे अरु वाल्मीकिभी होवेगा अरु भृगुभी होवेगा, अरु वृहस्पतिका पिता अंगिराभी होवेगा,इत्यादिक और भी होवेगे.

हे रामजी ! एक सम होते है, एक विलक्षण होते हैं; अरु मनुष्य, देवता, तिर्यगादिक जीव कई वेर समान होते है; कई वेर विलक्षण होते हैं, कई जीव समान आकार आगे जैसे कुल क्रिया सहित होते है, अरु कई संकल्प कर उडते फिरतेहै; आवना, जावना, जीवना, मरना, स्वप्न भ्रमकी नाई दिखताहै अरु वास्तवते कोऊ आता है, न जाताहै, न जन्मताहै, न मरताहै यह भ्रम अज्ञानसों कर भासताहै; विचार कियेते कछु निकसता नहीं जैसे कदलीका स्तंभ देखनेमें वडा पुष्ट आताहै, फिर खोल देखो तो सार कछु नहीं निकलता, तैसे जगत भ्रम अविचार करके सिद्धहै, विचार कियेते कछु भासता नहीं.

हे रामजी ! जो पुरुष आत्मसत्तामें जागाहै, तिसको द्वैत भ्रम नहीं भासताहै; वह आत्मदर्शी,सदा शांत आत्मा परमानंद स्वरूपहै; अरु सब कलनाते रहितहै. ऐसे जीवन्मुक्तको कोई चलाय नहीं सकता ऐसे जो व्यासदेवजी हैं, तिसको सदेह मुक्ति, अरु विदेह मुक्तिकी कोऊ कलना नहीं सदा अद्वैत रूपहै; हे रामजी ! जीवन्मुक्तको सब सर्वात्मा

पूर्ण भासताहै,अरु स्वस्वरूप भासताहै स्वरूपसार शांतिरूप अमृत करि पूर्णहै; अरुनिर्वाणमे स्थितहै

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे असंख्यसृष्टि प्रतिपादनो नाम तृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

अथ पुरुषार्थोपक्रमवर्णनम्

वशिष्ठ उवाच, हे रामजी! जीवन्मुक्ति अरु विदेह मुक्तिमें भेद कछु नहीं. जैसे स्थिर जल है, तोभी जल है; अरु तरग फिरते है? तौ भी जल है, तैसे जीवन्मुक्ति अरु विदह मुक्तिमें भेद कछु नहीं हे रामजी जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिका अनुभव तुझको प्रत्यक्ष नहीं भासता काहेते जो स्वसवेद्य है, अरु तिनमें जो भेद भासता है, सो असम्यग्दर्शीको भासता है, ज्ञानवान्को भेद कछु नहीं भासता है; जेते वायुस्पद रूप होता है तौ भी वायु है, अरु निष्पदरूप होता है तौ भी वायु है, उसके वायुते तिश्चय विषे भेद कछु नहीं; पर अपर जीवको स्पंद होती है, तो भासती है,अरु निष्पद होतीहै,तो नहीं भासती है; तैसे ज्ञानवान् पुरुषको जीवन्मुक्ति अरु विदेह मक्तिमें भेद कछु नही वह सदा अद्वैत कलनाते रहितहै जब जीवको उसका शरीर भासता है,तब जीवन्मुक्त कहते हैं जब शरीर अदृश्य होताहै तब विदेहमुक्त कहते है, अरु उसको दोनों तुल्य है

हे रामजी! अब प्रकृत प्रसगको सुन जो श्रवणका भूषण है–जो कछु सिद्ध होता है सो अपने पुरुपार्थ कर सिद्ध होता है, पुरुषार्थ विन सिद्ध कछु नहीं होता और कहते हैं जो दैव करैगा सो होवेगा सो मूर्खता है यह चन्द्रमा हृदयको शीतल अरु उल्लासकर्त्ता भासता है, सो इसमें शीतलता पुरुपार्थ कर हुई है हे रामजी! जिस अर्थकी प्रार्थना करे, अरु यत्न करे, अरु तिसमें फिरे नही तो अवश्य कर जरूर पाता है और पुरुप प्रयत्न किसका नाम हैं, सो श्रवण कर सतजन अरु सत्य शास्त्रके उपदेश रूप उपाय कर तिसके अनुसार चित्तका विचरना होय सो

पुरुषमें यत्न है, तिससे इतर जो चेष्टा करता है,तिसका नाम उन्मत्त चेष्टा है, अरु जिस निमित्त यत्न करता है सोई पावता है. एक जीव था, सो पुरुषार्थपर यत्न करते अपुन इन्द्रकी पदवी पाई, त्रिलोकीका पतिहोय सिंहासनपर आरूढ हुआ.

हे रामचंद्र ! आत्मतत्त्वमें जो चैतन्य स्पंद,इस स्पंदरूप होकर स्फूर्ति है, सो अपने पुरुषार्थ कर ब्रह्माके पदकोप्राप्त भई है, ताते देख, जिसको कछु सिद्धता प्राप्त हुई सो अपने पुरुषार्थ कर हुई है. केवल चैतन्य जो आत्मतत्त्व है, तिसमें चित्त सवेदन, यही स्पंद रूप है यह चैतन्य सवेदन अपने पुरुषार्थ करके गरुडपर आरूढ होय विष्णुरूप होता है, अरु यह चैतन्य सवेदन अपने पुरुषार्थ करके रुद्ररूपभया है, अरु अर्द्धांगमें पार्वतीको धर रहा है, अरु मस्तकमें चद्रमाको धरा है, अरु नीलकंठ परम शांतरूप है, ताते जो कछु सिद्ध होता है सो पुरुषार्थ कर होता है.

हेरामजी ! पुरुषार्थ करके सुमेरुका चूरण किया चाहेतोभी कर सकता है. जैसे पूर्व दिनमें दुष्कृत किया होय,अरु अगले दिनमें सुकृत करे, तव दुष्कृत दूर होजाताहै.जो अपने हाथ द्वारा चरणामृत भी ले नहीं सकता, अरु पुरुषार्थ करै तो वही पृथ्वी खड खंड करनेको समर्थ होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थो पक्रमो नाम चतुर्थ सर्ग ॥ ४ ॥

पंचमः सर्ग. ५.

अथ पुरुषार्थवर्णनम्

वाशिष्ठ उवाच, हे रामजी ! जो चित्त कछु वांछा करता है, अरु शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ नहीं करता सो सुखको न पावेगा; उसकी उन्मत्त चेष्टा है, अरु पुरुषार्थ भी दो प्रकारका है-एक शास्त्र अनुसार एक शास्त्र विरुद्ध है जो शास्त्रको त्याग करि अपनी इच्छाके अनुसार विचरता है सो सिद्धताको न पावेगा; अरु जो शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ करता है, सो सिद्ध ताको प्राप्त होवेगा; अरु दु ख भी न होवेगा. अनुभ

वते स्मर्ण होता है, अरु स्मर्णते अनुभव होता है, सो दोनों इस हीते होते है देव तो कछु न हुआ.

हे रामजी और देव कोई नही,इसका किया इसको प्राप्त होता है परतु जो वलिष्ठ होता है, सो तिसके अनुसार विचरता है जो पूर्वके संस्कार वली होते हैं तो उसकी जय होती है अरु जो विद्यमान पुरुपार्थ वली होता है, तव उसको जीति लेते है जैसे एक पुरुषके दो वेटे है अरु जो तिनको लड़ावता है, तो दोनों विपे जो वली होताहै, तिसकी जय होतीहै, परतु दोनों उसके हैं, तैसे दोनों कर्म इसके है, जो पूर्वका संस्कार वली होता है तोई इसकी जय होती है

हे रामजी! यह जो सत्सग करता है, अरु सत शास्त्रहूका विचार करता है, वहुरि पक्षीकी नाई ससार वृक्षहूकी ओर उडता है, तो पूर्वका संस्कार वली है तिस करि स्थिर हो नही सकता, ऐसे जान कर तैं पुरुप प्रयत्नका त्याग नहीं करना, जो पूर्वके सस्कारते अन्यथा नही होता ? पूर्वका संस्कार वलीभी होवे, परंतु जव सत्सग करे अरु सत शास्त्रहूका दृढ अभ्यास होवे, तो पूर्वके संस्कारको पुरुप प्रयत्न जीत लेताहै, जैसे पूर्वके सस्कारमें दुष्कृत किया है, सुकृत आगे किया है तो अगलेका अभाव हो जाताहै, सो पुरुप प्रयत्न होता है सो पुरुपार्थ क्या है ? अरु तिसकर सिद्ध क्या होता है ? सो श्रवण करके ज्ञानवान् जो सत है अरु सतशास्त्र जो ब्रह्मविद्या है, तिसके अनुसाार प्रयत्न करना, तिसका नाम पुरुपार्थ है अरु पुरुपार्थ करके पावने योग्य आत्मा है जिसकरि संसार समुद्रते पार होवे.

हे रामजी! जो कछु सिद्ध होता है, सो अपने पुरुपार्थ करि होता है; अपर देव कोऊ नहीं, अरु जो शास्त्रके अनुसार पुरुपार्थको त्याग करि कहता हैं, जो जो कछु करना है, सो देव करेगा, सो मनुष्यमें गर्दभ है. तिसका सग न करना, उसकी संगति करनी सो दु:खका कारण है इस पुरुपको प्रथम तो यह कर्त्तव्य है-कि, अपने वर्णाश्रम विपे शुभ आचारको ग्रहण करना, अरु अशुभका त्याग करना, वहुरि सतका संग, अरु सतशास्त्रका विचारना,और तिसके विचार कर अपने गुण दोपहूका विचार

करना, कि दिन अरु रात्रिमें शुभ क्या करता हों अरु अशुभ क्या करता हों आगे गुण अरु दोषहूका साक्षी भूत होकर जो संतोष, धीरज, वैराग्य, विचार, अरु अभ्यास गुण है तिसका वढानना अरु जो दोष विपरीत हैं, तिनका त्याग करना जब ऐसे पुरुषार्थको अंगीकार करैगा, तब परमानंदरूप आत्मतत्त्वको प्राप्त होवेगा ताते.

हे रामजी! वनके घायल हुए मृगकी नाईं नहीं होना जो घास, तृण, पातको रसीला जानके परा चुगता है, तैसे स्त्री पुत्र, बांधव, धनादिक विषे मग्न हो रहना, सो नहीं होना, इनते विरक्त होना दंतहू साथ दंतहूको चवाय करि ससार समुद्रको पार होनेका यत्न करना अरु वलते वंधनको तोड करि निकस जाना. जैसे केसरी सिंह वल करके पिंजरेमेंते निकस जाताहै तैसे निकस जाना, सोई पुरुषार्थ है.

हे रामजी! जिसको कछु सिद्धताकी प्राप्ति हुई है. सो अपने पुरुषार्थ कर हुई है, पुरुषार्थ विना नहीं होती, जैसे प्रकाश विन पदार्थका ज्ञान नहीं होता जिस पुरुषने अपना पुरुषार्थ त्याग दियाहै अरु देवके आश्रय हुएहैं, कि हमारा देव कल्याण करैगा, सो नहोवेगा. जैसे पत्थरसों तेल निकासा चाहै, सो नहीं निकलता, तैसे उनका कल्याण देवते नहोवेगा हे रामजी! तुम तो देवका आश्रय त्याग कर अपने पुरुषार्थका आश्रय करो.

जिसने अपना पुरुषार्थ त्यागाहै, तिसको सुंदर कांति लक्ष्मी त्याग जातीहै जैसे वसतऋतुकी मजरी वसतऋतुके गये ते विरस होजातीहै. तैसे उनकी काति लघु होजातीहै जिस पुरुषने ऐसे निश्चय कियाहै कि, हमारा पालनेहारा देवहै, सो पुरुष पेसाहै, जैसे कोई अपनी भुजाको सर्प जानके भय पायके दौरतेहैं, और जानते नहीं कि अपनी भुजाहै, तैसे अपनेपुरुपार्थ को त्यागके देवका आश्रय लेताहै अरु भयको पाता है.

पुरुषार्थ नाम इसकाहै- कि, संतहूका संग अरु सतशास्त्रोंका विचार करके तिनके अनुसार विचरना अरु जो तिनको त्यागके अपनी इच्छाके अनुसार विचरते हैं सो सुखको नहीं पावेंगे न सिद्धताको पावेंगे अरु जो शास्त्रके अनुसार विचरतेहैं. सो यहाभी सुख पावेंगे. अरु आगेभी

सुख पावेंगे, तैसेई सिद्धताको पावेंगे, ताते संसाररूपी जाल विपे नहीं गिरना, सो पुरुपार्थ है सतजनहूके सग अरु सत शास्त्रके अर्थ हृदयरूपी पत्रपे लिखना, वोधरूपी कानी करनी अरु विचाररूपी स्याही करनी जव ऐसे पुरुपार्थ करि लिखेगा, तव संसाररूपी जालमे न गिरैगा

हे रामजी! जैसे यह आदिनेति हुई है, जो पटहै सो पटही है, जो घटहै सो घटही है, घट है सो पट नही और पट है सो घट नही तैसे यहभी नेति हुई है-अपने पुरुपार्थ विना परमपदकी प्राप्ति नही होती

हे रामजी! जो संतहूकी सगति करता है, अरु सतशास्त्रभी विचारता है अरु उनके अर्थमें पुरुपार्थ नही करता तिसकरि सिद्धता प्राप्त नही होती जैसे अमृतके निकटई वैठा होवे, अरु पान किये विना अमर नहीं होता तैसे अभ्यास किये विना सिद्धता प्राप्त नहीं होती

हे रामजी! अज्ञानी जीव अपना जन्म व्यर्थ खोवते है जव वालक होते है, तव मूढ अवस्थामें लीन रहते है, अरु युवा अवस्थामें विकार हूको सेवते है, अरु जरामें जर्जरीभूत होते है, इसी प्रकार जीवना व्यर्थ खोवतेहैं, अरु जो अपना पुरुपार्थ त्याग करके दैवका आश्रय लेताहै, सो अपने हता होतेहै, सुखको नही पावेंगे हे रामजी! जो पुरुप व्यवहार विपे अरु परमार्थविपे आलसी हुए हैं, अरु परमार्थको त्यागके मूढ होरहे है, सो दीन हुएहे मानो पशु है अरु दु:खको प्राप्त हुएहे, यह मैंने विचार करके देखा है, ताते पुरुपार्थका आश्रय करो सत सग अरु सत शास्त्ररूपी आदर्श करके, अपने गुण करके दोपको देखके दोपका त्यागकरो अरु शास्त्रका सिद्धात जोहै तिसका अभ्यास करो जव दृढ अभ्यास करोगे, तव शीघ्रही आनंदवान् होगे

वाल्मीकिउवाच, जव इस प्रकार वशिष्ठजीने कहा, तव सायकालका समय हुआ, सव स्नानके निमित्त उठके खडे भये और परस्परनमस्कार करके अपने २ घरकोगये वहुरि सूर्यकी किरनन साथ आय स्थित भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुपार्थवर्णनो नाम पंचम सर्ग ॥५॥

षष्ठः सर्गः ६



अथ परमपुरुपार्थवर्णनम्

वशिष्ठउवाच, हे रामजी इसका जो पूर्वका किया पुरुपार्थ है, तिसका नाम देव है, और देव कोऊ नहीं जव यह सत्सग अरु सतशास्त्रका विचार पुरुपार्थ करे तव पूर्वके संस्कारको जीत लेता है जिस पुरुप इष्ट पानेका यह शास्त्रद्वारा यत्न करेगा, तिसको अवश्यमेव अपने पुरुपार्थते पावेगा, अन्यथा कछु नहीं होती, न हुई है, न होवेगी पूर्व जो कोऊ पाप किया होता है, तिसका फल जव दुःख पावता है तव मूर्ख कहता है, कि हाय देव हाय देव, हाय कष्ट, हाय कष्ट.

हे रामजी। इसका जो पुरुपार्थ पूर्वका है, तिसका नाम देव है, और देव कोऊ नहीं और जो कोऊ देव कल्पते हैं, सो मूर्ख है. अरु जो पूर्वके जन्म सुकृत करके आया होता है, वही सुकृत सुख होयके देखाई देता है. जो पूर्वका सुकृत वली होता है तो उसहीकी जय होती है जो पूर्वका दुष्कृत वली होता है, अरु शुभका पुरुपार्थ करता है; सत्संग अरु सतशास्त्रहूका विचार श्रवण करता है, तो पूर्वके संस्कारको जीत लेता है. जैसे प्रथम दिन पाप किया होवे, दूसरे दिन वडा पुण्य करे, तो पूर्वका पाप निवृत्त हो जाता है, तैसे जव यहां दृथ पुरुपार्थ करे, तो पूर्वके संस्कारको जीत लेता है ताते जो कछु सिद्ध होता है, सो इसको पुरुपार्थ करके सिद्ध होता है कि, एकत्र भाव करि प्रयत्न करना, इसीका नाम पुरुपार्थ है. जिसका यत्न एकत्र भाव होयके करेगा तिसको अवश्यमेव प्राप्त होवेगा. जो पुरुप अपर देवको जानके अपना पुरुपार्थ त्याग वैठा है, सो दुःखको पावेगा; शांतिवान कवहू न होवेगा

हे रामजी। मिथ्या देवके अर्थको त्यागके तुम अपने पुरुपार्थका अंगीकार करो जो सतजन अरु सतशास्त्रहूके वचन अरु युक्ति साथ, यत्न करके आत्मपदको अभ्यास करके प्राप्त होना, इसीका नाम पुरुपार्थ है प्रकाश करके जैसे पदार्थ हूका ज्ञान होता है, तैसे पुरुपार्थ कर आत्मपदकी प्राप्ति होती है. जो पूर्वके कियेसे वडा पापी होता है; अरु इह

दृढ पुरुषार्थ कियेते उसको जीत लेता है. जैसे वड़ा मेघ होता है, अरु तिसका पवन नाश करता है अरु जैसे वर्ष दिनहूका क्षेत्र पक्का होता है, अरु वर्फ तिसका नाश कर देता है, तैसे पूर्वका संस्कार पुरुष प्रयत्न करके नाश होता है.

हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष सोई है, जाने सत्संग अरु सतशास्त्र द्वारा बुद्धिको तीक्ष्ण करके संसार समुद्र तरवेका पुरुषार्थ किया है अरु जिनने सत्संग अरु सतशास्त्रद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण नहीं करी, अरु पुरुपार्थको त्याग वैठे है, सो पुरुष नीचते नीच गतिको पावेंगे अरु जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो अपने पुरुपार्थ करके परमानंद पदको पावेंगे जिसके पायेते वहुरि दुःख नहीं होता.अरु जो देखने करि दीन होते है, अरु सत्संगति अरु सतशास्त्रके अनुसार पुरुपार्थ करते हैं, सो उत्तम पदवीको प्राप्त होते दृष्टि आवते है हे रामजी! जिस पुरुपने पुरुष प्रयत्न किया है, तिसको सव संपदा आय प्राप्त होती हैं, अरु परमानंद करि पूर्ण हो रहतेहैं. जैसे रत्नहूकरि समुद्र पूर्ण है, तैसे वह परमानंद करके पूर्ण हुए है ताते जो श्रेष्ठ पुरुष है, सो अपने पुरुपार्थ द्वारा ससारके वंधन ते निकस जाते है जैसे केसरी सिंह अपने वलसो पिंजरते निकस जाता है, तेसे वह अपने पुरुपार्थ करि ससार वंधनते निकस जाता है

हे रामजी! यह पुरुष और कछु न करै तव यह करै कि, अपने वर्णाश्रमके अनुसार विचरै, अरु सार पुरुपार्थ करै, जो संतहू अरु शास्त्रहूका आश्रय होवे तिसके अनुसार पुरुपार्थ करे, तव सव वंधनते मुक्त होवेगा अरु जो अपने पुरुपार्थका त्याग किया है, किसी और देवको मानके कहता है कि, वह मेरा कल्याण करेगा, सो जन्म मरणको प्राप्त होवेगा हे रामजी! इस जीवको ससाररूपी विपूचिका रोग है, तिसको दूर करनेका उपाय मै कहता हो संत जन अरु सतशास्त्रहू के अर्थ विपे दृढ भावना करनी, जो कछु तिनहूते सुना है, तिसका वारंवार अभ्यास करना, और सव कल्पना त्यागके एकांत होयके तिसका चिंतन करना, तव इसको परमपदकी प्राप्ति होवेगी, अरु द्वैत भ्रम निवृत्त हो जावेगा. अद्वैतरूप पडा भासेगा, इसकाही नाम पुरुपार्थ है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुपार्थ वर्णन नाम षष्ठः सर्गः॥६॥

षष्ठः सर्गः ६.



अथ परमपुरुपार्थवर्णनम्

वशिष्ठउवाच, हे रामजी इसका जो पूर्वका किया पुरुपार्थ है, तिसका नाम दैव है, और दैव कोऊ नहीं जब यह सत्संग अरु सतशास्त्रका विचार पुरुपार्थ करे तब पूर्वके संस्कारको जीत लेता है जिस. पुरुप इष्ट पानेका यह शास्त्रद्वारा यत्न करेगा, तिसको अवश्यमेव अपने पुरुपार्थते पावेगा, अन्यथा कछु नहीं होती, न हुई है, न होवेगी. पूर्व जो कोऊ पाप किया होता है, तिसका फल जब दुःख [illegible] मूर्ख कहता है, कि हाय दैव हाय दैव, हाय कष्ट, हाय क[illegible]है, अरु वास्त- [illegible] हे रामजी! इसका जो पुरुपार्थ पूर्वका है, तिसका ना[illegible] है; जो अहंमम संवेदन [illegible] फुरने लगता है, वहुरि इंद्रिय अरु स्फूर्त्ति है. जब यह स्फूर्ति संत अरु शास्त्रके अनुसार होवे, तब वह पुरुप परम शुद्धताको प्राप्त होता है अरु जो संत और शास्त्रके अनुसार न होवे, तब वासनाके अनुसार भाव अभाव रूप जो भ्रम जाल है, तिसविषे परा घटीयंत्रकी नाईं भटकता है, शांतिवान् कबहूँ नहीं होता.

हे रामजी! जिस किसीको सिद्धता प्राप्त हुई है, सो अपने पुरुपार्थकर हुई है, विन पुरुपार्थ सिद्धताको प्राप्त न होवेगा जब किसी पदार्थको ग्रहण करना होता है; तब भुजा पसारिये तो ग्रहण करना होता है; अरु जो किसी देशको प्राप्त होना होवे, सो जब चले तब जाय पहुँचिये; अन्यथा नहीं होता, ताते पुरुपार्थ विना सिद्ध कछु नहीं होता जो कोऊ कहता है, दैव करेगा सो होवेगा; सो मूर्ख है हे रामजी! और दैव कोऊ नहीं इस पुरुपार्थका नाम दैव है यह दैव शब्द मूर्खहू का पश्चाता है; जो किसी कष्ट साथ दुःख पाया, तिसको कहते है, दैवका किया है सो और तो दैव कोऊ नहीं

हे रामचंद्र! जो अपना पुरुपार्थ त्यागके दैवके आश्रय होवेगा, सो सिद्धताको प्राप्त न होवेगा; काहेते कि, अपने पुरुपार्थ विना सिद्धता

दृढ पुरुपार्थ कियेते उसको जीत लेता है. जैसे वड़ा मेघ होता है, अरु तिसका पवन नाश करता है अरु जैसे वर्ष दिनहूका क्षेत्र पक्का होता है, अरु वर्फ तिसका नाश कर देता है, तैसे पूर्वका संस्कार पुरुप प्रयत्न करके नाश होता है

हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष सोई है, जाने सत्सग अरु सतशास्त्र द्वारा वृद्धिको तीक्ष्ण करके ससार समुद्र तरवेका पुरुपार्थ किया है अरु जिनने सत्सग अरु सतशास्त्रद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण नहीं करी, अरु पुरुषार्थको त्याग बैठे है, सो पुरुप नीचते नीच गतिको पावेंगे अरु जो श्रेष्ठ पुरुप हैं, सो अपने पुरुपार्थ करके परमानद पदको पावैगे जिसके पायेते वहुरि दुःख अपुरुपार्थ है जो देखने करि दीन होते हैं, अरु सत्संगति अरु सतशा- रुपार्थ करते हैं, सो उत्तम पदवीको प्राप्त होते दृष्टि आवते

हे रामजी! जिस पुरुपने पुरुष प्रयत्न किया है, तिसको सव संपदा सगकारि बुद्धि ती रु परमानंद करि पूर्ण हो रहतेहैं. जैसे वैराग्यके अभ्यास करके बुद्धि तीक्ष्ण [illegible] तीक्ष्ण बुद्धि करके इनको पुष्टकरै जैसे वडे तालमें मेघ पुष्ट होताहे, वहुरि वर्पा करके मेघ तालको पुष्ट करताहै तैसे शुभ गुण करके बुद्धि पुष्ट होती है अरु पुष्ट बुद्धि करि शुभगुण पुष्ट होते हैं

हे रामजी! जो वालक अवस्थाते लेकरि अभ्यास किया होता है उसको शुद्धता प्राप्त होतीहै अर्थ यह कि दृढ अभ्यास विना शुद्धता प्राप्त नहीं होती है जो किसी देश अथवा तीर्थ जाना होवे तव मार्गविपे निरआलस होके चला जावे, तो जाय पहुचेगा अरु जव भोजन करेगा तव क्षुधा निवृत्त होवेगी, अन्यथा नहीं होवेगी अरु जव मुख विपे जिह्वा शुद्ध होवेगी तव पाठ स्पष्ट होवेगा, गुगासों पाठ नहीं होता ताते जो कछु कार्य सिद्ध होताहे, सो अपने पुरुपार्थ कर सिद्ध होताहे, तूष्णी होरहनेते कोई कार्य सिद्ध नहीं होता अरु सवही गुरु वैठेहै, इनहूते पूछ देखो, आगे जो तेरी इच्छा हो सो कर. अरु जो मुझसों पूछे तो सव शास्त्र का सिद्धांत कहताहों, जिसकरि सिद्ध ताको प्राप्त होवेगा

हे रामजी! सत जेहैं, ज्ञानवान पुरुप, अरु सतशास्त्र जो है, ब्रह्मविद्या,

तिनके अनुसार संवेदन अरु मन अरु इंद्रियाको विचारना होवे; अरु इससे विरुद्ध होवे तिससे वर्ज्य रखना, तिसकरके तुझको संसारका राग द्वेष स्पर्श नहीं करेगा, सबसे निर्लेप रहेगा जैसे जलते कमल निर्लेप रहता है, तैसे तू निर्लेप रहैगा.

हे रामजी ! जिस पुरुषते शांति प्राप्तहोवे. तिसकी भली प्रकार सेवा करिये, काहेते कि, उसका वडा उपकार है, जो ससार समुद्रते निकासिलेताहै. हे रामजी ! संत जन भी वहीहैं, अरु सतशास्त्रभी वही हैं; जिनके विचार करि अरु सगति करि संसारते चित्त उपरति होवे, मोक्षका उपाय वही है, ताते और सव कल्पनाको त्यागके अपने पुरुषार्थ को अंगीकार करो, तव जन्म मरनका भय निवृत्त होजावे.

हे रामजी । जब यह वांछा करताहै अरु तिसके निमित्त दृढ पुरुषार्थ करताहै, तव अवश्यमेव तिसको पावे, अरु जो वडे तेज अरु विभूति करके संपन्न तुझको दृष्टि आते है, अरु सुनताहै; सो अपने पुरुषार्थ करि भये हैं. अरु जो महानिष्ट सर्प कीट आदिक तुझको दृष्टि आते हैं, तिनने अपने पुरुषार्थका त्याग कियाहै, तव ऐसे हुए हैं.

हे रामजी ! अपने पुरुषार्थको आश्रयकर; नहीं तो सर्प कीटादिक नीच योनिको प्राप्त होवेगा. जिस पुरुषने अपना पुरुषार्थ त्यागाहै, और किसी दैवका आश्रय धराहै, सो महामूर्ख है, काहेते कि,यह वार्त्ता व्यवहारमें भी प्रसिद्ध है कि, अपने उद्यम किये विना किसी पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती; तो परमार्थकी प्राप्ति कैसे होवे ? ताते दैवको त्याग करि सतजन अरु सतशास्त्रोंके अनुसार यत्न करो परमपद पानेके निमित्त जो दु:खनते मुक्त होवे. हे रामजी ! जो जनार्दन विष्णुजी है सो अवतार धर कर दैत्य हुको मारताहै, अरु अपर चेष्टा भी करता है परतु पापका स्पर्श उनको नहीं होता, काहेते जो अपने पुरुषार्थ करके अक्षय पदको प्राप्त हुआहै. तुम भी पुरुषार्थका आश्रय करो, अरु संसार समुद्रको तरि जावो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थ उपमा वर्णन नाम सप्तम: सर्ग: ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.

अथ परमपुरुपार्थवर्णनम्

वशिष्ठ उवाच, हे रामजी ! यह जो दैव शब्द है सो मूर्खोंने कल्पा है, कि दैव हमारी रक्षा करैगा हमको दैवका आकार कोऊ दृष्टि नहीं आवता, न कोऊ दैवका काल है, न दैव कछु करताही है मूर्ख लोग दैव दैव परे कहते है. अपर दैव कोऊ नहीं इसका पूर्वका कर्म ही दैव है

हे रामजी ! जिन पुरुषोंने अपने पुरुषार्थका त्याग किया है, अरु दैव परायण हुए है कि, दैव हमारा कल्याण करैगा सो मूर्ख है, काहेते जो अग्नि विषे यहजाय पडे, अरु दैव इसको निकासि लेवे, तव जानिये कि, कोऊ दैव भी है, सो तो नही अरु जो दैव करता है, तो यह स्नान, दान, भोजन, आदिहूका त्याग करि तूष्णी होय वैठे, आपही दैव कर जावैगा, सो भी इसके किये विना नहीं होता, ताते और दैव कोऊ नहीं अपना पुरुपार्थ ही कल्याण कर्त्ता है

हे रामजी ! जो इसका किया कछु नही होता, अरु दैवही करने हारा होता, तो शास्त्र अरु गुरुका उपदेशभी नहीं होता सो सतशास्त्रके उपदेश करके अपने पुरुपार्थद्वारा इसको वांछित पदवी प्राप्त होती है, ताते और जो कोऊ दैव शब्द है, सो व्यर्थ है, इस भ्रमको त्याग करके संत अरु शास्त्रहूके अनुसार पुरुपार्थ करै तव दुःखनते मुक्त होवेगा हे रामजी ! और दैव कोऊ नहीं, इसका पुरुपार्थ जो है स्पद, सोई दैव है

हे रामजी ! जो कोऊ और दैव करन हारा होता तो जव इस शरीरको त्यागता है, अरु शरीर जव नाश होजाता है, क्रिया शरीरसों कछु नही होती काहेते जो चेष्टा करनेहारा त्याग जाता है तव दैव होता तो सभी शरीरसों चेष्टा करावता सो तो चेष्टा कछु नहीं होती, ताते जानना कि, दैव शब्द व्यर्थ है हे रामजी ! पुरुपार्थकी वार्त्ता है, सो अज्ञानी जीवोंको भी प्रत्यक्ष है, कि अपने पुरुपार्थ विना कछु होता नहीं गोपाल भी जानता है जो मैं गौवोंको चराऊँ नहीं तो भूखा ही रहूगा, ताते और दैवके आश्रय वैठि नहीं रहता आपही चराय ले आवता है

हे रामजी ! और देवकी कल्पना भ्रम करके परे करते हैं, अपर देव तो हमको कोऊ दृष्टि नहीं आवता. हस्त, पाद, शरीर, देवका कोऊ दृष्टि नहीं आवता अपने पुरुपार्थ करि सिद्धता दृष्टि आती है. अरु जो कोऊ, आकारते रहित देव कल्पिये तो नहीं वनता काहेते कि, निराकार अरु साकारका संयोग कैसे होवे ? हे रामजी ! और देव कोऊ नहीं, अपना पुरुपार्थ देवरूप है जो राजा ऋद्धि, सिद्धि, संयुक्त भासता है, सो भी अपने पुरुपार्थ करि हुए हैं.

हे रामजी ! यह जो विश्वामित्र हैं, याने देव शब्द दूरहीते त्याग किया है, सो भी अपने पुरुपार्थ करके क्षत्रियते ब्राह्मण हुए हैं। अरु अपर जो वडे विभूतिवान हुए हैं, सो भी अपने पुरुपार्थ करि दृष्टि आवतेहैं. हे रामजी ! जो देव पढे विना पंडित करे तो जानिये देवने किया, सो तो पढे विना पंडित कहूँ नहीं होता, अरु जो अज्ञानीते ज्ञानवान् होते हैं, सो भी अपने पुरुपार्थ करि होते हैं,ताते अपर देव कोऊ नहीं मिथ्या भ्रमको त्याग करि, संतजन अरु सतशास्त्रहूके अनुसार संसार समुद्र तरनेका प्रयत्न करो, तेरे पुरुपार्थ विना अपर देव कोऊ नहीं. जो अपर देव होता तो वहुत वेर किया वलभी अपनी क्रियाको त्यागके सोइ रहता, आप देवही पडा करेगा, सो ऐसे तो कोऊ नहीं करता। ताते अपने पुरुपार्थ विना कछु सिद्ध नहीं होता अरु जो इसका किया कछु न होता तो पाप करनेहारे नरक न जाते, अरु पुण्य करनेहारे स्वर्ग न जाते, परन्तु पाप करनेहारे नरकमें जाते हैं अरु पुण्य करनेहारे स्वर्गमें जाते हैं, ताते जो कछु प्राप्त होता है, सो अपने पुरुपार्थ करि होता है.

हे रामजी ! जो कोऊ अपर देव करता है, ऐसा कहै तिसका शिर काटिये, अरु देवके आश्रय जीवता रहै तो जानिये कि, कोऊ देव है. सो तो जीवता कोऊ रहता नहीं, ताते देवशब्दको मिथ्या भ्रम जानके संतजन अरु सतशास्त्रहूके अनुसार अपने पुरुपार्थ करि आत्मपद विषे स्थित होवो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुपार्थवर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

अथ परमपुरुषार्थवर्णनम्.

रामउवाच। हे भगवन्, सर्व धर्म वेत्ता! तुम कहते हो कि, और दैव कोई नही,परन्तु ब्राह्मण भी दैव है ऐसा कहते हैं, और दैवका किया सब कछु होता है, अरु सुख दुःखका देनेहारा दैव है, यह लोकविषे प्रसिद्ध है.

वसिष्ठउवाच, हे रामजी! मै तुझको ऐसे कहता हों, जो तेरा भ्रम निवृत्त होजावे, इसहीका कर्म किया हुआ है, शुभ अथवा अशुभ तिसका फल अवश्यमेव भोगना है सो दैव कहो, पुरुपार्थ कहो अपर दैव कोऊ नहीं, अरु कर्त्ता, क्रिया, कर्म आदिकहू विषे तो दैव कोऊ नही. और कोऊ दैवका स्थान नही रूप नही, तो अपर दैव क्याकहिये हे रामजी! मूर्खहूके परचावने निमित्त दैव शब्द कहा है जैसे आकाश शून्य है, तैसे दैवभी शून्य है

रामउवाच, हे भगवन्! सर्व धर्महूके वेत्ता! तुम कहते हो कि, अपर दैव कोऊ नही, सो आकाशकी नाई शून्य है, सो तुम्हारे कहने परभी दैव सिद्ध होता है तुम कहते हो कि, इसके पुरुपार्थका नाम दैवहै, अरु जगत् विषे भी दैव शब्द प्रसिद्ध है

वसिष्ठउवाच, हे रामजी! मै ऐसे तुझको कहता हों जिस करि दैव शब्द तेरे हृदयसों उठि जावे अर्थ यह कि, शून्य होजावे दैव नाम अपने पुरुपार्थका है अरु पुरुपार्थ नाम कर्मका अरु कर्म नाम वासनाका है, वासना मनते होती है अरु मनरूपी पुरुष है जिसकी वासना करता है, सोई इसको प्राप्त होता है जो गांवको प्राप्ति होनेकी वासना करताहै, सो गांवको प्राप्त होता है, जो पत्तनकी वासना करताहै, सो पत्तनको प्राप्त होताहै; ताते अपर दैव कोऊ नहीं पूर्वका जो शुभ अथवा अशुभ दृढ पुरुपार्थ किया तिसका परिणाम सुख दुःख अवश्य होता है और तिसी-काही नाम दैव है

हे रामजी! तुम विचारकर देखो कि, अपना पुरुपार्थ कर्महूते भिन्न-नही तो सुख दुःख देनहारा अरु लेनहारा दैव कोऊ नहीं हुआ क्योंकि

अरु दमको धारि, अर्थ यह जो सपूर्ण संसारकी वासनाका त्याग करहु, अरु उदारता करके तृप्त रहना, इसका नाम शम है. अरु दम अर्थ यह जो बाह्य इद्रियको वश करना. जब इसको प्रथम धारेगा तब परमतत्त्वका विचार आय उत्पन्न होवेगा तिस विचारते विवेकद्वारा परमपदकी प्राप्ति होवेगी जिस पदको पाय करि बहुरि दुःख कदाचित् न होवेगा, अविनाशी सुख तुझको आय प्राप्त होवेगा. ताते जो कछु मोक्ष उपाय यह संहिता है; तिसके अनुसार पुरुषार्थ करहु, तब आत्मपदको प्राप्त होवेगा पूर्व जो कछु ब्रह्माजीने हमको उपदेश किया है,सो मैं तुमको कहताहू.

राम उवाच, हे मुनीश्वर! तुमको जो ब्रह्माजीने उपदेश कियाथा, सो किस कारण किया था, अरु कैसे तुमने धारा सो कहो

वसिष्ठ उवाच, हे रामचंद्र! शुद्ध चिदाकाश एक है अरु अनंत है, अविनाशी है, परमानंदरूप है, चिदानद स्वरूप है, ब्रह्म है, तिस विषे संवेदन स्पदरूप होवे है, सो विष्णु होइ कर स्थित भई है, सो विष्णुजी कैसा है? जो स्पंद अरु निस्पंद विषे एक रस है. कदाचित् अन्यथा भावको नहीं प्राप्त हुआ जैसे समुद्र विषे तरग उपजते हैं, तैसे शुद्ध चिदाकाशते स्पद करके विष्णु उत्पन्न हुआ है; तिस विष्णुजीके स्वर्णवत् किरण नाभि कमलते ब्रह्माजी प्रगट भया है. तिस ब्रह्माजीने ऋषि, मुनीश्वर सहित स्थावर जंगम प्रजा उत्पन्न करी, तिस मनोराज करि जगतको उत्पन्न किया; तिस—जगत्के कोन विषे जो जबूद्वीप, भरतखड है; तिस विषे मनुष्यको दुःखकरि आतुर देखि ब्रह्माजी को करुणा उपजी, जैसे पुत्रको देखि पिताको करुणा उपजती है तब तिसके सुख निमित्त ब्रह्माजीने तप उत्पन्न किया, कि सुखी होय; अरु आज्ञा करी कि, तप करो; तब तप करत भये; तिस तप करि स्वर्गादिक सुखको जाय प्राप्त होने लगे; तिन सुखनको भोगि करि बहुरि गिरहिं, तब दुःखी रहे. ऐसे ब्रह्माजी देखि करि सत्यशास्त्र, धर्मको प्रतिपादन करत भये; तिनके सुखके निमित्त आज्ञा करी; तिन धर्मकी प्रतिपादना करी लोकनको सुख प्राप्त होने लगे; तहाँ केतिक काल सुख भोग करि बहुरि गिरहिं, तब दुःखीके दुःखी रहे। बहुरि ब्रह्माजीने दान

तीर्थादिक पुण्यक्रिया उत्पन्न करके, उनको आज्ञा करी कि, इनके सेवने करि तुम सुखी होहुगे जब वे जीव उनको सेवने लगे. तब बडे पुण्य लोकहूको प्राप्त भये, अरु तिनके सुख भोगने लगे बहुरि केतिक काल अपने कर्मके अनुसार भोग भोगि गिरे; तब तृष्णाकरि बहुत सुख दुःखके अनुभव करते भये, अरु दुःखकरि आतुर हुए, तब ब्रह्माजी देखत भया, किये जन्म अरु मरणके दुःख करि महादीन होते हैं, ताते सोई उपाय करिये,जिसकरि उनका दुःख निवृत्त होवे.

हे रामचद्र ! ब्रह्माजी विचारत भया, कि इनका दुःख आत्मज्ञान विना निवृत्त नही होनेका, ताते आत्मज्ञानको उत्पन्न करिये, जो यह सुखी होवहिं, इस प्रकार विचार करि आत्मतत्त्वका ध्यान करता भया आत्मतत्त्वके ध्यानते सकल्प किया, तिस ध्यानके करनेसे जो शुद्ध तत्त्वज्ञान है, तिसकी मूर्त्ति होकर मैं प्रगट भया सो मैं कैसा हूं? ब्रह्माजी-के समान हूं जैसे उनके हाथ विषे कमडलु है, तैसे मेरे हाथ विषे कमडलु है, जैसे उनके कठ विषे रुद्राक्षकी माला है, तैसे मेरे कठमें भी रुद्राक्षकी माला है, जैसे उनके ऊपर मृगछालाहै, तैसे मेरे ऊपर मृगछाला है; इस प्रकार ब्रह्माजीका अरु मेरा समान आकार है, अरु मेरा शुद्धज्ञानी स्वरूप है, मुझे जगत् कछु नहीं भासता; सुषुप्तिकी नाई जगत् मुझको भासता है, तब ब्रह्माजीने विचार किया कि, इसको मैं जीवनके कल्याण निमित्त उत्पन्न किया है, अरु यह तो शुद्धज्ञान स्वरूप है, अरु अज्ञान मार्गको उपदेश तब होवे, जब कछु प्रश्न उत्तर होवे, अरु तब मिथ्याका विचार होवे

हेरामजी! जीवनके कल्याण निमित्त मुझको ब्रह्माजीने गोदमें बिठाया, अरु शीशपै हाथ फेरा, तिस करि मैं शीतल होगया. जैसे चद्रमाकी किरणहू करि शीतलता होती है, तैसे मैं शीतल भया. तब ब्रह्माजी मुझको जैसे हसहसकर, यों कहा-हे पुत्र! जीवनके कल्याण निमित्त एक मुहूर्त्त पर्यंत तुम अज्ञानको अंगीकारकरहु श्रेष्ठ पुरुष जो है सो ओरहूके निमित्तभी अगीकार करते आये हैं. जैसे चद्रमा बहुत निर्मल है, परन्तु श्यामताको अंगीकार किया है, तैसे तू भी एक मुहूर्त्त अज्ञानको अगीकार कर

हे रामजी। इस प्रकार मुझको कह कर ब्रह्माजीने शाप दिया, "कि, तू अज्ञानी होवेगा" तब मैंने ब्रह्माजी की आज्ञा मानि शापको अंगीकार किया.तब मेरा जो शुद्ध आत्मतत्त्व आपना आपथा, तिससे मैं अन्यकी नाईं होत भया, मेरी स्वभावसत्ता मुझको विस्मरण हो गई, अरु मेरा मन जागि आया; भाव अभाव रूप जगत् मुझको भासने लगा अरु आपको मैं वसिष्ठ अरु ब्रह्माजीका पुत्र यों जानत भया अरु नाना प्रकारके पदार्थ सहित जगत् जानत भया अरु तिनकी ओर चचल होत भया; तब मैं संसार जालको दु:ख रूप जानि करि ब्रह्माजीते पूछत भया हे भगवन्। यह संसार कैसे उत्पन्न भया अरु कैसे लीन होता है? हे रामजी! जब इस प्रकार पिता ब्रह्माजीसों प्रश्न किया,तब भली प्रकार मुझको उपदेश करत भया, तिस करि मेरा अज्ञान नष्ट होगया जैसे सूर्य उदय हुए, तम निवृत्त होजाता है, तैसे मेरा अज्ञान निवृत्त होगया;अरु मैं शुद्धताको प्राप्त भया. जैसे आदर्शको मार्जन करता है,अरु शुद्ध हो आवता है,तैसे मैं शुद्ध हुआ.

हे रामजी! मैं ब्रह्माजीसे भी अधिक होत भया, तब मुझ को परमेष्ठी ब्रह्माजीने आज्ञा करी-हे पुत्र! जंबूद्वीप भरतखंडमें जा.तुझको सृष्टिपर्यंत-विषे अधिकार है तहाँ जाइकरि जीवनको उपदेश करहु; जिसको संसारके सुखकी इच्छा होवे, तिसको कर्ममार्गका उपदेश करना; तिसकरि स्वर्गादिक सुख भोगेंगे. अरु संसारते विरक्त होवें और जिनको आत्मपदकी इच्छा होवे, तिनको ज्ञान उपदेश करना; ताते तुम अब भुवलोक विषे जाहु. हे रामजी! इस प्रकार मेरा उपदेश अरु उपजना हुआ है, अरु इस प्रकार मेरा आवना हुआ है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वसिष्ठोत्पत्ति तथा वसिष्ठोपदेशागमनो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

अथ वसिष्ठोपदेशवर्ण

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी [illegible] का १ ५०
मैं कैसा हों ? जाको आत्म [illegible] सो

मुझको उत्पन्न करत भये राम उवाच, हे मुनीश्वर ! तिस ज्ञानकी उत्पत्ति ते अनंतर जीवनकी शुद्धि कैसे भई ? सो कहो

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी ! जो शुद्ध आत्मतत्त्वहै, तिसका स्वभाव रूप संवेदन स्फूर्तिहै, सो ब्रह्माजीरूप होकर स्थित भई है. जैसे समुद्र अपनी द्रवता करके तरग रूप होता है, तैसे ब्रह्माजी भयाहै बहुरि संपूर्ण जगत्को उत्पन्न किया, अरु तीनों काल उत्पन्न किये, तब केता काल व्यतीतहुआ; अरु कलियुग आया, तिसकरि जीवहूकी बुद्धि मलीन होगई, अरु पाप-विषे विचरनेलगे, शास्त्र वेदकी आज्ञा माननेते रहगये इस प्रकार धर्मकी मर्यादा छिपगई, अरु पाप प्रगट भया; जेती कछु राजधर्मकी मर्यादा थी, सो सब नष्ट होगई, अरु अपनी इच्छाके अनुसार जीव विचरने लगे, ताते कष्ट पावनेलगे तिनको देखि करि ब्रह्माजीको करुणा उपजी, तिस दयाको धारि करि भूलोक विषे मुझको भेजा, अरु कहा-हेपुत्र! जायकरि तुम धर्म-की मर्यादा स्थापन करो, अरु जीवनको शुद्ध उपदेश करो जिसको भोगहूकी इच्छा होवे, तिसको कर्मकांडका उपदेश करना; और जप, तप, स्नान, संध्या यज्ञादिकका उपदेश करना, अरु जो संसारते विरक्त हुएहैं, अरु मुमुक्षुहैं, जिनको परमपद पानेकी इच्छाहै. तिनको ब्रह्मविद्याका उपदेश करना.

हे रामचंद्र ! जिस प्रकार ब्रह्माजी मुझको आज्ञाकरि भूमिलोक विषे भेजते भये, तैसेई सनत्कुमार, नारद कोहू कहतेभये, तब हम सब ऋपीश्वर इकट्ठे होकर विचारते भये-कि, जगत्की मर्यादा किसप्रकार होवे, अरु जीव शुभमार्ग विषे कैसे विचरहि । तब हमने यह विचार किया कि, प्रथम राज्यहूका स्थापन करना जो जीव तिनकी आज्ञानुसार विचरहि प्रथम दण्डकरता राजा स्थापन किया, सो कैसा राजा ! जो बडा वीर्यवान्, अरु तेजवान्, बडा उदार आत्मा भया, तिस राजाहूको हम अध्यात्मक विद्या उपदेशकरी, तिस करि परमपदको प्राप्त भये. जो परमानंदरूप अविनाशी पदहै, तिस ब्रह्मविद्याका उपदेश तिसको भया, तब सुखी भये इसकारणते ब्रह्मविद्याकानाम राजविद्याहै. तब हमहूने वेद, शास्त्र, श्रुति पुराणकरि धर्मकी मर्यादा स्थापनकरी, सो जप, तप, यज्ञ,

दान, स्नान, आदिक क्रियाको प्रगट कीनी अरे जीव ! तुम इनके सेवने करि सुखी होगे, तब सब फलको धारि करि तिनको सेवने लगे, तामें कोऊ विरला निरहंकारहृदयशुद्धताके निमित्त कर्म करतेथे

हे रामजी ! जो मूर्ख हैं सो कामनाके निमित्त मनमें फूलके कर्म करते हैं सो घटी यंत्रकी नाईं भटकते फिरते हैं सो कबहूँ ऊर्ध्व अरु कबहूँ नीचे आतेहैं और जो निष्काम करते हैं, तिसका हृदय शुद्ध होताहै, फिर सो ब्रह्मविद्याके अधिकारी होते हैं, ताके उपदेशद्वारा आत्मपदकी प्राप्ति होती है, इस प्रकार सो जीवन्मुक्त हुए हैं, कई राजा प्रसिद्ध हुएहै, सो राज्यको परंपरा चलावते हमारे उपदेश द्वारा ज्ञानको प्राप्त भयेहै, और राजा दशरथहू ज्ञानवान् भयाहै और तूभी इसी दशाको आयके प्राप्त हुआहै, सो तू सबसे श्रेष्ठ हुआहै जैसे तू विरक्तआत्मा हुआहै, तैसे आगेहू, स्वाभाविक विरक्त आत्मा भये हैं. सो स्वभावकर देह शुद्धि कर हुए हैं, इसी कारणते तू श्रेष्ठहै जो कोऊ अनिष्ट दुःख प्राप्त होताहै, तिस कर विरक्तता उपजती है, सो तुझको नहीं भई तुझको सब इंद्रियके विषय विद्यमानहैं, तैसे होते तेरेको वैराग्य हुआहै ताते तू श्रेष्ठहै.

हे रामजी ! जो मशान आदिक कष्टके स्थान कहे, ता ठिकाने सबको वैराग्य उपजताहै "जो कछु नहीं ! मरजाना है !" तिनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष होता है, सो वैराग्यको दृढ कर रखताहै और जो मूर्ख है सो फिर विषयमें आसक्त हो जाता है, ताते जिनको अकारण वैराग्य उपजता है, सो श्रेष्ठहैं, हे रामजी ! जो श्रेष्ठ पुरुष है, सो अपने वैराग्य अरु अभ्यासके बल करके संसार बंधनते मुक्त होजाते है. जैसे हस्ति बंधनको तोरके अपने बलसों निकस जाता है, तब सुखी होता है, तैसे वैराग्य अभ्यासके बलकर बंधनते ज्ञानी मुक्त होता है.

हे रामजी ! यह संसार बड़ा अनर्थरूपहै, जिस पुरुषने अपने पुरुषार्थ करके बंधनको नहीं तोरा, तिसको राग द्वेष रूपी अग्नि जरावत है, अरु जिन पुरुषोंने अपने पुरुषार्थ करके शास्त्र और गुरुको प्रमाण करके ज्ञान साधा है, सो उस पदको प्राप्त भये हैं. तिनको अध्यात्मक, अधिदैविक, अधिभौतिक, ताप जलाय सकता नहीं, जैसे वर्षाकालमें बहुत वर्षाके होने

वनको दावानल जलाय नहीं सकता, तैसे ज्ञानीको अध्यात्मक आदि ताप कष्टको नहीं देते

हे रामजी ! जिन श्रेष्ठ पुरुषोंने संसारको विरस जानकर त्याग किया है, तिनको ससारका पदार्थ गिराय नहीं सकता अरु जो मूर्ख है तिनको गिराय देतेहैं, जैसे अंध्यागी चलत पवनके वेगसों वृक्ष गिर जातेहै; परंतु कल्पवृक्ष गिरता नही. तैसे हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुष वहीहै जिसको संसार विरस होगयाहै; सो केवल आत्मतत्त्वकी इच्छा करके तिसमे परायण भयेहैं, तिनकोही ब्रह्मविद्याका अधिकारहै, सोई उत्तम पुरुषहै हे रामजी ! तूभी तैसा उज्ज्वल पात्रहै, जैसे कोमल पृथ्वीमें बीज बोतेहै, तैसे तुमको मैं उपदेश करता हों और जिसको भोगकी इच्छा है और ससारकी ओर यत्न करता है, सो पशुवत है श्रेष्ठपुरुष वही है जिसको ससार तरनेका पुरुषार्थ होता है

हे रामजी ! प्रश्न तिनके पास करिये, जिनको जानिये कि, मेरे प्रश्नका उत्तर देनेको समर्थ है और जिसमें उत्तर देनेकी सामर्थ्यता दिखनेमें नहीं आवे, तिससों प्रश्न करना नहीं और उत्तर देनेको जो समर्थ देखिये, और तिसके वचनमें भावना न होय, तब भी तिससों प्रश्न न करिये काहेते कि, दंभकर प्रश्न करनेमें पाप होता है और गुरु भी उपदेश तिनको करता है, जो ससारते विरक्त होवे, अरु केवल आत्मपरायण होनेकी श्रद्धा होवे, अरु आस्तिक भाव होवे, ऐसा पात्र देखके उपदेश करै हे रामजी ! जो गुरु अरु शिष्य दोनों उत्तम होते है, तब वचन शोभते हैं तुम उपदेशका शुद्ध पात्र हो, जेते कछु गुण शिष्यके शास्त्रमें वर्णन किये है, सो सब तेरेमें प्राप्त है और मैं उपदेश करनेमें समर्थ हों, ताते कार्य्य शीघ्र होवेगा

हे रामजी ! शुभ गुण साथ तेरी बुद्धि निर्मल होय रही है, मेरा जो सिद्धांतका सार वचनहै सो तेरे हृदयमें प्रवेश कर रहेगा. जैसे उज्ज्वल वस्त्रमें केशरका रंग शीघ्र चढ जाता है, तैसे तेरे निर्मल चित्तमें उपदेशका रग लगैगा जैसे सूर्यके उदयते सूर्यमुखी कमल खिलते हैं, तैसे तेरी बुद्धि शुभ गुण कर खिल आईहै हे रामजी ! जो कछु शास्त्रका

सिद्धांत आत्मतत्त्व मैं तुमको कहता हौं, तिसमें तेरी बुद्धि शीघ्र प्रवेशकरैगी जैसे निर्मल जलमें सूर्यकी कांति प्रवेश करती है. तैसे तेरी बुद्धि आत्मतत्त्वमें शुद्धता करके प्रवेश करैगी.

हे रामजी! मैं तुम्हारे आगे हाथ जोरके प्रार्थना करताहूँ, जो कछु मैं तुझको उपदेश करता हौं तिसविषे तुम आस्तिक भावना करियो, कि इन वचनों कर मेरा कल्याण होवेगा, अरु जो तुमको धारना न होवे तो प्रश्न मत करना जो शिष्यको गुरुके वचनमें आस्तिक भावना होती है. तिसका शीघ्र कल्याण होता है,ताते मेरे वचनमें आस्तिक भावना करियो, और जिसकर तू आत्मपदको प्राप्त होवेगा सो मैं कहता हौं प्रथम तो यह कर जिन अज्ञानी जीवनमें असत्यबुद्धिहै तिनका संग त्यागकर, अरु मोक्षद्वारके जो चार द्वारपाल हैं, तिनसों मित्र भावना कर. जब तिनसो मित्रभाव होयगा, तब वह मोक्षद्वारमें पहुँचाय देवैंगे, तब आत्मदर्शन तुमको होवेगा सो द्वारपालके नाम श्रवण कर-सम, संतोष, विचार, सत्सग यह चारों द्वारपाल हैं. जिस पुरुषने इनको वश किया है तिसको यह शीघ्र मोक्षरूपी द्वारके अंतर कर देते हैं. हे रामजी! जो चारों वश न होवैं, तो तीनोंको वश कर, अथवा दोको वश करले अथवा एकको वश कर, जो एक वश होवेगा. तो चारोंइ वश होजायँगे, इन चारोंका परस्पर स्नेह है, जहाँ एक आता है तहाँ चारों आयके रहते हैं. जो पुरुषने इनसे स्नेह किया है सो सुखी भया है, और जिनने इनका त्याग किया है, सो दुःखी है. हेरामजी! यद्यपि प्राणका त्याग होवे, तोभी एक साधन तो बल करके वश करना, एकके वश कियेते चारोंही वश होयँगे अरु तेरी बुद्धिमें शुभ गुणने आयके निवास किया है, जैसे सूर्यमें सब प्रकाश आये हुए हैं तैसे संतने अरु शास्त्रने जो निर्मल गुण कहे हैं. सो सब तेरेमें प्राप्त हैं हेरामजी! अब तू मेरे वचनका अधिकारी भयाहै, जैसे चन्द्रमाके उदयते चन्द्रमुखी कमल खिल आते हैं, तैसे शुभ गुण कर तेरी बुद्धि खिल आई है.

हे रामजी! सत्संग अरु सतशास्त्र द्वारा बुद्धिको तीक्ष्ण कियेते शीघ्र आत्मतत्त्वमें प्रवेश होता है. ताते श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसने संसारको

विरस जानके त्याग किया है अरु संत अरु सतशास्त्रके वचन द्वारा आत्मपद पानेका यत्न करता है, सो अविनाशी पदको प्राप्त होता है.और जो संसारका त्याग करके संसारकी ओर लगे हैं सो महामूर्ख जड है. जैसे जल शीतलता करके वर्फ हो जाता है, तैसे अज्ञानी मूर्खता करके आत्ममार्गते जड होइ रहे है, हे रामजी ! अज्ञानी के हृदयरूपी बिलमें दुराशा रूपी सर्प रहता है, सो कदाचित् शांति नहीं पाता, अरु आनंदसों कवहू प्रफुल्लित नहीं होता अरु आशा करके सदा संकुचित रहता है. हे रामजी ! आत्मपदके साक्षात्कारमें विशेष आवरण आशाहीहै जैसे सूर्यके आगे मेघका आवरण होताहै, तैसे आत्मतत्त्वके आगे दुराशाका आवरण है जव आशारूपी आवरण दूर होवे, तव आत्मपदका साक्षात्कार होवे हे रामजी ! आशा तव दूर होवे जव सतकी संगति अरु सतशास्त्रका विचार होवे

हे रामजी ! संसाररूपी एक वडा वृक्षहै, सो वोध रूपी खड्ग कर छेदा जाता है, जव सत्सग अरु सतशास्त्रकर तीक्ष्ण बुद्धि होवे, तव संसाररूपी भ्रमका वृक्ष नष्ट हो जाताहै जव शुभ गुण होतेहैं, तव आत्मज्ञान आयके विराजताहै, जहाँ कमल होतेहै तहाँ भौरे आयके स्थित होतेहै, तव शुभ गुणमें आत्मज्ञान रहताहै. हे रामजी ! शुभ गुणरूप पवन कर जव इच्छा-रूपी मेघ निवृत्त होता है, तव आत्मारूपी चद्रमाका साक्षात्कार होताहै, जैसे चद्रमाके उदय हुए आकाश शोभता है, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए तेरी बुद्धि खिलैगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वसिष्ठोपदेशो नाम एकादशःसर्ग ॥११॥

द्वादशः सर्गः १२.

अथ तत्त्वज्ञमाहात्म्यवर्णनम्.

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी ! अव तू मेरे वचनका अधिकारी है, काहेते कि, तप, वैराग्य, विचार, सतोष आदि जो शुभ गुण संत अरु शास्त्रने कहेहै, सो सव तेरेमें प्राप्तहैं, ताते तू मेरे वचनको सुन, सो रज तम गुणको

त्यागकर शुद्ध सात्त्विकवान् होकर सुन-राजस जो विक्षेप अरु तामस जो लय निद्रामें होतेहैं, सो दोऊका त्याग करके सुन. जेते कछु जिज्ञासुके गुण शास्त्रमें वर्णन कियेहैं, सो सब कर तू संपन्नहै, अरु जेते कछु गुरुके गुण शास्त्रमें वर्णन कियेहैं, सो सब मेरेमें हैं. जैसे रत्नकर समुद्र सपन्नहै तैसे मैं सम्पन्न हों ताते मेरे वचनका तू अधिकारीहै; और मूर्खको मेरे वचनका अधिकार नहीं हे रामजी ! जैसे चन्द्रमाके उदयते चन्द्रकांत मणि द्रवीभूत होती है, तब तामें ते अमृत स्रवता है, और पत्थरकी शिला है, तिनते द्रवीभूत नहीं होताहै; तैसे जो जिज्ञासु होताहै तिनको परमार्थ वचन लगता है, अरु अज्ञानीको नहीं लगता हे रामजी ! शिष्यतो शुद्ध पात्र होवे, अरु उपदेश करनेहारा ज्ञानवान् न होवे, तो उसको आत्माका साक्षात्कार नहीं होवे, जैसे चंद्रमुखी कमलनी निर्मलहोय, अरु चंद्रमा न होय तब प्रफुल्लित नहीं होती तैसे ताते तू मोक्षकापात्रहै. अरु मैंभी परम गुरुहों मेरे उपदेश कर तेरा अज्ञान नष्ट होय जावेगा

मैं मोक्षका उपाय कहताहों, जब तिसको तू भले प्रकार विचारेगा; तब जेती कछु मलीन मनकी वृत्तिहै, तिनका अभाव होजायगा; जैसे महाप्रलयके सूर्यकर मंदराचल पर्वत जलजाता है. ताते हे रामजी ! वैराग्य अरु अभ्यासके बलकर इस मनको अपने विषे लीनकर शांतात्मा होयहु तैंने बालकावस्थासों लेकर अभ्यासकर रक्खाहै, ताते मन उपशम पायके आत्मपदको प्राप्त होवेगा. हे रामजी ! सत्संग अरु सतशास्त्रद्वारा जो आत्मपद पाया है, सो सुखी भये हैं फिर तिनको दुःख नहीं लगता, काहेते जो दुःख देहाभिमानकर होता है सो देहका अभिमान तो उनने त्याग दिया है, तैसे जिसने देहका अभिमान त्यागदिया है अरु देहका आत्मता करके बहुरि ग्रहण नहीं करता ताते सुखी रहता है. हे रामजी ! जिनने आत्मावल धरके विचारद्वारा आत्मपदको पाया है, सो अहर्निश आनंदकर सदा पूर्ण हैं; सब जगत् तिनको आनंदरूप मानताहै; अरु जो असम्यग्दर्शी है, तिनको जगत् अनर्थरूप मानता है. हे रामजी ! ससरन रूप जो यह संसार सर्प है, सो अज्ञानीके हृदयमें दृढ होगया है, सो योगरूपी गारुड मंत्र करके नष्ट होजाता है, अन्यथा नहीं होता.

और सर्पका विष है, सो एक जन्ममें मारता है, अरु संसरनरूप जो विष है तिस करके अनेक जन्म पायके मरता चला आताहै, शांतिमान कदाचित नही होता

हे रामजी! जिन पुरुषोंने सत्सग अरु सत्शास्त्रके वचनद्वारा आत्मपदको पायाहै, सो आनदित भये है, अरु अंतर्बाहिर सब जगत् इनको आनदरूप भासताहै अरु सब क्रिया करनेमें आनद विलासहै. और जिनने सत्सग अरु सत्शास्त्रका विचार त्यागाहै, अरु ससारके सन्मुखहैं, तिसकर तिनको ससार अनर्थरूपहै सो ऐसा दुःख देताहै- जैसे सर्पके दशते दु.खी होते हैं, अरु शस्त्रकर घायल होते है, अरु अग्निमें पारेकी नाई जलते हैं, अरु जेवरीके साथ बंध होते है अरु अंध कूपमें गिरनेते कष्ट पाते है, तैसे ससारमें मनुष्य दु ख पाते हैं हे रामजी! जिन पुरुषोंने सत्सग अरु सतशास्त्र द्वारा आत्मपदको नहीं पाया, सो ऐसे कष्ट पाते है जो नरकरूपी अग्निमें जरते हैं, अरुचिके विष पीते है पाषाणकी वर्षाकर चूरण होते हैं कोल्हूमें पीसडारते है, अरु शस्त्र साथ कटते हैं, इत्यादिक जो वडे कष्टहैं सो तिनको प्राप्त होते हैं हे रामजी! ऐसा, दु ख कोई नहीं! जो इस जीवको प्राप्त नहीं होता, आत्माके प्रमाद सों सब दुःख होते है अरु जिन पदार्थोंको यह रमणीक जानते है, सो चक्रकी नाई चचल हैं, कबहूँ स्थिर नही रहते सतमार्गको त्यागकर जो इनकी इच्छा करते हैं सो महादु खको प्राप्त होते हैं. अरु जिस पुरुषने संसारको विरसजाना है और पुरुषार्थकी तरफ दृढ भयाहै, तिसको आत्मपदकी प्राप्ति होती है

हे रामजी! जिन पुरुषनको आत्मपदकी प्राप्ति भई है तिनको फिर दु.ख नहीं होता, और तिनके दु ख जो नष्ट नही होते, तो ज्ञानके निमित्त पुरुषार्थ कोऊ नही करता जो अज्ञानी हैं तिनको ससार दु खरूपहै, अरु ज्ञानीको सब जगत् आनंदरूप है, अपने आपुई है, उनको भ्रम कोई नहीं रहता हे रामजी! ज्ञानवानमें नानाप्रकारकी चेष्टा भी दृष्टि आती हैं, तो भी सदा शांतरूप, है अरु आनदरूप हैं, संसारका दु ख कोऊ नहीं स्पर्श कर सकता, काहेते कि, तिनने ज्ञानरूपी कवच पहिरा है

त्यागकर शुद्ध सात्विकवान् होकर सुन-राजस जो विक्षेप अरु तामस जो लय निद्रामें होतहै, सो दोऊका त्याग करके सुन जेते कछु जिज्ञासुके गुण शास्त्रमें वर्णन कियेहैं, सो सव कर तू संपन्नहै, अरु जेते कछु गुरुके गुण शास्त्रमें वर्णन कियेहैं, सो सव मेरेमे हैं जैसे रत्नकर समुद्र सपन्नहै तैसे मै सम्पन्न हों ताते मेरे वचनका तू अधिकारीहै, और मूर्खको मेरे वचनका अधिकार नही हे रामजी! जैसे चद्रमाके उदयते चंद्रकांत मणि द्रवीभूत होती है, तव तामें ते अमृत सरता है, और पत्थरकी शिला है, तिनते द्रवीभूत नही होताहै, तैसे जो जिज्ञासु होताहै तिसको परमार्थ वचन लगता है, अरु अज्ञानीको नहीं लगता. हे रामजी! शिष्यतो शुद्ध पात्र होवे, अरु उपदेश करनेहारा ज्ञानवान् न होवे, तो उसको आत्माका साक्षात्कार नही होवे, जैसे चद्रमुखी कमलनी निर्मलहोय, अरु चंद्रमा न होय तव प्रफुल्लित नहीं होती तैसे ताते तू मोक्षकापात्रहै अरु मैभी परम गुरुहों मेरे उपदेश कर तेरा अज्ञान नष्ट होय जावेगा

मै मोक्षका उपाय कहताहों, जव तिसको तू भले प्रकार विचारेगा, तव जेती कछु मलीन मनकी वृत्तिहैं, तिनका अभाव होजायगा, जैसे महाप्रलयके सूर्यकर मंदराचल पर्वत जलजाता है ताते हे रामजी! वैराग्य अरु अभ्यासके वलकर इस मनको अपने विषे लीनकर शांतात्मा होवहु तैंने वालकावस्थासों लेकर अभ्यासकर रक्खाहै, ताते मन उपशम पायके आत्मपदको प्राप्त होवेगा हे रामजी! सत्सग अरु सतशास्त्रद्वारा जो आत्मपद पाया है, सो सुखी भये है फिर तिनको दुःख नहीं लगता, काहेते जो दुःख देहाभिमानकर होता है सो देहका अभिमान तो उनने त्याग दिया है, तैसे जिसने देहका अभिमान त्यागदिया है अरु देहका आत्मता करके वहुरि ग्रहण नहीं करता ताते सुखी रहता है. हे रामजी! जिनने आत्मावल धरके विचारद्वारा आत्मपदको पाया है, सो अकृत्रिम आनदकर सदा पूर्ण है, सव जगत तिसको आनदरूप भासताहै; अरु जो असम्यग्दर्शी हैं, तिनको जगत् अनर्थरूप भासता है हे रामजी! ससरन रूप जो यह संसार सर्प है; सो अज्ञानीके हृदयमें दृढ होगया है, सो योगरूपी गारुड़ मत्र करके नष्ट होजाता है, अन्यथा नहीं होता.

और सर्पका विप है, सो एक जन्ममें मारता है, अरु संसरनरूप जो विप है तिस करके अनेक जन्म पायके मरता चला आताहै, शांतिमान कदाचित नही होता.

हे रामजी। जिन पुरुपोंने सत्सग अरु सत्शास्त्रके वचनद्वारा आत्मपदको पायाहै, सो आनदित भये है, अरु अतर्वाहिर सव जगत् इनको आनदरूप भासताहै अरु सव क्रिया करनेमें आनद विलासहै और जिनने सत्सग अरु सत्शास्त्रका विचार त्यागाहै, अरु संसारके सन्मुखहैं, तिसकर तिनको ससार अनर्थरूपहै सो ऐसा दुःख देताहै- जैसे सर्पके दशते दु खी होते हैं, अरु शस्त्रकर घायल होते हैं, अरु अग्निमें पारेकी नाई जलते हैं, अरु जेवरीके साथ वध होते है अरु अध कूपमें गिरनेते कष्ट पाते हैं, तैसे संसारमें मनुष्य दु ख पाते हैं हे रामजी। जिन पुरुपोंने सत्संग अरु सतशास्त्र द्वारा आत्मपदको नहीं पाया, सो ऐसे कष्ट पाते है जो नरकरूपी अग्निमें जरते है, अरुचिके विप पीते हैं पापाणकी वर्पाकर चूरण होते है कोल्हूमें पीसडारते हैं, अरु शस्त्र साथ कटते हैं, इत्यादिक जो वडे कष्टहैं सो तिनको प्राप्त होते हैं हे रामजी। ऐसा, दु.ख कोई नहीं। जो इस जीवको प्राप्त नहीं होता, आत्माके प्रमाद सों सव दुःख होते है अरु जिन पदार्थोंको यह रमणीक जानते है, सो चक्रकी नाई चंचल हैं, कवहूँ स्थिर नही रहते सतमार्गको त्यागकर जो इनकी इच्छा करते हैं सो महादुःखको प्राप्त होते हैं. अरु जिस पुरुपने संसारको विरसजाना है और पुरुपार्थकी तरफ दृढ भयाहै, तिसको आत्मपदकी प्राप्ति होती है

हे रामजी। जिन पुरुपनको आत्मपदकी प्राप्ति भई है तिनको फिर दु ख नहीं होता, और तिनके दु ख जो नष्ट नही होते, तो ज्ञानके निमित्त पुरुपार्थ कोऊ नहीं करता जो अज्ञानी है तिनको ससार दुःखरूपहै, अरु ज्ञानीको सव जगत् आनंदरूप है, अपने आपुई है, उनको भ्रम कोई नहीं रहता. हे रामजी। ज्ञानवानमें नानाप्रकारकी चेष्टा भी दृष्टि आती हैं, तौ भी सदा शांतरूप, है अरु आनंदरूप है, संसारका दु.ख कोऊ नहीं स्पर्श कर सकता, काहेते कि, तिनने ज्ञानरूपी कवच पहिरा है

हे रामजी ! ज्ञानवानको भी दुःख होता है, बडे बडे ब्रह्मर्षि, अरु राजर्षि बहुत ज्ञानवान भये है,सोहू दु'ख को प्राप्त होते हैं, परन्तु दुःखसों आतुर नही होते, क्योंकि जो ज्ञानवानने ज्ञानका कवच पहिरा है, ताते कोऊ दुःख स्पर्श नहीं करता, सदा आनदरूप हैं जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, नाना प्रकारकी चेष्टा करते, और जीवको दृष्टि आवते हैं, अरु अंतरते सदा शांतरूपहै, इस प्रकार और भी जो ज्ञानवान उत्तम पुरुप हैं सो शांतरूप हैं ताको कर्त्ताका अभिमान कोऊ नहीं फुरता हे रामजी ! अज्ञानरूपी जो मेघ है,तिसकर मोहरूपी कुहाडाका वृक्ष है,सो ज्ञानरूपी शरत्काल करके नष्ट होजाता है, ताते स्वसत्ताको प्राप्त होवै है, अरु सदा आनंदकर पूर्ण है हे रामजी ! जो कछु क्रिया करते हैं, सो तिनके विलास रूप है, अरु सब जगत् आनदरूप है, अरु शरीररूपी रथ, इंद्रियरूपी अश्व और मनरूपी रस्सा, तासों अश्वको खैंचता है, अरु बुद्धिरूपी रथवाही है, तिस रथमें यह पुरुप बैठा है, अरु इंद्रियरूपी अश्व इसको खोटे मार्गमें डारते हैं. अरु ज्ञानवानको इंद्रियरूपी अश्व है सो ऐसे है कि जहाँ जाते हैं तहाँ आनंदरूप है, किसी ठौरमें खेद नहीं पाता; सब क्रियामें उनको विलास है, सर्वदा आनद कर तृप्त रहते हैं

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे तत्त्वज्ञमाहात्म्य नाम द्वादश सर्ग ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्ग. १३.

अथ समवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी ! इसी दृष्टिको आश्रयकर जो हृदय पुष्ट होवे, बहुरि संसारके इष्ट अनिष्ट कर्म कर चलायमान न होवे, जिस पुरुपको इस प्रकार आत्मपदकी प्राप्ति भई है, सो परम आनदित भये हैं; शोकके कर्त्ता नहीं हैं, न याचना करता है, उपाधिते रहित परम शात रूप अमृतकर पूर्ण होय रहे है सो पुरुप नाना प्रकारकी चेष्टा करते दृष्टि आते हैं, परन्तु कछु नही करते, जहाँ उनके मनकी वृत्ति जातीहै, तहां आत्मसत्ता भासतीहै, सो आत्मानदकर पूर्ण होय रहेहैं. जैसे पूर्णमासीका

चंद्रमा अमृतकरि पूर्ण रहताहै, तैसे ज्ञानवान परमानंद करि पूर्ण रहता है. हे रामजी! यह जो मैंने तुमको अमृतरूपी वृत्ति कही है, इसको जव जानैगा तव तुमको साक्षात्कार होवेगा जव जिसको आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है तव सवदुःख नष्ट होजाते है, जैसे चंद्रमाके मडलमें अंधकार नही होता, तैसे ज्ञानीको अशांति कवहूँ नहीं होती और जो कछु किया करते हैं, तिसमें दुःख पाता है, जैसे कंकरके वृक्षमें कंटककी उत्पत्ति होती है, तैसे अज्ञानीको दुःखकी उत्पत्ति होती है

हे रामजी! इस जीवको मूर्खता करके वडे दुःख प्राप्त होते है ऐसा अद्भुत दुःख और कोई नहीं, अरु किसी आपदा करके भी ऐसा दुःख-नहीं होता, जैसा दुःख मूर्खता करके पाते हैं, ऐसा दुःख कोई नहीं, हे रामजी! हाथमे ठीकरा ले चडालके घरकी भिक्षा ग्रहण करे, और आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा होवे, तौभी और ऐश्वर्यंते श्रेष्ठ है परतु मूर्खतासों जीवना व्यर्थ है, तिस मूर्खताको दूर करनेको मोक्ष उपाय मैं कहता हो

हे रामजी! यह मोक्ष उपाय परम वोधका कारणहै, कछुक वुद्धि संस्कारी होवे, अर्थ यह जो पद पदार्थके जानने हारी होवे, अरु मोक्ष उपाय शास्त्रको विचारे, तो तिसकी मूर्खता नष्ट हो जावेगी अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी जैसा आत्मवोधका कारण यह शास्त्र है, तैसा और शास्त्र त्रिलोकी विषे कोई नहीं नाना प्रकारके दृष्टात सहित इतिहास हैं जामें, तिसको जव विचारेगा तव परमानंदको प्राप्त होवेगा, अज्ञानरूपी तिमिर नाश करनेको ज्ञानरूपी शलाकाहै जैसे अधकारको सूर्य नाश करता है तैसे अज्ञानको यह शास्त्रका विचार नाश करता है हे रामजी! जिस प्रकार इसका कल्याण होताहै सो श्रवणकर गुरु जो ज्ञान-वानहै सो शास्त्रका उपदेश करे, अरु अपने अनुभवसो ज्ञान पावे जव गुरु अरु शास्त्र और अपना अनुभव यह तीनों इकट्ठे मिलें तव इसका कल्याण होवे, जवलग अकृत्रिम आनंदको प्राप्त नहीं भया, तवलगि दृढ अभ्यास करे, तिस अकृत्रिम आनंदको प्राप्ति करने हारा मैं गुरु हों, जीवमात्रका मैं परममित्र हों, ऐसा अपर कोऊ नही हमारी सगति जीवको आनंद प्राप्त करनहारी है, ताते जो कछु मै कहता हों सो तू कर

हे रामजी! यह जो संसारके भोग हैं, सो क्षणमात्र हैं, ताते इनको त्याग करहु, और विषयके परिणाममें दुःख अनंत है, इनको दुःखरूप जानकर त्याग दे, अरु हम सारिखे ज्ञानवानका संग कर, और हमारे वचनके विचारते तेरे सब दुःख नष्ट हो जायँगे हे रामजी! जिस पुरुषने हमारे संग प्रीति करी है, तिसको हमने आनंद पदकी प्राप्ति कर दीनीहै, जिस आनंदते ब्रह्मादिक आनंदित भये हैं और ज्ञानवानहु आनंदित भये हैं सो निर्दुःख पदको प्राप्तभये हैं हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष सोई हैं, जाने हमारे साथ प्रीति कीनीहै जिसने संत अरु शास्त्रके विचारद्वारा दृश्यको अदृश्य जाना है, सो निर्भय हुआहै आत्माका प्रमाद जीवको दीन करता है, अज्ञानीका हृदयरूपी कमल तबलग संकुचा रहता है, जबलग तृष्णारूपी रात्रि होती है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होताहै, तब तृष्णारूपी रात्रि नष्ट हो जाती है अरु हृदयरूपी कमल, आनंद कर खिलि आते हैं.

हे रामजी! जिस पुरुषने परमार्थ मार्गको त्यागा है, अरु संसारका खान पान आदि भोगमें मग्न हुआहै, तिसको तू मेंडुक जान, जैसे कीचमें मेंडुक परा शब्द करता है तैसा वह पुरुष है. हे रामजी! यह संसार बड़ा आपदाका समुद्रहै, तामें जो कोऊ श्रेष्ठ पुरुषहै सो सत्संग अरु सत्शास्त्रके विचार करके संसार समुद्र उलंघताहै, अरु परमानंदको प्राप्त होताहै, आदि, अंत, मध्य रहित निर्भय पदको प्राप्त होताहै, अरु जो संसार समुद्रके सन्मुख हुआहै, सो दुःखते दुःखरूप पदको प्राप्त भयाहै, कष्टते कष्ट, नरकते नरकको प्राप्त होताहै जैसे विषको विष जान तिसका पान करताहै, सो विष उसको नाश करताहै, तैसे जो पुरुष संसार असत्य जानके बहुरि संसारकी ओर यत्न करताहै, सो मृत्युको प्राप्त होताहै हे रामजी! जो पुरुष आत्मपदको कल्याणरूप जानता है, अरु आत्मपदके अभ्यासका त्यागकर संसारकी ओर धावताहै, सो जैसे किसीके घरमें अग्नि लगी, अरु तृणका घर, अरु तृणकी शय्या करिके शयन करता है, सो जैसे नाशको पावे तैसे जन्म मृत्युको प्राप्त होवहिंगे और संसारके पदार्थ देखकर राग द्वेषवान् हुए हैं, सो सुख बिजुरीका चमत्कार जैसाहै, क्यों जो होयके मिटजावे, स्थिर नहीं रहै तैसा संसारका दुःख आगमापायी है.

हे रामजी! यह संसार अविचार करके भासताहै अरु विचार कियेते लीन होजाता है, विचार कियेते लीन जो न होता, तो तुमको उपदेश करनेका काम नहीं था, सो तो विचार कियेते लीन होजाताहै इसी कारणते पुरुषार्थ चाहिये जैसे हाथमें दीपक होवे अरु अंधकूपमें गिरे सो मूर्खताहै तैसे संसारके भ्रमके निवारण हारे गुरु शास्त्र विद्यमानहै; तिनकी शरण न आवै सो मूर्ख है हे रामजी! जो पुरुष संतकी संगति, अरु सतशास्त्रके विचार द्वारा आत्मपदको पायाहै,सो पुरुष केवल कैवल्य भावको प्राप्त भये; अर्थ यह जो शुद्ध चैतन्यको प्राप्त हुएहै अरु ससार भ्रम तिनकानिवृत्त होगया है

हे रामजी! यह ससार मनके स्मरणते उपजाहै, सो इसका कल्याण बांधव करके नहीं होना है अरु धन करके भी नही होनाहै, प्रजा करके भी नहीं होना है, अरु तीर्थ अरु देवद्वार करकेभी नहीं होना है ऐश्वर्य करके भी नहीं होनाहै, एक मनके जीतनेते कल्याण होताहै.

हे रामजी! जिसको ज्ञानी परमपद कहते हैं और जिसको रसायन कहते हैं, जिसके पायेते इसका नाश नहीं होय, अरु अमर होवे, अरु सब सुखकी पूर्णता होवे, इसका साधन समता अरु संतोषहै, इनकर ज्ञान उत्पन्न होता है सो आत्मज्ञान रूपी एक वृक्ष है, तिसका फूल शांति है, अरु स्थिति इसका फल है; जिस पुरुष को यह ज्ञान प्राप्त हुआ है, सो शांतिमान हुआ है, सो निर्लेप रहताहै, तिसको ससारका भावाभावरूप स्पर्श नहीं होताहै जैसे आकाशमें सूर्य उदय होताहै, तब जगत्की क्रिया होती है, फिर जब सो अदृश्य होता है, तब जगत्की क्रिया भी लीन हो जाती है, जैसे तिस क्रिया होने न होनेमें आकाश ज्योंकात्यों है, तैसे ज्ञानवान सदा निर्लेप है, तिस आत्मज्ञानकी उत्पत्तिका उपाय यह मेरा श्रेष्ठ शास्त्र है

हे रामजी! जो पुरुष इस मोक्षोपाय शास्त्रको श्रद्धा संयुक्त पढै अथवा सुनै तो वाई दिन सों मोक्षका भागी होय रहै; अरु मोक्षके चार द्वारपाल हैं सो मैं तुमको कहता हों, सो इनमेंते एकहू जब अपने वश होय तब मोक्षद्वारमें इसका शीघ्र प्रवेश होवे, सो चारोंका नाम कहों सो सुन

हे रामजी! यह सम इसको परम विश्रामका कारण है, अरु यह संसार जो दीखता है, सो मरुथलकी नदीवत है, इसको देखकर मूर्ख अज्ञानी रूपी जो मृग है सो सुखरूपी जल जानकर दौरता है अरु शांतिको नहीं प्राप्त होता जब समरूपी मेघकी वर्षा होवे, तब सुखी होवे, हे रामजी। सम सो परम आनंद है, अरु सम सो परमपद है और शिवप्रद है, जिस पुरुषने सम पायाहै सो संसार समुद्रते पार हुआ है, तिसको शत्रु सो मित्र हो जाते हैं हे रामजी। जब चन्द्रका उदय होता है तब अमृतकी कण फूटती है, अरु शीतलता होती है, तैसे जिसके हृदयमें समरूपी चन्द्रमा उदय होता है, तिसके सब ताप मिट जाते हैं अरु परम शांतिमान होते हैं हे रामजी। यह सम देवताके अमृत समान है, वही परम अमृत है, सम करके इसको परम शोभा प्राप्त होती है जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमाकी कांति परम उज्ज्वल होती है, तैसे समको पायके उसकी उज्ज्वल कांति होती है. जैसे विष्णुके दो हृदय हैं, सो एकतो अपने शरीरमें है, दूसरा सतमें है तैसे इसके दो हृदय होते हैं, एक अपने शरीरमें, दूसरा सम भी इनका हृदय होताहै; ऐसा आनंद अमृतके पान कियेते हू नहीं होता, अरु लक्ष्मी की प्राप्तिते भी नहीं होता, जो आनद समवानको होता है

हे रामजी। प्राणहूते भी प्रिय कोई होवै, सो अन्तर्द्धान कर फिर प्राप्त होवे, तैसा आनद नहीं होवे ऐसा आनंद समवानको होवे. तिसके दर्शनकरभी आनंद प्राप्तहोता है. अरु ऐसा आनंद राजाको भी नहीं होता, जो बाहरते श्रेष्ठ मंत्री होताहै,अरु अंतरते सुंदर स्त्रियां होतीहैं, तिनकरभी ऐसा आनंद नहीं होता जैसा आनन्द सम संपन्न पुरुषको होताहै. हे रामजी ! जिस पुरुषको समकी प्राप्ति भईहै, सो वदन करने योग्य है, अरु पूजने योग्यहै; जिसको समकी प्राप्ति भई है, तिसको उद्वेग नहीं आवे, अरु लोकहूते उद्वेग नहीं पावे, उसकी क्रिया अमृत समानहै, अरु वचन उसके अमृतकी नाई मीठे हैं। जैसे चद्रमाकी किरण शीतल अरु अमृतरूप है; सो सबको हृदयारामहै, तैसे संत जनके वचन हैं; जिस पुरुषको समकी प्राप्तिभई है, तिसकी संगति जब इस जीवको प्राप्त होती है, तब सब परम आनंदित होते हैं

हे रामजी ! जैसे बालक माताको पायके आनंदित होता है, तैसे जिसको समकी प्राप्ति भई है तिसका संगकर जीव अधिक आनदवान होता है जैसे किसीका बांधवमुवा हुआ फिर आवे, और उसको आनंद प्राप्त होवे, तिसते भी अधिक आनंद सम सपन्न पुरुपको पायके होताहै हेरामजी! ऐसा आनद चक्रवर्त्ती राज्यके पायेतेभी तिसको नहीं होता अरु त्रिलोकीका राज्य पायेते भी नही होता जिसको सम की प्राप्ति भई है तिसके शत्रुभी मित्र होजाते है तिसकर कछु भयभीत नहीं होता अरु सर्पका भय भी तिसको नहीं रहता, सिहका भय भी तिसको नहीं रहता, और हू किसीका भय नहीं रहता, सदानिर्भय शांतरूप रहता है. हे रामजी ! जो कोऊ कष्ट आय प्राप्त होवे, और कालकी अग्नि आय लगै, तौ भी सो चलायमान नहीं होता, सदा शांतिरूप रहते है, जैसे शीतल चाँदनी चन्द्रमामें स्थित है, तैसे जो कछु शुभ गुण अरु संपदा है सो सब समवानके हृदयमे आय स्थित होते है.

हे रामजी ! जो पुरुप अध्यात्मकादि तापकर जलताहै, तिसको हृदयमें समकी प्राप्ति होवे, तब ताप मिट जाते हैं. जैसे तप्त पृथ्वी वर्षा करके शीतल हो जाती है, तैसे उसका हृदय, शीतल हो जाता है जिसको समकी प्राप्तिभई है, सो सब क्रियामें आनंदरूप है, तिसको दुःख कोऊ नही स्पर्श करता, जैसे वज्र शिलाको बाण वेध नहीं सकता, तैसे जिस पुरुपने समरूपी कवच पहिराहै, उसको अध्यात्मकादि ताप वेध नही सकता, वह सर्वदा शीतलरूप रहता है

हे रामजी ! तपस्वी, पडित, याज्ञिक, धनाढ्य सो, पूजा, मान करने योग्य है, परतु जिसको समकी प्राप्ति भई है सो सबसे उत्तम है सो सबको पूजने योग्य है; उसके मनकी वृत्ति आत्मतत्त्वको ग्रहण करती है, अरु सब क्रियामें शोभत है. जिस पुरुपको शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह इद्रियके विपय इष्ट अनिष्टमें राग द्वेप नहीं होता, तिसको शांतात्मा कहते है हे रामजी ! जो संसारके रमणीय पदार्थमें बध्यमान नहीं होता, अरु आत्मानद कर पूर्ण है, तिसको शांतिमान कहते हैं, वाको संसारके शुभअशुभ कर मलीनपना नहीं लगता, सदा निर्लेप

हे रामजी। यह सम इसको परम विश्रामका कारण है, अरु यह संसार जो दीखता है, सो मरुथलकी नदीवत है, इसको देखकर मूर्ख अज्ञानी रूपी जो मृग है सो सुखरूपी जल जानकर दौरता है अरु शांतिको नहीं प्राप्त होता जब समरूपी मेघकी वर्षा होवे, तब सुखी होवे, हे रामजी! सम सो परम आनंद है, अरु सम सो परमपद है और शिवप्रद है, जिस पुरुषने सम पायाहै सो संसार समुद्रते पार हुआ है, तिसको शत्रु सो मित्र हो जाते हैं हे रामजी! जब चन्द्रका उदय होता है तब अमृतकी कण फूटती है, अरु शीतलता होती है, तैसे जिसके हृदयमे समरूपी चन्द्रमा उदय होता है, तिसके सब ताप मिट जाते हैं अरु परम शांतिमान होते हैं हे रामजी! यह सम देवताके अमृत समान है, वहीं परम अमृत है, सम करके इसको परम शोभा प्राप्त होती है जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमाकी कांति परम उज्ज्वल होती है, तैसे समको पायके उसकी उज्ज्वल कांति होती है जैसे विष्णुके दो हृदय हैं, सो एकतो अपने शरीरमें है, दूसरा सतमें है तैसे इसके दो हृदय होते हैं, एक अपने शरीरमें, दूसरा सम भी इनका हृदय होताहै; ऐसा आनंद अमृतके पान कियेते हू नहीं होता, अरु लक्ष्मी की प्राप्तिते भी नहीं होता, जो आनद समवानको होता है.

हे रामजी! प्राणहूते भी प्रिय कोई होवे, सो अन्तर्द्धान कर फिर प्राप्त होवे, तैसा आनद नहीं होवे ऐसा आनंद समवानको होवे तिसके दर्शनकरभी आनद प्राप्तहोता है अरु ऐसा आनंद राजाको भी नहीं होता, जो बाहरते श्रेष्ठ मंत्री होताहै,अरु अंतरते सुदर स्त्रियां होतींहैं, तिनकरभी ऐसा आनंद नहीं होता जैसा आनन्द सम सपन्न पुरुषको होताहै. हे रामजी! जिस पुरुषको समकी प्राप्ति भईहै, सो वदन करने योग्य है, अरु पूजने योग्यहै, जिसको समकी प्राप्ति भई है, तिसको उद्वेग नहीं आवे, अरु लोकहूते उद्वेग नहीं पावे, उसकी क्रिया अमृत समानहै, अरु वचन उसके अमृतकी नाईं मीठे हैं; जैसे चद्रमाकी किरण शीतल अरु अमृतरूप है; सो सबको हृदयारामहै, तैसे सत जनके वचन हैं; जिस पुरुषको समकी प्राप्तिभई है, तिसकी सगति जब इस जीवको प्राप्त होती है, तब सब परम आनदित होते हैं

हे रामजी! जैसे बालक माताको पायके आनंदित होता है, तैसे जिसको समकी प्राप्ति भई है तिसका संगकर जीव अधिक आनदवान होता है जैसे किसीका बांधवमुवा हुआ फिर आवे, और उसको आनंद प्राप्त होवे,तिसते भी अधिक आनद सम सपन्न पुरुपको पायके होताहै हेरामजी! ऐसा आनद चक्रवर्त्ती राज्यके पायेते भी तिसको नहीं होता अरु त्रिलोकी का राज्य पायेते भी नही होता जिसको सम की प्राप्ति भई है तिसके शत्रुभी मित्र होजाते हैं तिसकर कछु भयभीत नहीं होता अरु सर्पका भय भी तिसको नहीं रहता, सिहका भय भी तिसको नहीं रहता, और हू किसीका भय नहीं रहता, सदानिर्भय शांतरूप रहता है. हे रामजी! जो कोऊ कष्ट आय प्राप्त होवे, और कालकी अग्नि आय लगे, तौ भी सो चलायमान नहीं होता, सदा शांतिरूप रहते है, जैसे शीतल चाँदनी चन्द्रमामें स्थित है, तैसे जो कछु शुभ गुण अरु सपदा है सो सब समवानके हृदयमें आय स्थित होते है.

हे रामजी! जो पुरुप अध्यात्मकादि तापकर जलताहै, तिसको हृदयमें समकी प्राप्ति होवे, तब ताप मिट जाते हैं जैसे तप्त पृथ्वी वर्षा करके शीतल हो जाती है, तैसे उसका हृदय शीतल हो जाता है जिसको समकी प्राप्तिभई है, सो सब क्रियामें आनदरूप है, तिसको दु.ख कोऊ नही स्पर्श करता, जैसे वज्र शिलाको बाण वेध नहीं सकता, तैसे जिस पुरुपने समरूपी कवच पहिराहै, उसको अध्यात्मकादि ताप वेध नही सकता, वह सर्वदा शीतलरूप रहता है

हे रामजी! तपस्वी, पडित, याज्ञिक, धनाढ्य सो, पूजा, मान करने योग्य हैं, परंतु जिसको समकी प्राप्ति भई है सो सबसे उत्तम है सो सबको पूजने योग्य है; उसके मनकी वृत्ति आत्मतत्त्वको ग्रहण करती है, अरु सब क्रियामें शोभद है जिस पुरुपको शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह इंद्रियके विपय इष्ट अनिष्टमें राग द्वेप नही होता, तिसको शातात्मा कहते है. हे रामजी! जो ससारके रमणीय पदार्थमें बध्यमान नहीं होता, अरु आत्मानद कर पूर्ण है, तिसको शातिमान कहते हैं, वाको ससारके शुभअशुभ कर मलीनपना नहीं लगता, सदा निर्लेप

रहता है. जैसे आकाश सब पदार्थते निर्लेप है, तैसे शांतिमान सदा निर्लेप रहता है हे रामजी! ऐसा जो पुरुप है सो इष्ट विपयकी प्राप्तिमें हर्षवान होते नहीं, अरु अनिष्ट विपयकी प्राप्तिमें शोकवान होते नहीं अरु अतरते सदा शांत रहते है, उसको कोऊ दुःख स्पर्श नहीं करता; अपने आपमें सदा परमानदरूप रहता है, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे शांतिके पाये सर्व दुःख नष्ट हो जाता है, सदा निर्विकार रहते हैं.

हे रामजी! सो पुरुप सब चेष्टा करते दृष्टि आते है, परंतु सदा निर्गुणरूप है, कोऊ क्रिया उनको स्पर्श नहीं करती. जैसे जलमें कमल निर्लेप रहता है, तैसे शांतिवान सदा निर्लेप रहता है - हे रामजी! जो पुरुप वडे राज संपदाको पायकर अरु वडी आपदाको पाय कर ज्योंका त्यों अलग रहता है, सो शांतिमान कहिये हे रामजी! जो पुरुप शांतिते रहित है, तिसका चित्त क्षण क्षण राग द्वेपकर तपता है, अरु जिसको शांतिकी प्राप्ति भई है, सो अंतर वाहिर शीतल है, अरु सदा एकरस है जैसे हिमालय सदा शीतल रहता है, तैसे वह सदा शीतल रहता है. वाके मुखकी कांति वहुत सुंदर हो जाती है, जैसे निष्कलंक चन्द्रमा होवे तैसे शान्तिमान पुरुप निष्कलक रहता है हे रामजी! जिसको शांति प्राप्त भई है, सो परम आनंदित हुए हैं, परमलाभ तिसको प्राप्त होता है. ज्ञानी इसीको परमपद कहते है जिसको पुरुपार्थ करना है, तिसको शांतिकी प्राप्ति करनी चाहिये. हे रामजी! जैसे मैने कहा है, तिस क्रम करके शातिका ग्रहण करो, तव संसार समुद्रके पार पहुँचोगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे ... ॥१३॥

वसिष्ठ उवाच,हे रामजी!
होताहै,तव विचार होताहै अरु

हे रामजी! अज्ञानरूपी जो वन है- तिसमें आपदारूपी वेलिकी उत्पत्ति होती है, तिसको विचाररूपी खड्ग करके काटेगा, तव शांत आत्मा होवेगा, अरु मोहरूपी हस्ती है,सो जीवका हृदयकमलका खंड खंड कर डारता है अभिप्राय यह जो इष्ट अनिष्ट पदार्थमें राग द्वेषकर छेदा जाता नहीं, जव विचार रूपी सिंह प्रगटे तव मोहरूपी हस्तीका नाश करे, फिर शांतात्मा होवे

हे रामजी! जिसको कछु सिद्धता प्राप्त हुई है सो विचार अरु पुरुषार्थ कर भई है, जो राजा होता है,सो प्रथम विचार कर पुरुषार्थ करता है, तिसकर राज्यको प्राप्त होता है वल, बुद्धि अरु तेज चतुर्थ जो पदार्थका आगमन, अरु पचम पदार्थकी प्राप्ति होती है, सो पाँचोंकी प्राप्ति विचारकर होती है अर्थ यह जो इंद्रियोंका जीतना,अरु बुद्धि सो आत्मा व्यापिनी, अरु तेज पदार्थका; आगमन इनकी प्राप्ति विचारसों होती है हे रामजी! जिस पुरुषने विचारका आश्रय लिया है, सो विचारकी दृढता करके जिसकी वांछा करते है, तिसको पावते है;ताते विचार इसका परममित्र है जो विचारवान् पुरुष है, सो आपदामें मग्न नहीं होता, जैसे तुंवी जलमें डुवत नहीं, तैसे वह आपदामें डुवत नही हे रामजी! वह विचारसंयुक्त जो करताहै, देताहै, लेताहै, सो सव क्रिया सिद्धताका कारणरूप होतीहै धर्म, अर्थ,काम, मोक्ष विचारकी दृढता करके सिद्ध होतेहैं, विचाररूपी कल्पवृक्षहै, तिसमें जिसका, अभ्यास होता है सोई पदार्थकी सिद्धिको पाता है

हे रामजी! शुद्ध ब्रह्मका विचार ग्रहणकर, आत्मज्ञानको प्राप्त होहु; जैसे दीपकसोंकर पदार्थका ज्ञान होता है, तैसे पुरुष विचारसों कर सत्य असत्यको जानता है असत्यको त्यागकर सत्यकी ओर यत्न किया है, तिसको विचारवान् कहते है. हे रामजी ! ससाररूपी समुद्रविषे आपदा रूपी तरंग चलतेहै, जो विचारवान् पुरुष है, सो संसारके भाव अभावमें कष्टवान् नहीं होताहै जो कछु विचार सयुक्त क्रिया होतीहै तिसका परिणाम सुखहै जो विचार विना चेष्टा होतीहै तिसकर दु:ख प्राप्त होता है. हे रामजी! अविचार रूपी कटक वृक्षहै, तिसते दु खरूपी कटक पडे

उत्पन्न होतेहैं; अरु अविचाररूपी रात्रिहै तिसमें तृष्णारूपी पिशाचनी आय विचरतीहै जब विचार रूपी सूर्य उदय होताहै तब अविचार रूपी रात्रि अरु तृष्णारूपी पिशाचनी नष्ट होजाती है.

हे रामजी! हमारा यही आशीर्वाद है कि, तुम्हारे हृदयसों अविचार रूपी रात्रि नष्टहोहु. विचाररूपी सूर्यकरके अविचारित संसार दुःखका नाश होताहै, जैसेबालक अविचार करके अपनी परछैयाको वैताल कल्पके भयको पाता है, अरु विचार कियेते भय नष्ट होजाता है; तैसे अविचार करके संसार दुःखको देताहै, और सतशास्त्रको युक्तिकर विचार कियेते संसार भय नष्ट होजाताहै हे रामजी! जहाँ विचारहै; तहाँ दुःख नहीं है जैसे जहाँ प्रकाश होता है तहाँ अंधकार नहीं रहता है, जहाँ प्रकाश नही तहाँ अंधकार रहताहै तैसे जहाँ विचार है, तहाँ ससार भय नहीं है, अरु जहाँ विचार नहीं, तहाँसंसार भय रहता है.अरु जहाँ आत्म विचार होता है, तहाँ सुखको देनेहारे शुभगुण आयस्थित होते हैं जैसे मानससरोवरमे कमलकी उत्पत्ति होती है, तैसे विचारमें शुभ गुणकी उत्पत्ति होती है जहाँ विचार नहीं तहाँ दुःखका आगमन होता है

हे रामजी! जो कछु अविचारकर क्रिया करते हैं, सो दुःखका कारण होता है जैसे चूहा बिलको खोदके मृत्तिका निकासता है सो जहाँ इकट्ठी होती है तहां वेलिकी उत्पत्ति होती है, तैसे अविचार कर यह पुरुष मृत्तिकारूपी पाप क्रियाको इकट्ठी करताहै तिसते आपदारूपी वेलि उत्पन्न होती है, अरु अविचाररूपी घुनका खाया सूखा वृक्ष है, तिसको सुखरूपी फल चाहतेहै, तेऊ नहीं निकसते हैं सो अविचार किसका नाम है, जिस करके शुभक्रिया न होवे,अरु जिसकर शास्त्रानुसार क्रिया न होवे, तिसका नाम अविचार है.

हे रामजी! विवेकरूपी राजाहै, अरु विचाररूपी प्रजाहै जहाँ विवेक रूपी राजा आता है, तहाँ विचाररूपी प्रजा तिनके साथ फिरती है अरु जहाँ विचारूपी प्रजा आतीहै, तहाँ विवेकरूपी राजाभी आताहै जो पुरुष विचार करके संपन्न है, सो पूजने योग्य है तिसको सब कोऊ नमस्कार करते हैं, जैसे द्वितीयाके चन्द्रमाको सब नमस्कार करते हैं, तैसे विचार

वान्‌को सब नमस्कार करते हैं हे रामजी! हमारे देखत देखत अल्प-बुद्धिहू विचारकी दृढताते मोक्षपदको प्राप्त भये हैं, ताते विचार सबका परममित्र है. विचारवाला पुरुष अंतर बाहिर शीतल रहते हैं, जैसे हिमालय पर्वत अंतर बाहिर शीतल रहता है, तैसे वह भी शीतल रहता है देख! विचार करके ऐसे पदको प्राप्त होता है जो पद नित्य है, अरु स्वच्छ है, अनंत है, परमानंदरूप है, तिसको पायकर तिसके त्यागकी इच्छा होती नहीं औरके ग्रहणकी इच्छा नहीं होती है, उनको इष्ट अनिष्ट विषे सब समान है, जैसे तरंगके होनेमें अरु लीन होनेमें समुद्र समान रहता है, तैसे विवेकी पुरुषको इष्ट अनिष्ट विषे समता रहती है, अरु संसार भ्रम मिट जाता है, आधाराधेयते रहित केवल अद्वैत तत्त्व उसको प्राप्त होता है

हे रामजी! यह जगत् अपने मनके मोहते उपजता है, अरु अविचार कर दुःखदायी दीखता है, जैसे अविचार करके बालकको वैताल भासता है, तैसे इसको जगत् भासता है, जब ब्रह्म विचारकी प्राप्ति होवे तब जगत्भ्रम नष्ट हो जावे हे रामजी! जिसके हृदयमें विचार होता है, तहाँ समताकी उत्पत्ति होती है जैसे बीजते अंकुर निकल आता है, तैसे विचारते समता हो आती है, अरु विचारवान पुरुष जिसकी ओर देखता है, तिस ओर आनंद दृष्टि आता है, दुःख कोऊ नहीं भासता है जैसे सूर्यको अंधकार दृष्टि नहीं आता, तैसे विचारवानको दुःख दृष्टिमें नहीं आता, जहाँ अविचार है तहाँ दुःख है, जहाँ विचार है तहाँ सुख है, जैसे अंधकारके अभाव हुए वैतालके भयका अभाव हो जाता है तैसे विचार कियेते दुःखका अभाव हो जाता है

हे रामजी! संसाररूपी दीर्घ रोग है; तिसका नाश करनेका विचार बडा औषध है जिसको विचारकी प्राप्ति भई है, तिसके मुखकी कांति उज्ज्वल हो जाती है. जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकी उज्ज्वल कांति होती है तैसी विचारवानके मुखकी उज्ज्वल कांति होती है हे रामजी! विचार करके इसको परमपदकी प्राप्ति होती है, जिम करि अर्थ सिद्धि होवे तिसका नाम विचार है अरु जिस करि अनर्थ सिद्धि होवे तिसका

नाम अविचार है अविचाररूपी मदिरा है, जो इसका पान करता है सो उन्मत्त हो जाता है, तिसते शुभ विचार कोऊ नहीं हो आवता शास्त्रके अनुसार जो कछु किया है, सो ताते नहीं होती, ताते अविचार करि अर्थ सिद्धि नहीं होती

हे रामजी ! इच्छारूपी रोग है, सो विचार रूपी औषध करके निवृत्त होता है जिस पुरुषने विचार द्वारा परमार्थ सत्ताका आश्रय लिया है, सो परम शांत होजाता है अरु हेय उपादेय बुद्धि तिसकी नहीं रहती सब दृश्यको साक्षीभूत होकर देखता है, अरु संसारके भाव अभाव विषे ज्योका त्यों रहता है, अरु उदय अस्तते रहित निःसगरूप है जैसे समुद्र जलकारि पूर्ण है तैसे विचारवान आत्मतत्त्व करि पूर्ण है. जैसे अधा कूप विषे परा हुआ हस्तके वल करि निकसता है, तैसे संसाररूपी अध कूपमें गिरा हुआ, विचारके आश्रय होकर विचारवान पुरुष, निकसनेको समर्थ होता है.

हे रामजी ! राजाओंको जो कोऊ कष्ट आय प्राप्त होता है, तब वह विचार करके यत्न करते हैं, तब कष्ट निवृत्त हो जाता है, ताते, तू विचार कर देख कि किसीको कष्ट प्राप्त होता है, सो विचारते मिटता है तुम भी विचारका आश्रयकरके सिद्धिको प्राप्त होहु, सो विचार इस कर प्राप्त होता है, जो वेद अरु वेदातके सिद्धांतको श्रवण कर पाठकर भले प्रकार विचारेगा तब विचारकी दृढता कर आत्मतत्त्वको प्राप्त होवेगा जैसे प्रकाश कर पदार्थका ज्ञान होता है, तैसे गुरु अरु शास्त्रके वचन कर तत्त्वज्ञान होता है, जैसे प्रकाशमें अधको पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती है, तैसे गुरु अरु शास्त्रसों जो विचारशून्य होवे तिसको आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती हे रामजी ! जो विचाररूपी नेत्रकर सपन्न है, सोई देखते हैं, अरु विचाररूपी नेत्रते जो रहित हैं सो अध है

हे रामजी ! ऐसा विचार कर कि, मैं कौनहू, अरु यह जगत कौन है, अरु इसकी उत्पत्ति कैसी हुई है, अरु लीन कैसे होता है, इस प्रकार संत अरु शास्त्रके अनुसार विचार कर. सत्यको सत्य जान, अरु असत्यको असत्य जान जिसको असत्य जाना है, तिसका त्याग कर, अरु सत्यमें

स्थित होय इसीका नाम विचार है, इस विचार कर आत्मपदकी प्राप्ति होती है हे रामजी! विचाररूपी दिव्यदृष्टि जिसको प्राप्त भई है, तिसको सब पदार्थका ज्ञान होता है, विचारसों आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तिसको पायेते परिपूर्ण होता है फिर शुभ अशुभ संसारमें चलायमान नहीं होता, ज्योंका त्यों रहता है जब लग प्रारब्ध वेग होता है, तब लग शरीरकी चेष्टाहोती है, जब लग अपनी इच्छा होवे, तब लग शरीरकी चेष्टा करै, बहुरि शरीरको त्याग कर केवल शुद्ध रूप होजाता है, ताते

हे रामजी! ब्रह्मविचारको आश्रय कर, संसार समुद्रको तर जा जो कोऊ रोगी होता है, सो एता रुदन नहीं करता, जेता रुदन विचार रहित पुरुष करता है, जिसको कष्ट प्राप्त होताहै, सो भी एता रुदन नहीं करता हे रामजी! जो पुरुष विचारते शून्यहै। तिसको सब आपदा आय प्राप्त होतीहैं,जैसे सब नदी स्वभावसों समुद्रमें आय प्रवेश करती हैं, तैसे अविचारमें सब आपदा आय प्रवेश करती हैं हे रामजी! कीचका कीट होना सो भला है, अरु गर्त्तका कंटक होना सो भी भलाहै, अरु अंधेरे बिलमें सर्प होना सो भलाहै, परंतु विचारते रहित होना सो भला नही जो पुरुष विचारते रहितहै अरु भोगमें दौरताहै, सो श्वानहै

हे रामजी! विचारते रहित पुरुष बडे कष्टको पाता है ताते एक क्षणहु विचारते रहित नही रहना विचारसों दृढ होकर निर्भय रहना, कि मैं कौन हों, अरु दृश्य क्या है, ऐसा विचार करके सत्यरूप आत्माको ज्ञानकर दृश्यका त्याग करना हे रामजी! जो पुरुष विचारवान है, सो संसार भोगमें नही गिर जाता, अरु सत्यमें स्थित होताहै, विचार जब स्थिर होता है तब तिसते तत्त्वज्ञान होता है, तब तत्त्वज्ञानते विश्राम होता है, विश्रामते चित्तका उपशम होताहै अरु चित्तके उपशमते सब दु ख नाश होते हैं

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विचारनिरूपणो नाम चतुर्दश सर्ग ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५.

अथ संतोषवर्णनम्.

वाशिष्ठ उवाच, हे अविचार शत्रुके नाश कर्त्ता, रामजी जिस पुरुषको संतोष प्राप्त भया है, सो परम आनंदित हुआ है अरु त्रिलोकीका ऐश्वर्य उसको तृणकी नाईं तुच्छ भासता है हे रामजी ! जो आनंद अमृतपान कियेते नहीं होता, और जो आनंद त्रिलोकीके राज्यकर नहीं होता, तैसा आनंद संतोषवानको होता है हे रामजी ! इच्छारूपी रात्रि है, अरु सो हृदयरूपी कमलको सकुचाय देती है; और जब संतोषरूपी सूर्य उदय होता है, तब इच्छारूपी रात्रिका अभाव हो जाता है जैसे क्षीर समुद्र उज्ज्वलता करके शोभता है, तैसे संतोषवानकी कांतिसुशोभित होती है.

हे रामजी ! त्रिलोकीके राजाजी इच्छा निवृत्त न भई, तब सो दरिद्रीहै, अरु जो निर्धनहै और संतोषवानहै, सो सबका ईश्वरहै संतोष तिसकाई नाम है, श्रवण करि जो अप्राप्त वस्तुकी इच्छा न करै, अरु प्राप्त होइ इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष न धरै, इसका नाम संतोषहै, संतोष सोई परमपदहै संतोषवान पुरुष सदा आनंद रूपहै, अरु आत्मस्थितिसों तृप्त हुआहै, तिसको और इच्छा कछु नहीं स्फुरती. अरु संतुष्टता कर तिसका हृदय प्रफुल्लित हुवाहै, जैसे सूर्यके उदयहुए सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित होताहै, तैसे संतोषवान प्रफुल्लित हो जाताहै. जो अप्राप्त वस्तुहै तिनकी इच्छा नहीं करता; अरु जो अनिच्छित प्राप्त भई है, तिसको यथाशास्त्र क्रम करके ग्रहण करताहै, तिसका नाम संतोषवानहै जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकर पूर्ण होताहै, तैसे संतोषवानका हृदय संतुष्टता करके पूर्ण होताहै। अरु जो संतोषते रहितहै, तिसके हृदयरूपी वनमें सदा दुःख अरु चितारूपी फूल फल उत्पन्न होतेहैं हैं.

हे रामजी ! जिसका चित्त संतोषते रहितहै, तिसको नाना प्रकारकी इच्छा जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग होतेहैं, तैसे उपजती है संतुष्टात्मा परम आनंदितहै, तिसको जगतके पदार्थमें हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती है रामजी ! जैसा आनंद संतोषवानको होता है, तैसा आनंद अष्टसिद्धिके

ऐश्वर्य करके भी नहीं होता अरु अमृतके पान कियेते भी नही होता संतोपवान् सदा शांतिरूप है, और सदा निर्मल रहता है. इच्छारूपी धूर सर्वदा उड़तीथी सो सतोपरूपी वर्षाकर शांत होगई है, तिस कारणते सतोपवान निर्मल है.

हे रामजी ! संतोपवान पुरुप सवको प्यारा लगता है जैसे आंवका परिपक्व फल सुंदर होताहै, अरु सवको प्यारा लगताहै, तैसा संतोपवान पुरुप सवको प्यारा लगता है; अरु स्तुति करने योग्य है; जिस पुरुपको संतोप प्राप्त भया है. तिसको परमलाभ भया है हे रामजी ! जहाँ सतोप है,तहाँ इच्छा नहीं रहती है,अरु सतोपवान भोगमें दीन होकर नही रहता; वह उदारात्मा है, सर्वदा आनदकर तृप्त रहता है जैसे मेघ पवनके आयेते नष्टहोजाता है, तैसे सतोपके आयेते इच्छा नष्ट होजाती है,अरु जो संतोपवान पुरुप है, तिसको देवता, ऋपीश्वर, सव नमस्कार करते है, अरु धन्य धन्य कहते हैं हे रामजी ! जव इस सतोपको धरेगा, तव परम शोभा पावेगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे सतोपनिरूपणो नाम पचदशः सर्गः १५

षोडशः सर्गः १६

अथ साधुसंगवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी ! और जेते कछु दान तीर्थादिक साधन है, तिनकर आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती, साधु संगकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है, साधुसगरूपी एक वृक्ष है, तिसका फूल आत्मज्ञान है. जिस पुरुपने फूलकी इच्छा करी है, सो अनुभवरूपी फलको पाता है. हे रामजी ! जो पुरुप आत्मानदते रहितहै, सो सतसंगकर आत्मानदसों पूर्ण होते है, अरु अज्ञान करके जो मृत्युको पाता है सो सतके संगते ज्ञान पायकर अमर होता है, अरु जो आपदा करके दु खी है, सो संतके सगकर संपदाको पाता है, आपदारूपी कमलका नाश करनहारा सत्सगरूपी वर्फकी वर्षा है, सतसंगसों कर आत्मबुद्धि प्राप्त होती है, तिस

कर मृत्युते रहित होता है, और सब दुःखते रहित होता है, अरु परमानंदको प्राप्त होता है.

हे रामजी! संतकी सगतिकर इसके हृदयमें ज्ञानरूपी दीपक जलता है, तिसकर अज्ञानरूपी तम नष्ट हो जाता है, अरु वडे ऐश्वर्यको प्राप्त होता है, वहुरि किसी भोग पदार्थकी इच्छा नहीं रहती, अरु बोधवान होता है, सबते उत्तम पदमें विराजता है; जैसे कल्पवृक्षके निकट गयेते वांछित फलकी प्राप्ति होती है, तैसे ससारसमुद्रके पार उतारनहारे संतजन हैं जैसे धीवर नौका करके पार लगाता है, तैसे सतजन युक्ति करके संसार समुद्रते पार करते हैं अरु मोहरूपी मेघका नाश करनहारा सतका संग है सो पवन है; जिनको देहादिक अनात्मसों स्नेह नष्ट भया है, अरु शुद्ध आत्मा विषे जाकी स्थिति है, तिसकर तृप्त भये हैं, वहुरि संसारके इष्ट अनिष्टते जाकी चलायमान बुद्धि नहीं होती, सदा समता भावमें स्थित रहे हैं, ऐसे ससार समुद्रके पार उतारनेमें फूल जैसे, अरु आपदारूपी वेलिको जड समेत नाश करनहारे हैं.

हे रामजी! सतजन प्रकाशरूप हैं, तिनके सगते पदार्थकी प्राप्ति होती है अरु जो अपने पुरुपार्थरूपी नेत्रते हीन हुए हैं, इसको पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती जिस पुरुपने सत्संगका त्याग किया है, सो नरकरूपी अग्निमें लकडीकी नाई जरेगा, अरु जिस पुरुपने सत्संग किया है, तिसको नरक रूपी अग्निका नाश करनहारा सत्सगरूपी मेघ है. हे रामजी! सत्संगरूपी गंगा है, जाने सत्संगरूपी गगाका स्नान किया, ताको वहुरि तप दान, आदि साधनका प्रयोजन नहीं; वह सत्संग करके परमगतिको प्राप्त होनेका है, ताते अपर सब उपाय त्यागकर सत्सगको खोजना. जैसे निर्धन चिंतामणि आदिक धनको खोजता है, तैसे मुमुक्षु सत्संगको खोजता है; अध्यात्मकादि तीन तापमों जलता है, तिसको शीतल करनेहारा सत्संग है जैसे तपी हुई पृथ्वी मेघकर शीतल होती है, तैसे सत्संगकर हृदय शीतल होता है.

हे रामजी! मोहरूपी वृक्षका नाश करनहारा सत्संगरूप कुहाडा है, सत्संग करके यह पुरुप अविनाशी पदको प्राप्त होता है, जिस पदके

पायेते और पावनेकी इच्छा नही रहती, ऐसा सवते उत्तम सत्संग है जैसे सव अप्सरानते लक्ष्मी उत्तम है, तैसे सत्संग कर्त्ता सवते उत्तम है, ताते अपने कल्याणके निमित्त सत्सग करना तुमको योग्य है हे रामजी! यह जो चारो मोक्षके द्वारपाल है, सो तुझको कहे, जो पुरुषने इनके साथ प्रीति करीहै, सो शीघ्र आत्मपदको प्राप्त होहिगे और जो इनकी सेवा नहीं करते सो मोक्षको प्राप्त नही होते हे रामजी! इन चारोंमेंसे एकहू जहाँ आता है, तहाँ तीनों औरहू आय जाते हैं, जहाँ समुद्र रहताहै, तहाँ सव नदी आय जातीहैं, तैसे तहाँ सम आताहै जहाँ सतोष, विचार, अरु सत्सग ये तीनों आय जातेहैं, जहाँ साधु संगम होताहै, तहाँ सतोप, विचार, अरु सम ये तीनों आय जातेहैं जहाँ कल्पवृक्ष रहता है तहाँ सव पदार्थ आय स्थित होते है; अरु जहाँ सतोप आता है, तहाँ सम विचार, सत्सग, ये तीनों आय जाते है जैसे पूर्णमासीके चद्रमामें गुण कला सव इकट्ठी हो जाती हैं, तैसे जहाँ सतोष आता है, तहाँ और तीनों आय जाते हैं, अरु जहाँ विचार आता है, तहाँ सतोप, उपसम, अरु सत्संग, ये आय रहते हैं जैसे श्रेष्ठ मंत्रीसों कर राज्यलक्ष्मी आय स्थित होती है, तैसे जहाँ विचार होता है, तहाँ और भी तीनों आते है, ताते हे रामजी! जहाँ चारो इकट्ठे होते है, तहाँ परम श्रेष्ठ जानना, ताते हे रामजी! चारों न होहिं तो एकका तो अवश्य आश्रय करना, जव एक आवेगा, तव चारों आय स्थित होवेंगे मोक्षकी प्राप्ति होनेके यह चार परम साधन है, और उपायसों मुक्ति होनेकी नहीं

श्लोक।

संतोषः परमो लाभः सत्संगः परमं धनम् ॥
विचारः परमं ज्ञानं शमश्च परमं सुखम् ॥ १ ॥

हे रामजी! यह परम कल्याण कर्त्ता हैं, सो जो इनचारों करि सपन्न है, तिसकी ब्रह्मादिक स्तुति करते है, ताते दंतको दत लगाय इनका आश्रय करके मनको वश कर ले

हे रामजी! मनरूपी हस्ती विचाररूपी अंकुश करके वश होता है, अरु मनरूपी वनमे वासनारूपी नदी चलती है, तिसके शुभ अशुभ दो

किनारे हैं;अरु पुरुषार्थ करना यह है-कि, अशुभकी ओरते रोकके शुभकी ओर चलावना, जब अंतर्मुख आत्माके सन्मुख वृत्तिका प्रवाह होवेगा, तब तू परमपदको प्राप्त होवेगा हे रामजी ! प्रथम तो पुरुषार्थ करना यही है कि, अविचाररूपी ऊँचाईको दूर करना; जब अविचाररूपी बेट र होवेगा, तब आपही प्रवाह चलेगा हे रामजी ! दृश्यकी ओर जो प्रवाह चलता है, सो बंधनका कारण है, जब आत्माकी ओर अंतर्मुख प्रवाह होवे तब मोक्षका कारण हो जाय आगे जो तेरी इच्छा होवे सो कर.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे साधुसंगनिरूपण नाम षोडशः सर्गः १६

सप्तदशः सर्गः १७.

अथ षट्प्रकरणवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी ! यह मेरे वचन हैं सो परम् पावन हैं, जो विचारवान् शुद्ध अधिकारी है, तिसको यह वचन परमबोधका कारण हैं; जो पुरुष शुद्ध पात्र है, सो इन वचनोंको पायके शोभत है; और वचनहू उनको पायके शोभा पातेहैं,जैसे मेघके अभावते शरदकालमें चंद्रमा अरु आकाश शोभतेहैं,तैसे शुद्ध पात्रमें यह वचन शोभतेहैं अरु जिज्ञासु निर्मल वचनकी महिमा सुनके प्रसन्नहोता है.

हे रामजी ! तुम परमपात्र हो, अरु मेरे वचन परम उत्तम हैं; यह महा रामायण मोक्षोपायक शास्त्र है, सो आत्मबोधका परम कारण है; अरु परम पावन वाक्यकी सिद्धता है; अरु युक्ति युक्तार्थ वाक्य है; अरु नानाप्रकारके दृष्टांत कहे हैं जिनके बहुत जन्मके पुण्य आय इकट्ठे होते हैं, तिनको कल्पवृक्ष मिलता है- सो फल पक कर झुक पडता है;तब तिनको यह शास्त्र श्रवण होता है; अरु नीचको इनका श्रवण प्राप्त नहीं होता है; उसकी वृत्ति इनके श्रवणमें नहीं आती है; जैसे धर्मात्मा राजाकी इच्छा न्याय शास्त्रके श्रवणमें होती है; अरु जो पापात्मा राजा है, तिसकी इच्छा नहीं होती

हे रामजी ! तैसे पुण्यवानकी इच्छा इसके श्रवणमें होतीहै; अरु

अधर्मकी इच्छा नहीं होती; जो कोई मोक्षोपायक इसरामायणका अध्ययन करैगा, अथवा निष्काम संतके मुखते श्रद्धायुक्त श्रवण करैगा अरु आदिते लेकर अंतपर्यंत एकत्र भाव होकर विचारेगा, तब तिसका संसार भ्रम निवृत्त होजावेगा जैसे जेवरीके जाननेते सर्पका भ्रम दूर हो जाता है, तैसे अद्वैतात्मतत्त्वके जाननेते तिसका ससार भ्रम नष्ट होजावेगा सो

इस मोक्षोपायक शास्त्रके बत्तिस सहस्र श्लोक हैं, अरु षट प्रकरण हैं,

प्रथम वैराग्य प्रकरण है, सो वैराग्यका परम कारण है हे रामजी! मरुथलमे वृक्ष नहीं होता, परन्तु वडी वर्षा होवे तब तहाँ वृक्ष होता है, तैसे अज्ञानीका हृदय मरुथलकी नाई है, तिसमें वैराग्यरूपी वृक्ष नही होता, परन्तु यह शास्त्ररूपी जो बडी वर्षा होवे, तिसकर वैराग्यरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है, तिसके एक सहस्र पांचसौ श्लोक हैं, तिसके अनतर

मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण है तिसमे परम निर्मल वचन है तिस करके मलीन मणि हुई ताका मार्जन कियेते उज्ज्वल हो आती है तैसे यह वचनते मुमुक्षुका हृदय निर्मल होता है अरु विचारके बलते आत्मपद पानेको समर्थ होता है, तिसके एक सहस्र श्लोक हैं, तिसके अनंतर.

उत्पत्तिप्रकरण है, तिसके पच सहस्र श्लोक है, तिसमे बड़ी सुदर कथा दृष्टांत सहित कहीहै, जिस विचारते जगत्का सत्यताभाव मनते चलायमान रहता है, अर्थ यह जो जगत्का अत्यन्त अभाव जान परता है, हे रामजी यह जगत्मे जो मनुष्य, देवता, दैत्य, पर्वत, नदी, आदि स्वर्गलोक, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, आदि स्थावर जगम भासता है सो अज्ञान करकेहै, अरु इसकी उत्पत्ति कैसे भई है, जैसे जेवरीमें सर्प होताहै, अरु सीपमें रूपा होता है, अरु सूर्यके किरणमें जल दीखता है, आकाशमें तरुवर दीखता है, और जैसे दूसरा चंद्रमा दीखता है, जैसे गधर्व नगर भासते है, मनोराजकी सृष्टि भासती है, अरु सकल्पपुर होताहै, अरु सुवर्णमें भूषण होताहै, समुद्रमें तरग होताहै, आकाशमें नीलता दीखतीहै, जैसे नौकामें बैठते किनारेके वृक्ष पर्वत चलते दृष्टि आते है, अरु बादरके चलेते चन्द्रमा धावता दीखताहै, और थंभमें पूतरी भास-

अष्टादशः सर्गः १८.

अथ दृष्टांतवर्णनम्

वसिष्ठउवाच, हे रामजी ! यह परम उत्तम वाक्य है, इसको विचारनहारा उत्तम पदको प्राप्त होता है, जैसे उत्तम खेतमें उत्तम बीज बोयेते उत्तम फलकी उत्पत्ति होती है तैसे इसको विचारनहारा उत्तम पदको प्राप्त होता है, यह वाक्य कैसे हैं जो युक्ति पूर्वक वाक्य. और युक्तिते रहित ऋषि वाक्य भी होहि, तो तिनका त्याग करिये, और युक्ति पूर्वक वाक्यका अंगीकार करिये.

हे रामजी ! जो ब्रह्माके वचन युक्तिते रहित होहिं तबतिनको भी सूखे तृणकी नाईं त्याग करिये, अरु बालकके वचन युक्ति पूर्वक होहिं, तो तिनका अंगीकार करिये, और पिताके कूपका खारा जल होवे, तो उसका त्याग करिये, और निकट मिष्ठ जलका कूप होवे, तब तिसका पान करिये, तैसे बडे अरु छोटेका विचार न करके, युक्ति पूर्वक वचनका अंगीकार करना; हे रामजी ! मेरे वचन सब युक्ति पूर्वक हैं अरु बोधके परमकारण हैं; जो पुरुष एकाग्र होयके इस शास्त्रको आदिते अंत पर्यंत पढे, अथवा पंडित सों श्रवण करके विचारे, तब तिसकी बुद्धि संस्कारित होवे.

प्रथम वैराग्य प्रकरणको विचारेगा, तब वैराग्य उपजेगा जेते कछु जगत्‌के रमणीय भोग पदार्थ हैं, तिनको विरस जानेगा, अरु किसी पदार्थकी वांछा न करेगा, जब भोगमें वैराग्य होता है, तब शांतिरूप आत्मतत्त्वमें प्रतीति होती है; जब विचारकरके बुद्धि संस्कारित होवेगी, तब शास्त्रका सिद्धांत बुद्धिमें आय स्थित होवेगा; और संसारके विकार रहित बुद्धि निर्मल होवेगी, जैसे शरत् कालमें बादरके अभाव हुए ते आकाश सब ओरते स्वच्छ होता है, तैसे बुद्धि निर्मल होवेगी, बहुरि आधिव्याधिकी पीडा उसको न होवेगी हे रामजी ! ज्यों ज्यों विचार दृढ होवेगा, त्यों त्यों शांतात्मा होवेगा; ताते जेते कछु संसारके यत्न हैं तिनका त्याग कर इस शास्त्रको वारंवार विचारेते चैतन्य सत्ता उदय होवेगी, त्यों त्यों लोभ मोहादिक विचारकी सत्ता नष्ट होवेगी. ज्यों ज्यों सूर्य

उदय होता है, त्यों त्यों अंधकार नष्ट होता है, तैसे विकार नष्ट होवेगा तब तिस पदकी प्राप्ति होवेगी जिसके पायेते संसारके क्षोभ मिट जायँगे, जैसे शरदकालमें मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे संसारके क्षोभ मिट जाते हैं.

हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुषको ससारके राग द्वेप वेधिनहीं सकते जैसे जिस पुरुपने कवच पहिरा होय, तिसको वाण वेध नहीं सकते; उसको भोगकी इच्छा नहीं रहती, जब विपय भोग विद्यमान आयरहे, तब तिनको विपय भूत जानके बुद्धि ग्रहण नहीं करती अर्थ जानकर बाहर नहीं निकसती, अंतर आत्मामेंही स्थित रहती है; पतिव्रता स्त्री अपनेअंतःपुरते बाहर नहीं निकलती तैसे ताकी बुद्धि अंतरते बाहर नहीं निकलती हे रामजी! बाहरते तो वह भी प्रकृतिजन्यकी नाई दृष्टि आते हैं जो कछु अनिच्छित प्राप्त होतेहैं, तिसको भुगतता हुआ दृष्टिमें आता है, और अंतरते उसका राग द्वेप नहीं फुरता

हे रामजी! जेता कछु जगत्की उत्पत्ति प्रलयका क्षोभहै सो ज्ञानवानको नष्ट नहीं कर सकता; जैसे चित्रकी वेलिको आंधी चलाय नही सकती, तैसे उसको जगत्का दु ख चलाय नही सकता, अरु संसारकी ओरते जड़ होजाताहै वृक्षकी नाई गभीर हो जाता है, अरु पर्वतकी नाई स्थिर हो जाता है, अरु चद्रमाकी नाई शीतल होजाता है हे रामजी! सो आत्मज्ञानकरके ऐसे पदको प्राप्त होताहै, जिसके पायेते और कछु पाने योग्य नहीं रहता, आत्मज्ञानका कारण यह मोक्षोपाय शास्त्र है, जामें नाना प्रकारके दृष्टांत कहे है. जो वस्तु अपरिच्छिन्न होवे, अरु देखनेमें न आई होय; तिसका न्याय देखनेमें होवे, तिसको विधिपूर्वक समुझावे उसका नाम दृष्टांतहै. हे रामजी! यह जगत कार्य कारणरूपहै; अरु आत्मा जगत्की एकता कैसे होवे, ताते जो मैं दृष्टांत कहोंगा तिसका एक अंश अंगीकार करना सब देशकर अंगीकार नहीं करना, हे रामजी! कार्य कारणकी कल्पना मूर्खने करी है, तिसको निपेधकरनेके निमित्त मैं स्वप्न दृष्टांत कहोंहों; सो समुझनेते तेरे मनका संशय नष्ट होजावेगा दृग अरु दृश्यका भेद मूर्खको भासता है; तिसके दूर करनेके अर्थ स्वप्न दृष्टांत कहोंगा; तिसके विचारने करि मिथ्या विभाग कल्पनाका अभाव होता

विचारवान् पुरुषहै, सो गुरु अरु शास्त्रके श्रवण करके सुखबोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहणकरतेहै. हे रामजी ! तिसको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है, काहेते कि सारग्राहक होते हैं अरु जो अपने बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण नहीं करते, अरु वाद करते हैं, तिसको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति नही होती, ताते दृष्टांतका एकअंश ग्रहण करना, सर्व भावकरके दृष्टांतकों नहीं मिलावना अरु पृथक्को देखि करि तर्क नहीं करना एक अंश दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त सारभूत ग्रहण करना जैसे अंधकारमें पदार्थ परा होवे, सो दीपकके प्रकाशसों देख लेना, जो दीपकके साथ प्रयोजनहै, और ऐसे नहीं कहना कि दीपक किसका है अरु तेल बाती कैसा है, अरु किस स्थानका है, दीपकका प्रकाश ही अंगीकार करना, तैसे एक अंश दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त अंगीकार करना ॰

हे रामजी ! जिस करि वाक्य अर्थ सिद्धि न होवे तिसका त्याग करना, जो वचन अनुभवको प्रगट करै तिसका अंगीकार करना. जो पुरुष अपने बोधके निमित्त वचनको ग्रहण करता है, सोई श्रेष्ठ है, अरु जो वादके निमित्त ग्रहण करता है सो चोगचूंच है, वह अर्थको सिद्ध नहीं करता, जो कोऊ अभिमानको लेकरि कहता है, सो हस्तीकी नाई शिरपर माटी डारता है, तिसका अर्थ सिद्ध नहीं होता, अरु जो अपने बोधके निमित्त वचनको ग्रहण करताहै, अरु विचार करि तिसका अभ्यास करताहै, तब वह आत्मा शांतिको पाताहै हे रामजी ! आत्मपद पावने निमित्त अवश्यमेव अभ्यासचाहिता है; जब शम, विचार संतोष अरु संतसमागम करि बोधकी प्राप्ति होवे, तब परमपदको पाता है

हे रामजी ! जिसका दृष्टांत कहता है, सो एक देश लेकरि कहता है, सर्व शुख कहने करि अखंडताका अभाव होय जाता है; अरु जो सर्व गुण दृष्टांत सुखको जानिये, सो सत्यरूप होता है, ऐसे तो नहीं. आत्मा सत्यरूप है. कार्य कारणते रहित शुद्ध चैतन्य है। तिसके लिखावने निमित्त कार्य कारण जगतका दृष्टांत कैसे दीजिये, यह जगत्का जो दृष्टांत कहता है सो एक अंश लेइ कहता है। अरु बुद्धिमान् भी दृष्टांतके एक अंशको ग्रहण करते हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो अपने बोधके निमित्त सारको ग्रहण

करते हैं अरु जिज्ञासुको भी यही चहिता है, कि अपने वोधके निमित्त सारको ग्रहण करै, अरु वाद न करै. जैसे क्षुधार्थीको चावल पाक आय प्राप्त होवहि, तव भोजन करनेका प्रयोजन है, अरु उसकी उत्पत्ति अरु स्थितिका वाद करना व्यर्थ है.

हे रामजी। वाक्य सोई है जो अनुभवको प्रगट करै. अरु जो अनुभवको प्रगट न करै तिसका त्याग करना, जो स्त्रीका वाक्य होवे अरु आत्म अनुभवको प्रत्यक्ष करै तिसका ग्रहण करना, अरु परमगुरु वेद वाक्य होवे और अनुभवको प्रगट न करै तिसका त्याग करना जवलग विश्रामको नही पाया, तवलग विचार कर्तव्य है, विश्रामका नाम तूर्यपद है, जव विश्रामकी प्राप्ति भई तव अक्षय शांति होती है. हे रामजी! जो तूर्यापद संयुक्त पुरुप है, तिसका श्रुति स्मृति, उक्त कर्महूके करने करि प्रयोजन सिद्ध कछु नही होता अरु न करनेकरि कछु पाप नही होता, सदेह होवे, भावे विदेह होवे, गृहस्थ होवे, भावे विरक्त होवे, तिसको कर्तव्य कछु नही वह पुरुप ससार समुद्रते पार हुआ है.

हे रामजी। उपमेयको उपमा करि जानता है, सो एक अंशको ग्रहण करि जानताहै, तव वोधकी प्राप्ति होती है, अरु जो वोधते रहित है, सो मुक्तिको प्राप्त नहीं होता वह व्यर्थ वाद करताहै हे,रामजी। शुद्ध स्वरूप आत्मसत्ता जिसके घटविषे विराजमानहै, तिसको त्याग करि अपर विकल्प उठावताहै सो चोगचूचहै अरु मूर्ख है.

हे रामजी। जो अर्थ प्रत्यक्ष है, सो प्रमाण मानने योग्य है, और जो अनुमान, अर्थापत्ति, आदि प्रमाणसों तिसकी सत्ता प्रत्यक्ष करि होती है जैसे सव नदीका अधिष्ठान समुद्र है, तैसे सव प्रमाणहूका अधिष्ठान प्रत्यक्ष प्रमाण है, सो प्रत्यक्ष क्या है, सो श्रवण करहु

हे रामजी। चक्षुरूपी ज्ञान संमत संवेदन है, तिस चक्षु करके [illegible] होता है, तिसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है, तिन प्रमाणहूको विचार करने हारा जीवहै, अपने वास्तव स्वरूपके अज्ञानकरि अनात्मारूपी [illegible] वनीहै, तिस विषे अहङ्कृति करके अभिमान भयाहै अभिमान मत्त [illegible] है, ताते हेयोपादेय बुद्धि भई है, अरु राग द्वेष करके परजलता है, आपको कर्त्ता मानि करि वहिर्मुख हुआ भटकता है.

हे रामजी। जब विचार करके संवेदन अंतर्मुखी होवै, तब आत्मपद प्रत्यक्ष होता है, अरु निज भावको प्राप्त होता है, परिच्छिन्न भाव नहीं रहता; शुद्ध शांतिको प्राप्त होता है. जैसे स्वप्नते जागेते स्वप्नका शरीर अरु दृश्य भ्रम नष्ट होजाता है, तैसे आत्माके प्रत्यक्ष हुएते सब भ्रम मिट जाता है, अरु शुद्ध आत्मसत्ता भासती है. हे रामजी। यह जो दृश्य अरु द्रष्टा है, सो मिथ्या है, जो द्रष्टा है सो दृश्य होता है, अरु जो दृश्य है सो द्रष्टा होता है, सो यह भ्रम मिथ्या आकाश रूप है. जैसे पवनमें स्पंद शक्ति रहती है, तैसे आत्मामें संवेदन रहती है जब संवेदन स्पंदरूप होती है तब दृश्यरूप होयके स्थित होती है, जैसे स्वप्नमें अनुभव सत्ता दृश्य रूप होयके स्थित होती है, तैसे यह दृश्य है; ताते सब आत्मसत्ता है, ऐसे विचार करि आत्मपदको प्राप्त होवहु. अरु जो ऐसे विचार करके आत्मपदको प्राप्त न होय सको, तब अहंकार जो उल्लेख फुरता है तिसका अभाव करो, पाछे जो शेष रहैगा सो शुद्ध बोध आत्मसत्ता है. जब शुद्ध बोधको तुम प्राप्त होहुगे, तब ऐसे चेष्टा पडी होवेगी जैसे जंत्रीकी पुतरी संवेदन बिना चेष्टा करती है, तैसे देहरूपी पुतरीका पालनहारा मनरूपी संवेदन है तिस बिना पडी रहैगी; परंतु अहंकृतका अभाव होवेगा; ताते यत्न करके तिस पदके पानेका अभ्यास करो जो नित्य शुद्ध शांतरूप है.

हे रामजी। और दैव शब्दको त्याग करि अपना पुरुषार्थ करो, अरु आत्मपदको प्राप्त होहु कोऊ पुरुषार्थमें शूरमा है सो आत्मपदको प्राप्त होता है, अरु जो नीच पुरुषार्थका आश्रय करता है, सो संसार समुद्रमें डूबता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे दृष्टांतप्रमाणं नाम अष्टादशः सर्गः ॥१८॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९.

अथ आत्मप्राप्तिवर्णनम्।

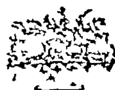
वसिष्ठउवाच, हे रामजी। जब सत्संग करके यह पुरुष शुद्ध बुद्धि होवै, तब आत्मपद पानेको समर्थ होवे; प्रथम सत्संग यह है जिसकी चेष्टा

शास्त्रहूके अनुसार होवे, तिसका संग करै, तिसके गुणहूको हृदय विषे धरै, वहुरि महापुरुषके सम संतोष आदिक गुणहूका आश्रय करै, सम संतोपादिक करि ज्ञान उपजता है, जैसे मेघहू करि अन्न उपजता है, अरु अन्न करि जगत् होताहै, अरु जगत् हूते मेघ होताहै, तैसे शम संतोष भी है. शमादिक गुणकरि ज्ञान उपजता है, अरु आत्मज्ञान करि शमादिक गुण आय स्थित होते हैं जैसे वडे तालकरि मेघ पुष्ट होता है, अरु मेघ करि ताल पुष्ट होता है, तैसे शमादिक गुण करि आत्मज्ञान होताहै, अरु आत्मज्ञानते शमादिक गुण पुष्ट होते है, ऐसे विचारकरके शम संतोषादिक गुणोका अभ्यास करहु, तव शीघ्रही आत्मतत्त्वको प्राप्त होवेगा. हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुषको शमादिक गुण स्वाभाविक आय प्राप्त होतेहै, अरु जिज्ञासीको अभ्यास करके प्राप्त होतेहैं अरु जैसे धान्यकी पालन स्त्री करतीहै, ऊंच शब्द करतीहै जिस करि पक्षीहूको उडावतीहै, जव इसप्रकार पालना करती है, तव फलको पाती है तिसकरि पुष्टहोती है, तैसे शम सतोपादिकके पालनेकरि आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है

हे रामजी ! इस मोक्ष उपाय शास्त्रको आदिते लेकर अंतपर्यंत विचारे तव भ्रांति निवृत्त होवे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्व पुरुषार्थ, कर सिद्ध होतेहै, परन्तु यह मोक्ष उपाय शास्त्र परम कारण है, जो शुद्ध बुद्धिमान् पुरुष इसको विचारेगा, तिसको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी, याते इस मोक्ष उपाय शास्त्रका भलीप्रकार अभ्यास करो

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे आत्मप्राप्ति वर्णन नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

समाप्तमिदं योगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणम् ।



" श्रीवेङ्कटेश्वर " (स्टीम) यन्त्रालय—बम्बई.

हे रामजी ! जब विचार करके संवेदन अतर्मुखी होवे, तब आत्मपद प्रत्यक्ष होता है, अरु निज भावको प्राप्त होता है, परिच्छिन्न भाव नहीं रहता; शुद्ध शातिको प्राप्त होता है. जैसे स्वप्नेते जागेते स्वप्नका शरीर अरु दृश्य भ्रम नष्ट होजाता है, तैसे आत्माके प्रत्यक्ष हुएते सब भ्रम मिट जाता है, अरु शुद्ध आत्मसत्ता भासती है हे रामजी ! यह जो दृश्य अरु द्रष्टा है, सो मिथ्या है, जो द्रष्टा है सो दृश्य होता है, अरु जो दृश्य है सो द्रष्टा होता है, सो यह भ्रम मिथ्या आकाश रूप है जैसे पवनमें स्पद शक्ति रहती है, तैसे आत्मामें सवेदन रहती है जब सवेदन स्पदरूप होती है तब दृश्यरूप होयके स्थित होती है, जैसे स्वप्नेमें अनुभव सत्ता दृश्य रूप होयके स्थित होती है, तैसे यह दृश्य है, ताते सब आत्मसत्ता है, ऐसे विचार करि आत्मपदको प्राप्त होवहु. अरु जो ऐसे विचार करके आत्मपदको प्राप्त न होय सको, तब अहकार जो उल्लेख फुरता है तिसका अभाव करो, पाछे जो शेष रहैगा सो शुद्ध बोध आत्मसत्ताहै. जब शुद्ध बोधको तुम प्राप्त होहुगे, तब ऐसे चेष्टा पडी होवेगी जैसे जन्त्रीकी पुतरी संवेदन बिना चेष्टा करतीहै, तैसे देहरूपी पुतरीका पालनहारा मनरूपी संवेदनहै तिस बिना पडी रहैगी, परंतु अहकृतका अभाव होवेगा; ताते यत्न करके तिस पदके पानेका अभ्यास करो जो नित्य शुद्ध शातरूप है.

हे रामजी ! और दैव शब्दको त्याग करि अपना पुरुषार्थ करो, अरु आत्मपदको प्राप्त होहु. कोऊ पुरुषार्थमें शूरमा है सो आत्मपदको प्राप्त होता है, अरु जो नीच पुरुषार्थका आश्रय करता है, सो संसार समुद्रमे डूबता है

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे दृष्टातप्रमाणं नाम अष्टादशः सर्ग. ॥१८॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९.

अथ आत्मप्राप्तिवर्णनम् ।

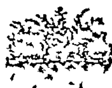
वसिष्ठउवाच, हे रामजी ! जब सत्सग करके यह पुरुष शुद्ध बुद्धि करे, तब आत्मपद पानेको समर्थ होवे; प्रथम सत्संग यह है जिसकी चेष्टा

शास्त्रहूके अनुसार होवे, तिसका संग करै, तिसके गुणहूको हृदय विषे धरै, वहुरि महापुरुषके सम सतोप आदिक गुणहूका आश्रय करै, सम संतोपादिक करि ज्ञान उपजता है, जैसे मेघहू करि अन्न उपजता है, अरु अन्न करि जगत् होताहै, अरु जगत् हूते मेघ होताहै, तैसे शम संतोष भी है शमादिक गुणकरि ज्ञान उपजता है, अरु आत्मज्ञान करि शमादिक गुण आय स्थित होते हैं जैसे वडे तालकरि मेघ पुष्ट होता है, अरु मेघ करि ताल पुष्ट होता है, तैसे शमादिक गुण करि आत्मज्ञान होताहै, अरु आत्मज्ञानते शमादिक गुण पुष्ट होते है, ऐसे विचारकरके शम सतोपादिक गुणोंका अभ्यास करहु, तव शीघ्रही आत्मतत्त्वको प्राप्त होवेगा. हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुपको शमादिक गुण स्वाभाविक आय प्राप्त होतेहै, अरु जिज्ञासीको अभ्यास करके प्राप्त होतेहैं अरु जैसे धान्यकी पालन स्त्री करतीहै, ऊच शब्द करतीहै जिस करि पक्षीहूको उडावतीहै, जब इसप्रकार पालना करती है, तव फलको पाती है तिसकरि पुष्टहोती है, तैसे शम सतोपादिकके पालनेकरि आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है

हे रामजी! इस मोक्ष उपाय शास्त्रको आदिते लेकर अंतपर्यंत विचारे तव भ्राति निवृत्त होवे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्व पुरुपार्थ, कर सिद्ध होतेहै, परन्तु यह मोक्ष उपाय शास्त्र परम कारण है, जो शुद्ध बुद्धिमान् पुरुप इसको विचारेगा, तिसको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी, याते इस मोक्ष उपाय शास्त्रका भलीप्रकार अभ्यास करो

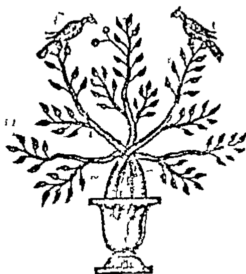
इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे आत्मप्राप्ति वर्णन नाम एकोनविंशतितम: सर्ग: ॥ १९ ॥

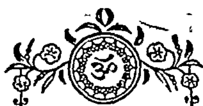
समाप्तमिदं योगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणम्।



इति

योगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणं समाप्तम्





परमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

तृतीयं उत्पत्तिप्रकरणम् ।

तत्र प्रथमः सर्गः १

बोधहेतुवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ब्रह्म अरु ब्रह्मवेत्ता, यह सब शब्द ब्रह्मसत्ताके आश्रयते स्फुरते है, मै अरु तू इद स॰ इत्यादिक सर्व शब्द आत्मसत्ताके आश्रयते स्फुरते हैं, जैसे स्वप्नविषे शब्द होते है, सो सब अनुभवसत्ताविषे होते हैं, तैसे यह भी जान अरु तिसविषे और जो विकल्प होते हैं, जो जगत क्याहै ? अरु कैसे उत्पन्न हुवा है ? अरु किसका है ? इत्यादिक जो विकल्प है सो चोगचचु है ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है, यहा स्वप्नका दृष्टांत विचारि लेना, प्रथम मैने मुमुक्षुप्रकरण तुझसे कहा है, अब उत्पत्तिप्रकरण कहता हौ, कैसी उत्पत्ति है सो श्रवण कर जो ज्ञान है, जो वस्तु है, जो स्वभाव है, जो क्रम है ॥ हे रामजी ! वढ़ता भी वही पदार्थ है, जो उपजा होता है अरु घटता भी वही है, जो उपजा होता है अरु वध अरु मोक्ष भी वही होता है, उत्तम भी वही होता है, नीच भी वही है जो उपजा होता है अरु जो उपजा न होवैगा तिसका न वढना है, न घटना है, न वध होना है, न मोक्ष होना है, न उत्तम होना है, न नीच होना है ॥ हे रामजी ! स्थावर जगम जो कछु जगत् दीखता है, सो सब आकाशरूप है; द्रष्टाका जो दृश्यसाथ सयोग है इसीका नाम वधन है, तिस सयोगका निवृत्त होना, इसीका नाम मोक्ष है; सो तिस निवृत्तिका उपाय मै कहता हौं ॥ देहरूपी जो जगत् है सो चिन्मात्ररूप है; और कछु उपजा नहीं अरु जो उपजा भासता है सो अने

है, जैसे सुषुप्तिते स्वप्न होताहै तैसे जगत्की उत्पत्ति होती है,जैसे स्वप्नते सुषुप्ति होती है तैसे जगत्का प्रलय होता है, जो प्रलयविषे शेष रहता है तिसकी संज्ञा व्यवहारके निमित्त यह रखता है ॥ नित्य सत्य ब्रह्म आत्मा सच्चिदानद इत्यादिक जिसके नाम रक्खे हैं सो सबका अपना आपरूपहै; चैतन्यताकरिके तिसका नाम जीव हुआ है, अरु शब्दअर्थोंको ग्रहण करने लगा है ॥ हे रामजी ! शब्दअर्थोंको जो ग्रहण करता है सो जीव है, अरु चैतन्यविषे जो स्पदता हुई है सो संकल्पविकल्परूपी मन होकरि स्थित हुवा है, तिसके संसरणकरिके देश, काल, नदियां, पर्वत, स्थावर, जंगमरूप जगत् हुआ है, जैसे सुषुप्तिते स्वप्न होवै तैसे जगत् हुआ है, तिसको कोऊ अविद्या कहते हैं, कोऊ जगत् कहते हैं, कोऊ माया कहते हैं, कोऊ संकल्प कहते हैं, कोऊ दृश्य कहते हैं, अरु वास्तवमें सब ब्रह्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं जैसे स्वर्णते भूषण होता है सो भूषण स्वर्णरूप है, स्वर्णते इतर भूषण कछु वस्तु नहीं, तैसे जगत् अरु ब्रह्मविषे कछु भेद नहीं, अरु भेद तब होवे जो कछु जगत् उपजा होवै, जो उपजा ही न होवै तब भेद कैसे भासै ? अरु जो भेद भासता है सो मृगतृष्णाके जलवत् है ॥ जैसे मृगतृष्णाकी नदीके तरग भासते हैं तहां सूर्यकी किरणही जलकी नाईं भासती है ॥ जलका नाम भी नहीं तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, चैतन्यके अणुअणु प्रति सृष्टियां है, अरु कैसी है कि आभासरूप है, कछु उपजी नहीं, सर्वदा अद्वैतसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जन्म मरण अरु बंधमुक्त कैसे होवै ? जेती कछु कल्पनाबंध मुक्त आदिक भासती है सो वास्तविक कछु नहीं, आत्माके अज्ञानकरके भासती है ॥ हे रामजी ! और जगत् कोऊ नहीं उपजा, अपनी कल्पनाई जगत्रूप होइकरि भासती है, अरु प्रमादकरिकै सत् होइ रही है, निवृत्त होना कठिन हो रहा है, अनियत नियत शब्द जो कहे हैं सो भाव्यर्थ हैं, ऐसे वचनोंकरि तौ जगत् दूर नहीं होता ॥ हे रामजी ! युक्त अर्थ वचनोंविना दृश्य भ्रम निवृत्त नहीं होता; जो तर्ककरिके, तप, तीर्थ, दान, स्नान, ध्यानादिक करिके जगतभ्रमको निवृत्त किया चाहते हैं सो मूर्ख हैं, इसप्रकारते तो दृढ होता है जहां जावैगा, तहां इसको

देश काल क्रिया नित्य पांचभौतिक सृष्टिही दृष्ट आवैगी, और कछु दृष्ट न आवैगा, ताते इसका नाश न होवैगा, अरु जो जगत्‌ते उपरात होइ करि समाधि लगाइ बैठैगा, तव भी चिरकालते उतरैगा, वहुरि जगत्‌के शब्द अरु अर्थ इसको भास आवैगा, जो वहुरि अनर्थरूप ससार भासा तौ समाधिका क्या सुख हुआ ? जबलग समाधिविषे रहैगा तबलग सुख रहैगा, ताते इन उपायोंकरिके जगत् निवृत्त नहीं होता, जैसे कमलडोडे विषे वीज होता है, जवलग उस वीजका नाश नहीं होता, तबलग वहुरि उत्पन्न होता है, जो वृक्षके पात तोडिये तौ भी बीजका नाश नहीं होता, तैसे तपदानादिकोंकरि जगत् नहीं निवृत्त होता जवलग अज्ञानरूपी बीज नष्ट नहीं होता जब अज्ञानरूपी बीज नष्ट होवैगा तब जगत्‌रूपी वृक्षका अभाव हो जावैगा, और जो उपाय हैं सो पत्तोंका तोडना है अरु और उपायोकरि अक्षय पद नही प्राप्त होता, अरु अक्षय समाधि नही प्राप्त होती॥ हे रामजी! ऐसी समाधि तौ किसीको प्राप्त होती नही जो शिलाकी नाईं हो जावै, मै सब स्थान देख रहा हो, अरु जो ऐसे भी होवे तौ भी संसारसत्ता निवृत्त न होवैगी, काहेते जो अज्ञानरूपी बीज निवृत्त नहीं भया, यह समाधि ऐसी है जैसे जाग्रत्‌ते स्वप्न होता है अरु अज्ञानरूपी वासनाकरि सुषुप्तिते वहुरि जाग्रत आती है, तैसे अज्ञानरूपी वासनाकरिके समाधिते भी जाग पडता है उसको वासना खैंच ले आती है॥ हे रामजी! तप समाधि आदिकोकरि संसारभ्रम निवृत्त नही होता; जैसे काजीकरिके क्षुधा किसीकी निवृत्त नहीं होती, तैसे तप समाधिकरि चित्तकी वृत्ति एकाग्र होती है, परतु ससार निवृत्त नहीं होता; जबलग चित्त समाधिविषे लगा है तबलग सुख होता है, जब उठा तब वहुरि नानाप्रकारके शब्द अरु अर्थोसयुक्त ससार भासताहै॥ हे रामजी! अज्ञानकरिके जगत् भासता है अरु विचार कियेते निवृत्त होता है, जैसे वालकको अपने अज्ञानकरि परछाहींविषे वैतालकल्पना होती है अरु ज्ञानकरिके निवृत्त होती है, तैसे यह जगत् अविचारकरिके भासता है, विचारते निवृत्त होता है॥ हे रामजी! वास्तवमें कछु जगत् उपजा नहीं असद्रूप है, जो कछु स्वरूपते उपजा होता तब निवृत्त नहीं होता; ताते

विचारकरि निवृत्त होता है, ताते जानाजाता है कि वना कछु नहीं जो वस्तु सत्य होती है तिसकी निवृत्ति नहीं होती, अरु जो असत है सो स्थिर नहीं रहती ॥ हे रामजी ! सो सत् स्वरूप आत्माहै तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता अरु असत्रूप जो जगत् है सो स्थिर नहीं होता, यह जगत् आत्माविषे आभासरूप है, आरंभ अरु परिणामकरि कछु उपजा नहीं ॥ जहा चैतन्य अणुहोता है, तहां सृष्टि भी होती है, काहेते कि आभासरूप है, आत्मरूप आदर्शहै, तिसविषे अनतसृष्टि प्रतिविंवित होती है, अरु आदर्शविषे प्रतिविंव भी तव होता है, जो दूसरा निकट होता है, अरु आत्माके निकट दूसरा कोई प्रतिविंव नहीं होताहै, काहेते कि आभासरूप है, एकही आत्मसत्ता चैतन्यताकरिकै द्वैतकी नाईं होकरि भासती है, और कछु वना नहीं, जैसे फूलविषे सुगंध होती है, अरु तिलोंविषे तेल होता है, अरु अग्निविषे उष्णता होती है, अरु जैसे मनोराज्यकी सृष्टि होती है तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे मनोराज्यते मनोराज्यकी सृष्टि भिन्न नहीं तैसे इस जगत् आत्माते भिन्न कछु वना नहीं ॥

इति श्रीयोग० उत्पत्तिप्रकरणे वोधहेतुवर्णन नाम प्रथम सर्ग ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

प्रथमसृष्टिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक आकाशज आख्यान है, सो श्रवणका भूषण है अरु वोधका कारण है, तिसको श्रवण कर, आकाशज एक ब्राह्मण होता भया, सो कैसा ब्राह्मण है ? शुद्ध चिदशते तिसकी उत्पत्ति भई है, धर्मनिष्ठ है अरु सदा आत्मामें स्थित रहता है, अरु भलीप्रकार प्रजाकी पालना करता है, सो चिरजीवी है; तव मृत्युदेवता विचार करत भया, कि मैं अविनाशी हौं, अरु जीव जो उपजते है तिनको मैं मारता हौं, परतु यह जो ब्राह्मण है; तिसको मैं नहीं भोजन करि सकता; मेरी शक्ति इस ब्राह्मणपर कुंठित हो गई है, जैसे खड्गकी धारा पत्थरपर चलाई कुंठित हो जाती है ॥ हे रामजी ! ऐसा विचार करिकै मृत्यु ब्राह्म-

णको भोजन करनेके निमित्त उठा जैसे श्रेष्ठ पुरुष अपने आचारकर्मको नहीं त्याग करते, तैसे मृत्यु अपने कर्मोंको विचार करि चला ॥ जब ब्राह्मणके गृहविषे मृत्युनें प्रवेश किया, तब उसको अग्नि जलावनेको उडत भया जैसे प्रलय कालविषे महातेजसयुक्त अग्नि सर्व पदार्थोंको जलावने लगता है, तैसे तब मृत्यु दौडके आगे गया; जहां ब्राह्मण बैठा था अंतःपुरविषे जाइकारि पकडने लगा, परंतु ब्राह्मणको पकडि न सका, जैसे बडा बलवान् पुरुष भी औरके संकल्परूप पुरुषको पकड नहीं सकता; तैसे मृत्यु ब्राह्मणको पकड न सका तब मृत्यु बहुरि धर्मराजाके गृहमें आवत भया, अरु कहा ॥ हे भगवन् ! जो कोऊ उपजा है तिसको मैं भोजन करता हौं, परंतु एक ब्राह्मण जो आकाशते उपजा है, तिसको मैं वश नहीं कर सकता इसका क्या कारण है ? ॥ यम उवाच ॥ हे मृत्यु ! तू किसीको नहीं मार सकता, जो कोऊ मरता है, सो अपने कर्मोंकरि मरता है, जो कोऊ कर्मोंका कर्त्ता है, तिसके मारनेको तू समर्थ होवेगा, अरु जिसका कर्म कोऊ नहीं, तिसके मारनेको समर्थ न होवैगा, ताते जाइकारि ब्राह्मणके कर्म खोजो, जब कर्म पावैगा, तब उसको मारनेको समर्थ होवैगा, अन्यथा समर्थ न होवैगा ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार यमने कहा तब कर्म खोजनेके निमित्त मृत्यु चला, कर्म नाम है वासनाका, वहां जाइके ब्राह्मणके कर्मोंको ढूँढने लगा, दशों दिशा देखे ताल समुद्र बगीचे देखे, द्वीपते द्वीपांतर देखे, इत्यादिक सब स्थान देखते फिरे, परंतु ब्राह्मणके कर्मोंकी प्रतिमा कहूं न पाई ॥ हे रामजी ! मृत्यु बडा बलवंत है, परंतु ब्राह्मणके कर्मोंको न पाया, तब मृत्यु बहुरि धर्मराजाकेपास गया, कैसा धर्मराजा है, जो संपूर्ण संशयोंका नाश करता है, अरु सदा ज्ञानस्वरूप है, तिसको मृत्यु कहत भया, हे संशयोंका नाशकर्त्ता ! ब्राह्मणके कर्म मुझको कहू नहीं दृष्ट आवते, बहुत प्रकार ढूँढ रहा हौं, जो शरीरधारी है, सो सब कर्मसंयुक्त है, इसका जो कर्म कोऊ नहीं है सो क्या कारण है ? ॥ यम उवाच ॥ हे मृत्यु ! इस ब्राह्मणकी उत्पत्ति शुद्ध चिदाकाशते हुई है; तहां न कोऊ कारण था, जो पदार्थ कारणविना है, सो जिसविषे भास्या है सो ईश्वररूप है; हे

मृत्यु ! शुद्ध आकाशते जो इसका होना हुआ है; तौ यह भी वही रूप है, यह ब्राह्मण भी शुद्ध चिदाकाशरूप है अरु इसका चेतनही वपु है, इसका कर्म कोऊ नहीं, न कोऊ कर्म किया है, शुद्ध चिदाकाश इसका स्वरूप है, अपने स्वरूपते आपही इसका होना हुवा है इस कारणते इसका नाम स्वयभू है, अरु सदा अपने आपविषे स्थित है; इसको जगत् और कछु नही भासता, सदा अद्वैतरूप है ॥ मृत्युरुवाच ॥ हे भगवन् ! जो यह आकाशस्वरूप है, तौ साकाररूप क्यों दृष्ट आता है ॥ यम उवाच ॥ हे मृत्यु ! यह सदा निराकार चेतन्यवपु है, इसके साथ आकार कोऊ नहीं, अरु अहभाव भी कोऊ इसके साथ नहीं, ताते इसका नाश कैसे होवे ? अह त्वं कोऊ जानताही नही, जगत्का निश्चय भी इसकेविषे कोई नहीं, यह ब्राह्मण अचेत चिन्मात्र है, जिसके मनविषे पदार्थों का सद्भाव होता है, तिसका नाश भी होता है, जिसको जगत् भासताही नहीं, तिसका नाश कैसे होवे ? हे मृत्यु ! जो वड़ा वली भी कोऊ होवे अरु जंजीरसे भी होवे तौ भी आकाशको वाध न सकेगा, तैसे ब्राह्मण आकाशरूप है, इसका नाश कैसे होवै; ताते इसके नाश करनेका उद्यम त्याग करु, और देहधारियोंको जाइ मारौ, यह तुमसों न मरेगा ॥ हे रामजी ! ऐसे सुनकर मृत्यु आश्चर्यवत् होकरि अपने गृहविषे आया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह तौ हमारे वड़े पितामह ब्रह्माकी वार्ता तुमने कही है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वार्ता तो ब्राह्माकी कही है परतु मृत्यु अरु यमके विवादनिमित्त में तुझको श्रवण कराई है, इस प्रकार जव वहुत काल व्यतीत हुआ, अरु कल्पका अंतपात हुवा, तव मृत्यु सर्व भूतोंको भोजनकरि लाया, वहुरि ब्रह्माको भोजन करनेको गया, जैसे किसीका कर्म होता है अरु एकवार सिद्ध न भया, तौ छोड़ नहीं देता, वहुरि उद्यम करता है, तैसे मृत्यु भी ब्रह्माके सन्मुख गया, तव धर्मराजाने कहा ॥ हे मृत्यु ! यह जो ब्रह्मा है, सो आकाशरूप है, अरु आकाशही इसका शरीर है, तौ आकाशके पकडनेको तू कैसे समर्थ होवैगा ? ॥ यह तौ पंचभूतके शरीरते रहित है, जैसे सकल्प पुरुप होता है, तो उसका आकाशही वपु होता है, तैसे

यह आकाशरूप है, अरु आदि अंत मध्यते रहित है, अहं त्वंके उल्लेखते रहित है, अचेत चिन्मात्र है, इसके मारनेको तू कैसे समर्थ होवैगा, अरु यह जो इसका वपु भासता है, सो ऐसे है, जैसे शिल्पीके मनविषे स्तंभकी पुतली होती है, सो कछु नहीं है, तैसे स्वरूपते इतर इसका होना नहीं, यह तौ ब्रह्मस्वरूप है, हमारे तुम्हारे मनविषे इसकी प्रतिमा हुई है, यह तौ निर्वपु है, जो पुरुष देहवत होता है, तिसको ग्रहण करना सुगम होता है; अरु वंध्यापुत्रके ग्रहणको श्रम होता है, काहेते जो निर्वपु है, तैसे यह भी निर्वपु है, इसके मारनेकी कल्पनाको त्याग, और देहधारियोंको जाइकै मार ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे प्रथमसृष्टिवर्णनं नाम द्वितीयःसर्गः॥२॥

तृतीयः सर्गः ३.

बोधहेतुवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार मृत्युको यमने कहा, ब्रह्माजी आकाशरूप है, अरु द्वैतकल्पनाते रहित है ॥ हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्र सत्ता सूक्ष्महै, जिसविषे आकाश भी पर्वतकी नाई स्थूलहै; तिस चित्तविषे जो अहं अस्मि चैत्योन्मुखत्व हुवा है,तिसकरि अपने साथ देहको देखत भया, सो देह भी आकाशरूप है ॥ हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्यका उल्लेख किसी कारणकरिके नहीं हुवा, स्वत स्वभावही ऐसे उल्लेख आय फुरा है तिसका नाम स्वयंभू ब्रह्मा हुआ है, तिस ब्रह्माको सदा ब्रह्महीका निश्चय है, ब्रह्मा अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं, जैसे समुद्र अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, फूल अरु गंधविषे भेद नहीं तैसे ब्रह्मा अरु ब्रह्मविषे भेद नहीं, जैसे जल द्रवता करिके तरंगरूप होकरि भासता है, तैसे आत्मसत्ता चैतन्यताकरिके ब्रह्मा हो करि भासती है, ब्रह्मा दूसरी वस्तु कछु नहीं, सदा चैतन्य आकाश है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते रहित है ॥ हे रामजी ! न कोऊ इसका कारण है, न कोऊ कर्महै ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमने जो कहा कि पृथ्वी

आदि तत्त्वोंते रहित ब्रह्माजीका वपु है, अरु सकल्पमात्र है, तौ स्मृतिका संस्कार इसका कारण क्यों न होवै ? जैसे हमको स्मृति है, और जीवोंको स्मृति है तैसे ब्रह्माको भी होवै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! संस्कार स्मृति उसीका कारण होती है, जो आगे भी देहवान् होता है, जो पदार्थ आगे देखा होताहै, तिसकी स्मृति संस्कारते भी होती है, अरु जो देखा नहीं होता, तिसकी स्मृति सस्कारते भी नहीं होती, सो ब्रह्माजी अद्वैत है, अजहै, आदि मध्य अंतते रहित है, इसकी स्मृति कारण कैसे होवे, यह तौ शुद्ध बोधरूपहै, सो आत्मतत्त्व ब्रह्मारूप हो करि स्थित हुआहै, अपने आपते जो इसका होना हुआहै, इसीते इसका नाम स्वयभूहै, शुद्ध बोधविषे चैत्य उल्लेख हुआ है, अर्थ यह जो चित्त चैतन्यस्वरूपको नाम है अपने चित्तका संवित् कारण होवै, और दूसरा इसका कारण कोऊ नही, सदा निराकार है, अरु सकलपरूप इसका शरीर है, और पृथ्वी आदिक भूतते शुद्ध अंतवाहक इसका वपु है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जेते कछु जीव है, तिनके दो दो शरीर हैं, एक अंतवाहक शरीर है, दूसरा आधिभौतिक शरीर है, सो ब्रह्माका एकही अतवाहक शरीर कैसे है ? यह वार्त्ता स्पष्ट करि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो सकारणरूप जीव हैं, तिनके दो दो शरीर हैं, अरु ब्रह्माजी अकारण हैं, इस कारणते उनका एक अंतवाहकही शरीर है ॥ हे रामजी ! सुनो; जीवोंका कारण ब्रह्मा है, इस कारणते यह जीव दोनों देहोंको धरते हैं; अरु ब्रह्माजीका कारण कोऊ नहीं, अपने आपते उपजा है, इसका नाम स्वयंभू है; अरु आदि जो इनका प्रादुर्भाव हुआ है, सो अतवाहक शरीर है, अपने स्वरूपका विस्मरण नहीं भया, सदा अपने वास्तव स्वरूपविषे स्थित है, ताते अंतवाहक है, अरु दृश्यको अपने संकल्पमात्र जानता है, अरु जिनको दृश्यविषे दृढ प्रतीति हुई है तिनको आधिभूत कहते हैं, जैसे जडताकरिके जलका बरफ होता है, तैसे दृश्यकी दृढताकरिके आधिभौतिक होते है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् तुझको दृष्ट आता है, सो सब आकाशरूप है, किसी पृथ्वी आदिक भूतोंते नहीं हुआ, भ्रमकरिके आधिभौतिक भासता है, जैसे स्वप्ननगर आकाशरूप

होता है, किसी कारणसों नहीं उपजा, न किसी पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते उपजा है, सब आकाशरूप है, अरु निद्रा दोपकरिकै आधिभौतिक होय करि भासता है, तैसे यह जाग्रत् जगत् भी अज्ञानकरिकै आधिभौतिक आकाश भासता है, जैसे स्वप्न अज्ञानकरिकै अर्थाकार भासता है, तैसे जगत् अज्ञानकरि अर्थाकार भासता है ॥ हे रामजी ! यह संपूर्ण जगत् सकल्पमात्र है, और कछु वना नहीं, जैसे मनोराज्यके पर्वत आकाशरूप होते हैं, तैसे यह जगत आकाशरूप है, वास्तव कछु वना नहीं, सब सकल्पके पुरुप हैं, सब जगत् मनते उपजा है, जैसे बीजते देशकाल करिकै अंकुर निकसता है, तैसे सब दृश्य मनते उपजता है, सो मनरूपी ब्रह्मा है, अरु ब्रह्मादि मनरूप हैं, तिसके सकल्पविषे सपूर्ण जगत् स्थित है, सो सब आकाशरूप है, आधिभौतिक कोऊ नही ॥ हे रामजी ! आधिभौतिक जो आत्माविषे भासता है, सो भ्रांतिमात्र है, जैसे बालकको परछैयामें वैताल भासता है, तैसे अज्ञानीको आधिभौतिक भासता है, सो भ्रांतिमात्र है, वास्तव कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जेते कछु जीव हैं, सो सबही अंतवाहक हैं, परंतु अज्ञानीको अतवाहकता निवृत्त हो गई है, अरु आधिभौतिकता दृढ हो गई है अरु जो ज्ञानवान् पुरुप हैं, सो अतवाहकरूप है ॥ हे रामजी ! जिन पुरुपोंको प्रमाद नही हुआ, सो सदा आत्माविषे स्थित हैं, अंतवाहकरूप हैं, अरु सब जगत् आकाशरूप है, जैसे सकल्पपुरुप होता है, जैसे गंधर्वनगर होता है, जैसे स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत है, जैसे स्तभविषे पुतलियां शिल्पी कल्पता है, जो एती पुतलिया स्तंभविषे है, सो पुतलियां उपजी कछु नहीं, ज्योंका त्यों स्तंभ स्थित है, पुतलीका सद्भाव शिल्पीके मनविषे होता है, तैसे सब विश्व मनविषे स्थित है, स्वरूपते कछु बना नहीं ॥ दृश्यही मनरूप है, अरु मन दृश्यरूप है, जैसे तरंगही जलरूप हैं, जलही तरगरूप है ॥ हे रामजी ! जबलग मनका सद्भाव है, तबलग दृश्यका बीज मन है, जैसे कमलडोडेका सद्भाव उसके बीजविषे होता है, तिसकरि कमलडोडेकी उत्पत्ति होती है, तैसे जगत्का बीज मन है, सब जगत् मनते उत्पन्न होता है ॥ हे रामजी ! जब तुझको स्वप्न आता है, तब तेराही चित्त

फुरता है सो मनका रूप है, जहां जहां संकल्प फुरता है, तहां तहां मन है, जैसे जहां जहां तरंग फुरते हैं; तहां तहां जल है; तैसे जहां जहां संकल्प फुरता है, तहां तहां मन है और भी मनके नाम हैं, स्मृति कहिये, अविद्या कहिये, मलिनता कहिये, तम कहिये, ये सब इसके नाम हैं, ज्ञानवान् पुरुष जानते हैं ॥ हे रामजी ! जेती कछु जगत्‌जाल भासती है, सो सब मनते उत्पन्न हुई है, अरु सब दृश्य मनरूप है, काहेते कि मनका रचा हुआ है, वास्तव कछु नहीं ॥ हे रामजी ! मनरूपी जो देह है, तिसका नाम अंतवाहक शरीर है, सो संकल्परूप है, अरु सब जीवोंका आदि वपु है, तिस संकल्पविषे जो दृढ आभास हुआ है, तिसकरि आधिभौतिक भासने लगा है, अरु आदि स्वरूपका प्रमाद हुआ है ॥ हे रामजी ! यह जगत् सब संकल्परूप है, स्वरूपके प्रमादकरिकै पिंडाकार भासता है, जैसे स्वप्नदेहका आकार आकाशरूप है पृथ्वी आदि तत्त्वोंका अभाव होता है, परंतु अज्ञानकरिकै आधिभौतिकता भासती है, सो मनहीका संसरना है; तैसे यह जगत् है, सब मनके फुरनेकरि भासता है ॥ हे रामजी ! जहां मन है, तहां दृश्य है, जहां दृश्य है, तहां मन है, जब मन नष्ट होवै तब दृश्य भी नष्ट होवै, शुद्ध बोधमात्रविषे जो दृश्य भासता है सोई मन है; जबलग दृश्य भासता है, तबलग मुक्त न होवेगा, जब दृश्यभ्रम नष्ट होवैगा; तब शुद्ध बोधको प्राप्त होवेगा ॥ हे रामजी ! द्रष्टा दर्शन दृश्य यह जो त्रिपुटी भासती है, सो मनकरि भासती है, जैसे स्वप्नविषे त्रिपुटी भासती है, जब जागिकै उठा तब त्रिपुटीका अभाव हो जाता है, अरु अपना आप भासता है, तैसे आत्मसत्ताविषे जागे हुए अपना आप अद्वैतही भासता है, जबलग शुद्ध बोध नहीं प्राप्त भया, तबलग दृश्यभ्रम निवृत्त नहीं होता, अरु बाह्य देखता है, तब सृष्टिही दृष्ट आती है, जब अंतर देखैगा तो भी सृष्टि दृष्ट आती है, अरु तिसको सत्य जानिकरि रागद्वेषकल्पना उठती है, अरु जब मन आत्मपदको प्राप्त होता है, तब दृश्यभ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे जब वायुकी स्पंदता मिटी, तब वृक्षके पत्रोंका हलना भी मिटि जाता है,

ताते मनरूपी दृश्यही बंधनका कारण है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह दृश्यरूपी विषूचिका रोग है, तिसकी निवृत्ति कैसे होवै सो कृपा करिकै कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! संसाररूपी वैताल जिसको लगा है, तिसकी निवृत्ति अकस्मात् करि होती है, प्रथम तौ विचार करिकै जगतका स्वरूप जानैगा, तिसके अनंतर जब आत्मपदविषे विश्रांत होवैगा, तब तू सर्व आत्मा होवैगा॥ हे रामजी ! दृश्यभ्रम जो तुझको भासताहै,तिसको मै उत्तर ग्रंथकरि निवृत्त करौंगा, इसविषे संदेह नही, श्रवण कर, यह दृश्य मनते उपजा है, इसका सद्भाव मनविषे हुवा है, जैसे कमलके डोडेका जो उपजना है, सो कमलडोडेके बीजविषे है, तैसे संसारका उपजना स्मृतिते होता है, सो स्मृति अनुभव आकाशविषे होती है ॥ हे रामजी ! स्मृति तिस पदार्थकी होती है, जिसका अनुभव सद्भावरूप ग्रहण होता है, अरु जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो संकल्परूप है, कोऊ पदार्थ सद्रूप नहीं, जो वस्तु असद्रूप है, तिसकी स्थिरता नहीं होती, अरु जो सद्वस्तु है, तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता, जेता कछु प्रपंच भासता है, सो असद्रूप है, मनके चिंतनते उत्पन्न हुआ है, जब मन फुरनेते रहित होवै तब जगत्भ्रम निवृत्त होता है ॥ हे रामजी ! पृथ्वी पर्वत आदिक जगत् असद्रूप नहीं होता,तब मुक्तभी कोऊ नहीं होता, मुक्त जो होना है सो दृश्यभ्रमते होना है, जो दृश्यभ्रम मन नष्ट न होता, तौ मुक्त कोऊ न होता सो तौ ब्रह्मर्षि राजर्षि देवता इत्यादिक बहुतेरे मुक्त हुए है, इस कारणते कहते है, कि दृश्य असत्यरूप है, मनके संकल्पविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! एक मनको स्थिर करि देख बहुरि अहं त्वं आदिक जगत् तुझको कछु न भासैगा, चित्तरूपी आदर्श है, तिसविषे संकल्परूपी दृश्य मलिनता है, जब मलिनता दूर होवैगी, तब आत्माका साक्षात्कार होवैगा ॥ हे रामजी ! यह दृश्यभ्रम मिथ्या उदय भया है,जैसे गंधर्वनगर होता है, जैसे स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत भी है, जैसे शुद्ध आदर्शविषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है, तैसे चित्तरूपी आदर्शविषे यह दृश्य प्रतिबिंबित है, मुकुरविषे जो पर्वतका प्रतिबिंब होता

है, सो आकाशरूप है, कछु पर्वतका सद्भाव नही, तैसे आत्माविषे जगत्का सद्भाव नहीं, जैसे बालकको भ्रमकरि परछाहीविषे पिशाचबुद्धि होती है, तैसे अज्ञानीको जगत् भासता है, वास्तवमें जगत् कछु नहीं ॥ हे रामजी ! न कछु मन उपजा है, न कछु जगत् उपजा है, दोनों असद्रूप है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासताहै तैसे आत्माविषे जगत् भासताहै,जैसे आकाश अपनी शून्यताकरिकै पूर्णहै,जैसे समुद्र जलकरि पूर्ण है, तैसे ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित पूर्ण है, तिसविषे जगत्का अत्यंत अभाव है॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह तुम्हारे वचन ऐसे है, जैसे कहिये कि वंध्याके पुत्रने पर्वत चूर्ण किया है, अरु शशेके शृंग अति सुंदर हैं, अरु रेतविषे तेल निकसता है अरु पत्थरकी शिला नृत्य करती है, अरु जैसे कहिये मृत्तिका मेघ गर्जता है अरु पत्थरकी पुतलियां गान करती हैं, तैसे तुम्हारे शब्द मुझको भासते हैं, तुम कहते हौ दृश्य कछु उपजा नही, अरु है ही नहीं, अरु मुझको जरा मृत्यु आदिक विकारोंसहित प्रत्यक्ष भासता है, ताते मेरे मनविषे तुम्हारे वचनोंका सद्भाव नहीं स्थित होता, अरु जो तुम्हारे निश्चयविषे इसी प्रकार है, तौ अपना निश्चय मुझको भी बताओ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो हमारे वचन हैं, सो यथार्थ हैं, हमने असत् कदाचित् नहीं कहा, तुम विचार करि देखौ, यह जो जगत् आडंबर है, सो कारणविना है,जब महाप्रलय होताहै,तब पाछे शुद्ध चैतन्य संवित् रहता है,तिसविषे कार्यकारणकल्पना कोई नहीं रहती है,तिसविषे जो बहुरि जगत् फुरताहै सो कारणविना फुरताहै,जैसे सुषुप्तिते स्वप्नसृष्टि फुरतीहै जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण है तैसे इह सृष्टि भी अकारणहै ॥ हे रामजी ! जिसका समवायिकारण अरु निमित्तकारण न होवै अरु प्रत्यक्ष भासै तब जानिये कि भ्रांतिरूप है, जैसे नित्य स्वप्नका अनुभव तुझको होताहै तिसविषे नानाप्रकारके पदार्थ कार्यकारणसहित भासते है, अरु कारणविना है, तैसे यह जगत भी कारणविना है, ताते आदि कारणविना जगत् उपजा है, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे संकल्पपुर भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है,तैसे यह जगत् भासता है,कोऊ पदार्थ सत् नहीं,जैसे स्वप्नविषे

राज्यपाति भासते है अरु नानाप्रकारके पदार्थ भी भासते है, सो किसी कारणते तौ नहीं उपजे,सब आकाशरूप हैं,मनके संसरनेकरिके भासते है, तैसे यह जगत् चित्तके संसरनेकरिके भासता है, जैसे स्वप्नते और स्वप्न भासता है, बहुरि और स्वप्न भासता है, तैसे यह जगत् भासता है, तैसे जाग्रत् जगत्जाल मनकी कल्पनाकरि भासता है ॥ हे रामजी! चलना, दौरना, देना, लेना, बोलना, सुनना, सूघना इत्यादिक विषय रागद्वेपादिक जो विकार हैं, सो सब मनके फुरनेकरि होते हैं, आत्माविषे विकार कोऊ नहीं, जब मन उपशम होता है, तब सब कल्पना निवृत्त हो जाती है ताते ससारका कारण मन है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बोधहेतुवर्णनं नाम चतुर्थः सर्ग. ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५



प्रयत्नोपदेशवर्णन ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! मनका रूप क्या है ? यह तौ मायामय है इसका होना जिसते है, सो कौन पद है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तब सब जगत्का अभाव होता है, पाछे जो शेप रहता है, सो सद्रूप है, अरु आदि सर्गका भी सत्यरूप होता है तिसका नाश कदाचित् नही होता, सदा प्रकाशरूप है, अरु परमदेव है, शुद्ध परमात्मतत्त्व अज अविनाशी है अद्वैत है, जिसको वाणी नहीं कहि सकती, सो पद जीवन्मुक्त पावता है ॥ हे रामजी ! आत्मआदिक जो शब्द हैं, सो भी उद्देशविषे कल्पित हैं, स्वाभाविक कोऊ शब्द नहीं प्रवर्त्तता, शिष्यको जनावनेनिमित्त शास्त्रकारोंने एते नाम देवके कल्पे हैं, मुख्य तौ देवको पुरुपकारि कहते हैं, वेदांतवादी ब्रह्मकरि कहते हैं, विज्ञानवादी बौद्ध तिसको विज्ञानकरिकै कहते हैं, एक कहते है निर्मलरूपहै, शून्यवादी कहते हैं शून्यही शेप रहता है, एक कहते हैं प्रकाशरूप है, जिसके प्रकाशकरि सूर्यादिक प्रकाशते हैं, एक उसको वक्ता कहते हैं, कि आदिवेदका वक्ता वही है, अरु स्मृतिकर्त्ता कहते हैं,

कि सब कछु स्मृतिकरिकै वह करनेहारा है, सब कँछु उसकी इच्छाकरिकै हुआ है, ताते सबका कर्त्ता वही है, सर्वात्मा है, और सर्वका कर्त्ता है ॥ हे रामजी ! इत्यादिक सज्ञा तिसकी शास्त्रकारोंने करी हैं, सर्वका जो अधिष्ठान है, सो परमदेव है, अरु अस्ति आदि पट् विकारोंते रहित है, शुद्ध चैतन्य है, सूर्यवत् प्रकाशरूप है सो देव सब जगत्विषे पूर्ण हो रहा है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी सूर्य है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक तिसकी किरणै है, अरु ब्रह्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगत्रूपी तरंग बुद्बुद उत्पन्न होते है, अरु लीन होते है, अरु सर्व पदार्थ आत्माके प्रकाशकरि प्रकाशते है, जैसे दीपक अपनेआपकरि प्रकाशता है अरु औरोंको भी प्रकाश देता है, तैसे आत्मा अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है और सर्वको सत्ता देनेहारा है ॥ हे रामजी ! वृक्ष जो उपजता है, सो आत्मसत्ताकरि उपजता है, आकाशविषे शून्यता तिसकी करी है, अग्निविषे उष्णता तिसकी करी है, जलविषे द्रवता तिसकी करी है, पवनविषे स्पर्श तिसका किया है, सर्व पदार्थोंकी सत्ता वही है, मोरके पंखोंविषे जो रग है, सो आत्मसत्ताकरि हुआ है, पत्थरमें मुगे तिसीकरि हुए है, और पत्थरविषे जो जडता है,सो तिसीकी करी है, स्थावर जगम जगत्का अधिष्ठानरूप ब्रह्म है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी चद्रमा है, तिसकी किरणोंसों ब्रह्माण्डरूपी त्रसरेणु उत्पन्न होते हैं, सो कैसा चद्रमा है, जो शीतलता अरु अमृतकरि पूर्ण है; ब्रह्मरूपी मेघ है, तिसते जीवरूपी बुदां स्रवते है, जैसे बिजलीका प्रकाश होता है, अरु छुप जाता है, तैसे जगत् प्रगट होता है, अरु छुप जाता है, सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, सो नित्य शुद्ध बुद्ध परमानंदरूप है, सत्यअसत्यरूप पदार्थ सब आत्मसत्ताकरिकै होतेह ॥ हे रामजी ! तिस देवकी सत्ताकरिकै जड पुर्यष्टक चैतन्य होयकरि चेष्टा करती है, जैसे चुंबक पत्थरकी सत्ताकरिकै लोहा चेष्टा करता है, तैसे चैतन्यरूपी चुबकमणिकरि देह चेष्टा करता है; सो आत्मचैतन्य नित्य है, सबका कर्त्ता आत्माही है, तिसका कर्त्ता और कोऊ नहीं, सब साथ अभेदरूप है, समान सत्ता है, उदयअस्तते रहित है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष तिस देवको साक्षात् करता है, तिसकी

सब क्रिया नष्ट हो जातीहै,अरु चिज्जडग्रंथि भेदि जातीहै,केवल बोधरूप होते है,जब स्वभावसत्ताविषे मन स्थित होता है,तब मृत्युको सन्मुख देखि-करि भी विह्वल नहीं होता॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह देव किसी स्थानविषे रहता नहीं, अरु कछू दूर भी नहीं, अपने आपविषे स्थित है॥ हे रामजी! घटघटविषे देव है,अरु अज्ञानीको दूर भासता है,सो स्नान,दान, तप आदिकरिकै नहीं प्राप्त होता,ज्ञातव्यहीकरि प्राप्त होताहै,कर्तव्यकरिकै नहीं प्राप्त होता, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, सो कर्तव्यताकरि नहीं निवृत्त होती, ज्ञातव्यकरिकै निवृत्त होती है, तैसे जगत्की निवृत्ति आत्म-ज्ञानकरि होती है॥ हे रामजी! कर्तव्य भी सोई है, जो प्राप्त होनेका ज्ञात-व्यरूप है, अर्थ यह जो ज्ञातव्य स्वरूपकी प्राप्ति होती है॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! जिस देवके जाननेते पुरुष बहुरि जन्ममरणको नहीं प्राप्त होता, सो कहाँ रहता है! अरु किस तप क्लेशकरि तिसकी प्राप्ति होती है?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! किसी तपकरि देवको नहीं प्राप्त होता, अपने पुरुषप्रयत्नकरि प्राप्त होता है, जेता कछु राग, द्वेष, तम, क्रोध, मत्सर, अभिमानसहित तप है, सो निष्फल दंभ है, इसकरि आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती॥ हे रामजी! परम औषध सत्संग अरु सच्छास्त्रनका विचार है, जिसकरि दृश्यरूपी विषूचिका निवृत्त होती है, प्रथम इसका आचार भी शास्त्र अरु लोकोंकेसाथ अविरुद्ध होवै, अर्थ यह कि, शास्त्रोंके अनुसार होवै, अरु भोगरूपी गर्तविषे गिरै नहीं, संतोषसयुक्त यथालाभसंतुष्ट होवै, अनिच्छित भोग प्राप्त होवै, अरु शास्त्र अविरुद्ध होवे तिसको ग्रहण करै, अरु विरुद्ध होवै तिसका त्याग करै, दीन न होवै; ऐसा जो उदारआत्मा है, तिसको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होती है॥ हे रामजी! आत्मपद पानेका कारण सत्संग अरु सच्छा-स्त्रहै, संत कौन है, जिसको सब लोक भला साधु कहते है, अरु सच्छास्त्र सो है, जिसविषे ब्रह्मनिरूपण होवै, ऐसे संतोंका संग अरु सच्छा स्त्रोंका विचार होवै, तब शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होती है, जब यह पुरुष श्रुतिविचारद्वारा अपने परम स्वभावविषे स्थित होता है, तब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र भी इसकी दया चाहतेहै कहते है कि जो यह पुरुष परब्रह्म

कि सब कछु स
रिके हुआ है,
है ॥ हे रामजी
जो अधिष्ठान
है, शुद्ध चैतन्य
हो रहा है
रुद्रादिक तिन
जगत्‌रूपी तरं
आत्माके प्रका
है अरु औरोंको
प्रकाशता है
जता है, सो
करी है, अग्नि
है, पवनविषे
पंखोंविषे जो
हुए है, और
जगत्का
तिसकी
है, जो श
रूपी बुद
तैसे जग
सत्ता है; स
आत्मसत्ता
एक चैतन्य
लोहा चेष्टा कर
है; सो आत्मचैत
और कोऊ नहीं,
रहित है ॥ हे रामजी

सो स्पष्ट भासता है, इसके होते चित्तके रोकनेको कैसे समर्थ होता है, अरु दृश्य किस प्रकार निवृत्त होता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दृश्यसयोगी जो चैतन्य है, सो जीव है, जन्मरूपी जंगलविषे भटकता भटकता थक पडता है, इस चेतनको जो चैत्य कहते हैं, अर्थ यह कि, चिदाभास जीव प्रकाशी सो पडित भी मूर्ख है यह तो संसारी जीव है, इसके जाननेते मुक्ति कैसी होवै, मुक्ति परमात्माके जाननेते होती है; अरु सर्व दुःख नाश होते हैं, जैसे विषविषूचिका रोग उत्तम औषधकरि निवृत्त होता है, तैसे परमात्माके जाननेते मुक्त होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! परमात्माका क्या रूप है, जिसके जाननेते मोहरूपी समुद्रको तरता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देशते देशातरको निमेषविषे दूर जो सवित् जाता है, तिसके मध्य जो ज्ञानसंवित् है, सो परमात्माका रूप है, अरु जहाँ ससारका अत्यंत अभाव होता है, तिसके पीछे बोधमात्र शेष रहता है, सो रूप परमात्माका है ॥ हे रामजी ! जहाँ दृश्य द्रष्टा दर्शनका अभाव होता है, ऐसा जो आकाश है, सो रूप परमात्माका है, अरु जो अशून्य है, अरु शून्यकी नाईं स्थित है, जिसविषे सृष्टिका समूह शून्य है, ऐसी अद्वैत सत्ता है, सो रूप परमात्माका है ॥ हे रामजी ! महाचेतनरूप बड़े पर्वतकी नाईं स्थित है, अरु अजड है, अरु जडकी नाईं स्थित है, सो रूप परमात्माका है, सबके अंतर बाहिर स्थित है, अरु सबको प्रकाशता है, सो परमात्माका रूप है ॥ हे रामजी ! जैसे सूर्यका प्रकाशरूप है, अरु जैसे आकाश शून्यरूप है, तैसे यह जगत् आत्मरूप है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो सर्व परमात्माही है, तौ वह क्यों नहीं भासता ? और सब जगत् भासता है, इस जगत्का निर्वाण कैसे होवै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जगत् भ्रमकरिकै उत्पन्न हुआ है, वास्तव कछु नहीं जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे आत्माविषे जगत भासता है, जब जगतका अत्यत अभाव जानैगा तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा, और किसी उपायकरि नहीं होवैगा, जब दृश्यका अत्यत अभाव करैगा तब दृश्य उसी प्रकार स्थित रहैगा, अरु तुझको परमार्थसत्ताही भासैगी ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी जो आदर्श है;

हुआ है। हे रामजी ! संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार इसको निर्मल करता है, दृश्यरूप जो मैल है तिसका नाश करता है, जैसे निर्मल रेतकरिकै जलका मैल दूर होता है, अरु परम निर्मल होता है, तैसे यह पुरुष निर्मल होता है, अरु चैतन्य होता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे प्रयत्नोपदेशो नाम पंचमः सर्ग. ॥५॥

षष्ठः सर्गः ६.

दृश्यासत्यप्रतिपादन ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह देव जो तुम कहा, जिसके जाननेते संसारबंधनते मुक्त होता है, सो देव कहाँ स्थित है, अरु किसप्रकार तिसको पाता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह देव दूर नहीं, शरीरविषे स्थितहै, नित्य चिन्मात्र है, सर्वविषे पूर्ण है, अरु सर्व विश्वते रहित है, चंद्रमाको मस्तकविषे धरनहारा जो सदाशिवहै, सो चिन्मात्ररूप है, अरु कमलज ब्रह्मा भी चिन्मात्ररूप है, अरु कमलनाभ विष्णु भी चिन्मात्र है, इंद्रादिक सब चिन्मात्ररूप है, अरु सब जगत् चिन्मात्ररूप है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह तौ अज्ञानी बालक भी कहते हैं, कि आत्मा चिन्मात्र है, यह तुम्हारे उपदेशकरि क्या सिद्ध हुआ ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह विश्व जो चिन्मात्र तू जानता है, इसके जाननेते संसारसमुद्रको नहीं लंघ सकता, इस चैतन्यका नाम संसार है, यह चैतन्य जीव है, पशु है, संसार नामरूप है, इसते जरामरणरूप तरंग उत्पन्न होते हैं, काहेते जो हेयरूप दुःख पाता है ॥ हे रामजी ! चैतन्य होकरि जो चैत्यता है, सो अनर्थका कारण है, अरु चैत्यते रहित चैतन्य है; सो परमात्मा है, तिस परमात्माको जानिकरि मुक्ति होती है, तब चैत्यता मिटि जाती है ॥ हे रामजी ! परमात्माके जाननेते हृदयकी चिज्जडग्रंथि टूट पडती है, अर्थ यह जो अहं मम नष्ट हो जाता है, अरु सर्व संशय छेदे जाते हैं, सर्व कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! चित्त चैतन्योन्मुखत्व होता है, तब आगे दृश्य भासता है,

सो स्पष्ट भासता है, इसके होते चित्तके रोकनेको कैसे समर्थ होता है, अरु दृश्य किस प्रकार निवृत्त होता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दृश्यसयोगी जो चैतन्य है, सो जीव है, जन्मरूपी जंगलविषे भटकता भटकता थक पडता है, इस चेतनको जो चैत्य कहते हैं, अर्थ यह कि, चिदाभास जीव प्रकाशी सो पडित भी मूर्ख है यह तो ससारी जीव है, इसके जाननेते मुक्ति कैसी होवै, मुक्ति परमात्माके जाननेते होती है, अरु सर्व दुःख नाश होते हैं, जैसे विषविषूचिका रोग उत्तम औषधकरि निवृत्त होता है, तैसे परमात्माके जाननेते मुक्त होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! परमात्माका क्या रूप है, जिसके जाननेते मोहरूपी समुद्रको तरता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देशते देशातरको निमेषविषे दूर जो संवित् जाता है, तिसके मध्य जो ज्ञानसवित् है, सो परमात्माका रूप है, अरु जहाँ ससारका अत्यंत अभाव होता है, तिसके पीछे बोधमात्र शेष रहता है, सो रूप परमात्माका है ॥ हे रामजी ! जहाँ दृश्य द्रष्टा दर्शनका अभाव होता है, ऐसा जो आकाश है, सो रूप परमात्माका है, अरु जो अशून्य है, अरु शून्यकी नाईं स्थित है, जिसविषे सृष्टिका समूह शून्य है, ऐसी अद्वैत सत्ता है, सो रूप परमात्माका है ॥ हे रामजी ! महाचेतनरूप बड़े पर्वतकी नाईं स्थित है, अरु अजड है, अरु जडकी नाईं स्थित है, सो रूप परमात्माका है, सबके अतर बाहिर स्थित है, अरु सबको प्रकाशता है, सो परमात्माका रूप है ॥ हे रामजी ! जैसे सूर्यका प्रकाशरूप है, अरु जैसे आकाश शून्यरूप है, तैसे यह जगत् आत्मरूप है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो सर्व परमात्माही है, तौ वह क्यों नहीं भासता ? और सब जगत् भासता है, इस जगत्का निर्वाण कैसे होवे ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जगत् भ्रमकरिकै उत्पन्न हुआ है, वास्तव कछु नहीं जैसे आकाशविषे नीलता भासती है; तैसे आत्माविषे जगत भासता है, जब जगतका अत्यत अभाव जानैगा तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा, और किसी उपायकरि नहीं होवैगा, जब दृश्यका अत्यत अभाव करैगा तब दृश्य उसी प्रकार स्थित रहैगा, अरु तुझको परमार्थसत्ताही भासैगी ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी जो आदर्श है,

सो दृश्यके प्रतिबिंवविना कदाचित् नहीं रहता, जवलग दृश्यका अत्यंत अभाव नहीं होता तवलग परमबोधका साक्षात्कार नहीं होता ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह दृश्य जाल आडवर मनविषे कैसे स्थित हुआ है, जैसे सरसोंके दानेविषे सुमेरुका आना आश्चर्य है, तैसे जगत्का आना मनविषे आश्चर्य है, ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक दिन तू वेद-धर्मकी प्रवृत्ति सकाम यज्ञयागादिक त्रिगुणते रहित होकरि स्थित हो; सत्संगति अरु सच्छास्त्रपरायण हो, तव एक क्षणविषे दृश्यरूपी मैल दूरमें जायगा, जैसे सूर्यकी किरणें जाननेते जलका अभाव हो जाता है; तैसे दृश्यभ्रम तेरा अभाव हो जावेगा, जव दृश्यका अभाव हुआ तव द्रष्टा भी शांत होवेगा, जव दोनोंका अभाव हुआ तव पाछे शुद्ध आत्मसत्ताही भासेगी ॥ हे रामजी ! जवलग द्रष्टा है, तवलग दृश्य है, अरु जवलग दृश्य है, तवलग द्रष्टा है, जैसे एककी अपेक्षाकरि दो होते हैं, दो हैं, तौ एक है; एक है, तव दो भी हैं, एक न होवै तव दो कहाँ होवे तैसे एकके अभाव हुए दोनोका अभाव होता है, द्रष्टाकी अपेक्षाकरि दृश्य है, दृश्यकी अपेक्षाकरिकै द्रष्टा है, एकके अभावकरि दोनोंका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! अहंताते आदि लेकरि जो दृश्य है, सो तेरे अर्थ कार्य दूर करौंगा, मार्जन कर देवौंगा, आत्मसत्ताते जो इतर दृश्यसत्ता भासती है ॥ हे रामजी ! अनात्मा आदि लेकरि जो दृश्य है, सोई मैल है; तिसते रहित हुआ चित्तरूपी दर्पण निर्मल होवैगा, जो पदार्थ असत्य है, तिसका कदाचित् सत् नहीं होना, अरु जो पदार्थ सत् है, सो असत कदाचित् नहीं होना, जो वस्तु सत् न होवै, तिसका मार्जन करना क्या वात है ? हे रामजी ! यह जगत् आदि उत्पन्न नहीं भया; जो कछु दृश्य भासता है, सो भ्रांतिमात्र है, सर्व निर्मल ब्रह्म चैतन्य है, जैसे सुवर्णते भूषण होता है, सो सुवर्ण भूषणते भिन्न नहीं ॥ जगत अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी ! दृश्यरूपी मलके मार्जन अर्थ मैं वहुत प्रकारकी युक्ति तुझको विस्तारकरिकै कहौंगा, तिसकरि तुझको अद्वैतसत्ताका भान होवैगा, यह जगत जो तुझको भासता है, सो किसी कारणद्वारा उपजा नहीं; जैसे मरुस्थलकी नदी भासती है, जैसे आकाश-

विपे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे यह जगत् कारणविना भासता है, जैसे मरुस्थलविपे जल नहीं, जैसे वंध्याका पुत्र नही, जैसे आकाशविपे वृक्ष नही तैसे यह जगत् है नही, जो कछु देखता है, सो निरामय ब्रह्म है, यह जो कछु तुझको कहा है, सो वाणीमात्र नहीं कहा; युक्तिपूर्वक कहा है॥ हे रामजी! गुरोंकी कही युक्तिको जो मूर्खताकारि त्याग करते हैं तिनको सिद्धांत नहीं प्राप्त होता॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे दृश्यासत्यप्रतिपादन नाम षष्ठःसर्गः६

सप्तमःसर्गः ७.

सच्छास्त्रनिर्णय।

राम उवाच, हे मुनीश्वर! यह युक्ति कौन है, अरु कैसे प्राप्त होती है? जिसके धारेते पुरुप आत्मपदको प्राप्त होताहै!॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! मिथ्याज्ञान विपूचिका जगत् नामकी वहुत कालकी दृढ हो रही है, सो विचाररूपी मंत्रकरिकै शांत होती है॥ हे रामजी! वोधकी सिद्धता अर्थ तुझको आख्यान कहता हौं तिसको श्रवण करके तू मुक्तात्मा होवैगा अरु जो अर्द्ध प्रवुद्ध होइकरि तू उठ जावैगा तो तिर्यगादिक धर्मको प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी! जिस अर्थके पानेकी इच्छा करता है, तिसके पाने अनुसार यत्न भी करै, तौ अवश्यमेव तिसको पाता है, जो थकिकरि फिरे नहीं ताते सत्संगति अरु सच्छास्त्रपरायण होवै, जव तू इनके अर्थविपे दृढ अभ्यास करेगा, तव केतेक दिनोंविपे परमपदको पावैगा॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! आत्मवोधका कारण कौन शास्त्र है? शास्त्रोंविपे श्रेष्ठ कौन है जिसके जाननेते शोक न रहै॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे महामते रामजी! आत्मवोधका जो कारण है, सो शास्त्रविपे परमशास्त्र महारामायण है, जिसविपे वडे इतिहास हैं, जिसकरि परमवोधकी प्राप्ति होती है॥ हे रामजी! सर्व इतिहासका सार मैं तुझको कहता हौं, जिसको समझ कारि जीवन्मुक्त होवैगा अरु जगत न भासैगा॥ जैसे स्वप्नते जागे हुए स्वप्नके पदार्थ भासते हैं, जो कछु सिद्धात है, तिस सवका सिद्धात

करि जब शरीरको त्यागता है, तब ब्रह्मपदको प्राप्त होता है, जैसे पवन स्पंदको त्याग करि निस्पंद होता है, तैसे जीवन्मुक्त पदको त्याग करि विदेह मुक्त होता है, तब ऐसे होइकरि स्थित होता है, सूर्य होइकरि तपावता वही है, ब्रह्मा होइकरि उत्पन्न करता है, विष्णु होइकरि प्रतिपालना करता है, रुद्र होयके संहार करता है,पृथ्वी होयकै सब भूतोंको धारता है, औषधिअन्नादिकोंको उत्पन्न करता है; पर्वत होयके पृथ्वीको राखता है, जल होयके द्रवता रस देता है, अग्नि होयके उष्णताको धारता है, पवन होयके पदार्थोंको सुखावता है, चंद्रमा होयके औषधियोंको पुष्ट करता है. आकाश होयके सब पदार्थोंको ठौर देता है, मेघ होयके वर्षा करता है, स्थावर जंगम जेता कछु जगत् है, सर्वविषे आत्मा होयके स्थित होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! विदेहमुक्त शरीरके धारणते क्षोभवान् होता है, फिर जगत्‌विषे आवता है, त्रिलोकीका भ्रम क्यों नहीं मिटता? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जगत आडवर अज्ञानीके हृदयमें स्थित है; ज्ञानवान्‌को सब चिदाकाशरूप है, विदेहमुक्त सोई रूप होता है, जहाँ उदय अस्तकी कल्पना कोऊ नहीं, केवल शुद्ध बोधमात्र है ॥ हे रामजी! यह जगत् आदिते उपजा नहीं, अज्ञानकरिकै भासता है, मैं तूं अरु जगत सब आकाशरूप है, जैसे आकाशमें नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासते हैं, जैसे मरुस्थलमें जल भासता है, तैसे आत्मामें जगत् भासता है ॥ हे रामजी! जैसे स्वर्णमें भूषण उपजा कछु नहीं; जैसे समुद्रमें तरग होते हैं तैसे आत्मामें जगत् उपजा नहीं; जेता कछु जगत्‌जाल है, सो मनके फुरनेते भासता है, स्वरूपते बना कछु नहीं, ज्ञानीको सदा यही निश्चय रहता है, बहुरि जगत्क्षोभ उसको कैसे भासै॥ हे रामजी! यह भी मैं तेरे जनावनेके मात्र कहा है नहीं तौ जगत् कहाँ है, जगत्‌का अत्यंत अभाव है ॥ राम उवाच हे भगवन् जगत्‌के अत्यंत अभाव हुएबिना आत्मबोधकी प्राप्ति नहीं होती? ॥वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! दृश्य द्रष्टा मिथ्याभ्रम उदयहुआ है, जब दोनोंमिते एकका अभाव होवै,तब दोनोंका अभाव होवै ॥ जब दोनोंका अभाव होवै तब शुद्ध बोधमात्र शेष रहै, जिसप्रकार जगत्‌का अत्यंत अभाव होवै सो युक्ति तुझको कहौं हौं॥हे रामजी! चिरकालका जगत दृढ हो

रहा है सो मिथ्याज्ञान विपूचिका है, सो विचाररूपी मंत्रसों निवृत्त होता है, जैसे पर्वतका चढना अरु उतरना शनैःशनै होता है, तैसे अविरुद्धकभ्रम चिरकालका दृढ हो रहा है, विचारकरि अनुक्रमते तिसकी निवृत्ति होती है॥ जगत्के अत्यंत अभाव हुएविना आत्मवोध नहीं होता, सो अत्यत अभावके निमित्त मैं युक्ति कहता हौं,तिसके समझनेते जगत्भ्रम नष्ट होवेगा,अरु जीवन्मुक्त होकरि तू विचरैगा॥ हे रामजी! वधनकरि सोई वँधता है, जो उपजा होता है, अरु मुक्त भी सो होताहै, जो उपजा होताहे, यह जगत तुझको भासता है, सो उपजा नहीं अरु मरुस्थलविपे नदी भासती है, सो उपजी नहीं, भ्रमसे भासती है, तैसे आत्मामे जगत् भासता है, सो उपजा नही, भ्रमकरिकै भासता है,वास्तव नही, जैसे अर्धमीलितनेत्र पुरुपको आकाशविपे तिरवरे भासते है, तैसे भ्रमकरिकै जगत् भासता है। हे रामजी! जव महाप्रलय होता है, तव स्थावर, जगम, देवता, किन्नर, दैत्य, मनुष्य, व्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक जगत्का अभाव होता है, ताके अनतर जो रहता है, सो इद्रियग्राहक सत्ता नही, असत्य भी नहीं, न शून्य है, न प्रकाश है, न अधकार है, न द्रष्टा है, न दृश्य है, न केवलहै, न अकेवल है, न चेतन है, न जड है, न ज्ञान है, न अज्ञान है, न साकार है, न निराकार है, न किंचन है, न अकिंचन है, सर्व शब्दोंते रहित है, तिसविपे वाणीकी गम नही॥ अरु जो है तो चैत्यते रहित चेतन आत्म तत्त्वमात्रही जिसविपे अह त्वंकी कल्पना कोऊ नही, ऐसे शेप रहता है, पूर्ण अपूर्ण आदिमध्यअतते रहित है, सोई सत्ता जगत्रूप होय भासती है, और कछु जगत् वना नही, जैसे मरीचिकामें जल भासता है, तैसे आत्मामें जगत् भासता है॥ हे रामजी! जव चित्त शक्ति स्पदरूप हो, भासती है तव जगदाकार भासता है। अरु जव निस्पद होती है, तव जगत्का अभाव होता है, अरु आत्मसत्ता सदा एकरस रहती है, जैसे, वायु स्पदरूप होता है, तव भासता है, निस्पदरूप होता है तव नहीं भासता परतु वायु एकही है, तैसे चित्तसंवेदन स्पदरूप होता है; तव जगतरूप ज्ञेय भासता है, जव निस्पंदरूप होता है, तव जगत् मिट जाता है॥ हे रामजी! चेतनका जानना भी तव होता है, जव संवेदन स्पंदरूप

होता है, जैसे सुगंधिका ग्रहण आधारभूतकारि होता है, आधारभूत द्रव्यविना सुगंधिका ग्रहण नहीं होता, अरु वस्त्र श्वेत होता है, तब रंगको ग्रहण करता है, अन्यथा रंग नहीं चढता; तैसे आत्माका जानना स्पंद-कारि होताहै, स्पंदविना जाननेकी कल्पना भी नहीं होती,जैसे आकाशमें शून्यता भासती है, अथवा जैसे अग्निमें उष्णता भासती है, तैसे आत्मामें जगत् भासता है, अनन्यरूप है, जैसे जल द्रवतासों तरंगरूप होयके भा-सता है, तैसे आत्मसत्ता जगत्‌रूप होयके भासती है, सो आकाशवत् शुद्ध है, अरु श्रवण चक्षु नासिका त्वचा देहते रहित है, शब्द, स्पर्श,रूप, रस, गंधते रहित है, अरु सर्व ओरते श्रवण करता, बोलता, सूंघता, स्पर्श करता, रस लेता भी आपही है, आत्मरूपी सूर्यकी किरणोंविषे जलरूपी त्रिलोकी फुरती भासती है, जैसे जलमें चक्र आवृत फुरते भा-सते हैं, सो जलते इतर कछु नहीं, जलरूपही हैं,तैसे जगत् आत्माते भिन्न कछु नहीं, आत्मारूप है ॥ आत्माही जगत्‌रूप होकरि भासता है; रसना नहीं । अरु बोलता है, अभोक्ता है, सोई भोक्ता होयके भासता है;अफुर है सोई फुरता भासता है, अद्वैत है सोई द्वैतरूप होइकरि भासता है; निराकार है सोई साकाररूप होयके भासता है ॥ हे रामजी । सर्व शब्दते आत्मसत्ता अतीत है, सोई सर्व शब्दोंको धारती है, अन्य द्रष्टा होयके भासती है, परंतु इतर कछु हुआ नहीं, कई सृष्टि समान होती हैं, कई विलक्षण होती हैं, परंतु स्वरूपते इतर कछु हुई नहीं, सदा आत्मरूप है, जैसे सुवर्णमें भूषण समान आकार भी होते हैं, अरु विलक्षण आकार भी होते हैं. कंकणते आदिलेके जो भूषण हैं, सो स्वर्णते इतर कछु नहीं होते, स्वर्णरूपही है, तैसे जगत् आत्मस्वरूप है, शुद्ध आकाशते भी निर्मल है, बोधमात्र है ॥ हे रामजी । जब तिसमें तू स्थित होवेगा, तब जगत्भ्रम मिट जावेगा, जगत वास्तवते कछु नहीं, सदा ज्योंका त्यों आपविषे स्थित है, मनके फुरणेकरि जगत् भासता है, मनके फुरणेते रहित हुए सब कल्पना मिटि जाती है, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों भासती है, सो सत्ता ज्योंकी त्योंही है, सबका अधिष्ठानरूप है यह जगत्

सब उसीते हुआ है, अरु वहीरूप है, सबका कारण आत्मसत्ता है, उसका कारण कोऊ नहीं, अकारण है, काहेते जो अद्वैत है, सो अजर है, अमर है सब कल्पनाते रहित है; शुद्ध चिन्मात्ररूप है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे परमकारणवर्णन नाम अष्टमः सर्ग.८

नवम सर्ग. ९.

परमात्मस्वरूपवर्णनम्।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! जब महाप्रलय होता है, अरु सब पदार्थ नष्ट हो जाते है अरु तिसके पाछे जो रहता है, सो शून्य कहिये अथवा प्रकाश कहिये; तम है नहीं, चेतन है, अथवा जीव है, मन है, नहीं, बुद्धि है, सत् असत् किंचन अकिंचन इनहूमे कोऊ तो होवैगा? तुम कैसे कहते हो जो वाणीकी गम नही? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह तुझने बडा प्रश्न किया है, तिसको विना यत्न मैं नाश करौंगा, जैसे सूर्य उदय हुए अंधकारका नष्ट होता है, तैसे तेरे संशयका नाश होवैगा ॥ हे रामजी! जब महाप्रलय होता है, तब संपूर्ण दृश्यका अभाव हो जाता है, पाछे जो शेष रहता है सो शून्य नही, अरु दृश्याभास उसविषे सदा रहता है,अरु वस्तुते कछु हुआ नहीं, जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियोंको कल्पता है कि, एती पुतलियां इस स्तंभसों निकसैगी, सो उसविषे शिल्पी कल्पता है, वहा तो स्तंभही है, जो स्तंभ न होवै तो शिल्पी पुतलिया किसविषे कल्पै? तैसे आत्मरूपी स्तंभविषे मनरूपी शिल्पी जगद्रूपी पुतलिया कल्पताहै, जो आत्मा नहोवै, तब पुतलिया किसविषे कल्पै? जैसे स्तंभविषे पुतलियां स्तंभरूप है, तैसे सब जगत् ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर जगत्का होना नहीं, जैसे पुतलियोंका सद्भाव अरु असद्भाव स्तंभविषे है, काहेते जो अधिष्ठानरूप स्तंभ है, स्तंभविना पुतलियां नहीं होती तैसे जगत् आत्मा विना नहीं होता ॥ हे रामजी! सद्भाव हो जाता है, सो सतते होता है, असत्ते नहीं होता, अरु असद्भाव भी सिद्ध होता है, सो सतहीविषे होता है; असत्विषे नहीं होता, ताते सब शून्य नहीं, जो शून्य होवै तो भासना किसविषे होवै? जैसे

सोमजलमें तरंगका सद्भाव भी होता है, अरु असद्भाव भी होता है, असद्भाव इस कारणते होता है, कि तरंग भिन्न कछु नहीं, अरु सद्भाव इस कारणते होता है कि, जलहीविषे तरंग होते हैं, सत् असद्भाव इसी कारणते जलविषे होता है, तैसे जगत्का सद्भाव असद्भाव आत्माविषे होता है, शून्यविषे नहीं होता, जैसे सोमजलमें कहनेमात्र तरंग हैं नहीं, जल ही है, तैसे जगत् कहनेमात्र है, अरु हुआ कछु नहीं एक सत्ताही है, अरु शून्यरूप अरु अशून्य भी नहीं, काहेते कि, शून्य अशून्य यह जो दोनों शब्द हैं, सो उसविषे कल्पित है, काहेते कि,शून्य उसको कहते है, जो अभावरूप होवै, सद्भावते रहित अशून्य उसको कहते हैं, जो विद्यमान पावै सो सत्ता इन दोनोंते रहित है, अरु अशून्य भी शून्यका प्रतियोगी होता है, जो शून्य नहीं तौ अशून्य कहांते होवै ? यह दोनों अभावमात्र हैं ॥ हे रामजी ! यह जो सूर्य तारा दीपक आदिक भौतिक प्रकाश हैं, सो भी वहाँ नहीं, काहेते कि, यह प्रकाश अंधकारका विरोधी है, जो यह प्रकाश होता तौ अंधकार सिद्ध न होता सो तौ अंधकार भी सिद्ध होताहै, इसी प्रकारते कहताहैं कि,प्रकाश भी वहां नहीं, अरु जो कहिये तमही रहता होवैगा, तौ तम भी नहीं; काहेते कि, सूर्य आदिक जिसकरि प्रकाशते हैं, सो तम कैसे होवै ? आत्मप्रकाशविना सूर्यादिक भी तमरूप है, ताते न शून्य है, न अशून्य है, न प्रकाश है, न तम है केवल आत्मतत्त्वमात्र है, जैसे स्तंभमें पुतलियां कछु हुई नहीं, तैसे आत्मामें कुछ जगत् हुआ नहीं, जैसे बिल्ली अरु बिल्लीकी मन्नाविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्में भेद कछु नहीं, जैसे जल अरु तरंगमें भेद कछु नहीं जैसे मृत्तिका अरु घटमें कछु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्में कछु भेद नहीं, नाममात्र भेद है, वास्तवमें भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जल अरु मृत्तिकाका दृष्टांत जो दिया है, सो आत्माविषे ऐसे भी नहीं ॥ जैसे जलमें तरंग होता है, मृत्तिकामें घट होता है, सो भी परिणामरूप होता है; अरु आत्मामें जगत्भान नहीं है, अरु जो मानसिक है, तौ आकाशरूप है, ताते जगत कछु भिन्न नहीं रूप अवलोकन मनसा कार्यता जो कछु भासते हैं, सो सब आकाशरूप है; आत्मसत्ताही चित्तके फुरनेकरि जगतरूप ह्वै भासती है; जगत् कछु दूसरी वस्तु

नहीं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है॥ हे रामजी! स्तंभविषे जो पुतलियां कल्पता है, सो भी न होती हैं, अरु यहाँ कल्पनेवाला भी बीचकी पुतली है वह भी होवे बिना भासती है॥ हे रामजी! जिसविषे यह जगत् भासता है, तिसको शून्य कैसे कहिये? अरु जो कहिये चैतन्य है तौ भी नहीं, काहेते कि, चैतन्य जानना भी तब होता है, जब चित्कला फुरती है, जहाँ फुरना न होवै, तहाँ चैतन्यता कैसे रहै? जैसे मिरचको खाता है, तब तिसकी तीखाई भासती है; खाएबिना नहीं भासती, तैसे चैतन्य जानना भी स्पंदकला-विषे होता है, आत्माविषे जानना भी नहीं॥ चेतनताते रहित चिन्मात्र है, अक्षय सुषुप्तिरूप है, तिसको तुरीय कहते हैं; सो ज्ञेय ज्ञानवान्‌करि गम्य है॥ हे रामजी! जो पुरुष तिसविषे स्थित हुए हैं, तिनको संसार रूपी सर्प डस नहीं सकता; वह अचैत्य चिन्मात्र होता है, जिसको आत्माविषे स्थिति नहीं, तिसको दृश्यरूपी सर्प डसता है, आत्मसत्ता-विषे तौ कछु द्वैत हुआ नहीं आत्मसत्ता आकाशते भी स्वच्छ है, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इनकी स्वत जो अनुभवसत्ता है, सो आत्माका रूप है; जब अभ्यास करै तब तिसको प्राप्त होवै॥ हे रामजी! तिसविषे द्वैत-कल्पना कछु नहीं, अद्वैतमात्र है; न द्रष्टा है, न जीव है, न कोऊ विकार है, अरु न स्थूल है, न सूक्ष्म है, एक शुद्ध अद्वैतरूप है, अपने आपविषे स्थित है, जो यह चैत्यका फुरणाही आदि नहीं हुआ, चेतनकलाका तो जीव कैसे होवै? जो जीवही नहीं तौ बुद्धि कैसे होवै? जो बुद्धिही नहीं तौ मन इंद्रियां कैसे होवै? जो इंद्रियां नहीं तौ देह कैसे होवै? जो देह नहीं तौ जगत् कैसे होवै?॥ हे रामजी! आत्मसत्ताविषे सब कल्पना मिट जाती है; तिसविषे कछु कहना नहीं बनता, पूर्ण अपूर्ण सत् असतते न्यारा है, भाव अभावका विचार कोऊ नहीं, आदिमध्यअतकी कल्पना कोऊ नहीं, अजर अमर, आनंद, अनंत, चित्स्वरूप है, अचेत चिन्मात्र अवाच्य पद है, सूक्ष्मते भी सूक्ष्म है; आकाशते भी अधिक सूक्ष्म है, अरु स्थूलते भी स्थूल है, एक अद्वैतरूप है, अनंत चिद्रूप है॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! यह जो अचित्य

चिन्मात्र परमार्थ सत्ता तुमने कही, तिसका रूप बोधके निमित्त मुझको बहुरि कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तब सब जगत नष्ट हो जाता है, परब्रह्मसत्ता शेष रहती है; तिसका रूप कहता हो, मनरूपी ब्रह्म है, जब मनकी वृत्ति क्षीण होती है, सो वृत्ति कौन है ? एक प्रमाणवृत्ति है, दूजी विपर्ययवृत्ति है, तीसरी विकल्पवृत्ति है, चौथी अभाववृत्ति है, पंचम स्मरणवृत्ति है, प्रमाणवृत्ति आगे तीन प्रकारकी है, एक प्रत्यक्ष, द्वितीय अनुमान, धुवाँ अग्नि जाननेकी वृत्ति शब्दरूप आप्तकामिका ये तीन प्रमाणवृत्ति हैं; द्वितीय विपर्ययवृत्ति है, होवै अरु भासै और तृतीय विकल्पवृत्ति सो शब्दज्ञान होवै अरु अर्थज्ञान न होवै, जैसे कहिये चतन्य पुरुष कहा जो एक पुरुष होवै, अरु उसका द्वितीय चैतन्यस्वरूप होवै तब चतन्य पुरुष कहा जाय, चेतन ईश्वररूप है, अरु साक्षी पुरुषरूप होवै सो जैसे सो जैसे सीप पडी होवै तिसविषे संशयवृत्ति होवै; साक्षीरूपी भासै साक्षीसीपीभास इसका नाम विकल्प है, चतुर्थ स्मरणवृत्ति है, पचम निद्राअभाववृत्ति है, यह पंचम वृत्ति अरु इनका अभिमानी मन जो है, तीन शरीरका अभिमानी अहकाररूप तिसका जब नाश होवै, तब पाछे जो रहता है, सो निश्चल सत्ता अनत आत्मा है, असत् नहीं कहि सकता है। हे रामजी ! जब जाग्रत्का अभाव होता है, अरु सुषुप्ति नहीं आई, वह जो रूप है, सो परमात्माका है, अगुष्टको जो शीत उष्णका स्पर्श होता है, तिसके अनुभव करनहारी परमात्मसत्ता है, जिसविषे द्रष्टा, दर्शन, दृश्य उपजते हैं अरु बहुरि लीन होते हैं, सो परमात्माका रूप है कैसी सत्ता है, जिसविषे चेतनता भी नहीं ॥ हे रामजी ! चैतन्य जो है जीव, अरु जड जो है देहादिक, सो जिसविषे दोनों नहीं ऐसा जो अचेत चिन्मात्र है, सो परमात्मारूप है, अरु जो सब व्यवहार होता है; अरु अंतर जिसके आकाशरूप है, कोऊ क्षोभ नहीं ऐसी जो सत्ता है, सो परमात्माका रूप है; शून्य है, परतु शून्यताते रहित है ॥ हे रामजी ! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जिसविषे तीनों प्रतिबिंबित हैं, अरु आकार है, ऐसी जो सत्ता है, सो परमात्माका रूप है, स्थावरविषे जो स्थावरभावकरि व्यापा है, चैतन्यविषे जो चैतन्यभावकरि व्यापा है, मनबुद्धि इंद्रियां जिनको पाय

नहीं सकतीं ऐसी जो सत्ता है, सो परमात्माका रूप है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इनका जहां अभाव होजाता है, तिसके पाछे जो शेष रहता जिसविषे विकल्प कोऊ नहीं, अचेत चिन्मात्र जो सत्ता है, सो रूप परमात्माका है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे परमात्मस्वरूपवर्णनंनाम नवमःसर्गः९

दशमः सर्गः १०.

परमार्थरूपवर्णन ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह दृश्य जो स्पष्ट भासता है, सो महाप्रलयमें कहाँ जाता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वन्ध्या स्त्रीका पुत्र कहाते आता है, अरु कहां जाता है ? आकाशका वन कहाते आता है अरु कहाँ जाता है ? जैसे आकाशका वन है तैसे यह जगत् है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! वन्ध्याका पुत्र अरु आकाशका वन तीनों काल है नहीं, शब्दमात्र है, उपजा कछु नहीं, अरु यह जगत् स्पष्ट भासता है, सो वन्ध्याके पुत्रसमान कैसे होवै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे वन्ध्याका पुत्र अरु आकाशका वन उपजा नहीं, तैसे यह जगत् भी उपजा नहीं, जैसे संकल्पपुर होता है जैसे स्वप्ननगर प्रत्यक्ष भासता है, अरु आकाशरूप है, कोऊ पदार्थ सत् नहीं, तैसे यह जगत् आकाशरूप है कछु उपजा नहीं, जैसे जल अरु तरंगमें भेद कछु नहीं, जैसे काजर अरु श्यामतामें भेद नहीं, तैसे अग्नि अरु उष्णतामें भेद नहीं, जैसे चंद्रमा अरु शीतलताविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद नहीं सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, जैसे वायु अरु स्पर्शविषे भेद नहीं जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं, जैसे चंद्रमा अरु शीतलतामें भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्में भेद नहीं ॥ हे रामजी ! जगत् कछु बना नहीं, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे अज्ञानकरके जगत् भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे

आत्माविषे अज्ञानकरि जगत् भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! दृश्यके अत्यंत अभावविना बोधकी प्राप्ति नहीं होती, अरु जगत् स्पष्ट रूप भासता है. द्रष्टा अरु दृश्य जो मनकरि उदय हुए हैं. सो भ्रमकरिके हुए हैं, जो एक भी है, तो दोनों बंध हुए हैं. जब दोनोंविषे एकका अभाव होवै, तब दोनों मुक्त होवैं. काहेते कि, जहां द्रष्टा है, तहां दृश्य भी है, अरु जहां दृश्य है, तहां द्रष्टा भी है जैसे शुद्ध आदर्श प्रतिबिंबविना नहीं होता तैसे द्रष्टा दृश्यविना नहीं रहता. अरु दृश्य द्रष्टाविना नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! दोनों विषे एक नष्ट होवै. तब दोनों निर्वाण होवैं ताते सोई युक्ति कहो जिसकरि दृश्यका अत्यत अभाव होवै. अरु आत्मबोध प्राप्त होवै एक ऐसा भी कहते है जो दृश्य आगे था अब नाश हुआ है. तब उसको भी संसारभाव दिखावैगा, अरु जिसके विद्यमान नहीं भासता, अरु अंतर उसका सद्भाव है, तो फेरि ससार देखैगा जैसे सूक्ष्म बीज विषे वृक्षका सद्भाव होता है, तैसे स्मृति बहुरि ससारको दिखावैगी; अरु तुम कहते हो, जगत्का अत्यंत अभाव होता है, अरु जगतका कारण कोऊ नहीं, आभासमात्र है; उपजा कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जिसका अत्यत अभाव होता है, वह वस्तु वास्तव नहीं होती है, जो नहीं तौ बंधन भी किसीको हुआ नहीं, सब मुक्तस्वरूप हुवे, अरु जगत् प्रत्यक्ष भासता है, ताते सोई युक्ति कहो, जिसकरि जगत्का अत्यत अभाव होवै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दृश्यके अत्यत अभाव निमित्त एक कथा श्रवण कराता हों, जिसके अर्थ निश्चयकर समुझे तें दृश्य शांत हो जावैगा, बहुरि संसार कदाचित् न उपजैगा, जैसे समुद्रविषे धूर नहीं उडती, तैसे तेरे हृदयविषे संसार न रहैगा ॥ हे रामजी ! यह जगत् तुझको भासता है सो अकारणरूप है, इसका कारण कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! जिनका कारण कोऊ न होवै, अरु भासै, तिसको जानिये कि, भ्रममात्र है, उपजा कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि भासती है, सो कोई कारणते उपजी नहीं; सन्निवरूप है, तैसे स्वर्ग आदि कारणते नहीं उपजा, आभासरूप है, परमात्माका कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जो पदार्थ कारणविना भासै, सो जिस वस्तुविषे भासता है, सोई अधिष्ठानरूप है, जैसे तुमको स्वप्नविषे स्वप्नका

नगर होइ भासता है, तौ और पदार्थ वहां कोऊ नहीं, आभासरूप है, संवित् ज्ञान चैत्यताकरिके नगररूप होइ भासता है, तैसे विश्व अकारण आभास आत्मसत्ताते होयके भासता है, जैसे जलविषे द्रवता है, वायुविषे स्पदता है जैसे जलविषे रस है, जैसे तेजविषे प्रकाश है, तैसे आत्माविषे चित्तसवेदन है, जब चित्तसवेदन स्पंदरूप होता है, तब जगत्‌रूप होकरि भासता है और जगत् कोऊ वस्तु नहीं ॥ हे रामजी! जैसे और तत्त्वोंके अणु है, सो और ठौर भी पायेजाते है, अरु आकाशका अणु और ठौर नही पायाजाता है, काहेते कि, आकाश शून्यरूप है, तैसे आत्माते इतर इस जगत्का भाव कहू नहीं पायाजाता, काहेते कि, आभासरूप है, किसी कारणते उपजा नही, जो तू कहै कि, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते जगत उपजा है, तौ ऐसे कहना भी असभव है, जैसे छायाते धूप नहीं उपजता. तैसे तत्त्वोंते जगत् नही उपजता, काहेते जो आदि आपही नहीं उपजे तौ कारण किसका होवे? ताते सर्वदा ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है॥ हे रामजी! आत्मसत्ता जगत्का कारण नहीं, काहेते कि, वह अभूतरूप है, अरु अजड रूप है, सो भूतका अरु जडका कारण कैसे होवे? जैसे धूप परछावेका कारण नहीं तैसे आत्मसत्ता जगत्का कारण नही, ताते जगत् कछु हुआ नहीं, तौ है क्या? वही सत्ता जगत्‌रूप होइकरि भासती है, जैसे स्वर्ण भूषणरूप होता है, तौ भूषण कछु उपजा नहीं, तैसे ब्रह्मसत्ता जगत्‌रूप होकरि भासतीहै, जैसे अनुभव सवित् स्वप्ननगररूप होइ भासता है, तैसे यह सृष्टि किंचनरूप है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, सदा ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जेता कछु जगत् स्थावरजगमरूप भासता है, सो आकाशरूप है

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे परमार्थरूपवर्णन नाम दशमः सर्ग १०

एकादशः सर्गः ११



जगदुत्पत्तिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! आत्मसत्ता नित्य शुद्ध है, अजर अमर है, सदा अपने आप विषे स्थित है, तिसविषे जिसप्रकार सृष्टि उदय

आत्माविषे अज्ञानकरि जगत् भासता है ॥ रा
दृश्यके अत्यंत अभावविना बोधकी प्राप्ति नहीं
रूप भासता है द्रष्टा अरु दृश्य जो मनकरि
हुए हैं, जो एक भी है, तो दोनों बंध हुए हैं जब
ब होवै, तब दोनों मुक्त होवै काहेते कि, जहां
अरु जहां दृश्य है, तहां द्रष्टा भी है जैसे शुद्ध
होता. तैसे द्रष्टा दृश्यविना नहीं रहता अरु
मुनीश्वर! दोनों विषे एक नष्ट होवै. तब
युक्ति कहौ जिसकरि दृश्यका अत्यंत अभ
होवै एक ऐसा भी कहते है जो दृश्य
उसको भी संसारभाव दिखावैगा, अरु जि
अरु अंतर उसका सद्भाव है, तौ फेरि संस
वृक्षका सद्भाव होता है, तैसे स्मृति बहुरि
कहते हौ, जगत्का अत्यंत अभाव
नहीं, आभासमात्र है, उपजा कछु
अभाव होता है, वह वस्तु वास्तव
किसीको हुआ नहीं, सब
है, ताते सोई युक्ति क
वसिष्ठ उवाच ॥
श्रवण करात
बहुरि संस
तेरे हृदय
है सो अ
कारण
कछु न
सवित
मात्मा
वस्तुवि

है
जिसविषे
के
तन्मात्रा है,
तन्मात्रा हुई,
जैसते सब

चिदाकाशरूप है, सकल्प करके यह जगत् आडंवर होता है, संकल्पके मिटेते सव चिदाकाश होता है, जैसे संकल्प आकाशरूपहे, तैसे जगत् भी आकाशरूप है, जो सव आत्मानुभव आकाशरूप है, ताते क्षणविषे एकरूप होता है, जैसे सकल्पनगर अरु स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत् है॥ हे रामजी! इस जगतका मूल पंचभूत है, और तिसका वीज संवित् है, तिसका स्वरूप चिदाकाश है, ताते सव जगत् चिदाकाश है, द्वैत और कछु नहीं

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगदुत्पत्तिवर्णनं नाम एकादशः सर्ग. ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

स्वयंभूत्पत्तिवर्णनम्.

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी परब्रह्म सम है, शांत है, स्वच्छ है, अनत है, चिन्मात्र है, सर्वदाकाल अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे समअसमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है, समरूप कहिये सजातीयरूप, असम कहिये भेदरूप, सो कैसे हुए सो सुन, प्रथम तौ तिसविषे चैत्यका फुरणा हुआ है, तिसका नाम जीव हुआ, तिसने दृश्यको चेता है, तिसकरि तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध उपजे हैं, तिन्होंते पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, पांचोंभूतरूपी वृक्ष हुआ है, तिस वृक्षमें ब्रह्माडरूपी फल लगा है ताते जगत्का कारण पंचतन्मात्राही है, अरु तन्मात्राका वीज आदि संवित आकाश है, ताते सर्व जगत् ब्रह्मरूप हुआ है ॥ हे रामजी! जैसा वीज होता है, तैसाही फल होता है, जो इसका वीज परब्रह्म है, तौ यह भी परब्रह्म हुआ, आदि जो अचेत चिन्मात्र स्वरूप है, सो परमाकाश है. अरु जिस चैतन्य संवितविषे जगत् भास्या है, सो जीवाकाश है सो यह भी शुद्ध निर्मल है, काहेते कि, पृथ्वी आदिक भूतोंते रहित है॥ हे रामजी! यह जगत् जो तुझको भासता है. सो सब चिदाकाशरूप है और द्वैत वास्तवते कछु नहीं वना यह मैं तुझको ब्रह्माका-

भई है, सो श्रवण करु, तिसके जाननेतें जगत्कल्पना मिटि जावैगी ॥ हे रामजी ! भाव अभाव, ग्रहण त्याग, स्थूल सूक्ष्म, जन्म मरण पदार्थोंकरि जीव पडा छिद्ता है, सो तिसते तू मुक्त होवैगा, जैसे चूहे सुमेरु पर्वतको चूर्ण नहीं करि सकते तैसे तुझको संसारके भाव अभाव पदार्थ चूर्ण न करि सकैंगे ॥ हे रामजी ! आदि शुद्ध देव अचेत चिन्मात्र हैं, तिसविषे चैत्यभाव सदा रहता है, काहेतें कि, चैन्यतरूप है, जैसे वायु विषे स्पंदशक्ति सदा रहती है, तैसे चिन्मात्रविषे चैत्यका फुरणा रहता है, अहं अस्मि इस भावको प्राप्त हुआ है, इस कारणते तिसका नाम चैतन्य है ॥ हे रामजी ! जबलग चैतन्य संवित् अपने स्वरूपकी ठौर नहीं आता तवलग इसका नाम जीव है, और संकल्पका नाम वीज चित्त संवित् है, तिसते सर्व भूतजात उत्पन्न हुई है, ताते सबका जीव चित्त संवित् है; जीव संवित् जब चैत्यको चैतता भया, तब प्रथम शून्य हुआ, तिसविषे शब्द गुण हुआ, तिस आदि शब्द तन्मात्राते पदवाक्यप्रमाणसहित वेद उत्पन्न भये, जेता कछु जगत्विषे शब्द है, तिसका वीज तन्मात्रा है, जिसते सर्व वायु अरस्परस होता है, बहुरि रूप तन्मात्रा हुई, तिससे सूर्य अग्निआदिक प्रकाश हुवाहै बहुरि रसतन्मात्राहुई जिसते सब जल होता है, सब जलोंका वीज वही है, बहुरि गंध तन्मात्रा हुई, जिसते पूर्ण पृथ्वी होती है, सब पृथ्वीका वीज वही है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार पांचों भूत हुए है, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाशते बहुरि जगत् हुआ है; सो भूत पंचीकृत भी हैं अरु अपचीकृत भी हैं, यह भूत शुद्ध चिदाकाशरूप नहीं, काहेते जो संकल्प मैलयुक्त भये है, तैसे इसप्रकार चिद्अणुविषे सृष्टिया भासती है, जैसे वटवीजमेंते वटका विस्तार होता है, तैसे चिद्अणुविषे सृष्टि है, कहू क्षणविषे युग भासता है, कहूं युगविषे क्षण भासता है, चिद्अणुविषे अनंत सृष्टि पडी फुरती है, जब चित्त संवित् चैत्योन्मुख होता है, तब अनेक सृष्टियां होइ भासती हैं, अरु जब चित्त संवित् आत्माकी ठौर आता है, तब आत्माके साक्षात्कार होनेकरि सब सृष्टि पिंडाकार होइ जाती है, अर्थ यह जो सब आत्मरूप होती हैं, ताते इस जगत्का वीज सूक्ष्मभूत है, अरु इनका वीज चिद्अणु है ॥ हे रामजी ! जैसा वीज होता है, तैसाही वृक्ष होता है, ताते सब जगत्

चिदाकाशरूप है, सकल्प करके यह जगत् आडंबर होता है, संकल्पके मिटेते सब चिदाकाश होता है, जैसे संकल्प आकाशरूपहै, तैसे जगत् भी आकाशरूप है, जो सब आत्मानुभव आकाशरूप है, ताते क्षणविषे एकरूप होता है, जैसे सकल्पनगर अरु स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत् है ॥ हे रामजी। इस जगतका मूल पचभूत है, और तिसका वीज सवित् है, तिसका स्वरूप चिदाकाश है, ताते सब जगत् चिदाकाश है, द्वैत और कछु नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगदुत्पत्तिवर्णनं नाम एकादशः सर्ग. ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

स्वयभूत्पत्तिवर्णनम्.

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी परब्रह्म सम है, शांत है, स्वच्छ है, अनंत है, चिन्मात्र है, सर्वदाकाल अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे समअसमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है, समरूप कहिये सजातीयरूप, असम कहिये भेदरूप, सो कैसे हुए सो सुन, प्रथम तौ तिसविषे चैत्यका फुरणा हुआ है, तिसका नाम जीव हुआ, तिसने दृश्यको चेता है, तिसकरि तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध उपजे हैं, तिन्होंते पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, पांचोंभूतरूपी वृक्ष हुआ है, तिस वृक्षमें ब्रह्मांडरूपी फल लगा है ताते जगत्का कारण पंचतन्मात्राही है, अरु तन्मात्राका वीज आदि सवित आकाश है, ताते सर्व जगत् ब्रह्मरूप हुआ है ॥ हे रामजी। जैसा वीज होता है, तैसाही फल होता है, जो इसका वीज परब्रह्म है, तौ यह भी परब्रह्म हुआ, आदि जो अचेत चिन्मात्र स्वरूप है, सो परमाकाश है. अरु जिस चेतन्य सवितविषे जगत् भास्या है, सो जीवाकाश है. सो यह भी शुद्ध निर्मल है, काहेते कि, पृथ्वी आदिक भूतोंते रहित है ॥ हे रामजी। यह जगत् जो तुझको भासता है. सो सब चिदाकाशरूप है. और द्वैत वास्तवते कछु नहीं वना यह मैं तुझको ब्रह्माका-

भई है, सो श्रवण करु, तिसके जाननेते जगत्कल्पना मिटि जावैगी ॥ हे रामजी ! भाव अभाव, ग्रहण त्याग, स्थूल सूक्ष्म, जन्म मरण पदार्थोंकरि जीव पडा छिदता है, सो तिसते तू मुक्त होवैगा, जैसे चूहे सुमेरु पर्वतको चूर्ण नही करि सकते तैसे तुझको संसारके भाव अभाव पदार्थ चूर्ण न करि सकैंगे ॥ हे रामजी ! आदि शुद्ध देव अचेत चिन्मात्र है, तिसविषे चैत्यभाव सदा रहता है, काहेतें कि, चैन्यतरूप है; जैसे वायुविषे स्पंदशक्ति सदा रहती है, तैसे चिन्मात्रविषे चैत्यका फुरणा रहता है, अहं अस्मि इस भावको प्राप्त हुआ है, इस कारणते तिसका नाम चैतन्य है ॥ हे रामजी ! जबलग चैतन्य सवित् अपने स्वरूपकी ठौर नहीं आता तबलग इसका नाम जीव है, और संकल्पका नाम वीज चित्त संवित् है, तिसते सर्व भूतजात उत्पन्न हुई है, ताते सबका जीव चित्त संवित् है; जीव सवित् जब चैत्यको चैतता भया, तब प्रथम शून्य हुआ, तिसविषे शब्द गुण हुआ, तिस आदि शब्द तन्मात्राते पदवाक्यप्रमाणसहित वेद उत्पन्न भये, जेता कछु जगतविषे शब्द है, तिसका वीज तन्मात्रा है, जिसते सर्व वायु अरस्परस होता है, बहुरि रूप तन्मात्रा हुई, तिससे सूर्य अग्निआदिक प्रकाश हुवाहै बहुरि रसतन्मात्राहुई जिसते सब जल होता है, सब जलोंका वीज वही है, बहुरि गध तन्मात्रा हुई, जिसते पूर्ण पृथ्वी होती है, सब पृथ्वीका वीज वही है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार पांचों भूत हुए है, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाशते बहुरि जगत् हुआ है; सो भूत पचीकृत भी हैं अरु अपचीकृत भी हैं, यह भूत शुद्ध चिदाकाशरूप नहीं, काहेते जो संकल्प मैलयुक्त भये है, तैसे इसप्रकार चिद्अणुविषे सृष्टियां भासती है, जैसे वटवीजमंते वटका विस्तार होता है, तैसे चिद्अणुविषे सृष्टि है, कहू क्षणविषे युग भासता है, कहू युगविषे क्षण भासता है, चिद्अणुविषे अनत सृष्टि पडी फुरती है; जब चित्त सवित् चैत्योन्मुख होता है, तब अनेक सृष्टियां होइ भासती हैं, अरु जब चित्त संवित् आत्माकी ठौर आता है, तब आत्माके साक्षात्कार होनेकरि सब सृष्टि पिंडाकार होइ जाती है, अर्थ यह जो सब आत्मरूप होती हैं, ताते इस जगत्का वीज सूक्ष्मभूत है, अरु इनका वीज चिद्अणु है ॥ हे रामजी ! जैसा वीज होता है, तैसाही वृक्ष होता है, ताते सब जगत्

चिदाकाशरूप है, संकल्प करके यह जगत् आडंबर होता है, संकल्पके मिटेते सव चिदाकाश होता है, जैसे संकल्प आकाशरूपहै, तैसे जगत् भी आकाशरूप है, जो सव आत्मानुभव आकाशरूप है, ताते क्षणविषे एकरूप होता है, जैसे संकल्पनगर अरु स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत् है ॥ हे रामजी ! इस जगतका मूल पंचभूत है, और तिसका वीज संवित् है, तिसका स्वरूप चिदाकाश है, ताते सव जगत चिदाकाश है, द्वैत और कछु नहीं

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगदुत्पत्तिवर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

स्वयंभूत्पत्तिवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी परब्रह्म सम है, शांत है, स्वच्छ है, अनंत है, चिन्मात्र है, सर्वदाकाल अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे समअसमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है, समरूप कहिये सजातीयरूप, असम कहिये भेदरूप, सो कैसे हुए सो सुन, प्रथम तौ तिसविषे चैत्यका फुरणा हुआ है, तिसका नाम जीव हुआ, तिसने दृश्यको चेता है, तिसकरि तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध उपजे है, तिन्होंते पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, पांचोंभूतरूपी वृक्ष हुआ है, तिस वृक्षमें ब्रह्मांडरूपी फल लगा है ताते जगत्का कारण पंचतन्मात्राही है, अरु तन्मात्राका वीज आदि संवित आकाश है, ताते सर्व जगत् ब्रह्मरूप हुआ है ॥ हे रामजी ! जैसा वीज होता है, तैसाही फल होता है, जो इसका वीज परब्रह्म है, तो यह भी परब्रह्म हुआ, आदि जो अचेत चिन्मात्र स्वरूप है, सो परमाकाश है अरु जिस चैतन्य संवितविषे जगत् भास्या है, सो जीवाकाश है सो यह भी शुद्ध निर्मल है, काहेते कि, पृथ्वी आदिक [illegible]पदरूप रहित है ॥ हे रामजी ! यह जगत् जो तुझको भासता है, सो [illegible]काशरूप है और द्वैत वास्तवते कछु नहीं [illegible]

श अरु जीवाकाश कहे हैं. अब जिसकरि इसको शरीर ग्रहण हुआ है; सो श्रवण कर॥ हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्रते जो चैत्योन्मुखत्व हुआ है. अहं अस्मि तिस अहंभावकरिके आपको जीव अणु जानत भया अपना जो वास्तव स्वरूप था, तिसते अन्यभावकी नाई हुआ, तिस जीव अणुविषे अहभाव दृढ हुआ, तिसका नाम अहकार हुआ, तिस अहकारकी दृढता करिकै निश्चयात्मक बुद्धि हुई, तिसते आगे सकल्प विकल्परूपी मन हुआ, जव मन ससरने लगा, तव इसकी सुननेकी इच्छा करी, तिसकरि श्रवण इद्रिय प्रकट भई, जव रूप देखनेको इच्छा करी, तव चक्षु इंद्रिय प्रकट भई, जव स्पर्शकी इच्छा करी तव त्वचा इद्रिय प्रकट भई, जव रस लेनेकी इच्छा करी तव जिह्वा इद्रिय प्रकट भई, इसी प्रकार देह इंद्रिय चेतनता करि भासी,तिनविषे अह प्रतीत करने लगा॥ हे रामजी! जैसे दर्पणविषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है, सो पर्वतते वाह्य होता है, तैसे देह इद्रियां वाह्य दृश्य है, अरु अपनेविषे भासती है, तिसकरि तिन्होंविषे अहं प्रतीत होती है, जैसे कूपविषे मनुष्य आपको देखै, तैसे देहविषे आपको देखता है, जैसे डब्बेविषे रत्न होता है,तैसे देहविषे आपको देखता है, सोई चिद् अणुदेह साथ मिलिकरि दृश्यको रचता है, तिस अहकरिरूप,विषे यह क्रिया भासने लगी जैसे स्वप्न विषे दौड़ता जावे, जैसे स्थितविषे स्पद होता है, तैसे आत्माविषे स्पदक्रिया हुई है, सो चित्त सवित्कर हुई है, तिसका नाम स्वयंभू ब्रह्मा हुआ, जैसे संकल्पकरि दूसरा चद्रमा भासता है, तैसे मनोमय जगत् भासता है, जैसे शशेके शृग होते है, तैसा यह जगत् है, कछु उपजा नहीं चित्तके स्पंदविषे जगत् फुरता है, जैसे जैसे चित्त फुरा है, तैसे तैसे देश काल, द्रव्य, स्थावर, जगम जगत्की मर्यादा भई है, ताते सव जगत् सकल्परूप है, सैंकल्पते इतर जगत्का आकार कछु नहीं॥ जव संकल्प फुरता है,तव आगे जगत् दृश्य भासता है, जव सकल्प निस्पद होता है, तव दृश्य-
[illegible] अभाव होता है॥ हे रामजी! इसप्रकार करके यह ब्रह्मा निर्वाण हुआ
सव [illegible] उपजे है, ताते सव सकल्प मात्र है, जैसे नटवा नानाप्रकारके
ताते इस जे[illegible] बाहर निकस आता है, तैसे देख जो सब मायामात्र
हे रामजी! जैसा

सव चिदै
[illegible] तुझको ब्रह्माका-

है ॥ हे रामजी ! जब चित्तकी ओर संसरणता है, तब दृश्यका अंत नहीं आता, अरु जब अंतमुख होता है, तब सब जगत् आत्मरूप होता है, चित्तके स्पद होनेकरि एक क्षणविषे निवृत्त होता है, क्योंकि संकल्परूपही है, ताते जो कछु जगत् भासता है, सो आकाशरूप है, उपजा कछु नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है जैसे स्वप्नविषे पर्वत नदियां भ्रमकरि देखती है, तैसे भ्रमकारके यह जगत् भासता है, जैसे स्वप्नविषे आपको मुआ देखता है, सो भ्रममात्र है; तैसे यह जगत् भ्रममात्र है ॥ हे रामजी ! स्थावर जगम जगत् कछु भासता है, सो सब चिदाकाश है, हमको तौ सदा चिदाकाशही भासता है, आदि विराट्रूप ब्रह्मा भी वास्तवते कछु उपजा नहीं, तौ जगत् कैसे उपजा होवै ? जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके देश, काल, व्यवहार दृष्ट आते है, सो अकारणरूप है, उपजे कछु नहीं, आभासमात्र है, तैसे यह जगत् आभासमात्र है, कार्यकारण भासते है, तौ भी अकारण हैं ॥ हे रामजी ! हमको तौ जगत् ऐसा भासता है, जैसे स्वप्नते जागे मनुष्यको भासता है, जो वस्तु अकारण भासी है, सो भ्रांतिमात्र है, जो जगत् किसी कारणद्वारा उपजा नहीं तौ स्वप्नवत् है, जैसे संकल्पपुर भासता है, जैसे गधर्वनगर भासता है, तैसे यह जगत् भी जान, आदि विराट् आत्मा है, सो अतवाहकरूप है, पृथ्वी आदि तत्त्वोंते रहित है आकाशरूप है, तौ यह जगत् अधिभूत करके कैसे होवै ? सब आकाशरूप है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे स्वयंभूत्पत्तिवर्णनं नाम द्वादश· सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

सर्वब्रह्मप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह दृश्य मिथ्या असद्रूप है जोहै सो निरामय ब्रह्म है,सो ब्रह्म आकाश जीवकी नाईं हुआ है,जैसे समुद्र द्रवता करके तरगरूप होता है, तैसे ब्रह्म जीवरूप होता है, आदि जो सवित् ९५१

हुआ है, सो ब्रह्मा हुआ है, तिस ब्रह्माते आगे जीव हुए हैं, जैसे एक दीप कते वहुत दीपक होते हे,जैसे एक संकल्पके वहुत संकल्प होते हैं, तैसे एक आदि जीवते वहुत जीव हुए हैं,जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, जो एती पुतलियां इस स्तंभविषे हैं, सो पुतलियां शिल्पीके मन विषे होती हैं, स्तंभ ज्योंका त्योंही स्थित है, तैसे सव पदार्थ आत्माविषे मन कल्पै है, वास्तवते ज्योंका त्यो आत्मा ब्रह्म है. तिन पुतलियोंविषे वडी पुतली ब्रह्मा है, और जीव छोटी पुतलियां हे जैसे वास्तवमें स्तंभ है, पुतली कोऊ नहीं उपजी, तैसे वास्तव आत्मसत्ता है, जगत् कछु उपजा नहीं, संकल्पकारिके जगत् भासता है, सकल्पके मिटेते जगत् कल्पना मिटि जाती है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! एक जीवते जो वहुत जीव हुए हैं; सो पर्वतविषे पाषाणकी नाईं उपजते हैं, जो पर्वतविषे अनंत पिंड आकार होते है, कोई जीवोंकी खाण है, जो इसप्रकार एते जीव उत्पन्न हो आते है, अथवा मेघविषे बूँदोंकी नाईं है ? अथवा अग्निते विस्फुलिंगों की नाईं उपजते है ? सो कहो, और एक जीव कौन है, जिसते संपूर्ण जीव उपजते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! न एक जीव है, न अनेक जीव हैं यह तेरे वचन ऐसे है, जैसे कोऊ कहै मैं शशेके शृंग उड़ते देखे हैं, तैसे एक जीवही उपजा नहीं तौ मै अनेक कैसे कहो ? जो कि ऐसे उपजै है शुद्ध अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अनंत आत्मा है तिसविषे भेदकी कल्पना कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! जो कछु जगत तुझको भासता है, सो सव आकाशरूप है, कोऊ पदार्थ उपजा नहीं, सकल्पके फुरणेकरि जगत् भासता है जीवशब्द अरु जीवशब्दका अर्थ आत्माविषे कोऊ उपजा नहीं यह कल्पना भ्रमकरि भासती है, आत्मसत्ताही जगत की नाईं भासती है, तिसविषे न एक जीव है न अनेक जीव है ॥ हे रामजी ! आदि जो विराट् आत्मा है, सो आकाशरूप है, तिसते और जगत् उपजा सो तुझको क्या कहौं ! जगत विराट्‌रूप है, अरु विराट् जीवरूप है, अरु जीव आकाशरूप है वहुरि और जगत् क्या रहा ? अरु जीव क्या हुआ ? सव चिदाकाशरूप है, यह जेते जीव भासते हैं, सो सव ब्रह्मस्वरूप है और द्वैत कछु नहीं, न इनविषे कछु भेद है ॥

राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तुम कहते हौ, आदि जीव कोऊ नहीं, तौ इन जीवोंको पालनेहारा कौन है ? जिसकी आज्ञाविषे यह पडे विचरते है । सो नियामक कौन है ? जो कोऊ हुआ नहीं तौ यह सर्वज्ञ अरु अल्पज्ञ क्योंकरि होता है, एकविषे यह कैसेहै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिसको तू आदिजीव कहता है, सो ब्रह्मरूप है, नित्य है, शुद्ध है, अनंतशक्ति है, अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जगत्कल्पना कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! जो शुद्ध चिदाकाश अनंतशक्ति है, तिसविषे जो आदिचित्त किंचन हुआ है, सो शुद्ध चिदाकाश ब्रह्मसत्ताही जीवकी नाई भासने लगी है, स्पंदद्वारा हुएकी नाई भासती है, स्वरूपते इतर कछु हुआ नहीं, चैतन्य संवित् आदिस्पंद करके विराट् आत्मा ब्रह्मारूप होइकरि स्थित भया है, तिसते आगे संकल्पकरिकै जगत् रच्या है, तिस विषे शुभ अशुभ कर्म रचे है, तिनकरि नीति रची है, जो यह शुभ है, यह अशुभ है, जैसे आदि नीति रची तैसेही महाप्रलयपर्यंत ज्योंकी त्यों चलीजात है ॥ हे रामजी ! वह जो देव है, अनंतशक्ति है, तिसविषे जैसे आदि फुरणा हुआ है, तैसेही स्थित है, जो आदि सर्वशक्ति फुरी है सो तैसेही है, जो अल्पज्ञ फुरी है, सो अल्पज्ञ है ॥ हे रामजी ! इस संसारके जो पदार्थ है तिनोंविषे नीति शक्ति प्रधान है, तिसके लंघनेको कोऊ समर्थ नहीं, जैसे रची है, तैसे महाप्रलयपर्यंत रहती है ॥ हे रामजी ! आदि नित्य जो विराट् पुरुष है सो अंतवाहकरूप है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते रहित है अरु यह जगत् भी अंतवाहकरूप है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते नहीं उपजा, सब संकल्परूप है, जैसे मनोराज्यका नगर शून्य होता है, तैसे यह जगत् शून्य है ॥ हे रामजी ! इस सर्गका निमित्तकारण कोऊ नहीं, अरु समवायिकारण भी कोऊ नहीं, जो पदार्थ निमित्तकारण और समवायिकारणविना दृढ आवै सो भ्रममात्र जानिये, उपजा कछु नहीं, जो पदार्थ उपजता है सो दोनों कारणकरि उपजता है, सो जगत्का कारण कोऊ नहीं, ब्रह्मसत्ता नित्य शुद्ध अद्वैतसत्ता है, तिस-विषे कार्यकारणकी कल्पना कैसे होवै ? हे रामजी ! यह जगत अकारण

हुआ है, सो ब्रह्मा हुआ है, तिस ब्रह्माते आगे जीव हुए हैं, जैसे एक दीपकते वहुत दीपक होते है, जैसे एक संकल्पके वहुत संकल्प होते हैं, तैसे एक आदि जीवते वहुत जीव हुए हैं, जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, जो एती पुतलियां इस स्तंभविषे हैं, सो पुतलियां शिल्पीके मन विषे होती हैं, स्तंभ ज्योंका त्योंही स्थित है, तैसे सव पदार्थ आत्माविषे मन कल्पै है; वास्तवते ज्योका त्यों आत्मा ब्रह्म है तिन पुतलियोंविषे वडी पुतली ब्रह्मा है, और जीव छोटी पुतलियां है जैसे वास्तवमें स्तभ है, पुतली कोऊ नहीं उपजी, तैसे वास्तव आत्मसत्ता है, जगत् कछु उपजा नहीं; संकल्पकारिके जगत् भासता है, संकल्पके मिटेते जगत् कल्पना मिटि जाती है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! एक जीवते जो वहुत जीव हुए हैं; सो पर्वतविषे पाषाणकी नाईं उपजते है, जो पर्वतविषे अनंत पिंड आकार होते है, कोई जीवोंकी खाण है, जो इसप्रकार एते जीव उत्पन्न हो आते है, अथवा मेघविषे बूँदोंकी नाईं है ? अथवा अग्निते विस्फुलिंगों की नाईं उपजते है ? सो कहो, और एक जीव कौन है, जिसते संपूर्ण जीव उपजते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! न एक जीव है, न अनेक जीव हैं यह तेरे वचन ऐसे हैं, जैसे कोऊ कहै मैं शशेके शृंग उडते देखे हैं, तैसे एक जीवही उपजा नहीं तौ मैं अनेक कैसे कहौं ? जो कि ऐसे उपजे हैं शुद्ध अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अनत आत्मा है तिसविषे भेदकी कल्पना कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! जो कछु जगत् तुझको भासता है, सो सव आकाशरूप है, कोऊ पदार्थ उपजा नहीं, संकल्पके फुरणेकरि जगत् भासता है जीवशब्द अरु जीवशब्दका अर्थ आत्माविषे कोऊ उपजा नहीं यह कल्पना भ्रमकरि भासती है, आत्मसत्ताही जगत् की नाईं भासती है, तिसविषे न एक जीव है न अनेक जीव है ॥ हे रामजी ! आदि जो विराट् आत्मा है, सो आकाशरूप है, तिसते और जगत् उपजा सो तुझको क्या कहौं ! जगत् विराट्रूप है, अरु विराट् जीवरूप है, अरु जीव आकाशरूप है वहुरि और जगत् क्या रहा ? अरु जीव क्या हुआ ? सव चिदाकाशरूप है, यह जेते जीव भासते हैं, सो सव ब्रह्मस्वरूप है और द्वैत कछु नहीं, न इनविषे कछु भेद है ॥

राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तुम कहते हौ, आदि जीव कोऊ नहीं, तौ इन जीवोंको पालनेहारा कौन है ? जिसकी आज्ञाविषे यह पडे विचरते है । सो नियामक कौन है ? जो कोऊ हुआ नही तौ यह सर्वज्ञ अरु अल्पज्ञ क्योकरि होता है, एकविषे यह कैसेहै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिसको तू आदिजीव कहता है, सो ब्रह्मरूप है, नित्य है, शुद्ध है, अनतशक्ति है, अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जगत्कल्पना कोऊ नही ॥ हे रामजी ! जो शुद्ध चिदाकाश अनंतशक्ति है, तिसविषे जो आदिचित्त किंचन हुआ है, सो शुद्ध चिदाकाश ब्रह्मसत्ताही जीवकी नाई भासने लगी है, स्पदद्वारा हुएकी नाई भासती है, स्वरूपते इतर कछु हुआ नहीं, चेतन्य संवित आदिस्पंद करके विराट् आत्मा ब्रह्मारूप होइकरि स्थित भया है, तिसते आगे सकल्पकरिके जगत् रच्या है, तिस विषे शुभ अशुभ कर्म रचे है, तिनकरि नीति रची है, जो यह शुभ है, यह अशुभ है, जैसे आदि नीति रची तैसेही महाप्रलयपर्यंत ज्योंकी त्यों चलीजात है ॥ हे रामजी ! वह जो देव है, अनतशक्ति है, तिसविषे जैसे आदि फुरणा हुआ है, तैसेही स्थित है, जो आदि सर्वशक्ति फुरी है सो तैसेही है, जो अल्पज्ञ फुरी है, सो अल्पज्ञ है ॥ हे रामजी ! इस ससारके जो पदार्थ है तिनोंविषे नीति शक्ति प्रधान है, तिसके लघनेको कोऊ समर्थ नहीं, जैसे रची है, तैसे महाप्रलयपर्यंत रहती है ॥ हे रामजी ! आदि नित्य जो विराट् पुरुष है सो अंतवाहकरूप है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते रहित है अरु यह जगत् भी अतवाहकरूप है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते नहीं उपजा, सब सकल्परूप है, जैसे मनोराज्यका नगर शून्य होता है, तैसे यह जगत शून्य है ॥ हे रामजी ! इस सर्गका निमित्तकारण कोऊ नहीं, अरु समवायिकारण भी कोऊ नही, जो पदार्थ निमित्तकारण और समवायिकारणविना दृढ आवे सो भ्रममात्र जानिये, उपजा कछु नही, जो पदार्थ उपजता है सो दोनों कारणकरि उपजता है, सो जगत्का कारण कोऊ नहीं, ब्रह्मसत्ता नित्य शुद्ध अद्वैतसत्ता है, तिस-विषे कार्यकारणकी कल्पना कैसे होवे ? हे रामजी ! यह जगत अकारण

है, भ्रांतिकरिकै भासता है, जब तुझको आत्मविचार उपजैगा, तब दृश्य-भ्रम मिटि जावैगा, जैसे दीपक हाथमें लेकरि अंधकारको देखिये, तौ दृष्टि नहीं आता, तैसे विचारकरि देखैगा, तौ जगत् भ्रमामिटि जावैगा, जगत्-भ्रम मनके फुरणेकरि उदय हुआ है, ताते संकल्पमात्र है, इसका अधि-ष्ठान ब्रह्म है, सब नामरूप ब्रह्मसत्ताविषे कल्पित हैं, षट्विकार भी ब्रह्म-सत्ताविषे फुरे हैं, और सबते रहित भी है, शुद्ध चिदाकाशरूप है, और जगत् भी वहीरूप है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिके तरंग, बुद्बुद, फैन भासता है, तैसे आत्मसत्ताविषे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है, जैसे आदि चित्तविषे पदार्थसत्ता दृढ हुई है, तैसेही स्थित है; अरु आत्मा साथ अभेद है; इतर कछु नहीं, सब चिदाकाश है, इच्छा भी आकाशरूप है, देवता भी आकाशरूप हैं, समुद्र पर्वत भी आकाशरूप हैं ॥ हे रामजी ! हमको सदा चिदाकाशरूपही भासता है, आत्मसत्ताही मनरूप हो भासती है, और बुद्धिरूप हो भासती है, पर्वत कदरा सब जगत् होकरि भासता है, सब चैत्योन्मुखत्व होता है तब जगत् भासता है, जैसे वायु स्पंदरूप होता है तब भासता है, अरु निस्पंदरूप होता है तब नहीं भासता, तैसे जब चित्तसंवेदन स्पंदरूप होता है, तब जगत् भासता है, जब चित्तसंवेदन अस्फुररूप होता है तब जगत्कल्पना मिट-जाती है ॥ हे रामजी ! चिन्मात्रविषे जो चैत्यभाव हुआ है इसीका नाम जगत् है, जब चैत्यते रहित हुआ, तब जगत् मिटि जाता है, जो जग-त्‌ही न रहा तब भेदकल्पना रही सो भेदकल्पना आत्माविषे कैसे होवै ? ताते न कोऊ कार्य है, न कारण है, न जगत् है, सब भ्रममात्र कल्पना है, शुद्ध चिन्मात्र अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रविषे चित्त किंचन सदा रहता है, जैसे मिरचोंके बीजविषे तीक्ष्णता सदा रहती है, परंतु जब खाता है तब तीक्ष्णता भासती है, अन्यथा नहीं भासती, तैसे जब चित्त संवेदन चैत्योन्मुखत्व होता है, तब जीव जगत् चैतन्य भासता है, अरु संवे-दनते रहित जीव जगत् कल्पना नहीं भासती॥ हे रामजी! जब संवेदन साथ परिच्छिन्न संकल्प मिलता है तब जीव होता है, अरु जब इसते रहित होता है, तब शुद्ध चिदात्मा ब्रह्म होताहै, जिस पुरुषकी अशेष विषे कल्पना

मिटि गई है, अरु जिसको शुद्ध निर्विकार ब्रह्मसत्ताका साक्षात्कार हुआ है, सो पुरुष संसारभ्रमते मुक्त हुआ है॥ हे रामजी! यह सब जगत् आत्माका आभासरूप है, सो आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, नित्यशुद्ध है, सर्वगत स्थाणुकी नाईं अचल है, सो अहंरूप है, सब जगत् चिदाकाशरूप है, हमको तौ सदा ऐसेही भासता है, अज्ञानी वादविवाद पड़े करते हैं, हमको वादविवाद कोऊ नहीं, काहेते जो हमारा सब भ्रम नष्ट हो गया है॥ हे रामजी! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है, और द्वैत कछु नहीं, जिनको निश्चय भया है, तिनके अग अपना स्वरूपही है, ताते निराकार निर्वपु सत्ताके अग अपना स्वरूप क्यो न होवे? ताते जेता कछु प्रपच है, सो सब चिदाकाशरूप है, परतु अज्ञानीको भिन्न भिन्न भासता है, अरु जन्ममरण आदि विकार भासता है, अरु ज्ञानवान्को सब आत्मरूपही भासते हैं, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश सब आत्माके आश्रय फुरते हैं, अरु चित्तशक्तिही ऐसे होइकरि भासती है, जैसे वसतऋतु आता है, तिसविषे रसशक्तिकरिकै वृक्ष वेलियां सब प्रफुल्लित होइकरि भासती है, तैसे चित्तशक्ति स्पंदताकरिकै जगत्रूप होइकरि भासती है॥ हे रामजी! जैसे वायु स्पदताकरिकै भासता है तैसे जगत् फुरणेकरि भासता है, तैसेही चित्तसवित् जगद्रूप होइकरि भासता है॥ इस फुरणेते जगत् है अपर वस्तुते जो कछु हुआ नहीं, इसीते जगत् कछु नहीं; जैसे समुद्र तरगरूप होइ भासता है तैसे आत्मा जगत्रूप हो भासता है, इसते जगत् दृश्यभावकरि भासता है, अरु सवित्ते कछु हुआ नहीं, परतु वायु जड है, आत्मा चैतन्य है, अरु जल भी परिणामकरिकै तरंगरूप होता है, आत्मा अच्युत है, निराकार है॥ हे रामजी! चैतन्यरूप रत्न है, जगत् तिसका चमत्कार है, चैतन्यरूपी अग्नि है तिसविषे जगद्रूपी उष्णता है॥ हे रामजी! चैतन्यप्रकाश यह भौतिक प्रकाशरूप होकरि भासता है, इसते जगत् है, अरु वस्तुते कछु नहीं, चैतन्यसत्ता यह शून्य आकाशरूप होइकरि भासती है इस भावकरि जगत् है; वास्तव हुआ नहीं, इसते जगत् कछु नहीं, चैतन्यसत्ताही पृथ्वीरूप होइकरि भासती है, दृश्यविषे होता है इसते जगत् है, अरु आत्मसत्ताते इतर

वत् है ॥ हे रामजी ! पर्वतोंसहित जगत् भासता है, सो रत्तीमात्र भी नहीं, जैसे स्वप्नके पर्वत जाग्रत्के रत्तीभर भी नहीं होते काहेते कि, कछु हुए नहीं, तैसे यह जगत् आत्मरूप है, भ्रांतिकरिकै भासता है, जैसे संकल्पका मेघ सूक्ष्म होता है, तैसे यह जगत् आत्माविषे तुच्छ है, जैसे शशेके शृंग असत् होते हैं, तैसे जगत् असत् है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत् होती है, तैसे यह जगत् असत् है, असम्यक् ज्ञानकरिकै जगत् भासता है, विचार कियेते शांति हो जाती है, शुद्ध चैतन्य सत्ताविषे जब चित्तसंवेदन होती है तब वही संवेदन जगत्रूप होय भासता है, परंतु जगत् हुआ कछु नहीं, जैसे समुद्र अपनी द्रवता स्वभावकरिकै तरंगरूप होइ भासता है, परंतु तरंग कछु और वस्तु नहीं, जलरूप है, तैसे ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होइकरि फुरती है, सो और तौ जगत् भिन्न पदार्थ कोऊ नहीं॥ ब्रह्मसत्ता किंचनद्वारा ऐसे भासती है, जैसा बीज होता है, तैसाही अंकुर निकसता है, जैसी आत्मसत्ता है, तैसेही जगत् है, दूसरी वस्तु कोऊ नहीं, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, चित्तसंवेनदके स्पंदकरिकै जगत्रूप होती है, तिस ऊपर, हे रामजी ! एक आख्यान तुझको कहता हौं, सो श्रवणका भूषण है; तिसके समुझेते सब संशय मिटि जावैगा अरु विश्रामको प्राप्त होवैगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! मेरे बोधकी वृद्धताके निमित्त मंडप आख्यान जिसपर हुआ है, तैसे संक्षेपते कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस पृथ्वीमें एक राजा पद्म होत भया है, सो कैसा था, जो कुलका कमल प्रफुल्लित था, अरु संतानवान् था, अरु बडी लक्ष्मीकरि संपन्न अरु समुद्रवत् मर्यादाके धारणेहारा, अरु दुष्टोंरूपी तमका नाशकर्त्ता, सूर्य, अरु सत् गुणोंरूपी हंसोंका मानससरोवर, अरु दोषरूपी कौवोंको नाशकर्त्ता, अरु दोषरूपी तृणोंका नाशकर्त्ता अग्नि, अरु प्रजाके पालनेको और शत्रुके नाश करनेको विष्णुजी, तथा मित्ररूपी चंद्रमुखी कमलनीको चंद्रमा था अरु संपूर्ण राजसी सात्त्विकी गुणोंकर संपन्न था, एक लीला नाम तिनकी स्त्री थी, बहुत सुंदर थी, मानो लक्ष्मीनें अवतार लिया है, सो राजाकी प्रसन्नताको देखके आप भी प्रसन्न होवै, अरु राजाको दिलगीर देखके आप भी दिलगीर होवै,

अरु राजाको क्रोधवान् देखै तब भयमान् होवै, बहुत सुशीलतासंयुक्त रहै तिस साथ राजा क्रीडा करत भया, बाग जावै, ताल कदंब वृक्षों कल्पवृक्षोंके नीचे जावै, सुंदर सुंदर स्थानोंविषे जायके क्रीडा करै, बरफके मंदिर बनायके तिसविषे रहै, अरु रत्नमणिके जडे हुए स्थानोंविषे शय्या बिछाइके विश्राम करै, इस प्रकार विचरते भये बहुरि ठाकुरद्वारा तीर्थ जो जो दूर भी पुण्यस्थान थे तहा गये, इस प्रकार राजसी अरु सात्विकी स्थानोंविषे विचरते भये ॥ आपसमें गुह्यार्थ पावै, एक एक पद कहै, दूसरा तिस को श्लोक करि करि उत्तर देवै, अरु श्लोक भी ऐसे पढै जो पढनेमें भाषा भासै, अर्थविषे संस्कृत होवै, अरु शयनकी अरु शृंगारकी चतुराई सीखै, अरु राजा चद्रमाकी नाई सुदर, अरु राजसी विद्याकारि पूर्ण, हस्ती घोड़े रथ आदिक चलावनेको भी विद्यावान् शस्त्रोंके चलावनेकी विद्याकारि भी सपन्न हुआ ॥ इस प्रकार राजा बहुत चतुर हुआ, अरु दोनोंका परस्पर आपसमें स्नेह भया अरु दोनोंकी यौवन अवस्था हुई अरु दोनों गुणवान् भये, जो राजाका चित्त और किसी ठौर न जावै, अरु रानीका चित्त भी और किसी ओर न जावै, रानी पतिव्रता अरु राजा धर्मात्मा हुआ तब एक समय रानीने विचार किया कि राजा मुझको बहुत प्रिय है, अपने प्राणोकी नाई प्यारा है, अरु बहुत सुदर है, किसी प्रकार इसकी युवावस्था सदा रहै, और अजर अमर रहै, इसका अरु मेरा वियोग कदाचित् न होवै, सोई उपाय करौं यज्ञ करौं, दान करौं, तप करौं, ऐसे विचार करिके ब्राह्मणों ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंसों पूछती भई ॥ हे विप्रो ! अजर अमर नर किस प्रकार होता है? जिस प्रकार होता है, सो हमको कहो ॥ विप्र उवाच ॥ हे देवि ! जप तप आदिकरिकै सिद्धता प्राप्त होती है, परतु अमर नहीं होता, सब जगत् नाशरूप है, इस शरीरकारि कोई स्थिर नहीं रहता ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ब्राह्मणोंते सुनिकारि रानी भर्त्ताके वियोगते डरिकारि विचार करने लगी कि, जो भर्त्तासों मैं प्रथम मरों; तो मेरे बडे भाग्य हैं, मैं सुखवान् होऊँगी, अरु जो यह प्रथम मृतक होवै, तो सोई उपाय

करौ, जिसकरि राजाका जीव मेरे अंतःपुरविषेही रहै, बाह्य न जावै, मैं दर्शन करती रहौ, ताते सरस्वतीको मै सेवौ ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करिकै तपरूप जो सरस्वती है, तिसका पूजन करती भई, तब त्रिरात्र अरु दिनपर्यंत निराहार रहै, चतुर्थ दिनमें पारणा करै जिसप्रकार शास्त्रविधि है, तिस प्रकार करै, देवता, ब्राह्मण, पंडित, गुरु, ज्ञानियोंकी पूजा करै; स्नान, दान, तप, ध्यान, नितप्रति करै, यह नियम किया, अरु गृहविषे जिस प्रकार आगे कीर्तन करती थी, उसीप्रकार विचरै, भर्त्ताको लखावै नहीं इस प्रकार नियमसंयुक्त क्लेशते रहित तप करती भई, जब तीनसौ दिन व्यतीत भये, तब प्रीतिसंयुक्त होइकरि सरस्वतीकी पूजा करी, तब वागीश्वरी प्रसन्न होइकरि दर्शन देती भई, अरु कहा, हे पुत्रि ! तुझने भर्त्ताके निमित्त निरंतर तप किया है, सो मैं प्रसन्न भई हौं, जो तुझको अभीष्ट वर है सो मांग ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! तेरी जय होवै, मैं अनाथ तेरी शरण हौं, मेरी रक्षा कर, यह जन्मजरारूपी जो अग्नि है, सो बहुत प्रकारकरि जलावत है, तिसके शांति करनेको तुम चद्रमा हौ, अरु हृदयविषे जो तम है, तिसके नाश करनेको तुम सूर्य हौ ॥ हे माता ! मुझको दो वर देहु; एक यह वर देहु कि, जब मेरा भर्ता मृतक होवै, तब इसका वपु जो है पुर्यष्टक, सो बाह्य न जावै, अंत पुरहीविषे रहै, अरु दूसरा यह वर देहु, कि, जब मेरी इच्छा तुम्हारे दर्शनकी होवै तब दर्शन देहु ॥ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ ऐसेही होवैगा ॥ हे रामजी ! इसप्रकार वर देके सरस्वती अतर्धान भई, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिके लीन होते है, तैसे देवी अतर्द्धान हो गई, ऐसे सुनिकै लीला बहुत प्रसन्न भई, कालरूपी चक्र फिरता है, जिसको क्षणरूपी आरा लगा हुआ है, तिसके तीन सौ साठ कीले है, वर्षपर्यंत उसी ठौर बहुरि आते हैं, ऐसा जो कालचक्र है, तिसकरि राजा पद्म रणभूमिकाते फटके आय घरविषे पडा हुआ मृतक भया, तब ऐसा हो गया, जैसे सूखे पत्रसों रस निकसि जाता है तैसे पुर्यष्टकके निकसनेकरि राजाका शरीर कुम्हलाई गया, तब राणी उसके मरणकरि बहुत शोकवान् भई, मुखकी कांति दूर हो गई, जैसे कमलिनी जलविना कुम्हलाई जाती है;

तैसे विलाप करने लगी, कबहूँ ऊँचेस्वरकरि रुदन करै, कबहूं चुपकरि जावे, राजाके वियोगकरि बहुत शोकवान् भई, जैसे चकवेके वियोगकरि चकवी शोकवान् होती है, जैसे सर्पके फूत्कार लगेते कोऊ मूर्च्छित होता है, तैसे शोकके श्वासोकरि लीला मूर्च्छित हो गई, अरु व्याकुल होके प्राण त्यागने लगी, तब सरस्वतीजीने दया करिके आकाशवाणी करी॥ हे सुंदरी! यह जो तेरा भर्त्ता मृतक भया है, तिसको तू सर्व ओरते फूलोंकरि ढापिराख, बहुरि तुझको भर्त्ताकी प्राप्ति होवेगी, अरु यह फूल नहीं कुम्हलावेंगे तेरे भर्त्ताकी ऐसी अवस्था है, जैसे आकाशकी निर्मल कांति है, अरु तेरेही मंदिरविषे है, कहूं गया नहीं॥ हे रामजी! इस प्रकार कृपा करिके जब देवीने वचन कहा, तब लीला कछुक शांतिवान् भई, जैसे जलविना मच्छी तडफडाती हुई मेघकी वर्षाकरिके कछुक शांतिवान् होती है, तैसे लीला कछुक शांतिवान् होती भई, बहुरि कैसे हुई जैसे धन होवे अरु कृपणताकर धनका सुख न होवै, तैसे वचनोंकर शांतिवान् हुई, अरु भर्त्ताके दर्शनविना सब शांति न हुई, तब लीला ऐसेही करत भई, ऊपर नीचे फूलोंकरि भर्त्ताको ढाँपा, उसके पास आप भी शोकवान् होइकरि बैठी रही, अरु रुदन करने लगी, बहुरि देवीकी आराधना करी, तब अर्धरात्रिके समय देवीजी आय प्राप्त भई, अरु कहा॥ हे सुंदरि! तैंने मेरा स्मरण किस निमित्त किया है? अरु तू शोक किस कारण करती है, यह तो सब जगत् भ्रांतिमात्र है,जैसे मृगतृष्णाकी नदी होती है, तैसे यह जगत् है, अह त्व इदते ले आदिक जो जगत् भासता है, सो सब कल्पनामात्र है, भ्रम करिकै भासता है, आत्माविषे हुआ कछु नही,तू किसका शोक करती है?॥ लीलोवाच॥ हे परमेश्वरि! मेरा भर्त्ता कहाँ स्थित है, अरु क्या रूप धरा है? तिसको मुझे मिलाए, तिस विना मै अपना जीना देख नहीं सकती॥ देव्युवाच॥ हे लीले! आकाश तीन है, एक भूताकाश है, एक चित्ताकाश है, एक चिदाकाश है; यह जो आकाश है, सो भूताकाश है, चित्ताकाशके आश्रय है, अरु चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय है, तेरा भर्त्ता अब भूताकाशको त्यागकरि चित्ताकाशको प्रत्यक्ष गया है, सो चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय

स्थित है, जब तू चिदाकाशविषे स्थित होवैगी तब सब ब्रह्मांड तुझको भासैगा, तिसविषे प्रतिबिंबित होते हैं; तहां तुझको भर्त्ताका अरु जगत्का दर्शन होवैगा ॥ हे लीले ! देशते देशांतरको क्षणविषे संवित् जाता है, तिसके मध्य जो अनुभव आकाश है, सो चिदाकाश है, जब तू सकल्पको त्याग देवै तिसते शेष रहै सो चिदाकाश है ॥ हे लीले ! यहाँ जो जीव विचरते हैं, सो पृथ्वीके आश्रय है, अरु पृथ्वी आकाशके आश्रय है, ताते यह सब जीव जो विचरते है, सो भूताकाशके आश्रय विचरते है, अरु चित्त जिसके आश्रयते एक क्षणविषे देशदेशांतर भटकता है, सो चित्ताकाश है ॥ हे लीले ! जब दृश्यका अत्यंत अभाव होता है, तब परम पदकी प्राप्ति होती है, सो चिरकालके अभ्यासते प्राप्त होती है,अरु मेरा तुझको यह वरहै,जो तुझको शीघ्रही प्राप्त होवैगी ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब ईश्वरी कहिकरि अतर्द्धान होत भई तब लीलाकरिकै लीला रानी निर्विकल्पसमाधिविषे स्थित भई, अरु चित्तसहित देहका अहंकार त्यागिकरि उडी, जैसे पक्षी अपने गृहते उडिकरि आकाशको गमन करता है, तैसे रानी चिदाकाशको उडी, तब एक क्षणमें आकाशको प्राप्त भई जो नित्य शुद्ध अनंत आत्मा है परम शातिरूप है, सर्वका अधिष्ठान है, तिसविषे जाइकरि भर्त्ताको देखती भई, स्पद कल्पना ले गई थी. तिसकरिकै अपने भर्त्ताको देखती भई. अरु बहुत मंडलेश्वर सिंहासनोंपर आकाशविषे देखे अरु बडे सिंहासनपर बैठे भर्त्ताको देखती भई, चारों ओरते जय जय शब्द होता है कि, हे राजा ! तेरी जय होवै ! तेरी जय होवै ! तू बहुत जीवै, अरु बडे सुदर मदिरको देखती भई, राजाके पूर्व दिशाको देखा तहां ब्राह्मण, ऋषीश्वर मुनीश्वर, अनेक बैठे हैं, अरु बडी ध्वनिसों पाठ करते है, दक्षिण दिशाकी ओर देखा तहाँ सुदर स्त्रियाँ बैठी हैं. अरु नाना प्रकारके भूषणसहित अनेक हैं, फिर उत्तर दिशाकी ओर देखा, तहाँ हस्ती, घोडे, रथ, प्यादे चारो प्रकारकी अनंत सेना है, पश्चिमकी ओर मडलेश्वर हैं, ऐसे देखके अरु चारों दिशामडलेश्वर इसके आश्रय जीवके विराजते है; सो देखके आश्चर्यको प्राप्त भई और नगर देखे, प्रजा देखी, सब अपने २ व्यवहारविषे स्थित हैं; बहुरि राजाकी

सभाविषे जाइ बैठी, रानी सबको देखै अरु रानीको कोऊ न देखे, जैसे औरके संकल्पपुरको नहीं देख सकता, तैसे रानीको कोऊ देख न सकै तब रानीने उसका अंत पुर देखा, जहाँ ठाकुरद्वारे बने हुए हैं, देवताकी पूजा होती है,अरु गंध धूपसों पवनकरिकै त्रिलोकी मग्न करती है, राजाका यश चंद्रमाकी नाईं बहुत हुआ, तब पूर्व दिशासों हलकारा आयके तिसने कहा ॥ हे राजन् ! पूर्व दिशामें और राजाका क्षोभ हुआ है, बहुरि उत्तर दिशासों हलकारा आया, तिसने कहा ॥ हे राजन् ! उत्तर दिशामें और राजाका क्षोभ हुआ है, तुम्हारे जो मंडलेश्वर हैं सो युद्ध करते हैं, सोई प्रकार दक्षिण दिशाकी ओरसों आया, उसने भी कहा और राजाका क्षोभ हुआ है, बहुरि पश्चिम दिशासो आया, उसने कहा पश्चिम दिशामें क्षोभ हुआ है, बहुरि और आया, तिसने कहा, सुमेरु पर्वत जो देवता सिद्धोंके रहनेका स्थान है, तहाँ क्षोभ हुआ है, बहुरि अस्ताचल पर्वतसों आया, तिसने कहा, अस्ताचलमे क्षोभ हुआ है, तब राजाकी आज्ञाकरि बहुत सेना विद्यमान स्थित आन हुई, जैसे बडे मेघ आवैं तैसे सेना आई अरु जेते मंत्री थे, अरु नंद आदिक जो टहलुए थे और ऋषीश्वर मुनीश्वर तहाँ देखती भई, जेते भृत्य थे, सो सब सुंदर अरु वर्षांते रहित श्वेत बादरोंकी नाईं तिनके श्वेत वस्त्र देखती भई, अरु बडे वेदपाठी ब्राह्मण देखती भई जिनके शब्दकर नगारेके शब्द भी सूक्ष्म भासे ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ऋषीश्वर, मंत्री, टहलुए, बालक देखती भई, सो अपूर्व देखती भई, अरु पूर्व भी देखती भई, देखके आश्चर्यवान् हुई, चित्तविषे यह शंका उपजी कि, मेरा भर्त्ताही मूआ है, अथवा संपूर्ण नगर मृतक भया, जो परलोकविषे आए हैं तब देखा कि, मध्याह्नका सूर्य शीशपर उदित है, अरु राजा सुंदर षोडशवर्षका है प्रथमकी जरा अवस्थाको त्यागिकरि नूतन शरीरको धारके बैठा है, ऐसे आश्चर्यको देखके रानी बहुरि अपने गृहविषे आवती भई, तब देखा कि, अर्धरात्रि है, अपनी सहेलियोंको सोती हुई देखती भई, सहेलियोंको जगावती भई, अरु कहा जिस सिंहासनपर मेरा भर्त्ता बैठता था तिसको साफ करो, मैं तिसके ऊपर बैठनी हौं अरु जिस प्रकार तिसके निकट मंत्री भृत्य आन बैठते थे, तिसी प्रकार करो;

इसप्रकार सुनकर सहेलियोंने वडे मन्त्रीको कहा, तिन मंत्रियोंने सबको जगाया, सिंहासन झाडिकारिकै मेघकी नाईं जलकी वर्षा करी, सिंहासन के ऊपर वस्त्र विछाए आसपास भी वस्त्र विछाए मसाले जगाई वडा प्रकाश हुआ अंधकार नष्ट भया जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रका पान किया था तैसे अंधकारका प्रकाशनें पान कर लिया तव मन्त्री, टहलुए, पंडित, ऋषीश्वर, ज्ञानवान् सव आयके स्थित हुए जेते कछु राजाके पास थे सो सव आयके स्थित भये सिंहासनके निकट वैठे और लोक भी आय स्थित हुए मानो प्रलयकालविषे समुद्रक्षोभ हुआ है वहुरि जलसों पूर्ण हुए हैं प्रलय हुइ सृष्टि मानों अनंत उत्पन्न भई है इस प्रकार मन्त्री, टहलुए, पंडित, वालक, भर्त्ताविना देखके वडे आश्चर्यको प्राप्त भई जो एक आदर्शको दोनों ओर अन्तर्वाहिर दृष्टि भासती है इस प्रकार देखके अंतरकी वार्त्ता उनको न जनावत भई वहुरि अंतर आइकारि कहत भई वडा आश्चर्य है वडा आश्चर्य है ईश्वरकी माया जानी नहीं जाती यह क्या है ? इस प्रकार आश्चर्यवान् होइकारि सरस्वतीजीकी आराधना कीनी तव सरस्वती कुमारी कन्याका रूप धारिकारि आन प्राप्त भई तव लीलाने कहा, हे भगवति ! मैं वारवार पूछती हौं तुम उद्वेगवान् नहीं होना. वडेका यह स्वभाव है जो शिष्य वारंवार पूछै तौ भी खेदवान् नहीं होते अव मै पूछती हौं कि, यह जगत् क्या है ? अरु वह जगत क्या है ? दोनों विषे कृत्रिम कौन है? अरु अकृत्रिम कौन है ? ॥ देव्युवाच॥ हे लीले ! तैंने पूछा कि,कृत्रिम कौन है अरु अकृत्रिम कौन है. सो पाछे मैं तुझको कहौंगी लीलोवाच ॥ हे देवि ! जहाँ तुम हम वैठे है सो अकृत्रिम है, अरु वह जो मेरे भर्त्ताका स्वर्ग है, सो कृत्रिम है, काहेते जो शून्यस्थानविषे वह सृष्टि हुई है ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जैसा कारण होता है, तैसाही कार्य होता है, जो कारण सत् होता है, तव कार्य भी सत् होता है, अरु सत्ते असत् नहीं होता अरु असत्ते सत् नहीं होता, कारणते अन्य कार्य नहीं होता,ताते जैसे यह जगत् है,तैसा वह जगत्है ॥लीलोवाच॥ हे देवि ! कारणते अन्य कार्यसत्ता होती है, काहेते कि, मृत्तिका जलके उठावनेको समर्थ नहीं होती, अरु जव मृत्तिकाका घट वनता है,

तब जलको उठावता है, तौ कारणते अन्य भी कार्यकी सत्ता हुई क्यों ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! कारणते अन्य कार्यकी सत्ता तब होती है, जो सहायकारी भिन्न भिन्न होते हैं, जहाँ सहायकारी नहीं होता, तहाँ कारणते अन्य कार्यकी सत्ता नहीं, तेरे भर्त्ताकी सृष्टि जो भासी है, सो कारणविना भासी है, उसका जीव जो पुर्यष्टक थी, सो आकाशरूप थी, तहाँ न कोऊ समवायिकारण था न निमित्तकारण था, तिसको कृत्रिम कैसे कहिये ? जो किसीका किया होवै, तौ कृत्रिम होवै, वह तौ आकाशरूप पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते रहित है, जो समवायिकारण न होवै, तौ तिसका निमित्तकरण कैसे होवै ? ताते वह जो तेरे भर्ताका स्वर्ग है, सो अकारण है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! उस स्वर्गकी स्मृति जो संस्कार है, सो कारण क्यों न होवै ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! स्मृति तौ कोई वस्तु नहीं, स्मृति आकाशरूप है, स्मृति नाम संकल्पका है सो संकल्प आकाशरूप है, और वस्तु कछु नहीं, मनोराज्य रूपहै ताते उसकी सत्ता कछु नहीं, आभासरूपहै ॥ लीलोवाच ॥ हे महेश्वरी ! जो वह संकल्पमात्र आकाशरूप है, तौभी आकाशरूप है, जहां तुम हम बैठे हैं, जैसे वह है तैसे यह है, दोनों तुल्य है ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जैसे तू कहती है, तैसेही है, अहं त्वं इदं यह वह संपूर्ण जगत् आकाशरूप है, भ्रांतिमात्र भासते हैं, उपजे कछु नहीं, सब आकाशमात्र हैं, स्वरूपते इनका कछु सद्भाव नहीं, जो पदार्थ सत्य न होवें तौ तिनकी स्मृति कैसे सत् होवे ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! अमूर्तिवत् मेरा भर्त्ता था, सो मूर्त्तिवत् हुआ अरु तिसको जगत् भासने लगा, सो कैसे भासा ? तिसका स्मृति कारण है ? या किसी और प्रकार है, यह मेरे दृश्यभ्रम निवृत्तिके निमित्त मुझको वही रूप कहो। देव्युवाच, हे लीले ! वह स्वर्गभी भ्रमरूप है, यह भी भ्रमरूप है, जो यह सत होवे तौ, इसकी स्मृति सत् होवै, यह जगत् असतरूप है, जैसे यह भ्रम तुझको भासा है सो सुन, एक महाचिदाकाश है, तिसका किंचन चित् अणु है; तिसके किसी अंशविषे जगत् है, सो जगतरूपी वृक्ष है, सुमेरु तिसका स्तंभ है; सप्त लोक तिसके डाल हैं, आकाश

उसकी शिखा है, अरु सप्त समुद्र उसविषे रस है, तीनों लोक फल हैं, तिसविषे सिद्ध, गंधर्व, देवता, मनुष्य, दैत्यरूप मच्छर है, तारागण तिसके फूल है, तिस वृक्षके किसी छिद्रविषे एक देश है, तिसविषे एक पर्वत है, तिसके तरे एक नगर वसता है, तहाँ एक नदीका प्रवाह चलता है, तहाँ एक वसिष्ठ नाम ब्राह्मण था, सो वड़ा धर्मी था सदा अग्निहोत्र करता था, धन अरु विद्यासपन्न था, कैसा ऋपीश्वर वसिष्ठ है ? विद्या अरु कर्म अरु धन पराक्रम सव तिसके समान था, परतु ज्ञानविषे भेद था, जो खेचर वसिष्ठका ज्ञान है, तैसा भूचर वसिष्ठका न था, तिसकी स्त्रीका नाम भी अरुंधती, सो पतिव्रता थी, अरु चंद्रमाकी नाईं तिसका मुख था तिस अरुंधतीसमान विद्या, कर्म, काति, धन, चेष्टा, पराक्रम जिसका, अरु चेतनता जो है ज्ञान सो समान था, और सव लक्षण एक समान था, वह आकाशकी अरुधती है, यह भूमिकी अरुधती थी एक कालमें वसिष्ठ ब्राह्मण पर्वतके शिखरपर वैठा था, तहाँ सुदर हरे तृणों-करि शोभायमान् स्थान था, एक राजा उस पर्वतके निकट शिकार खेलनेके निमित्त सव परिवारसहित चला जाता था, सो वहुत सुदर अरु नानाप्रकारके भूपणोंसहित भूपित किया हुआ, अरु शीशपर चमर होता जाता था, मानौ चंद्रमाकी किरणे प्रसर रही है, अरु शिरपर अनेक प्रकारके छत्रोंकी छाया, मानौ आकाश भी रूपेका किया है, अरु दूजे भी वहुत हैं, अरु रत्न मणिके भूपण पहिरे हुए मंडलेश्वर साथ हैं, अरु हस्ती, घोडा, रथ, पैदल, चारों प्रकारकी सेना आगे चली जाती है, तिनकी धूल वादल होइकरि स्थित भई, अरु नौवत नगारे वाजते हैं, तिसको देखके वसिष्ठ ब्राह्मण मनविषे चितन करत भया कि, राजाको वडा सुख प्राप्त होता है, जो सव सौभाग्यकरिकै राजा संपन्न होता है, इसप्रकार राज्य मुझको भी प्राप्त होवै, यह वांछा करत भया, मैं कव दिशाको जीतौंगा ? अरु मेरे यश साथ दश दिशा पूर्ण कव होवैंगी ? ऐसे छत्र मेरे शिरपर कव ढरेंगे ? अरु चारौं प्रकारकी सेना मेरे आगे कव चलैगी ? अरु सुंदर मंदिरोंविषे सुंदर स्त्रियोंके साथ मैं कव विलास करौंगा ? मद मंद पवन शीतल सुगंधता साथ कव परस होवैगा ? हे लीले ! इस प्रकार

ब्राह्मण संकल्पको धरता भया, अरु जो कछु अपने स्वकर्म है, सो भी करता रहै, अरु कामना हृदयविषे स्थिर हो रही तब ब्राह्मणको जराअवस्था आनि प्राप्त भई, शरीर जर्जरीभाव हुआ, जैसे कमलऊपर वर्फ पडता है, अरु कुम्हलाइ जाता है, तैसे ब्राह्मणका शरीर कुम्हलाइ गया, अरु मृत्युका समय निकट आया, तब तिसकी स्त्री भर्त्तारका मृत्यु निकट देखके कष्टवान् भई, तब उसने मेरी आराधना करी, जैसे तैने करी तैसे उसने करी, भर्त्ताकी अजर अमरताको दुर्लभ जानके मुझसो वर मॉगत भई, हे देवि ! मुझको यह वर देहु, जब मेरा भर्ता मृतक होवै, तब इसका जीव बाहर न जावै, तब मैने कहा ऐसेही होवैगा ॥ हे लीले ! जब बहुत काल व्यतीत हुआ तब ब्राह्मण मृतक हुआ, तब उसका जीव मंदिर विषे रहा, जैसे मंदिरविषे आकाशही रहता है तैसे मंदिरविषे रहै॥ हे लीले ! जब आकाशरूप हो गये अरु जो उसकी पुर्यष्टकविषे राजाका दृढ संकल्प था, तब वह सकल्प उसको आन फुरा, जैसे बीजते अंकुर निकस आवता है, तैसे आन फुरा, तिसकरि अपने राज्यको देखता भया, सो कैसा राज्य देखता भया जो त्रिलोकीका राज्य है, अरु परम सौभाग्य करिकै सपन्न है, दशोदिशा यशकरिकै पूर्ण होइ रही है मानो यशरूपी चंद्रमाकी यह पूर्णमासी है, अरु जैसे प्रकाश अधकारको नाश करता है, तैसे शत्रुरूपी अधकारका नाशकर्त्ता प्रकाश हुआ, अरु ब्राह्मणोंके चरणोंका सिंहासन हुआ, अर्थ यह, जो ब्राह्मणोंको बहुत पूजने लगा, अरु अर्थियोंका कल्पवृक्ष हुआ, अरु स्त्रियोंको कामदेव हुआ, इत्यादिक जो सात्विक राजस गुण है तिनोकरि सपन्न हुआ, तिसकी स्त्री तिसको मृतक देखके बहुत शोकवान् भई, जैसे ज्येष्ठआषाढकी मजरी सूख जाती है, तैसे शोकवान् भई तब यह भी शरीरको छोडके अतवाहक शरीरकरिके भर्त्ताको जाय प्राप्त भई, जैसे नदी समुद्रको जाय प्राप्त होती है, अरु ब्राह्मणके जो पुत्र थे, सो धनयुक्त अपने गृहविषे रहे, उस ब्राह्मणको मृतक हुए अब आठ दिन हुए है, सो वसिष्ठ ब्राह्मण तेरा भर्त्ता पद्म हुआ, अरुंधती उसकी स्त्री तू लीला हुईहै, अरु जेता कछु आकाश पर्वत समुद्र पृथ्वी त्रिलोकी है, सो वसिष्ठ ब्राह्मणके अंत पुरविषे एक कोनेविषे स्थित है, वहाँ तुझको

जगत् किंचन होता है, भ्रमकरिकै भासता है, वास्तवतें नानात्व कछु हुआ नही, जैसे स्वप्नविषे कारणविना नानाप्रकारका जगत् भासता है, तैसे परलोकविषे नानाप्रकारका जगत् कारणविना भासता है, सो क्या रूप है; आकाशरूप है, मनके भ्रमकरिकै भासता है, तैसे यह जगत मनके भ्रमकरि भासता है, स्वप्न जगत् अरु परलोक जगत् अरु जाग्रत जगत्विषे भेद कछु नही, जैसे वह भ्रममात्र है;तैसे यह भ्रममात्र है,वास्तवते कछु उपजा नही, जैसे समुद्रविषे तरंग कछु वास्तव नहीं, तैसे आत्माविषे जगत् कछु वास्तव नहीं, असत्‌ही सत्‌की नाईं भासता है, जिस कारणते उपजा नहीं, तिस कारणते अविनाशी है ॥ हे लीले ! जैसे चैत्योन्मुखत्व हुए, चेतन आकाश भासता है; तैसे चैत्यताविषे भी चेतन आकाश है, काहेते जो कछु हुआ नहीं, जैसे समुद्रते तरग होता है, सो तरंग कछु जलते इतर हुआ नही, जलही है, तैसे आत्माविषे जगत कछु इतर नही हुआ, अरु जलविषे तरंगकी नाईं भी आत्माविषे जगत नही, जैसे शशेके शृंग असत् हैं, तैसे जगत् असत् है कछु उपजा नही ॥ हे लीले ! जब यह पुरुष मृतक होता है; तब जैसा इसको देश भासता है, जैसा काल जैसी क्रिया उत्पन्न नाश भई है, कुटुंब शरीर वर्ष आदिक नानारूप भासता है, सो क्या रूप है, आभासरूप है, जिसप्रकार क्षण क्षणविषे एते भास आवते हैं, तैसे कारणविना यह जगत् भास्या है, तौ दृश्य, द्रष्टा भी कोऊ न हुआ यह जो देश, काल, क्रिया, द्रव्य, देह इंद्रियां, प्राण, मन, बुद्धि सब भ्रमकरिके भासते हैं, आत्मा उपाधिते रहित आकाशरूप है, तिसके प्रमादकरिके जगत्‌भ्रम उदय हुआ है ॥ हे लीले ! भ्रमविषे क्या नहीं होता है, जैसे एक रात्रिविषे हरिश्चंद्रको द्वादश वर्ष भ्रमकरिकै भासे थे, तैसे यहां भी थोड़े कालविषे बहुत काल भास्या है, दोनों अवस्थाविषे इसको औरका और भासता है, स्वप्नविषे भी और भासत है, अरु उन्मत्तता करिकै भी औरका और भासता है, अभोक्ता अरु आपको भोक्ता मानता है, अरु भ्रमकरिके उत्साद अरु शोकको इकट्ठा देखता है,न किसीको उत्साद होता है; अरु स्वप्नविषे मृतकभाव शोकको देखता है; अरु विछुरा हुआ होता है सो स्वप्नविषे मिला देखता है अरु मिला

हुआ होता है आपसे विछुरा जानता है और काल है तिसको भ्रम करिके और काल देखता है, ताते देख यह सब भ्रमरूप है, जैसे भ्रमकरिके यह भासता है, तैसे यह जगत् भी भ्रमकरि भासता है, परंतु ब्रह्मते इतर कछु नहीं ताते न बंध है, न मोक्ष है, जैसे मिरचनविषे तीक्ष्णता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां होती है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां कछु हुई नहीं, स्तंभ ज्योंका त्यों है, शिल्पीके मनविषे पुतलियां है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् है नहीं, मनरूपी शिल्पीने जगत्रूपी पुतलिया कल्पी हैं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है, नित्य शुद्ध है, अज है, अमर है, स्वभावविषे स्थित है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मंडपाख्याने परमार्थप्रतिपादनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५.

विश्रातिवर्णनम्।

देव्युवाच ॥ हे लीले। जब यह मृत्युकरि मूर्च्छा होती है, तब शीघ्रही इसको बहुरि कुल जन्म भासि आता है देश, काल, क्रिया, द्रव्य, अरु अपना परिवार भासि आता है, नानाप्रकारका जगत् भासि आता है, अरु वास्तव कछु नहीं, स्मृति भी असत् है, एक स्मृति अनुभवते होती है, एक स्मृति अनुभवविना भी होती है, अरु दोनों स्मृति मिथ्या है, जैसे स्वप्नविषे अपना देह देखता है, सो अनुभव असत् है, किसी अपने मरनेकी स्मृति करि नहीं भासा, अरु तिस मरनेकी स्मृति भी असत् है, स्वप्नविषे कोऊ पदार्थ देखो तिसको जाग्रतविषे स्मरण करना वह भी असत्य है, वस्तुतें कछु हुआ नहीं, ताते यह जगत् अकारणरूप है, जो है सो चिदाकाश ब्रह्मरूप है, और न कछु विदूरथकी सृष्टि सत् है सब संकल्पमात्र है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि। जो यह सृष्टि भ्रममात्र है, तौ वह जो विदूरथकी सृष्टि है, सो यह मृष्टिके सस्कार करिके हुई है, अरु

यह सृष्टि उस ब्राह्मण अरु ब्राह्मणीकी स्मृति संस्कारते हुई है, तौ ब्राह्मण अरु ब्राह्मणीकी सृष्टि किसकी स्मृतिविषे हुई ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! वह जो वसिष्ठ ब्राह्मणकी सृष्टि है, सो ब्राह्मणके संकल्पविषे हुई है, अरु ब्रह्मा ब्राह्मणविषे फुरा है, परंतु वस्तुते कछु ब्रह्मा भी हुआ नहीं, तौ तिसकी सृष्टि क्या कहौ ? इस जेती कछु सृष्टि है, सो उसी ब्राह्मणके मंदिरविषे है, वस्तुतें कछु हुई नहीं, सब संकल्परूप है, मनके फुरणे करिकै भासता है, जैसा जैसा संकल्प फुरता है, तैसा तैसा होइकरि भासता है, यह सृष्टि जो तेरे भर्त्ताको भासि आई है, सो दृढ संकल्पके भावते भासि आई है, थोडे कालकरि बहुत भ्रम होइकरि भासता है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! जहां ब्राह्मणको मृतक हुए आठ दिन व्यतीत भये है, तिस सृष्टिको हम किस प्रकार देखैं ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जब तू योगाभ्यास करै तब देखै, अभ्यासविना देखनेको समर्थ न होवैगी, काहेते जो वह सृष्टि चिदाकाशविषे फुरती है ॥ जब तू चिदाकाशविषे अभ्यास करिकै प्राप्त होवैगी तब तुझको सब सृष्टि भासि आवैगी, वह जो सृष्टि है सो औरके संकल्पविषे है, जो उसके संकल्पविषे प्रवेश करै तब उसकी सृष्टि भासै, अन्यथा नहीं भासती, जैसे एकके स्वप्नको दूसरा नहीं जानि सकता तैसे औरकी सृष्टि नहीं भासती, जब तू अंतवाहकरूप होवै तब उस सृष्टिको देखै ॥ जबलग आधिभौतिक जो है, स्थूल पंचतत्त्वोंका शरीर, तिसविषे अभ्यास है, तबलग उसको न देख सकैगी, काहेते जो निराकारको निराकार ग्रहण करता है, निराकारको आकार नहीं ग्रहण करि सकता, ताते यह जो आधिभौतिक देह सो भ्रम है, इसको त्यागिकरि चिदाकाश सत्ताविषे स्थित होहु ॥ जैसे पक्षी आलयको त्यागिकरि आकाशविषे उड़ता है तब इच्छा होवै तहां चला जाता है तैसे चित्तको एकाग्र करिकै स्थूल शरीरको त्याग देहु अरु योगअभ्यासकरि आत्मसत्ताविषे स्थित होहु, जब आधिभौतिकको त्यागिकरि चिदाकाशविषे अभ्यासके बलते स्थित होवैगी, तब आवरणते रहित होवैगी, बहुरि जहां इच्छा करैगी, तहां चली जावैगी, जो कछु देखा चाहैगी, सो देखैगी ॥ हे लीले ! हम सदा तिस चिदाकाशविषे

स्थित है, हमारा वपु चिदाकाश है, इसकारणते हमको आवरण कोऊ रोक नहीं सकता ॥ हमसारखे जो उदार हैं तिनको सदा स्वरूपविषे स्थिति है अरु सदा निवारण है, कोई कार्य हमको आवरण नहीं करि सकता;हम स्वइच्छित है,जहां गया चाहे, तहां जाते है, सदा अतवाहकरूप हैं, अरु तू अवलग आधिभौतिकरूप है, इसकारणते वह सृष्टि तुझको नहीं भासती अरु तू वहां जाय भी नहीं सकती ॥ हे लीले ! अपनाहीं जो संकल्प मनो राज्य होता है, तिसविषे चित्तकी वृत्ति लगीहै, तिसविषे काल यह अपना शरीर नही भासता तो औरका कैसे भासे ? जव तुझको अंतवाहकका दृढ अभ्यास होवे, अरु आधिभौतिक स्थूल शरीरकी ओर ते वैराग्य होवे, तव आधिभौतिकता मिटि जावैगी, काहेते जोआगेही सव सृष्टि अतवाहकरूप है, सकलपकी दृढता करिके आधिभौतिक भासता है, जैसे जल दृढ शीततांकरिके वर्फरूप हो जाता है, तैसे अंतवाहकते आधिभौतिक हो जाते है, प्रमादरूप सकलपते वास्तवते कछु हुआ नहीं, जव वही सकलप उलट करि सूक्ष्म अतवाहककी ओर आता है, तव आधिभौतिकता मिटि जाती है, अतवाहकता आन उदय होती है जव इसप्रकार तुझको निवारणरूप उदय होवैगा, तव देखनेमात्र अरु जाननेविषे यत्न कछु न होवैगा, साकार साथ निराकारको ग्रहण नहीं करि सकता, निराकारकी एकता निराकार साथ होती है, अन्यथा नही होती, जव तू अतवाहकरूप होवैगी, तव उसकी सकलपसृष्टिविषे तेरा प्रवेश होवैगा हे लीले ! यह जगत् सकलपभ्रममात्र है, वास्तवते कछु हुआ नही॥एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, द्वैत कछु है नहीं ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! जो एक अद्वैत आत्मसत्ता है, तव कलना यही दूसरी वस्तु क्या हुई यह कहो? देव्युवाच ॥ हे लीले! जैसे स्वर्णविषे भूषण कछु वस्तु नहीं, जैसे सीपीविषे रुपा दूसरी वस्तु कछु नहीं, जेवरीविषे सर्प नहीं, तैसे कलना भी कछु वस्तु नही॥ एक अद्वैत आत्मसत्ता सहज ज्योंकी त्योंही स्थित है,तिसविषे नानात्व भासता है, सो भ्रममात्र है, वास्तव अपना आप एक अनुभवसत्ता है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! जो एक अनुभवसत्ता है,अरु मेरा अपना आप है, तो मैं एता काल क्यों भ्रमती रही ?॥ देव्युवाच॥ हे लीले ! अनि-

चार भ्रमकरिकै भ्रमती रही है, विचार कियेते भ्रम शांत हो जाता है, सो भ्रम भी अरु विचार भी दोनों तेरा स्वरूप है, तूहीते उपजा है, अरु जब तुझको अपना विचार होवै, तब भ्रम निवृत्त हो जावेगा, जैसे दीपकके प्रकाशकरि अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे विचारकरि द्वैतभ्रम नष्ट हो जावेगा, जैसे जेवरीके जाननेते सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, अरु सीपीके जाननेते रूपाभ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे आत्माके जाननेते आधिभौतिक भ्रम शांत हो जावैगा, जब दृश्यको अत्यंताभाव जानके दृढ वैराग्य करिये, अरु आत्मस्वरूपका दृढ अभ्यास होवै, तब आत्माका साक्षात्कार होवै, भ्रम शात हो जावै, इसकर कल्याण हो जावै ॥ हे लीले ! जब दृश्य जगत्‌विषे वैराग्य होता है, तब वासना क्षय हो जाती है, वासना क्षय हुवे शाति प्राप्त होती है ॥ हे लीले ! तू आत्मसत्ताका अभ्यास कर, तब जगत्भ्रम शांत हो जावैगा, भ्रम भी कछु वस्तु नहीं, देह आदिक भ्रम भी कछु हुआ नहीं, जैसे जेवरीके जाननेते सर्पका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके जाननेते देहादिकोका अत्यत अभाव जनाता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विश्रातिवर्णनं नाम पचदश सर्गः १५

षोडशः सर्गः १६.

विज्ञानाभासवर्णनम् ।

देव्युवाच ॥ हे लीले ! जेते कछु शरीर तुझको भासते हैंसो स्वप्नपुरकी नाई है, जैसे स्वप्नविषे शरीर भासता है, जब स्वरूपविषे स्मृति होती है, तब स्वप्नका शरीर वास्तव नहीं भासता, जैसे संकल्पके त्यागेते सकल्पशरीर भासना नहीं, तैसे बोधकालविषे यह शरीर भासता नहीं, जैसे मनोराज्यके त्यागे मनोराज्यका शरीर भासता नहीं, तैसे यह शरीर भी भासता नहीं, जब स्वरूपका ज्ञान होवै तब यह भी वास्तव न भासेगा; जैसे स्वरूपके स्मरण हुए स्वप्नशरीर शात हो जावै, तैसे वासनाके शांत हुए जाग्रत् शरीर भी शांत हो जाता है, जैसे स्वप्नका देह अभाव ज्ञानते असत् होता है, तैसे जाग्रत शरीरकी भावना त्यागेते असत् भासता है,

इसके नष्ट हुए अतवाहक देह उदय होवैगा, जैसे निद्राकरिकै स्वप्नविषे रागद्वेषको पावता है, जब पदार्थोंकी वासना बोधकर निर्बीज होती है, तब उनते मुक्त होता है, तैसे जिस पुरुषकी वासना जाग्रत् पदार्थोंविषे नष्ट भई है, सो पुरुष जीवन्मुक्त पदको प्राप्त होता है, जब उसविषे बहुरि वासना भी दृष्ट आवे, तब वह वासना भी निर्वासना है, जो सर्व कल्पनाते रहित है, तिसका नाम सत्ता सामान्य है ॥ हे लीले! जिस पुरुषने वासना रोकी है, अरु अज्ञान निद्राकरि आवर्या हुआ है, तब उसको सुषुप्तिरूप जान, उसकी वासना सुषुप्त है, अरु जिसकी वासना प्रगट है, जागृतरूपकरि विचरती है, तिसको अधिक मोहकरि आवर्या जानिये; जो पुरुष चेष्टा करता दृष्ट आता है, अरु जिसकी अतरवासना नष्ट भई है, तिसको तुरीया जान ॥ हे लीले! जो पुरुष प्रत्यक्ष चेष्टा करता है, अरु अंतरवासनाते रहित है, सो जीवन्मुक्त है, जिस पुरुषका चित्त सत पदको प्राप्त भया है, तिसको जगत्की वासना नष्ट हो जातीहै, जो वासना फुरती भासती है, तो भी सत्य जानके नहीं फुरती, जब शरीरकी वासना नष्ट होती है, तब आधिभौतिकता नष्ट हो जाती है, अतवाहकता आन प्राप्त होती है, जैसे बर्फकी पुतली सूर्यके तेज लागेते जलरूप होइ जाती है तैसे अधिभूतकता क्षीण हो जाती है,अतवाहकता प्राप्त होती है, अब अतवाहकता प्राप्त भई, इसका शरीर अमांसमय चित्तरूप होता है अरु सर्वका ज्ञान इसको होइ आवता है अपने जन्मांतरोंका ज्ञान भी होइ आवता है, व्यतीत सृष्टिका ज्ञान भी होइ आवता है, अरु जहाँ जानेकी इच्छा करे तहाँ जाय प्राप्त होता है, किसी सिद्धिके मिलनेकी इच्छा करे, अथवा कोई देखनेकी इच्छा करे, सब कछु सिद्ध होता है, परतु अतवाहक विना शक्ति नहीं होती, जब इस देहमों तेरा अहभाव उठेगा, तब सब जगत् तुझको प्रत्यक्ष भासेगा ॥ हे लीले! जब आधिभौतिक शरीरकी वासना नष्ट भई, तब अतवाहक देह होती है? जब अतवाहकविषे स्थिति होती है, तब औरके सकल्पकी सृष्टि भासती है, ताते वासना घटावनेका यत्न कर, जब वासना नष्ट होवैगी, तब तू जीवन्मुक्त पदको प्राप्त होवैगी ॥ हे लीले! जबलग तुझको पूर्ण बोध नहीं

प्राप्त भया, तवलग देहको यहाँ स्थापन करि वह सृष्टि चलही करि देख, अंतवाहक शरीर साथ मांसमय स्थूल देहका व्यवहार सिद्ध नहीं होता, तैसे स्थूल देहसाथ सूक्ष्म कार्य नहीं होता, ताते अंतवाहक शरीरका अभ्यास कर, जब अभ्यास करैगी तब वह सृष्टि देखनेको समर्थ होवैगी ॥ हे लीले ! जैसे अनुभवते संस्थित सो मैने तुझको कही है, यह वार्ता बालक भी जानते हैं, जो वर अरु शापकी नाई नहीं; जब अपना अभ्यास करैगी, तब बोधकी प्राप्ति होवैगी॥ हे लीले ! सब जगत् अंतवाहकरूप है, अर्थ यह जो संकल्परूप अबोधरूप संकल्पके अभ्यास करिकै आधिभौतिक उत्पन्न हुआ है तिसकरिकै संसारकी वासना दृढ भई है, जन्म मरण आदिक जोविकार है, सो चित्तविषे पडे भासते हैं, जीव न मरता है, न जन्मता है, जैसे स्वप्नविषे जन्ममरण भासते है, जैसे संकल्प करिकै भ्रम भासता है, तैसे जन्ममरण भ्रम करिकै भासता है, जब आत्मपदका अभ्यास करैगी; तब यह विकार मिट जावैगा, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! तुमने परम निर्मल उपदेश मुझको कहा है, जिसके जाननेते दृश्यविषूचिका निवृत्त होती है, सो अभ्यास क्या है, बोधका साधन कैसे होता है, अरु अभ्यास पुष्ट कैसे होता है, अरु पुष्ट होनेसों फल क्या होता है ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जो कछु कोऊ करता है, जिस कालविषे, सो अभ्यासविना सिद्ध नहीं होता, सबका साधक अभ्यास है, ताते तू ब्रह्म अभ्यास कर ॥ हे लीले ! चित्तविषे आत्मपदकी चितवना होवै, कथन भी आत्माका होवै, परस्पर बोध भी आत्माका होवै, प्राणकी चेष्टाभी आत्माविषे होवै, मनन भी आत्मपदका होवै, इसका नाम ब्रह्माभ्यास कहते है, बुद्धिमान् चिंतना किसको कहते हैं, जो शास्त्र अरु गुरुते महावाक्य श्रवण किये हैं, तिनको युक्तिपूर्वक विचारना, अरु कथन उसको कहते हैं, जो शिष्यको उपदेश करना अन्योन्य परस्पर बोध करना, समान धर्म निश्चय चर्चा निर्णय करना, इन तीनोंमें परायण रहना, तिसका नाम बुद्धिमान् ब्रह्म अभ्यास कहते हैं; जिन पुरुषोंके पाप अंतको प्राप्त भये हैं, अरु पुण्य बडे हैं; सो रागद्वेषते मुक्त भये हैं, तिनको तू ब्रह्मसेवक जान ॥

हे लीले! जिन पुरुषोंको रात्रिदिन अध्यात्मशास्त्रकी चितवनाविषे व्यतीत होते हैं, अरु वासनाको प्राप्त नहीं हैं, तिनको ब्रह्माभ्यासी जान वह ब्रह्म अभ्यासविषे स्थित है॥ हे लीले! जिनकी भोगवासना क्षीण भई है अरु संसारके अभावकी भावना करते हैं, ऐसे जो विरक्तचित्त महात्मा पुरुष भव्यमूर्त्ति हैं, सो शीघ्रही आत्मपदको प्राप्त होते हैं, जिनकी बुद्धि वैराग्यरूपी रंगसाथ रंगी है, अरु आत्मानंदकी ओर वृत्ति धावती है, ऐसे जो उदार आत्मा है, सो ब्रह्मअभ्यासी कहाते हैं॥ हे लीले! जिन पुरुषोंने जगत्का अत्यंत अभाव जाना है, जो यह जगत् आदिते उत्पन्न हुआ नहीं ऐसे जानके दृश्यको असत् जानके त्यागते हैं, अरु परमतत्त्वको सत्य जाना है इस युक्तिविषे अभ्यास करते हैं, सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं, जिस पुरुषको दृश्य असंभवका बोध हुआ है, रागद्वेषते रहित है, इस जगत्में मैं हौं इस बुद्धिका भी अभावकरिकै परमात्मपदविषे प्राप्त करते हैं सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं॥ हे लीले! दृश्यके अभाव जानेविना रागद्वेष निवृत्त नहीं होता॥ रागद्वेषबुद्धि लोकविषे दुःखोंको प्राप्त करती है, अरु जिसको दृश्यकी असंभवबुद्धि प्राप्त भई है, तिसको ज्ञेय जो परमात्मतत्त्व है, तिसका ज्ञान प्राप्त होता है, जब दृढअभ्यास तिस पदविषे होता है, तब परमानंद निर्वाणपदको प्राप्त होता है, इस निमित्त यत्न करता है, सो प्राकृत है॥ हे लीले! बोधका साधन अभ्यास है, अरु अभ्यास शास्त्रते होता है, अरु प्रयत्नकरि पुष्ट होता है, पुष्ट हुए आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है॥ हे लीले! इनका नाम ब्रह्माभ्यासी ब्रह्मका सेवक कहाते हैं, सो तीन प्रकारके हैं, एक उत्तम है, एक मध्यम है, एक प्राकृत है, उत्तम अभ्यासी वह है, जिसको बोधकला उत्पन्न हुई है, अरु दृश्यका असंभवबोध हुआ है, सो उत्तम है, अरु जिसको दृश्यका असंभवबोध हुआ है, अरु बोधकला जो नहीं उपजी तिसके अभ्यासविषे है, सो मध्यम है अरु जिसको दृश्यका असंभव नहीं हुआ अरु सदा यही हृदयविषे रहता है, जो दृश्यका असंभव होवै, ताते जिसप्रकार मैं तुझको अभ्यास कहा है तैसे अभ्यास कियेते तू परमपदको प्राप्त होवैगी॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! अज्ञानरूपी निद्राविषे यह जीव शयन कर रहा है,

तिसकरि जगत्को नानाप्रकार देखता है, तैसे अविद्यारूपी निद्राते लीलाको विवेकरूपी वचनोंके जलकी वर्षा करिकै देवीने जगाई, तब अज्ञानरूपी निद्रा तिसकी नष्ट हो गई; जैसे शरत्कालविषे मेघकी कुहड नष्ट हो जाती है, तैसे लीलाका अज्ञान नष्ट भया ॥ ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इस प्रकार जब मुनीश्वरने कहा, तब सायंकालका समय हुआ, तब सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गई, सूर्यकी किरणै जब उदय भई, तब बहुरि आय स्थित भये ॥

इति श्रीयोगवा० उत्प० विज्ञानाभ्यासवर्णन नाम षोडश. सर्गः ॥ १६ ॥



सप्तदशः सर्गः १७

लीलाविज्ञानदेहाकाशसमागमनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार अर्द्धरात्रिके समय देवी अरु लीलाका संवाद हुआ, सब लोक सहेलियां बाहर सोए पडे थे, लीलाका भर्ता फूलोंविषे दाबा हुआ था, तिसके पास दिव्य वस्त्र पहिरे हुए चंद्रमाकी नाईं है कांति जिसकी ऐसी सुंदर देवियां सर्व कलनाको त्यागके अंगोंको संकोच करिकै समाधिविषे स्थित भई, मानो रत्नके स्तंभसो पुतलिया उत्कीर्णकी स्थित हैं; अंतःपुर भी तिनके प्रकाशकरि प्रकाशमान भया है, बहुरि कैसी हैं, मानों कागजऊपर मूर्त्तियाँ लिख छोडी हैं, इसप्रकार सब दृश्यकलनाको त्यागिकै निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भई; जैसे कल्पवृक्षकी लता दूसरी ऋतुके आएते आगले रसको त्यागिकै दूसरी ऋतुके रसको अंगीकार करती है, तैसे दृश्यभ्रमको त्यागिकै आत्मतत्त्वविषे स्थित भई हैं, तब अहंताते आदि लेकरि जो दृश्यभ्रम है, सो तिनका शांत हो गया, दृश्यरूपी पिशाचके शांत हुएते निर्मल भावको प्राप्त भई, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल भावको प्राप्त भई ॥ हे रामजी ! यह जगत् शशेके शृंगकी नाईं असत है; जो आदि न होवै अरु अंत भी न रहै; जो वर्तमान दृष्ट आवै तौ भी असत जानिये ॥ जैसे मृगतृष्णाका जल

असत्य है, तैसे यह जगत् असत्य है, ऐसे जब स्वभावसत्ता हृदयविषे चिदाकाशविषे स्थित भई, तब अन्यसृष्टिके देखनेका जो संकल्प था सो आन फुरा, तिस फुरणेकरि आकाशरूप देह साथ चिदाकाशविषे उडी, सूर्यचंद्रमाके मंडलको लंघ गई, दूरते दूर गई, अनंत योजनपर्यंत स्थान लंघिगई, तब बहुरि भूतोकी सृष्टि देखी, तिसविषे प्रवेश किया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलाविज्ञानदेहाकाशसमागमनवर्णन नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

आकाशगमनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार परस्पर हाथ पकडिकरि दूरते दूर चली जावें, मानो एकही आसनपर दोनों चली जाती हैं मेघोके स्थान लंघे, अग्निके पवनके वेग नदियोकी नाईं चलते थे, तहाते लंघिगईं, जहा निर्मल आकाशही भासै तहाते आगे गईं, कहूं चंद्रमासूर्यका प्रकाशही नहीं, कहू चंद्रमासूर्यका प्रकाश है, देवता विमानोंपर आरूढ फिरते हैं सिद्ध उडते फिरै हैं, विद्याधर किन्नर गंधर्व गायन करते हैं, कहूं सृष्टि उत्पन्न होती है, कहू प्रलय पडी होती है, शिखाधारी तारे उपद्रवकर्त्ता उदय हुए हैं, कहू प्राणी अपने व्यवहारविषे लगे हुए हैं, कहू अनेक महापुरुष ध्यानस्थित हैं, कहूं हस्ती विचरते हैं, कहू और पशुपक्षी विचरते हैं, कहू दैत्य डाकिनी विचरते हैं, जोगिनियां लीला करती हैं, कहू अंध गूँगे रहते हैं; कहू गीध पक्षी सिंह घोडेके मुखवाले गण विचरते हैं, कहू वरुण, कुबेर, इंद्र, यमादिक लोकपाल बैठे हैं, अरु बडे पर्वत सुमेरु मंदराचल आदिक देखे, कहू अनेक योजनोंपर्यंत वृक्षही चले जाते हैं, कहू अनेक योजनपर्यंत अविनाशी प्रकाश है, कहूं अनेक योजनपर्यंत अविनाशी अंधकार है; कहूं जलकरि पूर्ण स्थान हैं, कहू सुंदर पर्वतोंपर गंगाके प्रवाह चले जाते हैं, कहू सुंदर बगीचे बावडियां ताल हैं, तिनोंविषे कमल लगे हुए हैं, कहूं भूतभविष्यत होना दृष्ट आवै है,

कल्पवृक्षके वन है, चिंतामणि अनंत हैं, कहूं शून्य स्थान हैं, भूत प्राणी कोऊ नहीं, कहूं देवता अरु दैत्यके युद्ध बड़े होते हैं, नक्षत्रचक्र पड़े फिरते है, कहूं प्रलय पडा होता है, देवता विमानोंसहित पडे फिरते है, कहूं स्वामिकार्तिकके राखे हुए मोरोंके समूह विचरते है, कहूं कुक्कुट मोर आदिक पक्षी विद्याधरोंके वाहन पडे विचरते है, कहूं यमके वाहन महिषोंके समूह विचरते है, कहूं पाषाणसंयुक्त पर्वत पडे है, कहूं भैरवके गण नृत्य करते है, कहूं विद्युत् चमकती है, कहूं कल्पतरु है, मंद मंद शीतल पवन सुगंधसमेत चलता है, कहूं पर्वत रत्न अरु मणिकरि शोभते हैं ॥ हे रामजी ! इत्यादिक जगतोंकी जाल तिन देवियोंने देखी, जीवरूपी मच्छर त्रिलोकरूपी गुलरोंके अनंत वृक्ष देखे, तिसते अनंतर भूमंडलको देखके महीतलविषे प्रवेश किया ॥

इति श्रीयोगवा० उत्प० लीलोपा० आकाशगमनवर्ण० अष्टादशः सर्गः ॥१८॥

एकोनविंशः सर्गः १९.

भूलोकगमनवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब देवियां भूतल ग्रामविषे आवती भई, ब्रह्मांडखप्परविषे प्रवेश किया, कैसा है ब्रह्मांड, त्रिलोकीरूपी कमल है, तिसकी अष्ट पखुडियां है, तिसविषे पर्वतरूपी डोडा है; चेतनतासुगंध है, नदियां समुद्र तिसके अंबुकण है, जब रात्रिरूपी भँवरे आन विराजते है तब वह कमल संकुचाय जाते है, पातालरूपी कीचडविषे लागे है, पत्ररूपी मनुष्य देवता है, दैत्य राक्षस तिसके कंटक है, अरु डोडी उसकी शेषनाग है, जब वह हलता है, तब भूचालन होता है, दिनकरिके प्रकाशता है, ऐसा जो कमल है, तिसका इसप्रकार विस्तार है, एक लाख योजन जंबूद्वीप है, तिसके परे दूना खारा समुद्र है, तिस जलकरि द्वीप आवरण किया है, जैसे हाथको कंकण होता है, तिसते आगे दूना शाकद्वीप है, तिसते दूना क्षीरसमुद्र है तिसकरि वेष्टित है, तिसते आगे दूनी पृथ्वी है, तिसका नाम कुशद्वीप है; तिसते दूने घृतके समुद्रकरि वेष्टित है,

बहुरि दूनी पृथ्वी है, तिसका नाम क्रौंचद्वीप है, तहां दूना दधिका समुद्र है, तिसकरि वेष्टित है, बहुरि शाल्मली द्वीप है, तिसते दूना मधुका समुद्र है, बहुरि प्लक्षद्वीप है, तिसते दूना इक्षुरसका समुद्र है, बहुरि दूना पुष्करद्वीप है, तिसते दूना मीठे जलका समुद्र है, इसप्रकार सप्त समुद्र हैं, तिनते परे दशकोटि योजन कंचनकी पृथ्वी प्रकाशवान् है, तिसते आगे लोकालोक पर्वत है, तिस ऊपर बड़ा शून्य वन है, तिसते परे एक बड़ा समुद्र है, तिसते परे दशगुणी अग्नि है, अग्निते परे दशगुणी वायु है, वायुते परे दशगुण आकाश है, आकाशते परे लक्ष योजनपर्यंत घनरूप ब्रह्माडका कंध है; तिसको देखके दोनों फिरि आईं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भूलोकगमनवर्णनं नाम एकोनविंश सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०

सिद्धदर्शनहेतुकथनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तहाते फिरिके वसिष्ठ ब्राह्मण ओर अरुंधतीका मंडल देखत भई, बहुरि ग्राम अरु नगरकी शोभा देखी जो जाती रही है, जैसे कमलोंपर गडेकी वर्षा होवे, अरु कमलकी शोभा जाती रहे, जैसे वनमे अग्नि लगे अरु वनकी लक्ष्मी जाती रहे, जैसे अगस्त्य मुनिनि समुद्रको पान करि लिया, अरु समुद्रकी शोभा जाती रही, जैसे तेल अरु वातीके पूर्ण भयेते दीपकका प्रकाश अभाव हो जाता है, जैसे वायुके चलनेकरि मेघका अभाव होता है, तैसे ग्रामकी शोभाका अभाव देखती भई; जो कछु प्रथम शोभा थी, सो सब नष्ट हो गई थी, दासिया रुदन करती थीं, तब लीलाराणी जिसने चिरकाल तप ज्ञानका अभ्यास किया था तिसको यह इच्छा उपजी कि, मैं अरु देवी मेरे बांधव देखें, तब लीलाके सत् संकलपकरिके बाधवलोक देखते भये, कहा जो इह वनदेवी गौरि अरु लक्ष्मी आई है; इनको नमस्कार करिये ॥ हे रामजी ! तब उनको बाने देखके ज्येष्ठशर्मा जो वसिष्ठका बड़ा पुत्र था, तिसने फूलोंकरि दोनोंके चरण पूजे, अरु कहा; हे देवि ! तुम्हारी जय होवो, हे देवियो !

यहां ब्राह्मण अरु ब्राह्मणी रहते थे तिनका परस्पर स्नेह था, मेरे पिता अरु माता थे, सो अब दोनों कालके वश स्वर्गको गए हैं, तिसकरि हम बहुत शोकवान् भए है, हमको त्रैलोक शून्य भासते है, हम सबही रुदन करते पड़े है, वृक्षोंपर जो पक्षी रहते थे, सोभी उनको मृतक देखके वनको चले गये पर्वतकी कंदरानसों पवन आता है, सो उन कंदरासों रुदन कर आताहै, नदी जो वेगकरि आतीहैं,अरु तरग उछलतेहैं, मानो वह भी रुदन करतेहै अरु कमलोंके ऊपर जो जलके कण हैं, मानों कमलोंके नयनसे रुदनकरि जलचलता है, अरु दिशाते जो उष्ण पवन आता है, सो मानों दिशा भी उष्ण श्वासोंको छोडती हैं॥ हे देवियो। हम सबही शोकको प्राप्त भए हैं, तुम कृपा करिके हमारा शोक निवृत्त करो काहेते कि, महापुरुषोंका समागम निष्फल नहीं होता, अरु महापुरुषोंका शरीर परोपकारके निमित्त है॥ हे रामजी! जब इसप्रकार ज्येष्ठशर्माने कहा; तब लीलाने कृपा करिके शिरऊपर हाथ रक्खा, लीलाके हाथ रखने करि उसका सब ताप नष्ट हो गया, अंतःकरण शांतिको प्राप्त भया, जैसे ज्येष्ठ आषाढके दिनोंविषे पृथ्वी तप्त हुई, अरु तिसपर मेघकी वर्षा होती है, तब शीतल हो जाती है, तैसे उसका अंत:करण शीतल भया, अरु जो वहांके निर्धन थे, सो तिनके दर्शन करनेकरि लक्ष्मीवान् भए, अरु शांतिको प्राप्त भए, शोक नष्ट हो गया, वृक्ष सूखे हुए थे, सो तिस समय फलसहित हो गये॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! लीलाका पुत्र जो ज्येष्ठशर्मा था; तिसको लीलाने मातारूपी होइकरि दर्शन क्यों न दिया? सो कारण मुझको कहो॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो, स्पंद संवेदन हुई है, सो संवेदन भूतोंका पिंडाकार होई भासती है, अरु वास्तवते आकाशरूप है, भ्रांतिकरिके पृथ्वी आदिक भूत भासते हैं; जैसे बालकको छायाविषे भ्रमकरिके वेताल भासता है; तैसे संवेदनके फुरणेकरि पृथिव्यादिक भूत भासते है, जैसे स्वप्नविषे भ्रमकरिके पिंडाकार भासते हैं, अरु जागेते आकाशरूप भासते हैं, तैसे भ्रमके नष्ट हुए पृथ्वी आदि भूत आकाशरूप भासते हैं; जैसे स्वप्नके नगर स्वप्नकालविषे अर्थाकार भासते हैं, अग्नि जलावती है, जागेते सब शून्य होइ जाती है, तैसे अज्ञा-

के निवृत्त हुएते यह जगत आकाशरूप होइ जाता है, जैसे मूर्च्छाविषे नानाप्रकारके नगर भासते है, जैसे परलोक जगत् भासता है, जैसे आकाशविषे तरवरेभासते है अरु मुक्तमाला भासती है, जैसे नौकापर बैठेको तटके वृक्ष चलते भासते है, तैसे यह जगत् भ्रमकरिकै अज्ञानीको भासता है,अरु जो ज्ञानवान् है तिसको सब चिदाकाश भासता है,जगत्की कल्पना कोऊ नहींफुरती, ताते लीला उसको पुत्रभाव अरु आपको माताभाव कैसे देखै? उसका अहं अरु ममभाव नष्ट होगया था, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट होता है, तैसे लीलाका अज्ञानभ्रम नष्ट हो गया था, सब जगत् उसको चिदाकाश भासता था, इस कारणते आपको माताभाव न जानत भई, जो उसविषे कछु ममता होती तब उसको माताभाव कर देखती, परंतु उसको यह अहंममभाव न था, इस कारणते माताभाव न देखा, न देवीरूप देखा, अरु शिरपर हाथ रक्खा,अर्थ यह जो सतोंका दयालु स्वभाव है, और मातापुत्रकी कल्पना उसविषे कछु न थी, इस कारणते उसके शिरपर हाथ रक्खा, और कल्पना कछु न थी, केवल आत्मरूप जगत् उसको भासा था ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सिद्धदर्शन हेतुकथन नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥



एकविंशतितमः सर्गः २१.

जन्मान्तरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिस पर्वत ऊपर जो ग्राम था, अरु तिसविषे वसिष्ठ ब्राह्मणका गृह था, तिस अत पुरसों देवी अरु लीला दोनों अंतर्धान हो गई, तब वहाँके लोक कहने लगे कि, वनदेवियोंने हमारे ऊपर बडी कृपा करिकै दु ख नाश किये, अरु अंतर्धान भई ॥ हे रामजी ! तब दोनों आकाशविषे आकाशरूप अंतर्धान भई, अरु परस्पर संवाद करत भई, जैसे स्वप्नविषे सवाद होता है, तैसे इनका परस्पर संवाद हुआ ॥ देवीने कहा, हे लीले ! जो कछु जानना था, सो तुझने जान्या है, क्यों ? अरु जो कछु देखना था सो देखा क्यों ? यह ब्रह्मकी

शक्ति है, और कछु पूछना होवै सो पूछो ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! मेरा जो भर्त्ता है विदूरथ, तिसके पास मैं गई, तब उसने मेरेको क्यों न देखी, अरु मेरी इच्छाते ज्येष्ठशर्मा आदिने देखी सो कारण कहो ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! तब तेरा द्वैतभ्रम नष्ट भया न था। अरु अद्वैतको अभ्यासकरि प्राप्त न भई थी, जैसे धूपमें छायाका सुख नहीं अनुभव होता, तैसे तुझको अद्वैतका अनुभव न था ॥ हे लीले ! जैसे ऋतुका फल मधु होता है, जो ज्येष्ठ आषाढ विदित होता है, अरु वर्षा आई नहीं तैसे तू थी, अर्थ यह जो संसारमार्गको लघी थी; अरु अद्वैत तत्त्वको प्राप्त न भई थी, तिसकरि आत्मशक्ति तुझको प्रत्यक्ष न भई थी,ताते आगे तेरा सत्संकल्प नथा अरु अब तू सत्संकल्प हुई है,अब तैंने सत्संकल्प किया है, जो तुझको ज्येष्ठशर्माने देखी, तिसकरि तुझको देखते भए, अब तू विदूरथके निकट जावै, तब पूर्ववत् तेरे साथ व्यवहार होवै ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! इस मंडप आकाशविषे मेरा भर्ता वसिष्ठ ब्राह्मण हुआ है ॥ बहुरि मृतक हुआ तब इसी लोक मंडप आकाशविषे उसको पृथ्वी लोक फुरि आया, पद्मराजा होत भया, चिरकालपर्यंत उसने चार द्वीपका राज्य किया, बहुरि मृतक हुआ, तब इसी मंडप आकाशविषे उसको जगत् भासा, अरु पृथ्वीपति हुआ, तिसका नाम विदूरथ भया ॥ हे देवि ! इसी मंडप आकाशविषे जर्जरीभाव अरु जन्म मरण हुआ, अरु अनंत ब्रह्मांड इसविषे स्थित हैं, जैसे संपुटविषे सर्सोंके दाने अनेक होवैं, तैसे इसविषे ब्रह्मांड मुझको समीपही भासते हैं। भर्ताकी सृष्टि भी मुझको अब अंतर भासती है,अब जो कछु तुम आज्ञा करो सो मैं करौं ॥ देव्युवाच ॥ हे भूतलअरुंधती ! तेरे जन्म तौ बहुत विदित भए हैं, अरु अनेक तेरे भर्त्ता हुए हैं तिनविषे यह जो तेरे भर्ता हैं, सो सब इस मंडपविषे हैं, एक वसिष्ठ ब्राह्मण था, सो मृतक हुआ है, तिसका शरीर तौ भस्म हो गया है, बहुरि पद्मराजा हुआ, सो तेरे मंडपविषे शव पडा है; अरु तीसरा भर्त्ता संसारमंडपविषे वसुधापति हुआ है, सो [illegible] कल्लोलकरि तिसकी चेतनता [illegible] था।

है, आत्मपदते विमुख हुआ है, अज्ञानकरिकै जानता है कि मैं ईश्वर हौ, मेरी आज्ञा सबके ऊपर चलती है, अरु मै बड़े भोगोंको भोगनेहारा हौं, मै सिद्ध हौं, बलवान् हौ ॥ हे लीले! ऐसे संकल्पविकल्परूपी जेवरी साथ बांधा हुआ है, अब तू किस भर्ताके पास चलती है! जहां तेरी इच्छा होवे तहां मै तुझको ले जाऊ जैसे सुंगधको वायु ले जाता है, तैसे मै तुझको ले जाऊगी ॥ हेलीले! जिस संसारमडलको तू समीप कहती है, सो चिदाकाशकी अपेक्षा करिकै समीप भासता है, अरु सृष्टिकी अपेक्षाकरि अनतकोटि योजनोका भेद है, अरु आकाशरूप है वपु तिनका, ऐसी अनंत सृष्टि पडी फुरती है, समुद्र अरु मदराचल पर्वत आदिक अनत है, तिन परमाणुविषे अनत सृष्टि चिदाकाशके आश्रय पडी फुरती है, चिद्अणु चिद्अणुकेविषे रुचिके अनुसार सृष्टि बडे आरभ करिकै दृष्ट आती है, अरु बडी स्थूल गिरि पृथ्वी दृष्ट आती है, अरु विचारकरि तौलिये तौ एक चावलके समान भी नहीं होती ॥ हे लीले! नानाप्रकारके रत्नोंकरि पर्वत भी दृष्ट आते है, अरु आकाशरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे चेतनका किंचन नानाप्रकारका जगत् दृष्टि आता है, तैसे यह जगत् चेतनका किंचन है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंकरि कछु उपजा नहीं ॥ हे लीले! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अपने आपविषे स्थित है, अरु जगत् आभास उपजता भी है, मिटि भी जाता है, जैसे नदीविषे नानाप्रकारके तरग उपजते भी है अरु लीन भी होते है, तैसे आत्माविषे जगत्जाल उपजती है, अरु नष्ट भी हो जाती है, अरु आत्मसत्ता इनके उपजनेविषे अरु लीन होनेविषे एकरस है, आभासरूप है, वास्तव कछु नहीं ॥ लीलोवाच ॥ हे माता! अब पूर्वकी मुझको सब स्मृति हुई है, प्रथम मे जो राजसी जन्म ब्रह्मते पाई हौ, तिसते आदिलेकरि नानाप्रकारके मैं अष्टशत जन्म पाई हौं, सो प्रत्यक्ष मुझको भासते हैं, प्रथम जो चिदाकाशते मेरा जन्म है, सो विद्याधरकी स्त्री भई हौं, तिस जन्मविषे जो कोऊ मेरा कर्म हुआ, तिसकरि मै भूतलविषे आन स्थित भई, तिसकरि दुःखी भई, बहुरि पक्षिणी भई, तहां जालविषे

फँसी तिसके अनंतर भिल्लीनी हुई हौं, कदंववनविषे विचरने लगी, वहुरि वनलता भई हौं, तहा गुच्छेही मेरे स्तन थे, अरु पत्र मेरे हाथ थे, तहां एक ऋपीश्वर मुझको हाथकर स्पर्श किया करता था, तिसकी पर्णकुटीमें मैं लता थी, तव मै मृतक भई, वहुरि मैं तिसके गृहविषे पुत्री भई, तहा जो मुझसे कर्म होवे सो पुरुपहीका कर्म होवे, तिसते मै वडी लक्ष्मीकरि सपन्न राजा भई, तहा मुझसों दुष्ट कर्म हुए, तिसकरि मे वंदरी भई, कुष्ठ अंगोंकरि अष्ट वर्ष मै वहां रही, वहुरि मै वलद हुई, मुझको दुष्टने खेतीके हलविषे जोडी, तिसकरि दु ख पाई वहुरि भमरी भई, कमलोंपर जायकरि सुगध लेती थी, वहुरि मृगी भई, चिरपर्यंत वनविषे विचरी, वहुरि एक देशका राजा भई, सौ वर्षपर्यंत वहां सुख भोगे, वहुरि कछुवाका जन्म लिया, वहुरि राजहसका जन्म लिया, इस प्रकार मै जन्मोंको धारती भई, अरु वडे कष्ट पाई ॥ हे देवि ! इत्यादिक अष्ट सौ जन्म पावत फिरी हौं; ससारसमुद्रविषे वासनाकरि घटीयंत्रकी नाई भ्रमी हौं ॥ हे देवि ! अव मै निश्चय किया है कि, आत्मज्ञानविना जन्मोंका अंत कदाचित् नहीं होता, तुम्हारी कृपातें अव निःसकल्प पदको पावती भई हौ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने जन्मांतरवर्णनं नाम एकविंशतितम: सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्ग २२.

गिरिग्रामवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वज्रसारकी न[illegible] द[illegible] अनंत कोटियोजनोंपर्यंत तिसका विस्तार था, ऐ[illegible] ऐसे ब्रह्मांडको दोनों कैसे लघती ग[illegible] वसिष्ठ
[illegible]ब्रह्मांड खपर कहा है, अरु[illegible]
[illegible]न लय गया है, सव अ[illegible]
सिष्ठ ब्राह्मणका गृह था, [illegible]

करत भया हौं ॥ हे रामजी! जब वसिष्ठ ब्राह्मण मृतक भया, तब उसी मंडपाकाशके कोणेविषे आपको चारों ओर समुद्रोंपर्यंत पृथ्वीका राजा जानत भया, जो मै राजा पद्म हौं, अरुंधतीको लीला देखता भया, जो मेरी स्त्री है, बहुरि मृतक भया, तब उसी आकाशमंडपविषे उसको और जगत्का अनुभव भया, आपको राजा विदूरथ जानत भया, सो तू देख जो कहां गया है, अरु क्या रूप है, उसी मंडप आकाशविषे उसको सृष्टिका अनुभव भया, ताते जो सृष्टि है सो उसी वसिष्ठके चित्तविषे स्थित है, तब देवी जो ज्ञप्तिरूप है तिसकी कृपाते अपनेही देहाकाशविषे लीला उडीहै, अंतवाहक देह जो आकाशरूप है, तिसकरिकै उडी है, ब्रह्मांडको लंघके बहुरि उसी गृहविषे आई, जैसे स्वप्नते स्वप्नांतरको प्राप्त होवै, तैसे देख आई, ताते गई कहा, अरु आई कहां? एकही स्थानविषे होयकै एक सृष्टिते अन्य सृष्टिको देखी है, अरु हे रामजी! इनको ब्रह्मांडके लंघ जाणेविषे कछु यत्न नही, काहेते कि, उनका शरीर अंतवाहकरूप है ॥ हे रामजी! मनकरि लँघना चहिए, तहा लघा जाता है, क्यों? तैसे वह प्रत्यक्ष लघियां हैं, सत्यसंकल्परूप हैं, अरु वस्तुते कहैं तौ कछु नही ॥ हे रामजी! जैसे स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकारके व्यवहारोंसहित बड़ी गंभीर भासती है, अरु आभासमात्र है, तैसे यह जगत् देखे हैं, न कोऊ ब्रह्मांड है, न कोऊ जगत् है, न कोऊ कुंड है, केवल चेतनमात्रका किंचन है, और बना कछु नही, जैसे चित्तसंवेदन फुरता है, तैसे आभास होइ भासता है, केवल वासनामात्रही जगत् है, पृथ्वीआदिक भूत कोऊ उपजा नही है, निरावरण ज्ञान आकाश अनंतरूप स्थित है, जैसे स्पंद अरु निस्पंद दोनोंरूप पवनही है, तैसे स्फुर अस्फुररूप आत्माही है, किंचनविषेभी ज्योंका त्यों है, शान्तरूपहै, सर्वरूप चिदाकाश है, जब चित्त किंचन होता है, तब आपही जगत्रूप हो भासता है, दूसरा कछु नहीं॥ जिन पुरुषोंने आत्माको जाना है, तिनको जगत्, आकाशते भी शून्य भासता है, अरु जिन्होंने नही जाना तिनको जगत वज्रसारकी नाईं दृढ भासता है, जैसे स्वप्नविषे नगर भासते है, तैसे यह जगत् है, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, जैसे सुवर्णविषे भूषण भासते है, तैसे आत्मा-

फँसी तिसके अनंतर भिल्लीनी हुई हौं, कदंबवनविषे विचरने लगी, बहुरि वनलता भई हौ, तहां गुच्छेही मेरे स्तन थे, अरु पत्र मेरे हाथ थे, तहां एक ऋषीश्वर मुझको हाथकर स्पर्श किया करता था, तिसकी पर्णकुटीमें मैं लता थी, तब मैं मृतक भई, बहुरि मैं तिसके गृहविषे पुत्री भई, तहां जो मुझसों कर्म होवे सो पुरुषहीका कर्म होवे, तिसते मै बडी लक्ष्मीकरि संपन्न राजा भई, तहा मुझसों दुष्ट कर्म हुए, तिसकरि मै वंदरी भई, कुष्ठ अगोंकरि अष्ट वर्ष मै वहा रही, बहुरि मै बलद हुई, मुझको दुष्टने खेतीके हलविषे जोडी, तिसकरि दुःख पाई बहुरि भमरी भई, कमलोंपर जायकरि सुगध लेती थी, बहुरि मृगी भई, चिरपर्यंत वनविषे विचरी, बहुरि एक देशका राजा भई, सौ वर्षपर्यंत वहां सुख भोगे, बहुरि कछुवाका जन्म लिया, बहुरि राजहसका जन्म लिया, इस प्रकार मै जन्मोंको धारती भई, अरु वडे कष्ट पाई ॥ हे देवि ! इत्यादिक अष्ट सौ जन्म पावत फिरी हौं, ससारसमुद्रविषे वासनाकरि घटीयंत्रकी नाईं भ्रमी हौं ॥ हे देवि ! अब मै निश्चय किया है कि, आत्मज्ञानविना जन्मोंका अंत कदाचित् नहीं होता, तुम्हारी कृपातें अब निःसकल्प पदको पावती भई हौ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने जन्मांतरवर्णनं नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः २२.

गिरिग्रामवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वज्रसारकी नाईं ब्रह्मांड खपर था, अनंत कोटियोजनोंपर्यंत तिसका विस्तार था, ऐसा ब्रह्माड खपर था, ऐसे ब्रह्मांडको दोनों कैसे लघती गईं ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वज्रसार ब्रह्मांड खपर कहां है, अरु कौन गया है ? न कोऊ वज्रसार ब्रह्माड है, न लघ गया है, सब आकाशरूप है, उसी पर्वतके ग्रामविषे जो वसिष्ठ ब्राह्मणका गृह था, तिसी मंडप आकाशविषे सृष्टिका अनुभव

करत भया हौं ॥ हे रामजी ! जब वसिष्ठ ब्राह्मण मृतक भया, तब उसी मंडपाकाशके कोणेविषे आपको चारों ओर समुद्रोंपर्यंत पृथ्वीका राजा जानत भया, जो मैं राजा पद्म हौं, अरुधतीको लीला देखता भया, जो मेरी स्त्री है, बहुरि मृतक भया, तब उसी आकाशमंडपविषे उसको और जगत्का अनुभव भया, आपको राजा विदूरथ जानत भया, सो तू देख जो कहां गया है, अरु क्या रूप है, उसी मंडप आकाशविषे उसको सृष्टिका अनुभव भया, ताते जो सृष्टि है सो उसी वसिष्ठके चित्तविषे स्थित है, तब देवी जो ज्ञप्तिरूप है तिसकी कृपाते अपनेही देहाकाशविषे लीला उडीहै, अंतवाहक देह जो आकाशरूप है, तिसकरिके उडी है, ब्रह्मांडको लंघके बहुरि उसी गृहविषे आई, जैसे स्वप्नते स्वप्नांतरको प्राप्त होवै, तैसे देख आई, ताते गई कहां, अरु आई कहां ? एकही स्थानविषे होयकै एक सृष्टिते अन्य सृष्टिको देखी है, अरु हे रामजी ! इनको ब्रह्मांडके लंघ जाणेविषे कछु यत्न नही, काहेंते कि, उनका शरीर अंतवाहकरूप है ॥ हे रामजी ! मनकरि लंघना चहिए, तहां लंघा जाता है, क्यों ? तैसे वह प्रत्यक्ष लधियां हैं, सत्यसंकल्परूप हैं, अरु वस्तुते कहें तौ कछु नही ॥ हे रामजी ! जैसे स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकारके व्यवहारोंसहित बड़ी गंभीर भासती है, अरु आभासमात्र है, तैसे यह जगत् देखे है, न कोऊ ब्रह्मांड है, न कोऊ जगत् है, न कोऊ कुंड है, केवल चेतनमात्रका किंचन है, और बना कछु नहीं, जैसे चित्तसंवेदन फुरता है, तैसे आभास होइ भासता है, केवल वासनामात्रही जगत् है, पृथ्वीआदिक भूत कोऊ उपजा नही है, निरावरण ज्ञान आकाश अनंतरूप स्थित है, जैसे स्पंद अरु निस्पंद दोनोंरूप पवनही है, तैसे स्फुर अस्फुररूप आत्माही है, किंचनविषेभी ज्योंका त्यों है, शान्तरूपहै, सर्वरूप चिदाकाश है, जब चित्त किंचन होता है, तब आपही जगत्रूप हो भासता है, दूसरा कछु नहीं ॥ जिन पुरुषोंने आत्माको जाना है, तिनको जगत्, आकाशते भी शून्य भासता है, अरु जिन्होंने नही जाना तिनको जगत् वज्रसारकी नाई दृढ भासता है, जैसे स्वप्नविषे नगर भासते है, तैसे यह जगत् है, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, जैसे सुवर्णविषे भूषण भासते है, तैसे आत्मा-

फँसी तिसके अनंतर भिल्लीनी हुई हौं, कदंबवनविषे विचरने लगी, बहुरि वनलता भई हौ, तहां गुच्छेही मेरे स्तन थे, अरु पत्र मेरे हाथ थे, तहां एक ऋषीश्वर मुझको हाथकर स्पर्श किया करता था, तिसकी पर्णकुटीमें मैं लता थी, तब मैं मृतक भई, बहुरि मैं तिसके गृहविषे पुत्री भई, तहा जो मुझसों कर्म होवै सो पुरुषहीका कर्म होवै, तिसते मै बडी लक्ष्मीकरि सपन्न राजा भई, तहा मुझसों दुष्ट कर्म हुए, तिसकरि मै वंदरी भई, कुष्ठ अगोंकरि अष्ट वर्ष मै वहां रही, बहुरि मैं बलद हुई, मुझको दुष्टने खेतीके हलविषे जोडी, तिसकरि दु ख पाई बहुरि भमरी भई, कमलोंपर जायकरि सुंगध लेती थी, बहुरि मृगी भई, चिरपर्यंत वनविषे विचरी, बहुरि एक देशका राजा भई, सौ वर्षपर्यंत वहां सुख भोगे, बहुरि कछुवाका जन्म लिया, बहुरि राजहसका जन्म लिया, इस प्रकार मै जन्मोको धारती भई, अरु वडे कष्ट पाई ॥ हे देवि ! इत्यादिक अष्ट सौ जन्म पावत फिरी हौ, ससारसमुद्रविषे वासनाकरि घटीयंत्रकी नाई भ्रमी हौं ॥ हे देवि ! अव मै निश्चय किया है कि, आत्मज्ञानविना जन्मोंका अंत कदाचित् नहीं होता, तुम्हारी कृपातें अब नि'सकल्प पदको पावती भई हौ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने जन्मांतरवर्णनं नाम एकविंशतितम· सर्ग' ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः २२

गिरिग्रामवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वज्रसारकी नाई ब्रह्मांड खपर था, अनंत कोटियोजनोंपर्यंत तिसका विस्तार था, ऐसा ब्रह्मांड खपर था, ऐसे ब्रह्मांडको दोनों कैसे लंघती गई ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वज्रसार ब्रह्मांड खपर कहां है, अरु कौन गया है ? न कोऊ वज्रसार ब्रह्माड है, न लघ गया है, सब आकाशरूप है, उसी पर्वतके ग्रामविषे जो वसिष्ठ ब्राह्मणका गृह था, तिसी मडप आकाशविषे सृष्टिका अनुभव

करत भया हौं ॥ हे रामजी ! जब वसिष्ठ ब्राह्मण मृतक भया, तब उसी मंडपाकाशके कोणेविषे आपको चारों ओर समुद्रोंपर्यंत पृथ्वीका राजा जानत भया, जो मै राजा पद्म हौं, अरुंधतीको लीला देखता भया, जो मेरी स्त्री है, बहुरि मृतक भया, तब उसी आकाशमंडपविषे उसको और जगत्का अनुभव भया, आपको राजा विदूरथ जानत भया, सो तू देख जो कहां गया है, अरु क्या रूप है, उसी मंडप आकाशविषे उसको सृष्टिका अनुभव भया, ताते जो सृष्टि है सो उसी वसिष्ठके चित्तविषे स्थित है, तब देवी जो ज्ञप्तिरूप है तिसकी कृपाते अपनेही देहाकाशविषे लीला उडीहै, अंतवाहक देह जो आकाशरूप है, तिसकरिके उडी है, ब्रह्मांडको लघके बहुरि उसी गृहविषे आई, जैसे स्वप्नते स्वप्नांतरको प्राप्त होवै, तैसे देख आई, ताते गई कहां, अरु आई कहां ? एकही स्थानविषे होयकै एक सृष्टिते अन्य सृष्टिको देखी है,अरु हे रामजी ! इनको ब्रह्मांडके लघ जाणेविषे कछु यत्न नहीं, काहेते कि, उनका शरीर अंतवाहकरूप है ॥ हे रामजी ! मनकरि लँघना चहिए, तहां लघा जाता है, क्यों ? तैसे वह प्रत्यक्ष लघियां हैं, सत्यसंकल्परूप हैं, अरु वस्तुते कहें तौ कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जैसे स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकारके व्यवहारोंसहित बड़ी गंभीर भासती है, अरु आभासमात्र है, तैसे यह जगत् देखे है, न कोऊ ब्रह्मांड है, न कोऊ जगत् है, न कोऊ कुड है, केवल चेतनमात्रका किंचन है, और बना कछु नहीं, जैसे चित्तसंवेदन फुरता है,तैसे आभास होइ भासता है, केवल वासनामात्रही जगत् है, पृथ्वीआदिक भूत कोऊ उपजा नहीं है, निरावरण ज्ञान आकाश अनतरूप स्थित है, जैसे स्पंद अरु निस्पंद दोनोंरूप पवनही है, तैसे स्फुर अस्फुररूप आत्माही है, किंचनविषेभी ज्योंका त्यों है, शान्तरूपहै, सर्वरूप चिदाकाश है, जब चित्त किंचन होता है, तब आपही जगत्रूप हो भासता है, दूसरा कछु नहीं ॥ जिन पुरुषोंने आत्माको जाना है, तिनको जगत्, आकाशते भी शून्य भासता है, अरु जिन्होंने नहीं जाना तिनको जगत् वज्रसारकी नाई दृढ भासता है, जैसे स्वप्नविषे नगर भासते है, तैसे यह जगत् है, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, जैसे सुवर्णविषे भूषण भासते हैं, तैसे आत्मा-

विषे जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार देवी अरु लीला संकल्पकरिके नानाप्रकारके स्थानोंको देखती भई झरनोंते जल चला आवे, बावडियां सुदर ताल वगीचे वृक्ष देखें, जो शब्द करते है, अरु सुंदर मेघ पवनसयुक्त देखे मानो स्वर्ग यहा आया है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने गिरिग्रामवर्णन नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३.

पुनराकाशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार देखके दोनों शीतल चित्तआगविषे वास करत भई, भोग अरु मोक्षकारि शीतल चित्त है, अर्थ यह जो सतुष्टचित्त हे, चिरकाल जो आत्माअभ्यास किया था, तिसकारि शुद्ध ज्ञानरूप होत भई, अरु त्रिकाल ज्ञानकारि सपन्न भई, तिसकारि पूर्वकी स्मृति होत भई जो कछु अरुधतीके शरीरकारि किया था, सो देवीको कहत भई ॥ हे देवि ! तुम्हारी कृपाते पूर्वकी स्मृति मुझको भई, जो कछु इस देशविषे मै किया था, सो प्रगट भासता है, एक यहां ब्राह्मणी थी, तिसका शरीर वृद्ध होत भया नाडियां दृष्ट आवैं, अरु भर्ताको बहुत प्यारी थी, अरु पुत्रोंकी माता थी, सो मैही हों ॥ हे देवि मैने देवता ब्राह्मणोंकी पूजा करी थी, यहां मै दूध रखती थी, यहा अन्नादिकोंके वासन रखती थी, अरु मेरे पुत्र पुत्रिया जमाई दुहिते वैठते थे, यहा मैं वैठती थी, अरु भृत्योको कहती थी कि शीघ्रही कार्य करो, ऐसे शब्द मै करती थी ॥ हे देवि ! यहां मैं रसोई करती थी भर्ता मेरा शाक गोवर ले आता था, अरु सर्व मर्यादा कहता था, यह मेरे हाथके चुटे वोए थे, यह वृक्ष मेरे लगाए हुए हैं, कछुक फल मै इनसों लिये हैं, कछुक रहे हैं, सो यह है, यहा मै जलपान करती थी ॥ हे देवि ! मेरा भर्त्ता सव कर्मोविषे शुद्ध था, अरु आत्मस्वरूपते शून्य था, सव कर्म मुझको स्मरण होते हैं,यहां मेरा पुत्र ज्येष्ठशर्मा गृहविषे पड़ा रुदन करताहै,

यहां वेलि मेरे गृहविषे विस्तरी है, अरु सुंदर फूल लगे है, इनके गुच्छे छत्रोकी नाईं है, अरु झरोखे वेलिकरि आवरे हुए है यह मेरा मंडप आकाश है, इसविषे मेरे भर्त्ताका जीव आकाश है ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! यह जो शरीर है, तिसकी नाभिकमलते दश अंगुल ऊर्ध्व हृदयाकाश है, सो अंगुष्ठमात्र हृदय है, तिसविषे उसका संवित् आकाश है, तिसविषे जो राजसी वासना थी, तिसकरि तिसको चारो समुद्रपर्यंत पृथ्वीका राज्य फुरि आया, कि मै राजा हो, यहां आठ दिन मृतक हुए बीते है, अरु यहा चिरकाल राज्यका अनुभव करत भया है ॥ हे देवि ! इसप्रकार थोडे कालविषे बहुत काल अनुभव करत भया है, अरु हमारेही मंडपविषे वह शव पडा है, अरु तिसकी पुर्यष्टकविषे जगत् फुरि आया है, तिसविषे आपको राजा विदूरथ जानत भया है, इस राज्यके संकल्पकरि उसकी संवित् इसी मंडप आकाशविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे गंधको लेके पवन स्थित होवै, तैसे उसकी चेतनसंवित संकल्पको लेकरि इस मंडपाकाशविषे स्थित है, उसकी संवित इस मंडप आकाशविषे है, उस राजाकी सृष्टि मुझको कोटि योजनोंपर्यंत भासती है, पर्वत मेघ अनेक योजनोंपर्यंत लंघती जाओ तब भर्त्ताके निकट प्राप्त होहू, अरु चिदाकाशकी अपेक्षा करके अपने पास भासती है, अब व्यवहारदृष्टिकरि कोटि योजनोपर्यंत है, ताते चलौ जहां राजा विदूरथ मेरा भर्त्ता है, दूर है तौ भी निश्चयवानोंको निकट है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकरि दोनों मंडपाकाशविषे उडी; जैसे पक्षी उडता है, तैसे उडीं, जैसे खड्गकी धारा श्याम होती है, जैसे विष्णुजीका अंग श्याम होता है, जैसे काजर श्याम होता है, जैसे भमरेकी पीठ श्याम होती है, तैसे आकाश श्याम है, तिस आकाशविषे अतवाहक शरीरकरिके उडीं, मेघोंके स्थान लँघिगई; बडा वायुका स्थान लँघिगई, सूर्य चंद्रमाको लँघ गई, ब्रह्मलोकपर्यंत जो देवताके स्थान थे, तिनको लंघ गई, इसप्रकार दूरते दूर गई, शून्य आकाशविषे ऊर्ध्व जाइके अंधको देखत भई, जो सूर्य अरु चंद्रमा आदिक कोऊ नहीं भासता तब लीलाने कहा ॥ हे देवि ! एता सूर्य आदिक प्रकाश था, सो कहां गया, यहां

तौ महाअंधकार है, ऐसा अधकार है, मानो मुष्टिविषे ग्रहण होता है ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! हम महा आकाशविषे आई हैं, यहां अधकारका स्थान है, सूर्य आदिक कैसे भासै ? जैसे अधकूपविषे त्रसरेणु नही भासती, तैसे यहां सूर्य चद्रमा नहीं भासते, अपुन वहुत ऊर्ध्वको आये है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! वड़ा आश्चर्य है, जो हम दूरते दूर आई हैं, जहां सूर्यादिकोंका प्रकाश नहीं भासता, इसते आगे अव कहां जाना है ? देव्युवाच ॥ हे लीले ! इसके आगे ब्रह्मांडकपाट आवैगा, सो वडा वज्रसार है, अरु अनंत कोटि योजनोंपर्यंत तिसका विस्तार है, जिसकी धूलकी कणिका भी इंद्रके वज्रसमान है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार देवी कहती थी, कि आगे ब्रह्मांडकपाट आया, महावज्रसार अरु अनत कोटि योजनोंपर्यंत तिसका विस्तार देखा, तिसको लंघि गई, अरु क्लेश कछु न भया, काहेते कि जैसा किसीको निश्चय होता है, तिसको तैसाही अनुभव होता है, निरावरण आकाशरूप जो देवियां हैं, सो ब्रह्मांडकपाटको लंघ गई, तिसके परे दशगुणा जलका आवरण है, तिसके परे दशगुणा अग्नितत्त्व है, तिसके परे दशगुणा वायु है, तिसके परे दशगुणा आकाश है, तिसके परे परम आकाश है, तिसका आदि मध्य अंत कोऊ नहीं, जैसे वन्ध्यापुत्रकी कथा चेष्टाका अंत आदि कोऊ नहीं तैसे परम आकाश है, आकाशका आदि कोऊ नहीं, नित्य शुद्ध अनंतरूप है, अपने आपविषे स्थित है, तिसका अंत लेनेको सदाशिव मनरूपी वेगकरि कल्पपर्यंत ध्यावै, तौ भी न पावै, अरु विष्णुजी गरुड़पर आरूढ होइकै कल्पपर्यंत ध्यावै, तौ भी तिसका अंत न पावै अरु पवन अत लेनेको चाहै तौ न पावै, आदि मध्य अंत कलनाते रहित वोधमात्र है ॥

इति श्रीयो॰उत्प॰पुनराकाशवर्णन नाम त्रयोविं॰सर्ग ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४.

ब्रह्माण्डवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जव पृथ्वी, आप, तेज आदिक आवरणको लंघ गई, तव परमाणुते रहित परम आकाश उनको भासा, तिस

विषे ब्रह्मांड धूर कणिकाकी नाईं भासा, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रसरेणु भासते हैं, सो महाशून्यको धारणेहारा परमआकाश है, अरु अपकण चिद्अणु सृष्टि जिसविषे फुरती है, ऐसा महासमुद्रहै, कोई अधःको जाता है, तिसविषे कोई ऊर्ध्वको जाता है, कोई तिर्यक् गतिको जाता है ॥ हे रामजी ! चित् संवित्विषे जैसा स्पंद स्फुरता है, तैसा तैसा आकार हो भासता है, वास्तव न कोऊ अधः है, न कोऊ ऊर्ध्व है, न कोऊ आता है, न कोऊ जाता है, केवल ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, फुरणेकरि जगत् भासता है, उत्पन्न होता है, बहुरि नष्ट होता है, जैसे बालकका संकल्प जो उपजके नष्ट हो जाता है, तैसे चेतन संवित्विषे जगत् फुरके नष्ट हो जाता है ॥ राम उवाच, हे भगवन् ! अध क्या होताहै, अरु ऊर्ध्व क्याहोताहै, अरु तिर्यक क्याभासताहै ? अरु यहां क्यास्थितहै ? सो मुझको कहो वसिष्ठउवाच, हेरामजी ! परमाकाश जो सत्ता है, सो आवरणते रहितहै, शुद्धबोधरूप है, तिसविषे जगत् ऐसे भासता है, जैसे आकाशविषे भ्रांतिकरि तरुवरे भासते हैं, तिसविषे अध अरु ऊर्ध्व कल्पनामात्र है, जैसे हलोंके वटेके चौफेर कीडियां फिरतीं रहैं, अरु उनको मनविषे अध ऊर्ध्व पडा भासै, उनके मनविषे अध ऊर्ध्वकी कल्पना हुई है ॥ हे रामजी ! यह जगत् आत्माका आभासरूप है, जैसे मंदराचलपर्वतऊपर हस्तियोंके समूह विचरते हैं, तैसे आत्माविषे अनेक जगत् फुरते हैं, जैसे मंदराचलपर्वतके आगे हस्ती होवैं, तैसे ब्रह्मके आगे जगत् है, अरु वास्तवते सर्व ब्रह्मरूप है कर्त्ता, कारण, कर्म आदान, उपादान अधिकरण सर्व ब्रह्महीहै; यह जगत् ब्रह्मसमुद्रके तरंग है, तिन जगत् ब्रह्मांडाको देवियां देखत भई, कैसे ब्रह्मांड उन्होंने देखे हैं, सो तू श्रवण कर. कई सृष्टि उत्पन्न होतीं देखीं, कई प्रलय होती देखीं, कई उपजनेका आरंभ देखा, जैसे नूतन अंकुर निकसता है, तैसे उपजने लगी है, कहूं जलही जल है, और कछु नहीं, कहूं अंधकारही है, प्रकाश कछु नहीं, कहूं मनु व्यवहार संयुक्त है, कहूं अपूर्व वेदशास्त्रके कर्म हैं कहूं आदि ईश्वर ब्रह्मा है, निमित्ते मन सृष्टि हुई है, कहूं आदि ईश्वर विष्णु है, तिसते सब सृष्टि हुई है कहूं आदि ईश्वर सदाशिव है इसी प्रकार और प्रजापतिकरि उपजने हैं, कहूं

नाथको कोऊ नही मानते, अनीश्वरवादी हैं, कहूं तिर्यकही जीव रहते हैं, कहूं देवताही रहते है, कहूं मनुष्यही रहते है, कहूं वडे आरभ करिकै संपन्न है, कहूं शून्यरूप हैं ॥ हे रामजी ! इस प्रकार अनेक सृष्टि उत्पन्न होती चिदाकाशविषे देखत भई तिनकी सख्या करनेको कोऊ समर्थ नही चिदात्माके आभासरूप फुरतीं है ॥ जैसी फुरणा होती है, तिसके अनुसार फुरती है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ब्रह्मांडवर्णनं नाम चतुर्विंशतितम. सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशतितमः सर्गः २५

गगननगरयुद्धप्रेक्षकान्वितवर्णनम् ।

वासिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार दोनो देवियां उठके राजाके जगत्विषे आईं, तहां अपने मंडप स्थानोंको देखत भईं, जैसे सोया हुआ जागके देखता है, तैसे अपने मंडपाविषे प्रवेश किया, तव क्या देखा, जो राजाका फूलोंके साथ ढापा हुआ शव पडा है, अरु अर्धरात्रिका समय है, सर्व लोक गृहमें सोये पडे है, अरु राजा पद्मके शवके पास लीलाका शरीर था सो पडा है, अंत पुरविषे धूप, चंदन, कपूर, अगरकी सुगंध भरि रही है, तव विचार करत भई कि वहा चलें, जहां राजा राज्य करता है, तव उस भर्त्ताकी जो पुर्यष्टक थी, जिसविषे विदूरथका अनुभव हुआ था, तिस संकल्पके अनुसार विदूरथकी सृष्टि देखनेको देवीके साथ चलीं, अंतवाहक शरीर साथ आकाशमार्गको उडीं, जाते जाते ब्रह्मांडकी वाटको लघ गईं, तव विदूरथके सकल्पविषे जगत्को देखत भई, जैसे तलावडीविषे शेवाल होती है, तैसे जगत्को देखत भई, सप्तद्वीप देखे, नवखंड देखे, सुमेरु आदिक पर्वत देखे, समुद्रद्वीपादिक सव रचना देखत भई, तिसविषे जवूद्वीप भरतखड देखा, तिसविषे विदूरथ राजाका मंडपस्थान देखत भई, तहा राजा सिद्धको देखत भई, तिसने कछु विदूरथ राजाकी पृथ्वीकी हद्द भाइयोंने दवाई थी, तिनके

निमित्त सेनाको भेजी, अरु राजा विदूरथने भी सुनके सेनाको भेजी, दोनों सेना मिलके युद्ध करने लगीं है, अरु त्रिलोकी युद्धका कौतुक देखने आई है, देवता विमानोंपर आरूढ होइके देखने लगे है, सिद्ध, चारण, गधर्व, विद्याधर शस्त्रोंको छोडके देखनेको स्थित भए है, अरु विद्याधरिया अप्सरा आई स्थित भई है, जो शूरमें युद्धविपे प्राणोको त्यागेगे, तव हम इनको स्वर्गविपे ले जावगी, ऐसे विचार करि विद्याधरियां आन स्थित भई हैं, अरु रक्त मास भोजन करनेको भूत, राक्षस, पिशाच, योगिनियां आन स्थित भई है॥ हे रामजी ! जो पुरुप शूरमें हैं, सो तौ स्वर्गके भूपण है, अरु अक्षय स्वर्गको भोगेंगे; जिनका मरना धर्म पक्षकरिकै संग्रामविपे होवैगा, सोई स्वर्गको जावगे ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! शूरमा किसको कहते हैं अरु जो युद्धकरिकै स्वर्गको नही प्राप्त होते सो कौन है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो शास्त्रयुक्त युद्ध नहीं करते, अनर्थरूपी अर्थके निमित्त युद्ध करते है, सो नरकको प्राप्त होते हैं, अरु जो पुरुप धर्मके निमित्त युद्ध करते है सो शूरमें है, सोई स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं, अरु जो पुरुप गौके अर्थ युद्ध करते है, कै ब्राह्मणके अर्थ, मित्रके अर्थ, शरणागतके अर्थ, युद्ध करते है, सो मृतक हुए स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं, और स्वर्गके भूपण कहाते हैं अरु जो राज्यपालनेके निमित्त युद्ध करते है, सो मुए हुए स्वर्गको प्राप्त होते है, उनका यश स्वर्गविपे वहुत होता है, जो पुरुप धर्मके अर्थ युद्ध करते है, सो अवश्य स्वर्गलोकको प्राप्त होते है, अरु जो अधर्मकारि युद्ध करते है, सो मृतक हुए नरकको प्राप्त होते है ॥ हे रामजी ! जो पुरुप कहते है, संग्रामविपे मुए सव स्वर्गको प्राप्त होते है, सो मूर्ख है, स्वर्गको वही जाते है, जिनका मरना धर्मके अर्थ हुआ है, अरु जो किसी भोगके अर्थ युद्ध करते है, सो नरकको प्राप्त होवगे ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने गगननगरयुद्धप्रेक्षकान्वितवर्णन नाम पचविंशतितम सर्ग. ॥ २५ ॥

षड्विंशतितमः सर्गः २६

रणभूमिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब दोनो देवियां रणसंग्रामको देखत भईं, क्या देखा कि महाशून्य वन है, तिसविषे दोनों सेना जुडीं हैं, जैसे दो बडे समुद्र उछलिकारि परस्पर मिलने लगें तैसे सेना मिलीं तिसको यह देखनेकारि संकल्पको रचिकै दोनों विमान तिस ऊपर स्थित होके देखने लगीं, तब क्या देखा जो योद्धे आयके स्थित हुए हैं, मच्छव्यूह, गरुडव्यूह, चक्रव्यूह, इस प्रकार सेनाके भाग भिन्न हुए दोनों सेनाके योद्धे एक एक होइकारि युद्ध करने लगे, प्रथम परस्पर देख जो यह बाण चलावै, ऐसे कहे जो तू प्रथम चलाउ, उनने कहा तू प्रथम चलाउ, अरु क्रोधदृष्टिकारि स्थिर हो रहे, मानो मूर्त्तियां लिख छोडी है, तिसके अनंतर और योद्धे दोनो सेनाके आए, मानो प्रलयकालके मेघ उछले हैं, तिनके आनेकारि एक एक योद्धेकी मर्यादा दूर हो गई, इकट्ठे युद्ध करने लगे, बडे शस्त्रोंके प्रवाहके प्रहार करनेलगे, कहू खड्गोंके प्रहार होवहिं, कुहाडे त्रिशूल भाले बरछियां कटारी छुरी चक्र गदादिक शस्त्र चलने लगे, जैसे वर्षाकालमें मेघ वर्षा करते हैं, तैसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी, बडे शब्द करैं, अरु शस्त्र चलावैं॥ हे रामजी ! जेते कछु प्रलयकालके उपद्रव थे,सो इकट्ठे आन हुए,योद्धा जो थे सो जानके युद्धकी ओर आये, अरु जो कायर थे सो भागगये, ऐसा संग्राम हुआ, जो योद्धानके शिर काटे गये, तिनके हस्ती घोडे मृत्युको प्राप्त भये, जैसे कमलके फूल काटे जाते है, तैसे तिनके शीश काटे जावैं, तब दोनों सेनाके राजा चिंता करने लगे, कि क्या होवैगा ? हे रामजी ! ऐसा युद्ध हुआ, कि रुधिरकी नदी वह चलीं, तिसविषे प्राणी वहते जावैंही, अरु बडे शब्द करैं, जिन शब्दके आगे मेघोंके शब्द भी तुच्छ भासैं ॥ हे रामजी ! दोनों देवियां संकल्पके विमान कल्पिके आकाशविषे स्थित हुईं, क्या देखा कि ऐसा युद्ध हुआ है जैसे महाप्रलयविषे समुद्र एकरूप हो जाते हैं, अरु बिजलीकी नाईं शस्त्रोंका चमकार होता है, अरु जो शूर वीर हैं,तिनके रक्तके

बूंदें पृथ्वीपर पडतीं हैं, तिन बूंदोंविषे जेते मृत्तिकाके कणके लगे होते हैं, तेते वर्ष स्वर्गको भोगैंगे, जो जो शूरमा युद्धविषे मृतक होवै, तिनको विद्याधरियां स्वर्गको लेजावैं, अरु देवगण स्तुति करैं कि यह शूरमा स्वर्गको प्राप्त भया, अक्षय स्वर्ग भोगैगा, अर्थ यह जो चिरकाल स्वर्ग-सुखभोग भोगैगा ॥ हे रामजी ! शूरमें स्वर्गलोकके भोग मनविषे चितन करि हर्षवान् होवैं, अरु युद्ध करि नानाप्रकारके शस्त्र चलावै, अरु सहारे हैं, वहुरि युद्धके सन्मुख होवैं, धैर्य धरके स्थित होवै, जैसे सुमेरु पर्वत धैर्यवान् अचल स्थित है, तिसते भी अधिक धैर्यवान् रहैं, ऐसे संग्रामविषे योद्धे चूर्ण होवैं, जैसे ऊखलविषे चूर्ण होती हैं, तैसे रणविषे चूर्ण होवैं, अरु वहुरि सन्मुख होवै, अरु हाहाकार शब्द वडे होवै, अरु हस्तीसों हस्ती परस्पर युद्ध करै, शब्द करैं ॥ हे रामजी ! अनेक जीव इस प्रकार नाशको प्राप्त भये, जो जो शूरमा मरै तिनको विद्याधरिया स्वर्गको ले जावै, परस्पर वडे युद्ध होवे, खड्गवालेके साथ खड्गवाले युद्ध करै, त्रिशूलवालेके साथ त्रिशूलवाले युद्ध करै, जैसा जैसा शस्त्र किसीकेपास होवै तैसेही तिसकेसाथ युद्ध करै जव शस्त्र पूर्ण होइ जावै तव मुष्टिसाथ युद्ध करै, दशादिशा युद्धकारि पूर्ण हो गई ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने रणभूमिवर्णन नाम षड्विंशतितम सर्ग ॥ २६ ॥



सप्तविंशतितमः सर्गः २७

द्वन्द्वयुद्धवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जव इसप्रकार वडा युद्ध हुआ तव शूरोंके रुधिरका प्रवाह चला, जैसे गंगाका प्रवाह तीक्ष्ण चलता है, तैसा तीक्ष्ण प्रवाह चला, तिस प्रवाहविषे हस्ती, घोडे, मनुष्य, रथ सव वहे जावें, अरु सेना सृष्टि नाशको प्राप्त होती जावै ॥ हे रामजी ! वडा क्षोभ आनके उदय हुआ, तव राक्षस पिशाच आदिक जो तामसी जीव थे, सो भोजन करने लगे, मास खावैं, अरु रुधिरपान करैं, इनको उत्साहक्रिया

प्राप्त भई, जैसे मदराचल पर्वतकरि क्षीरसमुद्रको क्षोभ हुआ था, तैसे संग्राभूमिविषे योद्धोंको क्षोभ हुआ, रुधिरका समुद्र चला, तिसविषे हस्ती, घोडे रथ शूरमें तरंगोंकी नाईं उछलते हुए आवैं। रथवाले सों रथवाले युद्ध करैं, घोडेवाले सो घोडेवाले युद्ध करैं, हस्तिवालेसों हस्तिवाले, प्यादेसों प्यादे युद्ध करे ॥ हे रामजी ! जैसे प्रलयकालकी अग्निविषे जीव पड़े जलते हैं, तैसे जो योद्धा रणभूमिविषे आवैं, सो नाशको प्राप्त होवै, जैसे दीपकविषे पतग प्रवेश करता है, अथवा जैसे समुद्रविषे नदियां प्रवेश करती हैं; तैसे रणभूमिविषे दश दिशाके योद्धे प्रवेश करैं, किसीका शीश काटा जावै, अरु धड युद्ध करै, किसीकी भुजा काटी जावै, किसीके ऊपर रथ चले जावैं, हस्ती, घोडे, उलट पलट पड़े, अरु नाश हो जावै ॥ हे रामजी ! दोनों राज्योंकी सहायताके निमित्त अनेक राजा आये थे, पूर्व दिशाते आये थे, काशी मदरास देशके, मीला देशके, मालवदेशके सकला देशके, कवटा देशके, किरात देशके, म्लेच्छ देशके आये थे, जिनोंके अनुसार मर्यादा नहीं, सो म्लेच्छ है, पारसीवाले आये, काश्मीर देशके आये, तुरक देशके आये, पजाव देशके आये, हिमालयपर्वतके आये, सुमेरुपर्वतके आये इत्यादिक अनेक देशपाल आये, जिनके वडे भुजदड हैं, अरु वडे केश हैं अरु वडे भयानक रूप हैं सब युद्ध करनेके निमित्त आये, एते मूर्तिमत आये, वडी ग्रीवावाले आये, एकटंगे पर्वतते आये, एकाचल एकाक्ष आये, घोडेके मुखवाले आये, श्वानके मुखवाले इसते लेकरि योद्धे आये, स्त्रीराज्यते आये, सुमेरु कैलासके राजा थे, जेते कछु पृथ्वीके राजा थे, सो सबही आये, जैसे महाप्रलयके समुद्र उछलते हैं, अरु दिशास्थान जलकरि पूर्ण होते हैं, तैसे सेनाकरिके सब स्थान पूर्ण भये, दोनों ओरते युद्ध करने लगे, चक्रवालेके साथ चक्रवाले युद्ध करैं, खड्ग, कुल्हाडे, त्रिशूल, छुरी, कटारी, वरछी, गदा, वाण, आदिक शस्त्रोंकरि परस्पर युद्ध करने लगे, एक कहैं प्रथम मैं जाता हौं, एक कहै मैं प्रथम जाता हौं ॥ हे रामजी ! तिस कालमें ऐसा युद्ध होने लगा जो कहनेविषे नहीं आता, दौडदौडके योद्धे रणविषे जावैं, अरु मृत्युको प्राप्त होवैं, जैसे अग्निविषे घृतकी आहुति भस्म होती है, तैसे रणविषे योद्धे नाशको प्राप्त

होवै ऐसा युद्ध हुआ, जो रुधिरका समुद्र चला तिसविषे हस्ती, घोडे, रथ, मनुष्य, तृणोंकी नाईं वहते जावें, अरु संपूर्ण पृथ्वी रक्तमय हो गई, जैसे आंधीकरि फूल फल बूटे गिरते हैं, तैसे पृथ्वीपर कटकट शब्द करते शिर गिरे ॥ हे रामजी ! जो तिस कालमें युद्ध हुआ है, सो कहनेविषे नहीं आता, सहस्रमुख जो शेषनाग है, सो वह भी युद्धके कर्मोंको वर्णन करै तौ भी संपूर्ण न करि सकैगा तब और कैसे कहैगा, सो संक्षेपते कछु श्रवण कराया है ॥

इति श्रीयोगवा०लीलोपाख्याने द्वंद्वयुद्धवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः२७



अष्टाविंशतितमः सर्गः २८

स्मृत्यनुभववर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार युद्ध हुआ तब सूर्य अस्त हुआ, मानो उसकी किरणें भी शस्त्रोंके प्रहारकरि अस्तताको प्राप्त भईं, तब विदूरथ जो सेनापति है, सो मन्त्रियोंको बुलाइकरि कहत भया ॥ हे मन्त्री ! अब युद्धको शांत करिये, काहेते जो सूर्य अस्त भया है, अरु योद्धे भी सब युद्ध करिके थके हैं, रात्रिको आराम करें, बहुरि दिनको युद्ध करेंगे, ताते वस्त्र फेरौ, और अब युद्ध शांत करौ, तब मंत्रीने दोनों सेनाके मध्यविषे ऊंचे चढके वस्त्रको फेरा, कि अब युद्धको शांत करो, बहुरि दिनको युद्ध करेंगे, तब दोनों सेनाने युद्धका त्याग किया, अरु अपनी अपनी सेनाविषे नौबत नगारे बजावने लगे, राजा विदूरथ भी अपने गृहविषे आय स्थित भया, रणभूमिका शांत हो गई, जैसे शरत्कालविषे मेघों तेरहित आकाश निर्मल होता है, तैसे रणविषे संग्राम शांतिको प्राप्त भया; तब रात्रिको देखके राक्षस, पिशाच, गीदड, बघाड, डाकिनी, मांसका भोजन करने आये, अरु रुधिर पान करें, कईके शिर काटे गये, कईके अंग काटे गये अरु पडे जीवते हैं, अरु हाय हाय सब पडे करते हैं; सो निशाचरनको देखके डरने लगे, अरु कई लोक भाईमित्रोंको देखते भये॥ हे रामजी ! तब राजा विदूरथ स्वर्णके मंदिरविषे शय्या ऊपर विश्राम करन

भया, कैसी शय्या है, जो फूलोंसहित चंद्रमाकी नाई शीतल और सुंदर है, तिस ऊपर सब किवाडोंको चढाइके विश्राम किया है, अरु मंत्रियोंके साथ ।विचार किया कि, प्रातःकालको उठके ऐसे करैंगे ऐसे विचार करिकै शयन किया,मुहूर्त एकपर्यंत राजा सोया, बहुरि चिंताकरि जाग उठा,अरु दोनो देवियोंने आकाशते उतरके गृहविषे सूक्ष्म रूपसों प्रवेश किया, जैसे संध्याकालमें कमलके मुख मूँदते है,तिनोंमें वायु प्रवेश कर जावे तैसे मंदिरों मे सूक्ष्म परमाणुके मार्गकारि प्रवेश किया॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! शरीर साथ परमाणुके रंध्रविषे देविया कैसे प्रवेश करत भई? वह तौ कमलके तंतुते भी सूक्ष्म होते है, बालके अग्रते भी सूक्ष्म होते हैं, तिस मार्गविषे कैसे प्रवेश करत भई ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! भ्रांतिकरि जो अधिभूतक शरीर देह हुआ है, तिस आधिभौतिक शरीरकारि आपते सूक्ष्मरंध्रविषे प्रवेश कोऊ नहीं करि सकता है, परंतु मनरूपी शरीरको रोक कोऊ नहीं सकता ॥ हे रामजी ! देवी अरु लीलाका अंतवाहक शरीर था, तिसते सूक्ष्म परमाणुके मार्गसे उनको प्रवेश करनेमें कछु विचार न हुआ, जो उनको अधिभूत शरीर होता, तौ यत्न भी होता जहां अधिभूतक न होवै, तहां यत्नकी शंका कैसे होवै? हे रामजी! और भी सब शरीर चित्तरूपी है, अरु जैसा निश्चय अनुभव संवित्‌विषे होता है, तैसेही सिद्धता होती है, अन्यथा नहीं होती, जिसके निश्चयविषे यह शरीरादिक आकाशरूप है, तिसको अधिभूतकताका अनुभव नहीं होता, अरु जिसके निश्चयविषे अधिभूतकता दृढ हो रही है, तिसको अंतवाहकका अनुभव नहीं होता, जिस पुरुषको पूर्वार्धका अनुभव नहीं तिसको उत्तरार्धविषे गमन नहीं होता, जैसे वायुका चलना ऊर्ध्वको नहीं होता, तिरछा स्पर्श होता है, अरु अग्निका चलना अध को नहीं होता, जलका ऊर्ध्व नहीं होता; जैसे आदि चेतनसंवितविषे प्रवृत्ति भई है, तैसे अब लग स्थित है, ताते जिसको अंतवाहकशक्ति उदय भई है, तिसको अधिभूतकता नहीं रहती अरु जिसको अधिभूतकता दृढ है, तिसको अंतवाहकशक्ति उदय नहीं होती ॥ हे रामजी ! जो पुरुष छायाविषे बैठा होवै तिसको धूपका अनुभव नहीं होता, अरु जो धूपविषे बैठा है,

तिसको छायाका अनुभव नहीं होता, अनुभव तिसको होता है, जिसके चित्तविषे दृढता होती है, अन्यथा किसीको कदाचित् नहीं होती ॥ हे रामजी ! जैसा प्रमाण चित्संवित्विषे होता है, जबलग और प्रतीति नही होती तबलग तैसेही सिद्धता होती है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु भयकरि कंपायमान होता है, सो कँपता भी तबलग है, जबलग सर्पका अनुभव अन्यथा नहीं होता, जब जेवरीका अनुभव उदय हुवा, तब सर्पभ्रम नष्ट होता है, तैसेही जैसा अनुभव चित्तसंवितविषे प्रमाण दृढ होता है, तिसका अनुभव होता है, यह वार्ता बालक भी जानता है, जैसी जैसी चित्तकी भावना होती है, तैसाही रूप भासता है, निश्चय और होवै, अरु अनुभव और प्रकार होवै, सो कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिनको यह आकार स्वप्नसंकल्पपुरकी नाई हुए हैं सो आकाशरूप है, जिनको ऐसा निश्चय होवे, तिनको रोक कोऊ नहीं सकता, औरोंका भी चित्तमात्र शरीर है, अरु जैसा जैसा संवेदन दृढ भया है, तैसा तैसा आपको जानता है ॥ हे रामजी ! आदि सर्ग आत्माते स्वाभाविक उपजा है, सो अकारणरूप है, पाछेते प्रमादकरि द्वैत कार्य अकारणरूप होयके स्थित भया है ॥ हे रामजी ! आकाश तीन हैं, एक चिदाकाश है, एक चित्ताकाश है, एक भूताकाश है, तिनविषे वास्तव एक चिदाकाश है, अरु भावना करिके भिन्न भिन्न कलना हुई है, आदि शुद्ध चिदाकाश अचेतन चिन्मात्रविषे जो संवेदन फुरा है, तिसका नाम चित्ताकाश है, तिसविषे यह संपूर्ण जगत् हुआ है ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी जो शरीर है, सो सर्वगत होइकरि स्थित भया है, जैसा जैसा तिसविषे स्पंद होता है, तैसा होयके भासता है, जेते कछु सर्व पदार्थ हैं, तिन सर्वों विषे व्याप रहा है, त्रसरेणुके अंतर भी सूक्ष्मभावकरि स्थित भया है, आकाशके अंतर भी व्याप रहा है, जिसके पत्र फल होते हैं, जलविषे तरंग होयके स्थित भया है, अरु शैल जो पर्वत हैं तिनके अंतर भी वही फुरता है, अरु मेघ होइके वही वर्षता है, अरु जलते बर्फ भी चित्तही होता है, अनंत आकाश भी वही है, परमाणुरूप वही है, अंतर बाहर सर्व जगत्में यह है, जेता कछु जगत् है, सो चित्तरूपही है, अरु वास्तव

आत्मासाथ अनन्यरूप है, जैसे समुद्र अरु तरंगविषे कछु भेद नहीं तैसे आत्मा अरु चित्तविषे कछु भेद नहीं, जिस पुरुषको ऐसे अखंड सत्ता आत्माका अनुभव हुआ है, अरु सर्गके आदि चित्तही जिसका शरीर है, अधिभूतकताको नहीं प्राप्त भया, सो महाआकाशरूप है, जिनको पूर्वका स्वभाव स्मरण रहा है, इस कारणते तिनका अंतवाहक शरीर है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषको अंतवाहकविषे अहंप्रत्यय है, तिसको सब जगत् संकल्पमात्र हो भासता है, जहां जानेकी इच्छा वह करता है; तहां जाता है आवरण कोऊ उसको रोक नहीं सकता, अरु जिसको आधिभौतिकविषे निश्चय है, तिसको अंतवाहक शक्ति नहीं होती ॥ हे रामजी ! सबही अंतवाहकरूप है, अरु भ्रमकरके अणुहोता अधिभूतक देखते हैं; जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, स्वप्नविषे जैसे वंध्याके पुत्रका सद्भाव होता है; तैसे आधिभौतिक जगत् भासता है, जैसे जलते शीतलताकरके बर्फ हो जाता है, तैसे जीव प्रमादकरके अंतवाहकते अधिभूतक शरीर होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! चित्तमें क्या है, अरु कैसे होता है, अरु कैसे नहीं होता, अरु यह जगत् कैसे चित्तरूप है, अरु क्षणविषे अन्यथा कैसे हो जाता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक एक जीवप्रति चित्त होता है, जैसा जैसा चित्त है तैसी तैसी शक्ति है, अरु चित्तविषे जगत् भ्रम होता है क्षणविषे कल्प अरु संपूर्ण जगत् उदय हो आता है, अरु क्षणविषे संपूर्ण लय होता है; किसीको निमेषविषे कल्प हो आता है; किसीको क्रमकरिके भासता है, सो तू सुन ॥ हे रामजी ! जब मरनेकी मूर्च्छा होती है, तिस महाप्रलयरूप मृत्यु मूर्च्छाके अनंतर नानाप्रकारका जगत् इसको फुरि आता है, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि फुरि आती है, जैसे संकल्पका पुर भासता है, तैसे मृत्युमूर्च्छाके अनंतर सृष्टि भासती है; जैसे महाप्रलयके अनंतर आदि विराट्रूप ब्रह्मा होता है, तैसे मृत्युके अनंतर इसको अनुभव होता है, यह भी विराट् होता है, काहेते जो इसका मनरूपी शरीर होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! मृत्युके अनंतर जो सृष्टि होती है, सो स्मृतिकरके होती है, स्मृतिविना तौ नहीं होती, जो मृत्युके अनंतर सृष्टि हुई तौ सकारणरूप हुई ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब

महाप्रलय होता है, तब हरिहरादिक सबही विदेहमुक्त होते हैं, बहुरि स्मृतिका संभव कैसे होवै ? हम आदिक जो बोध आत्मा हैं, जब विदेहमुक्त हुए, तब स्मृति संभव कैसे होवै, अरु अबके जो जीव हैं, तिनका जन्ममरण स्मृति कारणते होता है, काहेते कि, मोक्ष नहीं होता, मोक्षका उनको अभाव है ॥ हे रामजी ! जब यह जीव मरते हैं, तब मृत्यु मूर्च्छा होती है, अरु कैवल्यभावविषे स्थित नहीं होते, मूर्च्छाकरि इसका संवित आकाशरूप होता है, तिसते बहुरि चित्तसंवेदन फुरि आता है, तब क्रमकरिके जगत् फुरि आता है, जब बोध होता है, तब तन्मात्रा अरु काल क्रिया भाव अभाव स्थावर जंगम जगत् सब आकाशरूप हो जाता है, जिसका संवेदन दृश्यकी ओर धावता है, अज्ञानजन्य तिसको मृत्यु मूर्च्छाके अनन्तर संवेदन फुरता है, तिसकरि शरीर इंद्रियां भास आती है, कैसा शरीर है, अंतवाहक शरीर है, परंतु चिरकालकी प्राप्ति करिकै आधिभौतिक होइ भासता है, तब इसको देश काल क्रिया आधार आधेय उदय होइकरि स्थित होते हैं, जैसे वायु स्पंदनिस्पंदरूप है, जब स्पंद होता है, तब भासता है, अरु निस्पंद हुएते नहीं भासता, तैसे संवेदनकरिकै जगत् भासता है, तब जानता है कि, मैं यहां उपजा हौं; जैसे स्वप्न अंगनाका स्वप्नविषे स्पर्शका अनुभव होता है, तौ भी मिथ्या है, तैसे भ्रमकरिकै आपको उपजा देखता है, तौ भी मिथ्या है ॥ हे रामजी ! जहाँ यह जीव मृतक होता है, तहांही जगत्भ्रम देखता है, अरु वास्तवते जीव भी आकाशरूप है, अरु जगत् भी आकाशरूप है, अरु अज्ञानकरिकै आपको उपजा मानता है, अरु आगे जगत्भ्रम देखता है, यह नगर है यह पर्वत है, यह सूर्य चंद्रमा है, यह तारागण है, अरु जरा मरण आधि व्याधि संकटकरिकै व्याकुल होता है, भाव अभाव भय स्थूल सूक्ष्म चर अचर पृथ्वी नदियां पर्वत भूत भविष्य वर्तमान क्षय अक्षय भूमिको देखता है, मैं उपजा हौं, अमुकोंका मैं पुत्र हौं, यह मेरा कुल है, यह मेरी माता है, यह मेरे बांधव हैं, एता धन हमको प्राप्त भया है, इत्यादिक वासनाजालोंविषे दुःखी होता है, अरु कहता है, यह सुकृत है, यह देहाकृति है, प्रथम मैं बालक था, अब मेरी यह अवस्था भई है, यह मेरा वर्ण है;

इत्यादि जगत्कल्पना एक एक जीवको उदय होती है॥हे रामजी ! संसार-रूपी एक वृक्ष उदय हुआ है चित्तरूपी बीज है, तारागण तिसके फूल हैं, अरु मेघ चंचल पत्र है, अरु जंगम,जीव,मनुष्य,देवता,दैत्य आदिक पक्षी बैठनेवाले है, अरु रात्रि तिस ऊपर धूर है, अरु समुद्र तिसकी तलावडी है, अरु पर्वत उसविषे सिलवटे हैं, अरु अनुभवरूप अंकुर है, जहां यह जीव मरता है, तहां क्षणविषे देखता है, इस प्रकार एकएकको अनेक जगत् भासते हैं ॥ हे रामजी ! कई कोटि ब्रह्मा अरु विष्णु, रुद्र, इन्द्र पवन, सूर्य आदिक हुए है, जहां सृष्टि है, तहाँ यह होते है, ताते चिद्‌अणुविषे अनेक सृष्टि है, जो जीव भी अनंत हुए है, तिन्होंविषे सुमेरु मंडल द्वीप लोक भी बहुतेरे हुए हैं, जो जो चिद्‌अणुविषे सृष्टिका अंत नहीं तो परब्रह्मविषे अंत कहाते आवै अरु वास्तवते है नहीं, जैसे पर्वतकी कंदरा विषे शिल्पी पुतलियां कल्पे, तो कछु है नहीं, तैसे जगत् चिदाकाशविषे नहीं, मनमात्रही है ॥ हे रामजी ! मनन अरु स्मरण भी चिदाकाशरूप है अरु चिदाकाशविषे मनन अरु स्मरण है, जैसे तरंग भी जलरूप हैं, अरु जलहीविषे तरग होते हैं, जलते इतर तरग कछु वस्तु नहीं, तैसे मनन स्मरण भी चिदाकाशरूप जान ॥ हे रामजी ! दृश्य कछु भिन्न वस्तु नहीं, द्रष्टाही दृश्यकी नाईं होकारि भासता है, जैसे यह मनाकाश नानाप्रकार होइ भासता है, तैसे चिदाकाशका प्रकाश नानाप्रकार जगत होइकारि भासता है, यह विश्व सब चिदाकाशरूप है, हमको तो ऐसे भासता है,तुमको यह जगत् अर्थाकाररूप भासता है, इसी कारणते कहा है कि, लीला अरु सरस्वती आकाशरूपथी, अरु सर्वज्ञ थी, स्वच्छरूप निराकार थी, जहां चाहे तहां जाइ प्राप्त होती थी, जैसी इच्छा करे, तैसी सिद्धि होवे, काहेते कि, जिसको चिदाकाशका अनुभव हुआ है, तिसको कोऊ रोक नहीं सकता, सर्वरूप होयके जो स्थित हुआ, तिस गृहविषे प्रवेशका क्या आश्चर्य है ? वह अंतवाहकरूप है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्मृत्यनुभववर्णनं नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशतितमः सर्गः २९.

भ्रांतिविचार ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब दोनों देवियां राजाके अंत पुरविषे प्रवेश करिके संकल्पकरि सिंहासनपर चढके स्थित भई, चंद्रमाकी नाई कांति है जिनकी, अरु निर्मल कल्पवृक्षोंकी सुगंध पवनकरि शरीरको स्पर्श करत भई, तब बडा प्रकाश अंत पुरविषे भया, अरु शीतलताकरि व्याधि ताप शांत भया, जैसे नंदनवन होता है, तैसे अंतःपुर भया, जैसे प्रातःकालविषे सूर्यका प्रकाश होता है, तैसे देवियोंके प्रकाश करिके अंतःपुर पूर्ण भया, मानो देवियोंके प्रकाशसों राजाकेऊपर अमृतकी सिंचना भई, तब राजा देखत भया, मानो सुमेरुके शृंगते दोनों चंद्रमा उदय हुए हैं, ऐसे देखके विस्मयको प्राप्त भया, बहुरि चिंतना करत भया कि, यह देवियां हैं, शय्याते उठ खडा भया, जैसे शेषनागकी शय्याते विष्णु भगवान् उठते हैं, तैसे उठके वस्त्रको एक ओर करि हाथोंविषे पुष्प लिये, हाथ जोडिकै देवियेके चरणोंपर चढाये, अरु मस्तक टेका, पद्मासन बांधिके पृथ्वीके ऊपर बैठा अरु कहत भया, हे देवियो!तुम्हारी जय होवै,जन्मदु ख तप्तके तुम शांत करनेहारी चंद्रमा हो, अरु अपूर्व सूर्य हो, अर्थ यह जो पूर्व सूर्यके प्रकाशकरि बाह्यतम नष्ट होता है अरु तुम्हारे प्रकाशकरि अतर अज्ञानतम भी नष्ट होता है, ताते अपूर्व सूर्य हो, जब ऐसे राजाने पूजन करि कहा, तिसते अनतर मंत्री जो राजाके पास सोये थे, जैसे नदीके तटऊपर फूलोंका वृक्ष होवे, तैसे राजाके पास सोये थे तिनको जन्म अरु कुलके कहावने निमित्त संकल्पकरिके देवी जगावती भई, तब मंत्री भी उठके फूलोंकरि देवियोंको पूजनकरिके राजाके समीप बैठ गये, तब सरस्वती कहत भई ॥ हे राजन् ! तू कौन है ? किसका पुत्र है ? अरु कबका जन्म लिया है ? हे रामजी ! जब इस प्रकार देवीने पूछा, तब निकट जो मंत्री बैठे थे सो बोलत भये ॥ हे देवि ! तुम्हारी कृपाकरि राजाका जन्म अरु कुल मैं कहता हौं, इक्ष्वाकुकुलविषे एक राजा होत भया है, कमलकी नाई तिसके नेत्र थे, अरु श्रीमान् था,

अरु तिसका नाम कुंदरथ भया, तिसका पुत्र वुधरथ भया, तिसका पुत्र सिंधुरथ होत भया, तिसका पुत्र महारथ होत भया, तिसका पुत्र विष्णुरथ होत भया, तिसका पुत्र कलारथ होत भया, तिसका पुत्र सूर्यरथ होत भया, तिसका पुत्र नभरथ होत भया, तिस नभरथके पुत्र वडे पुण्यकरके विदूरथ होत भया, जैसे क्षीरसमुद्रसो चंद्रमा निकसा है, तैसे सुमित्रा माताते उपजा है, जैसे गौरीजीते स्वामिकार्तिक उत्पन्न भया है, तैसे यह सुमित्राते उत्पन्न भया है ॥ हे देवि ! इसप्रकार तौ हमारा राजाका जन्म हुआ है, जब दश वर्षका भया, तब पिता इसको राज्य देकारि आप वनको उठ गया है, तिस दिनते लेकारि इसने धर्मकी मर्यादा साथ पृथ्वीकी पालना करी है, अरु वडे पुण्य किये हैं, तिन पुण्योंका फल तुम्हारा दर्शन इसको अब भया है ॥ हे देवि ! तुम्हारे दर्शनके निमित्त जो वहुत वर्ष तप करते हैं, तिनको तुम्हारा दर्शन पावन कठिन है, ताते इसके वड़े पुण्य है, जो तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुवा ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहिकै मंत्री तूष्णीं रहत भया, तब देवीजीने कृपा करिकै राजा विदूरथके शीशपर हाथ रक्खा अरु कहा, हे राजन् ! तू अपने पूर्व जन्मको विवेकदृष्टिकारिकै देख कि, जो तू कौन है, जब इसप्रकार देवीने कहा तब राजाके हृदयविषे अज्ञान था, सो देवीके हाथ रखनेकारि निवृत्त होत भया, अरु हृदय प्रफुल्लित हुआ, ऐसे देवीके प्रसादकारि राजाको पूर्वकी स्मृति फुरआई, लीला अरु पद्मका वृत्तांत संपूर्ण स्मरण कारिकै कहत भया ॥ हे देवि ! वडा आश्चर्य मैने जाना है, कि यह जगत मनकारि रचा है, तेरे प्रसादकारि मैंने जाना है, कि मैं राजा पद्म था, अरु लीला मेरी स्त्री थी, एक दिन मुझको मृतक हुवे ऐसे भासा, अरु यहां मैं सत्तर वर्षका भया हौं, सो भ्रमकारिकै मैंने नहीं जाना, अब प्रत्यक्ष जानता हौं, अरु अनेक कार्य मैंने किये हैं, सत्तर वर्षोंविषे सो मुझको स्मरण होते हैं, अरु प्रपितामह भी मुझको स्मरणविषे आता है, अपनी वालक अवस्था भी स्मरणविषे आती है, यौवन अवस्था भी स्मरणविषे आती है, मित्र बांधव स्मरण होते हैं, यह वडा आश्चर्य हुआ है ॥ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन् ! जब यह मृतक होते हैं, तब इनको वडी मूर्च्छा होती है, तिस मूर्च्छाके

अनंतर और लोक भासि आते है, एक मुहूर्त्तविषे वर्षोंका अनुभव होताहै जैसे स्वप्नविषे एक मुहूर्तसों अनेक वर्षोंका अनुभव होता है, तैसे मुझको मृत्यु मूर्छाके अनंतर यह लोकभ्रम भासा है॥ हे राजन्! तू जो पद्म राजा था, तिस अपने गृहविषे मृतक हुए तुझको एक मुहूर्त बीता है,अरु यहां तुझको बहुतेरे वर्षोंका अनुभव भया है, अरु तिसते भी जो पिछला वृत्तांत है, सो श्रवण कर॥ हे राजन्! एक पहाड़के ऊपर ग्राम था, तिसविषे एक वसिष्ठ ब्राह्मण था, अरुंधती तिसकी स्त्री थी, दोनों मंदिरविषे रहते थे, तिस अरुंधतीने मुझसों वर लिया कि, जब मेरा भर्ता मृतक होवे तब उसका जीव इसही मंडपाकाशविषे रहे॥ हे राजन्! जब वह मृतक भया तब उसकी पुर्यष्टक उसही मंदिरविषे रही, तिसके संवित्‌विषे राजाकी दृढ वासना थी तिस मंडपाकाशविषे तिसको पद्मराजाकी सृष्टि फुरि आई अरु अरुंधती तिसकी स्त्री तिसको लीला होइकरि प्राप्त भई, अरु पद्मका मंडप उस ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित फुरि आया, बहुरि तिस मंडपविषे राजा पद्म तू मृतक भया तब तेरे संवित्‌विषे नानाप्रकारके आरंभसंयुक्त तुझको यह जगत् फुरि आया। हे राजन्! यह जो तेरा जगत् है, सो पद्मराजाके हृदयविषे फुरि आया है, अरु पद्मराजाके मंडपाकाशविषे स्थित है, सो उसही वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है, अरु वही वसिष्ठ ब्राह्मण तू विदूरथ राजा भया है, सो कैसे स्थित है? हे राजन्! यह सब जगत् प्रतिभामात्र है, मनकी कलनाकरि भासता है, उपजा कछु नहीं॥ विदूरथ उवाच॥ बडा आश्चर्य है जैसे मेरा यह जन्म भ्रमरूप भया, तैसे इक्ष्वाकुका कुल भ्रमरूप तैसे मेरा पिता माता सब भ्रमरूप भये, तिसविषे मैंने जन्म लिया, बहुरि बालक हुआ, दश वर्षका हुआ, तब पिताने मुझको राज्य देके वनवास लिया, बहुरि मैंने दिग्विजय करिके प्रजाकी पालना करी, शत वर्षोंका मुझको अनुभव होता है अरु अब मुझको दारुण अवस्था युद्धकी प्राप्ति आन भई है, युद्ध करिके रात्रिको मैं गृहविषे आन स्थित भया हौं; बहुरि तुम दोनों देवियाँ मेरे गृहविषे आई हौ, मैं तुम्हारी पूजा करत भया हौं, बहुरि तुम दोनोंविषे एक देवीने कृपा करिके मेरे शीशपर हाथ रक्खा है, तिसकरि

मुझको ज्ञानप्रकाश भया है, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि कमल प्रफुल्लित होता है, तैसे मेरा हृदय देवीके प्रकाशकरि प्रफुल्लित भया है, तैसे इनकी कृपाते कृतकृत्य भया हौं, अब मेरा संताप सब नष्ट भया है, अरु परम निर्वाण समता सुख निर्मल पदको प्राप्त भया हौं ॥ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन्! जो कछु तुझको भासा है, सो सब भ्रममात्र है, नानाप्रकारके व्यवहार अरु लोकांतर भी भ्रममात्र है, काहेते जो वहां तुझको मृतक हुए एक मुहूर्त व्यतीत भया है, तिसके अनंतर वही मंडप आकाशविषे तुझको यह जगत् भासा है, अरु वह पद्मराजाकी सृष्टि ब्राह्मणके मंडपविषे स्थित है, तहां तुझको नदियां, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक भूत संपूर्ण जगत् भासि आये हैं; जैसे समुद्रविषे तरंग आवर्त्त फुरि आते हैं, तैसे जगत् भासि आया है॥हे राजन्! मृत्यु मूर्च्छाके अनंतर कबहुँ वही जगत् भासताहै, कबहुँ और प्रकार भासता है, कबहुँ पूर्व अरु अपूर्व भी भासता है, सो मनकी कल्पनाकरिके भासता है वास्तवते असद्रूप है, अज्ञानकरिके सत्की नाई भासता है, जैसे एक मुहूर्त शयन करिके स्वप्नविषे बहुतेरे वर्षोंका क्रम देखता है, तैसे जगत्का अनुभव होता है, जैसे संकल्पपुरविषे अपना जीना बहुरि मरणा देखता है, जैसे गंधर्वनगर भ्रममात्र होता है, जैसे नौकाविषे बैठे हुएको तटके वृक्ष चलते हुए भासते हैं, जैसे भ्रमणेकरिके पर्वत पृथ्वी मंदिर भ्रमते भासते हैं, जैसे स्वप्नविषे अपना शिर काटा भ्रमकरिके भासता है, तैसे यह जगत् भ्रमकरिके भासता है ॥ हे राजन्! अज्ञानकरिके मिथ्या कल्पना तुझको उपजी है, वास्तवते न तू मृतक भया है, न जन्म लिया है, शुद्ध विज्ञान शांतिरूप है, तू अपना आप जो आत्मपद है, तिसविषे स्थित हो, नानाप्रकारका जगत् अज्ञानकरि भासता है, सम्यक् ज्ञानकरिके सर्वात्मसत्ता भासती है, आत्मसत्ताही जगत्की नाई भासती है, जैसे बडी मणिकी किरणें नानाप्रकार होइ भासती हैं, सो मणिते इतर कछु नहीं, तैसे आत्मसत्ताका किंचन आकाशरूप जगत् भासता है, गिरि ग्राम द्रुम किंचनरूप हौं; जेता कछु जगत्विस्तार तुझको भासता है, सो लीला अरु पद्म राजाके मंडपाकाशविषे स्थित है, अरु वह लीला पद्मकी राजधानी उस वसिष्ठ ब्राह्मणके

मंडपाकाशविषे स्थित है ॥ हे राजन् यह जगत् वसिष्ठ ब्राह्मणके हृदय मंडपाकाशविषे पड़ा फुरता है, कैसा है मंडपाकाश जो आकाशविषे स्थित है, न पृथ्वी न कोऊ शैल पर्वत है, न कोऊ मेघ है, न कोऊ समुद्र है, न कोऊ मुमुक्षु है, केवल शून्यही शून्य स्थित है, और न कोऊ जगत् है, न कोऊ देखनेवाला है, यह सब भ्रांतिमात्र है ॥ हे राजन् ! यह सब तेरे उस मंडपाकाशविषे पड़े फुरते हैं ॥ विदूरथ उवाच ॥ हे देवि ! जो ऐसे है, तौ यह मेरे भृत्य भी अपने आत्माविषे सत् हैं, अथवा असत् है, सो कहौ ॥ देव्युवाच ॥ हे राजन् ! विदितवेद जो पुरुष है, सो शुद्ध बोधरूप है, तिसको कछु भी जगत् सत्यरूप नहीं भासता, सब चिदाकाशरूपही भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्पभ्रम निवृत्त हुए नहीं भासता, तैसे जिन पुरुषोंको आत्मबोध हुआ है, अरु जगत्भ्रम निवृत्त हुआ है, तिनको जगत् सत् नहीं भासता, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलको असत् जानै तब बहुरि जलसत्ता नहीं भासती, तैसे जिनको आत्मबोध हुआ है, अरु जगतको असत जाना है, तिनको सत् नहीं भासता ॥ हे राजन् ! जैसे स्वप्नविषे कोऊ भ्रमकरिकै अपना शीश काटा देखै, अरु जागेते स्वप्नका मरणा नहीं देखता, तैसे ज्ञानवान्को जगत् सत् नहीं भासता, जैसे स्वप्नका मरणा भ्रमकरि देखता है तैसे अज्ञानीको जगत् सत् भासता है, परंतु वास्तव कछु नहीं, शुद्ध बोधविषे जगत्भ्रम भासता है, जैसे शरत्कालविषे मेघते रहित शुद्ध आकाश होता है, तैसे शुद्ध बोधवालेको अहं त्वं आदिक व्यर्थ शब्दका अभाव होता है ॥ अरु हे राजन् ! तू अरु तेरे भृत्य इत्यादिक जो यह सृष्टि है, सो सब आत्माते फुरे हैं, जैसे तू फुरा है तैसे यह सब फुरे है,अरु वस्तुते कछु हुआ नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, भ्रमकरि और कछु भासता है,शुद्धविज्ञानघनरूप तिसका शेष रहता है ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब देवी अरु विदूरथका संवाद वसिष्ठने रामजीको कहा तब सूर्यका अस्त भया, सायंकालका समय भया,सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गई,रात्रि व्यतीत भई, तब सूर्यके किरणोंसहित सब अपने अपने स्थानोंकेऊपर आइकै बैठे॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलो०भ्रांति०नाम एकोनत्रिंशत्तम सर्ग २९

मुझको ज्ञानप्रकाश भया है, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि कमल प्रफुल्लित होता है, तैसे मेरा हृदय देवीके प्रकाशकरि प्रफुल्लित भया है, तैसे इनकी कृपाते कृतकृत्य भया हौ, अब मेरा संताप सब नष्ट भया है, अरु परम निर्वाण समता सुख निर्मल पदको प्राप्त भया हौ ॥ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन् ! जो कछु तुझको भासा है, सो सब भ्रममात्र है, नानाप्रकारके व्यवहार अरु लोकांतर भी भ्रममात्र है, काहेते जो वहां तुझको मृतक हुए एक मुहूर्त व्यतीत भया है, तिसके अनंतर वही मंडप आकाशविषे तुझको यह जगत् भासा है, अरु वह पद्मराजाकी सृष्टि ब्राह्मणके मंडपविषे स्थित है, तहां तुझको नदियां, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक भूत संपूर्ण जगत् भासि आये है, जैसे समुद्रविषे तरंग आवृत्त फुरि आते है, तैसे जगत् भासि आया है॥ हे राजन्! मृत्यु मूर्च्छाके अनंतर कबहुं वही जगत् भासताहै, कबहुँ और प्रकार भासता है, कबहुँ पूर्व अरु अपूर्व भी भासता है, सो मनकी कल्पनाकरिकै भासता है वास्तवते असद्रूप है, अज्ञानकरिकै सबकी नाईं भासता है, जैसे एक मुहूर्त शयन करिकै स्वप्नविषे बहुतेरे वर्षोंका क्रम देखता है, तैसे जगत्का अनुभव होता है, जैसे संकल्पपुरविषे अपना जीना बहुरि मरणा देखता है, जैसे गंधर्वनगर भ्रममात्र होता है, जैसे नौकाविषे बैठे हुएको तटके वृक्ष चलते हुए भासते हैं, जैसे भ्रमणेकरिकै पर्वत पृथ्वी मंदिर भ्रमते भासते है, जैसे स्वप्नविषे अपना शिर काटा भ्रमकरिकै भासता है, तैसे यह जगत् भ्रमकरिकै भासता है ॥ हे राजन् ! अज्ञानकरिकै मिथ्या कल्पना तुझको उपजी है, वास्तवते न तू मृतक भया है, न जन्म लिया है, शुद्ध विज्ञान शांतिरूप है, तू अपना आप जो आत्मपद है, तिसविषे स्थित हो, नानाप्रकारका जगत् अज्ञानकरि भासता है, सम्यक् ज्ञानकरिकै सर्वात्मसत्ता भासती है, आत्मसत्ताही जगत्की नाईं भासती है, जैसे बडी मणिकी किरणें नानाप्रकार होइ भासती है, सो मणिते इतर कछु नहीं, तैसे आत्मसत्ताका किंचन आकाशरूप जगत् भासता है, गिरि ग्राम तुम किंचनरूप हौ, जेता कछु जगत्विस्तार तुझको भासता है, सो लीला अरु पद्म राजाके मंडपाकाशविषे स्थित है, अरु वह लीला पद्मकी राजधानी उस वसिष्ठ ब्राह्मणके

मंडपाकाशविषे स्थित है ॥ हे राजन् यह जगत् वसिष्ठ ब्राह्मणके हृदय मंडपाकाशविषे पड़ा फुरता है, कैसा है मंडपाकाश जो आकाशविषे स्थित है, न पृथ्वी न कोऊ शैल पर्वत है, न कोऊ मेघ है, न कोऊ समुद्र है, न कोऊ मुमुक्षु है, केवल शून्यही शून्य स्थित है, और न कोऊ जगत् है, न कोऊ देखनेवाला है, यह सब भ्रांतिमात्र है ॥ हे राजन्! यह सब तेरे उस मंडपाकाशविषे पड़े फुरते है ॥ विदूरथ उवाच ॥ हे देवि! जो ऐसे है, तो यह मेरे भृत्य भी अपने आत्माविषे सत् हैं, अथवा असत् है, सो कहौ ॥ देव्युवाच ॥ हे राजन्! विदितवेद जो पुरुष है, सो शुद्ध बोधरूप है, तिसको कछु भी जगत् सत्यरूप नहीं भासता, सब चिदाकाशरूपही भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्पभ्रम निवृत्त हुए नहीं भासता, तैसे जिन पुरुषोंको आत्मबोध हुआ है, अरु जगतभ्रम निवृत्त हुआ है, तिनको जगत् सत् नहीं भासता, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलको असत् जाने तब बहुरि जलसत्ता नहीं भासती, तैसे जिनको आत्मबोध हुआ है, अरु जगत्को असत् जाना है, तिनको सत् नहीं भासता ॥ हे राजन्! जैसे स्वप्नविषे कोऊ भ्रमकरिकै अपना शीश काटा देखै, अरु जागेते स्वप्नका मरणा नहीं देखता, तैसे ज्ञानवान्को जगत् सब नहीं भासता, जैसे स्वप्नका मरणा भ्रमकरि देखता है तैसे अज्ञानीको जगत् सत् भासता है, परंतु वास्तव कछु नहीं, शुद्ध बोधविषे जगत्भ्रम भासता है, जैसे शरत्कालविषे मेघते रहित शुद्ध आकाश होता है, तैसे शुद्ध बोधवालेको अहं त्वं आदिक व्यर्थ शब्दका अभाव होता है ॥ अरु हे राजन्! तू अरु तेरे भृत्य इत्यादिक जो यह सृष्टि है, सो सब आत्माते फुरे हैं, जैसे तू फुरा है तैसे यह सब फुरे है, अरु वस्तुते कछु हुआ नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, भ्रमकरि और कछु भासता है, शुद्धविज्ञानघनरूप तिसका शेष रहता है ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब देवी अरु विदूरथका संवाद वसिष्ठने रामजीको कहा तब सूर्यका अस्त भया, सायंकालका समय भया, सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गई, रात्रि व्यतीत भई, तब सूर्यके किरणोंसहित सब अपने अपने स्थानोंकेऊपर आइकै बैठे॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलो० भ्रांति० नाम एकोनत्रिंशत्तमः सर्ग २९

त्रिंशत्तमः सर्ग ३०.

स्वप्नपुरुषसत्यतावर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो पुरुष अबोध है, अर्थ यह जो परमपदविषे स्थित नहीं भये, तिनको जगत् वज्रसारकी नाईं दृढ भया है, जैसे मूर्ख बालकको अपनी परछाहींविषे वेताल भासता है, तैसे अज्ञानी को असत्‌रूप जगत् सत् होय भासता है, जैसे मरुस्थलविषे मृगको असत्‌रूप जलाभास सत्य होइ भासता है, जैसे स्वप्नविषे क्रिया अर्थ भ्रमकरिकै भासती है, जैसे जिसको सुवर्णबुद्धि नहीं होती, तिसको भूषणबुद्धि सत् भासती है, जैसे नेत्र दूषणकरिकै आकाशविषे मुक्तमाला भासती है, तैसे असम्यग्दर्शीको असत्‌रूप जगत् सत् होइ भासता है ॥ हे रामजी ! यह जगत् दीर्घ कालका स्वप्न है, सो अहंताकरिकै दृढ जाग्रतरूप हो भासता है, वास्तवते कछु उपजा नहीं, वस्तुते परम चिदाकाश है, सर्वदा शांतिरूप है, अचिंत्य चिन्मात्रस्वरूप है, सो सब जगत् है सर्वशक्ति सर्वात्मा है, जहां जैसा स्पंद फुरता है, तैसा जगत् होइकरि भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, सो स्वप्नभ्रम चिदाकाशविषे स्थित है, तिस चिदाकाशविषे एक स्वप्नपुर फुरता है, वह द्रष्टा हो दृश्यको देखता है, सो द्रष्टा अरु दृश्य दोनों चेतन संवित्‌विषे आभासरूप हैं, तैसे यह जगत् भी आभासरूप है ॥ हे रामजी ! स्वर्गकी आदि जो शुद्ध आत्मसत्ता थी, तिसविषे आदि संवेदन स्पंद हुआ है, सो ब्रह्माजी हैं, तिसके संकल्पविषे यह संपूर्ण जगत् स्थित है, यह संपूर्ण जगत् स्वप्नकी नाईं है, तिस स्वप्नरूपविषे तुम्हारा सद्भाव हुआ है, जैसे तुम हो तैसे और भी है, जैसे स्वप्नविषे स्वप्ननगरको और स्वप्न होवै, जैसे स्वप्ननगर वास्तव सत् नहीं होता तैसे यह जगत् भी जो दृष्ट आता है, सो भ्रममात्र है, जैसे स्वप्नविषे असत्‌ही सत् होके भासता है, तैसे यह भी अहं त्वं आदिक भासते हैं, जैसे स्वप्नविषे सब कर्म होते हैं, तैसे यह भी जान ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! स्वप्नते जब जागता है, तब स्वप्नके पदार्थ असत्‌रूप हो भासते हैं, अरु यह तौ ज्योंके त्यों रहते हैं, जब देखिये

तव ऐसे ही हैं, बहुरि जाग्रत् अरु स्वप्नको तुल्य कैसे कहिये ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसा स्वप्न है, तैसा जागृत है, स्वप्न अरु जाग्रत्विषे भेद कछु नहीं, स्वप्नको भी स्वप्न असत् तब जानता है, जब जागता है, जबलग जागा नहीं तबलग असत नहीं जानता, तैसे यह भी जबलग आत्मपदविषे नहीं जागा, तबलग असत् नहीं भासता, जब आत्मपदविषे जागै तब यह जगत् भी असत्रूप भासैगा ॥ हे रामजी ! यह जगत असत्रूप है, अरु भ्रमकरिकै सत्की नाई भासता है, जैसे स्वप्नकी स्त्री असत्रूप होती है, अरु सत्रूप जानता है, तैसे यह जगत् भी असत्रूप सत् हो दिखाई देता है, आभासरूप जगत् है, अरु आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वदा अद्वैतरूप है, अरु जहां जैसा चिंतता है, तहां तैसा होकै भासता है, जैसे डब्बेविषे अनेक रत्न होते हैं, तामेंते जिसको चाहता है, तिसको लेता है, तैसे सर्वगत चिदाकाश है, जहां जैसा चिंतता है, तहां तैसा होइ भासता है ॥ हे रामजी ! अब पूर्वका प्रसग सुन, जब देवीने विदूरथपर अमृतरूपी ज्ञानवचनोंकी वर्षा करी तब उसके हृदयविषे विवेकरूपी सुंदर अंकुर आनि उत्पन्न भया, बहुरि सरस्वती कहत भई ॥ हे राजन् ! जो कछु कहना था, सो मैंने तुझको कहा है, अरु अब रणसंग्रामविषे मृतक होना है यह मै जानती हौं, अरु अब हम जाती हैं, लीलादिको दिखानेकेनिमित्त हम आई थीं सो देखा है ॥ वसिष्ठ उवाच ! हे रामजी ! जब इसप्रकार मधुरवाणी करि सरस्वतीने कहा तब बुद्धिमान् जो राजा विदूरथ है सो कहत भया ॥ विदूरथ उवाच ॥ हे देवि ! अब तुम्हारा दर्शन किया, बडेका दर्शन निरर्थक नहीं होता, सो महाफल देनेहारा है॥ हे देवि ! मैं भी ऐसा हूं कि,जो अर्थी मेरेते आन प्राप्त होता,तिसको मैं निरर्थक नहीं करता, सबका अर्थ पूर्ण करि देता था अरु तुम तौ साक्षात् ईश्वरी हौ, ताते यह वर मुझको देहु जो देहको त्यागिकरि लोकांतरमें पद्मके शवदेहविषे जाय प्राप्त होऊं, जैसे स्वप्नते स्वप्नान्तरको प्राप्त होता है, तैसे प्राप्त होऊ ॥ हे देवि ! जो भक्त शरणको आय प्राप्त होता है, तिसका बडे त्याग नहीं करते, उसका अर्थ सिद्ध करते हैं, ताते यही वर मुझको देहु, जो उसी देहविषे प्राप्त होऊ, मेरे मंत्री अरु भार्या अरु लीला

भी मेरे साथ होवै ॥ सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन् ! ऐसेही होवैगा, पद्म राजाके शरीरविषे प्राप्त होवैगा, अरु बोधसहित निःशक होइकरि राज्य करैगा, हमारा सेवना किसीको व्यर्थ नही, जैसी कामनाकरिकै कोऊ हमको सेवता है, सो तैसे फलको प्राप्त होता है इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलो० स्वप्नपुरुपसत्यतावर्णन नाम त्रिशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशत्तमः सर्गः ३१.

अग्निदाहवर्णनम् ।

सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन् ! अव तू रणविषे मृतक होवैगा, मृतक होयके पूर्वके पद्मराजाके शरीरविषे जाय प्राप्त होवैगा, अरु यह तुम्हारी भार्या अरु मत्री भी तहां जाय प्राप्त होवैगे ॥ हे राजन् तुम ऐसे चले जाओगे, जैसे वायु चला जाता है, अव हम जाती हैं तुम्हारा हमारा साथ कैसे होवै, जैसे अश्व अरु खर, मृग अरु ऊट हस्तीका सग नहीं होता, तैसे तुम्हारा हमारा क्या संग है ? ताते हम जाती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जव इसप्रकार देवीने कहा, तव एक पुरुष आइ निकसा, अरु कहत भया, हे राजन् ! शत्रु आए है, अरु चक्र गदा आदिक शस्त्रोंकी वर्षा करते आते हैं, जैसे प्रलयकालविषे मदराचल पर्वत अस्ताचल आदिक पर्वत वायुकरि उडते है, तैसे शत्रु चले आते हैं, अरु सर्व दिशा सेनाकरि पूर्ण भई हैं, जैसे महाप्रलयविषे सर्व स्थान जलसों पूर्ण होते है, तैसे सेनाकरि सर्व स्थान पूर्ण भए है, अरु अग्नि भी तिसने लगाइ दई है, तिसकरि स्थान जलने लगे है, अरु शब्द करते है, अरु बाण नदीके प्रवाहकी नाई चले आते हैं, अग्नि ऐसी लगी है, जैसे महाप्रलयकी वडवाग्नि समुद्रको शोषती है, तैसे नगरोंको जलाती है, तव दोनों देवियां अरु राजा अरु मंत्री ऊचे होइके झरोखाविषे वैठके देखने लगे क्या देखा, कि वडी सेना चली आती है, जैसे प्रलयकालविषे मेघ चले आते हैं, तैसे सेना चली आती है, अरु जैसे प्रलयकी अग्निकरि दिशा पूर्ण होती हैं, तैसे अग्निकी ज्वालाकरि पूर्ण भई हैं, अरु तिसते चिनगारियां उडती

है, मानो तारागण गिरते हैं, अंगारोंकी वर्षा होती है, तिसकरि जीव पड़े जलते हैं, अरु जो सुंदर स्त्रियां नानाप्रकारके भूषणोंसहित पूर्ण थीं, सो तृणोंकी अग्निविषे पडी जलती है, पुरुषके देह अरु वस्त्र पडे जलते हैं, अरु हाय हाय शब्द करते हैं, अरु जलते जलते बांधव पुत्र स्त्रियोंको ढूँढते हैं ॥ हे रामजी ! यह आश्चर्य देख, जो ऐसे स्नेहकरिके जीव बांधे हुए हैं, जो मृत्युकालविषे भी स्नेहको त्याग नहीं सकते, इसप्रकार बडा क्षोभ हुआ, अरु सेनाके लोक लोकोंको मारिकै स्त्रियोंको लेजाते हैं, कई अग्निविषे जलते हैं ॥ हे रामजी ! तिस कालमें ऐसा शब्द हुआ, कि रणभूमिका शब्द छपगया, ऐसा शब्द करे, भाई हाय, पिता हाय, माता हाय, पुत्र हाय, स्त्री हाय,इत्यादिक शब्दोंकरि रणभूमिका शब्द आच्छादित हो गया, अरु घोडे, गौ, बलद, ऊंट, आदिक पशु इकट्ठे मिल गये, अरु अग्निकी ज्वाला वृद्ध होती जावे, बडा क्षोभ आनि उदय हुआ, जैसे महाप्रलयकी अग्नि होती है, तैसे सब स्थान अग्निकरि पूर्ण भये, तिन्होंविषे अनेक जीव अरु स्थानक पडे दग्ध होते हैं, अरु शब्द करे हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ३२.



अग्निदाहवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार राजा नगरको देखता था, जो उस पुरमें लीला सहेलियोंसहित अपने दूसरे स्थानते तहां आई, जहां राजा विदूरथ था, जैसे कमलोंविषे लक्ष्मी आवे, तैसे आई, महासुंदर भूषण कछुक टूटे हुए, कछुक शिथिल हैं, अरु सहेलियोंसहित आई, एक सहेली कहत भई ॥ हे राजन् तेरे शत्रु बहुतेरे आन पसरे हैं, अंतःपुरविषे जो स्त्री थीं, सो भी ले गये हैं,तहासों यह लीला राणी हम चुराइ ले आई हैं, जैसे इंद्रके गृहविषे दैत्य आन पडे, तैसे अरु इस रानीको बचाइकरि तुम्हारे पास ले आई हैं, सो हम बडा यत्न करि ले आई हैं,अरु

लोकोंको तिन शत्रुओंने बडा कष्ट दिया है, तुम्हारे द्वारेपर जो सेना वैठी है, तिसको वह चूर्ण करते है, अरु नगर जलाय दिया है, लूटि लिया है ॥ हे रामजी ! जव इसप्रकार राजाको सहेलियोंने कहा, तव राजाने सरस्वतीजीको कहा, हे देवीजी ! यह लीला तुह्मारी शरण आई है, अरु तुम्हारे चरणकमलोंकी भ्रमरी है, इसकी रक्षा तुम करना, मैं अव युद्ध करनेको जाता हौं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार राजा कहिकरि क्रोधसंयुक्त होइकै युद्ध करनेको रणकी ओर चला, जैसे मत्त हस्ती धावता है, अथवा सिंह कंदराते निकसकरि धावता है, तैसे अर्धरात्रिके समय राजा चला, जव वहां लीला सहेलियांसहित आई, तव देवीकेसाथ जो प्रथम लीला थी, सो देखत भई, क्या देखा, कि अपनी मूर्ति जैसाही सुंदर आकार है, जैसे आरसीविपे प्रतिविंव होता है, तैसे देखके कहत भई ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ हे देवि ! यहां मैं क्योंकरि आन प्राप्त भई हौं, जव मै प्रथम आई थी, तव मुझको मंत्री टहलुए पुरवासी अनेक दृष्ट आये थे, वह संशय मैने तुमसों निवृत्त किया था, वहुरि यह जो मै उस प्रकार कैसे आन स्थित भई हौ ! यह दृश्य रूप कैसा आदर्श है, जिसके अंतरवाहिर प्रतिविंव होता है, जैसे मंत्री टहलुए हैं, अरु मेरा स्वरूप यह है, यह क्यों है ? दृश्यभाव दो क्योंकर भासता है ? यह संशय मेरा दूर करो ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जैसे चित्तसंवित्‌विपे स्पंद फुरता है, तैसे तत्काल सिद्ध होता है, जिस अर्थको चिंतता चित्तसंवित् शरीरको त्यागता है, तिसी अर्थको जाय प्राप्त होता है, तिसी क्षणविपे देश, काल, पदार्थकी दीर्घता होती है, जैसे स्वप्नसृष्टि फुरि आती है, तैसे परलोक सृष्टि भास आती है ॥ हे लीले ! जव तेरा भर्त्ता मृतक होने लगा, तव इसका स्नेह जो तेरे विपे अरु मंत्रियोंविपे वहुत था, तिसकरि वही रूप सव होइकरि अपनी वासनाके अनुसार भासा, जैसे संकल्पपुर भासता है, जैसे स्वप्नसेना भासती है, तैसे यह देश, काल, पदार्थ भासे है ॥ हे लीले ! जो कोऊ पदार्थ सत्‌रूप होइकरि भासते है, सो अज्ञानकालविपे भासते हैं, ज्ञानकालविपे सव तुल्य होइके जाते है ॥ अधिक न्यून कोऊ नहीं रहता, जाग्रत्‌विपे स्वप्न झूठ भासता है, स्वप्नविपे

जाग्रत्का अभाव हो जाता है, जाग्रत् शरीर मृतकाविषे नाश हो जाता है, मृतक जन्मविषे असत् होय जाता है, मृतकविषे जन्म असत् होय जाता है ॥ हे लीले ! जब इसप्रकार इनको विचारि देखिये तौ सब अवस्था भ्रांतिमात्र है, वास्तव कोऊ नही ॥ हे लीले ! स्वर्गते आदि अरु महाप्रलयपर्यंत कछु हुआ नहीं, सदा ज्योंकी त्यों ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जगत्कल्पना आभासमात्र है, अज्ञानकरिकै भासती है, जैसे आकाशविषे तरुवरे भासते है, तैसे आत्माविषे जगत् भ्रमकरिकै भासता है, अरु वास्तवते किंचित् भी कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरग उपजिकरि लीन होते है, तैसे आत्माविषे जगत् उपजिकरि लीन होते है, ताते अहं त्वं आदिक शब्द भ्रांतिमात्र हैं ॥ हे लीले ! यह जगत् मृगतृष्णाके जलवत् है, इसविषे आस्था करनी अज्ञान है, अरु भ्राति भी कछु नहीं, जैसे घन तमविषे यक्ष भासता है, सो यक्ष वस्तु नहीं ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, भ्राति भी कछु वस्तु नहीं, जन्म, मृत्यु, मोह सब असतरूप है, जेते कछु अह त्व आदिक शब्द है, सो महाप्रलयविषे अभाव हो जाते है, तिसके पाछे शुद्ध शांतरूप है, अब भी सोई जान, ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है ॥ हे लीले ! यह जो पृथ्वी आदि भूत भासते हैं, सो भी संवितरूप है, काहेते कि चित्तसवित् जब स्पदरूप होती है, तब यह जगत् होयके भासता है, इस कारणते सवितरूप है ॥ हे लीले ! जीवरूप जो समुद्र है, तिसविषे जगतरूप तरग उत्पन्न होते हैं, अरु लीन भी होते है, अरु स्वरूपते जलरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे अग्निविषे उष्णता होती है, तैसे जीवविषे सर्ग है, जो ज्ञानवान् है, तिसको सर्वात्मा भासता है, अरु अज्ञानीको भिन्न भिन्न कल्पना होती है ॥ हे लीले !जैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रसरेणु भासते है, अथवा जैसे पवनविषे स्पद होता है, तिसविषे सुगध होती है, सो निराकार है, तैसे जगत आत्माविषे निर्वपु है, भाव अभाव ग्रहण त्याग सूक्ष्म स्थूल चर अचर सर्व ब्रह्मके अवयव है ॥ हे लीले ! यह जगत जो साकाररूप भासता है, सो आत्माते भिन्न नहीं; जैसे वृक्षके अंग पत्र फल टासरूप होइ भासते है, तैसे ब्रह्मसत्ताही जगतरूप होइकरि भासती है, इतर कछु नहीं, जैसे चेतनसं-

वित्‌विषे स्पंद फुरता है- तैसे होइकारि भासता है, सो आकाशरूप संवित् ज्योंका त्यों है, तिसविषे और कल्पना भ्रममात्र है ॥ हे लीले ! यह जगत् भासता है, सो न सत् है- न असत् है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, जिसको असम्यक् ज्ञान होता है, तिसको जेवरीविषे सर्प भासता है, तो असत न हुआ, अरु जिसको सम्यक् बोध हुआ, तिसको सर्प सत् नहीं, तैसे ज्ञानकारि जगत् सत्यभासता है, अरु जिसको सम्यक् बोध हुआ है, तिसको सर्प सत् नहीं, तैसे अज्ञानकारि जगत् असत् नहीं भासता, आत्मज्ञान हुए सत् नहीं भासता, काहेते जो कछु वस्तु नहीं ॥ हे लीले ! जैसे जिसके अंतर स्पंद फुरता है, तिसका अनुभव करता है, जब यह जीव मृतक होता है, तब इसको क्षणविषे जगत् फुरि आता है, किसीको अपूर्वरूप फुरि आता है, किसीको पूर्वरूप फुरि आता है, किसीको पूर्व अपूर्व मिश्रित फुरि आता है, तिस कारणते तेरे भर्त्ताको वही मंत्री, स्त्री, सभा वासनाके अनुसार फुरि आये हैं, काहेते जो आत्मा सर्वत्ररूप है जैसा जैसा इसविषे तीव्र स्पंद फुरता है, तैसा होइकारि भासता है॥ हे लीले ! जैसे अपने मनोराज्यविषे प्रतिभा उदय हो आती है, सो सत्‌रूप हो भासती है, तैसे यह जो लीला तेरे सन्मुख बैठी है सो एही हुई है, अरु तेरे भर्त्ताकी जो तेरेविषे तीव्र वासना थी, तिसकारि राजाको तेरा प्रतिबिंबरूप होइकारि यह लीला आन प्राप्त भई है, तुझ जैसा शील अरु आचार कुल वपु इसको प्रतिबिंब भया है ॥ हे लीले ! सर्वगत संवित् आकाश है, जैसा जैसा उसविषे फुरना होता है, तैसा चिद्रूप आदर्शविषे प्रतिबिंब भासता है, जेता कछु जगत् है सो चेतन दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है, वस्तुते मैं तू अरु जगत् आकाश भुवन पृथ्वी राजा आदिक सब आत्मरूप हैं, आत्माही जगत्‌रूप होइ भासता है, जैसे बिल्लीविषे मज्जा होती है, सो बिल्लीते इतर कछु नहीं, बिल्लीही सवरूप है, तैसे यह जगत् ब्रह्मरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णनं नाम द्वात्रिंश सर्ग ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३



सत्यकामसंकल्प वर्णनम् ।

देव्युवाच ॥ हे लीले ! तेरा जो भर्त्ता राजा विदूरथ है, सो रणविषे संग्रामकरिकै शरीर त्यागैगा, त्याग करि उसही अंत पुरविषे प्राप्त होवैगा, अरु बहुरि राज्य करैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार देवीने कहा, तब विदूरथके पुरकी जो लीला है सो हाथ जोडिकै देवीको प्रणाम करत भई अरु कहत भई ॥ ॥ द्वितीयलीलोवाच ॥ हे देवि ! भगवति, मैं ज्ञप्तिरूपको नित्य पूजत भई हौं, बहुरि स्वप्नविषे उसने मुझको दर्शन दिया है, जैसे वह ईश्वरी थी, तैसे तुम मुझको दृष्टि आती हौ, ताते मुझपर कृपा करिकै मनवांछित फलको देहु ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार विदूरथकी लीलाने कहा, तब अपने भक्तके ऊपर प्रसन्न होइकरि देवी कहत भई ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! तैंने अनन्य होइकरि मेरी भक्ति करी है, तिसकरि तेरा शरीर भी जीर्ण भया है, अब मैं तुझ ऊपर प्रसन्न हौं, जो कछु तुझको वांछित है, सो वर माँग ॥ द्वितीयलीलोवाच ॥ जब मेरा भर्त्ता रणविषे देहको त्याग कर जावै, तब मैं इसी शरीर साथ तिसकी भार्या होऊं ॥ देव्युवाच ॥ तुझने भली प्रकार भावनासहित पुष्पादिकनसों निर्विघ्न मेरी सेवा करी है, ताते ऐसेही होवैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब देवीने कहा, तब पूर्व लीला कहत भई ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ हे देवि ! तुम तौ सत्यसंकल्प सत्यकाम ब्रह्मस्वरूप हौ, मुझको इसी शरीरसाथ विदूरथके गृहमें वसिष्ठ ब्राह्मणकी सृष्टिविषे क्यों न ले गये ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! मैं किसीका कछु नहीं करती, सर्व जीवके संकल्प मात्र देह हैं, अरु मैं ज्ञप्तिरूप हौं, एक एक जीवके अंतर चेतनमात्र देवता होइकरि स्थित हौं, जो जो जीव जैसी जैसी भावनाको धरता है, तैसी तैसी तिसको सिद्धता होती है ॥ हे लीले ! जब तैंने मेरा आराधन किया था तब यह प्रार्थना करी थी कि मेरे भर्त्ताका जीव इसी आकाश मंडपविषे रहै, अरु ज्ञानकी प्राप्ति भी मुझको होवै, तब मैंने तुझको ज्ञान-

का उपदेश दिया, तुझको ज्ञान प्राप्त भया है, अरु इसही निमित्त तैने पूजन किया है, ताते तुझको यही प्राप्त भया है, जो देहसहित भर्त्ताके साथ जावैगी, जैसा जैसा चित्तसंवित्‌विषे स्पंद दृढ होता है, तैसी सिद्धता होती है ॥ हे लीले ! यह जो कोऊ तप करता है, तिसकी दृढताकरके चिदात्माही देवता रूप होके फलको देता है, जैसे जैसे संकल्पकी तीव्रता किसीको होती है, चेतनसंवित्‌ते तिसको तैसाही फल होता है, चित्तसंवित्‌ते इतर किसीते किसको कदाचित् कछु फल नहीं प्राप्त होता, आत्मा सर्वगत सर्वके अंतर स्थित है, जैसे जिसविषे चैत्यताका यत्न होता है, तिसको तैसाही शुभ अशुभ भाव प्राप्त होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सत्यकामसंकल्पवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४



विदूरथमानभगवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! राजा विदूरथ जो देवीको कहिकारि संग्रामविषे गया था, सो क्या करत भया ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब राजा गृहते निकसा अरु संपूर्ण सेनाकरिकै शोभता भया, जैसे ताराविषे चंद्रमा शोभता है, तैसे सेनाविषे शोभता भया, तब रथपर आरूढ सभासहित संग्रामविषे आया, कैसा रथ है, जो मोती अरु माणिकोंसाथ पूर्ण है, अरु आठ घोड़े हैं, वायुते भी तीक्ष्ण चलते है, पंच ध्वजा हैं, ऐसे रथपर आरूढ हुआ, संग्रामविषे आनि पडा, जैसे सुमेरु पर्वत पखोंसहित समुद्रविषे जाय पड़े तैसे जाय पड़ा, तब दोनों सेना इकट्ठी हो गईं; जैसे प्रलयकालविषे समुद्र इकट्ठे हो जाते हैं, तैसे सेना इकट्ठी भई बडा युद्ध होने लगा अरु मेघोंकी नाईं योद्धोंके शब्द होने लगे, अरु शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी, जैसे मेघते बूंदोंकी वर्षा होती है, जैसे अग्निते चिनगारें निकसते हैं, तैसे युद्ध करने लगे, जैसे प्रलयकालकी वडवानल अग्नि होती है; तैसे शस्त्रोंते अग्नि निकसे, तिन शस्त्रोंकारि अनेक जीव मृत्युको प्राप्त भये, जिनते वडवाग्निकी नाईं अग्नि निकसे ऐसा वडा युद्ध होने लगा, तब

विदूरथकी सेना कछुक निर्बल भई, ऊर्ध्वमें जो दोनो लीला देवीकी दिव्यदृष्टि साथ देखतीथीं, तिन्होंने कहा ॥ हे देवि! तू तौ सर्वशक्ति है, अरु हमारेपर तेरी दया भी है,हमारे भर्त्ताकी जय क्यों नहीं होती! इसका कारण कहो ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! विदूरथका जो शत्रु सिद्धराजा है, तिसने चिरकालपर्यंत जयके निमित्त मेरी पूजा करी है अरु तुम्हारे भर्ताने जयके निमित्त पूजा नहीं करी, मोक्षके निमित्त पूजा करी है, ताते जीत सिद्धराजाकी होवैगी अरु तेरे भर्ताको मोक्षकी प्राप्ति होवैगी ॥ हे लीले! जिस जिस निमित्तकारि हमारी सेवना कोऊ करता है, हम तिसको तैसाही फल देती है, ताते राजा सिद्ध विदूरथको जीतिकारि राज्य करैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार देवी कहती थीं,फिर सेना सब देखने लगी, अरु दोनों राजोंका परस्पर तीव्र युद्ध होने लगा-ऐसे बाण चलावै मानो दोनों विष्णु हो खडे हैं, एक बाण विदूरथने चलाया, तिसके सहस्र हो गये, आगे गये तब वह भी लक्ष हो गये, बाणही परस्पर युद्ध करते टुकडे टुकडे होके गिर पडे, अरु ऐसे बाण दूरते दूर चले जावै, जैसे दीपक निर्वाण किया नहीं भासता, तैसे बाण भासैं नहीं, तब राजा सिद्धने मोहरूपी अस्त्र चलाया, तिसके आनेकारि एक विदूरथविना सब सेना मोहित भई, जैसे उन्मत्तको कछु सुधि नहीं रहती, तैसे उनको सुधि कछु न रही, नेत्रोंते परस्पर कारिकै देखतेही रहे, मानो मूर्तियां लिख छोडी है, तब राजा विदूरथको भी मोहका आवेश होने लगा, तब राजा विदूरथने प्रबोधरूपी शस्त्र चलाया, तिसकारि सबका मोह गया सबके देह प्रफुल्लित हो आये, जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते है, तब सिद्धराजाने नागास्त्र बाण चलाया, तिसकारि अनेक नाग निकस आये, ऐसे नाग आये, मानो पर्वत उडे आते है, सब दिशा नागोंकारि पूर्ण हो गई, अरु तिनके मुखते विष अरु अग्निकी ज्वाला निकसै, तिसकारि विदूरथकी सेनाने बहुत कष्ट पाया, तब राजा विदूरथने गरुडास्त्र चलाया, तिसकारि अनेक गरुड प्रकट हो आये तिन्हों कारि सब सर्प नष्ट हो गये; जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट हो जाता है तैसे सर्प नष्ट भये,नागोंको नष्ट कारिकै गरुड भी अंतर्धान हो गये, जैसे संकल्पके

त्यागेते सकलपसृष्टिका अभाव होजाता है, तैसे गरुडअभाव हो गये, जैसे स्वप्नते जागे हुए स्वप्ननगरका अभाव हो जाता है,तैसे गरुडका अभाव हो गया जो कोऊ वाण सिद्ध चलावै,तिसको विदूरथ नष्ट करै, जैसे सूर्य तमको नाश करै अरु वडी वाणोंकी वर्षा करी, तिसकरि सिद्ध भी क्षोभको प्राप्त भया तव पिछली लीलाने झरोखेविषे देखके देवीजीको कहा ॥ हे देवि ! मेरे भर्ताका अव जय होता है, तव देवीने सुनके मुसकाय मुखते कछु न कहा, और हृदयमें कहा कि, जीवका चित्त वहुत चचल हे, ऐसे देखते थे कि,सूर्य आय उदय हुआ,मानो सूर्य भी युद्धका कौतुक देखनेको आया है, सिद्धनें जो तमरूप अस्त्र चलाया तिसकरि सर्व दिशा श्याम हो गई,कछु भासा नहीं मानो काजलकी समष्टिता एकट्ठी भई है,तव विदूरथने सूर्यका प्रकाशरूपी अस्त्र चलाया, तिसकरि सर्व तम नष्ट हो गया जैसे शरत्कालकरि श्माम घटा सव नाश हो जाती है, शुद्ध आकाशही रहता है, जैसे आत्मज्ञानकरि लोभादिकका ज्ञानीको अभाव हो जाता है, जैसे लोभरूपी कज्जलके निवृत्त हुए ज्ञानवान्की वुद्धि निर्मल होती है, तैसे प्रकाशकरि तम नष्ट हो गया, सर्व दिशा निर्मल भई, अरु जैसे अगस्त्यमुनि समुद्रको पान करि गये थे, तैसे प्रकाश तमका पान करि गया, तव सिद्धने वेतालरूप अस्त्र चलाया, तिसकरि विदूरथकी सेना मोहित हो गई, जिनकी महाविकराल मूर्ति नग्नरूप परछायोंका रूप जिनका अरु श्यामरूप भासैं, अरु ग्रहण किये न जावैं, अरु जीवके अंतर प्रवेश करि जावैं, तिनके जो रहनेके स्थान हैं, शून्य मंदिरविषे रहे, चिकडोंविषे, पर्वतोंविषे, मशानोंविषे, इसते लेकरि जो मलिन स्थान है तिन्होंविषे रहते हैं, सो पिशाच कौन होते हैं, जिसकी शास्त्र उक्त क्रिया नही होती, मृत्युके समय सो मरिके भूत पिशाच होकरि वेताल होते हैं, सो अंतरते राग द्वेप तृष्णा भूखकरि जलते रहते हैं,अरु दृष्टिरूप इद्रियको नहीं प्राप्त होते, ऐसे जो दुष्ट जीव होते हैं, ताते विदूरथकी सेना दुःख पावने लगी, अरु उनका जो कोऊ वडा था, सो विदूरथके निकट आने लगा, तव विदूरथने रूपका नामक अस्त्र चलाया, तव महाभयानक रूप वडे नखकेश जिह्वा उदर होठ अरु नग्नरूप तिन साथ वह -कडकड कर

भया, अरु भैरव भोजन करै, मारै महाविकाल मूर्ति रक्त भरी खप्परमें पीवै, नृत्य करै अरु सबनको दुःख देवै, तब सिद्धने क्रोधित हो राक्षसरूपी अस्त्र चलाया, तिसकरिकै कोटि राक्षस निकस आये, भयानकरूप अरु कृष्णवपु अरु जिह्वा निकसी हुई, ऐसा चमत्कार करै, जैसे श्याम मेघविषे बिजली चमत्कार करती है, ऐसे अनेक राक्षस पातालते अरु दिशाते निकसिकै जो कोऊ होवै, तिसको मुखविषे पाड ले जावें, तिनको देखके विदूरथकी सेना बहुत भयको प्राप्त भई, जिसके सन्मुख हँसिके देखै सो भयसों मरि जावै, तब राजा विदूरथने अपनी सेनाको कष्टवान् देखके विष्णुनामक अस्त्र चलाया, तिसकरि सब राक्षस नष्ट हो गये, बहुरि राजा सिद्धने अग्निनामक अस्त्र चलाया, तब संपूर्ण दिशाविषे अग्नि पसर गई, तिसकरि लोक जलने लगे, तब राजा विदूरथने वरुणरूपी बाण चलाया, तिसकरि अग्निका दाह सब मिट गया, जैसे संतोंके संगकरि अज्ञानीके तीनों ताप मिट जाते हैं तैसे अग्निका ताप मिट गया, तब जलकरि सब स्थान पूर्ण हो गये, अरु सिद्धकी सेना बहुत जलविषे बहने लगी, तब सिद्धने शोषणमय अस्त्र चलाया, तिसकरि सब जल सूख गया, कहूँ कहूँ चिकड रह गया, बहुरि तेजोमय बाण चलाया तिसकरि चिकड भी सूख गया, अरु विदूरथकी सेना गरमीकरि व्याकुल हो गई, तपने लगी, जैसे मूर्खका हृदय क्रोधकरि जलता है, तब विदूरथने मेघनामक अस्त्र चलाया, तब मेघ वर्षने लगा, अरु शीतल मंद मंद वायु चला, तिसकरि सेनाकी तपत मिट गई, जैसे आत्माकी ओर आते जीवका संसरना घटता जाता है, तैसे विदूरथकी सेना शीतल भई, तब सिद्धने वायुरूपी अस्त्र चलाया, तिसकरि सूखे पत्रकी नाई विदूरथ फिरने लगा, तब विदूरथने पहाडरूपी अस्त्र चलाया, जिसकरि पहाडोंकी वर्षा पडी होवै, अरु वायुका मार्ग रोका गया, वायुका क्षोभ मिटि गया, सब पदार्थ स्थिरभूत हो गये, जैसे संवेदनते रहित चित्त शांत होता है, तैसे शांत हो गए, अरु पहाड उडिकै सिद्धकी सेनापर पडे, तब सिद्धने वज्ररूप अस्त्र चलाया, तब पर्वत नष्ट भये, अरु वज्र पडे वर्षे, तब विदूरथने ब्रह्मअस्त्र चलाया, तब वज्र नष्ट भये, अरु ब्रह्म-

अस्त्र अंतर्धान हो गये ॥ हे रामजी ! इसप्रकार परस्पर इनका युद्ध होत भया, जो सिद्ध अस्त्र चलावै, तव विदूरथ उसको विदारण करै, अरु जो विदूरथ चलावै, तव सिद्ध विदारण कर डारै, फिर विदूरथ राजाने एक ऐसा अस्त्र चलाया जो राजा सिद्धका रथ चूर्ण करि डारा, घोडे भी सव पटक डारे, तव सिद्ध राजा रथते निकस खडा हुआ, वहुरि सिद्धने ऐसा अस्त्र चलाया जो विदूरथका रथ अरु घोडे नष्ट किये, तव दोनों ढाल अरु तरवार लेकर उतर पडे, अरु युद्ध करने लगे, वहुरि दोनोंके रथवाहक और रथ ले आये, तिसके ऊपर आरूढ होकरि युद्ध करने लगे, विदूरथने सिद्धको वरछी चलाई, तव उसके हृदयविषे लगी, और रुधिर चला, तिसको देखि लीलाने देवीसे कहा, हे देवि ! मेरे भर्त्ताका जय हुवा है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार लीला कहती थी, तव सिद्धने वरछी चलाई सो विदूरथके हृदयविषे लगी; तिसको देखके विदूरथकी लीला शोकवान् भई अरु कहत भई ॥ हे देवि ! मेरा भर्त्ता मरता है, सिद्ध दुष्टने वडा कष्ट दिया है ॥ हे रामजी ! ऐसे कहती थी तहां सिद्धने खड्ग चलाया, तिससे विदूरथके पाँव काटे गये, वहुरि घोडे काटे गये, तौ भी विदूरथ युद्ध करता रहा, वहुरि विदूरथके शिरपर खड्गका प्रहार किया, तव विदूरथ मूर्च्छा पायके गिर पडा, ऐसे देखके उसके सारथी जो रथके चलानेहारे, सो रथको गृहमें ले आने लगे, तव सिद्ध तिसके पीछे दौड़ा कि, इसका शीश मैं ले आऊं, जैसे वादर कूदके पडे तैसे दौडने लगा, परंतु पकड न सका, जैसे अग्निविषे मच्छर प्रवेश नहीं कर सकता, तैसे देवीके प्रभावकरि विदूरथको पकड न सका ॥ इति श्रीयो० उत्प० विदूरथमा० नाम चतुस्त्रिंश· सर्ग ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ३५.

मृत्युमूर्च्छानंतरप्रतिमावर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तव रथवाही राजाको गृहमें ले आया, स्त्रियां, मंत्री, वांधव, कुटुंवी, रुदन करने लगे, वडे शब्द होने लगे, अरु सिद्धकी सेना लुटने लगी; हस्ति घोडे स्वामीविना फिरें, राजा सिद्धकी

जय है, बहुरि ढँढोरा फिराया, तब सर्व ओरते शांति भई, सिद्धराजाके ऊपर छत्र होने लगा, सब पृथ्वीका राजा सिद्ध हुआ, तिसका हुकुम चला, जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल निकसेते शांत भया, तैसे सर्व ओर शांति भई ॥ हे रामजी ! जब विदूरथ राजा गृहविषे जाय प्राप्त हुआ, तब तिसको अरु दूसरी लीलाको देखके प्रबुद्धलीला कहत भई ॥ हे देवि ! यह लीला इस शरीर साथ वहां क्योंकरि जाइ प्राप्त होवैगी, यह तो भर्त्ताको ऐसे देखके मृतकरूप हो गई है, अरु राजा भी मृत्युके निकट पड़ा है; कछुक श्वास आते जाते हैं ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! यह जेते आरंभ तू देखती है, और जो युद्ध हुआ है, तथा नानाप्रकारका जगत् है, सो सब भ्रांतिमात्र है अरु तेरा जो भर्त्ता पद्म था, तिसका हृदय जो मंडपाकाशविषे था, तहां यह सपूर्ण जगत् स्थित है ॥ अरु वह पद्मका मंडपाकाश वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है, अरु वह वसिष्ठ ब्राह्मणका मंडपाकाश सो चिदाकाशके आश्रय स्थित है ॥ हे लीले ! यह सपूर्ण जगत् वसिष्ठ ब्राह्मणके मडपाकाशकी पुर्यष्टकविषेही स्थित है, सो कैसे स्थित है, आकाशविषेही आकाश स्थित है, किंचन है, तिसकरिकै सपूर्ण जगत् पडा फुरता है, अरु वास्तव किंचन भी कछु वस्तु नहीं, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, तिस आत्मसत्ताविषे अहंत्व जगत् भ्रमकरिकै भासता है, उपजा कछु नहीं ॥ हे लीले ! तिस वसिष्ठ ब्राह्मणके मडपाकाशविषे नानाप्रकारके स्थान हैं, अरु तिनोंविषे प्राणी आते जाते व्यवहार होते भासते है, जैसे स्वप्नसृष्टिविषे नानाप्रकारके आरंभ भासते हैं, सो असतरूप हैं, तैसे यह जगत् भी असत्‌रूप है॥ हे लीले ! न यह द्रष्टा है, न आगे दृश्य है, सब भ्रमरूप है, अरु द्रष्टा, दर्शन, दृश्य सो त्रिपुटी पदार्थोंविषे है, जो दृश्य नहीं तो द्रष्टा कैसे होवै ? सब असत्‌रूप है, अरु जो इनते रहित परमपद है, सो दृदय अस्ततै रहित, नित्य, अज, शुद्ध, अविनाशी, अद्वैतरूप, अपने आपविषे स्थित है, जब तिसको जानता है तब दृश्य भ्रम नष्ट हो जाता है ॥ हे लीले ! दृश्य भ्रम करिकै भासता है, वास्तवते कछु नहीं, और न उपजैगा, जेते कछु सुमेरु आदिक पर्वतजाल भासते है अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते

जब यह मृतक होता है, तब प्रथम इसका अतवाहक शरीर होता है, पाछेते वासनाकरि आधिभौतिक होता है, तैसे तेरा भर्ता जब मृतक हुआ तब प्रथम उसका अतवाहक शरीर था, तिसते आधिभौतिक हो गया, जब आधिभौतिक हुआ तब प्रथम उसको जन्म भी हुआ, अरु मरण भी हुआ, जब तेरा भर्ता मृतक हुआ, तब इसको अपना जन्म अरु कुल भास आया, जन्मका अर्थ यह कि जनोंका समूह भासि आया, लीलाका जन्म भासि आया, माता पिता भासि आये, लीलाके साथ विवाह भासि आया, जैसे तू पद्मको भासि आई थी, तैसे वह विदूरथको भासि आये, इत्यादिक भ्रमकरि अपनी वासनाके अनुसार उसको भासि आया है ॥ हे लीले ! ब्रह्म सर्वात्मा है, जैसा जैसा तिसविषे तीव्र स्पद होता है, तैसेही सिद्ध होता है, अरु मैं जो हौं ज्ञप्तिरूप चेतनशक्ति हौं, तिस मेरेको जैसी इच्छा धारिकै पूजते हैं, तैसे फलकी प्राप्ति होती है ॥ हे लीले ! जैसी जैसी इच्छा धरि कोऊ हमको पूजते हैं, तिसीको तैसी सिद्धता प्राप्त होती है, इसते लीलाने जो मुझसों वर मांगा था कि, मैं विधवा न होऊँ इसी शरीरसाथ भर्ताके निकट जाऊ, तब मैंने कहा कि ऐसेही होवै, तब तिसकरि मृत्युमूर्च्छाके अनतर तिसको अपना शरीर भासि आया, अपने शरीरसहित जहां तेरा भर्ता पद्मका शरीर शव पडा है, तहां मंडपविषे ऐसेही शरीरसाथ उसके निकट जाय प्राप्त भई ॥ हे लीले ! उसको यह निश्चय रहा है कि, मैं उस शरीरसाथ आई हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मृत्युमूर्च्छानतरप्रतिमावर्णनं नाम पंचत्रिंशत्तम सर्ग ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तम सर्गः ३६

मण्डपाकाशगमनवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार वह लीला पद्मराजाके मंडपविषे जाय प्राप्त भई है सो श्रवण करु जब वह लीला मृतक मूर्च्छाको प्राप्त भई, तिसके अनतर उसको पूर्वके शरीरकी नाईं वासनाके

हैं सो सब आकाशरूप है, वास्तवते कछु उपजा नहीं, जैसे स्वप्नसृष्टि प्रत्यक्ष पडी भासती है, परंतु वास्तव कछु नहीं, तैसे यह जगत् भी जान ॥ हे लीले ! जीव जीव प्रति अपनी सृष्टि रहती है, परतु तिसविषे सार कछु नहीं, जैसे केलेके स्तभसों सार कुछ नहीं निकसता, तैसे सृष्टिविषे विचार कियेते सार कछु नहीं निकसता, परतु चित्तसवेदनके फुरनेकरि पडे भासते हैं ॥ हे लीले ! तेरे भर्त्ता पद्मकी जो सृष्टि है, सो वसिष्ठ ब्राह्मणके मडपाकाशविषे स्थित है, अर्थ यह जो विदूरथका जगत पद्मके हृदयविषे स्थित है, तहा तेरा शरीर पडा है, अरु राजा पद्मका शरीर शव पडा है ॥ हे लीले ! तेरे भर्त्ता पद्मकी जो सृष्टि है, सो हमको प्रादेशमात्र है, तिस प्रादेशमात्रविषे अंगुष्ठप्रमाण हृदयकमल है, तिसविषे तेरे भर्ताका जीवाकाश है, तिसविषे यह जगत् पडा फुरता है, सो प्रादेशमात्र भी है अरु दूरते दूर कोटि योजनोंपर्यंत है मार्गविषे वज्रसारकी नाई तत्त्वोंका आवरण है तिसको लंघके तेरे भर्ताकी सृष्टि है जहा वह शव पडा है, तिसके पास यह लीला जाय प्राप्त भई ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! ऐसे मार्गको लंघके वह क्षणविषे कैसे जाय प्राप्त भई, अरु जिस शरीरके साथ जाना था सो तौ शरीर यहाही पडा है वह किस रूपकरिके प्राप्त भई है अरु वहाके लोक उसको कैसे देख जानते भये हैं, सो सक्षेप मात्रते कहो ॥ हे लीले ! इस लीलाके वृत्तांत कथाकी महिमा ऐसी है. जिसके धारेते यह जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है, सक्षेपमात्र कहती हौं ॥ हे लीले ! जेता कछु जगत् भासता है, सो सब भ्रममात्र है, यह भ्रमरूप जगत् पद्मके हृदयविषे फुरता है, तिसविषे विदूरथका जन्म भी भ्रममात्र है, अरु लीलाका प्राप्त होना भी भ्रम है, सग्राम भी भ्रमरूप है, विदूरथका मरण भी भ्रमरूप है, तिसके भ्रमरूप जगत्विषे तुम हम बैठे हैं, बहुरि लीला तू भी अरु राजा भी भ्रमरूप है, अरु मैं सर्वात्मा हौं, मुझको सदा यही निश्चय रहता है, हम जो उदय हुई हैं, सो उदयकी नाई उदय नहीं हुई ॥ हे लीले ! जब तेरा भर्ता मृतक होने लगा था, तब तेरेविषे उसका स्नेह बहुत था, तिसकरि मृतक हुए भी कमलनयन युवावस्था महासुंदर भूषणोंको पहिरे हुए तू वासनाके अनुसार उसको आन प्राप्त भई ॥ हे लीले !

जब यह मृतक होता है, तब प्रथम इसका अतवाहक शरीर होता है, पाछेते वासनाकरि आधिभौतिक होता है, तैसे तेरा भर्ता जब मृतक हुआ तब प्रथम उसका अतवाहक शरीर था, तिसते आधिभौतिक हो गया, जब आधिभौतिक हुआ तब प्रथम उसको जन्म भी हुआ, अरु मरण भी हुआ, जब तेरा भर्ता मृतक हुआ, तब इसको अपना जन्म अरु कुल भास आया, जन्मका अर्थ यह कि जनोंका समूह भासि आया, लीलाका जन्म भासि आया, माता पिता भासि आये, लीलाके साथ विवाह भासि आया, जैसे तू पद्मको भासि आई थी, तैसे वह विदूरथको भासि आये, इत्यादिक भ्रमकरि अपनी वासनाके अनुसार उसको भासि आया है ॥ हे लीले ! ब्रह्म सर्वात्मा है, जैसा जैसा तिसविषे तीव्र स्पंद होता है, तैसेही सिद्ध होता है, अरु मैं जो हौं ज्ञप्तिरूप चेतनशक्ति हौं, तिस मेरेको जैसी इच्छा धारिकै पूजते हैं, तैसे फलकी प्राप्ति होती है ॥ हे लीले ! जैसी जैसी इच्छा धारि कोऊ हमको पूजते हैं, तिसीको तैसी सिद्धता प्राप्त होती है, इसते लीलाने जो मुझसों वर मांगा था कि, मैं विधवा न होउँ इसी शरीरसाथ भर्ताके निकट जाऊं, तब मैंने कहा कि ऐसेही होवै, तब तिसकरि मृत्युमूर्च्छाके अनतर तिसको अपना शरीर भासि आया, अपने शरीरसहित जहां तेरा भर्ता पद्मका शरीर शव पडा है, तहां मंडपविषे ऐसेही शरीरसाथ उसके निकट जाय प्राप्त भई ॥ हे लीले ! उसको यह निश्चय रहा है कि, मैं उस शरीरसाथ आई हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मृत्युमूर्च्छानतरप्रतिमानर्णन नाम पंचत्रिंशत्तम सर्ग ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ३६

मण्डपाकाशगमनवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! [illegible] वह लीला प[illegible] मंडपविषे जाय प्राप्त भई है सो श्रवण [illegible] जब वह ली[illegible] इसही [illegible] मूर्च्छाको प्राप्त भई, तिसके अनतर उसको [illegible] पद्मशरीर[illegible], सो मंडपविषे

हैं सो सब आकाशरूप है, वास्तवते कछु उपजा नहीं; जैसे स्वप्नसृष्टि प्रत्यक्ष पडी भासती है, परंतु वास्तव कछु नहीं, तैसे यह जगत् भी जान ॥ हे लीले ! जीव जीव प्रति अपनी सृष्टि रहती है, परंतु तिसविषे सार कछु नहीं, जैसे केलेके स्तंभसों सार कुछ नहीं निकसता, तैसे सृष्टिविषे विचार कियेते सार कछु नहीं निकसता, परतु चित्तसंवेदनके फुरनेकारि पडे भासते हैं ॥ हे लीले ! तेरे भर्त्ता पद्मकी जो सृष्टि है, सो वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है, अर्थ यह जो विदूरथका जगत् पद्मके हृदयविषे स्थित है, तहां तेरा शरीर पडा है, अरु राजा पद्मका शरीर शव पडा है ॥ हे लीले ! तेरे भर्त्ता पद्मकी जो सृष्टि है, सो हमको प्रादेशमात्र है, तिस प्रादेशमात्रविषे अंगुष्ठप्रमाण हृदयकमल है, तिसविषे तेरे भर्ताका जीवाकाश है, तिसविषे यह जगत् पडा फुरता है, सो प्रादेशमात्र भी है अरु दूरते दूर कोटि योजनोंपर्यंत है मार्गविषे वज्रसारकी नाईं तत्त्वोंका आवरण है तिसको लघके तेरे भर्ताकी सृष्टि है जहा वह शव पडा है, तिसके पास यह लीला जाय प्राप्त भई ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! ऐसे मार्गको लंघके वह क्षणविषे कैसे जाय प्राप्त भई, अरु जिस शरीरके साथ जाना था सो तौ शरीर यहाही पडा है वह किस रूपकरिकै प्राप्त भई है अरु वहांकि लोक उसको कैसे देख जानते भये हैं, सो सक्षेप मात्रते कहौ ॥ हे लीले ! इस लीलाके वृत्तात कथाकी महिमा ऐसी है जिसके धारेते यह जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है, सक्षेपमात्र कहती हों ॥ हे लीले ! जेता कछु जगत् भासता है, सो सब भ्रममात्र है, यह भ्रमरूप जगत् पद्मके हृदयविषे फुरता है, तिसविषे विदूरथका जन्म भी भ्रममात्र है, अरु लीलाका प्राप्त होना भी भ्रम है, सग्राम भी भ्रमरूप है, विदूरथका मरण भी भ्रमरूप है, तिसके भ्रमरूप जगत्विषे तुम हम वैठे हैं, वहुरि लीला तू भी अरु राजा भी भ्रमरूप है, अरु मैं सर्वात्मा हौं। मुझको सदा यही निश्चय रहता है, हम जो उदय हुई हैं, सो उदयकी नाईं उदय नहीं हुई ॥ हे लीले ! जब तेरा भर्ता मृतक होने लगा था, तब तेरेविषे उसका स्नेह बहुत था, तिसकरि मृतक हुए भी कमलनयन युवावस्था महासुंदर भूषणोंको पहिरे हुए तू वासनाके अनुसार उसको आन प्राप्त भई ॥ हे लीले !

जब यह मृतक होता है, तब प्रथम इसका अंतवाहक शरीर होता है, पाछेते वासनाकरि आधिभौतिक होता है, तैसे तेरा भर्ता जब मृतक हुआ तब प्रथम उसका अतवाहक शरीर था, तिसते आधिभौतिक हो गया, जब आधिभौतिक हुआ तब प्रथम उसको जन्म भी हुआ, अरु मरण भी हुआ, जब तेरा भर्ता मृतक हुआ, तब इसको अपना जन्म अरु कुल भास आया, जन्मका अर्थ यह कि जनोंका समूह भासि आया, लीलाका जन्म भासि आया, माता पिता भासि आये, लीलाके साथ विवाह भासि आया, जैसे तू पद्मको भासि आई थी, तैसे वह विदूरथको भासि आये, इत्यादिक भ्रमकरि अपनी वासनाके अनुसार उसको भासि आया है ॥ हे लीले ! ब्रह्म सर्वात्मा है, जैसा जैसा तिसविषे तीव्र स्पद होता है, तैसेही सिद्ध होता है, अरु मैं जो हौ ज्ञप्तिरूप चेतनशक्ति हौ, तिस मेरेको जैसी इच्छा धारिके पूजते हैं, तैसे फलकी प्राप्ति होती है ॥ हे लीले ! जैसी जैसी इच्छा धारि को [illegible] हमको पूजते हैं, तिसीको तैसी सिद्धता प्राप्त होती है, इसते लीलाने जो [illegible] हमसों वर मांगा था कि, मैं विधवा न होऊँ इसी शरीरसाथ भर्ताके नि[illegible]जाऊ, तब मैंने कहा कि ऐसेही होवै, तब तिसकरि मृत्युमूर्च्छाके अन[illegible] तिसको अपना शरीर भासि आया, अपने शरीरसहित जहा तेरा [illegible] पद्मका शरीर शव पडा है, तहां मंडपविषे ऐसेही शरीरसाथ उसके [illegible]ट जाय प्राप्त भई ॥ हे लीले ! उसको यह निश्चय रहा है कि, मै उ[illegible]रीरसाथ आई हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मृत्युमूर्च्छानंतरप्रतिमावर्णनं नाम पंचत्रिंशत्तम सर्ग ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तम· सर्गः ३६

मण्डपाकाशगमनवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार वह लीला मडपविषे जाय प्राप्त भई है सो श्रवण करु जब मूर्च्छाको प्राप्त भई, तिसके अनंतर उसको पूर्वके

हैं सो सब आकाशरूप है, वास्तवते कछु उपजा नहीं, जैसे स्वप्नसृष्टि प्रत्यक्ष पडी भासती है, परंतु वास्तव कछु नहीं, तैसे यह जगत् भी जान ॥ हे लीले ! जीव जीव प्रति अपनी सृष्टि रहती है, परंतु तिसविषे सार कछु नहीं, जैसे केलेके स्तंभसों सार कुछ नहीं निकसता, तैसे सृष्टिविषे विचार कियेते सार कछु नहीं निकसता, परंतु चित्तसंवेदनके फुरनेकरि पडे भासते हैं ॥ हे लीले ! तेरे भर्त्ता पद्मकी जो सृष्टि है, सो वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है, अर्थ यह जो विदूरथका जगत् पद्मके हृदयविषे स्थित है, तहां तेरा शरीर पडा है, अरु राजा पद्मका शरीर शव पडा है ॥ हे लीले ! तेरे भर्त्ता पद्मकी जो सृष्टि है, सो हमको प्रादेशमात्र है, तिस प्रादेशमात्रविषे अंगुष्ठप्रमाण हृदयकमल है, तिसविषे तेरे भर्ताका जीवाकाश है, तिसविषे यह जगत् पडा फुरता है, सो प्रादेशमात्र भी है अरु दूरते दूर कोटि योजनोंपर्यंत है मार्गविषे वज्रसारकी नाईं तत्त्वोंका आवरण है तिसको लघके तेरे भर्ताकी सृष्टि है जहां वह शव पडा है, तिसके पास यह लीला जाय प्राप्त भई ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! ऐसे मार्गको लघके वह क्षणविषे कैसे जाय प्राप्त भई, अरु जिस शरीरके साथ जाना था सो तौ शरीर यहांही पडा है वह किस रूपकरिकै प्राप्त भई है अरु वहांके लोक उसको कैसे देख जानते भये है, सो संक्षेप मात्रते कहौ ॥ हे लीले ! इस लीलाके वृत्तांत कथाकी महिमा ऐसी है. जिसके धारेते यह जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है, संक्षेपमात्र कहती हौं ॥ हे लीले ! जेता कछु जगत् भासता है, सो सब भ्रममात्र है, यह भ्रमरूप जगत् पद्मके हृदयविषे फुरता है, तिसविषे विदूरथका जन्म भी भ्रममात्र है, अरु लीलाका प्राप्त होना भी भ्रम है, संग्राम भी भ्रमरूप है, विदूरथका मरण भी भ्रमरूप है, तिसके भ्रमरूप जगत्विषे तुम हम बैठे हैं, बहुरि लीला तू भी अरु राजा भी भ्रमरूप है, अरु मैं सर्वात्मा हौं। मुझको सदा यही निश्चय रहता है, हम जो उदय हुई हैं, सो उदयकी नाईं उदय नहीं हुई ॥ हे लीले ! जब तेरा भर्ता मृतक होने लगा था, तब तेरेविषे उसका स्नेह बहुत था, तिसकरि मृतक हुए भी कमलनयन युवावस्था महासुंदर भूषणोंको पहिरे हुए तू वासनाके अनुसार उसको आन प्राप्त भई ॥ हे लीले !

जब यह मृतक होता है, तब प्रथम इसका अंतवाहक शरीर होता है, पाछेते वासनाकरि आधिभौतिक होता है, तैसे तेरा भर्ता जब मृतक हुआ तब प्रथम उसका अंतवाहक शरीर था, तिसते आधिभौतिक हो गया, जब आधिभौतिक हुआ तब प्रथम उसको जन्म भी हुआ, अरु मरण भी हुआ, जब तेरा भर्ता मृतक हुआ, तब इसको अपना जन्म अरु कुल भास आया, जन्मका अर्थ यह कि जनोंका समूह भासि आया, लीलाका जन्म भासि आया, माता पिता भासि आये, लीलाके साथ विवाह भासि आया, जैसे तू पद्मको भासि आई थी, तैसे वह विदूरथको भासि आये, इत्यादिक भ्रमकरि अपनी वासनाके अनुसार उसको भासि आया है ॥ हे लीले । ब्रह्म सर्वात्मा है, जैसा जैसा तिसविषे तीव्र स्पद होता है, तैसेही सिद्ध होता है, अरु मैं जो हौ ज्ञप्तिरूप चेतनशक्ति हौ, तिस मेरेको जैसी इच्छा धारिकै पूजते हैं, तैसे फलकी प्राप्ति होती है ॥ हे लीले । जैसी जैसी इच्छा धारि क[illegible] हमको पूजते हैं, तिसीको तैसी सिद्धता प्राप्त होती है, इसते लीलाने [illegible]मुझसों वर मागा था कि, मैं विधवा न होउँ इसी शरीरसाथ भर्ताके [illegible] जाऊं, तब मैने कहा कि ऐसेही होवे, तब तिसकारि मृत्युमूर्च्छाके [illegible] तिसको अपना शरीर भासि आया, अपने शरीरसहित जहां [illegible] पद्मका शरीर शव पडा है, तहां मडपविषे ऐसेही शरीरसाथ उस[illegible]कट जाय प्राप्त भई ॥ हे लीले । उसको यह निश्चय रहा है कि, मैं [illegible] शरीरसाथ आई हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मृत्युमूर्च्छानतरप्रतिभावर्णनं नाम पचत्रिंशत्तम सर्ग ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तम सर्गः ३६

मण्डपाकाशगमनवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी । जिसप्रकार वह लीला प[illegible] मडपविषे जाय प्राप्त भई है सो श्रवण करु जब वह ली[illegible] मूर्च्छाको प्राप्त भई, तिसके अनतर उसको पूर्वके शरीर[illegible] सो सकल्पविषे

स्थित था, सो अपना संकल्प वह साथ ले गई है, ताते अपने उसी शरीर साथ वह गई है, ऐसे आपको जानती भई है, कि मैं वही लीला हौं॥ हे लीले! आत्मसत्ता जो है, सो सर्वात्मरूप है, जैसी जैसी भावना उसविषे दृढ होती है, तैसाही रूप इसका होइ जाता है, जिसको यह निश्चय हुआ, कि मैं पंचभूतकरूप हौं, तिसको ऐसेही दृढ होता है, कि मैं उड नहीं सकता॥ हे लीले! यह लीला तो अविदितवेदन थी, अर्थ यह जो अज्ञानसहित थी, आधिभौतिक भ्रम नहीं निवृत्त भया था, परंतु मेरा वर था, इस कारणते उसको मृत्यु मूर्च्छाके अनंतर भासि आया, कि मैं देवीके वरकर चली जाऊंगी, इस वासनाकी दृढता करिके जाय प्राप्त भई है॥ हे लीले! यह जगत् भ्रांतिमात्र है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरि भासता है तैसे आत्माविषे जगत् भ्रमकरि भासता है, सब जगत् आत्माविषे आभासरूप है, सर्वका अधिष्ठान आत्मसत्ता अपने आपही अज्ञानकरिकै दूर भासता है॥ हे लीले! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो सदा शांतरूप आत्मानंदकरि तृप्त रहते हैं, अरु जो अज्ञानी हैं, सो शांति कैसे पावें? जैसे जिसको ताप चढा होता है, तिसका अंतर भी पड़ा जलता है, अरु तृषाभी बहुत लगती है, तैसे जिसको अज्ञानरूपी ताप चढा हुआ है, तिसका अंतर रागद्वेषकरिकै पड़ा जलता है, अरु विषयोंकी तृष्णारूपी तृषा भी बहुत होती है, अरु जिसका अज्ञानरूपी तम नष्ट भया है, तिसका रागद्वेषादिककरि अंतर नहीं जलता, अरु विषयकी तृष्णारूपी तृषा भी नष्ट भई है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मंडपाकाशगमनवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः॥ ३६॥

सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ३७

मृत्युविचारवर्णनम्।

देव्युवाच॥ हे लीले! जो पुरुष अविदितवेद है, अर्थ यह जो जानने योग्य पदको नहीं जाना सो बड़ा पुण्यवान् होवै तौ भी तिसको अंतवाहकता प्राप्त नहीं होती, अरु अंतवाहक शरीर भी झूठ है, काहेते कि

संकल्परूप है, सो झूठ है, ताते जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो उपजा कछु नहीं, शुद्ध चिदाकाश सत्ता अपने आपविषे स्थित है॥ लीलोवाच॥ हे देवि! जो यह सर्व जगत् सकल्पमात्र है, तौ भावरूप पदार्थ कैसे होते हैं, अरु अभावरूप कैसै होते है, जो अग्नि उष्णरूप है, पृथ्वी स्थिररूप है, वर्फशीतल रूप है, आकाशकी सत्ता है, कालकी सत्ता है, कोऊ स्थूल पदार्थ है, कोऊ सूक्ष्म पदार्थ है, ग्रहण करना, त्यागकरना, जन्म अरु मृतक होता है, मृतक हुआ वहुरि जन्मता है, इत्यादिक सत्ता कैसे भासती है?॥ देव्युवाच॥ हे लीले! जव महाप्रलय होता है, तव सर्व पदार्थ अभावको प्राप्त होते है, अरु कालकी सत्ता नष्ट हो जाती है, तिसके पाछे अनंत चिदाकाश सव कलनाते रहित वोधमात्र ब्रह्मसत्ताही रहती है, तिस चेतनमात्रसत्ताते जव चित्तसवित् चेत्यता होती है, तव चेतन सवित्‌विषे आपको तेज अणु जानत भई है, जैसे स्वप्नविषे कोऊ आपको पक्षीरूप उड़ता देखै तैसे देखता है, तिसते स्थूलता होती है, सो स्थूलता ब्रह्मांडरूप होती है, तिसविषे तेज अणु आपको ब्रह्मारूप जानती है, कि मै ब्रह्मा हौं, वहुरि ब्रह्मारूप होइकरि जगत्‌को रचता है, जैसे जैसे ब्रह्मा चेतता जावै तैसे तैसे स्थिरतारूप होता जावै आदिरचनाकरि जैसे निश्चय धारा कि यह ऐसे होवै, अरु एते काल रहै, तिसका नाम नीति है, जैसे आदिही रचना नीतिकरि है सो ज्योंकी त्यों होती है, तिसके निवारणको कोऊ समर्थ नहीं अरु वस्तुते आदि ब्रह्माही अकारणरूप है, अर्थ यह जो उपजा कछु नही तौ जगत्‌का उपजना मै कैसे कहौं?॥ ॥ हे लीले! स्वरूपते कछु उपजा नहीं, परतु चेतनसवेदनके फुरणेविषे जगत् आकार होइके भासता है, तिसविषे जैसे निश्चय है, तैसेही स्थित है, अग्नि उष्णही है, वर्फ शीतलही है, पृथ्वी स्थिररूपही है, जैसे उपजे है, तैसेही स्थिर है॥ हे लीले! जो चेतन है, तिस ऊपर भी नीति है, जो उपदेशका अधिकारी है, अरु जो जड है, तिनोंविषे वह स्वभाव है, जो आदि चित्तसवित्‌विषे आकाशका फुरणा हुआ, तव आकाशरूप होकरि स्थित भया, जव कालका स्पद फुरता है, तव वही चेतनसंवित

कालरूप होकरि स्थित होता है, जब वायुकी चेतनता हुई तब वही संवित् वायुरूप होकरि स्थित होता है, इसीप्रकार अग्नि जल पृथ्वीरूप होइकरि स्थित भया है, स्थूल सूक्ष्मरूप होइकरि चेतनसंवित्में स्थित हो रहा है, जैसे स्वप्नविषे चेतनसंवितही पर्वत वृक्षरूप होइकरि स्थित होता है, तैसेही चेतनसंवित् जगत्रूप होइकरि स्थित भया है॥ हे लीले। जैसे आदि नीतिविषे पदार्थोंने संकल्परूप धरे हैं तैसेही स्थित है, तिसके निवारणको समर्थ कोऊ नहीं, काहेते कि तीव्र अभ्यास चेतनका किया है, जब वही संवित् उलटकरि और प्रकार स्पंद होवे, तब और प्रकार होवै, अन्यथा नहीं होता ॥ हे लीले । यह जगत् सत् नहीं, जैसे संकल्प नगर भ्रमसिद्ध है, जैसे स्वप्नपुरुष असत्रूप होता है, जैसे ध्याननगर असत्रूप होता है, तैसे यह जगत् असत्रूप है, अज्ञानकरिके सत्की नाईं भासता है । जैसे स्वप्नसृष्टिके आदि सन्मात्रसत्ता होती है, तिस सन्मात्रते आभास किंचन स्वप्नसृष्टिका अकारण होता है, तैसे यह जाग्रत जगत्के आदि सन्मात्रसत्ता होती है, तिस सन्मात्रते आभास किंचन स्वप्नसृष्टिका अकारण होता है, तैसे यह जाग्रत जगत्के आदि सन्मात्र सत्ता होती है, तिसते किंचन अकारणरूप यह जगत् होता है ॥ हे लीले ! यह जगत् कछु वास्तवते उपजा नहीं, असत्ही सत्की नाईं होकरि भासता है, जैसे स्वप्नकी अग्नि स्वप्नविषे असत्ही सत्रूप होइ भासती है, तैसे यह जगत् अज्ञानकरि असत्रूप सत्करि भासता है, जैसे जन्म अरु मृत्यु अरु कर्मोंका फल होता है, सो तू श्रवण कर ॥ हे लीले । बड़ा अरु छोटा जो होता है, सो देश काल अरु द्रव्यकरि होता है,एक बालक अवस्थाविषे मृतक होते हैं, एक यौवन अवस्थाविषे मृतक होते हैं,जिसकी क्रिया चेष्टा देश काल द्रव्यकी यथाशास्त्र होती है,तिसकी क्रिया भी शास्त्रके अनुसार होती है, अरु जो चेष्टा शास्त्रते विरुद्ध होती है, तौ आयुर्बल भी तैसा होता है, एक क्रिया ऐसी है, जिसकरि आयुकी वृद्धि होती है, एक क्रियाकर घट जाती है इसीप्रकार देश, काल, क्रिया, द्रव्य, आयुके घटावने बढावनेवाले हैं, तिनोंकरि जीवोंके शरीर सूक्ष्म बडी अवस्थाविषे सोये हैं, यह आदि नीति रची है, युगोंकी मर्यादा

है, तैसेही है, कैसे है, एकसौ वर्ष दिव्य कलियुगके, दोसौ वर्ष दिव्य द्वापरके, तिनसौ त्रेताके, चारसौ सत्ययुगके, यह दिव्य वर्ष हैं, अरु लौकिक वर्ष इस प्रकार है, चार लाख बत्तीस हजार कलियुग है, अष्ट लाख चौंसट हजार द्वापरयुग है, बारह लाख छान्नवे हजार त्रेता है, सतरा लाख अट्ठाईस हजार सत्ययुग है, इस प्रकार युगोंकी मर्यादा है, तिसविषे जीव अपने कर्मोंके फलकरि आयु भोगते हैं॥ हे लीले! जो पाप करनेवाले है, सो मृतक होते हैं, तिनको मृत्यु कालमेंभी वडा कष्ट प्राप्त होता है॥ लीलोवाच॥ हे देवि! मृतक हुए सुख अरु दुःख कैसे होता है, अरु कैसे भोगता है?॥ देव्युवाच॥ हे लीले! जीवको तीन प्रकारके मृत्यु होते हैं, एक मूर्खको मृत्यु होता है, दूसरा धारणाभ्यासीको होता है, तीसरा ज्ञानवान्‌को होता है, तिनका भिन्न भिन्न वृत्तांत सुन॥ हे लीले! जो धारणाभ्यासी है, सो मूर्ख भी नहीं, अरु ज्ञानवान् भी नहीं, सो जिस इष्ट देवताकी धारणा करते है, सो मृतक होइकरि अर्थ यह जो शरीरको त्यागिके तिसही देवताके लोकको प्राप्त होते हैं, यह धारणाभ्यासीका मृत्यु है, अरु पूर्ण दशा नहीं प्राप्त हुई, तिनका सुखसों शरीर छूटता है, जैसे सुषुप्ति हो जाती है, तैसे धारण्याभ्यासी शरीरको त्यागता है, त्यागकरि सुखको भोगिकरि फेरि आत्मतत्त्वको प्राप्त होता है, अरु ज्ञानवान्‌का शरीर भी सुखसों छूटता है, तिसको भी यत्न कछु नहीं होता, अरु वह ज्ञानीके प्राण भी तहांही लीन होते हैं, वह विदेहमुक्त होता है, अरु जब मूर्खका मृत्यु होने लगता है, सो वडे कष्टको प्राप्त होता है, सो मूर्ख कौन है, जिनको अज्ञानियोंकी संगति है, अरु शास्त्रोंके अनुसार विचारणा नहीं अरु सदा विषयोंकी ओर धावते हैं, पापाचार करते हैं, ऐसे पुरुषको शरीर त्यागनेविषे वडा कष्ट होता है॥ हे लीले! जब यह मृतक होने लगता है, तब पदार्थोंकरि आवरण अर्थबुद्धि जो सबरी था तिनोंसाथ वियोग होने लगता है, अरु कंठका रुकना होता है, नेत्र फट जाते हैं, अरु शरीरकी कांति निरूप जैसी हो जाती है, जैसे कमलफूल काटा हुवा कुम्हलाइ जाता है, तैसे मृत्युकालमें शरीर विरूप होय जाता है, अरु

अंग पडे टूटते है, प्राण नाडियोंसे निकसते हैं, जिन अंगोंसों तादात्म्य-संबंध हुवा था, अरु पदार्थोंविषे बहुत स्नेह था, तिनोंते वियोग होने लगता है, ताते बडा कष्ट होता है, जैसे किसीको अग्निके कुंडविषे डारेते कष्ट होता है, तैसे उसको कष्ट होता है, सब पदार्थ भ्रमते भासते हैं, पृथ्वी आकाशरूप अरु आकाश पृथ्वीरूप भासते है, महाविपर्ययदशाको प्राप्त होता है, चित्तकी चेतनता घटती जाती है, ज्यों ज्यों चित्तकी चेतनता घटती जाती है, त्यों त्यों पदार्थकी ज्ञानते अंध होता जाता है, जैसे सायंकालमें सूर्य अस्त होता है, तब नेत्र भ्रांतिमान्‌को दिशाका ज्ञान नहीं रहता, तैसे इसको पदार्थोंका ज्ञान नहीं रहता, अरु कष्टका अनुभव करता है, जैसे आकाशते गिरते कष्ट पावता है, जैसे पाषाणविषे पीसता कष्ट पावता है, जैसे पवनविषे तृण भ्रमता है, और कष्ट पावता है, जैसे अंधकूपविषे गिरता कष्टपावता है, जैसे कोल्हूविषे गिरता कष्ट पावता है, जैसे खंभाणी विषे चलाया पत्थर बडा कष्ट पावता है, जैसे रथते गिरता कष्ट पावता है,जैसे गलेमें फासी डारके खेंचनेते कष्ट पावता है,जैसे वायुकरिके उछला तरंग वडवाग्निमें पडा जलता कष्ट पावता है,तैसे मूर्ख मृत्युकालविषे कष्ट पावता है, जब पुर्यष्टकका वियोग हुआ, तब मूर्च्छाकरि जड जैसा हो जाता है, शरीर तौ अखंडित पडा रहता है॥ लीलोवाच॥ हे देवि ! जब यह मृतक होने लगता है, तब इसको मूर्च्छा कैसे होती है, शरीर तो अखंडित पड़ा रहता है, कष्ट कैसे पावता है ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जो कछु इस जीवने अहंकारभावको लेकरि कर्म किये है, सो सब इकट्ठे होते जाते हैं, समय पाइके आप प्रगट होते हैं, जैसे बीज बोया हुआ समय पाइके फल आन लगता है, तैसे तिसको कर्मवासनासहित फल आन प्रगट होता है, जब इसप्रकार शरीर छूटने लगता है, तब शरीरकी तादात्म्यता अरु पदार्थोंके स्नेहके वियोगकरि इसको कष्ट होता है, जो प्राण अपानकी कला है, जिसके आश्रय शरीर होता है सो टूटने लगता है, जिन स्थानोंविषे प्राण फुरते थे, तिन स्थानों अरु नाडियोंसे निकसते हैं, जिस स्थानते निकसते हैं, तदा बहुरि प्रवेश नहीं करते, यदा नाडियां जर्जरीभूत हो जाती है, सब

स्थानोंको प्राण जब त्यागि जाते हैं,तब वह पुर्यष्टक शरीरको त्यागि निर्वाण हो जाता है, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, जैसे पत्थरकी शिला जडीभूत होती है, तैसे पुर्यष्टक शरीरको त्यागिकरि जडीभूत हो जाती है,प्राण अपानकी कला टूट पडती है ॥ हे लीले ! यह मरण अरु जन्म भी भ्रांतिकरिकै भासता है, आत्माविषे कोऊ नहीं,संवित्मात्रविषे जो सवेदन फुरता है, सो अन्य स्वभावविषे सत्ताकी नाईं होकरि स्थित होता है, मरण अरु जन्म तिसविषे भासते हैं, जैसी जैसी वासना होती है, तिसके अनुसार सुखदु खका अनुभव करता है, जैसे कोऊ पुरुष नदीविषे प्रवेश करता है तिसविषे कहूं बडा जल होता है, कहूं छोटा जल होता है, कहूं बडे तरंग होते हैं, कहूं सोमजल होता है, सो सब सोमजलविषे होते हैं, तैसे जैसी वासना होती है, तिसीके अनुसार सुखदु'खका अनुभव होता है, अध, ऊर्ध्व, मध्य वासनारूपी गर्तविषे पडे गिरते हैं, जैसे वेलिविषे गठी होती है, तैसे संवेदनविषे जन्ममरणकी कल्पना होती है, अरु शुद्ध चेतनमात्रविषे कोऊ कल्पना नहीं, अनेक शरीर नष्ट हो जाते हैं, अरु चेतनसत्ता ज्योंकी त्यों रहती है, जो चेतनसत्ता भी मृतक होवै, तब एकके नष्ट हुए सब नष्ट हो जावें सो ऐसे तौ नहीं, चेतनसत्ता सब कछु सिद्ध होती है, जो वह न होवै तौ कोऊ किसीको न जानै ॥ हे लीले ! चेतनसत्ता जो है, सो न जन्मती है, न मरती है, सर्व कल्पनाते रहित केवल चिन्मात्र है, तिसका किसी कालविषे कैसे नाश होवै ? जन्ममरणकी कल्पना संवेदनविषे होती है, अचेत चिन्मात्रविषे कछु हुआ नहीं ॥ हे लीले ! मृत्यु सोई होता है, जिसके निश्चयविषे मृत्युका सद्भाव होता है, जिसके निश्चयविषे मृत्युका सद्भाव नहीं सो कैसे मरै, जब इसको दृश्यका अत्यंत अभाव होवै, तब बंधनोंते मुक्त होवै, वासनाही इसको बंधनका कारण है, जब वासनाते मुक्त होता है, तब बंधन कोऊ नहीं रहता ॥ हे लीले ! आत्मविचारकरि ज्ञान होता है, अरु ज्ञानकरिकै दृश्यका अत्यंत अभाव होता है, जब दृश्यका अत्यंताभाव हुआ तब वासना नष्ट हो जाती है यह जगत उदय हुआ नहीं, परंतु उदय हुएकी नाईं वासनाकरिकै भासता है,

तातें वासनाका त्याग करो, जब वासना निवृत्त होवै तब बंधन कोऊ न रहै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मृत्युविचारवर्णन नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ३८

संसारभ्रमवर्णनम् ।

लीलोवाच ॥ हे देवि ! यह जीव मृतक कैसे होता है ? अरु जन्म कैसे लेता है ? मेरे बोधकी वृद्धताके निमित्त बहुरि कहो ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! इसके अंतर प्राण अपानकी एक कला है, तिसके आश्रय यह शरीर रहता है, जबलग प्रारब्धकर्म होता है, अरु जब मृतक होने लगता है, तब प्राणवायु अपने स्थानको त्यागता है, जब जिस जिस स्थानसों नाडीसों निकसता है, सो स्थान शिथिल होता है, जब पुर्यष्टक शरीरसों निकसता है, तब प्राणकला टूट पडती है, अरु चेतनता जडीभूत हो जाती है, तब परिवारवाले लोक इसको प्रेत कहते हैं, जो मृतक हुआ प्रेत भया है ॥ हे लीले ! इसके चित्तकी चेतनता जडीभूत हो जाती है, केवल चैतन्य जो ब्रह्मसत्ता है, सो ज्योंकी त्यों रहती है, स्थावर जंगम सर्व जगत्‌विषे व्याप रही है, आकाश, पहाड, वृक्ष, अग्नि, वायु आदिक सर्व पदार्थोंविषे व्यापि रही है, उदय अस्तते रहित है ॥ हे लीले ! जब इसको मृत्यु मूर्च्छा होती है, तब प्राण पवन आकाशविषे लीन होते हैं; तिस प्राणविषे चेतनता होती है, अरु चेतनताविषे वासना होती है, ऐसी जो प्राण अरु चैतन्यसत्ता है, सो वासनाको लेकरि आकाशविषे आकाशरूप स्थित होती है, जैसे गंधको लेकरि आकाशविषे वायु स्थित होता है, तैसे वासनाको लेकरि चेतनता स्थित होती है ॥ हे लीले ! तिस अपनीअपनी वासनाके अनुसार देश स्थान बहुरि जगत फुरि आता है, तिसविषे देश, काल, क्रिया, द्रव्य करिकै देखता है, सो मृत्यु भी जीवको दो प्रकारका है, एक पापात्माका मृत्यु है, एक पुण्यात्माका मृत्यु है, बहुरि पापी भी तीन प्रकारके हैं; एक महापापी है, एक मध्यमपापी है, तीसरे

अल्पपापी है, ऐसेही पुण्य भी तीन प्रकारके है, एक महापुण्यवान् है, एक मध्यमपुण्यवान् है, तीसरा अल्पपुण्यवान् है, प्रथम पापियोंकी मृत्यु सुन, जब बडा पापी मृतक होता है, तब मारिके जर्जरीभूत हो जाता है, घन पाषाणकी नाईं सहस्र वर्षोंपर्यंत मूर्च्छाविषे पडा रहता है, कोई ऐसे जीव है, तिस मूर्च्छाविषे भी उनको दु ख होता है, जैसे बाहिर इंद्रियोंको दु·ख होता है तिसके रागद्वेषको लेकरि चित्तकी वृत्ति अतर हृदयविषे जाय स्थित होती है, तैसे पापवासनाका दु·ख अतर होता है, तिसकरि दु ख होताहै, अंतर जलताहै इस प्रकार जडीभूत मूर्च्छाविषे रहता है, तिसके अनतर उसको बहुरि चैतन्यता फुरि आती है, अपनेसाथ शरीर देखता है, बहुरि नरकको जाय भुगतता है, चिरकालपर्यंत नरकको भोगिके बहुतेरे जन्म पशु आदिकोंके भुगतता है, तिनको भोगिके मनुष्यशरीरको पाता है, महानीच अरु दरिद्री निर्धनोके गृहविषे जन्म लेता है, तहा भी दु खोंकारि तप्त रहता है ॥ हे लीले! यह महापापियोंका मृत्यु तुझको कहा, अब मध्यम पापीका मृत्यु सुन, जब मध्यमपापीका मत्यु होता है, तब वह भी वृक्षकी नाईं मूर्च्छा करि जडीभूत होइ जाता है, अरु अतर दु खकरि जलता है, जडीभूतते थोडे कालविषे बहुरि चेतनताको पाता है, नरकातरको जाय भुगतता है, नरकको भोगिके तिर्यगादिक योनिको भुगतता है, तिनको भोगिके वासनाके अनुसार मनुष्यशरीरको पाता है, अब अल्पपापीका मृत्यु श्रवण कर ॥ हे लीले । जब अल्पपापी मृतक होता है, तब मूर्च्छित होय जाता है, केतेक कालते उसको चेतनता आय फुरती है, चेतनताको पायके नरकको जाइकरि भुगतता है तिनको भुगतके कर्मोंके अनुसार और जन्मोंको भुगतता है, बहुरि मनुष्यशरीर आय धरता है ॥ हे लीले ! यह पापात्माके मृत्यु कहे, अब धर्मात्माके मृत्यु सुन ॥ जो महाधर्मात्मा है, सो जब मृतक होते हैं, तब उनके निमित्त विमान आता है, तिनपर आरूढ करिकै स्वर्गमें ले जाते हैं, जिस इष्ट देवताकी वासना उसके हृदयविषे होती है; तिसके लोकविषे ले जाते हैं, तहाजाइकरि स्वर्गसुख भुगतता है, जैसे कर्म किये होते हैं, तैसे सुखको भुगतता है, कैसे स्वर्गसुख है, जो गंधर्व, विद्याधर, अप्सरा,

आदिकके भोग हैं, तिनको भोगिके बहुरि गिरता है, जिस फलविषे आन स्थित होता है, तिस फलका मनुष्य भोजन करता है, जब वीर्यविषे जाय स्थित होता है, तिस वीर्य साथ माताके गर्भविषे जाय स्थित होता है, तहां ते वासनाके अनुसार बहुरि जन्म लेता है, जो कछु भोगकी कामना होती है, तब श्रीमान् धर्मात्माके गृहविषे जन्म होता है, अरु जो भोगते निष्काम होता है, तब सतजनके गृहविषे जन्म लेता है ॥ अब मध्यम धर्मात्माका मृत्यु सुन ॥ हे लीले ! जो मध्यम धर्मात्मा मृतक होता है, तिसको शीघ्रही चेतनता फुरि आती है, अरु स्वर्गको चला जाता है, अपने पुण्यके अनुसार स्वर्गको भोगिके बहुरि गिरता है, किसीफलविषे आनि स्थित होता है, उस फलको पुरुष भोजन करता है, तब पिताके वीर्यद्वारा माताके गर्भविषे आता है, वासनाके अनुसार जन्म लेता है, अरु जो अल्पधर्मात्मा मृतक होता है, तब उसको यह फुरि आता है कि, मैं मृतक हुआ हौं, मेरे बांधव अरु पुत्रोंने मेरी पिंडक्रिया करी है; मैं पितरलोकको चला जाता हौं, वहां पितरलोकका अनुभव करताहै, पितर लोकके सुख भोगके गिरता है, तब धान्यविषे आन स्थित होताहै, जब धान्यको पुरुष भोजन करता है, तब वीर्यरूप होयके स्थित होता है, तिस वीर्यद्वारा होयके माताके गर्भविषे आता है, बहुरि वासनाके अनुसार जन्म लेता है ॥ हे लीले ! जब पापी मृतक होता है, तब तिसको महाक्रूर मार्ग भासता है, तिस मार्गपर चलता है, चरणोंविषे कंटक चुभते हैं, शीशपर सूर्य तपता है सूर्यके धूपकरि शरीर कष्टवान् होता है अरु जो पुण्यवान् होता है, तिसको सुंदर छायाका अनुभव होता है, बावडियां अरु सुंदर स्थानोंके मार्गसों यमदूत उसको ले जाते हैं, जहां धर्मराजा बैठा है, तिसके पास ले प्राप्त करते हैं, धर्मराजा चित्रगुप्तसों पूछता है, तब चित्रगुप्त पुण्यवानोंके पुण्य प्रगट करता है; पापीके पाप प्रगट करता है, तिन कर्मोंके अनुसार स्वर्गनरकको भुगतता है, तिसको भोगिके बहुरि गिरता है, धान्य अथवा और किसी फलविषे आन स्थित होता है, जब उस अन्नको पुरुष भोजन करता है, तब वह स्वप्न वासनाको लेकरि वीर्यविषे आन स्थित होता है, जब पुरुषका स्त्रीसाथ संयोग होता है, तब वीर्यद्वारा माताके

गर्भविषे आता है, तहां भी अपने कर्मोंके अनुसार माताके गर्भको प्राप्त होता है, माताके गर्भविषे इसको अनेक जन्मोंका स्मरण होता है, बहुरि बाहर निकसिकै बालक अवस्थाको धरता है, तब पिछली स्मृति विस्मरण हो जाती है, महामूढ अवस्थाको धरता है, परमार्थकी शुद्धि कछु नहीं होती, क्रीडा विषे मग्न होता है तिसते आगे यौवन अवस्था आती है, तब काम आदिक विकारोंविषे अंध हो जाता है, विचार कछु नहीं रहता, बहुरि वृद्ध अवस्था आती है, तब शरीर महाकृश जैसा हो जाता होता है, अरु रोग आन उपजते हैं, शरीर कुरूप हो जाता है, जैसे कमलोंपर बर्फ पडता है अरु कुम्हलाइ जाते हैं, तैसे वृद्ध अवस्थाविषे शरीर कुम्हलाइ जाता है, सब शक्ति घटती जाती है, अरु तृष्णा बढती जाती है, बहुरि मृतक होने लगता है, तब कष्टवान् होता है, कष्टको भोगिकै मृतक होता है, तब वासनाके अनुसार स्वर्गनरकके भोगको प्राप्त होता है, इसप्रकार संसारचक्रविषे वासनाके अनुसार घटीयंत्रकी नाईं भ्रमता है, स्थिर कदाचित् नहीं होता॥ हे लीले! इसप्रकार जीव आत्मपदके प्रमाद करिकै जन्ममरणको प्राप्त होता है, बहुरि माताके गर्भविषे आते हैं, बाल अवस्था, यौवन अवस्था, वृद्ध अवस्था, मृतक अवस्थाको प्राप्त होते हैं, बहुरि वासनाके अनुसार परलोकको देखते हैं, जाग्रत्स्वप्नकी नाईं भ्रमते अनंतर भ्रमको देखते हैं, जैसे स्वप्नते स्वप्नांतर देखता है, तैसे अपनी कल्पना करिकै जगतभ्रम फुरता है, स्वरूपते किसीको कछु भ्रम नहीं, आकाशरूप, आकाशविषे स्थित है, भ्रम करिकै विकार भासते हैं॥ लीलोवाच॥ हे देवि! परब्रह्मविषे यह जगत भ्रमकरि कैसे हुआ है, सो मेरे बोधकी दृढताके निमित्त कहो॥ देव्युवाच॥ हे लीले! स्वरूपते सब आत्मरूप है, पहाडभी परमार्थघन है, वृक्षभी परमार्थघन है, पृथ्वी, आकाश, आदिक स्थावर जंगम जेता कछु जगत है, सो सब परमार्थघन है, परमार्थसत्ता सर्व आत्मा है॥ हे लीले! तिस सत्ता संवित आकाशविषे जब संवेदन आभास फुरता है, तिसकरि जगतरूप भासता है, आदिसंवेदन जो संवित्मात्रविषे हुआ है, सो ब्रह्मारूप होइकरि स्थित भया है, बहुरि जैसे वह चेतता गया है, तिसप्रकार स्थावर जंगम जगत

होइकरि स्थित भया है ॥ हे लीले ! शरीर जो हुआ है, तिसके अंतरविषे नाडी है, नाडीविषे छिद्र है, तिन छिद्रोंविषे प्राण स्पंदरूप होइकरि विचरता है, तिसको जीव कहते है, जब वह जीव निकस जाता है, तब शरीर मृतक होता है॥ हे लीले ! जैसे जैसे आदि संवितमात्राविषे संवेदन फुरा है, तैसे अबलग स्थित है, जब चेता कि मैं जड होऊं तब जडरूप पृथ्वी; आप, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, वृक्षादिक स्थित भये जडकी भावनाकरि जड हुए, चेतनकी भावनाकरि चेतनरूप होइ करि स्थित भए हैं ॥ हे लीले ! जिसविषे प्राणक्रिया होती है, सो जंगमरूप बोलते चलते हैं, अरु जिसविषे प्राणस्पंद क्रिया नहीं पाती, सो स्थावररूप है, अरु आत्मसत्ताविषे दोनों तुल्य है, जैसे जंगम हैं, तैसे स्थावर हैं, अरु दोनों चैतन्य है, जैसे जंगमविषे चैतन्यता है, तैसे स्थावरविषे चैतन्यता है, अरु जो तू कहै स्थावरोंविषेचेतनता भासती क्यों नहीं, तिसका उत्तर यह है ॥ हे लीले ! जैसे उत्तर दिशाके समुद्रवाले मनुष्यकी बोलीको दक्षिण दिशाके समुद्रवाले नहीं जानते, अरु दक्षिण दिशाके समुद्रवालेकी बोलीको उत्तर दिशाके समुद्रवाले नहीं समझ सकते तैसे स्थावरोंकी बोलीको जंगम नहीं समझ सकते, अरु जंगमोंकी बोलीको स्थावर नहीं समझ समझ; परस्पर अपनी अपनी जातिविषे सब चेतन है, उसका ज्ञान उसको होता है, औ उसका ज्ञान उसको होता है जैसे कूपविषे दर्दुर होता है, सो औरके कूपके दर्दुरको नहीं जानता, अरु और कूपका दर्दुर उस कूपके दर्दुरको नहीं जानता, तैसे जंगमोंकी बोली स्थावर नहीं जान सकते, अरु स्थावरोंकी बोलीको जंगम नहीं जान सकते ॥ हे लीले ! जो आदि संवित्‌विषे संवेदन फुरा है, तैसा रूप होइकारि महाप्रलयपर्यंत स्थित है, अन्यथा नहीं होता, जब जिस संवितविषे अवकाशका संवेदन फुरा तब आकाशरूप होइकारि स्थित भया है, जब स्पंदताको चेतता भया, तब वायुरूप होइकरि स्थित भया, जब उष्णताको चेतता भया, तब अग्निरूप होइकरि स्थित भया; जब द्रवताको चेतता भया, तब जलरूप होइकरि स्थित भया, जब गन्धकी चितवना करी तब पृथ्वीरूप होइकारि स्थित भया, इसप्रकार जिस

जिसको चेतता भया, सो सौ पदार्थका प्रगट भया, आत्मसत्ताविषे प्रतिबिंबित भया, वास्तवते न कोऊ स्थावर है, न जंगम है, केवल ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जगत् भ्रम करिके पडे भासते हैं, और दूसरी वस्तु कछु नहीं ॥ हे लीले ! अब राजा विदूरथको देख जो मृतक होता है ॥ लीलेवाच ॥ हे देवि ! यह राजा पद्मशव शरीरवाले मंडपविषे किस मार्गसों जावैगा, अरु इसके पाछे हम किस मार्ग जावैंगे? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! यह अपनी वासनाके अनुसार मनुष्यमार्गसे जावैगा, है चिदाकाशरूप, परतु अज्ञानके वश इसको दूर स्थान भासैगा, अरु हम भी इसहीके मार्गसे इसके संकल्पके साथ अपना सकल्प मिलाइके जावैगी, जबलग सकल्पसाथ सकल्प मिलता नहीं, तबलग एकत्वभाव नही होता, इसीकारणते इसके सकल्पसाथ हम अपना सकल्प मिलाइकरि इसहीके मार्गसे जावेगे ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार देवीजीने लीलाको उपदेश किया, कैसा उपदेश है, मानो बोधका सूर्य उदय हुआ है, ऐसे सवाद करते थे, तहां राजा जर्जरीभूत होने लगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने ससारभ्रमवर्णनं नाम अष्टत्रिंशत्तम सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ३९.

मरणानतरावस्थावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार देवी अरु लीला देखती थीं, तहा राजाके नेत्र फाटि गये, अरु शरीर निरस हो गया, अरु गिर पडा, श्वास नासिकाके मार्गसे निकस गया, तब जैसे रसते रहित पत्र होता है, अथवा जैसे काटा हुआ कमल विरस हो जाता है, तैसे राजाका शरीर निरस हो गया, जो कछु चित्तकी चेतनता थी, सो जर्जरीभूत हो गई, मृत्युमूर्च्छारूपी अंधकूपविषे राजा जाय पडा, अरु प्राण चेतना वासनासयुक्त आकाशविषे जाय स्थित भये, प्राणोंविषे चेतना थी अरु चेतनाविषे वासना थी सो चेतना अरु वासनासहित प्राणाकाशविषे जाय स्थित

भये, जैसे वायु गंधको लेकरि स्थित होता है ॥ हे रामजी ! वह राजाकी पुर्यष्टक तो जर्जरीभूत हो गई, परंतु दोनों देवियां उसको दिव्य दृष्टिसाथ देखें, जैसे भ्रमरी गंधको देखती है, तब राजा एक मुहूर्त्तपर्यंत मूर्च्छाविषे रहा, बहुरि उसको चेतनता फुरि आई, अपने साथ शरीर भासि आया, अरु जानता भया कि मेरे बांधवोंने मेरी पिंडक्रिया करी है, तिसकरि मेरा शरीर भया है, अरु धर्मराजाके स्थानको मुझे दूत ले चले हैं ॥ हे रामजी ! इस प्रकार अनुभव करता धर्मराजाके स्थानको चला जावै, तिसके पाछे देवी अरु लीला भी चली जावैं, जैसे वायुके पाछे गंध चला जाता है तैसे चली जावैं, जैसे गंधके पाछे दोनों भ्रमरी जावैं तैसे जावैं तब राजा विदूरथ धर्मराजाके पास जाइ प्राप्त भया, धर्मराजाने चित्रगुप्तको कहा कि इसके कर्म विचारके कहो, तब चित्रगुप्तने कहा, हे भगवन् ! इसने कोई अपकर्म नहीं किया, अरु बडे बडे पुण्य किये हैं, पाप नहीं किये, अरु भगवती सरस्वतीका इसको वर है; अरु इसका शव फूलोंसाथ ढांपा हुआ है, तिस शरीरविषे भगवतीके वरकरि जाय प्रवेश करेगा ताते और इसको अब कछु कहना पूछना नहीं ॥ देवी-जीके वरसाथ बाधा है ॥ हे रामजी ! ऐसे उसने कहा, तब राजाको अपने स्थानते चलाय दिया, जैसे खभाणिकर पत्थर पडा वेगसों चला जाता है, तैसेही चलाय दिया; तब आगे राजा चला जावै, तिसके पाछे दोनों देवियां चली जावें, राजाको यह देवियां देखें, अरु राजा इनको देख न सके, तब तीनों एक ब्रह्मांडको लंघ गये जिसका राज्य विदूरथने किया था, तिसको लंघिकरि दूसरे ब्रह्मांडविषे आए, तिसको भी लंघते पद्म राजाके देशमें आये, तिसको लंघिकरि पद्मके मंदिरविषे आये, जहां फूलोंसाथ शव ढांपा था, एक क्षणविषे देवी आन मिली, जैसे मेघको वायु आन मिलता है, जैसे सूर्यमुखी कमलको धूप आनि मिलता है, तैसे आन मिली ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वह तो राजा मृतक हुआथा, मृतक होइकरि तिस मार्गको कैसे पहँचानत भया, जो आय प्राप्त हुआ ? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वह विदूरथ जो मृतक भया था, सो उसकी वासना तो नष्ट भई न थी, उस अपनी वासनाकरि अपने स्थानको आइ

प्राप्त भया॥ हे रामजी! भ्रांतिमात्र जो जगत् है, सो चिद्अणु जीवके उदरविषे है, जैसे वटके बीजविषे अनंत वटवृक्ष होते हैं, तैसे चिद्अणुविषे अनंत जगत् हैं, जो अपने अंतर स्थित हैं, तिसको क्यों न देखे, जैसे जीव अपने जीवत्वका अंकुर देखता है, तैसे स्वभाव चिद्अणु त्रिलोकीको देखता है, जैसे कोऊ पुरुष किसी स्थानविषे धनको दाबि राखे, अरु आप दूर देशको जावे तौ धनको वासनाकरिकै पड़ा देखता है, तैसे वासनाकी दृढताकरि विदूरथ देखता भया, अरु जैसे कोऊ जीव स्वप्नभ्रमकरि किसी बडे धनवान्के गृहविषे जाय उपजता है, भ्रमके शांत हुए तिसको अभाव देखता है, तैसे अनुभव करत भया॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! जिसकी वासना पाछे पिंडदानक्रियाकी नहीं रही, अरु मृतक भया है, तब वह कैसे अपने साथ शरीर देहको देखता है, जिसकी पिंडक्रिया हुई नहीं॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह पुरुष पिता माताके पिंड जो करता है, उनकी वासना इसके हृदयविषे होती है, सोई वासना फलरूप होइकरि इसको भासती है, जो मेरा शरीर है, मेरे पाछे मेरे बांधवने पिंडदान किया है, तिसकर मेरा शरीर हुआ है, अपनी वासनाकरि तिसको इसी प्रकार अनुभव होताहै॥ हे रामजी! सदेह होवै अथवा विदेह होवै, अपनी वासनाके अनुसार इसको अनुभव होताहै, भावनाते इतर अनुभव नहीं होता, चित्तमय पुरुषहै, जो चित्तविषे पिंडकी वासना दृढ होती है, तब आपको पिंडवान्ही जानता है, जैसी भावना होती है तैसेही होता है, भावनाके वशते असत् भी सत् हो जाता है, ताते पदार्थोंका कारण भावनाही है, कारणविना कार्यका उदय नहीं होता, महाप्रलयपर्यंत कारणविना कार्य होता देखा नहीं, अरु सुना भी नहीं, ताते कहा है जिसकी जैसी वासना होती है, तैसा अनुभव होता है॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! जिस पुरुषको अपने पिंडदान आदिक धर्मकी वासना नहीं, वह जब मृतक होता है, तब प्रेतवासनासंयुक्त होताहै कि मैं प्रेत हुआ हौं, मैं पापी हौं, अरु पाछे तिसके बांधव उसके निमित्त धर्मक्रिया करते हैं, सो धर्म बांधवोंने पिंडक्रिया करी है, तिसकरि मेरा शरीर हुआ है, सो क्रिया उसको प्राप्त होती है, अथवा नहीं होती? बांधवोंके मनविषे दृढ

लीलाके शरीरकी प्रतिभा हुईथी ॥ हे रामजी ! यह अधिभूतक अज्ञानकरिकै भासता है, बोधकरिकै अधिभूतकता निवृत्त होइ जाती है, जब तिस लीलाको बोधविषे परिणाम हुआ, तब तिसका अधिभूतक शरीर निवृत्त हो गया, जैसे सूर्यके तेजकरि बरफका पुतला गलि जाता है, तैसे ज्ञानकरिकै तिसकी अधिभूतकता नष्ट हो गई, अरु अतवाहकता आन उदय भई ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो सब आकाशरूप है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरिकै भासता है, तैसे अंतवाहकविषे अधिभूतकता भासती है, आदि शरीर अतवाहक है, अर्थ यह जो सकल्पमात्र तिसविषे जो दृढ भावना हो गई, तिसकरि पृथ्वी आदिक तत्त्वोंका शरीर भासने लगा है, वास्तवते न कोऊ भूत आदिक तत्त्व है, न कोऊ तत्त्वोका शरीर है, इनके शब शशेके शृंगोंकी नाई असत् हैं ॥ हे रामजी ! आत्माविषे अज्ञानकरिकै अधिभूतक भासे हैं, जब आत्माका बोध होता है, तब अधिभूतक नष्ट हो जाते हैं, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे आपको हरिण देखता भया, जब जागि उठा तब हरिणका शरीर दृष्ट नही आता, तैसे अज्ञानकरिकै अधिभूतकता दृष्ट आई है, अरु आत्म बोध हुए अधिभूतकता दृष्ट नहीं आती जब सत्यका ज्ञान उदय होता है तब असत्का ज्ञान लीन होजाताहै. जैसे जेवरीके अज्ञानते सर्प भासे अरु जेवरीके ज्ञानकरि सर्पका ज्ञान लीन होता है तैसे सपूर्ण जगत् मनते उदय हुआ है, अज्ञानकरिकै अधिभूतकताको प्राप्त भया, जैसे स्वप्नविषे जगत् अधिभूतक होइ भासता है, अरु जागेते स्वप्नशरीर नहीं भासता, तैसे आत्मज्ञानकरि अधिभूतकता निवृत्त हो जाती है, अरु अतवाहक शरीर भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! योगीश्वर जो अतवाहक शरीरसाथ ब्रह्मलोकपर्यंत आते जाते हैं, तिनके शरीर कैसे हो भासते हैं ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अतवाहक शरीर ऐसे हैं, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे होवै, तिसको पूर्वका शरीर जाग्रतका स्मरण होवै, तब स्वप्नशरीर इसको दृष्ट भी आता है, अरु तिसको आकाशरूप जानता है, तैसे अधिभूतकता बोधकरिकै नष्ट हो जाती है; जैसे शरत्कालका मेघ देखने मात्र होता है; तैसे योगीश्वर ज्ञानवान्का शरीर देखनेमात्र होता है, अरु

अदृश्यरूप है, औरको शरीर भासता है,उसको आकाशरूप भासता है॥ हे रामजी ! यह देहादिक आत्माविषे भ्रांतिकरिकै दृष्ट आते हैं, आत्मज्ञानकरिकै निवृत्त हो जाते हैं, जैसे जेवरीके अज्ञानकरिकै सर्प भासता है, जब जेवरीका सम्यक्ज्ञान हुआ, तब सर्पभाव तिसका नहीं रहता, तैसे तत्त्वबोधके हुए, देह कहां होवै ? देहकी सत्ता कहा रहै ? दोनोंका अभावही हो जाता है, केवल ब्रह्मसत्ता अद्वैत भासती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अतवाहकते अधिभूतक रूप होता है अथवा अधिभूतकते अतवाहकरूप होता है ? सो मुझको कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मैंने तुझको बहुत वार कहा है सो तू मेरे कहेको धारता क्यों नहीं ? मैंने आगे कहा है कि जेते कछु जीव हैं, सो सब अतवाहक हैं, अधिभूतक कोऊ नहीं, आदि जो शुद्ध संवित्मात्रते संवेदन आभास उठा, तिसकरिकै इस जीवका आदि शरीर अंतवाहक संकल्परूप हुआ, जब उसविषे दृढ अभ्यास हुआ, तब वह संकल्परूपी शरीर अधिभूतक होइकरि भासने लगा, जैसे जल दृढ जडताकरिकै वरफरूप हो जाता है, तैसे प्रमादकरिकै संकल्पके अभ्यासते अधिभूतकरूप हो जाता है, तिस अधिभूतकके तीन लक्षण होते हैं, भारी शरीर होता है, अरु कठोर भाव होता है, शिथिल होता है, तिसविषे अहंप्रतीति होती है, इस कारणते अधिभूतक कहाता है, अरु जब तत्त्वका बोध होता है, तब अधिभूतकता आकाशरूप हो जाती है, जैसे स्वप्नविषे देहते आदि लेकरि जगत् बडा स्पष्टरूप भासता है, अरु जब स्वप्नविषे स्वप्नका ज्ञान होता है, कि यह स्वप्न है, तब वह स्वप्नका शरीर लघु हो जाता है, अर्थ यह कि संकल्परूप हो जाता है, तैसे परमात्माके बोधते अधिभूतक शरीर निवृत्त हो जाता है, संकल्परूप भासता है ॥ हे रामजी ! जो अभिभूतकता इसको प्राप्त भई है, सो अबोधके अभ्यासकरि प्राप्त भई है, जब उलटके वही अभ्यासका बोध होवै तब अधिभूतकता नष्ट हो जावै; अरु अतवाहकता उदय होवै ॥ हे रामजी ! अन्य शरीरोंको जो यह प्राप्त होता है, सो एक शरीरको त्यागिकै दूसरेका अंगीकार करता है; जैसे स्वप्नते स्वप्नांतरको प्राप्त होता है, अरु जब बोध होता है,

लीलाके शरीरकी प्रतिभा हुईथी ॥ हे रामजी ! यह अधिभूतक अज्ञानकरिके भासता है, बोधकरिकै अधिभूतकता निवृत्त होइ जाती है, जब तिस लीलाको बोधविषे परिणाम हुआ, तब तिसका अधिभूतक शरीर निवृत्त हो गया, जैसे सूर्यके तेजकरि बरफका पुतला गलि जाता है, तैसे ज्ञानकरिके तिसकी अधिभूतकता नष्ट हो गई, अरु अतवाहकता आन उदय भई ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो सब आकाशरूप है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरिके भासता है, तैसे अतवाहकविषे अधिभूतकता भासती है, आदि शरीर अतवाहक है, अर्थ यह जो संकल्पमात्र तिसविषे जो दृढ भावना हो गई, तिसकरि पृथ्वी आदिक तत्त्वोंका शरीर भासने लगा है, वास्तवते न कोऊ भूत आदिक तत्त्व है, न कोऊ तत्त्वोंका शरीर है, इनके शब शशेके शृंगोंकी नाई असत् है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे अज्ञानकरिके अधिभूतक भासे है, जब आत्माका बोध होता है, तब अधिभूतक नष्ट हो जाते हैं, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे आपको हरिण देखता भया, जब जागि उठा तब हरिणका शरीर दृष्ट नहीं आता, तैसे अज्ञानकरिके अधिभूतकता दृष्ट आई है, अरु आत्म बोध हुए अधिभूतकता दृष्ट नहीं आती जब सत्यका ज्ञान उदय होता है तब असत्का ज्ञान लीन होजाताहै जैसे जेवरीके अज्ञानते सर्प भासे अरु जेवरीके ज्ञानकरि सर्पका ज्ञान लीन होता है तैसे संपूर्ण जगत मनते उदय हुआ है, अज्ञानकरिके अधिभूतकताको प्राप्त भया, जैसे स्वप्नविषे जगत अधिभूतक होइ भासता है, अरु जागेते स्वप्नशरीर नहीं भासता, तैसे आत्मज्ञानकरि अधिभूतकता निवृत्त हो जाती है, अरु अंतवाहक शरीर भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! योगीश्वर जो अतवाहक शरीरसाथ ब्रह्मलोकपर्यंत आते जाते हैं, तिनके शरीर कैसे हो भासते हैं ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अतवाहक शरीर ऐसे हैं, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे होवै, तिसको पूर्वका शरीर जाग्रतका स्मरण होवै, तब स्वप्नशरीर इसको दृष्ट भी आता है, अरु तिसको आकाशरूप जानता है, तैसे अधिभूतकता बोधकरिके नष्ट हो जाती है; जैसे शरत्कालका मेघ देखनेमात्र होता है; तैसे योगीश्वर ज्ञानवान्का शरीर देखनेमात्र होता है, अरु

अदृश्यरूप है, औरको शरीर भासता है, उसको आकाशरूप भासता है॥ हे रामजी ! यह देहादिक आत्माविषे भ्रांतिकरिकै दृष्ट आते हैं, आत्म-ज्ञानकरिकै निवृत्त हो जाते हैं, जैसे जेवरीके अज्ञानकरिकै सर्प भासता है, जव जेवरीका सम्यक्ज्ञान हुआ, तव सर्पभाव तिसका नहीं रहता, तैसे तत्त्ववोधके हुए, देह कहां होवै ? देहकी सत्ता कहां रहै ? दोनोंका अभावही हो जाता है, केवल ब्रह्मसत्ता अद्वैत भासती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अतवाहकते अधिभूतक रूप होता है अथवा अधिभूतकते अंतवाहकरूप होता है ? सो मुझको कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मैंने तुझको वहुत वार कहा है सो तू मेरे कहेको धारता क्यों नहीं ? मैंने आगे कहा है कि जेते कछु जीव हैं, सो सव अतवाहक हैं, अधिभूतक कोऊ नहीं, आदि जो शुद्ध संवित्मात्रते संवेदन आभास उठा, तिसक-रिकै इस जीवका आदि शरीर अतवाहक सकलपरूप हु जव उसविषे दृढ अभ्यास हुआ, तव वह सकलपरूपी शरीर अ होइकरि भासने लगा, जैसे जल दृढ जडताकरिकै वरफरूप है, तैसे प्रमादकरिकै संकल्पके अभ्यासते अधिभूतकरू तिस अधिभूतकके तीन लक्षण होते हैं, भारी शरीर भान होता है, शिथिल होता है, तिसविषे अहंप्रती णते अधिभूतक कहाता है, अरु जव तत्त्वका वोध ता आकाशरूप हो जाती है, जैसे स्वप्नविषे देहते आदि स्पष्टरूप भासता है, अरु जव स्वप्नविषे स्वप्नका ज्ञान होता स्वप्न है, तव वह स्वप्नका शरीर लघु हो जाता है, अर्थ संकल्परूप हो जाता है, तैसे परमात्माके वोधते अधि शरीर निवृत्त हो जाता है, संकल्परूप भासता है ॥ हे रामजी जो अभि भूतकता इसको प्राप्त भई है, सो अवोधके अभ्यास प्राप्त भई है, जव उलटके वही अभ्यासका वोध होवै तव भूतकता न हो जावै; अरु अतवाहकता उदय होवै ॥ हे राम अन्य शरीरको दूसरेका को अपने जो यह प्राप्त होता है, सो एक शरीरको लोक अंत पुरविषे करता है, जैसे स्वप्नते स्वप्नांतरको प्राप्त द्रष्टा हो

लीलाके शरीरकी प्रतिभा हुईथी ॥ हे रामजी ! यह अधिभूतक अज्ञानकरिकै भासता है, बोधकरिकै अधिभूतकता निवृत्त होइ जाती है, जब तिस लीलाको बोधविषे परिणाम हुआ, तब तिसका अधिभूतक शरीर निवृत्त हो गया, जैसे सूर्यके तेजकरि बरफका पुतला गलि जाता है, तैसे ज्ञानकरिकै तिसकी अधिभूतकता नष्ट हो गई, अरु अंतवाहकता आन उदय भई ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो सब आकाशरूप है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरिकै भासता है, तैसे अंतवाहकविषे अधिभूतकता भासती है, आदि शरीर अंतवाहक है, अर्थ यह जो संकल्पमात्र तिसविषे जो दृढ भावना हो गई, तिसकरि पृथ्वी आदिक तत्त्वोंका शरीर भासने लगा है, वास्तवते न कोऊ भूत आदिक तत्त्व है, न कोऊ तत्त्वोंका शरीर है, इनके शब शशेके शृंगोंकी नाईं असत् हैं ॥ हे रामजी ! आत्माविषे अज्ञानकरिकै अधिभूतक भासे हैं, जब आत्माका बोध होता है, तब अधिभूतक नष्ट हो जाते हैं, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे आपको हरिण देखता भया, जब जागि उठा तब हरिणका शरीर दृष्ट नहीं आता, तैसे अज्ञानकरिकै अधिभूतकता दृष्ट आई है, अरु आत्मबोध हुए अधिभूतकता दृष्ट नहीं आती जब सत्यका ज्ञान उदय होता है तब असत्का ज्ञान लीन होजाताहै जैसे जेवरीके अज्ञानते सर्प भासे अरु जेवरीके ज्ञानकरि सर्पका ज्ञान लीन होता है तैसे संपूर्ण जगत मनते उदय हुआ है, अज्ञानकरिकै अधिभूतकताको प्राप्त भया, जैसे स्वप्नविषे जगत अधिभूतक होइ भासता है, अरु जागेते स्वप्नशरीर नहीं भासता, तैसे आत्मज्ञानकरि अधिभूतकता निवृत्त हो जाती है, अरु अंतवाहक शरीर भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! योगीश्वर जो अंतवाहक शरीरसाथ ब्रह्मलोकपर्यंत आते जाते हैं, तिनके शरीर कैसे हो भासते हैं ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अंतवाहक शरीर ऐसे हैं, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे होवै, तिसको पूर्वका शरीर जाग्रतका स्मरण होवै, तब स्वप्नशरीर हमको दृष्ट भी आता है, अरु तिसको आकाशरूप जानता है, तैसे अधिभूतकता बोधकरिकै नष्ट हो जाती है; जैसे शरत्कालका मेघ देखनेमात्र होता है, तैसे योगीश्वर ज्ञानवान्का शरीर देखनेमात्र होता है, अरु

रही हो, जैसे शब्दके संग अर्थ रहता है, तैसे मैं तेरे सग सदा रही हो॥ हे राजन्! जब तू यहां शरीर त्यागिके परलोकमें गया था, तब मेरेविषे तेरा स्नेह बहुत था, तिसकरि मेरा प्रतिबिंब यह लीला तुमको भासी थी, अब यह जो और कथाका वृत्तांत है, सो मैं तुझको कहोंगी॥ हे राजन्! हमारे ऊपर इस देवीने कृपा करी है, जो तुम्हारे शीशपर स्वर्णके सिंहासनपर बैठी है, यह सरस्वती सर्वकी जननी है, इसने हमारे ऊपर बडी कृपा करी है, अरु परलोकते तुझे ले आई है॥ हे रामजी! ऐसे सुनिकै राजा प्रसन्न हुआ, अरु सरस्वतीके चरणोंपर मस्तक नमाया, अरु कहत भया॥ राजोवाच॥ हे सरस्वति! तुझको मेरा नमस्कार है, तू सबकी हितकारी है, अरु तुझने मेरेपर बडा अनुग्रह किया है, अब कृपा करि मुझको यह वर देहु, कि मेरी आयुर्बल बडी होवै, अरु निःकटक राज्य करौं, अरु लक्ष्मी भी बहुत होवै, अरु रोग कष्ट भी न होवै, अरु मैं आत्मज्ञानकरिके संपन्न होऊँ, अर्थ यह कि भोग अरु मोक्ष दोनों देहु॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब इस प्रकार राजाने कहा, तब देवीने उसके शीशपर हाथ धरा, अरु आशीर्वाद कहत भई॥ देव्युवाच॥ हे राजन्! ऐसेही होवैगा, तेरी आयुर्बल बडी होवैगी, अरु तेरा शत्रुभी कोऊ न होवैगा, तू निकंटक राज्य करैगा, आपदा तुझको न होवैगी, अरु तू लक्ष्मी सपदाकरि सपन्न होवैगा, अरु तेरी प्रजा भी बहुत सुखी रहैगी, तुझको देखिके प्रसन्न होवैगी अरु तेरी प्रजाविषे आपदा किसको न होवैगी अरु तू आत्मानदकरि भी पूर्ण होवैगा॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जीवजीवनवर्णन नाम एकचत्वारिंशत्तम सर्ग॥ ४१॥

द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४२.

निर्वाणवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इसप्रकार कहिके देवी अंतर्धान हो गई, तब प्रात कालका समय हुआ सब लोक जागि उठे, सूर्य भी उदय हुआ, सूर्यमुखी कमल खिल आये, तैसे राजा दोनों लीलाको कंठ लगावत भया; कृपाकरिके प्रसन्न भया, अरु आश्चर्यवान् भया, तब तिस

चंद्रमाकी नाईं शीतल प्रकाश ऐसे प्रकाशवान दोनों देवियोंको देखिकै नमस्कार किया, मस्तक नमाया, अरु दोनोंको स्वर्णके सिंहासनपर बैठायके कहत भई ॥ हे जीवकी दाता ! तेरी जय होवे, तैंने मेरेपर बडी कृपा करी है, तेरे प्रसादकरि मैं यहां आइ प्राप्त भई हौं ॥ देव्युवाच ॥ हे पुत्रि ! तू यहां क्यों कैसे आनप्राप्त भई है ? अरु क्या वृत्तांत तुझने देखा है, सो कहिदे ॥ विदूरथलीलोवाच ॥ हे देवि ! जब मेरा भर्ता संग्रामविषे घायल भया था, तिसको देखिके मैं मूर्च्छित भई, अरु गिर पडी, मैं मूर्च्छित भई, परंतु मृतक न भई तिसते अनंतर बहुरि मुझको चेतना फुरि आई तब मैं अपने साथ वही शरीर देखती भई, तिस शरीरकरि मैं आकाशमार्गको उडी, एक कुँवारी मुझको उडाती यहां ले आई, जैसे वायु गंधको ले आता है, तैसे उडावती परलोकविषे मुझको भर्ताके पास बैठागई है, अरु आप अंतर्धान हो गई, अरु मेरा भर्ता जो संग्राम करि थका है, सो आयके सोय रहा है, अरु मैं सँभालती देखती मार्गविषे आई हौं, परंतु मुझको तुम दृष्ट कछू न आई, यहां कृपा करि तुमने दर्शन दिया है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार सुनिके देवी प्रबुद्धलीलाको कहत भई, कि अब राजाकी जीवकलाको छोडती हौं, ऐसे कहिके जीवकलाको छोडदीनी, तब नासिकाके मार्गसों जीवकला प्रवेश कर गई, जैसे कमलकी अंतर वायु प्रवेश करि जावे, अथवा शरीरमें वायु प्रवेश करि जावे, तैसे शरीरमें जीवकला प्रवेश कर गई, कैसी जीवकला है, जो वासनाकरिके पूर्ण है, जैसे समुद्र जलकरिके पूर्ण होता है, तैसे पुर्यष्टक वासनाकरि पूर्ण है, ऐसा जीवकलाने शरीरविषे प्रवेश किया, तब शरीरकी कांति उज्ज्वल होत भई, अंगोंविषे प्राणवायु पसर गया, जैसे वसंत ऋतुमें फूलवृक्षविषे रस पसरता है, तब सब इंद्रियां खिल आईं, जैसे वसंतऋतुविषे फूल खिल आते हैं तैसे इन्द्रियां खिल आईं तब राजा फूलोंकी शय्याते उठि खडा भया, जैसे रोका हुआ विंध्याचल पर्वत उठ आवे तैसे राजा उठा, तब दोनों लीला राजाके सन्मुख आइ खडी भईं, तब राजाने कहा, मेरे आगे तुम कौन खडी हौ, तब प्रबुद्धलीलाने कहा, हे स्वामी ! मैं तेरी पूर्व पटरानी लीला हौं, सदा तेरे संग

रही हौं, जैसे शब्दके सग अर्थ रहता है, तैसे मैं तेरे संग सदा रही हौं ॥ हे राजन् ! जब तू यहां शरीर त्यागिके परलोकमें गया था, तब मेरेविषे तेरा स्नेह बहुत था, तिसकरि मेरा प्रतिबिम्ब यह लीला तुमको भासी थी, अब यह जो और कथाका वृत्तांत है, सो मैं तुझको कहौंगी ॥ हे राजन् ! हमारे ऊपर इस देवीने कृपा करी है, जो तुम्हारे शीशपर स्वर्णके सिंहासनपर बैठी है, यह सरस्वती सर्वकी जननी है, इसने हमारे ऊपर बडी कृपा करी है, अरु परलोकते तुझे ले आई है ॥ हे रामजी ! ऐसे सुनिके राजा प्रसन्न हुआ, अरु सरस्वतीके चरणोंपर मस्तक नमाया, अरु कहत भया ॥ राजोवाच ॥ हे सरस्वति ! तुझको मेरा नमस्कार है, तू सबकी हितकारी है, अरु तुझने मेरेपर बडा अनुग्रह किया है, अब कृपा करि मुझको यह वर देहु, कि मेरी आयुर्बल बडी होवै, अरु निःकटक राज्य करौं, अरु लक्ष्मी भी बहुत होवै, अरु रोग कष्ट भी न होवै, अरु मैं आत्मज्ञानकरिके सपन्न होऊं, अर्थ यह कि भोग अरु मोक्ष दोनों देहु ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार राजाने कहा, तब देवीने उसके शीशपर हाथ धरा, अरु आशीर्वाद कहत भई ॥ देव्युवाच ॥ हे राजन् ! ऐसेही होवैगा, तेरी आयुर्बल बडी होवैगी, अरु तेरा शत्रुभी कोऊ न होवैगा, तू निःकटक राज्य करैगा, आपदा तुझको न होवैगी, अरु तू लक्ष्मी सपदाकरि सपन्न होवैगा, अरु तेरी प्रजा भी बहुत सुखी रहैगी, तुझको देखिके प्रसन्न होवैगी अरु तेरी प्रजाविषे आपदा किसको न होवैगी अरु तू आत्मानंदकरि भी पूर्ण होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जीवजीवनवर्णन नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४२.

निर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिके देवी अंतर्धान हो गई, तब प्रातःकालका समय हुआ सब लोक जागि उठे, सूर्य भी उदय हुआ, सूर्यमुखी कमल खिल आये, तैसे राजा दोनों लीलाको कंठ लगावत भया, कृपाकरिके प्रसन्न भया, अरु आश्चर्यवान् भया, तब तिस

मंदिरविषे नगारे वाजने लगे, शब्द होने लगे; वहुरि वहुरि शब्द मंगल गांव, अरु हुलास करें, मंदिरविषे वडा हुलास आनंद आन वढा, अंगना अनेक नृत्य करने लगीं. वडा उत्साह हुआ, विद्याधर सिद्ध देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे; अरु लोक वडे आश्चर्यको प्राप्त भये; कि लीला परलोकते आई है, अरु भर्ताको भी और आप जैसी लीलाको ले आई है ॥ हे रामजी ! यह कथा देशते देशांतरको चली गई, लोक श्रवण करिके आश्चर्यको प्राप्त होवें, जब इस प्रकार यह कथा प्रसिद्ध हुई; तब राजाने भी श्रवण किया; कि मैं मरिके फेर जिया हौं; इस प्रकार विचारत भया, कि फिर मैं अभिषेक लेहुं ॥ राजा ऐसे विचारता भया, तब मंत्री अरु मंडलेश्वरने उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम चारों ओरते समुद्रका जल मँगाया अरु सर्व तीर्थोंका जल मँगाया. अरु राजाको राज्यका अभिषेक किया;तब चारों समुद्रपर्यंत राजा निःकंटक राज्य करत भया. राजा अरु लीला पूर्वकी कथाको विचारें. अरु आश्चर्यमान होवें,सरस्वतीके उपदेश अरु प्रसाद अरु अपने पुरुषार्थको पायके राजा अरु दोनों लीलाओंने ऐसे सहस्र वर्षपर्यंत जीवन्मुक्त होइके राज्य किया, कैसे राज्य किया जो मनसहित षड्इंद्रियोंको वश किया, अरु यथालाभविषे संतुष्ट रहे, दृश्यभ्रम तिनका नष्ट हो गया, ऐसे जीवन्मुक्त होके राज्य करते भये, कैसा सुंदर राजा है, जिसकी सुंदरताकी कणिका मानो चंद्रमा है, वहुरि कैसा राजा है, जिसके तेजकी कणिका मानो सूर्य है, इसप्रकार राज्य करत भए, सब प्रजाको भली प्रकार संतुष्ट करत भया, सब प्रजा राजाको देखिके प्रसन्न होवें, बुद्धिमान् ब्राह्मणसभाको प्रसन्न करनेहारा हुआ, वहुरि विदेहमुक्त निर्वाणपदको दोनों लीला अरु तीसरा राजा प्राप्त हुए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने निर्वाणवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४३.

प्रयोजनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह दोनों कथा मैंने तुझको विस्तारकरि श्रवण कराई हैं, एक आकाशज ब्राह्मणकी, दूसरी लीलाकी, सो दृश्य

दोषके निवर्तनअर्थ कही है ॥ हे रामजी ! दृश्यकी दृढता जो होरही है, तिसको त्यागिकरि अब तू दोनों इतिहासोंको संक्षेपमात्रते श्रवणकर, यह जगत् जो तुझको भासता है, सो आभासरूप है, आदिते कछु उपजा नहीं, जो वस्तु सत् होती है, तिसके निवारणविषे प्रयत्न होता है, अरु जो वस्तु असतही होवे, तिसके निवृत्त होनेविषे यत्न कछु नहीं, इस कारणते ज्ञानवान्‌को सब आकाशरूप हो जाता है अरु आकाशकी नाईं स्थित होता है ॥ हे रामजी ! आदि जो ब्रह्मसत्ताविषे आभास संवेदन फुरा है, सो ब्रह्मारूप होइकरि स्थित भया है। सो ब्रह्मा पृथ्वी आदिक भूतोंते रहित है, जो आपही आभासरूप होवै तिसके उपजाये जगत् कैसे सत होवे ? हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुष आकाशरूप है, जिसको आत्मपदका साक्षात्कार हुआ है, तिसको दृश्यभ्रमका अभाव हो जाता है, अरु जो अज्ञानी है,तिसको जगत्भ्रम स्पष्ट भासता है,शुद्ध चिदाकाशका एक अणु जीव है, तिस जीवअणुविषे यह जगत् भासता है, तिस जगत्‌की सृष्टिमें तुझको क्या कहौं, नीति क्या कहौं, वासना क्या कहौं, पदार्थ क्या कहौं ॥ हे रामजी ! और जगत् कछु उपजा नहीं, संवेदनके फुरनेकरिके जगत् भासता है, शुद्ध संवित्‌विषे संवेदनरूपी नदी चली है, तिसविषे यह जगत पड़ा फुरता है, जब संवेदनको यत्नकरि रोकैगा, तब दृश्यभ्रम नष्ट हो जावेगा सो प्रयत्न करना यही है कि, संवेदनको अंतर्मुख करना, जबलग आत्माका साक्षात्कार होवे, तबलग श्रवण मनन निदिध्यासन करि दृढ अभ्यास करिये, जब साक्षात्कार हुआ तब दृश्य नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! यह सर्व जगत् जो तुझको भासता है, सो हमको अखंड ब्रह्मसत्ताही भासती है, जगत् मायामय है, परंतु माया भी कछु और वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है ॥ राम उवाच ॥ बडा आश्चर्य है, बडा आश्चर्य है ॥ हे मुनीश्वर! तुमने मुझको परम दशा कही है, कैसा तुम्हारा उपदेश है, जो दृश्यरूपी तृणोंको नाश करता दावाग्नि है, अरु आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक तापोंको शांतकर्ता चंद्रमा है ॥ हे मुनीश्वर ! तुम्हारे उपदेशकरि मैं ज्ञातज्ञेय भया हौं अरु पांच विकल्प मैंने विचारे हैं, कि यह जगत् मिथ्या है, स्वरूपते अनिर्वचनीय है, १

आत्माविषे आभास है, २ इसका स्वभाव परिणामी है, ३ अज्ञानकरि उपजा है, ४ अरु अनादि अज्ञानपर्यंत है, ५ ऐसे जानिके मैं शांतात्मा ज्ञानवानोंकी नाईं भया हौं अरु निर्वाण मुक्तकी नाईं भया हौं ॥ हे मुनीश्वर ! और शास्त्रोंते यह तुम्हारा उपदेश आश्चर्य है; श्रवणरूपी पात्र तुम्हारे वचनरूपी अमृतकरि मैं तृप्त नहीं होता ताते यह मेरा संशय दूर करो कि, लीलाके भर्ताको तीन सृष्टिका अनुभव कैसे भया ? प्रथम वसिष्ठकी बहुरि पद्मकी बहुरि विदूरथकी, तिनकेविषे कालका व्यतिक्रम देखा कि, कहूं दिन हुआ, कहूं मास हुआ, कहूं वर्षोंका अनुभव भया सो कालका व्यतिक्रम कैसे हुवा ? ॥ हे मुनीश्वर ! हलोहरके बटेरेविषे जल नहीं स्थित होता अरु कुंभाविषे स्थित होता है, ताते स्पष्ट कर कहौ, जो तुम्हारे वचन मेरे हृदयविषे स्थित होवैं, एकवार कहनेकरि हृदयविषे स्थित नहीं होता ताते बहुरि कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्ध संवित् सबका अपना आप है, तिसविषे जैसा संवेदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइ भासता है, कहूँ क्षणविषे कल्पोंके समूह बीते भासते हैं; कहूँ कल्पविषे क्षणका अनुभव होता है ॥ हे रामजी ! जिसको विषविषे अमृतभावना होती है, तिसको अमृत होइ भासता है, अरु जिसको अमृतविषे विषकी भावना होती है, तब वही विषरूप होइ भासता है, किसी पुरुषका शत्रु होता है, अरु उसविषे मित्रकी भावना करता है, वह मित्ररूप होइ भासता है, अरु जिसको मित्रविषे शत्रुभावना होती है, तब वही शत्रु होइ भासता है ॥ हे रामजी ! जैसा संवेदन फुरता है, तैसा स्वरूप होइ भासता है, जिसका संवेदन तीव्र भाव अभ्यासकरिके निर्मलभावको प्राप्त होता है, तिसका संकल्प सत् होता है, जैसे चेतता है, तैसाही सिद्ध होता है,ताते संवेदनकी तीव्रता भई॥हे रामजी!जो कोऊ पुरुष रोगी होता है, तिसको एक रात्रि कल्पके समान व्यतीत होती है,अरु जो अरोगी होता है तिसकी रात्रि एक क्षणकी नाईं व्यतीत होती है, अरु एक मुहूर्तके स्वप्नविषे अनेक वर्षोंका अनुभव करता है, जानता है कि, मैं उपजा हौं, यह मेरे माता पिता हैं, अब मैं बड़ा हुआ हौं, यह मेरे बांधव हैं ॥

हे रामजी ! एक मुहूर्तविषे एते भ्रम देखता है, अरु जागे हुए एक मुहूर्त भी नहीं वीती, हरिश्चंद्रको एक रात्रिविषे बारह वर्षोंका अनुभव हुआ था, राजा लवणको एक क्षणविषे सौ वर्षका अनुभव हुआ था, ताते जैसे जैसे रूप होइकरि संवेदन फुरता है, तैसे तैसे होइकरि भासता है ॥ हे रामजी ! ब्रह्माके एक मुहूर्तविषे मनुष्यकी आयु व्यतीत हो जाती है, सो ब्रह्मा एक मुहूर्तका अनुभव करता है, मनुष्य पूर्ण आयुका अनुभव करताहै, अरु जो ब्रह्मा अपनी सपूर्ण आयुका अनुभव करता है, सो विष्णुका एक दिन होता है, ब्रह्माका आयुर्बल व्यतीत होता है, अरु विष्णुको एक दिनका अनुभव होता है, ताते जैसे जैसे संवेदनाविषे दृढता होती है, तैसा तैसा भान होता है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् तू देखता है, सो संवेदन फुरणेविषे स्थित है, जब संवेदन स्थित होता है, तब न दिन भासता है, न रात्रि भासती है, न कोऊ पदार्थ भासते हैं, न अपना शरीर भासताहै, सो केवल आत्मतत्त्व मात्र सत्ता रहती है, ताते तू देख कि, सब जगत् मनके फुरणेविषे होता है, जैसा जैसा फुरता है, तैसा तैसा रूप हो भासता है ॥ कटुकविषे जिसको मधुरकी भावना होती है, तब कटुक तिसको मधुर हो जाता है, अरु मधुरविषे जिसको कटुकभावना होती है, तब मधुर भी तिसको कटुकरूप होइ जाता है, अरु स्वप्नविषे शून्य स्थानमें नानाप्रकारके व्यवहार होते भासते हैं, अरु अस्थिरही होता है, स्वप्नविषे दौडता फिरता है, ताते जैसा फुरणा मनविषे होता है, तैसाही हो भासता है ॥ हे रामजी ! जो कोऊ पुरुष नौकाविषे बैठा होता है, तिसको नदीके तट वृक्षोंसहित दौड़ते भासते हैं, और स्थिर पदार्थ चलते भासते हैं, जो विचारवान् हैं, सो चलते भासनेविषे स्थिर जानते हैं, अरु जो [illegible] प भ्रम[illegible] तिसको स्थिरीभूत मंदिर भ्रमते भासते हैं, अरु जो [illegible] अवि[illegible] [illegible]तिसको भ्रमते भासनेविषे भी अचलबुद्धि होती है, [illegible] है, तैसा तैसा होइ भासता है ॥ हे रामजी ! [illegible] नेत्रविषे दूषण होता है, तिसको पीत [illegible] वात, पित्त, कफका क्षोभ होता [illegible] है, पृथ्वी आकाशरूप प्रद्दी

भासती है, अरु अकाश पृथ्वीरूप हो भासता है, अरु चल पदार्थ अचलरूप भासता है, अचल पदार्थ चलता भासता है॥ हे रामजी! स्वप्नविषे अंगना असत्रूप होती है, परंतु भ्रांतिकरिकै उसको स्पर्श करता है, अरु प्रसन्न होता है, तिस कालविषे प्रत्यक्ष भासती है, अरु जैसे बालकको परछायेविषे वैताल भासता है, सो असतही सत्रूप होइ भासता है, अर्थ यह कि भयको देता है॥ हे रामजी! शत्रु होता है, अरु जो तिसविषे मित्रभावना होती है, तब वह शत्रु भी मित्र सुहृद होइ भासता है, अरु जो उसविषे शत्रुभाव होता है, तब वह सुहृद शत्रुरूप होइ भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प है नहीं, परंतु भ्रमकरिकै सर्प भासता है, अरु भयको देखता है, अरु बांधवमें जो उसविषे बांधवकी भावना न करै तब बांधव भी अबांधव होभासता है, अरु अबांधव भी सो भावनाके अभावते बांधव होजाता है॥ हे रामजी! शून्य स्थानमें स्वप्नविषे बड़े क्षोभ भासते हैं, और निकटवर्ती जागेते निकटको कछु नहीं भासता स्वप्नवालेको स्वप्नका अनुभव होता है, अरु! जाग्रतवालेको जाग्रतका अनुभव होता है, इत्यादिक पदार्थ विपर्यय होइ भासते हैं, सो भ्रमकरि भासते हैं, जब मन फुरता है तबही भासता है, तैसे लीलाके भर्त्ताको भी ऐसी सृष्टिका अनुभव हुआ, जैसे जाग्रतकी मूर्तिका स्वप्नमें बहुत कालका अनुभव होता है, तैसे लीलाके भर्त्ताको भी हुया था, जैसा जैसा मनका फुरणा होता है, तैसा तैसा रूप चेतनसंवित्‌विषे भासता है, अरु मुझको सदा ब्रह्मका निश्चय है, ताते सब जगत हमको ब्रह्मस्वरूप भासता है, जिसको जगतभ्रम दृढ है, तिसको जगतही भासता है॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् भासता है सो आदिते कछु उपजा नहीं, सब आकाशरूप है, रोकनेवाली भीत कोऊ नहीं, बड़े विस्तारकरि जगत् है, परंतु स्वप्नवत् है, जैसे स्तंभविषे कोरे विना पुतली शिल्पीके मनविषे भासती है, स्तंभविषे कछु बनी नहीं, तैसे आत्मारूपी स्तंभ है, तिसविषे संवित् जगतरूपी पुतलियोंको रचता है, परंतु पदार्थ कछु हुआ नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है॥ हे रामजी! जैसे एक स्थानविषे दो पुरुष सोए होवैं, तिनविषे एक जाग्रत होवै, दूसरा स्वप्नविषे होवै, जो स्वप्नविषे है, तिसको बड़े युद्ध होते पड़े भासते हैं, अरु जाग्रतको आकाशरूप है, तैसे जो

बोध आत्मज्ञानवान् है, तिनको जगत्का सुषुप्तिकी नाईं अभाव है, अरु जो अज्ञानी है, तिनको नानाप्रकारमे व्यवहारोंसहित जगत् स्पष्ट भासता है, जैसे वसतऋतुविषे पत्र फूल गुच्छे रससहित भासते है, तैसे आत्मसत्ता चैत्यताकरिकै जगतरूप भासती है, जैसे स्वर्णविषे द्रवता सदा रहती है, परतु जव अग्निका सयोग होता है, तव उसविषे द्रवता भासती है ॥ हे रामजी ! आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, जैसे अवयवी अरु अवयवोंविषे कछु भेद नहीं, जैसे पृथ्वी अरु गंधविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, ब्रह्मसत्ताही संवेदनकरिकै जगत्रूप होइ भासती है, और कछु दूसरी वस्तु नहीं, जब महाप्रलय होता है,अरु सर्ग नहीं होता तव कार्यकारणकी कल्पना कोऊ नहीं होती, केवल चिन्मात्रसत्ता होती है, तिसते जो चिदाकाश वहुरि जगत् भासता है, तौ वहीरूप हुआ अरु जो तू कहै इस जगत्का कारण स्मृति होती है, तौ सुन ॥ हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तव ब्रह्माजी तौ विदेहमुक्त होता है, वहुरि वह जगत्का कारण कैसे होवे ? अरु जो तू स्मृतिका कारण मानै, तौ स्मृति भी अनुभवविषे होती है, जो स्मृतिते जगत् हुवा तौ भी अनुभवरूप हुआ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! पद्मराजाके मन्त्री टहलुए सव लोक विदूरथको जाय प्राप्त हुए, सो कैसे हुए यह वार्त्ता वहुरि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! केवल चेतनसवित् सवका अपना आप है, जैसे तिस सवित्के आश्रयते सवेदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइ भासता है ॥ हे रामजी ! जव राजाविदूरथ मृतकहोनेलगा, तव राजाकी वासना उनविषे वहती थी, अरु मन्त्री टहलुए आदिक राजाके अंग हैं, इस कारणते तैसेही मन्त्री टहलुए राजाको प्राप्त भये, जैसे मणिकी किरणें मणिके अग हैं, तैसे मन्त्री टहलुए आदिक सामग्री राजाके अग हैं, जैसे स्वप्नविषे कोऊ आपको देखै, कि मै इस कुलविषे उपजा हौं, यह मेरा कुल आचार है, मै राजा हौं, यह मेरे मन्त्री है, टहलुए है और अनेक पदार्थ हैं, तैसेही मृतकहुआ राजा विदूरथ देखत भया है ॥ हे रामजी ! जैसी जैसी भावना सवेदनविषे दृढ होती है, तैसा रूप होइ भासता है, एक चल पदार्थ होते है, एक अचल पदार्थ होते है, जो अचल पदार्थ

भासती है, अरु आकाश पृथ्वीरूप हो भासता है, अरु चल पदार्थ अचलरूप भासता है, अचल पदार्थ चलता भासता है ॥ हे रामजी! स्वप्नविषे अंगना असत्‌रूप होती है, परंतु भ्रांतिकरिकै उसको स्पर्श करती है, अरु प्रसन्न होता है, तिस कालविषे प्रत्यक्ष भासती है, अरु जैसे बालकको परछायेंविषे बैताल भासता है, सो असतही सत्‌रूप होइ भासता है, अर्थ यह कि भयको देता है ॥ हे रामजी! शत्रु होता है, अरु जो तिसविषे मित्रभावना होती है, तब वह शत्रु भी मित्र सुहृद् होइ भासता है, अरु जो उसविषे शत्रुभाव होता है, तब वह सुहृद् शत्रुरूप होइ भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प है नहीं, परंतु भ्रमकरिकै सर्प भासता है, अरु भयको देखता है, अरु बांधवमें जो उसविषे बांधवकी भावना न करै तब बांधव भी अबांधव होभासता है, अरु अबांधव भी सो भावनाके अभावते बांधव होजाता है ॥ हे रामजी! शून्य स्थानमें स्वप्नविषे बडे क्षोभ भासते हैं; और निकटवर्ती जागतेको निकटको कछु नहीं भासता स्वप्नवालेको स्वप्नका अनुभव होता है, अरु जाग्रतवालेको जाग्रतका अनुभव होता है, इत्यादिक पदार्थ विपर्यय होइ भासते हैं, सो भ्रमकरि भासते हैं, जब मन फुरता है तबही भासता है, तैसे लीलाके भर्ताको भी ऐसी सृष्टिका अनुभव हुआ, जैसे जाग्रतकी मूर्तिका स्वप्नमें बहुत कालका अनुभव होता है, तैसे लीलाके भर्ताको भी हुआ था, जैसा जैसा मनका फुरणा होता है, तैसा तैसा रूप चेतनसंवित्‌विषे भासता है, अरु मुझको सदा ब्रह्मका निश्चय है, ताते मन जगत् हमको ब्रह्मस्वरूप भासता है, जिसको जगत्भ्रम दृढ है, तिसको जगतही भासता है ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् भासता है सो आदिते कछु उपजा नहीं, मन आकाशरूप है, रोकनेवाली भीत कोऊ नहीं, यह निराकार जगत् है, परंतु स्वप्नवत् है, जैसे स्तंभविषे कोरे विना पुतली शिल्पीके मनविषे भासती है, स्तंभविषे कछु बनी नहीं, तैसे आत्मारूपी स्तंभ है, तिसविषे मनरूप जगत्‌रूपी पुतलियोंकी रचना है, परंतु पदार्थ कछु हुआ नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है ॥ हे रामजी! जैसे एक स्थानविषे दो पुरुष सोए होवें, तिनविषे एक जाग्रत होवे, दूसरा स्वप्नविषे होवे, जो स्वप्नविषे है, तिसको बडे युद्ध होते पडे भासते हैं, अरु जाग्रतको आकाशरूप है, तैसे जो

प्रबोध आत्मज्ञानवान् है, तिनको जगत्का सुषुप्तिकी नाईं अभाव है. अरु जो अज्ञानी है, तिनको नानाप्रकारसे व्यवहारोंसहित जगत् स्पष्ट भासता है, जैसे वसतऋतुविषे पत्र फूल गुच्छे रससहित भासते है, तैसे आत्मसत्ता चैत्यताकरिकै जगत्‌रूप भासती है, जैसे स्वर्णविषे द्रवता सदा रहती है, परतु जब अग्निका सयोग होता है, तब उसविषे द्रवता भासती है ॥ हे रामजी ! आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं, जैसे अवयवी अरु अवयवोंविषे कछु भेद नहीं, जैसे पृथ्वी अरु गंधविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं, ब्रह्मसत्ताही संवेदनकरिकै जगत्‌रूप होइ भासती है, और कछु दूसरी वस्तु नहीं, जब महाप्रलय होता है,अरु सर्ग नहीं होता तब कार्यकारणकी कल्पना कोऊ नहीं होती, केवल चिन्मात्रसत्ता होती है, तिसते जो चिदाकाश बहुरि जगत् भासता है, तो वहीरूप हुआ अरु जो तू कहै इस जगत्का कारण स्मृति होती है, तो सुन ॥ हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तब ब्रह्माजी तो विदेहमुक्त होता है, बहुरि वह जगत्का कारण कैसे होवै ? अरु जो तू स्मृतिका कारण मानै, तो स्मृति भी अनुभवविषे होती है, जो स्मृतिते जगत् हुवा तो भी अनुभवरूप हुआ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! पद्मराजाके मत्री टहलुए सब लोक विदूरथको जाय प्राप्त हुए, सो कैसे हुए यह वार्त्ता बहुरि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! केवल चेतनसवित् सबका अपना आप है, जैसे तिस सवितके आश्रयते सवेदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइ भासता है ॥ हे रामजी ! जब राजाविदूरथ मृतकहोनेलगा, तब राजाकी वासना उनविषे वहती थी, अरु मत्री टहलुए आदिक राजाके अंग हैं, इस कारणते तैसेही मत्री टहलुए राजाको प्राप्त भये, जैसे मणिकी किरणें मणिके अग है, तैसे मत्री टहलुए आदिक सामग्री राजाके अंग हैं, जैसे स्वप्नविषे कोऊ आपको देखै, कि मै इस कुलविषे उपजा हौं, यह मेरा कुल आचार है, मैं राजा हौं, यह मेरे मत्री है, टहलुए है और अनेक पदार्थ हैं, तैसेही मृतकहुआ राजा विदूरथ देखत भया है ॥ हे रामजी ! जैसी जैसी भावना सवेदनविषे दृढ होती है, तैसा रूप होइ भासता है, एक चल पदार्थ होते है, एक अचल पदार्थ होते हैं, जो अचल पदार्थ

होता है, तिसका प्रतिबिंब आदर्शविषे भासता है, अरु चल पदार्थ रहना नहीं भासता, ताते उनका प्रतिबिंब नहीं भासता तैसे जिस पदार्थकी तीव्र संवेगभावना होती है, तिसका प्रतिबिंबचेतन दर्पणविषे भासता है, अन्यथा नहीं भासता, जैसे तीव्र वेगवान् बडा नद होताहै सो समुद्रको शीघ्रही जाय प्राप्त होताहै, और नहीं प्राप्त हो सकते, तैसे जिसकी दृढवासना होती है, तिसके अनुसार शीघ्र जाय पावता है ॥ हे रामजी ! अनेक वासना जिसके हृदयविषे होती हैं, अरु जिसकी तीव्रता होती है; तिसका जय होता है, जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग होते हैं, कई उपजते हैं, कई नष्ट हो जाते हैं, कई सदृश होते हैं, कई विपर्यय होते हैं, तैसे वसको सदृश मनी दृष्टलुप्त हुए ॥ हे रामजी ! तैसे अनेक सृष्टि एक एक चिद्अणुविषे स्थित होती हैं वास्तवते कछु नहीं, चिदाकाशही चिदाकाशविषे स्थित है, अरु यह जो जगत् भासता है, सो आकाशहीरूप है, जो जागृतरूप होइकरि अनवहीं सवरूपकी नाईं भासता है; जैसे पत्र फूल फल सब वृक्षरूप हैं; वृक्षही ऐसे रूप होइकरि स्थित हैं, तैसे अनतशक्ति परमात्मा अनेकरूप होइकरि भासता है ॥ हे रामजी ! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जो त्रिपुटी भासती है; सो ज्ञानीको अजन्मा पद भासती है, अरु अज्ञानीको द्वैतरूप जगत् होइकरि भासता है, कहूं शून्य भासता है, कहूं तम भासता है, कहूं प्रकाश भासता है, अरु देश, काल, क्रिया, द्रव्य आदिक सब जगत् है सो सब आदि, अंत, मध्यते रहित स्वच्छ आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे सोमजलते तरंग भी होते हैं, सो जलही रूप हैं, तैसे अहं त्वं आदिक जगत् भी बोधरूप है, सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैतकल्पनाका अभाव है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्र० लीलोपाख्याने प्रयोजनवर्णन नाम त्रिचत्वारिंशत्तम सर्ग ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४४.

जगद्भ्रान्तिवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अहं त्वं आदिक जो दृश्यभ्रांति है, सो कारण बिना परमात्माते कैसे उदय हुई है ? जिसप्रकार मैं समझौं तिसी

प्रकार मुझको बहुरि समझाओ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जेता कछु कारणकार्य जगत् भासता है, तिसका उदय होना आदि परमात्माते सवही हुआ है, अर्थ यह जो संवेदनके फुरणेकरि इकट्ठेही पदार्थ भासि आये हैं, अरु सर्वदा सर्व प्रकार सर्वात्मा अजरूप अपने आपविषे स्थित हैं ॥ हे रामजी! यह सर्व शब्द अरु अर्थरूप कलना भासी है, सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, अरु ब्रह्मसत्ता सर्व शब्द अर्थकी कलनाते रहित अपने आपविषे स्थित है, जैसे सुवर्णते इतर भूषण नहीं, अरु जलते इतर तरंग नहीं तैसे ब्रह्मते इतर जगत् नहीं, ब्रह्मस्वरूप है ॥ हे रामजी! ईश्वर जो आत्मा है, सो जगत्‌रूप है, जगत् ईश्वररूप है, जैसे स्वर्ण भूषणरूप है, भूषण स्वर्ण है, अर्थ यह जो स्वर्णविषे भूषण शब्द अरु अर्थ कल्पित है, वास्तव नहीं, तैसे जगत् आत्माका आभासरूप है, वास्तवते कछु नहीं ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् है, सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, जैसे अवयवीते भिन्न अवयव नहीं होता, तैसे आत्माते अवयवी जेता कछु जगत् है, सो भिन्न नहीं, आत्माविषे संवेदनके फुरणेकरि तन्मात्रा फुरी है, आत्माविषे इनका उपजना सम हुआ है, पाछे विभागकल्पना हुई है, जो तिनते भूत हुए हैं, इत्यादिक जगत्‌रूप कैसा है, सो आत्माते अन्य नहीं, जैसे शिलाविषे चितेरा भिन्न भिन्न पूतलीको कल्पता है सो शिलारूपही है इतर कछु नहीं, तैसे अहं त्वं आदिक जगत् चिद्घन आत्माविषे मनरूपी चितेरेने कल्पी है, सो चिद्घनरूपही है इतर कछु नहीं; जैसे जलविषे तरंग स्थित होते हैं, सो जलरूपही हैं, तरंगोंका शब्द अरु अर्थ जलविषे कोऊ नहीं तैसे आत्माविषे जगत् स्थित है अरु आत्मा जगतके शब्द अरु अर्थते रहित है ॥ हे रामजी! जगत् परमपदते भिन्न नहीं; अरु परमपद जगत्‌विना नहीं, केवल चिद्रूप अपने आपविषे स्थित है, अरु जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं, स्पंद अरु निस्पंद दोनों रूप वायुके हैं, अरु जब स्पंदरूप होता है, तब स्पर्शरूप होइकरि भासता है, अरु निस्पंद हुए स्पर्श नहीं भासता, तैसे जगत अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं, अरु जब संवेदन किंचित्‌रूप होना है, तब जगत्‌रूप होइ भासता है, अरु संवेदनके निस्पंद हुएते जगत नहीं भासता,

होता है, तिसका प्रतिबिंब आदर्शविषे भासता है, अरु चल पदार्थ रहता नहीं भासता, ताते उनका प्रतिबिंब नहीं भासता तैसे जिस पदार्थकी तीव्र संवेगभावना होती है, तिसका प्रतिबिंबचेतन दर्पणविषे भासता है, अन्यथा नहीं भासता, जैसे तीव्र वेगवान् बडा नद होताहै सो समुद्रको शीघ्रही जाय प्राप्त होताहै, और नहीं प्राप्त हो सकते, तैसे जिसकी दृढवासना होती है, तिसके अनुसार शीघ्र जाय पावता है ॥ हे रामजी ! अनेक वासना जिसके हृदयविषे होती हैं, अरु जिसकी तीव्रता होती है, तिसका जय होता है जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग होते हैं, कई उपजते हैं, कई नष्ट हो जाते हैं, कई सदृश होते है, कई विपर्यय होते हैं, तैसे उसको सदृश मंत्री टहलुए हुए ॥ हे रामजी ! तैसे अनेक सृष्टि एक एक चिद्अणुविषे स्थित होती हैं वास्तवते कछु नहीं, चिदाकाशही चिदाकाशविषे स्थित है, अरु यह जो जगत् भासता है, सो आकाशहीरूप है, जो जाग्रतरूप होइकरि असत्‌ही सतरूपकी नाईं भासता है, जैसे पत्र फूल फल सब वृक्षरूप हैं, वृक्षही ऐसे रूप होइकरि स्थित हैं, तैसे अनंतशक्ति परमात्मा अनेकरूप होइकरि भासता है ॥ हे रामजी ! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जो त्रिपुटी भासती है, सो ज्ञानीको अजन्मा पद भासती है, अरु अज्ञानीको द्वैतरूप जगत् होइकरि भासता है, कहूं शून्य भासता है, कहूं तम भासता है, कहूं प्रकाश भासता है, अरु देश, काल, क्रिया, द्रव्य आदिक सब जगत् है सो सब आदि, अंत, मध्यते रहित स्वच्छ आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे सोमजलते तरंग भी होते हैं, सो जलही रूप हैं, तैसे अहंत्व आदिक जगत् भी बोधरूप है, सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैतकल्पनाका अभाव है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्र० लीलोपाख्याने प्रयोजनवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तम सर्ग॰ ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४४.

जगत्किंचनवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अहं त्वं आदिक जो दृश्यभ्रांति है, सो कारण विना परमात्माते कैसे उदय हुई है ? जिसप्रकार मैं समझौं तिसी

प्रकार मुझको बहुरि समझाओ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेता कछु कारणकार्य जगत् भासता है, तिसका उदय होना आदि परमात्माते सवही हुआ है,अर्थ यह जो संवेदनके फुरणेकरि इकट्टेही पदार्थ भासि आये हैं, अरु सर्वदा सर्व प्रकार सर्वात्मा अजरूप अपने आपविषे स्थित हैं ॥ हे रामजी ! यह सर्व शब्द अरु अर्थरूप कलना भासी है, सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, अरु ब्रह्मसत्ता सर्व शब्द अर्थकी कलनाते रहित अपने आपविषे स्थित है, जैसे सुवर्णते इतर भूषण नहीं, अरु जलते इतर तरंग नहीं तैसे ब्रह्मते इतर जगत् नहीं, ब्रह्मस्वरूप है ॥ हे रामजी ! ईश्वर जो आत्मा है, सो जगत्‌रूप है, जगत् ईश्वररूप है, जैसे स्वर्ण भूषणरूप है, भूषण स्वर्ण है, अर्थ यह जो स्वर्णविषे भूषण शब्द अरु अर्थ कल्पित है, वास्तव नहीं, तैसे जगत् आत्माका आभासरूप है, वास्तवते कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, जैसे अवयवीते भिन्न अवयव नहीं होता, तैसे आत्माते अवयवी जेता कछु जगत् है, सो भिन्न नहीं, आत्माविषे संवेदनके फुरणेकरि तन्मात्रा फुरी है, आत्माविषे इनका उपजना सम हुआ है, पाछे विभागकल्पना हुई है, जो तिनते भूत हुए हैं, इत्यादिक जगत्‌रूप कैसा है, सो आत्माते अन्य नहीं, जैसे शिलाविषे चितेरा भिन्न भिन्न पूतलीको कल्पता है सो शिलारूपही है इतर कछु नहीं, तैसे अहंत्व आदिक जगत् चिद्घन आत्माविषे मनरूपी चितेरेने कल्पी है, सो चिद्घनरूपही है इतर कछु नहीं; जैसे जलविषे तरंग स्थित होते हैं, सो जलरूपही हैं, तरंगोंका शब्द अरु अर्थ जलविषे कोऊ नहीं तैसे आत्माविषे जगत् स्थित है अरु आत्मा जगतके शब्द अरु अर्थते रहित है ॥ हे रामजी ! जगत् परमपदते भिन्न नहीं, अरु परमपद जगत्‌विना नहीं, केवल चिद्रूप अपने आपविषे स्थित है, अरु जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं, स्पंद अरु निस्पंद दोनों रूप वायुके हैं, अरु जब स्पंदरूप होता है, तब स्पर्शरूप होइकरि भासता है, अरु निस्पंद हुए स्पर्श नहीं भासता, तैसे जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं, अरु जब संवेदन किंचित्‌रूप होता है, तब जगत्‌रूप होइ भासता है, अरु संवेदनके निस्पंद हुएते जगत नहीं भासता,

अरु आत्मसत्ता सदा एकरूप है ॥ हे रामजी ! जब संवेदन फुरणेते रहित होइकरि आत्मपदविषे स्थित होवे, तब सकलरूप जगत् बहुरि भासे सो भी आत्मरूप भासे जैसे वायुको स्पंद निस्पद दोनों रूप अपना आप भासता है, तैसे इसको भासता है, जैसे वायुविषे स्पंदता वायुरूप स्थित है, तैसे आत्माविषे जगत् आत्मरूपकरि स्थित है, जैसे तेज अणुका प्रकाश मदिरविषे होता है, तब बाहर भी प्रकाश प्रगट होता है, तैसे जब केवल सवित्मात्रविषे सवेदन स्थित होता है, तब फुरणेविषे भी सवित्मात्रही भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे रसतन्मात्राविषे जल स्थित होता है, तैसे आत्माविषे जगत स्थित है, जैसे गधतन्मात्राके अंतर सपूर्ण पृथ्वी स्थित है, तेसे किंचनरूप जगत् आत्माविषे स्थित है, सो आत्मसत्ता निराकार चिन्मात्ररूप है, उदय अरु अस्तते रहित अपने आपविषे स्थित है, प्रपचभ्रम तिसाविषे कोऊ नही ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको दृढीभूत जगत् भी आकाशरूप भासता है, अरु जो अज्ञानी है, तिनको असत्रूप जगत् भी सत्रूप होइ भासता है ॥ हे रामजी ! जैसा जैसा सवेदन चित्तसंवित्विषे फुरता है, तेसा तसा रूप जगत् होइ भासता है, यह जेते तत्त्व है, अरु तन्मात्रा है सो सब चित्तसवेदनके फुरणेकरि स्थित हुए है, जेसा जैसा तिसविषे फुरणा होता है, सोई होइकारि भासता है, काहेते जो आत्मा सर्वशक्तिमान् है, जिस जिस पदार्थका फुरणा फुरता है, सोई अनुभवविषे सत्रूप होइकरि भासता है; अरु जो कछु पंचज्ञानेंद्रिय छठा मनका विषय होता है, सो सब असत्रूप है, अरु आत्मसत्ता इनते अतीत है, अरु विश्वभी क्या रूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् स्थित है; जैसे तेज अरु प्रकाश अनन्यरूप है, तैसे आत्मा अरु जगत् अनन्यरूप हैं, जैसे स्तभविषे शिल्पी पुतलिया देखता है, जैसे मृत्तिकाके पिंडविषे कुलाल वर्तन देखता है, जैसे भीत ऊपर चितेरा मूर्ति रगमें लिखता है सो अनन्यरूप है, तैसे परमात्माविषे सृष्टि अनन्यरूप है ॥ हे रामजी ! जैसे मरुस्थलविषे मृगतृष्णाका जल अरु तरंग असत्ही सत्रूप हो भासता है तैसे आत्माविषे असत्रूप जगत् त्रिलोकी भासती है, जब चित्त संवित्-

विषे संवेदन फुरता है, तब जगत् भासता है अरु जब संवेदन नहीं फुरता तब जगत् भी नहीं भासता अरु जगत् कछु ब्रह्मते भिन्न नहीं, जैसे बीज अरु वृक्षविषे कछु भेद नहीं, जैसे क्षीर अरु मधुरताविषे भेद नहीं, जैसे मिरच अरु तीक्ष्णताविषे कछु भेद नहीं, जैसे समुद्र अरु तरंगविषे कछु भेद नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे कछु भेद नहीं। तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं, जैसे अग्निविषे उष्णता स्वाभाविक स्थित है, तैसे निराकार आत्माविषे सृष्टि स्वाभाविकही स्थित है ॥ हे रामजी ! यह जगत् ब्रह्मरूपी रत्नका किंचन है, जैसा जैसा किंचन होता है, तैसा तैसा होइकरि भासता है, जो किंचनरूप है, अकारण हुए जो पदार्थ अकारक होता है, अरु जिस अधिष्ठानविषे भासता है, तिससों अनन्यरूप होता है, अधिष्ठानते भिन्न उसकी सत्ता नहीं होती, तैसे यह जगत् आत्माविषे अनन्यरूप होता है, कछु उपजा नहीं, परंतु संवेदनके फुरणेकरि भासता है, जेता जगत् है, अरु वासना है, तिनका बीज संवेदन है, इसकरि जगत्‌भ्रम है, ताते संवेदनके अभावका पुरुपार्थ करौ, जब संवेदनका अभाव होवैगा, तब जगत्‌भ्रम नष्ट हो जावैगा, अरु वास्तवते न कछु उपजा है न कछु नष्ट होता है, सर्व शांतरूप चिद्घन ब्रह्मशिला घनकी नाईं अपने आपविषे स्थित है॥हे रामजी! चित्तपरमाणुविषे चैत्यताकरिके अनेक सृष्टि भासती हैं, तिन सृष्टिविषे जो परमाणु है, तिन परमाणुओंविषे अंतर और सृष्टि स्थित है, तिनकी संख्या कछु नहीं, जैसे जलविषे तरंग अनेक होते हैं, कई गुप्तरूप होते हैं, कई प्रगट होते हैं, सो जलकी शक्तिरूप है, जैसे जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्था जीवोंके अंतर स्थित हैं, कई गुप्त हैं, कई प्रगटरूप हैं ॥ हे रामजी! जबलग इसका संवेदन दृश्यसाथ मिला हुआ है, तबलग सृष्टिका अंत नहीं,जब चित्त उपशम होवैगा, तब जगतभ्रम मिटि जावैगा, जब कछु भी भोगोंविषे वृत्ति न उपजै तब जानिये कि, आत्मपद प्राप्त होवैगा, यह श्रुतिका निश्चय है ॥ हे रामजी ! ज्यों ज्यों इसका ममत्व दूर होता है, त्यों त्यों बंधनोंतें मुक्त होता है, जब अहंभाव जो जीवत्वभाव है तिसका निर्वाण होता है, तब जन्मोंकी जो परंपरा संपदा है, सो भी नष्ट हो जाती है, केवल शुद्धरूपही होता है,

तब तिन पुरुषोंको स्थावरजंगमरूप जगत् सब आत्मरूप होता है, जैसे समुद्रको तरंग बुद्बुद सब अपना आपरूप भासता है, तैसे ज्ञानवान्को सब जगत् आत्मरूप भासता है ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो संवेदन फुरा है, सो आपको ब्रह्मारूप जानत भया है, तिस ब्रह्माने आगे भावना करिकै संकल्परूप नानाप्रकारका जगत् रचा है, तिसको असत्यरूप अंतर अनुभव करता भया है, तिसविषे कहूँ निमेषविषे अनेक युगोंका अंत भासता है, कहूं अनेक युगोंका अंत भासता है, कहूं अनेक युगोंविषे निमेषका अनुभव होता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगत्किंचनवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४५.

देवशब्दार्थविचारवर्णनम्

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! चिद् परमाणुविषे जो निमेष होता है, तिसके लाखवें भागविषे जगतोंके अनेक कल्प फुरते हैं, तिन सृष्टिविषे जो परमाणु हैं, तिनविषे सृष्टि फुरती हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, सो जलरूप हैं, तरंग शब्द अरु तिसका अर्थ भ्रमरूप है, तैसेही आत्माविषे भ्रमरूप अनेक सृष्टि फुरती है, जैसे मरुस्थलविषे मृगतृष्णाकी नदी चलती दृष्ट आती है, तैसे आत्माविषे यह जगत् भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे कथाका अर्थ चित्तविषे आय फुरता है, जैसे संकल्पपुर भासता है, तैसे जगत् असतरूप सत् हो भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे ज्ञानवानोंविषे श्रेष्ठ ! जिस पुरुषको विचारद्वारा सम्यक् ज्ञान हुआ अरु निर्विकल्प आत्मपदकी प्राप्ति भई है, तिसको देह अपने साथ कैसे भासता है ? अरु देह उसकी कैसे रहती है ? अरु देह प्रारब्धकरिकै उसका शरीर कैसे रहता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आदि जो ब्रह्मशक्तिविषे संवेदन फुरा है, तिसका नाम नीति हुआ है, तिसविषे जो संभावना धारी है कि, यह पदार्थ ऐसे होवेगा अरु इसकरि होवेगा, एता काल रहेगा, सो अनेक कल्पपर्यंत ऐसेही होता है,

जेता काल उसने धारा है, तेता कालका नाम नीति है, महा सत् भी तिसको कहते हैं, महाचेतना भी तिसको कहते हैं, महाशक्ति भी तिसको कहते हैं, महाअदृष्ट, महाकृपा भी तिसको कहते हैं, महाउद्भव भी तिसको कहते है, अर्थ यह जो अनंत ब्रह्मांडोंकी उपजानेहारी है, जैसा फुरणा दृढ हुआ है, तैसा रूप होइकरि स्थित है, जो यह स्थावररूप है, यह जगमरूप है, यह दैत्य है, यह देवता है, यह नाग है, यह नागिनी है, ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंत जैसे तिसविषे अध्यास है, तैसेही तिस प्रकार स्थित है, स्वरूपतें ब्रह्मसत्ताका व्यभिचार कदाचित् नहीं हुआ, सदा अपने आपविषे स्थित है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको सब ब्रह्मस्वरूप भासता है, अरु जो अज्ञानी है, तिनको जगत् अरु नीति भी भिन्न भासती है, ज्ञानवान्को सब अचल ब्रह्मसत्ताही भासती है, अज्ञानीको चलनरूप जगत् भासता है, सो जगत् कैसा है, जैसे आकाशविषे वृक्ष भासता है, जैसे शिलाके उदरविषे मूर्ति होती है, सो शिलारूपही होती है, तैसे यह जगत् ब्रह्मविषे है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनको सर्ग अरु निमित्त सब ज्ञानरूपी भासता है, जैसे अवयवीके अवयव अपना रूप होता है, तैसे ब्रह्मसत्ताके अवयव ब्रह्म नित्य सर्गादिक अपना रूप है ॥ हे रामजी ! तिस नीतिको देव कहते हैं, जो कछु किसीको प्राप्त होता है, सो तिस देवकी आज्ञाकरिकै प्राप्त होता है,काहेते जो आदि यही निश्चय धरा है, जो इस साधनकरि यह फल इसको प्राप्त होवैगा, जैसा साधन होवै तैसा फल अवश्य सबको देवते प्राप्त होता है, इस कारणते नीतिको देव कहते हैं, और देवको नीति कहते हैं ॥ हे रामजी ! यह पुरुष जो कछु पुरुषार्थ करता है, तिसके अनुसार फलको प्राप्त होता है, इस कारणते इसका नाम नीति है, तिसहीका नाम पुरुषार्थ है, तुम जो मुझको देव अरु पुरुषोंका निर्णय पूछा अरु मैंने कहा, तिसकी तुम पालना करौ, इसका नाम पुरुषार्थ है, तिसका जो फल तुमको प्राप्त हुआ, तिसका नाम देव है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष ऐसे देवपरायण हुआ, जो मुझको देव भोजन करावैगा, सो करैगा, अरु मौन धारिकै अक्रिय होइ बैठे, तिसको जो आइ प्राप्त होवै सो भी नीति है, अरु जो पुरुष भोगोंके निमित्त पुरुषार्थ

करता है, सो भोगोंको भोगैगा, अरु अनेक शरीरोंको मोक्षपर्यंत धारैगा यह भी नीति है ॥ हे रामजी ! जो आदि संवित्‌विषे संवेदन फुरिकरि भवितव्यता धरी है, तिसही प्रकार स्थित है, तिसका नाम भी नीति है, तिस नीतिके उल्लंघनको ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक भी समर्थ नहीं, सब तिनके अनुसार स्थित है, तौ और कैसे उल्लंघ सकै ? हे रामजी ! जो पुरुष पुरुषार्थको त्याग बैठे है, तिनको फल नहीं प्राप्त होता, यह भी नीति है, अरु जो पुरुष फलके निमित्त पुरुषार्थ करता है, तिसको फल प्राप्त होता है, यह भी नीति है, अरु जो प्रयत्नको त्यागिकरि निष्क्रिय होइ बैठ हैं, अरु मनकरि विषयोंकी चित्तमें वासना करते है, सो निष्फलही रहते है, अरु जो पुरुष और कर्तव्यको त्यागिकरि चित्तकी वृत्तिमें शून्य दैवपरायण हो रहे हैं, विषयोंकी चित्तवासना नही करते, तिनको सफलताही होती है काहेते कि, फुरणेते रहित होना भी पुरुषार्थ है, यह नीति है, जो अर्थ चिंतवणेवालेको भी नहीं प्राप्त होता, अरु अयाचकको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! सोई पुरुषार्थ सफल है, जो आत्मबोधके निमित्त होवै, जब ब्रह्मसत्ताकी ओर तीव्र अभ्यास होता है, तब परमपदकी अवश्य प्राप्ति होती है, जब परमपद पाया, तब सब जगत् चिदाकाशरूप होइ भासता है, नीति आदिक जो विस्तार कहा है, सो सर्व भ्रमरूप है, ब्रह्मसत्ताही ऐसे होइ भासती है, जैसे पृथ्वीविषे रससत्ताही तृण, वेलि, गुच्छे, फूलरूप होइकरि स्थित है, तैसे नीति आदिक सब जगत् होइकरि ब्रह्मही स्थित है, और वस्तु कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे दैवशब्दार्थविचारवर्णनं नाम पचचत्वारिंश सर्ग ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशत्तम सर्ग ४६.

बीजावतारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु तुझको भासता है, सो सर्व प्रकार सर्वकाल सर्व ओरते ब्रह्मतत्त्व सर्व ओरकरि सर्वात्मा होइकरि स्थित भया है, सो अनंत आत्मा है, जब तिसविषे चित्‌शक्ति प्रगट होती

है, अर्थ यह जो शुद्ध चेतनमात्रविषे अहफुरणा होता है, तब आगे जगत भासता है, कहूं उपजता भासता है, कहूं नष्ट होता भासता है, कहू हुल्लास भासता है, कहू चित्त भासता है, कहूं अकिंचन भासता है, कहू प्रगट, कहूं अप्रगट भासता है, नानाप्रकारका जगत् है, जहां जैसा तीव्र अभ्यास होता है, तहाँ तैसा होइकरि भासता है, काहेते जो आत्मा सर्वशक्ति सर्वरूप है, जैसा जैसा फुरणा तिसविषे दृढ होता है, सोई रूप होइकरि भासता है ॥ हे रामजी ! यह जो नानाप्रकारकी शक्तियां कही हैं, सो वास्तव आत्माते इतर कछु नहीं, बुद्धिमानोंने समुझावनेके निमित्त नानाप्रकारकी विकल्पजाल कही है, आत्माविषे विकल्पजाल कोऊ नहीं, जैसे जलतरंगविषे कछु भेद नहीं, जैसे सुवर्णभूषणोंविषे भेद कछु नहीं, जैसे अवयवी अरु अवयवविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु शक्तिविषे भेद नहीं ॥ हे रामजी ! एक संवित् है, एक संवेदन है, संवित् जो है, सो वास्तव है, अरु संवेदन कल्पना है, जब संवितविषे चिन्मात्र संवेदन फुरता है, तब वह जैसे चेतता जाता है, तैसे आगे होइकरि स्थित होता है, शुद्ध चिन्मात्र संवित्विषे अंतर अरु बाहिर कल्पना कोऊ नहीं, जब स्वभावते किंचनरूप संवेदन होता है, तब आगे कछु देखता है, तिस देखनेकरि नानाप्रकारके आकार भासते हैं, सो और तौ कछु नहीं, सर्व ब्रह्मही है ॥ हे रामजी ! शक्ति अरु शक्तिमान्विषे भेद अज्ञानी देखते हैं, अरु अवयवीअवयवभेद भी कल्पते हैं, परमार्थते भेद कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसके आश्रय संकल्पजाल आभास होती है, जिस संकल्पकी तीव्रता होती है, सो सत होवै अथवा असत् होवै, परंतु तिसहीका भान होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बीजावतारो नाम षट्चत्वारिंशत्तम सर्ग ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्ग ४७

बीजांकुरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो सर्वगत देव परमात्मा महेश्वर है, सो स्वच्छ अनुभव परमानंदरूप है, आदि अंतते रहित है, तिस शुद्ध चिन्मात्र

परमानंदते प्रथम जीव उपजा नहीं, तिसते चित्त उपजा, चित्तते आगे जगत् उपजा है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अनुभव परिणामकरिकै जो शुद्ध ब्रह्मतत्त्व सर्वव्यापी द्वैतते रहित स्थित है, तिसविषे तुच्छरूप जीव कैसे सत्यताको पाता भया है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ब्रह्म सदाभास है, अर्थ यह जो असत्‌रूप जगत् जिसकरि सत् भासता है, अरु स्वच्छ है, अर्थ यह जो आभासरूपी जगतते भी रहित है, अरु बृहत्, अर्थ यह जो वड़ा है, सो वडा भी दो प्रकारका है, अविद्याकृत जगत्‌करि जो वड़ा है, सो अविद्याकी वड़ाई है, मिथ्या है, अरु ब्रह्म वड़ाई है सो सर्वात्मकरूप है, सो सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तुसों पूर्ण है, अरु अविद्याकृत देशकालवस्तुते रहित निराकार है, सो ज्ञानीका विषय है, ताते बृहत् है, अरु परम चेतन है, अरु भैरव है, अर्थ यह जो जिसके भयकरि चद्रमा अरु सूर्य अग्नि वायु जल अपनी मर्यादामें चलते हैं, परमानद अविनाशी है, सर्व ओरते पूर्ण सम है, शुद्ध है, अचित्य है, अर्थ यह जो वाणीकरि कहा नहीं जाता, ऐसा परम शांत पद है, क्षोभते रहित चिन्मात्र है, ऐसी जो आत्मसत्ता ब्रह्म है, तिसका जो स्वभावसपत है, तिसका नाम जीव है, अर्थ यह जो शुद्ध चिन्मात्रविषे अहं ऐसे जो फुरणा है, तिसका नाम जीव है, तिस अनुभवरूपी दर्पणविषे अहंरूपी प्रतिबिंब फुरणेका नाम जीव कहते हैं, सो जीव अपने शांतपदको त्यागेकी नाईं स्थित होता है, सो चिदात्माही फुरणेद्वारा आपको जीवरूप जानता भया है, जैसे समुद्रही द्रवता करिकै तरगरूप होता है, समुद्रतरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्मही जीवरूप है, ब्रह्म अरु जीवविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पदविषे भेद कछु नहीं, जैसे वर्फ अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जीवविषे भेद कछु नहीं ॥ ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी जो आत्मतत्त्व है, सो अपने स्वभाववशते मायाकरिकै सवेदनसहित जीवरूप कहते हैं, सो जीव आगे फुरनेकरिकै वडे विस्तारको धारता है, जैसे इंधनकरिकै अग्निके वहुत अणु होते हैं, अरु वडे प्रकाशको प्राप्त होता है, तैसे जीव फुरणेकरि जगत्‌रूपको प्राप्त होता है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, सो नीलता

कछु भिन्न वस्तु नहीं, तैसे अहंभावकरिकै ब्रह्मविषे जीवरूप भासता है, अरु अहंकृतिको अंगीकार करिकै कल्पित रूपकी नाईं स्थित होता है, जैसे घनकी शून्यताकरिकै आकाशमें नीलता भासती है, तैसे स्वरूपके प्रमाद करिकै देशकालवस्तुके परिच्छेदसहित अहंकाररूपी जीव भासते हैं, वास्तवते चिदाकाशही चिदाकाशविषे स्थित है, जैसे वायुकरिकै समुद्र तरंगरूप होता है, तैसे संवेदनके फुरणेकरि आत्मसत्ता जीवरूप होती है, सो जीव चैत्योन्मुखत्वताकरिकै एती संज्ञाको पाता है, चित्त कहिये, जीव कहिये, मन बुद्धि अहंकार माया प्रकृतिसहित सब तिसहीके नाम हैं, सो जीव संकल्पकरिकै पंचभूत तन्मात्राको चेतता भया, तब तिन पंच तन्मात्राके आकारते अणुरूप होकरि स्थित भया, तिसते अनउपजेही उपजेकी नाईं स्थित भये, अरु भासने लगे, बहुरि वही चित्तसंवेदन सो अणु अंगीकारकरिकै जगत्को रचता भया, जैसे बीजते सत् अंकुर वृक्ष होता है, तैसे संवेदन विस्तारको पावत भया, प्रथम एक अंडरूपी होकरि स्थित भया, तिस अंडको फोडत भया तब तिसविषे जगत् भासने लगा, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे स्वप्न-सृष्टि भासती है, तैसे जगत् भासने लगा, तिसते भिन्न भिन्न देह अरु भिन्न भिन्न नाम कल्पे, जैसे मृत्तिकाकी सेना बालक कल्पता है, तिसके भिन्न भिन्न नाम रखता है, तैसे स्थावर जंगम आदिक नाम कल्पना-करि यह पृथ्वी, यह जल, अग्नि, वायु, आकाश है, तिन पांचों भूतोंकी सृष्टि संकल्पते उपजत भई ॥ हे रामजी ! आदि ब्रह्मते जो जीव फुरे तिसका नाम ब्रह्मा है, सो ब्रह्मा आत्माविषे आत्मरूप होइकरि स्थित है, तिसते आगे क्रमकरिकै जगत् हुआ है, जैसे वह चेतता है, तैसा होइकरि स्थित होता है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै तरंग होते हैं, तैसे ब्रह्मविषे चित्त स्वभावकरिकै जीव होता है, सो जीव जब प्रमादकरिकै अनात्म भावको धरने लगा तब कर्मोंकरि बध्यमान होने लगा, जैसे जल जब दृढ जडताको अंगीकार करता है, तब बर्फरूप होइकरि पत्थरसमान होता है, तैसे जीव जब अनात्मविषे अभिमान करता है, तब कर्मोंके बंधनमें आता है हे रामजी ! कर्मोंका बीज संकल्प है, अरु संकल्प जीवते फुरता है, अरु

जीवत्व भाव इसको तव होता है, जव शुद्ध चेतनमात्र स्वरूपते इसका उत्थान होता है, उत्थान अर्थ यह, जव प्रमाद होता है तव इसको प्रमाद जीवत्वभाव होता है, जव जीवत्वभाव होता है, तव आगे अनेक सकल्प-कल्पना फुरती है, तिन संकल्पकल्पनाते कर्म होते है, कर्मोते जन्ममरण आदिक नानाप्रकारते विकार होते हैं, जैसे वीजते अकुर पत्र होते हैं, आगेते फूल फल टास होते जाते है, तैसे संकल्प कर्मोते नानाप्रकारके विकार होते हैं, जैसे जैसे कर्म जीव करता है, तिनके अनुसार जन्म मरण अध॰ ऊर्ध्वको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! कर्म नाम मनके फुरणेका है, फुरणेका नाम चित्त है, अरु फुरणेका नाम कर्म है, फुरणेका नाम दव है, तिसहीकरि इसको शुभ अशुभ जगत् प्राप्त होता है, सवका आदिकारण ब्रह्म है, तिसते प्रथम मन उत्पन्न भया है, तिसही मनने संपूर्ण जगत् की रचना करी है, जैसे वीजते अकुर होता है, वहुरि पत्र फूल फल टास होते है, तैसे ब्रह्मते मन अरु जगत् उपजा है ॥ इति श्रीयोगवा॰ उत्प॰ वीजांकुरवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८

जीवविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आदिकारण ब्रह्मते मन उत्पन्न भया है, सो मन संकल्परूप है, अरु मनकरि सपूर्ण जगत् भया है, अरु मन आत्माविषे मनस्त्वभावकरिकै स्थित है, तिस मनने भाव अभावरूपी जगत् कल्पा है, जैसे गधर्वकी इच्छाकरिकै गधर्वनगर होता है, तैसे मनकरि जगत् होता है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे द्वैतभेदकी कल्पना कछु नहीं, इस मनकरिकै ऐसी संज्ञा भई है, ब्रह्म अरु जीव अरु मन अरु माया कर्म जगत् द्रष्टा सव भेद मनकरि हुए हैं, आत्माविषे भेद कोऊ नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उछलते हैं अरु वडे विस्तारको धारते हैं, तैसे चित्तरूपी समुद्रविषे सवेदनकरिकै नानाप्रकारका जगत् विस्तारको पाता है, सो असत्रूपी जगत् है, काहेते कि, स्थिर नहीं रहता,

सदा चलरूप है,अरु जो अधिष्ठान स्वरूपभावकरि देखिये, तौ सत्‌रूप है, तातें द्वैत कछु न हुआ जैसे स्वप्नका जगत् सतअसत्‌रूप चित्तकरिकै भासता है,तैसे सत्‌असत्‌रूप यह जगत् भासता है,सो वास्तव कछु उपजा नहीं,चित्तके भ्रमकरिकै भासता है,जैसे इंद्रजालकी बाजीविषे नानाप्रकारके वृक्ष ओषधि भासते हैं, सो भ्रममात्र है तैसे यह जगत् भ्रममात्र है ॥ हे रामजी! यहजगत दीर्घ कालका स्वप्न है, मनके भ्रमकरिकै सत् होइ भासता है, जैसे स्थाणुविषे पुरुष असम्यक् ज्ञानकरिकै भासता है, अरु चोर जानके भयको प्राप्त होता है, तैसे जीव अनित्यभावको प्राप्त होइकरि शोकको करता है, जैसे बालक भ्रमकरिकै परछाँईविषे भूत कल्पता है, अरु भयको प्राप्त होता है तैसे यह पुरुष चितके संयोगकरि द्वैतको कल्पिकै भयको प्राप्त होता है, जैसे विचार कियेते वैतालका भय नष्ट होता है,तैसे आत्मज्ञानकरिकै भय आदिक विकार नष्ट हो जाते है ॥ हे रामजी! आत्मा अनादि दिव्यस्वरूप है, अरु अशांशीभावते रहित है, शुद्ध चैतन्यरूप है, जब वह चेतन संवित् चैत्योन्मुखत्व होता है, तब चित्त, अर्थ यह जो चेतनताका लक्षण है तिसते आगे जीवकल्पना होती है तिस जीवविषे अहंभाव होता है जो मैं हौं, जब अहंभाव हुआ, तब तिसते चित्त फुरता है, चित्तते इंद्रियें होती हैं, तिन इंद्रियोंतें देहभाव होता है,तिस देहभ्रमकरि मलिन हुआ नरक स्वर्ग बंध मोक्षकी कल्पना होती है जैसे बीजतें अंकुर पत्र फूल फल टास होत है,तैसे अहंभावते जगत विस्तार होता है ॥ हे रामजी! जैसे देह अरु कर्मोंविषे कछु भेद नहीं, जैसे ब्रह्म अरु चित्तविषे कछु भेद नहीं, जैसे चित्त अरु जीवविषे कछु भेद नहीं, जैसे चित्त अरु देहविषे कछु भेद नहीं, जैसे देहकर्मोंविषे कछु भेद नहीं, जैसे जीव अरु ईश्वरविषे भेद नहीं, तैसे ईश्वर अरु आत्माविषे भेद नहीं ॥ हे रामजी! सर्व ब्रह्मस्वरूप है, द्वैत कछु नहीं ॥ इति श्रीयोग० उत्पत्तिप्रकरणे जीवविचारो नाम अष्टचत्वारिंश सर्ग.॥४८॥

एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ४९

संश्रितोपशमयोगवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो नानात्व भासता है सो वास्तवं एक ब्रह्मस्वरूप है, चैत्यताकरिकै एक सो अनेकरूप हो भासता है, जैसे एक दीपते अनेक दीप होते हैं, तैसे एक परब्रह्म अनेकरूप हो भासता है ॥ हे रामजी ! यह असत्‌रूपी जगत् जिसविषे आभास है, तिस आत्मतत्त्वका जब पदार्थज्ञान होता है, तब चित्तविषे जो अहंभाव है, सो नष्ट हो जाता है, तिस अहंभावके नष्ट हुएते सब शोक नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! यह पुरुष चित्तरूपी है, अरु चित्तविषे जगत हुआ है, जब चित्त नष्ट होवैगा, तब जगत्भ्रम भी नष्ट हो जावैगा, जैसे अपने चरणविषे चर्मकी जूती पहिरते हैं, तब सर्व पृथ्वी चर्मकरि लपेटी भासती है, अरु ताप कंटक मिट जाते है, तैसे जब चित्तको शांति प्राप्त होती है, तब सर्व जगत् शांतरूप होता है, जैसे केलेका स्तंभ होता है, तिसविषे पत्रोंते अन्य सार कछु नहीं निकसता, तैसे सब जगत् भ्रममात्र है, और सार कछु नहीं निकसता ॥ हे रामजी ! एता भ्रम चित्तकरिकै होता है, जो बाल अवस्थामें क्रीडा करता फिरता है, बहुरि यौवन अवस्थाको धारता है, परंतु विषयोंको सेवता है, वृद्ध अवस्थामें चितानिषे जर्जरीभाव होता है, बहुरि मृत्युको प्राप्त होता है, कर्मोंके अनुसार नरकस्वर्गको चला जाता है ॥ हे रामजी ! यह सब मनका नृत्य है, मनही पड़ा भ्रमता है,जैसे नेत्र दूषणकरिकै आकाशविषे चंद्रमा भासता है; तैसे अज्ञानकरिकै जगतभ्रम भासता है, जैसे मद्यपानकरिकै वृक्ष भ्रमते भासते हैं, तैसे चित्तके सयोगभ्रमकरिकै जगत् द्वैत भासता है, जैसे बालक लीला करिकै भ्रमता है, तब सब जगत्को चक्रकी नाईं भ्रमता देखता है, तैसे चित्तके भ्रमकरिकै यह जीव जगत भ्रमको देखता है ॥ हे रामजी ! जब चित्त द्वैतको नहीं चेतता तब यह द्वैतभ्रम मिट जाता है, जबलग चित्तसत्ता फुरती है, तबलग नानाप्रकारका जगत भासता है ॥ शांतिको नहीं प्राप्त होता, अरु जब घन चेतनताको प्राप्त होता है, तब शांतिको प्राप्त होता है, अरु

जगत्भ्रम मिटि जाता है, जैसे पपैया बकता है और शांतिमान् नहीं होता, अरु जब घन वर्षाको प्राप्त होता है, तब बकनेते शात होता है, तैसे जब यह महाचेतन घनताको प्राप्त होता है, तब शांतिमान् होता है, व्यवहारविषे होवै अथवा तूर्ष्णी हो रहे, सदा शातिमान् होता है ॥ हेरामजी! जब चित्तकी चेतनता फुरती है, तब जगत्भ्रम नानाप्रकारके विकार देखता है, अरु भ्रमकरिकै ऐसे देखता है, जो मैं उपजा हौं, अब बड़ा भया हौं, मरौंगा, इत्यादिक विकार असत्‌रूप अपनेविषे जानता है, अरु स्वरूपते चेतन ब्रह्मते अनन्य है । जैसे वायु अरु स्पंदविषे कछु भेद नहीं तैसे ब्रह्म अरु चेतनताविषे कछु भेद नहीं । जब वायु स्पंदरूप होता है, तब स्पर्शकरिकै भासता है, तैसे चेतनता मिटती नहीं, अरु ब्रह्मकी चेतनता होवै, तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, केवल ब्रह्मसत्ताही पड़ी भासती है जैसे जेवरीके अज्ञानकरिकै सर्पभ्रम होता है, अरु जेवरीके यथार्थ जाननेते सर्पभ्रम मिटिजाता है, तब जेवरी पड़ी भासती है, तैसे ब्रह्मके अज्ञानते जगत् भ्रमकरिकै भासता है, जब चित्तसों दृढ चैत्यता भासती है, तब भ्रमका पदार्थज्ञान होता है, तब जगत्भ्रम मिटि जाताहै, केवल ब्रह्मसत्ता भासती है ॥ हे रामजी ! दृश्यरूपी इसको व्याधिरोग लगा है, तिस रोगका नाशकर्त्ता संवित् मात्र है, जबलग चित्त बहिर्मुख होइकरि दृश्यको चेतता है, तबलग शांत नहीं होता, अरु जब चित्त सर्ववासनाको त्यागिकरि अंतर्मुख अपने स्वभावविषे स्थित होवैगा तब तिसही कालमें मुक्तिरूप शात होवैगा, इसविषे संशय कछु नहीं, जैसे जेवरीकि दूरसों देखनेकरि सर्प भासता है, अरु जब निकट होइकरि देखै है, तब सर्पभ्रम मिटि जाता है, जेवरीही भासती है, तैसे आत्माका विवर्तरूप जगत् है, जब बहिर्मुख होइके देखता है, तब जगत्‌ही भासता है, जब अंतर्मुख होइके देखता है, तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, आत्माही भासता है ॥ हे रामजी ! जिस जिसविषे अभिलाषा होवै, तहां तिसको त्यागि दे, जैसे निश्चयकरि मुक्ति प्राप्त होती है, सो त्यागनेविषे यत्न कछु नहीं महात्मा जो पुरुष है, सो प्राणोंको तृणकी नाईं त्यागि देते हैं, अरु बडे दु खको सहि रहते हैं, तुझको अभिलाषा त्यागनेविषे क्या कठि-

नता है ॥ हे रामजी ! आत्माके आगे अभिलाषाही आवरण है, अभि
लाषाके होते आत्मा नहीं भासता है, जैसे बादलोंके आवरणकरिकै सू
नहीं भासता, जब बादलोंका आवरण नाश होता है तब सूर्य भासत
है, तैसे अभिलाषाके निवृत्त हुए आत्मा भासता है, ताते जो कछु अभि
लाषा उठे तिसको त्याग अरु निरभिलाषा होइकरि आत्मपदविषे
होइ, अरु प्रकृत आचार जो कछु देह इंद्रियोंकारि ग्रहण कर
जो कछु त्याग करना होवै, तिसको त्याग करो, अरु देहविषे है,
गकी बुद्धि न होवै ॥ हे रामजी ! जो तू संपूर्ण दृश्यकी इ अहं-
तब तुझको प्रत्यक्ष आत्मपद भासैगा, जैसे हाथविषे बि क नष्ट
होता है, जैसे नेत्रोंके आगे प्रतिबिंब प्रत्यक्ष भासता है, पे जगत
त्यागते आत्मपद तुझको प्रत्यक्ष भासैगा, अरु सब जग गा, जैसे
भासैगा, जैसे महाप्रलयविषे सब जगत् जलमय भा र लपेटी
दृष्टही नहीं आता, तैसे आत्मपदते इतर तुझको कछु ाति प्राप्त
तत्त्वको न जानना, इसीका नाम बंधन है, अरु आ होता है,
इसीका नाम मोक्ष है, और मोक्ष कोऊ नहीं ॥ इति श्रीयो त्र
त्तिप्रकरणे सस्थितोपशमयोगो नाम एकोनपंचाशत्तम सर्ग ॥ ४९

पंचाशत्तमः सर्गः ५०

सत्योपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगव ! मन क्योंकरि उत्पन्न हुआ है ? वसिष्ठ
उवाच ॥ हे रामजी ! ब्र अनंतशक्ति है, तिसविषे अनेक
किंचन होता है, जहां जहां जैसी जैसी शक्ति फुरती है, तैसा तैसा रूप
होइकरि भासता है, जब शुद्ध चिन्मात्र सत्ता चेतना
अह अस्मि, तब तिस फुरनेकरि जीव है,
कारण भासती है, जब दृश्यकी ओर
भासता है, बहुरि नानाप्रकारके
उवाच ॥ हे मुनिविषे श्रेष्ठ ! जो

अरु कर्म क्या है ! अरु कारण किसको कहते हैं ? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! फुरणा अफुरणा दोनों चिन्मात्रसत्ताका स्वभाव है, जैसे फुरणा अफुरणा दोनों वायुका स्वभाव है, परंतु जब फुरता है, तब आकाश- व्य१ स्पर्श होइकरि भासता है, जब चलनेते रहित होता है, तब जब चि जाता है, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्यताका लक्षण जो है, अहं देखता है, । यह जो मैं हौं, तब तिसका नाम स्पदबुद्धीश्वर कहते हैं, तिसकरि भया हौं, ्प हो भासता है तिस जगत् दृश्यते रहित होना तिसको नि- अरु स्वरूपते ेत्तके फुरणेकरि नानाप्रकार जगत् होइ भासता है, अरु चि- नहीं तैसे ब्रह्म अ ातभ्रम मिटि जाता है, नित्य शांत ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती ता है, तब स्पर्शत्व अरु कर्म अरु कारण यह सब चित्तस्पंदके नाम हैं, ब्रह्मकी चेतनता है नुभव भिन्न नहीं, अरु अनुभवही चित्तस्पद हुएकी पड़ी भासती है ज ा कर्म कारणका बीजरूप चित्तस्पंद है, चित्तस्पद रीके यथार्थ जाननेकरि भासता है, बहुरि चिदाभासद्वारा देहविषे है, तैसे ब्रह्मके अड्, तिस देहविषे स्थित होइकरि चित्तसवेदन दृश्यकी चैत्यता भासती सो ससरना दो प्रकारका है, एक बडा है, एक अल्प जाताहै, ो संसरणेविषे अनेक जन्म व्यतीत होते हैं, अरु किन्होंको एक व्याि होता है, आदिही फुरकर स्वरूपविषे स्थित है, तिनको प्रथम जन्म वहि है, अरु जो आदि उपजिकरि प्रमादी हुए हैं; सो फुरिकरि दृश्यकी चि र चले जाते हैं, तिनको बहुतेरे जन्म होते हैं, चित्तके फिरणेकरि ऐसा तनुभव करता है, पुण्यक्रिया करिके स्वर्गको जाते हैं, पापक्रिया करि रकको जाते हैं, इसप्रकार दृश्यभ्रमको देखते हैं, अज्ञानकरिके बधन- विषे रहते हैं, जब ज्ञानकी प्राप्ति होती है, तब मोक्षका अनुभव करता है, सो बड़ा ससरना है; अरु जो एकही जन्म पायकरि आत्माकी ओर आते हैं सो अल्प ससरना है ॥ हे रामजी ! जैसे स्वर्णही भूषणरूपको धारता है, तैसे संवेदनही काष्ठ लोष्ट आदिकरूप होइके भासता है; इस चित्तके संयोगकरि अज अविनाशी पुरुषको नानाप्रकारके देह प्राप्त होते हैं, अरु जानता है कि, मैं उपजा हौं, अब जीता हौं, बहुरि मर जाऊंगा, इत्यादिक भ्रमको देखता है; जैसे नौकाविषे बैठे हुएको भ्रमकरि तटके वृक्ष भ्रमते दृष्टि

होते हैं, तिसहीविषे सब लीन होते हैं, अरु वास्तवते न कोऊ उपजा है, न कोऊ लीन होता है, चित्तके फुरणेकरि सब भ्रम भासता है ॥ जैसे नेत्रदूषणकरि आकाशविषे मुक्तामाला भासती है, तैसे चित्तके फुरणेकरि यह जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे वृक्षके वढ़नेको आकाश ठौर देता है, जेती कछु बीजकी सत्ता होवै तेता आकाशविषे वढता जावै तैसे सबको आत्मा ठौर देता है, अकर्तारूप भी संवेदनकरिकै कर्त्ता भासता है हे रामजी ! जैसे लोहा निर्मल किया हुआ आरसीकी नाईं प्रतिबिंबको ग्रहण करता है तैसे आत्माविषे सवेदनकरिकै जगत्का प्रतिबिंब होता है अरु वास्तवते जगत् भी कछु दूसरी वस्तु नहीं, जैसे एक बीजही पत्र फूल फल टास होइ भासता है, तैसे आत्मा सवेदनकरिकै नानारूप जगत् होइ भासता है, जैसे पत्र फूल वृक्षते भिन्न नहीं, तैसे अबोधरूप जगत् भी बोधरूप आत्माते भिन्न नहीं, अरु जो ज्ञानवान् है, तिसको अखंड सत्ता भासती है, अरु अज्ञानीको भिन्न भिन्न नामरूप सत्ता भासती है, जैसे समुद्रही तरंग बुद्बुद होइकरि भासता है, जैसे बीजही पत्र फूल फल टास होइकरि भासता है, जो मूर्ख देखता है तौ तिनके नामरूप सब मानता है, अरु ज्ञानवान् देखिकै एकरूपही जानता है, तैसे जो मूर्ख अज्ञानी है, सो भिन्न भिन्न नामरूप जगत्को जानते हैं. अरु ज्ञानवान्को एक ब्रह्मसत्ता अनंत भासती है,और जगत्भ्रम उनको कोऊ नहीं भासता है ॥ राम उवाच ॥ वड़ा आश्चर्य, वड़ा आश्चर्य है, जो असत् रूपी जगत् सत् होइकरि भासता है, अरु वडे विस्तारकरि स्पष्ट भासता है. अरु यह जगत् ब्रह्मका आभास है, अनेक तन्मात्रा तिसके जल अरु बूँदोंकी नाईं है, अरु अविद्याकरके फुरती हैं, ऐसे भी मैं श्रवण किया है ॥ हे मुनीश्वर ! यह कैसे फुरणा वहिर्मुख होती है, अरु अतर्मुख कैसे होती है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार दृश्यका अत्यंत अभाव है, अनहोते दृश्यके फुरणेकरि अनुभव होता है, शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मसत्ताविषे फुरणेकरि जीवत्व हुआ है, सो जीवत्व असत् है, अरु सत्की नाईं होता है, अरु जीव ब्रह्मके साथ अभिन्न है, फुरणेकरिकै भिन्नकी नाईं स्थित होता है, तिस जीवविषे सकल्पकलना

होती है, तव मनरूप होके स्थित होता है, अरु स्मरणकरिके चित्त होता है, निश्चयकरिके बुद्धि होती है, अहभावकरिके अहकार होता है वहुरि काकतालिकी नाई चिद्‌अणुविषे तन्मात्रा फुर आती है, जव शब्द श्रवणकी इच्छा भई तव श्रवणइंद्रिय प्रगट भई जव देखनेकी इच्छा भई तव नेत्र इंद्रिय प्रगट भई, गध लेनेकी इच्छा करिके नासिका इंद्रिय प्रगट भई, जव स्पर्शकी इच्छा भई तव त्वचा इद्रिय प्रगट भई, जव रस लेनेकी इच्छा भई तव रसना इद्रिय प्रगट भई, इसप्रकार पांचों इद्रियें प्रगट भई भावनाकरिकै सत्‌ही असतकी नाई भासने लगी है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार आदि जीव हुए हैं, तिसकी भावनाकरिके अतवाहक शरीर होय आये हैं, चलते भासते हैं, तौ भी अचलरूप है, ताते जेता कछु जगत् भासता है, सो सव ब्रह्मरूप है, इतर कछु नहीं ॥ प्रमाता भी ब्रह्म है, प्रमाण भी ब्रह्म है, प्रमेयभी ब्रह्म है अरु सवेदन ब्रह्म करिके अनेकरूप नानाप्रकार भासते हैं, जैसा जैसा संविदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइकरि भासता है, जव दृश्यको चेतता है, तव नानाप्रकाका दृश्य भासता है, अरु जव अंतर्मुख ब्रह्मको चेतता है, तव ब्रह्मरूप होइकरि भासता है ॥ हे रामजी ! दृश्य कछु उपजा नहीं, आत्मा सदा अपने आपविषे स्थित है, तौ दृश्यका असंभव हुआ तव वधन किसको कहिये? अरु मोक्ष किसको कहिये ? विचार किसका करिये ? सर्व कल्पनाका अभाव है, यह जो तेरा प्रश्न है, तिसका उत्तर सिद्धातकालविषे होवैगा, यहां नहीं वनैगा, जैसे कमलफूलोकी माला जो होती है सो अपने कालविषे वनती है, समयविना शोभा नहीं देती, तैसे तेरे प्रश्न सिद्धांतकालविषे शोभा पावैगे, समयविना सार्थ शब्द भी निरर्थक होता है, इस कारणते कहिये जो सिद्धांतकालविषे शोभा पावैगे, सिद्धांतकालविना यह प्रश्न शोभा नहीं पाता ॥ हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ हैं, तिनका फल भी समय पायके होता है, समयविना नहीं होता, अव पूर्व प्रसग सुन ॥ हे रामजी ! ब्रह्मविषे चैत्योन्मुखत्वकरिके वह आदि जीव आपको पिता माता जानत भया, जैसे [illegible]विषे आपको कोऊ देखे तैसे ब्रह्माजी आपको जानता भया सो [illegible] ॐशब्दको उच्चारता भया, निम

शब्दतन्मात्राते चारों वेद देखता भया, तिसते अनंतर मनोराज्यकरिकै सृष्टिको रचता भया, तब असत्रूप सृष्टि भावनाकरिकै सत्य हो भासने लगी, जैसे स्वप्नविषे सर्प भासते हैं, जैसे गंधर्वनगर भासि आवता है, तैसे असत्यरूप सृष्टि सत्य भासने लगी ॥ हे रामजी ! ब्रह्मसत्ताते जैसे ब्रह्मा आदिका उपजना भया है, तैसे और जीवों कीट आदिका उपजना भया है जगत्का कारण संवेदन है, संवेदन भ्रमकरिकै जीवोंको जगत भासता है, तिनको भौतिक शरीरविषे जो अहंप्रतीति भई है, तिसकरि अपने निश्चयके अनुसार शक्ति भई है, ब्रह्माविषे ब्रह्माकी शक्तिका निश्चय भया है, चींटीविषे चींटीकी शक्तिका निश्चय भया है ॥ हे रामजी ! जैसी जैसी वासना संवित्विषे होती है, तिसके अनुसारही अनुभव होता है शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चैत्योन्मुखत्व हुआ है, तिसका नाम जीव हुआहै, तिसविषे जो ज्ञानरूप सत्ता है सो पुरुष है, तिसविषे जो फुरणा है सो कर्म है, जैसे जैसे फुरता है, तैसे तैसे भासता है ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ताविषे जो अहं हुआ है, तिसका नाम चित्त है, तिसते आगे जगत रचा है, सो भी अविचारसिद्ध है, विचार कियेते नष्ट हो जाता है, जैसे अविचार करिकै अपने परछाँईविषे भूत पिशाच कल्पता है, तिसते भय उत्पन्न होता है, विचार कियेते पिशाच अरु भय दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! तैसे आत्मविचारते चित्त अरु जगत दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे चित्त कल्पना कोऊ नहीं अरु प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय भी ब्रह्मते इतर कछु नहीं, तो द्वैतकी कल्पना कैसे होवै ? जैसे शशेके शृंग असत् है, तैसे आत्माते द्वैतकल्पना असत्य है ॥ हे रामजी ! यह ब्रह्मांड भावनामात्र है, जिसको सत्य भासता है, तिसको बंधनका कारण है, जैसे घुराण अपना गृह बनाती है, सो अपने बंधका कारण होता है, तिसविषे आप फाँसि मरती है, तैसे जगत्को सत्य मानते हैं, तिसको अपना माननाही बंधनकर्ता है, तिसकरि जन्ममरणको देखता है, अरु जिसको जगतका असत्य निश्चय हुआ है, तिसको बंधन नहीं होता, उसको उल्लास है, अरु हे रामजी ! अनुभवसत्ता सबकी अपनी आप है, तिसविषे जैसा जैसा

निश्चय किया तिसको अपने अनुभवके अनुसार पदार्थ भासते हैं, कोऊ निमेषविषे कल्पका अनुभव करते हैं, अरु वास्तवते जगत् उपजाही नहीं, जगत्का उपजना भी मिथ्या है, बढना भी मिथ्या है, रस भी मिथ्या है, रस लेनेवाला भी मिथ्या है, शुद्ध ब्रह्म सर्वगत नित्य अद्वैत सदा अपने आपविषे स्थित है, परंतु अज्ञानकरिकै शुद्ध भी अशुद्ध भासता है, सर्व जगत् भी परिच्छिन्न भासता है, ब्रह्म भी अब्रह्म भासता है, नित्य भी अनित्य भासता है; अद्वैत भी द्वैतसहित भासता है ॥ हे रामजी ! अज्ञानकरि ऐसा भासता है, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद मूर्ख मानते हैं, परंतु भेद नहीं; तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद अज्ञानी देखते हैं, जैसे सुवर्ण अरु भूषणोंविषे भेद अज्ञानी देखते हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प मूर्ख देखते हैं; तैसे ब्रह्मविषे नानात्व मूर्ख देखते हैं, ज्ञानीको सब चिदाकाश है ॥ हे रामजी ! जब आत्मसत्ताविषे अनात्मरूप दृश्यकी चेत्यता होती है, तब कल्पना उत्पन्न होती है, सो कल्पना मनरूप होइकै स्थित होती है, तिसते अनंतर अहंभाव होता है, बहुरि तन्मात्राकी कल्पना होती है, बहुरि शब्द अर्थकी कल्पना होती है, इसीप्रकार चित्सत्ताविषे जैसी जैसी चेत्यता फुरती है; तैसा तैसा रूप भासने लगता है, सत् असत् पदार्थ वासनाके वशते फुरि आते हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि फुरि आती है; सो अनुभवरूपही होती है, तैसे यह जगत् फुरि आया है, सो अनुभवरूप है, ताते सृष्टिविषे भी चिन्मात्र है, अरु चिन्मात्रहीविषे सृष्टि है, सर्वकी सत्तारूपी अंतर्बाह्य ऊर्ध्व अध चिन्मात्रही है प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, सर्वपद चिन्मात्रहीविषे धारे हैं, नित्य उपशांतरूप है, सम सत् जगत्की सत्ता तिसहीकारि होती है, सो एकही सम है, अरु तुरीया अतीत पद है, नितही स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सत्योपदेशो नाम पंचाशत्तम सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तमः सर्गः ५१.

विषूचिकाव्यवहारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रसंगऊपर एक पुरातन इतिहास है, तिसविषे महाप्रश्नोंका समूह है सो श्रवण कर—एक महा श्याम काजलके

पर्वतकी नाई कर्कटी नाम राक्षसी हिमालय पर्वतके शिखरके ऊपर होती भई, विषूचिका भी तिसका नाम हुआ, अथिर बिजलीकी नाई तिसके नेत्र, अरु अग्निकी नाई वडी जिह्वा तिसकी चमत्कार करै, वड़े नख अरु ऊँचा शरीर जिसका, जो भोजन करि तृप्त कदाचित् न होवै, जैसे वडवाग्नि तृप्त नहीं होता, तैसे तृप्ति न होवै, तब उसके मनविषे उपजा कि, जंबूद्वीपके सपूर्ण जीवोंको भोजन करौं तब तृप्त होऊं अन्यथा तृप्ति नहीं होती, अरु आपदा उद्यम कियेते दूर होती है, ताते उद्यम करौं, जो अखंड चित्त होइकरि तप करौं ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करिके एकांत हिमालय पर्वतकी कंदराविषे एक टंगकरि स्थित भई, दोनों भुजा ऊर्ध्वको धारी अरु नेत्र आकाशकी ओर किये, मानो मेघको पकड़ती है, शरीर अरु प्राण स्थित करत भई, मूर्त्तिकी नाई हो गई, शीत अरु उष्णके क्षोभते रहित भई, पवनकरि शरीर जर्जरीभाव हुआ, जब इस प्रकार सहस्र वर्ष व्यतीत भये, दारुण तप किया, तब ब्रह्माजी आये तब राक्षसीने देखके मनकरि नमस्कार किया, अरु मनविषे विचार किया जो मेरे वरके निमित्त आये है, तब ब्रह्माजीने आयकर कहा हे पुत्रि ! तुझने वडा तप किया है, उठ खडी हो, जो कछु चाहती है सो वर माँग ॥ कर्कटयुवाच ॥ हे भगवन् ! मै लोहेकी नाई वज्रसूचिका होऊं, जो जीवोंके हृदयविषे प्रवेश करि जाऊं हे रामजी ! जब ऐसे मूर्ख राक्षसीने कहा, तब ब्रह्माजीने कहा, ऐसेही होवै, तेरा नाम भी प्रसिद्ध विषूचिका होवैगा ॥ हे राक्षसी ! जो दुराचारी जीव होवें, तिनके हृदयविषे तू प्राणवायुके मार्गकरि जाय प्रवेश करैगी, अरु जो गुणवान् तेरेको निवृत्त करनेके निमित्त "ॐ" मन्त्रको पढेंगे, जो हिमालयके उत्तरशिखरविषे कर्कटी नाम राक्षसी विषूचिका है, सो दूर होवै, अरु दुःखी चन्द्रमाके मंडलविषे चितवै कि, अमृतके कुंडविषे बैठा हौं, अरु राक्षसी हिमालयके शिखरको गई, ऐसे चितवन करै, इस मन्त्रको पढ, शुचि पवित्र होकरि, तब तुम तिसको त्याग जाना, यह मंत्र है, तिनविषे तू प्रवेश न करि सकैगी ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार ब्रह्माजी कहिके आकाशको उड़े, तब इन्द्रके अरु सिद्धोंके मार्ग साथ गये, अरु वह मन्त्र जो ब्रह्माजीने

कर्कटीको कहा था, सो सिद्धोंने श्रवण किया था, तिन्होंने तिस मंत्रको प्रसिद्ध किया, तब कर्कटीका शरीर सूक्ष्म होने लगा, जैसे सकल्पका पहाड सकल्पके क्षीण हुएते क्षीण हो जाता है, तैसे क्रमकरिके प्रथम जो मेघवत् आकार था, सो घटिकारि वृक्षवत् हो गया, फिर पुरुपरूप, फिर हस्तमात्र, फिर प्रादेशमात्र, फिर लोहेकी सुईकी नाई सूक्ष्म हो गई, जैसे सकल्पका तनु होता है, तैसे हो गई ॥ हे रामजी। ऐसे रूपको कर्कटी धारती भई, तिसको देखि मूर्ख अविचारी पुरुप तृणकी नाई शरीरको त्यागते हैं, अरु जो पुरुप परस्परको विचारते है, सो पाछेते कष्ट नहीं पाते, जो पूर्वापर विचारते रहित हैं, सो पाछे कष्ट पाते है, अनर्थ होइ-करि औरोंको कष्ट देते है, एक पदार्थको भला जानिके तिसके निमित्त यत्न करते है, न धर्मकी ओर देखते है, न सुखकी ओर देखते हैं, इस प्रकार मूर्ख राक्षसीने भोजनके निमित्त वडे गभीर शरीरको त्यागकरि तुच्छ शरीरका अंगीकार किया, सो एक शरीर सूक्ष्म हुआ, दूसरा पुर्यष्टक भया, सूक्ष्म शरीर जाको इंद्रिया ग्रहण न कर सकें, तैसे शरीरसे कहू विपूचिका प्रवेश करै, कहूं पुर्यष्टक साथ जाय प्रवेश करै, प्राणवायु-साथ प्रवेश करिकै दुःख देवै, प्राणोंको विपर्यय करै, तब प्राणी कष्टको पावै, रक्त आदिक जो रस हैं, तिनका पान करै, एक बूँदकरि उदर पूर्ण हो जावै, परतु तृष्णा निवृत्त न होवै, अरु शरीरते वाह्य निकसै, तब भी कष्ट पावै, वायु चलै तिसकरि गर्तविपे गिरै, चिकडविपे गिरै, चर-णोंके तले आवै, देशोंविपे रहै, घास तृणोंविपे रहै, जो नीच पापी जीव है, तिनको कष्ट देवै, अरु जो गुणवान् होवैं, तिनको कष्ट देनेको समर्थ न होवै, जो मत्र पढै, तिसते निवृत्त हो जावै, जो आप किसी छिद्रविपे गिरै, तब जानै कि, वड़े कूपविपे गिरी हौं ॥ हे रामजी। मूर्खताकरिकै एते कष्टको पाती भई ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त भया, सायंकालका समय हुआ, सब सभा परस्पर नमस्कारकरिकै स्नानको गई, विचारसयुक्त रात्रिको व्यतीत करिकै सूर्यकी किरणें जब उदय भई, तब बहुरि आयकै बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विपूचिकाव्यवहारवर्णनं नाम एकपचाशत्तमः सर्गः ५१॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ५२.

सूचीशरीरलाभवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब इसप्रकार प्राणियोंके मारनविषे केतेक वर्ष इसको व्यतीत भये, तब उसके मनविषे विचार उत्पन्न भया, कि, बडा कष्ट है, बडा कष्ट है, यह विषूचिका शरीर मुझको कैसे प्राप्त भया है, मैं मूर्खताकरिके यह वर ब्रह्माजीसों मागा था, मूर्खता बडे दुःखको प्राप्त करती है, कैसा मेघकी नाईं मेरा शरीर था, जो सूर्यादिकको मै आच्छादित लेती थी, मदराचल पर्वतकी नाईं मेरा उदर कहां गया, वडवाग्निकी नाईं मेरी जीभ कहां गई, जैसे कोऊ अभागी पुरुष चिंतामणिको त्यागि देवै, अरु काचको अगीकार करै, तैसे मैंने बडे शरीरको त्यागिकै तुच्छ शरीरका अगीकार किया, कैसा तुच्छ है, जो एक बूँदकरि भी तृप्त हो जाता है, परतु तृष्णा पूरी होती नहीं, उस शरीरसाथ मै निर्भय विचरती थी, यह शरीर पृथ्वीके कणके साथ भी दव जाता है अब मैं बड़े कष्टको पाती हौं अब मै मृतक होऊं तव छूटौं, परतु मागा मृत्यु भी हाथ नहीं आता, तातें मै बहुरि उस शरीरके निमित्त तप करौं, वह कौन पदार्थ है, जो उद्यम कियेते हाथ न आवै॥ हे रामजी! इसप्रकार पूर्वके शरीरके निमित्त तप करनेको समर्थ भई, तब हिमालय पर्वतके वन निरजन स्थानविषे एक पदके आधार स्थित भई, मुख ऊर्ध्वको करिकै तप करने लगी॥ हे रामजी! जब पवन चलै सो इसके मुखमें फल माम जलके कणके राखै, परतु वह अतर ग्रहण न करै, मुखको मूँदि लेवै, पवन देखिकै आश्चर्यमान होवै कि, जो मै सुमेरु आदिकको भी चलायमान किया है; परंतु इसका निश्चय चलायमान नहीं होता मेघकी वर्षाकरि चिकड विषे दब गई, परतु ज्योंकी त्यों रही, मेघके बडे शब्दकरि भी चलायमान नहीं भई॥ हे रामजी! इसप्रकार सहस्र वर्ष इसको व्यतीत भये, तब दृढ वैराग्यकरिकै इसका नाम चित्त निर्मल

कर्कटीको कहा था, सो सिद्धोंने श्रवण किया था, तिन्होंने तिस मन्त्रको प्रसिद्ध किया, तब कर्कटीका शरीर सूक्ष्म होने लगा, जैसे संकल्पका पहाड संकल्पके क्षीण हुएते क्षीण हो जाता है, तैसे क्रमकरिकै प्रथम जो मेघवत् आकार था, सो घटिकारे वृक्षवत् हो गया, फिर पुरुषरूप, फिर हस्तमात्र, फिर प्रादेशमात्र, फिर लोहेकी सुईकी नाई सूक्ष्म हो गई, जैसे संकल्पका तंतु होता है, तैसे हो गई ॥ हे रामजी ! ऐसे रूपको कर्कटी धारती भई, तिसको देखि मूर्ख अविचारी पुरुष तृणकी नाई शरीरको त्यागते हैं, अरु जो पुरुष परस्परको विचारते हैं, सो पाछेते कष्ट नहीं पाते, जो पूर्वापर विचारते रहित हैं, सो पाछे कष्ट पाते हैं, अनर्थ होइकरि औरोंको कष्ट देते हैं, एक पदार्थको भला जानिकै तिसके निमित्त यत्न करते हैं, न धर्मकी ओर देखते हैं, न सुखकी ओर देखते हैं, इस प्रकार मूर्ख राक्षसीने भोजनके निमित्त बडे गभीर शरीरको त्यागकारि तुच्छ शरीरका अंगीकार किया, सो एक शरीर सूक्ष्म हुआ, दूसरा पुर्यष्टक भया; सूक्ष्म शरीर जाको इंद्रिया ग्रहण न कर सकै, तैसे शरीरसे कहू विषूचिका प्रवेश करै, कहू पुर्यष्टक साथ जाय प्रवेश करै, प्राणवायुसाथ प्रवेश करिकै दुःख देवै, प्राणोंको विपर्यय करै, तब प्राणी कष्टको पावै, रक्त आदिक जो रस हैं, तिनका पान करै, एक बूँदकारि उदर पूर्ण हो जावै, परंतु तृष्णा निवृत्त न होवै, अरु शरीरते बाह्य निकसै, तब भी कष्ट पावै, वायु चलै तिसकारि गर्तविषे गिरै, चिकडविषे गिरै, चरणोंके तले आवै, देशोंविषे रहै, घास तृणोंविषे रहै, जो नीच पापी जीव हैं, तिनको कष्ट देवै, अरु जो गुणवान् होवै, तिनको कष्ट देनेको समर्थ न होवै, जो मन्त्र पढै, तिसते निवृत्त हो जावै, जो आप किसी छिद्रविषे गिरै, तब जानै कि, बड़े कूपविषे गिरी हौं ॥ हे रामजी ! मूर्खताकारिकै एते कष्टको पाती भई ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त भया, सायंकालका समय हुआ, सब सभा परस्पर नमस्कारकारिकै स्नानको गई, विचारसंयुक्त रात्रिको व्यतीत कारिकै सूर्यकी किरणें जब उदय भई, तब बहुरि आयके बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विषूचिकाव्यवहारवर्णनं नाम एकपंचाशत्तम सर्गः ५१॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ५२.

सूचीशरीरलाभवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब इसप्रकार प्राणियोंके मारनविषे केतेक वर्ष इसको व्यतीत भये, तब उसके मनविषे विचार उत्पन्न भया, कि, बडा कष्ट है, बडा कष्ट है, यह विषूचिका शरीर मुझको कैसे प्राप्त भया है, मैं मूर्खताकरिके यह वर ब्रह्माजीसों मागा था, मूर्खता बडे दुःखको प्राप्त करती है, कैसा मेघकी नाईं मेरा शरीर था, जो सूर्यादिकको भी आच्छादित लेती थी, मंदराचल पर्वतकी नाईं मेरा उदर कहा गया, वडवाग्निकी नाईं मेरी जीभ कहां गई, जैसे कोऊ अभागी पुरुष चिंतामणिको त्यागि देवै, अरु काचको अंगीकार करै, तैसे मैंने बडे शरीरको त्यागिकै तुच्छ शरीरका अंगीकार किया, कैसा तुच्छ है, जो एक बूँदकरि भी तृप्त हो जाता है, परंतु तृष्णा पूरी होती नहीं, उस शरीरसाथ मैं निर्भय विचरती थी, यह शरीर पृथ्वीके कणके साथ भी दब जाता है अब मैं बड़े कष्टको पाती हौं अब मैं मृतक होऊं तब छूटौं, परंतु मागा मृत्यु भी हाथ नहीं आता, तातें मैं बहुरि उस शरीरके निमित्त तप करौं, वह कौन पदार्थ है, जो उद्यम कियेते हाथ न आवै॥ हे रामजी! इसप्रकार पूर्वक शरीरके निमित्त तप करनेको समर्थ भई, तब हिमालय पर्वतके वन निरजन स्थानविषे एक पदके आधार स्थित भई, मुख ऊर्ध्वको करिकै तप करने लगी॥ हे रामजी! जब पवन चलै सो इसके मुखमें फल मास जलके कणके राखै, परंतु वह अंतर ग्रहण न करै, मुखको मूँदि लेवै, पवन देखिकै आश्चर्यमान होवै कि, जो मैं सुमेरु आदिकको भी चलायमान किया है; परंतु इसका निश्चय चलायमान नहीं होता मेघकी वर्षाकरि चिकड विषे दब गई, परंतु ज्योंकी त्यों रही, मेघके बडे शब्दकरि भी चलायमान नहीं भई॥ हे रामजी! इसप्रकार सहस्र वर्ष इसको व्यतीत भये, तब दृढ वैराग्यकरिकै इसका नाम चित्त निर्मल

भया, तब सब संकल्पके त्यागते तिसको परमपदकी प्राप्ति भई, अरु बडे ज्ञानका प्रकाश उदय हुआ, परब्रह्मका तिसको साक्षात्कार हुआ, तिसकरि परम पावनरूप भई, तब चित्तसूची होतभई, अर्थ यह जो चेतनविषे उसका एकत्वभाव हुआ, तिसके तपकरि सप्त लोक तपायमान हुए, तब इंद्रने नारदजीसों प्रश्न किया कि, ऐसा तप किसने किया है, जिसके तपकरि लोक जलने लगे हैं, तब नारदने कहा, हे इंद्र! सात सहस्र वर्ष कर्कटी नाम राक्षसीने बडा दारुण तप किया है, तिसकरि सूचिका भई थी, तिसकरि बहुत कष्ट पाया, अरु लोकोंको कष्ट दिया, जैसे विराट् आत्माने सबविषे प्रवेश किया है, जैसे चित्तशक्तिने सबविषे प्रवेश किया है, तैसे सब देहविषे प्रवेश किया है, परंतु जहां मंत्रजाप होवै, ताते निवृत्त हो जावै, अरु जहां मंत्रजाप न होवै तिनके अंतर प्रवेशकरिके रक्त मांस भोजन करै, परंतु तृप्त न होवै, मनविषे तृष्णा रहै, सूक्ष्म शरीरकरि धूडविषे दबी जावै, बहुत कष्टको पाइकै विचार किया कि, उद्यमकरि सब कछु प्राप्त होता है, ताते पूर्वके शरीरके निमित्त बहुरि एकांत स्थानविषे तप जाइ करौं, तब एक गीधपक्षी वहां आन बैठा कछु भोजन करने लगा, तिसकी चञ्चके मार्गसों विषूचिका अंतर चली गई, तब वह पक्षी कष्ट पाइकै उडा, वह विषूचिका उसकी पुर्यष्टकाके साथ मिलिकै उसको प्रेरिकै हिमालय पर्वतकी ओर ले चली; जैसे वायु मेघको ले जाता है, तैसे हिमालय पर्वतके वनमें ले गई, वहां इस गीधने छर्द करि डारी, जैसे योगीश्वर संवेदनको त्यागिकै निर्विकल्पपदविषे जाता है, तैसे छर्दको डारिकरि पक्षी उड गया, जैसे पंडोदे विगार पोटको त्यागिकरि सुखी होता है, तस पक्षी छर्दको त्यागिकरि सुखी भया, तब उसी शरीर साथ विषूचिका तप करने लगी॥ हे रामजी! इसप्रकार इंद्रने मुनिकरि उसको देखनेके निमित्त पवनका चलाया, तब पवन आकाशको छोडिकै भूतलविषे उतरा, लोकालोक पर्वतको लंघिकरि स्वर्णकी पृथ्वी लघी, फिर समुद्र, फिर द्वीपको लंघिकै क्रमसों हिमालयके वनविषे सूक्ष्म शरीर साथ उसको देखत भया, पवन चल रहा, सूर्य तप रहा, परंतु चलायमान न भई, प्राणवायुका भी भोजन न करै

तव पवनने भी आश्चर्यवान् होइकै कहा हे तपास्विनी ! तू किसनिमित्त तप करती है ? हे रामजी ! ऐसे जव पवनने कहा तव भी विपूचिका न वोली, पवनने कहा, भगवती ! विपूचिकाने वडा तप किया है, अव कोऊ कामना इसको नहीं ऐसे कहिकै उडा, क्रमसों इंद्रके पास गया, इंद्रने विपूचिकाके दर्शनके माहात्म्यकरि पवनको कंठ लगाया, मिला, आदर किया कि, तू वडे पुण्यवान्का दर्शन कर आया है, पवनने भी सव वृत्तांत कहि सुनाया अरु कहा ॥ हे राजन् ! उसके तपतेजकरि हिमालयकी शीतलता आच्छादि गईहै,तुम और ब्रह्माजी उसके पास चलौ,नहीं तौ उसके तपकरि जगत् जलैगा ॥ हे रामजी ! जव इसप्रकार पवनने कहा तव इंद्र पवन देवता गणोंसहित ब्रह्माजीके पास आये, प्रणामकरिकै वैठ गये, तव ब्रह्माजीने कहा कि, तुम्हारा वृत्तांत मैंने जाना है ॥ हे रामजी ! ब्रह्माजी इंद्रको कहिकरि विपूचिका जिसका नाम सूची था, तिसके पास आय प्राप्त भये, तिसको देखके आश्चर्यवान् हुए कि, तृणकी नाई विपूचिकाने सुमेरुते भी अधिक धैर्य धरा है, जैसे मध्याह्नका सूर्य तेजवान् होता है, तैसे इसका तपतेज भया है, अरु परब्रह्मविषे स्थित भई है, अरु जगत् इसका अव शांत हो गया है, ताते वंदना करने योग्य है ॥ हे रामजी ! जव आकाशतलविषे स्थित होइकरि ब्रह्माजीने कहा, हे पुत्रि कर्कटि ! तू अव वरको ग्रहण करु, तव विपूचिका विचार करिकै कहने लगी, जो कछु जानने योग्य था, सो मैं जाना है, अरु शांतरूप भई हौ, सपूर्ण सशय मेरे नष्ट हुए हैं, अव वर साथ मेरा क्या प्रयोजन है यह जगत् अपने सकल्पते उपजा है, जैसे वालकको अपने परछाँईविषे वेतालबुद्धि होती है, तिसकरि भयको प्राप्त होता है, तैसे मैं स्वरूपके प्रमादकरि भटकती फिरी हौं, अव इष्ट अनिष्ट जगत्की मुझको इच्छा कछु नहीं, अव मैं निर्विकल्प शांतिविषे स्थित हौ ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकरि सूची तूष्णीं हो रही, तव ब्रह्माजी वीतराग प्रसन्नबुद्धि उसके भावको देखिकै कहत भये ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे कर्कटि ! तू कछुक वरको ग्रहण करु, कछुक काल तुझे भूतलविषे विचरना है, भोगोंको भोगिकै तू विदेहमुक्त होवगी, अव तू जीवन्मुक्त होइकारे विचरैगी, नीतिके निश्च-

यको लघि कोऊ नहीं सकता, अरु जब तू तप करने लगी थी, तब पूर्व देह पानेका संकल्प किया था, वह संकल्प अब सफल भया है, जैसे बीजविषे वृक्षका सद्भाव होता है, सो काल पाय विस्तारको धरता है, तैसे तेरेविषे पूर्व शरीरका संकल्प था, सो अब प्राप्त होवैगा, उसी जैसा शरीर पाइकै तू हिमालयके वनविषे विचरैगी॥ हे पुत्रि! तेरे तौ अनिच्छित योग हुआ है, जैसे कोऊ छायाके निमित्त आंबफलके निकट आन बैठे अरु तिसको छाया भी प्राप्त होवै अरु फल भी प्राप्त होवै है, तैंने शरीरकी वृद्धिवास्ते यत्न किया था सो तृप्ति करनेहारा तेरे ताईं हुआ है, अरु तेरे ताईं ब्रह्मतत्त्व हुआ है, हे पुत्री! तू राक्षसी शरीरविषे जीवन्मुक्त होइकै विचरैगी, और जन्म तुझको नहीं आवैगा, इस जन्मविषे तू परम शांत रहैगी, अरु शरत्कालके आकाशकी नाईं निर्मल होवैगी, जब तेरी वृत्ति बहिर्मुख फुरैगी, तब सब जगत् तुझको आत्मरूप भासैगा, व्यवहारविषे समाधि रहैगी, अरु समाधिविषे भी समाधि रहैगी, पापी जीवको तू भोजन करैगी, न्यायबांधव तेरा नाम होवैगा, अरु विवेकपालक तेरा देह होवैगा, तातें पूर्वके शरीरको अंगीकार कर॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! ऐसे कहिकरि ब्रह्माजी अंतर्धान होत भये, तब सूचीने कहा, ऐसेही होवै, हमको दोनों तुल्य है, तब जैसे बीजतें वृक्ष होता है, तैसे क्रमकरि तिसका शरीर बढ गया, कैसे बढ़ा जो प्रथम प्रादेशमात्र हुआ! फिर हस्तमात्र, फिर वृक्षमात्र, फिर योजनमात्र हो गई, जैसे संकल्पका वृक्ष एक क्षणतें बढ जाता है, तैसे उसका शरीर बढ गया॥ इति श्रीयोग० उत्पत्तिप्रकरणे सूचीशरीरलाभो नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः॥५२॥

त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ५३.

राक्षसीविचारवर्णनम्।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे वर्षाकालका बादल सूक्ष्मतें स्थूल हो जाता है, तैसे सूची सूक्ष्म शरीरतें महागि कर्कटी राक्षसी होती

भई, जैसे सर्प कंचुकीको त्यागिके फिर ग्रहण नहीं करता, तैसे राक्षसीने शरीरको आत्मतत्त्वके कारण नहीं ग्रहण किया, ऐसे शरीरको पायके बहुरि पद्मासन बांधिके सचित्सत्ताविषे निर्विकल्पपदविषे स्थित भई, षट्मास पर्यंत पहाडके शिखरकी नाईं समाधिस्थित रही, बहुरि प्रारब्धवेग करि जाग आई, तब वृत्ति बहिर्मुख भई, तब क्षुधा लग आई, काहेते कि, शरीरके स्वभाव शरीरपर्यंत रहते हैं तब विचारत भई, जो विवेकी है तिनका मैं भोजन न करौंगी, तिनके भोजनते मेरा मरना श्रेष्ठ है, जो न्यायकर भोजन करने योग्य है, तिसको करौंगी, जो शरीर नष्ट होवै तौ भी न्यायविना भोजन न करौंगी, देहादिक सब संकल्पमात्र है, मुझे न मरनेकी इच्छा है, न जीनेकी इच्छा है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारिकरि सूची तूष्णी होइ बैठी, राक्षसीस्वभावका त्याग किया, तब सूर्य भगवान् आकाशवाणीकरि कहत भया ॥ हे कर्कटि ! तू जाइकै मूढ जीवोंका भोजन कर जब तू भोजन करैगी, तब उनका कल्याण होवैगा, मूढोंका उद्धार करनाभी संतोंका स्वभाव है, जो विवेकी पुरुष हैं, तिनका तुम भोजन नहीं करना, अरु जो तेरे उपदेशकरि ज्ञानको पावै तिनको भी न मारना अरु जो उपदेशकरि भी बोधात्मा न होवै तिनका भोजन करना यह न्याय है, तब राक्षसीने कहा ॥ हे भगवन् ! तुमने अनुग्रहकरिकै कहा है ॥ इसीप्रकार मुझको ब्रह्माजीने भी कहा था ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकरि सूची हिमालयके शिखरते उतरी, तहां किरात देश था, बहुत मृग पशु रहते थे; तिनविषे विचरने लगी, रात्रि भी श्याम, अरु राक्षसी भी श्याम, अरु तमाल वृक्ष भी श्याम, महा अंधकार भासै, जैसे भ्रमरेकी पीठ श्याम होती है. मानो कज्जलका मेघ आय स्थित भया है, ऐसी श्यामताविषे किरात देशका राजा मंत्री और वीर यात्राको निकले तिनको आते देखिकै राक्षसी विचारत भई कि, मुझे भोजन आय प्राप्त भया, यह मूढ अज्ञानी है, इनको देह अभिमान है, इन मूर्खोंके जीनेकरि कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, न यह लोक सिद्ध होता है, न परलोक सिद्ध होता है, ऐसे जीवोंका जीना दुःखके निमित्त है, इनको यत्नकरि भी मारना योग्य है, इनको पालना अनर्थके निमित्त है,

पापको उदय करते हैं, आदि ब्रह्माकी नीति है कि, पापी मारने योग्य है, अरु जो गुणवान् हैं सो मारने योग्य नहीं ॥ कदाचित् गुणवान् होवें तो मैं न मारौंगी, गुणवान् भी दो प्रकारके हैं,जो अमानी अदंभी अहिंसक शांतिमान् हैं, सो गुणवान् हैं, अरु पुण्यकर्म करनेवाले हैं सो भी गुणवान् हैं, अरु महागुणवान् तो ब्रह्मवेत्ता हैं, तिनके जीनेकरि बहुतका कार्य सिद्ध होता है, जो मेरा शरीर भोजनविना नष्ट हो जावै, तो भी गुणवान्को न मारौंगी, जो उदार पुरुष है, सो पृथ्वीका चंद्रमा है, तिसकी संगतिकरि स्वर्ग भी होताहै, अरु मोक्ष भी होताहै,जैसे संजीवनी बूटीकरि मृतक भी जीता है, तैसे संतोंके संगकरि अमृत होता है, ताते मैं प्रश्नकरिकै इनकी परीक्षा करौं, कदाचित् यह भी गुणवान् होवैं, यह कमलनयन ज्ञानवान् भासते हैं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं सो तो पूजने योग्य हैं, अरु जो मूर्ख हैं, सो दंड देने योग्य हैं; मैं इनको भोजन करौंगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीविचारो नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ५४.

राक्षसीविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब वह राक्षसी उनको देखिकै मेघकी नाईं गर्जने लगी अरु कहत भई, अरे अटवीरूपी ! आकाशके ! चंद्रमा सूर्य, तुम कौन हौ, बुद्धिमान् हौ, अथवा दुर्बुद्धि हौ, अरु कहांते आये हौ ? और तुम्हारा क्या आचार है ? तुम तौ मुझको ग्रास आन प्राप्त भये हौ, अब मैं तुमको भोजन करौंगी ॥ राजोवाच ॥ अरे इस भौतिक तुच्छ शरीरको पाइकरि तू कहां रहती है, हमको देखके जो तू गर्जती है, सो तेरा शब्द हमको भ्रमकरिकै शब्दवत् भासता है. कछु हमको भय नहीं होता ॥ हे राक्षसी ! यह शरीर तेरा मायामात्र है, इस तुच्छ स्वभावको त्यागिकरि जो कछु तेरा अर्थ है सो कहो, हम पूर्ण करि देवैंगे ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार राजाने कहा, तब तिनके चलायमानेनिमित्त राक्षसी

प्रलयकालके मेघोंकी नाई बहुरि बडा शब्द करत भई, जो पहाडभी चूर्ण हो जावै,तैसा शब्द करने लगी,सब दिशा शब्दकरि भर रहीं,ग्रीवाको अरु भुजा ऊर्ध्व करिकै भयानक शब्द करै, बिजलीकी नाई नेत्रोंको चमकावै, तिसकी मूर्ति देखके राक्षस अरु पिशाच भी कंपायमान होवैं, ऐसे भयानक स्वभावको देखके भी दोनों धैर्यविषे रहे, तब मंत्रीने कहा, अरे राक्षसी ! ऐसे शब्द तू व्यर्थ करती है, इनकरि तौ तेरा प्रयोजन कछु सिद्ध न होवैगा, इस आरंभको त्यागिकै अपना अर्थ होवै सो कह, बुद्धिमान् जो पुरुष होते हैं, सो तिस अर्थको ग्रहण करते हैं, जो अपना विषयभूत होता है, जो अपना विषयभूत नहीं होता तिसके निमित्त यत्न नहीं करते, सो हम तेरा विषयभूत नहीं, तुझ जैसे सहस्रही मर्दन किये हैं ॥ हे राक्षसी ! हमारे धैर्यरूपी पवनकरि तुझ जैसी अनत मक्खियां तृणवत् उडती फिरतीहैं, ताते नीच स्वभावको त्याग, स्वस्थचित्त होइकै जो कछु अपना प्रयोजन है, सो प्रगट करु, बुद्धिमान् जो व्यवहार करते हैं, सो स्वस्थचित्त होइकै करते हैं स्वस्थ हुएबिना व्यवहार भी सिद्ध नहीं होता, यह आदि नीति है, ताते स्वस्थचित्त होइकरि अपना वृत्तांत अर्थ कहि दे हम तेरा अर्थ सिद्ध करि देवैंगे हमारे पासते स्वप्नविषे भी कोऊ अर्थी व्यर्थ नहीं गया, सबका अर्थ हम पूर्ण करते हैं, तातें अपना प्रयोजन कहि दे ॥ हे रामजी ! जब ऐसे मंत्रीने कहा, तब राक्षसी चिंतवत भई कि, यह बडे उदारआत्मा दृष्टि आते हैं,अरु उज्ज्वल आचारवान् हैं, अपर जीवोंके समान नहीं यह बडे प्रकाशवान् हैं अरु धैर्यवान् हैं उदारताकरिकै इनके वचन ज्ञानवानोंकेसाथ मिलते हैं, अब मैं इनको जाना है,अरु इनने मुझको जाना है, मुझसों इनका नाश भी न होवैगा काहेते कि, यह अविनाशी पुरुष हैं, ब्रह्मसत्ताविषे स्थित हैं, ताते ज्ञानवान् हैं, ऐसा निश्चय ज्ञानविना और किसीका नहीं होता, परन्तु कदाचित् अज्ञानी होवै ता बहुरि संदेहको अंगीकार करिकै पूछती हौं; संदेहवान् होकरि बोधवान्को नहीं पूछते हैं, सो भी नीचबुद्धि हैं ॥ हे रामजी ! ऐसे मनविषे धारिकै बहुरि पूछत भई, तुम कवन हौ, अरु तुम्हारा आचार क्या है ? निष्पाप महापुरुषोंको देखिकै मित्रभाव उपज आता है ॥ मंत्र्युवाच ॥

हे राक्षसी ! किरात देशका यह राजा है, अरु मैं इसका मंत्री हौं, अरु रात्रिविषे तुमसारिखे दुष्टोंको मारणेनिमित्त चले हैं, रात्रि दिनविषे हमारा यही आचार है, जो जीव धर्मोंको मर्यादाको त्यागनेहारे हैं, तिनका हम नाश करते हैं, जैसे इंधनोंको अग्नि नाश करता है,तैसे हम दुष्टोंका नाश करते हैं ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! यह तेरा दुष्ट मंत्री है, जिस राजाका मंत्री भला नहीं होता, वह राजा भी भला नहीं, अरु जिस राजाका मंत्री भला होता है, तिसकी प्रजाभी शांतिमान् होती है, भला मंत्री सो कहाता है, जो राजाको न्यायविषे अरु विवेकविषे जोडै, जो राजा विवेकी होता है, तौ शांतात्मा होता है, जो राजा शांतिमान् हुआ तब प्रजा भी शांतिमान् होती है, सब गुणोंते जो उत्तम गुण है, सो आत्मज्ञान है जो आत्माको जानता है, सोई राजा है, अरु सोई मंत्री है, जिसविषे प्रभुता भी होवै, अरु समदृष्टि होवै, अरु जो प्रभुता अरु समदृष्टिते रहित है, सो न राजा है, नमंत्री है ॥ हे राजन् ! जो तुम आत्मज्ञानवान् पुरुष हो, तौ तुम कल्याणरूप हो; अरु जो ज्ञानते रहित हौ, तब मैं तुमको भोजनकरौंगी तुमको छूटनेका उपाय यही है, कि मैं प्रश्नका समूह पूछतीहौं, तिनका उत्तर देना, जो प्रश्नका उत्तर दिया तब मेरे पूजनेयोग्य हौ, अरु जो मेरा अर्थ होवैगा, सोकरौंगी, तुम पूर्ण करौगे, अरु जो प्रश्नोंका उत्तर न दिया, तब तुम्हारा भोजन करौंगी इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीविचारो नाम चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ५५.

राक्षसीप्रश्नवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार राक्षसीने कहा, तब राजाने कहा तू प्रश्न कर, हम तुझको उत्तर देवैंगे ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! यह एक अणु कौन है, जिसते अनेक प्रकार हुए हैं ? एकके अनेक नाम हैं, अरु वह कौन अणु है, जिसविषे अनेक ब्रह्मांड लीन हैं ? जैसे समुद्रविषे अनेक बुद्बुदे उपजिकरि लीन होते हैं, तैसे एक अणुविषे

अनेक ब्रह्मांड उपजते हैं, अरु लीन होते हैं, अरु वह आकाश कौन है, जो पोलते रहित है, अरु वह कौन अणु है, जो न किंचित् है, न अकिंचित् है ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे तेरा अहं अरु मेरा अहं फुरता है ? अरु अहं त्वं एकविषे जनाते हैं, सो कौन है ? अरु वह कौन है, जो चला जाता है, अरु कदाचित् नहीं चलता ? अरु सो कौन है, जो तिष्ठत् भी है, अरु अतिष्ठत् भी है, अरु वह कौन है, जो पाषाणवत् है, अरु वह कौन है, जिसने आकाशविषे चित्र किये हैं, अरु वह अग्नि कौन है, जो दाहकशक्तिते रहित है, अरु अग्निरूप है, अरु वह अग्नि कौन है, जिसते अग्नि उपजा है ? अरु वह कौन अणु है, जो सूर्य, अग्नि, चंद्रमा ताराके प्रकाशते रहित है, अरु अविनाशी है ? अरु वह कौन है, जो नेत्रोंकरि देखा नहीं जाता, अरु सब प्रकाशोंको उत्पन्न करता है ? अरु वह कौन ज्योति है, जो फूल फल वेलिको प्रकाशती है ? अरु जन्मांधको भी प्रकाशता है ? अरु वह कौन अणु है, जो आकाशादिक भूतोंको उपजाता है ? अरु वह कौन अणु है, जो स्वाभाविक प्रकाशमान है ? अरु वह भंडार कौन है, जिसते ब्रह्मांडरूपी रत्न उपजते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे प्रकाश अरु तम इकट्ठे रहते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे सत् असत् दोनों इकट्ठे रहते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जो दूर भी अदूर है, अरु वह कौन अणु है, जिसविषे सुमेरु आदिक पर्वत समाय रहे हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे निमेषमें कल्पहै, अरु कल्पमें निमेषहै ? अरु वह कौनहै, जो प्रत्यक्षहै, अरु असत्‌रूपहै ? अरु वह कौनहै, जो सत्‌रूपहै, अरु अप्रत्यक्षरूपहै ? और वह कौन चेतन है, जो अचेतन है ? अरु वह कौन वायु है, जो अवायुरूप है ? अरु वह कौन है, जो अशब्दरूप है ? अरु वह कौन है, जो सर्व है ? अरु निष्किंचित् है ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे अहं नहीं अरु है भी ? अरु वह कौन है, जो अनेक जन्मोंके यत्नकरि पाता है ? अरु पायके कहता है, कि कछु नहीं पाया अरु सब कछु पाया है ? अरु वह कौन अणु है ? जिसविषे सुमेरु आदिक तीनों भुवन तृणसमान हैं ? अरु वह कौन है, जो अनेक योजनोंको पूर्ण करता है ? अरु वह कौन अणु है,

हे राक्षसी ! किरात देशका यह राजा है, अरु मैं इसका मन्त्री हौं, अरु रात्रिविषे तुमसारिखे दुष्टोंको मारणेनिमित्त उठे हैं, रात्रि दिनविषे हमारा यही आचार है, जो जीव धर्मोंको मर्यादाको त्यागनेहारे है, तिनका हम नाश करते हैं, जैसे इंधनोंको अग्नि नाश करता है,तैसे हम दुष्टोंका नाश करते है ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! यह तेरा दुष्ट मंत्री है, जिस राजाका मन्त्री भला नहीं होता, वह राजा भी भला नहीं, अरु जिस राजाका मंत्री भला होता है, तिसकी प्रजाभी शांतिमान् होती है, भला मन्त्री सो कहाता है, जो राजाको न्यायविषे अरु विवेकविषे जोडै, जो राजा विवेकी होता है, तौ शांतात्मा होता है, जो राजा शांतिमान् हुआ तब प्रजा भी शांतिमान् होती है, सब गुणोंते जो उत्तम गुण है, सो आत्मज्ञान है जो आत्माको जानता है, सोई राजा है, अरु सोई मन्त्री है, जिसविषे प्रभुता भी होवै, अरु समदृष्टि होवै, अरु जो प्रभुता अरु समदृष्टिते रहित है, सो न राजा है, नमन्त्री है ॥ हे राजन् ! जो तुम आत्मज्ञानवान् पुरुष हो, तौ तुम कल्याणरूप हो, अरु जो ज्ञानते रहित हौ, तब मैं तुमको भोजनकरौंगी तुमको छूटनेका उपाय यही है, कि मैं प्रश्नका समूह पूछतीहौं, तिनका उत्तर देना, जो प्रश्नका उत्तर दिया तब मेरे पूजनेयोग्य हौ, अरु जो मेरा अर्थ होवैगा, सोकहौंगी, तुम पूर्ण करौगे, अरु जो प्रश्नोंका उत्तर न दिया, तब तुम्हारा भोजन करौंगी इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीविचारो नाम चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ५५

राक्षसीप्रश्नवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार राक्षसीने कहा, तब राजाने कहा तू प्रश्न कर, हम तुझको उत्तर देवैंगे ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! यह एक अणु कौन है, जिसते अनेक प्रकार हुए हैं ? एकके अनेक नाम हैं, अरु वह कौन अणु है, जिसविषे अनेक ब्रह्मांड होते हैं ? जैसे समुद्रविषे अनेक बुद्बुदे उपजिकारि लीन होते हैं, तैसे एक अणुविषे

अनेक ब्रह्मांड उपजते है, अरु लीन होते हैं, अरु वह आकाश कौन है, जो पोलते रहित है, अरु वह कौन अणु है, जो न किंचित् है, न अकिंचित् है ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे तेरा अहं अरु मेरा अहं फुरता है ? अरु अहं त्वं एकविषे जनाते हैं, सो कौन है ? अरु वह कौन है, जो चला जाता है, अरु कदाचित् नहीं चलता ? अरु सो कौन है, जो तिष्ठत् भी है, अरु अतिष्ठत् भी है, अरु वह कौन है, जो पाषाणवत् है, अरु वह कौन है, जिसने आकाशविषे चित्र किये है, अरु वह अग्नि कौन है, जो दाहकशक्तिते रहित है, अरु अग्निरूप है, अरु वह अग्नि कौन है, जिसते अग्नि उपजा है ? अरु वह कौन अणु है, जो सूर्य, अग्नि, चंद्रमा ताराके प्रकाशते रहित है, अरु अविनाशी है ? अरु वह कौन है, जो नेत्रोंकरि देखा नहीं जाता, अरु सब प्रकाशोंको उत्पन्न करता है ? अरु वह कौन ज्योति है, जो फूल फल वेलिको प्रकाशती है ? अरु जन्मांधको भी प्रकाशता है ? अरु वह कौन अणु है, जो आकाशादिक भूतोंको उपजाता है ? अरु वह कौन अणु है, जो स्वाभाविक प्रकाशमान है ? अरु वह भंडार कौन है, जिसते ब्रह्मांडरूपी रत्न उपजते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे प्रकाश अरु तम इकट्ठे रहते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे सत् असत् दोनों इकट्ठे रहते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जो दूर भी अदूर है, अरु वह कौन अणु है, जिसविषे सुमेरु आदिक पर्वत समाय रहे हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे निमेषमें कल्पहै, अरु कल्पमें निमेषहै ? अरु वह कौनहै, जो प्रत्यक्षहै, अरु असत्‌रूपहै ? अरु वह कौनहै, जो सत्‌रूपहै, अरु अप्रत्यक्षरूपहै ? और वह कौन चेतन है, जो अचेतन है ? अरु वह कौन वायु है, जो अवायुरूप है ? अरु वह कौन है, जो अशब्दरूप है ? अरु वह कौन है, जो सर्व है ? अरु निष्किंचित् है ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे अहं नहीं अरु है भी ? अरु वह कौन है, जो अनेक जन्मोंके यत्नकरि पाता है ? अरु पायके कहता है, कि कछु नहीं पाया अरु सब कछु पाया है ? अरु वह कौन अणु है ? जिसविषे सुमेरु आदिक तीनों भुवन तृणसमान है ? अरु वह कौन है, जो अनेक योजनोंको पूर्ण करता है ? अरु वह कौन अणु है,

जिसके देखनेकरि जगत् फुरि आता है ? अरु वह कौन अणु है, जो अणुताको त्यागेविना सुमेरु आदिक स्थूल आकारको प्राप्त होताहै ? अरु वह कौन अणु है, जो वालका सौवाँ भाग सुमेरुते भी ऊँचा भया है ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे सब अनुभव स्थित हैं ? अरु वह कौन अणु है, जो अत्यत निस्वाद है ? अरु आपही सब स्वाद होता है ? अरु वह कौन अणु है, जो अपने ढांपनेको समर्थ नहीं अरु सर्वको ढांपि रहा है ? अरु वह कौन अणु है, जिसकरि सब जीवते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसका अवयव कोऊ नहीं, अरु सर्व अवयवको धारि रहा है, अरु वह कौन निमेप है, जिसविषे वहुतेरे कल्प स्थित हैं? अरु वह कौन अणुहै, जिसविषे अनत जगत् स्थित है, जैसे वीजविषे वृक्ष होता है ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे वीजते आदि अरु फल-पर्यंत न उदय हुए भी भासते हैं ? अरु वह कौन है, जो प्रयोजनते अरु कर्तृत्वते रहित है, अरु प्रयोजनवान् अरु कर्तृत्ववान्की नाईं स्थित है ? अरु वह कौन द्रष्टा है, जो दृश्यको मिलिकरि दृश्य होता है ? अरु वह कौन है, जो दृश्यके नष्ट हुए भी आपको अखड देखता है ? अरु वह कौन है, जिसके जाननेते द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों लय हो जाते है ? जैसे सोनेको जाननेते भूपणभाव लीन हो जाते हैं, अरु वह कौन है, जिसते भिन्न कछु नहीं, जैसे जलते भिन्न तरगोंका अभाव है, अरु वह एकही कौन है? जो देश, काल, वस्तुके परिच्छेदते रहित सत् असत्की नाईं स्थित है ? अरु वह कौन अद्वैत है ? जिसते द्वैत भी भिन्न नहीं जैसे समुद्रते तरंग भिन्न नहीं, अरु सो कौन है? जिसके देखते सत्ता असत्ता सब लीन होता है, अरु वह कौन है, जिसविषे भ्रमरूपी अनंत जगत् स्थित है, जैसे वीजविषे वृक्ष होता है, अरु वह कौन है, जो सबके अतर है ! जैसे वृक्षविषे वीज होते है, अरु वह कौन है, जो सत्ता असत्तारूपी आपही भया है, जैसे वीज वृक्षरूप है, अरु वृक्ष वीजरूप है, अरु यह अणु कौन है, जिसविषे ततु भी सुमेरुकी नाईं स्थूल है, जिसके अतर कोटि ब्रह्मांड है ॥ हे राजन् ! तिस अणुको देखा है, तो कहो ॥ हे राजा ! यह मुझको सशय है, तिसको तुम अपने मुखकरि दूर करो,

जिसके विद्यमान संशय दूर निवृत्त न होवैं, तिसको पंडित नहीं कहना, अरु जो ज्ञानवान् है, तिसको इन प्रश्नोंका उत्तर कहना सुगम है, इस संशयको वह शीघ्रही छेदडारता है, अरु जो अज्ञानी है, तिनको उत्तर कहना कठिन है॥ हे राजन्! जो तुम मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिया, तौ तुम मेरे पूजने योग्य हो, अरु जो मूर्खताकरिकै पश्नोंका उत्तर न देवोगे, अरु पश्नोंका विपर्यय जानोंगे, तब तुम मेरे उदररूपी जठराग्निके इंधन हो, दोनों मेरे उदरविषे जाइ पडोगे, तिसके अनंतर तुम्हारी सब प्रजाको ग्रास करि लेउँगी काहेते कि, मूर्ख पापियोंको मारना श्रेष्ठ है आगे पाप करनेते छूटैंगे, तुम्हारा भोजन करिकै पीछे तुम्हारी सब प्रजाको भोजन करि लेउंगी॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! श्याम मेघकी नाईं जिसका आकार है, ऐसी राक्षसी इसप्रकार कहिकरि शुद्ध आशयको लेकरि तूष्णीं भई, जैसे शरत्कालविषे मेघमंडल निर्मल होता है, तैसे निर्मल भावको प्राप्त भई॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीप्रश्नवर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः॥ ५५॥

षट्पंचाशत्तमः सर्गः ५६.

राक्षसीप्रश्नभेदवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह जो अर्धरात्रिके समय महाशून्य वनविषे महाराक्षसीने महाप्रश्नोंको जब किया, तब महामंत्री तिसको उत्तर कहत भया॥ महामन्त्र्युवाच॥ हे राक्षसी! यह जो तैंने संशयसों प्रश्न किये हैं तिनका मैं क्रमकरि उत्तर कहता हौं, अरु तेरे संशयको छेदन करता हौं, जैसे उन्मत्त हस्तीको केसरी सिंह नष्ट करता है, तैसे मैं तेरे संशयको छेदन करता हौं॥ हे राक्षसी! कमलनयनी, जेते कछु तैंने प्रश्न किये हैं, सो एक परमात्मादिक किये हैं, ताते तेरा सब प्रश्नोंका एकही प्रश्न है, परंतु तुमने अनेक प्रकार कर किये हैं सो ब्रह्मवेत्ताके योग्य है॥ हे राक्षसी! जो अनामारूय है, अर्थ यह जो सर्व इंद्रियोंका विषय नहीं, अरु अगम है, अरु मनकी चिंतनाते रहित है,

ऐसी सत्ता चिन्मात्र है अरु आकार भी सूक्ष्म है, इस कारणते सूक्ष्म कहाता है, सूक्ष्मताकरिकै तिसकी अणु सज्ञा है, कछु परमाणुताकरिकै तिसकी अणु सज्ञा नहीं है, काहेते कि सर्वात्मा है, तिस अणुविषे सत् असत्की नाई जगत् स्थित है, अरु तिसही चिद्अणुविषे जब कछुक संवेदन फुरता है, तब वही सवेदन सत्य असत्य जगत्की नाई भासता है, तिसकरिकै चित्त कहते हैं, अरु सृष्टिते पूर्व तिसविषे कछु न था, तिसकारि निष्किंचन कहाता है, अरु इंद्रियोंका विषय नहीं, ताते न किंचित् है, अरु वही चिद्अणुविषे सबका आत्मा है, ताते अनतभोक्ता पुरुष किंचन है, तिसते इतर कछु नहीं, ताते न किंचन है, अरु सोई चिद्अणु सबका आत्मा है, अरु सोई चिद्अणु एकही आभासकरिकै अनेकरूप भासता है, जैसे सुवर्णते नानाप्रकारके भूषण भासते हैं, अरु वही चिद्अणु परमाकाशरूप है, जो आकाशते भी सूक्ष्म है, अरु मनवाणीते अतीत है, सो सर्वात्मा है, शून्य कैसे होवे, सत्को जो शून्य कहते हैं, सो उन्मत्त कहाते है ॥ काहेते कि असत् भी सत् विना सिद्ध नहीं होता, जिसके आश्रय असत् भी सिद्ध होता है, सो सत् है, अरु वही चिद्अणु पचकोशोंविषे छिपता नहीं, जैसे कर्पूरकी गध प्रगट होती है, छिपती नहीं, तैसे प्रगट होता है, पचकोशोंविषे आत्मा छिपता नहीं, अनुभवरूप है, अरु वही चिन्मात्र सर्वरूपकरि किंचित् है, अरु अचेतन चिन्मात्र है, ताते अकिंचित् है, इद्रियोंते रहित है, ताते निर्मल है, तिसही चिद्अणुविषे फुरणेकरि अनेक जगत् स्थित जैसे समुद्रविषे फुरणेकरिकै तरंग उपजते हैं, बहुरि लीन होते हैं, तैसे चिद्अणुविषे फुरणेकारि अनेक जगत् उपजिकै लीन होते हैं, मन अरु इद्रियोंके अतीत है, ताते चिद्अणु शून्य कहाताहै, अपने आपहीकरि प्रकाशता है, ताते अशून्य है ॥ हे राक्षसी ! मेरा अहं अरु तेरा अह भया है, सो आत्मा एकही भया है, अहंकी अपेक्षाकरिकै त्व है, अरु त्वंकी अपेक्षाकरिकै मैं परिच्छिन्न हौं, परंतु दोनोंका उत्थान जो है, सो एक आत्मतत्त्वतेही है; तिसही चिद्अणुके बोधते ब्रह्मरूप होता है, अरु तिसही बोधविषे अहं त्व सब लीन होते हैं, अथवा सर्व आपही होता है, त्रिपुटीरूप भी वही है, अरु

वही चिद्अणु अनेक योजनोंपर्यंत जाता है, अरु कदाचित् चलायमान नहीं भया, काहेते जो संवित् अनंतरूप है, योजनोंके समूह तिसके अंतर हैं न कोऊ आता है, न जाता है, अपने आकाशकोशविषे सब देशकाल स्थित हैं, जिसविषे सब कछु होवै, तिसको प्राप्ति वास्तवते कहां होवै ? यह जेता जगत् है, सो तौ आत्माविषे है, फेर आत्मा कहां जावै, जैसे माताकी गोदविषे पुत्र होवै, तिसनिमित्त वह कहां जावै, तैसे आत्माविषे यह जगत् स्थित है, फिर आत्माको जाता कहां कहना, अरु चलता जो भासता है, सो देहकी अपेक्षाकरि भासता है, वह कदाचित् चला नहीं, जैसे आकाशविषे घटादिक स्थित हैं, तैसे चिद्अणुविषे देशकाल स्थित है, जैसे घट एक देशते देशांतरको जावै, तौ घट गया है, आकाश नहीं गया है, घटकी अपेक्षाकरि आकाश जाता भासता है, घटाकाश कहूं गया नहीं, काहेते जो आकाश विषे सब देश स्थित हैं, यह कहा जावै, तैसे आत्मा जाता है, अरु नहीं जाता; तिसही चिन्मात्र परमात्मविषे संवेदना आकार रचे हैं, आदिअंतते रहितविषे विचित्ररूपी जगत् रचा है, अरु सोई चिद्अणु अग्निकी नाई प्रकाशरूप है, अरु जलानेते रहित है, ज्ञान अग्निकरि प्रकाशमान है, अग्नि भी तिसते उपजा है, अरु सर्वगत वही है, अरु द्रव्योंको पचाता भी वही है, प्रलयविषे सब भूत तिसविषे लीन होते हैं, अरु पुष्कल मेघ इकट्ठा होवै तौ भी उसको आवरण नहीं करै, सदा प्रकाशरूप अरु ज्ञानरूप है, आकाशते भी निर्मल है, अरु प्रकाशरूप है, जो अग्नि भी तिसते उत्पन्न होता है, अरु सबको सत्ता देनेहारा है, सूर्यादिक भी तिसके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, अरु अनुभवरूप हैं, नेत्रोंबिना भासता है, ऐसा हृदयरूपी मंदिरका दीपक है सो आत्मा है, अनंत परम प्रकाशरूप है, अरु मन इंद्रियोंका विषय नहीं, अरु लता फूल फल आदिक सबको आत्मत्वकरिकै प्रकाशता है, सबका अनुभवकर्ता वही है, काल आकाश क्रिया आदिक पदार्थको सत्ता देनेहारा वही चिद्अणु है, अरु सबका स्वामी कर्त्ता वही है, सबका पिता वही है, अरु सबका भोक्ता भी वही है, अरु स्वरूपते सदा अकर्ता अभोक्ता है रूप

जिसका, जैसे स्वप्नविषे कर्त्ता भोक्ता भासता है, अरु अकर्ता अभोक्ता है, तिसते इतर कछु नहीं, इसकारणते किंचन रूप है, जगत्को धारनेहारा है, स्वरूपते मातृ मान मेय जिसकरि प्रकाशते हैं, उपजा कछु नहीं चिदात्माका किंचन है, किंचन करिकै जगत्की नाईं भासता है, जो तुझने पूछा था, कि दूर अरु निकट कौन है, सो अलखभाव करिकै दूर भी वही है, अरु चिद्रूप भावकरिकै अदूर भी वही है, अथवा ज्ञानकरिकै अदूर भी वही है, अरु अज्ञानकरिकै दूरते दूर है, अरु अज्ञानकरिकै तमरूप अरु ज्ञानकरिकै प्रकाशरूप भी वही है, अरु तिसही चिद्अणुविषे सवेदनकरिकै सुमेरु आदिक स्थित है ॥ हे राक्षसी ! जेता कछु जगत् भासता है, सो सब संवेदनरूप है, सुमेरु आदिक पदार्थ कछु उपजे नहीं, चिद्सत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, तिसविषे जैसा सवेदन फुरता है, तैसा आकार होइ भासता है, जहां निमेषका सवेदन फुरता है, तहां निमेष कहाता है, अरु जहां संवेदन कल्पका फुरता है, तहां कल्प कहते हैं, कल्प क्रिया आदिक जगत् विलास सब निमेषविषे फुरि आये हैं, जैसे मनके फुरणेकरिकै बहुत योजनोंपर्यंत पुरुष भास आता है, अरु जैसे अल्प मुकुरविषे बडे विस्तार नगरका प्रतिबिंब समाइजाता है, तैसे निमेषके फुरणेविषे सब जगत् फुरि आता है, अरु निमेषविषे कल्प समुद्र पुर अनत योजनोंका विस्तार चिद्अणुविषे स्थित है, अरु द्वैत एक भ्रमते रहित है ॥ हे राक्षसी ! यह जगत् स्वरूपते अवस्तुरूप है, सवेदनकरिकै भासता है, जैसे जैसे सवेदनाविषे दृढ प्रतीति होती है, तैसा तैसा अनुभव होता है, तू देख क्षणके स्वप्नविषे सत् असत् जगत् फुरि आता है, अरु बहुत कालका अनुभव होता है, जो दुःखी होते हैं, तिनको थोडे कालविषे बहुत भासते हैं, अरु जो सुखी होते हैं, तिनको बहुत कालविषे थोडा काल भासता है, जैसे हरिश्चंद्रको एक रात्रिविषे द्वादश वर्षका अनुभव भया, ताते जेता जेता संवेदन दृढ होता है, तैसे देशकाल होइ भासता है, सत् भी असत्की नाईं भासता है, जैसे सुवर्णविषे भूषणबुद्धि होती है, तब भूषण भासते हैं, अरु समुद्रविषे तरंगोंकी दृढताते तरंग भिन्न भासते हैं, तैसे निमेषविषे कल्प भासते हैं, अरु वस्तुते न निमेष है, न

कल्प है, न दूर है, न निकट है, सब चिद्अणु आत्माका आभास है ॥ हे राक्षसी! प्रकाश अरु तम, दूर अदूर, सब चेतन सपुटविषे रत्नोंकी नाईं है, वस्तुते अनन्यरूप है, भेदाभेद कछु नहीं ॥ हे राक्षसी! जबलग दृश्यका सद्भाव दृढ होता है, तबलग द्रष्टा नहीं भासता, जैसे जबलग भूषणबुद्धि होती है, तबलग स्वर्ण नहीं भासता, अरु जब स्वर्ण जाना तब भूषणबुद्धि नहीं रहती, स्वर्णही भासता है, तैसे जबलग दृश्यका सद्भाव होता है, तबलग द्रष्टा नहीं भासता, अरु जब आत्मज्ञान होता है, तब केवल ब्रह्मसत्ता निर्मलही सद्रूपकरिकै सर्वत्र भासती है, अरु दुर्लक्षताकरिकै अर्थ यह जो मन इंद्रियोंके अविषयते असत्रूप कहते हैं, चैत्यताकरिकै तिसको चेतन कहते हैं, अरु चैत्यके अभावते अचेतनरूप कहते है, अर्थ यह जो चैत्यके अभावते अचैत्य चिन्मात्र कहते हैं, सो चेतन चमत्कारते जगत्की नाईं होइ भासता है ॥ हे राक्षसी! और जगत् तिसविषे कोऊ नहीं जैसे वायुका विरोला वृक्षाकार होय भासता है, अरु जैसे सघन धूपकरिकै मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे एक अद्वैत चेतन है, सो घन चेतनताकरिकै जगत्की नाईं होइ भासता है, जैसे सघन शून्यताकरिकै आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे दृढ सघन चेतनताकरिकै जगत् भासता है, जैसे सूर्यकी सूक्ष्म किरणोंका किंचन मृगतृष्णाका जल होता है, तिस नदीका प्रमाण कछु नहीं, तैसे यह जगत्आस्था भासती है, सब आकाशरूप है, जैसे भ्रमकरिकै धूडके कणमें स्वर्णकी नाईं चमत्कार होते हैं, तैसे जगत्कल्पना चित्तके फुरनेकरिकै भासती है जैसे स्वप्नपुर अरु गंधर्वनगर आकारसहित भासते हैं, सो न सत् है, न असत् है, तैसे यह जगत् दीर्घ स्वप्न है, न सत् है,न असत् है ॥ हे राक्षसी! जब तिसका आत्माविषे अभ्यास होवै, तब यह कुडादिक ऐसेही रहैं अरु आकाशरूपही भासै, स्वरूपते कुडादिक भी आकाशरूप हैं, आकाश अरु कुड आदिकोंविषे भेद कछु नहीं, मूढताकरिकै भेद भासता है, ज्ञानीको सब चित्ताकाशरूप भासता है ॥ हे राक्षसी! ब्रह्माते तृणपर्यंत संवेदनाविषे कल्पना दृढ हो रही है, तैसेही भासती है, अरु वास्तवते वही चिदाकाश प्रकाशता है, घन चेतनताकरिकै वही चिदाकाश आकारोंकी

नाईं प्रकाशता है, तिसीका यह प्रकाश है, सो अनन्यरूप है, जैसे बीज अरु वृक्ष अनन्यरूप हैं, तैसे असंख्यरूप जगत् ब्रह्मसत्ताविषे स्थित है, सो अनन्यरूप है, जैसे बीजविषे वृक्षका भाव स्थित है, सो आकाशरूप है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् स्थित है सो अक्षोभरूप है, अन्य भावको नहीं प्राप्त हुए, सो ब्रह्मसत्ता सब ओरते शांतरूप है, अज है, एक है, आदि मध्य अंतते रहित है, तिसविषे एक अरु द्वैतकी कल्पना कोई नहीं, अनउदयही उदय हुई है, निर्मल स्वप्रकाश आत्माही है ॥ इति श्रीयो० उत्प० राक्षसीप्रश्नभेदवर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ५७.

परमार्थनिरूपणम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ बडा आश्चर्य है, बडा आश्चर्य है; मंत्रीने तो यह परम पावन परमार्थ वचन कहे हैं, अब कमलनयन राजा भी कछु कहता है ॥ राजोवाच ॥ हे राक्षसी ! यह जो जाग्रत् जगत्की प्रतीति होती है, सो इसका जब अभाव होवे तब आत्मप्रतीति होती है, जब सब संकल्पकी चैत्यताका नाश होवे, तब आत्माका साक्षात्कार होवै, सो आत्मसत्ता कैसी है जिसविषे संवेदन फुरणेकरि जगत् होइ भासता है, अरु संवेदनके संकोचकरि सृष्टिका प्रलय होता है, तिसका अधिष्ठानरूप आत्मसत्ता है, तिसको वेदांतवाक्य जतावनेके अर्थ कछुक कहते हैं, काहेते जो वाणीते अतीत पद है ॥ हे राक्षसी ! यह जो द्रष्टा, दर्शन, दृश्य है; तिसके अंतर अनुभवसत्ता है, सो परमात्मा है; सो परमात्माही द्रष्टा, दर्शन, दृश्यरूप होइकरि भासता है; तिसविषे जगत् लीला है, नानात्व भावकरिकै भी कछु खंडितभावको नहीं प्राप्त भया, अखंडही रहा है, तिस चिन्मात्रसत्ताको ब्रह्मकरि कहते हैं ॥ हे भद्रे ! सोई चिद् अणु संवेदनकरिकै वायुरूप हुआ है; अरु वायु तिसविषे अत्यंत भ्रांतिमात्र है, काहेते कि, यह केवल शुद्ध चिन्मात्र है; जब तिसविषे शब्दका संवेदन फुरता है, तब शब्दरूप होइ भासता है, अरु शब्दरूप तिसविषे भ्रांतिमात्र है; तिसविषे शब्द अरु

शब्दका अर्थ देखना दूरते दूर है काहेते कि, केवल चिन्मात्र है, तिसविषे अहं त्वं कछु नहीं, अरु वह, निष्किंचन है, ऐसे रूप होइकरि भासता है,काहेते सो सब शक्तिरूप आत्मा है,तिसविषे जैसी प्रतिभा फुरती है, तैसाही होइकरि भासता है,ताते फुरणाही इस जगत्का कारण है, अरु अनेक यत्नोंकरि पावने योग्य है, सो भी आत्मसत्ताहै, जब तिसको पावता है तब उसने कछु नहीं पाया,अरु सब कछु पाया है तौ इस कारणते नहीं, कि आगे भी अपना आप था, अरु सब कछु पाया, इस कारणते कि आत्माके पायेते कछु और पावना नहीं रहता ॥ हे राक्षसी! अज्ञानरूपी वसतऋतुकरिके जन्मोंकी परपरा वेलि तबलग बढती जाती है जबलग इसका काटनेहारा बोधरूपी खड्ग नहीं उदय भया, जब बोधरूपी खड्ग उदय होता है, तब जन्मरूपी वेलिको काटता है ॥ हे राक्षसी! चिद्अणु सवेदनद्वारा आपको दृश्यविषे प्राप्त करता है, जैसे किरणोंका चमत्कार जलरूप होइकरि स्थित होता है, सो शुद्धही आपको सवेदनद्वारा फुरता देखता है, तैसे चिद्अणुद्वारा जगत् हुआ है, सो मेरुते आदिलेकारि तीनों भुवन किरणोंकी नाईं स्थित होते हैं, अरु वस्तुते मायामात्र है,भ्रमकरिके पडे भासते हैं, स्वप्नविषे रागीको स्वप्नस्त्रीका आलिंगन होता है, तैसे यह जगत् मनके फुरणेकरिके पडा भासता है, सो भ्रममात्र है॥हे राक्षसी! सर्व शक्तिरूप आत्मविषे जैसे सृष्टिका आदि फुरणा हुआ है, तैसा रूप होइकरि भासने लगा है, जैसे सकल्प किया है तैसे स्थित भया है, ताते सब जगत् सकल्पमात्र है, जैसा जिसविषे बालकका मन लगता है, तैसा रूप उसका होइ भासता है, तैसे संवित्के आश्रय जैसा सवेदन फुरता है, तैसा रूप होइ भासता है ॥ हे राक्षसी! चिद्अणु परमाणुते भी सूक्ष्म है, अरु तिसनेही सब जगत्को पूर्ण किया है, सब जगत् अनंतरूप आत्मा है, तिसविषे सवेदनकरिके जगत्की रचना हुई है; जैसे नट नायक होता है, सो जैसे जैसे बालकको नेत्रोंकर जतावता है, तैसे वह नृत्य करता है, अरु जब वह जतावनेते ठहर जावे तब वह ठहर जावे है, तैसे चित्तके अवलोकनते करिके सुमेरु आदिक तृणपर्यंत जगत नृत्य करता है, जैसे चित्तसंवेदन फुरता है, अनं-

तशक्ति आत्माविषे, तैसे तैसे होइ भासती है ॥ हे राक्षसी ! देश काल वस्तुके परिच्छेदते आत्मसत्ता रहित है, इसकारणते सुमेरु आदिकते स्थूल है, तृणके समान सुमेरु आदिक है, अरु वालके अग्रते सौवा भाग होवै, तैसे सूक्ष्म है, सो अल्पताकरि ऐसा सूक्ष्म नहीं, जिसविषे सरसोंका दाना भी सुमेरुवत् स्थूल है, मायाकी कला वहुत सूक्ष्म है, तिसते भी चिद्अणु सूक्ष्म है काहेते जो निर्मायिक पद परमात्मा है, जैसे स्वर्ण अरु भूषणकी शोभा समान नहीं, अर्थ यह जो स्वर्णविषे भूषण कल्पित है, समान कैसे होवै, तैसे माया परमात्माके समान नहीं, काहेते कि कल्पित है ॥ हे राक्षसी ! जेते कछु सूर्य आदिक प्रकाश है, सो सब अनुभवकरि प्रकाशते हैं, इनका सद्भाव कछु न था, तिसही सत्ताकरि इनका प्रगट होना भया है, अरु बहुरि जर्जरीभूत होते है, प्रकाशरूप शुद्ध चिन्मात्र सत्ता है, सो सदा अपने आपविषे स्थित है, तिस चिद्अणुके अंतर बाह्य प्रकाश है अरु यह जो सूर्य चद्रमा अग्नि आदिक प्रकाश हैं, सो तम साथ मिले हुए है, अर्थ यह जो भेदरूप हैं, यह भी तमरूप हैं, काहेते जो आपेक्षिक प्रकाश है, इनोंविषे एता भेद है, जो प्रकाश शुक्लरूप है, अरु तम कृष्णरूप है, रंगका भेद है, प्रकाशरूप कोऊ नहीं, जैसे श्याम कुहिड मेघकी होती है, अरु शुक्ल कुहिड वर्फकी होती है, अरु दोनों कुहिड हैं, तैसे तम अरु प्रकाश दोनो तुल्य हैं, अरु आत्मसत्ता दोनोंको प्रकाशती है, ताते दोनोंको आश्रयभूत केवल एक आत्मसत्ता है ॥ हे राक्षसी ! रात्रिदिन अतर बाहिर नादिया पहाड आदिक सब लोक आत्मसत्ताके प्रकाशकरि प्रकाशते है, जैसे कमल अरु नीलोत्पल दोनोंको सूर्य प्रकाशता है, कमल श्वेत है, अरु नीलोत्पल श्याम है, जहां श्वेत कमल है, तहा नीलोत्पलका अभाव है,अरु जहा नील कमल है,तहां श्वेतकमलका अभाव है,अरु दोनोंका प्रकाशक सूर्य है,तैसे तम अरु प्रकाश दोनोंका प्रकाशक चिदात्मा है, जैसे रात्रि अरु दिन दोनों सूर्यकरिकै सिद्ध होते हैं, तैसे तम अरु प्रकाश दोनों आत्माकरि सिद्ध होते हैं, जैसे दिन तब कहाता है, जब सूर्य उदय होता है, अरु जब सूर्य अस्त होता है, तब रात्रि होती है परतु आत्मा तैसा नहीं, आत्मप्रकाश सदा उदय अरु

अस्तते रहित है, तिसविना कछु सिद्ध नहीं होता, सबका प्रकाशक चिद्-अणु है ॥ हे राक्षसी ! तिस अणुके अंतर विचित्र अनुभव अणु हैं, जैसे वसंतऋतुके अंतर पत्र फूल फल टास होते हैं, तैसे चिद्अणुते सब अनुभव अणु होते हैं, जैसे एक बीजते अनेक वृक्ष क्रमकरिकै हो जाते हैं, तैसे अनेक चिद्अणुते अनेक अनुभव अणु होते हैं, कई व्यतीत भये हैं, कई वर्तमान हैं, अरु कई भविष्यत् होवैंगे, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, सो कई अब वर्तते हैं, कई आगे होवैंगे, तैसे आत्माविषे तीनों कालकी सृष्टि वर्तती है ॥ हे राक्षसी ! चिद्अणु आत्मा उदासीन है अरु आसीनकी नाईं स्थित होता है, सबका कर्त्ता भी है, भोक्ता भी है, अरु स्पर्श किसी साथ नहीं किया, जगत्की सत्यता तिसीते उदय होती है, इस कारणते सबका कर्त्ता है, अरु सबका अपना आप है, ताते सबको भोगता है, अरु वास्तवते न उपजा है, न कछु लीन होता है, चिन्मात्रसत्ता ज्योंकी त्यों सदा अपने आपविषे स्थित है, अरु अखंड है, सूक्ष्म है, इस कारणते किसीके साथ स्पर्श नहीं किया ॥ हे राक्षसी ! जेता जगत् दीखता है, सो सब आत्मरूप है, आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, आत्मा अरु जगत् कहने मात्र दोनों नाम हैं, वस्तुते एक आत्माही है, आत्माका चमत्कारही जगत्रूप होइ भासता है, जगत् कछु बना नहीं, चिन्मात्रसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, और जेता कछु कहना है, सो उपदेश जतावनेके निमित्त है, वास्तवते दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, तीनों जगत् चिदाकाशरूप है ॥ हे राक्षसी ! द्रष्टा जब दृश्यपदको प्राप्त होता है, तब स्वाभाविक अपने भावको नहीं देखता; जैसे नेत्र जब घटको देखता है, तब घटही भासता है, अपना नेत्रत्वभाव दृष्टिमें नहीं आता, तैसे दृश्यके होते द्रष्टा नहीं भासता, अरु जब दृश्य नष्ट होवै, तब द्रष्टा भी अवास्तव है काहेते कि, द्रष्टा भी इसको दृश्यके संबंधकरि कहाता है, जब दृश्य नष्ट हो जावै, तब द्रष्टा किसको कहिये ? दृश्य विषयभूत सो होता है, जो अदृश्य है, सो विषयभूत किसीका नहीं, इस कारणते तिसविषे और कल्पना कोई नहीं बनती ॥ अरु यह जगत् भी तिसका आभास है ॥ हे राक्षसी ! जैसे भोक्ता

विना भोग नहीं होते, तैसे द्रष्टाविना दृश्य नहीं होते, जैसे पिताविना पुत्र नहीं होता, तैसे एक विना द्वैत नहीं होते ॥ हे राक्षसी ! द्रष्टाको दृश्य उपजानेकी समर्थता है, परंतु दृश्यको द्रष्टा उपजानेकी समर्थता नहीं, काहेते कि दृश्य जड है, जैसे सुवर्णते भूषण बनता है, भूषणते स्वर्ण नहीं बनता, तैसे द्रष्टाते दृश्य होता है, दृश्यते द्रष्टा नहीं होता ॥ हे राक्षसी ! स्वर्णविषे जैसे भूषण है, तैसे द्रष्टाविषे दृश्य है, सो भ्रमरूप है, इसीते जडरूप है, जब द्रष्टा दृश्यको देखता है, तब दृश्य भासता है, द्रष्टत्वभाव नहीं भासता, अरु जब द्रष्टा अपने स्वभावविषे स्थित होता है, तब दृश्य नहीं भासता, जैसे जबलग भूषणबुद्धि होती है तबलग स्वर्ण नहीं भासता भूषणही भासता है, अरु जब सुवर्णका ज्ञान होता है, तब सुवर्णही भासता है भूषण नहीं भासता, अरु एक सत्ताविषे दोनों नहीं सिद्ध होते जैसे अधकारविषे पुरुष देखिकारि तिसविषे पशुत्व भासै, तब जबलग पशुबुद्धि होती है, तबलग पुरुषका निश्चय नहीं होता, अरु जब निश्चयकरिकै पुरुष जाना तब बहुरि पशुबुद्धि नहीं रहती, तैसे जब द्रष्टा दृश्यको देखता है, तब द्रष्टाभाव नहीं दीखता, दृश्यही भासता है, जैसे जेवरीके ज्ञानते सर्पका अभाव हो जाता है, तैसे बोधकरिकै दृश्यका अभाव होता है, तब एकही परमात्मसत्ता भासती है, द्रष्टासंज्ञा भी नहीं रहती, जैसे दूसरेकी अपेक्षाकरिकै एक कहाता है, दूसरेके अभाव हुए एक कहना भी नहीं रहता, तैसे दृश्यके अभाव हुए द्रष्टा कहना नहीं रहता, शुद्ध संवितपद मात्र शेष रहता है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, जैसे दीपक पदार्थोंको प्रकाशता है, तैसे द्रष्टा, दर्शन अरु दृश्यको प्रकाशता है, अरु बोधकरिकै मातृ, मान, मेय त्रिपुटी लीन हो जाती हैं, जैसे सुवर्णके जाननेते भूषणकल्पनाका अभाव हो जाताहै, तैसे ज्ञानकरिकै त्रिपुटीका अभाव हो जाता है, केवल शुद्ध अद्वैतरूप रहता है ॥ हे राक्षसी ! परम अणु जो अत्यंत निस्वादरूप है, सो सर्व स्वादोंको उपजाता है, जहां रससहित होता है, तहां चिद्अणुकरिकै होता है, जैसे आदर्शविना प्रतिबिंब नहीं होता, तैसे सब स्वाद चिद्अणुविना नहीं होते, सबको रस देनेहारा चिद्अणु है, सर्व आत्मभावकरिकै सबका अधिष्ठान

है, अरु सूक्ष्मते सूक्ष्म है ताते निस्वाद है, सोई चिद्अणु अपने गोप करणेको समर्थ नहीं, अरु सब जगतको ढांप रक्खा है, आप किसीकरि आच्छादा नहीं जाता, सो सुन जो चिदाकाशरूप है, अरु सब पदार्थोंको सत्ता देनेहारा है, अरु सबका आश्रयभूत है, जैसे घासके वनविषे हस्ती नहीं छिपता, तैसे आत्मा किसी पदार्थकरि नहीं छिपता ॥ हे राक्षसी! जिसकरि सब पदार्थ सिद्ध होते हैं, अरु सदा प्रकाशरूप है, सो मूर्खोंको नहीं भासता, यह आश्चर्य है, सो अनुभवरूप है, यह सब जगत् तिसहीकरि जीता है, जैसे वसतऋतुकरि फूल फल टास पत्र फूलते हैं, तैसे सब जगत आत्माकरि फूलता है, वही चिदात्मा जगत्रूप होइकै भासता है, अरु सर्वात्मभावकरिकै सर्व तिसके अवयव परमार्थ निरवयवरूप निराकाररूप है, कछु तिसविषे उदय नहीं भया ॥ हे राक्षसी! एक निमेषके अबोधकरिकै चिद्अणुविषे अनेक कल्पोंका अनुभव होता है, जैसे एक क्षणके स्वप्नविषे आपको बालक बहुरि वृद्ध अवस्था देखने लगता है, अरु तीनों कल्पोंविषे जो निमेष है, तिसविषे अनेक कल्प व्यतीत होते हैं, काहेते जो अधिष्ठान सर्वशक्तिमान् है, जैसा संवेदन जहां फुरता है, तैसा रूप तहां होइ भासता है, जैसे स्वप्नविषे अभोक्ताको भोक्तृत्वका अनुभव होता है, तैसे निमिषविषे कल्पका अनुभव होता है, वासनाकरि आविष्ट हुआ अभोक्ताही आपको भोक्ता देखता है जैसे स्वप्नविषे अपना मरण प्रत्यक्ष देखता है, तैसे यह जगत्भ्रम भासता है, जैसे फुरण जहां दृढ होता है, तैसा होइकरि तहाँ भासताहै ॥ हे राक्षसी! जेते कछु आकार भासते हैं, सो भ्रांतिमात्र हैं, जैसे निर्मल आकाशविषे नीलता भासती है, तैसेही आत्माविषे विश्व भासताहै आत्मा सर्वगत है, अरु सबका अनुभवरूप है ॥ हे राक्षसी! तिसविषे व्याप्यव्यापकभाव भी नहीं, काहेते जो सर्व आत्मा है, अरु सर्वरूप भी वही है, जब शुद्ध चित्तसंवितविषे संवेदन फुरता है, तब पृथक् पृथक् भावको चेतता है, इच्छाकरिकै जिस पदार्थकी उपलब्धि होती है, तिसविषे व्याप्यव्यापकभाव कल्पना होती है, वस्तुते जो इच्छा है, सोई पदार्थ भया, जैसे जलविषे द्रवता होती है, तिसकरि तरंग फेन बुद्बुदे होते

है, सो जलरूप है, जलते इतर तो कछु नहीं, तैसे इच्छाकरि उपजे पदार्थ आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं, आत्मा देश काल वस्तुओंके परिच्छेदते रहित है, केवल शुद्ध चिन्मात्र है, अरु सर्वरूप होइकरि स्थित भया है, सवका अनुभव भी तिसविषे भया है, सो तो शुद्ध सत्तामात्र है, तिसविषे द्वैतकल्पना कैसे कहिये ॥ हे राक्षसी ! जव कछु द्वैत होता है, तव एक भी होता है, जो द्वैतही नहीं तो एक कैसे कहिये जैसे धूपकी अपेक्षाकरि छाया है, अरु छायाकी अपेक्षाकरि धूप है, तैसे एककी अपेक्षाकरि द्वैत कहाता है, इस कल्पनाते रहित है, सो चिन्मात्ररूप है, अरु जगत् भी तिसते व्यतिरिक्त नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं ॥ हे राक्षसी ! नानाप्रकारके आरंभ दृष्ट आते हैं, तो भी आत्मसत्ता सम है ॥ हे राक्षसी ! जव इसको सम्यक् वोध होता है, तव द्वैत भी अद्वैतरूप भासता है, काहेते कि अज्ञानकरि द्वैतकल्पना होती है, वास्तव कछु नहीं, अज्ञानके अभावते द्वैतका भी अभाव हो जाता है, वास्तवते ब्रह्म अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदताविषे कछु भेद नहीं जैसे आकाशविषे अरु शून्यताविषे कछु भेद नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं ॥ हे राक्षसी ! द्वैत अरु अद्वैत जानना दुःखका कारण है, द्वैत अद्वैतकी कल्पनाते रहित होना इसीको परमपद कहते हैं, अरु दृष्टारूप जो जगत है, सो चिद्‌परमाणुविषे स्थित है, तिसविषे सुमेरु आदिक स्थित है, ताते वड़ा आश्चर्य है, मायाही महा आश्चर्य है, सो चिद्‌परमअणुविषे त्रिलोकी परंपरा स्थित है, इसीते असंभवरूप मायामय है, जैसे वीजविषे वृक्ष स्थित है, तैसे चिद्‌अणुविषे जगत् स्थित है, जैसे शाखा पत्र फूल फलकरि वीज अपने वीजत्वको नहीं त्यागता अरु अखंड रहता है, तैसे चिद्‌अणुके अंतरजगत्‌का विस्तार है, अरु अणुत्वभावको नहीं त्यागता, अखंडही रहता है ॥ हे राक्षसी ! वीज भी परिणामकरिकै वृक्षभावको प्राप्त होता है, अरु चिद्‌अणु परिणामकरिकै जगत्‌रूप होता है, चिद्‌अणुका किंचनरूप है, चिद्‌अणुही ऐसे दिखाई देता है, वास्तवते न द्वैतरूप है, न अद्वैत है, न वीज है, न अंकुर है, न

स्थूल है, न सूक्ष्म है, न कछु उपजा है, न नष्ट होता है, न अस्ति है, न नास्ति है, न सम है, न असम है, न जगत् है, न अजगत् है, केवल चिदानन्द आत्मसत्ता अचिंत्य चिन्मात्र अपने आपविषे स्थित है, सोई सर्वात्मा है, जैसी जैसी भावना होती है, तैसे तैसे हो भासता है ॥ हे राक्षसी ! वह अन उदयही संवेदनके वशते उदय होकरि भासता है, जैसे बीजते वृक्ष अनन्यरूप अनेक होइ भासता है, तैसे एक आत्मा अनेकरूप होइ भासता है, न कछु उदय हुआ है, न मिटता है ॥ हे राक्षसी ! तिस चिद्अणुते भीहकी ततु सुमेरुकी नाईं स्थूल है, जैसे भीहकी ततुते सुमेरु स्थूल है, तैसे चिद्अणुते भीहकी तंतु स्थूल है, अरु दृश्यरूप है, अरु चिद्अणु दृश्य नहीं, मनसहित षट् इंद्रियोंका विषय नहीं, इस कारणते भीहकी ततुते सूक्ष्म है, तिस चिद्अणुविषे अनत सुमेरु आदिक स्थित है, सो क्या रूप है, जैसे आकाशविषे शून्यता होती है, तैसे आत्माविषे जगत् है ॥ हे राक्षसी ! जिसको आत्माका बोध हुआ है, तिसको जगत सुषुप्तिकी नाईं होता है, सो आत्मसत्ता सदा अद्वैत-रूप है, अरु परिणामते रहित है, तिसविषे मुक्त पुरुष सदा स्थित है, परमार्थते जगत् भी ब्रह्मरूप है, भिन्न भाव कछु नहीं ॥ इति श्रीयो० उत्पत्ति० सूच्युपाख्याने परमार्थनिरूपणनाम सप्तपचाशत्तमः सर्गः ५७॥

अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ५८

राक्षसीसुहृदतावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार राजाके मुखते श्रवण करिके कर्कटीने वनके मर्कटीरूप जीवोंके मारनेकी चपलताका त्याग किया, अरु अंतरते शीतल भई, अरु विश्रामको प्राप्त भई, अरु अतरते तमता मिट गई, अरु परमानंदको प्राप्त भई, जैसे वर्षाकालविषे मोरनी प्रसन्न होतीहै, अरु जैसे चद्रमाको देखिके चद्रवंशी कमल प्रफुल्लित होता है, जैसे मेघके शब्दकरि बगली गर्भवान् होती है, तैसे राजाके वचन श्रवण करिके

कर्कटी परमानंदको प्राप्त भई ॥ राक्षस्युवाच ॥ बड़ा आश्चर्य है । बडा आश्चर्य है। हे राजा। तुमने महापावन वचन कहेहैं,ताते तुम्हारा बोध मैंने विमल देखा है, अरु अमृतसार है, अरु बोधरूपी सूर्य है, अरु शीतल है, समरसकरि पूर्ण है, अरु, शुद्ध है, रागद्वेष आदिक मलते रहित है, जैसे पूर्णिमाका चंद्रमा शीतल अमृतकरि पूर्ण शुद्ध होता है, तैसे तुम्हारा बोध है, विवेकी जगत्‌विषे पूज्य है, तुम्हारे वचनोंकरि मेरी बुद्धि प्रफुल्लित हो आई है, जैसे चंद्रमाको देखिके कमलिनी प्रफुल्लित हो आती है, जैसे फूलोंके साथ मिलिकरि वायु सुगंधित होता है, जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे संतोंकी संगतिकरि बुद्धि सुखको प्राप्त होती है ॥ हे राजन् । वह कौन है, जो दीपक हाथविषे होवे, अरु टोयेविषे गिरे ? तैसे वह कौन है, जो संतोंके संगकरि दुःखी रहे, वह कौन है, जिसके हाथविषे दीपक होवे,अरु तमको देखै,तैसे वह कौन है,जो संतोंकी संगति करै, अरु दुःखी रहै,संतोंके संगकरि सबही दुःख नष्ट होते हैं ॥ हे राजन् । तुम जो इस वनविषे आये हो, सो क्या प्रयोजन है ? तुम तौ पूजनेयोग्य हो, अपना प्रयोजन कहो ॥ राजोवाच ॥ हे राक्षसी। मेरे नगरविषे जो मनुष्य रहते हैं, तिनको एक विषूचिका रोग आनि लगा है, तिस विषूचिकाकरि वह बहुत कष्टमान भये हैं, औषध भी बहुत करि रहे हैं, परंतु दुःख दूर नहीं होता, अरु हमने सुना है, कि एक राक्षसी है, वही जीवोंको कष्ट देती है, अरु तिसका मंत्र भी है तिस मंत्रके पढ़ेते निवृत्त हो जाती है, तिस तुमसरीखेके मारने निमित्त मैं रात्रिको वीरयात्रा करने निकसा हौं ॥ हे राक्षसी ! जो वह राक्षसी है सो तूही है, तौ हमारा तुम्हारा संवाद भी हुआ है, तिसका अंगीकार करिके प्राणियोंकी हिंसा करनी छोड़ देहु, किसीको कष्ट न देहु ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! तुमने सत्य कहा है, अब मैं हिंसाधर्मका त्याग किया है, किसी जीवको न मारौंगी ॥ राजोवाच ॥ हे राक्षसी ! तैंने कहा कि मैं अब किसी जीवको न मारौंगी, सो तेरा आहार तौ जीव है, जीवोंको मारेविना तेरे शरीरका निर्वाह कैसे होवैगा ? ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! छः सौ वर्ष मैं समाधिविषे स्थित रही थी,

तिसते उपरात समाधि खुली, तव क्षुधा लगी, अव बहुरि हिमालय पर्व-तकी कदराविषे जाइकारि निश्चल समाधिविषे जुडौंगी, जैसे मूर्ति लिखी होती है, तैसी स्थित होऊंगी, जव समाधिते उतरोंगी, तव अमृतकी धारणाविषे विश्राम करोंगी, जव तिसते उतरौंगी, तव शरीरका त्याग करोंगी, परतु हिंसा न करोंगी ॥ हे राजन्! जिसप्रकार मैं हिंसाधर्मको अंगीकार किया है, सो सुन ॥ मुझको क्षुधा जव वडी लगी, तव तिसके निवारणके अर्थ हिमालय पर्वतके उत्तर शिखरऊपर एक वन है, तिसाविषे एक सोनेकी शिला है, तिसके पास मैं लोहके स्तभकी नाई आकाश साथ जीवोंके नाशनिमित्त तप करने लगी, जव वहुत वर्ष व्यतीत भये, तव मनवांछित वर मुझको ब्रह्माजीने दिया, तव मेरे दो शरीर भये, एक आधारभूत सूर्यकी नाई, अरु दूसरा पुर्यष्टकरूप भया, तव मै विपूचिका नाम राक्षसी भई, तिस शरीरसाथ मैं अनेक जीवोंको भोजन करौं, अतर जाय प्रवेश करौं, परतु ब्रह्माजीने मुझको कहा है, जो गुणवान् होवेंगे,तिनपर तेरा वल न चलैगा,अरु जहां ॐमत्र पढैगे,तहा भी तेरा वल न चलैगा तू निवृत्त हो जावैगी ॥ हेराजन्! वही मन्त्र-का उपदेश अव तुम भी अगीकार करौ,तिस मत्रके पाठकारि सवके व्याधि रोग नष्ट होवेंगे, ब्रह्माजीका जो उपदेशहै,तिसको तुम नदीके तटपर जाइ-कारि पवित्र होइकारि शीघ्रही ग्रहण करौ, तिसके पाठकारि तेरी प्रजाका दु.ख नष्ट हो जावैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार जव अर्ध-रात्रिके समय राक्षसीने कहा, तव निकटही नदीके तीरपर राजा, मत्री, अरु राक्षसी तीनों गये, अरु अन्वयव्यतिरेककारिकै आपसमें सुहृद् भये, तीनों पवित्र होइकारि नदीके तीरपर वैठे, तव जो मत्र राक्षसीको ब्रह्माजीने उपदेश किया था, सोई मत्र विपूचिका प्रीतिसयुक्त राजाको उपदेश करती भई, जिसके जपनेकारि कार्य सिद्ध होवे, तिस मंत्रका क्रमकारि उपदेश किया, अरु चलने लगी. तव राजाने कहा ॥ हे महादेवी! तू हमारी गुरु है, तुम्हारे विद्यमान हम कछु प्रार्थना करते हैं, सो अंगीकार करना जो महापुरुष हैं, तिनका सुंदर सुहृद्पना वढ़ता जाता है, अरु तुम्हारा शरीर भी इच्छाचारी है, ताते लघु शरीरको धारो, मनके हरनेहारे भूषण वस्त्र-

सयुक्त स्त्रीका शरीर धारिके कोई काल हमारे नगरविषे निवास करो ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! मैं तो लघु आकार भी धरौंगी, परंतु मेरे भोजन देनेको तुम समर्थ न होहुगे, जो लघु स्त्रीका शरीर धरौंगी, तौ भी मेरा स्वभाव राक्षसीका है, इसको तृप्त करना सामान्य जनोंकी नाईं तौ है नहीं, जैसे कछु शरीरोंका स्वभाव है सो सृष्टिपर्यंत तैसेही रहता है, अन्यथा नहीं होता ॥ राजोवाच ॥ हे कल्याणरूपी ! तू स्त्रीसमान शरीर धारिकै हमारे नगरविषे चलकरि रहु, जो चोर पापी मेरे मंडलविषे आवैगे, सो हम तेरे विद्यमान करैंगे, तब तू स्त्रीरूपको त्यागिकरि राक्षसीशरीरसाथ तिनको ले जाओ, अरु एकांत ठौर बैठ हिमालयकी कंदराविषे जाइके भोजन करना, काहेते कि, बडे भोजन करनेवालेको एकांतमें खाना सुखरूप है, तिनको भोजनकरिके तृप्त होवैगी, तब सोय रहना, जब निद्राते जागै तब समाधिविषे स्थित होना, जब समाधिते उतरै तब बहुरि हमारे पास आना, हम तेरे निमित्त बंदीजन इकट्ठेकरि रक्खैंगे, तिनको ले जाना और भोजन करना, जो धर्मके निमित्त हिंसा है, सो हिंसा पापरूप नहीं, अरु जिसकी हिंसा करता है, तिसका मरण भी नहीं, उसके ऊपर दया करना है, काहेते कि, वह पाप करनेते छूटता है ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! तुम युक्त वचन कहे हैं, मैं स्त्रीका शरीर धरकरि तुम्हारे साथ चलती हौं, युक्तिपूर्वक वचनको सब कोऊ मानते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ [illegible] कहिकरि राक्षसी
महासुंदररूप स्त्रीका शरीर धारि [illegible] कंकण [illegible] नानाप्रकारके
भूषण धारे, अरु पट वस्त्र बना [illegible] राजा अरु
मंत्री आगे चले [illegible] अरु स्त्री [illegible] रात्रिके
समय राजा [illegible]
तीनों जाय वै [illegible]
तब स [illegible]
स्त्रियोंका [illegible]
लगे, जब [illegible]

उसने राक्षसीका शरीर धारिकै उनके भुजामडलविषे लिये जैसे मेघ बूँदोंको धारता है, तैसे धारिकरि हिमालयके शिखरको चली, जैसे किसी दरिद्रीको स्वर्ण प्राप्त होता है, तब प्रसन्न होता है, तैसे वह प्रसन्न भई, अरु लेकरि हिमालयके शिखरको गई, तृप्त होइके भोजन किया, अरु सुखी होइके सोइ रही, दो दिनपर्यंत सोई रही, उपरांत जागिकै समाधिविषे जुरी, पंच वर्षपर्यंत जुरी रही, तिसते जब उतरी तब बहुरि राजाके पास आई, इसही प्रकार जब आवै तब वह राजा पूजा करै, जेते कछु दुष्ट जन इकट्ठे किये होवै, सो तिसके विद्यमान करै, वह ले जावै, अरु हिमालयकी कंदराविषे भोजन करै, भोजन करिकै बहुरि ध्यानविषे जुरै, जब ध्यानते उतरै, तब बहुरि तहां आवै, बहुरि ले जावै ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जीवन्मुक्त होइकरि वह राक्षसी प्राकृत स्वभावको करते २ अनेक वर्ष व्यतीत भये, तब राजा विदेहमुक्त हुआ, बहुरि जो कोऊ उस मडलका राजा होवै, तिस राजासाथ भी राक्षसीकी सुहृदता होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीसुहृदतावर्णन नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.

सूच्याख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब राक्षसी आवै, तब किरात [illegible] राजा पूर्वकी नाई उसकी पूजा करै, अरु जो कछु उनकी प्रजाविषे [illegible] होवै और विपूचिका अथवा कोई रोग होवै, सो राक्षसी निवृत्त [illegible] देवै, इसप्रकार अनेक वर्ष व्यतीत भये, तब एकबार उसको [illegible] जुरे बहुत वर्ष व्यतीत भये, तब किरातदेशका राजा वाका [illegible] रने अर्थ एक तिसकी प्रतिमा ऊँच स्थानपर स्थापन करत [illegible] प्रतिमाका एक नाम कंदरादेवी, दूसरा नाम [illegible] करकै पूजा करनेलगे, तिसकरि भी तिसका कार्य [illegible] रामजी ! तिस प्रतिमाके विषे वह देवी आप [illegible] कोऊ जिस फलके निमित्त प्रतिमाकी पूजा करै,

सयुक्त स्त्रीका शरीर धारिकै कोई काल हमारे नगरविषे निवास करो ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! मैं तौ लघु आकार भी धरौंगी, परंतु मेरे भोजन देनेको तुम समर्थ न होहुगे, जो लघु स्त्रीका शरीर धरौंगी, तौ भी मेरा स्वभाव राक्षसीका है, इसको तृप्त करना सामान्य जनोंकी नाईं तौ है नहीं, जैसे कछु शरीरोंका स्वभाव है सो सृष्टिपर्यंत तैसेही रहता है, अन्यथा नहीं होता ॥ राजोवाच ॥ हे कल्याणरूपी ! तू स्त्रीसमान शरीर धारिकै हमारे नगरविषे चलकरि रहु, जो घोर पापी मेरे मंडलविषे आवैंगे, सो हम तेरे विद्यमान करैंगे, तब तू स्त्रीरूपको त्यागिकरि राक्षसीशरीरसाथ तिनको ले जाओ, अरु एकांत ठौर बैठ हिमालयकी कंदराविषे जाइके भोजन करना, काहेते कि, बडे भोजन करनेवालेको एकांतमें खाना सुखरूप है, तिनको भोजनकरिकै तृप्त होवैगी, तब सोय रहना, जब निद्राते जागै तब समाधिविषे स्थित होना, जब समाधिते उतरै तब बहुरि हमारे पास आना, हम तेरे निमित्त बंदीजन इकट्ठेकरि रक्खैंगे, तिनको ले जाना और भोजन करना, जो धर्मके निमित्त हिंसा है, सो हिंसा पापरूप नहीं, अरु जिसकी हिंसा करता है, तिसका मरण भी नहीं, उसके ऊपर दया करना है, काहेते कि, वह पाप करनेते छूटता है ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! तुम युक्त वचन कहे हैं, मैं स्त्रीका शरीर धरकरि तुम्हारे साथ चलती हौं, युक्तिपूर्वक वचनको सब कोऊ मानते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकरि राक्षसी महासुंदररूप स्त्रीका शरीर धारिकै बहुत कंकण आदिकके नानाप्रकारके भूषण धारे, अरु पट वस्त्र बनाइकरि राजाके साथ चली, राजा अरु मंत्री आगे चले जावैं, अरु स्त्री पाछे चली जावै, तब तिसी रात्रिके समय राजा तिसको अपने ठाममें ले आया, और एकांत स्थानविषे तीनों जाय बैठे, रात्रिको परस्पर चर्चा करते रहे, जब प्रातःकाल हुआ, तब सौभाग्यवती स्त्री राक्षसी, राजाके अंतःपुरविषे जाइ बैठी, जो कछु स्त्रियोंका व्यवहार है, सो करती रहे, राजा अरु मंत्री अपने व्यवहारविषे लगे, जब षट्दिन व्यतीत भये, तब राजाके मंडलविषे तीन सहस्र चोर बांधे हुए थे वह सबही राजाने तिस कर्कटीके विद्यमान किये, तब

उसने राक्षसीका शरीर धारिकै उनके भुजामंडलविषे लिये जैसे मेघ बूँदोंको धारता है, तैसे धारिकरि हिमालयके शिखरको चली, जैसे किसी दरिद्रीको स्वर्ण प्राप्त होता है, तब प्रसन्न होता है, तैसे वह प्रसन्न भई, अरु लेकरि हिमालयके शिखरको गई, तृप्त होइके भोजन किया, अरु सुखी होइके सोइ रही, दो दिनपर्यंत सोई रही, उपरांत जागिके समाधिविषे जुरी, पंच वर्षपर्यंत जुरी रही, तिसते जब उतरी तब बहुरि राजाके पास आई, इसही प्रकार जब आवै तब वह राजा पूजा करै, जेते कछु दुष्ट जन इकट्ठे किये होवैं, सो तिसके विद्यमान करै, वह ले जावै, अरु हिमालयकी कंदराविषे भोजन करै, भोजन करिकै बहुरि ध्यानविषे जुरै, जब ध्यानते उतरै, तब बहुरि तहां आवै, बहुरि ले जावै ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जीवन्मुक्त होइकरि वह राक्षसी प्राकृत स्वभावको करते २ अनेक वर्ष व्यतीत भये, तब राजा विदेहमुक्त हुआ, बहुरि जो कोऊ उस मंडलका राजा होवै, तिस राजासाथ भी राक्षसीकी सुहृदता होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीसुहृदतावर्णन नाम अष्टपचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.

सूच्याख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब राक्षसी आवै, तब किरात देशका राजा पूर्वकी नाई उसकी पूजा करै, अरु जो कछु उनकी प्रजाविषे उत्पात होवै और विषूचिका अथवा कोई रोग होवै, सो राक्षसी निवृत्त करि देवै, इसप्रकार अनेक वर्ष व्यतीत भये, तब एकबार उसको ध्यानविषे जुरे बहुत वर्ष व्यतीत भये, तब किरातदेशका राजा वाका दुःख निवारने अर्थ एक तिसकी प्रतिमा ऊँच स्थानपर स्थापन करत भया, तिस प्रतिमाका एक नाम कंदरादेवी, दूसरा नाम मंगलादेवी, तिसका ध्यान करके पूजा करनेलगे, तिसकरि भी तिसका कार्य सिद्ध होने लगा ॥ हे रामजी ! तिस प्रतिमाके विषे वह देवी आप निवास करती भई, जो कोऊ जिस फलके निमित्त प्रतिमाकी पूजा करै, तिसका कार्य सिद्ध होवै

संयुक्त स्त्रीका शरीर धारिके कोई काल हमारे नगरविषे निवास करो ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! मैं तौ लघु आकार भी धरौंगी, परंतु मेरे भोजन देनेको तुम समर्थ न होहुगे, जो लघु स्त्रीका शरीर धरौंगी, तौ भी मेरा स्वभाव राक्षसीका है, इसको तृप्त करना सामान्य जनोंकी नाई तौ है नहीं, जैसे कछु शरीरोंका स्वभाव है सो सृष्टिपर्यंत तैसेही रहता है, अन्यथा नहीं होता ॥ राजोवाच ॥ हे कल्याणरूपी ! तू स्त्रीसमान शरीर धारिके हमारे नगरविषे चलकरि रहु, जो चोर पापी मेरे मंडलविषे आवैगे; सो हम तेरे विद्यमान करैंगे, तब तू स्त्रीरूपको त्यागिकरि राक्षसीशरीरसाथ तिनको ले जाओ, अरु एकांत ठौर बैठ हिमालयकी कंदराविषे जाइके भोजन करना, काहेते कि, बडे भोजन करनेवालेको एकांतमें खाना सुखरूप है, तिनको भोजनकरिके तृप्त होवैगी, तब सोय रहना, जब निद्राते जागै तब समाधिविषे स्थित होना, जब समाधिते उतरे तब बहुरि हमारे पास आना, हम तेरे निमित्त बंदीजन इकट्ठेकरि रक्खैंगे, तिनको ले जाना और भोजन करना, जो धर्मके निमित्त हिंसा है, सो हिंसा पापरूप नहीं, अरु जिसकी हिंसा करता है, तिसका मरण भी नहीं, उसके ऊपर दया करना है, काहेते कि, वह पाप करनेते छूटता है ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! तुम युक्त वचन कहे हैं, मैं स्त्रीका शरीर धरकरि तुम्हारे साथ चलती हौं, युक्तिपूर्वक वचनको सब कोऊ मानते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकरि राक्षसी महासुंदररूप स्त्रीका शरीर धारिकै बहुत कंकण आदिकके नानाप्रकारके भूषण धारे, अरु पट वस्त्र बनाइकरि राजाके साथ चली, राजा अरु मंत्री आगे चले जावैं, अरु स्त्री पाछे चली जावै, तब तिसी रात्रिके समय राजा तिसको अपने ठाममें ले आया, और एकांत स्थानविषे तीनों जाय बैठे, रात्रिको परस्पर चर्चा करते रहे, जब प्रातःकाल हुआ, तब सौभाग्यवती स्त्री राक्षसी, राजाके अंतःपुरविषे जाइ बैठी, जो कछु स्त्रियोंका व्यवहार है, सो करती रहे, राजा अरु मंत्री अपने व्यवहारविषे लगे, जब षट्दिन व्यतीत भये, तब राजाके मंडलविषे तीन सहस्र चोर बांधे हुए थे वह सबही राजाने तिस कर्कटीके विद्यमान किये, तब

उसने राक्षसीका शरीर धारिकै उनके भुजामंडलविषे लिये जैसे मेघ बूँदोंको धारता है, तैसे धारिकरि हिमालयके शिखरको चली, जैसे किसी दरिद्रीको स्वर्ण प्राप्त होता है, तब प्रसन्न होता है, तैसे वह प्रसन्न भई, अरु लेकरि हिमालयके शिखरको गई, तृप्त होइके भोजन किया, अरु सुखी होइके सोइ रही, दो दिनपर्यंत सोई रही, उपरात जागिकै समाधिविषे जुरी, पंच वर्षपर्यंत जुरी रही, तिसते जब उतरी तब बहुरि राजाके पास आई, इसही प्रकार जब आवै तब वह राजा पूजा करै, जेते कछु दुष्ट जन इकट्ठे किये होवैं, सो तिसके विद्यमान करै, वह ले जावै, अरु हिमालयकी कंदराविषे भोजन करै, भोजन करिकै बहुरि ध्यानविषे जुरै, जब ध्यानते उतरै, तब बहुरि तहां आवै, बहुरि ले जावै ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जीवन्मुक्त होइकरि वह राक्षसी प्राकृत स्वभावको करते २ अनेक वर्ष व्यतीत भये, तब राजा विदेहमुक्त हुआ, बहुरि जो कोऊ उस मंडलका राजा होवै, तिस राजासाथ भी राक्षसीकी सुहृदता होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीसुहृदतावर्णन नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.

सूच्याख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब राक्षसी आवै, तब किरात देशका राजा पूर्वकी नाई उसकी पूजा करै, अरु जो कछु उनकी प्रजाविषे उत्पात होवै और विषूचिका अथवा कोई रोग होवै, सो राक्षसी निवृत्त करि देवै, इसप्रकार अनेक वर्ष व्यतीत भये, तब एकबार उसको ध्यानविषे जुरे बहुत वर्ष व्यतीत भये, तब किरातदेशका राजा वाका दुःख निवारने अर्थ एक तिसकी प्रतिमा ऊँच स्थानपर स्थापन करत भया, तिस प्रतिमाका एक नाम कंदरादेवी, दूसरा नाम मंगलादेवी, तिसका ध्यान करके पूजा करनेलगे, तिसकरि भी तिसका कार्य सिद्ध होने लगा ॥ हे रामजी ! तिस प्रतिमाके विषे वह देवी आप निवास करती भई, जो कोऊ जिस फलके निमित्त प्रतिमाकी पूजा करै, तिसका कार्य सिद्ध होवै

संयुक्त स्त्रीका शरीर धारिकै कोई काल हमारे नगरविषे निवास करो ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन्! मैं तौ लघु आकार भी धरौंगी, परंतु मेरे भोजन देनेको तुम समर्थ न होहुगे, जो लघु स्त्रीका शरीर धरौंगी, तौ भी मेरा स्वभाव राक्षसीका है, इसको तृप्त करना सामान्य जनोंकी नाई तौ है नहीं, जैसे कछु शरीरोंका स्वभाव है सो सृष्टिपर्यंत तैसेही रहता है, अन्यथा नहीं होता ॥ राजोवाच ॥ हे कल्याणरूपी! तू स्त्रीसमान शरीर धारिकै हमारे नगरविषे चलकरि रहु, जो चोर पापी मेरे मंडलविषे आवैंगे, सो हम तेरे विद्यमान करेंगे, तब तू स्त्रीरूपको त्यागिकरि राक्षसीशरीरसाथ तिनको ले जाओ, अरु एकांत ठौर बैठ हिमालयकी कदराविषे जाइके भोजन करना, काहेते कि, बडे भोजन करनेवालेको एकांतमें खाना सुखरूप है, तिनको भोजनकरिकै तृप्त होवैगी, तब सोय रहना, जब निद्राते जागे तब समाधिविषे स्थित होना, जब समाधिते उतरे तब बहुरि हमारे पास आना, हम तेरे निमित्त बंदीजन इकट्ठेकरि रक्खैंगे, तिनको ले जाना और भोजन करना, जो धर्मके निमित्त हिंसा है, सो हिंसा पापरूप नहीं, अरु जिसकी हिंसा करता है, तिसका मरण भी नहीं, उसके ऊपर दया करना है, काहेते कि, वह पाप करनेते छूटता है ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन्! तुम युक्त वचन कहे हैं, मैं स्त्रीका शरीर धरकरि तुम्हारे साथ चलती हौं, युक्तिपूर्वक वचनको सब कोऊ मानते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार कहिकरि राक्षसी महासुंदररूप स्त्रीका शरीर धारिकै बहुत कंकण आदिकके नानाप्रकारके भूषण धारे, अरु पट वस्त्र बनाइकरि राजाके साथ चली, राजा अरु मंत्री आगे चले जावैं, अरु स्त्री पाछे चली जावै, तब तिसी रात्रिके समय राजा तिसको अपने ठाममें ले आया, और एकांत स्थानविषे तीनों जाय बैठे, रात्रिको परस्पर चर्चा करते रहे, जब प्रातःकाल हुआ, तब सौभाग्यवती स्त्री राक्षसी, राजाके अंतःपुरविषे जाइ बैठी, जो कछु स्त्रियोंका व्यवहार है, सो करती रहे, राजा अरु मंत्री अपने व्यवहारविषे लगे, जब षट्दिन व्यतीत भये, तब राजाके मंडलविषे तीन सहस्र चोर बांधे हुए थे वह सबही राजाने तिस कर्कटीके विद्यमान किये, तब

स्थित है, तिसविषे जैसा जैसा चित्तस्पद दृढ होता है, तैसा रूप होइकरि भासता है, जैसे नर रतिकाको इकट्ठी करिकै तिसविषे अग्निकी भावना करते है, अरु तापते है तब उनका शीत निवृत्त होता है, तैसे सम स्थिर शातरूप आत्माविषे जब जगत्‌की भावना फुरती है, तब नानाप्रकारका जगत् भासता है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां अन उदयही शिल्पीके मनविषे उदयकी नाई भासती है, तैसे भावनाके वशते जगत् होइ भासता है, जैसे बीजविषे पत्र फूल टास गुच्छ अनन्यरूप, होते हैं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् अनन्यरूप है, जैसे बीजवृक्षविषे कछु भेद नहीं,तैसे ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, अविचारकरिकै भेद भासता है,विचार कियेते जगत्‌भेद नष्ट हो जाताहै ॥ हेरामजी । अब यह विचार नहीं करना कि, कैसे उपजा है, कहासे आया है, अरु कबका हुआ है जैसे हुआ तैसे हुआ, अब इसके निवृत्तिका उपाय करिये, जब तू जागैगा तब हृदयकी चिज्जड ग्रंथि टूट जावैगी, शब्द अरु अर्थकी जेती कछु कल्पना उठती हैं, सो मेरे वचनोंकरि स्वरूप स्थित भयेते नष्ट हो जावैगी ॥ हे रामजी । यह सब जगत् अनर्थरूप चित्तते उपजा है, सो मेरे वचनोंके श्रवण कियेते शांत हो जावैगा, इसविषे संशय नहीं करना, सब जगत् ब्रह्मते उपजा है, अरु सब ब्रह्मही स्वरूप है, जब तू ज्ञानविषे जागैगा तब ज्योंका त्योंही जानैगा ॥ रामउवाच ॥ हेभगवन् । जो जिसते होता है सो तिसते व्यतिरेक होता है, अर्थ यह पचमीविभक्तिकरि जो निरूपण करता है, सो व्यतिरेकके अर्थ है, जैसे कुलालते घट होता है सो कुलालते भिन्न होता है, तुम कैसे कहते हौ, कि सब जगत् ब्रह्मते उपजा है, अरु ब्रह्मस्वरूप है ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी। यह जगत् ब्रह्मते उपजाहै, जेते कछु प्रतियोगीसहित शब्द शास्त्रोंने कहे हैं, सो दृश्यविषे है,शास्त्रने उपदेश जतावनेके निमित्त कहे हैं, वास्तव यह शब्द कोऊ नहीं, जैसे किसी बालकको परछाईंविषे वैताल भासता है, अरु कोऊ पूछता है कि, इस बालकको वैतालने किस भागविषे स्थित होइकरि भय दिया है, तिसको कहता है, अमुक ठौरविषे वैतालने भय दिया है, सो व्यवहारके निमित्त उसको कहता है और वैताल तौ वहां कोऊ नहीं, तैसे आत्माके उपदेशनिमित्त भेदकल्पना करी है,

अरु न पूजे तौ दुःखित होवै, जब पूजन करै, तब दुःख नष्ट होवै, तिसका कार्य सिद्ध होवै, तातें जो कछु कोऊ कार्य करने लगै, सो प्रथम मंगलादेवीकी पूजा करै, तब उनका कार्य सिद्ध होवै, अरु विधिकरिकै तिसकी पूजा करै, तिसकरि बहुत प्रसन्न होवै ॥ हे रामजी ! अबलग वही प्रतिमा किरातदेशविषे स्थित है, जिस जिस फलके निमित्त उसकी कोऊ सेवा करता है, तैसा तैसा फल उसको देती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूच्याख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥

षष्टितमः सर्गः ६०.

मनोंकुरोत्पत्तिकथनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह आनंदित कर्कटीका आख्यान जैसे पूर्व व्यतीत भया है, तैसे मैंने तुझको कहा है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! राक्षसीका कृष्णवपु किस निमित्त था, अरु कर्कटी इसका नाम क्यों था ? जैसे हुआ है, तैसे कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह राक्षसोंके कुलकी कन्या थी, सो राक्षसोंका शुक्ल वपु भी होता है, अरु कृष्ण वपु भी होता है, रक्तपीत भी होता है ॥ हे रामजी ! एक जलजंतु कर्कट नाम प्राणी होता है, उसका श्याम आकार होता है, तिसके समान कर्कट नाम राक्षस था, तिसके समान उसकी यह पुत्री भई इस कारणते इसका नाम कर्कटी भया ॥ हे रामजी ! यहां और कर्कटीका प्रयोजन कछु न था, यहां अध्यात्मप्रसंग था, शुद्ध चेतनके निरूपणनिमित्त मैं तुझको कहा है, यह आश्चर्य है, जो असत्‌रूप जगतके पदार्थ हैं, सो सत्‌रूप होइकरि भासते हैं, अरु जो आत्मसत्ता सदा सत्‌रूप है, सो अविद्यमानकी नाईं भासते हैं ॥ हे रामजी ! वस्तुते तौ एक अनादि अनंत परमकारण आत्मसत्ता स्थित है, तिसविषे भावनाके वास्ते जगतरूप भासता है, अरु स्वरूपते अनन्यरूप है, जैसे जल अरु तरंगविषे भिन्नता कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत विषे कछु भिन्नता नहीं, आत्माविषे जगत कछु द्वैतरूप हुआ नहीं, सदा आत्मसत्ता अपने आपहीविषे

स्थित है, तिसविषे जैसा जैसा चित्तस्पद दृढ होता है, तैसा रूप होइ-करि भासता है, जैसे नर रतिकाको इकट्ठी करिकै तिसविषे अग्निकी भावना करते है, अरु तापते है तब उनका शीत निवृत्त होता है, तैसे सम स्थिर शातरूप आत्माविषे जब जगत्की भावना फुरती है, तब नानाप्रकारका जगत् भासता है, जैसे स्तभविषे पुतलिया अन उदयही शिल्पीके मनविषे उदयकी नाई भासती है, तैसे भावनाके वशते जगत् होइ भासता है, जैसे बीजविषे पत्र फूल टास गुच्छ अनन्यरूप, होते हैं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् अनन्यरूप है, जैसे बीजवृक्षविषे कछु भेद नहीं,तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, अविचारकरिकै भेद भासता है,विचार कियेते जगत्भेद नष्ट हो जाताहै ॥ हेरामजी ! अब यह विचार नहीं करना कि, कैसे उपजा है, कहासे आया है, अरु कबका हुआ है जैसे हुआ तैसे हुआ, अब इसके निवृत्तिका उपाय करिये, जब तू जागैगा तब हृदयकी चिज्जड ग्रंथि टूट जावैगी, शब्द अरु अर्थकी जेती कछु कल्पना उठती है, सो मेरे वचनोंकरि स्वरूप स्थित भयेते नष्ट हो जावैगी ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् अनर्थरूप चित्तते उपजा है, सो मेरे वचनोंके श्रवण कियेते शात हो जावैगा, इसविषे संशय नहीं करना, सब जगत् ब्रह्मते उपजा है, अरु सब ब्रह्मही स्वरूप है, जब तू ज्ञानविषे जागैगा तब ज्योंका त्योंही जानैगा ॥ रामउवाच ॥ हेभगवन् ! जो जिसते होता है सो तिसते व्यतिरेक होता है, अर्थ यह पचमीविभक्तिकरि जो निरूपण करता है, सो व्यति-रेकके अर्थ है, जैसे कुलालते घट होता है सो कुलालते भिन्न होता है, तुम कैसे कहते हौ, कि सब जगत् ब्रह्मते उपजा है, अरु ब्रह्मस्वरूप है ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह जगत्ब्रह्मते उपजाहै, जेते कछु प्रतियोगीसहित शब्द शास्त्रोंने कहे हैं, सो दृश्यविषे है,शास्त्रने उपदेश जतावनेके निमित्त कहे हैं, वास्तव यह शब्द कोऊ नहीं, जैसे किसी बालकको परछाईविषे वैताल भासता है, अरु कोऊ पूछता है कि, इस बालकको वैतालने किस भाग-विषे स्थित होइकरि भय दिया है, तिसको कहता है, अमुक ठौरविषे वै-तालने भय दिया है, सो व्यवहारके निमित्त उसको कहता है और वैता-ल तौ वहां कोऊ नहीं, तैसे आत्माके उपदेशनिमित्त भेदकल्पना करी है,

अरु न पूजे तौ दुःखित होवै, जब पूजन करै, तब दुःख नष्ट होवै, तिसका कार्य सिद्ध होवै, ताते जो कछु कोऊ कार्य्य करने लगै, सो प्रथम मंगलादेवीकी पूजा करै, तब उनका कार्य सिद्ध होवै, अरु विधिकरिकै तिसकी पूजा करै, तिसकरि बहुत प्रसन्न होवै ॥ हे रामजी ! अबलग वही प्रतिमा किरातदेशविषे स्थित है, जिस जिस फलके निमित्त उसकी कोऊ सेवा करता है, तैसा तैसा फल उसको देती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूच्याख्यानसमाप्तिवर्णन नाम एकोनषष्टितमः सर्ग ॥५९॥

षष्टितमः सर्ग. ६०.

मनोंकुरोत्पत्तिकथनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह आनंदित कर्कटीका आख्यान जैसे पूर्व व्यतीत भया है, तैसे मैंने तुझको कहा है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! राक्षसीका कृष्णवपु किस निमित्त था, अरु कर्कटी इसका नाम क्यों था ? जैसे हुआ है, तैसे कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह राक्षसोंके कुलकी कन्या थी, सो राक्षसोंका शुक्ल वपु भी होता है, अरु कृष्ण वपु भी होता है, रक्तपीत भी होता है ॥ हे रामजी ! एक जलजंतु कर्कट नाम प्राणी होता है, उसका श्याम आकार होता है, तिसके समान कर्कट नाम राक्षस था, तिसके समान उसकी यह पुत्री भई इस कारणते इसका नाम कर्कटी भया ॥ हे रामजी! यहां और कर्कटीका प्रयोजन कछु नथा, यहां अध्यात्मप्रसंग था, शुद्ध चेतनके निरूपणनिमित्त मैं तुझको कहा है, यह आश्चर्य है, जो असत्‌रूप जगतके पदार्थ हैं, सो सत्‌रूप होकरि भासते हैं, अरु जो आत्मसत्ता सदा सपन्नरूप है, सो अविद्यमानकी नाईं भासते हैं ॥ हे रामजी ! वस्तुते तो एक अनादि अनंत परमकारण आत्मसत्ता स्थित है, तिसविषे भावनाके वास्ते जगतरूप भासता है, अरु स्वरूपते अनन्यरूप है, जैसे जल अरु तरंगविषे भिन्नता कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत् विषे कछु भिन्नता नहीं, आत्माविषे जगत कछु द्वैतरूप हुआ नहीं, सदा आत्मसत्ता अपने आपहीविषे

स्थित है, तिसविषे जैसा जैसा चित्तस्पंद दृढ होता है, तैसा रूप होइ-कारि भासता है, जैसे नर रतिकाको इकट्ठी करिकै तिसविषे अग्निकी भावना करते हैं, अरु तापते हैं तब उनका शीत निवृत्त होता है, तैसे सम स्थिर शांतरूप आत्माविषे जब जगत्की भावना फुरती है, तब नानाप्रकारका जगत् भासता है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां अन उदयही शिल्पीके मनविषे उदयकी नाईं भासती हैं, तैसे भावनाके वशते जगत् होइ भासता है, जैसे बीजविषे पत्र फूल टास गुच्छ अनन्यरूप होते हैं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् अनन्यरूप है, जैसे बीजवृक्षविषे कछु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, अविचारकरिकै भेद भासता है, विचार कियेते जगत्भेद नष्ट हो जाताहै ॥ हेरामजी ! अब यह विचार नहीं करना कि, कैसे उपजा है, कहांसे आया है, अरु कबका हुआ है जैसे हुआ तैसे हुआ, अब इसके निवृत्तिका उपाय करिये, जब तू जागैगा तब हृदयकी चिज्जड ग्रंथि टूट जावैगी, शब्द अरु अर्थकी जेती कछु कल्पना उठती हैं, सो मेरे वचनोंकरि स्वरूप स्थित भयेते नष्ट हो जावैगी ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् अनर्थरूप चित्तते उपजा है, सो मेरे वचनोंके श्रवण कियेते शांत हो जावैगा, इसविषे संशय नहीं करना, सब जगत् ब्रह्मते उपजा है, अरु सब ब्रह्मही स्वरूप है, जब तू ज्ञानविषे जागैगा तब ज्योंका त्योंही जानैगा ॥ रामउवाच ॥ हेभगवन् ! जो जिसते होता है सो तिसते व्यतिरेक होता है, अर्थ यह पंचमीविभक्तिकरि जो निरूपण करता है, सो व्यतिरेकके अर्थ है, जैसे कुलालते घट होता है सो कुलालते भिन्न होता है, तुम कैसे कहते हो, कि सब जगत् ब्रह्मते उपजा है, अरु ब्रह्मस्वरूप है ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह जगत् ब्रह्मते उपजाहै, जेते कछु प्रतियोगीसहित शब्द शास्त्रोंने कहे हैं, सो दृश्यविषे हैं, शास्त्रने उपदेश जतावनेके निमित्त कहे हैं वास्तव यह शब्द कोऊ नहीं, जैसे किसी बालकको [illegible] भासता है, अरु कोऊ पूछता है कि, इस बालकको बेतालने [illegible] विषे स्थित होइकरि भय दिया है, तिसको कहता है, [illegible] भय दिया है, सो व्यवहारके निमित्त उसको [illegible] [illegible] तैसे आत्माके [illegible] [illegible] नहीं [illegible]

वास्तवते तिसविषे द्वैतकल्पना कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! ब्रह्मते जगत् हुआ, यह अर्थ केवल व्यतिरेकाविषे नहीं होता है; जो कुलाल दंडते घट उपजाता है, सो व्यतिरेकके अर्थ है, स्वामीका टहलुआ यह भिन्नके अर्थ है, अरु यह अभिन्नरूप भी होते हैं, जैसे अवयवीके अवयव हैं, सुवर्णते भूषण हुए हैं, मृत्तिकाते घट हुए हैं, सो यह अभिन्नरूप हैं, अवयवी कोशरूप है, भूषण स्वर्णरूप है, घट मृत्तिकारूप है, तैसे ब्रह्मते उपजा जगत् ब्रह्मरूपही है अरु वास्तवते भिन्न अभिन्न कारण परिणाम भाव विकार अविद्या अरु विद्या सुखदुःख आदिक मिथ्या कल्पना अज्ञानकरि उठती है ॥ हे रामजी ! अबोधकरिकै भेदकल्पना हुई है, अरु ज्ञानकरिकै सब कल्पना शांत हो जाती हैं, अशब्दपद शेष रहता है, जब तू ज्ञानयोग्य होवैगा, तब ऐसे जानैगा जो आदि मध्य अंतते रहित अविभाग अखंडरूप एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, अज्ञानकरिकै अथवा जिज्ञासूको उपदेशनिमित्त द्वैतवादकल्पना है, बोध हुएते द्वैतभेद कछु नहीं रहता ॥ हेरामजी ! वाच्यवाचकभाव द्वैतविना सिद्ध नहीं होता, जब बोध हुआ तब वाच्यका मौन होता है, ताते महावाक्यके अर्थविषे निष्ठा करो, अरु जेती कछु भेदकल्पना मनने रची है, तिनके निवृत्तिअर्थ मेरे वचन श्रवण करो ॥ हे रामजी ! यह मन ऐसे उपजा है, जैसे गंधर्वनगर होता है, तिसते आगे जगत्की रचना करी है, जैसे भ [illegible] है, तैसे तुझको दृष्टांत कहता हौं, जिसके जाननेते सब जगत् तुझको भ्रांतिमात्र भासैगा, अरु निश्चयको धारिकै जगत्की वासना दूरते त्यागि देवैगा, बोधकरिकै सब जगत् मनका मननरूप भासैगा, अरु आत्मरूप होइकरि अपने आपविषे निवास करैगा, अर्थ यह जो जगत्की कल्पना त्यागिकरि अपने स्वभावसत्ताविषे [illegible] सावधान होइ-

भासैगा [illegible] रामजी ! यह [illegible] आपकरि

आत्मसत्ता [illegible] कर अरु सब जगत्

अरु स्वरूप कछु नहीं, [illegible]

नहीं, तैसे ब्रह्म [illegible]

जगत् कछु द्वैतरूप [illegible]

तिसते जो रहित हुआ है, सो ससारसमुद्रके पारको प्राप्त हुआ है, ताते शुभगुणोंकरिकै चित्तकी शुद्धता करौ, अरु जो विवेकी हैं, सो शुभ कार्य करते हैं, अशुभको नहीं करते आहार अरु व्यवहार सब विचारिकै करते है, तैसेही आर्यकी नाई तुम सचेष्टा शास्त्रअनुसार करौ, जब ऐसे अभ्यास तुमको होवैगा, तब शीघ्रही ज्ञानवान् होहुगे, अरु ज्ञानके प्राप्त हुए सब कल्पना मिटिजावैंगी, आत्मस्थिति होवैगी यह सब जगतरूपी चित्र मनही रचे हैं, जैसे मोरका अडा काल पाइकरि अनेक रंगोंको धारता है, तैसे मन अनेक प्रकारके जगतको धारता है, सो मन जड अरु अजडरूप है, जो मनविषे चेतनभाग है, सो सब अर्थका बीजरूपहै बीज कहिये सबका उपादान है, अरु तिसका जो जडभाग है, सो जगतूरूप है ॥ हे रामजी! सर्गके आदिविषे पृथ्वी आदिक तत्त्व अविद्यमान थे, तिनको विद्यमानकी नाई ब्रह्मा देखत भया, जैसे स्वप्नविषे जगत विद्यमानकी नाई भासता है,तैसे देखत भया सो प्रमादकरि देखता भया जड सवेदन करि पहाड आदिक जगत् देखत भया, अरु चेतन संवेदनकरि जगमरूप जगत्को देखत भया, सो सब जगत् दीर्घ वेदना है, वास्तवते सब देहादिक शून्यरूप है, सब आत्माकरि व्यापे हुए है, अरु तिसका शरीर कोऊ नहीं, अपनेकरिके जो दृश्यरूप मन चेता है, सोई मन आत्माका शरीर है, सो आत्मा विस्तरणरूप है, अरु निर्मल स्थित है, मन तिसका आभासरूप है, जैसे सूर्यकी किरणोंकरि जलाभास होता है, तैसे आत्माका आभास मन है, सो मनरूपी बालक जगतरूपी पिशाचको अज्ञानकरि देखता है, अरु ज्ञानकरिकै परमात्मपद शांतरूप निरामयको देखता है॥ हे रामजी! जब आत्मा चैत्यताको प्राप्त होता है,तब वही चित्तरूप दृश्य द्वैत एक ब्रह्मको देखता है, तिसके निवृत्तिअर्थ मैं तुझको कथा कहता हौं, तू श्रवण करु.जो वचन दृष्टांत दार्ष्टांतसहित होता है,अरु वाणी भी मधुर होती है,अरु स्पष्ट होवै तब गुरुका वचन श्रोताके हृदयविषे पसर जाता है, जैसे जलविषे तेलकी बूंद पसर जाती है, तैसे पसर जाता है,अरु जिसका वचन दृष्टांत दार्ष्टांतते रहित होता है, अरु अर्थ स्पष्ट नहीं होता अरु क्षोभसयुक्त वचन कहता है,अरु अक्षर पूर्ण नहीं होता, सो वचन श्रो-

वास्तवते तिसविषे द्वैतकल्पना कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! ब्रह्मते जगत् हुआ, यह अर्थ केवल व्यतिरेकाविषे नहीं होता है; जो कुलाल देहते घट उपजाता है, सो व्यतिरेकके अर्थ है, स्वामीका टहलुआ यह भिन्नके अर्थ है, अरु यह अभिन्नरूप भी होते हैं, जैसे अवयवीके अवयव हैं, सुवर्णते भूषण हुए हैं, मृत्तिकाते घट हुए हैं, सो यह अभिन्नरूप हैं, अवयवी कोशरूप है, भूषण स्वर्णरूप है, घट मृत्तिकारूप है, तैसे ब्रह्मते उपजा जगत् ब्रह्मरूपही है अरु वास्तवते भिन्न अभिन्न कारण परिणाम भाव विकार अविद्या अरु विद्या सुखदुःख आदिक मिथ्या कल्पना अज्ञानकरि उठती है ॥ हे रामजी ! अबोधकरिके भेदकल्पना हुई है, अरु ज्ञानकरिके सब कल्पना शांत हो जाती है, अशब्दपद शेष रहता है, जब तू ज्ञानयोग्य होवैगा, तब ऐसे जानैगा जो आदि मध्य अंतते रहित अविभाग अखंडरूप एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, अज्ञानकरिके अथवा जिज्ञासूको उपदेशनिमित्त द्वैतवादकल्पना है, बोध हुए द्वैतभेद कछु नहीं रहता ॥ हेरामजी ! वाच्यवाचकभाव द्वैतविना सिद्ध नहीं होता, जब बोध हुआ तब वाच्यका मौन होता है. ताते महावाक्यके अर्थविषे निष्ठा करो,अरु जेती कछु भेदकल्पना मनने रची है, तिनके निवृत्तिअर्थ मेरे वचन श्रवण करो ॥ हे रामजी ! यह मन ऐसे उपजा है, जैसे गंधर्वनगर होता है, तिसते आगे जगत्की रचना करी है, जैसे मैं देखा है, तैसे तुझको दृष्टांत कहता हौं, जिसके जाननेते सब जगत तुझको भ्रांतिमात्र भासैगा, अरु निश्चयको धारिके जगतकी वासना दूरते त्यागिदेवैगा, बोधकरिके सब जगत् मनका मननरूप भासैगा, अरु आत्मरूप होइकरि अपने आपविषे निवास करैगा, अर्थ यह जो जगत्की कल्पना त्यागिकरि अपने स्वभावसत्ताविषे स्थित होवैगा, ताते सावधान होइ श्रवण कर ॥ हे रामजी ! यह मनरूपी वडा रोग है, तिसकरूपी औषध आत्मसत्ता है, अरु सब जगत चित्तकरि कल्प्या है, सो शरीर आदिक अरु स्वरूप कछु नहीं, जैसे रेतसों तेल नहीं निकसता, तैसे जगत् नहीं, तैसे ब्रह्म निकसता, चित्तकरिकै भानना है, सो चित्तरूपी जगत कछु द्वैतरू अरु राग द्वेष आदिक संकल्पकरिकै युक्त है,

सातों समुद्र आदिक सब सृष्टिके विस्तारको मैं देखत भया, सो दश सृष्टिकी संख्या देखी, तिनविषे दश ब्रह्मा देखे, मानों मेराही प्रतिबिंब है, मेरीही मूर्ति कमलते उत्पन्न हुई है, अरु राजहंसके ऊपर आरूढ हुए दशही ब्रह्मा देखे, अरु भिन्न भिन्न तिनकी सृष्टि देखीं, बडे नदीके प्रवाह चलते हैं, वायु आकाशविषे चलता है, सूर्य चंद्रमा उदय होते हैं, देवता स्वर्गविषे क्रीडा करते हैं, मनुष्य पृथ्वीविषे फिरते हैं, दैत्य नाग पाताल-विषे भोगोंको भोगते हैं, कालचक्र फिरता है, द्वादश मास तिसके द्वादश कोल हैं, षट् ऋतु वसंत आदिक हैं, वासनाके अनुसार शुभ अशुभ आ-चारकरिकै नरक स्वर्ग भोगते हैं, अरु मोक्षफलको पाते हैं, सृष्टिसृष्टि-विषे सप्त द्वीप हैं, उत्पत्ति प्रलय कल्पकरि होते हैं, गंगाजीका प्रवाह है, जगत्के गलेमें यज्ञोपवीत है, कहूं ऐसे स्थित है, जहां सदा प्रकाश रहता है, कहूं अंधकार रहता है, तिसविषे स्थावर जंगम प्रजा मैं देखत भया, बिजलीकी नाईं सृष्टि उपजी है, अरु मिट जाती है, जैसे वृक्षके पत्र उपजते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं, अरु गंधर्वके नगरवत् सृष्टि देखीं एक एक ब्रह्मांडविषे स्थावर जंगम प्रजा देखी, जैसे गूलरके फलविषे अनेक मच्छर होते हैं, तैसे एक एक ब्रह्मांडविषे जीव देखे, आत्माविषे कालका भी अभाव है, सो क्षण लव दिन मास वर्षोंका प्रवाह चला जाता मैंने देखा ॥ हे मुनीश्वर! अंतवाहक दृष्टि करके मैं उन सृष्टिको देखा, जब मैं चर्मदृष्टिकरि देखौं, तब कछु न भासै, दिव्यदृष्टिकरि सब कछु भासै, चिरकालपर्यंत मैं देखता रहा, जो कदाचित चित्तभ्रम होवै अरु स्पष्टही भासै, तब एक सृष्टिके सूर्यको देखिकै मैं आवाहन किया, तब सूर्य मेरे निकट आइकै प्राप्त भया, तिसको मैं कहत भया ॥ हे देवदेवेश भास्कर तुमको कुशल है, ऐसे कहिकरि मैं बहुरि कहा कि, हे सूर्य! तू कौन है? अरु यह सृष्टि कहांते उपजी है, यह एक जगत् है वा ऐसे अनेक जगत् हैं, जैसे तुम जानते हौ तैसे कहौ, तब वह सूर्य भी त्रिकालज्ञान रखता था, मुझको जानिकै प्रणाम किया, अरु आनंदितवाणी कहत भया ॥ भानुरुवाच ॥ हे ईश्वर! इस दृश्यरूपी पिशाचके तुम नित्यही कारण होते हौ, तुम आपही जानने हौ; मेरेको किसनिमित्त पूछते हौ, अरु जो

ताके हृदयविषे नहीं ठहरता, उपदेशका वचन भी निष्फल हो जाता है, अरु मैं तुझको आख्यान कहता हौं, सो नानाप्रकारके दृष्टांतसहित मधुर वाणीसहित कहता हौं, अरु स्पष्ट अर्थ करके कहता हौं, जैसे चंद्रमा अपने गृहऊपर उदय होवै, अरु मंदिर शीतल हो जावै, तैसे मेरे स्पष्ट वचन अरु प्रकाशरूप अर्थ श्रवण कियेते तेरा भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ इति श्रीयो०उत्पत्तिप्र० मनोंकुरोत्पत्तिकथनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥६०॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१.

आदित्यसमागमवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! पूर्व जो मुझको ब्रह्माने सर्गका वृत्तांत कहा, सो मैं तुझको कहता हौं, एक कालमें मैं ब्रह्माजीकेपास गया था, अरु पूछा था कि, हे भगवन् ! ये जगतगण कहांते आये हैं, अरु कैसे उत्पन्न भये हैं, तब पितामहजी मुझको इंद्र ब्राह्मणका आख्यान कहत भया ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह सब जगत् मनते उपजा है, अरु मनकरिकै भासता है, जैसे जलते द्रवताकरिकै नानाप्रकारके तरंगचक्र पडे फुरते हैं, सो मनके फुरनेकरि सब जगत फुरते हैं, अरु मनरूप हैं ॥ हे मुनीश्वर ! पूर्वकल्पविषे एक वृत्तांत देखा है सो सुन एक समय दिनका क्षय हुआ, मैं संपूर्ण सृष्टिको संहार करिकै एकाग्रभाव होकरि रात्रिको स्वस्थभाव होयकरि रहा, जब मेरी रात्रि व्यतीत भई, अरु मैं जागा-तब उठिकरि संध्यादिककर्म विधिसंयुक्त करत भया, अरु बडे आकाशकी ओर मैं देखत भया, सो तम अरु प्रकाशते रहित व्यापित शून्यरूप इतरते रहित मैं देखत भया, अरु चिदाकाशविषे चित्तको जोडा, अरु सर्गके उपजानेका संकल्प चित्तविषे धारा, तब मुझको शुद्ध सूक्ष्म चिदाकाशविषे सृष्टि दृष्टि आई, सो कैसी सृष्टि मासी, जो बडे विस्तारसहित अरु परस्पर अदृष्टरूप, जो एक सृष्टिको दूसरी न देखे, अरु एक एक सृष्टिविषे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, तीनों देवता रहैं, अरु देवता, गंधर्व, किन्नर, मनुष्य, सुमेरु, मंदराचल, कैलास, हिमालय आदिक पर्वत, पृथ्वी, नदियां,

सातों समुद्र आदिक सब सृष्टिके विस्तारको मैं देखत भया, सो दश सृष्टिकी संख्या देखी, तिनविषे दश ब्रह्मा देखे, मानों मेराही प्रतिबिंब है, मेरीही मूर्ति कमलते उत्पन्न हुई है, अरु राजहंसके ऊपर आरूढ हुए दशही ब्रह्मा देखे, अरु भिन्न भिन्न तिनकी सृष्टि देखी, बडे नदीके प्रवाह चलते हैं, वायु आकाशविषे चलता है, सूर्य चन्द्रमा उदय होते हैं, देवता स्वर्गविषे क्रीडा करते हैं, मनुष्य पृथ्वीविषे फिरते हैं, दैत्य नाग पाताल-विषे भोगोंको भोगते हैं, कालचक्र फिरता है, द्वादश मास तिसके द्वादश कोल हैं, षट् ऋतु वसंत आदिक है, वासनाके अनुसार शुभ अशुभ आ-चारकरिकै नरक स्वर्ग भोगते हैं, अरु मोक्षफलको पाते हैं, सृष्टिसृष्टि-विषे सप्त द्वीप है, उत्पत्ति प्रलय कल्पकरि होते हैं, गंगाजीका प्रवाह है, जगत्के गलेमें यज्ञोपवीत है, कहूं ऐसे स्थित है, जहां सदा प्रकाश रहता है, कहूं अंधकार रहता है, तिसविषे स्थावर जंगम प्रजा मैं देखत भया, बिजलीकी नाईं सृष्टि उपजी है, अरु मिट जाती है, जैसे वृक्षके पत्र उपजते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं, अरु गंधर्वके नगरवत् सृष्टि देखी एक एक ब्रह्मांडविषे स्थावर जंगम प्रजा देखी, जैसे गूलरके फलविषे अनेक मच्छर होते हैं, तैसे एक एक ब्रह्मांडविषे जीव देखे, आत्माविषे कालका भी अभाव है, सो क्षण लव दिन मास वर्षोंका प्रवाह चला जाता मैंने देखा ॥ हे मुनीश्वर! अंतवाहक दृष्टि करके मैं उन सृष्टिको देखा, जब मैं चर्मदृष्टिकरि देखा, तब कछु न भासे, दिव्यदृष्टिकरि सब कछु भासे, चिरकालपर्यंत मैं देखता रहा, जो कदाचित् चित्तभ्रम होवे अरु स्पष्टही भासे, तब एक सृष्टिके सूर्यको देखिकै मैं आवाहन किया, तब सूर्य मेरे निकट आइकै प्राप्त भया, तिसको मैं कहत भया ॥ हे देवदेवेश भास्कर तुमको कुशल है, ऐसे कहिकरि मैं बहुरि कहा कि, हे सूर्य! तू कौन है? अरु यह सृष्टि कहांते उपजी है, यह एक जगत् है वा ऐसे अनेक जगत् हैं, जैसे तुम जानते हौ तैसे कहौ, तब वह सूर्य भी त्रिकालज्ञान रखता था, मुझको जानिकै प्रणाम किया, अरु आनंदितवाणी कहत भया ॥ भानुरुवाच ॥ हे ईश्वर! इस दृश्यरूपी पिशाचके तुम नित्यही ... होते हौ, तुम आपही जानते हौ, मेरेको किसनिमित्त पूछते हौ, अरु

लीलाके अर्थ पूछते हौ, तो जैसे वृत्तांत हुआ है, तैसे मैं तुम्हारे विद्यमान प्रार्थना करता हौ ॥ हे भगवन् ! यह जो सत असतरूपी नानाप्रकारोंके व्यवहारोंसंयुक्त जगत् भासता है, सो सब मनके फुरनेविषे स्थित है ॥ इति श्रीयो० उत्प० आदित्यसमागमवर्णनं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

ऐंदवसमाधि वर्णनम् ।

॥ भानुरुवाच ॥ हे भगवन् ! तुम्हारा जो कल्पका दिन व्यतीत भया है, तिस कल्पविषे जो जंबूद्वीप था, तिसकी कोणविषे कैलास पर्वत था, तिसकी कंदराविषे स्वर्णज्येष्ठ नाम एक तुम्हारा पुत्र था; सो वहां कुटी रचता भया था. तहां जाइ साधुजन निवास करते थे, तहां वेदका वेत्ता शांतरूप इंदु नाम ब्राह्मण कश्यप ऋषिके कुलते प्रगट हुआ था, सो तिस कुटीकेविषे जाइकै स्त्रीसहित निवास करत भया, तिस स्त्रीविषे प्राणोंकी नाईं स्नेह था. सो स्त्री पुत्रते रहित होत भई जैसे मरुस्थलविषे घास नहीं उपजता, तैसे उसते संतान न उपजे, अरु बहुत सुंदर पुत्रते रहित थी, जैसे शरत्कालकी वेलि बहुत सुंदर होती है, परंतु फलते शून्य होती है, तैसे वह थी, तब दोनों पुरुष अरु स्त्री पुत्रके निमित्त तप करने लगे, कैलासके निकट निर्जन स्थानमें कुंजविषे एक वृक्ष था, तिसके ऊपर चढ़ि बैठे, तहां बैठिकरि तप करने लगे, जलपान करैं, अरु भोजन कछु न करैं, इसप्रकार रात्रि दिन व्यतीत करैं, बहुरि एकही अंजली पान करनेलगे, फिर तिसका भी त्याग किया, फुरनेते रहित वृक्षकी नाईं होके बैठे रहे, तिनको तप करते त्रेता अरु द्वापर युग व्यतीत भये, तब शशिकलाधारी रुद्र तुष्टमान होइकरि तिनके निकट भवानी-शंकर दोनों आये, तिनके सन्मुख देखते भये, जो स्त्रीपुरुष दोनों वृक्षके ऊपर बैठे हैं, तब तिन्होंने शिवको देखिके प्रणाम किया, अरु दोनों प्रफुल्लित हो आये, जैसे दिनकी तपन करि मुरझाइ हुई चंद्रमुखी कमलिनी चंद्रमा उदय हुए प्रफुल्लित हो जाती है, तैसे महाहिमकी नाईं शिवा

देखिकरि प्रफुल्लित भई, मानो आकाश अरु पृथ्वी दोनों रूप धारिके आन खडे हुए है, ऐसे भवानीशंकर तिस ब्राह्मणको कहते भये ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! तू वर माँग, मैं तुझपर तुष्ट हुआ हौं, जो कछु तुझको वांछित वर है, सो तू माँग ॥ हे ब्रह्माजी ! जब ऐसे शिवने कहा तब ब्राह्मण प्रफुल्लित होकरि कहत भया ॥ हे भगवन् ! देवदेवेश, मेरे गृहविषे दश पुत्र होवैं, सो बडे बुद्धिमान् होवें, अरु कल्याणमूर्ति होवें, जिसकरि मुझको बहुरि शोक कदाचित् न होवे ॥ भानुरुवाच ॥ हे भगवन् ! इसप्रकार जब ब्राह्मणने कहा, तब ईश्वरने कहा, ऐसेही होवेगा, ऐसे कहिकरि अंतर्धान भये, जैसे समुद्रका तरंग उछलिके मिट जाता है, तैसे शिव अंतर्धान भये, तब वह पुरुष स्त्री दोनो शिवके चरणोंको ग्रहण करिके प्रसन्न भये, जैसे सदाशिव अरु भवानीकी मूर्त्ति है, तैसे वह प्रसन्न होइकरि अपने गृहविषे आवत भये, तब ब्राह्मणी गर्भवती होती भई, जैसे वर्षाकालके बादल जलकरि पूर्ण होते है, तैसे वह गर्भकरि पूर्ण भई, समय पायके दशही पुत्र तिसको होत भये, जैसे द्वितीयाके चन्द्रमाकी शोभा होती है, तैसे उनकी शोभा भई, अरु षोडश वर्षके आकारकी नाई ब्राह्मणीका आकार रहा, वृद्धभावको न प्राप्त भई, अरु वह दशही संस्कारको ले उपजे, अरु थोडे कालविषे बड़े हो गये, जैसे वर्षाकालकी बादली थोडी भी शीघ्र बड़ी हो जाती है, तैसे वह थोडे कालविषे बड़े हो गये, जब सप्त वर्षोंके भये, तब सब वाणीके वेत्ता भये, तब उनके माता अरु पिता दोनों शरीरको त्यागिके अपनी गतिको प्राप्त भये, वह दशही ब्राह्मण मातापितातें रहित भये, अपने गृहको त्यागिकरिके कैलासके शिखरऊपर चढ़े, अरु परस्पर विचार करने लगे कि, वह कौन ईश्वर है, जो परमेश्वररूप है, अरु वह कवन ईश्वरपद है, जिसके पायेते बहुरि दु खी न होवे, अरु जिसका नाश भी न होवे, जिसके पायेते सबका ईश्वर होवे, तब एक भाईने कहा कि, सबते बड़ा ऐश्वर्य मंडलेश्वरका है, सबकेऊपर तिसकी आज्ञा चलती है, बहुरि दूसरे भाईने कहा, मंडलेश्वरकी विभूति भी कछु नहीं, काहेते कि, वह भी राजाके अधीन होता है, ताते राजाका पद बड़ा होता है, बहुरि और भाईने कहा, राजाकी

लीलाके अर्थ पूछते हौ, तौ जैसे वृत्तांत हुआ है, तैसे मैं तुम्हारे विद्यमान प्रार्थना करता हौं ॥ हे भगवन्! यह जो सत् असतरूपी नानाप्रकारोंके व्यवहारोंसंयुक्त जगत् भासता है, सो सब मनके फुरनेविषे स्थित है ॥ इति श्रीयो० उत्प० आदित्यसमागमवर्णनं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

ऐंदवसमाधि वर्णनम् ।

॥ भानुरुवाच ॥ हे भगवन्! तुम्हारा जो कल्पका दिन व्यतीत भया है, तिस कल्पविषे जो जंबूद्वीप था, तिसकी कोणविषे कैलास पर्वत था, तिसकी कंदराविषे स्वर्णज्येष्ठ नाम एक तुम्हारा पुत्र था, सो वहां कुटी रचता भया था तहां जाइ साधुजन निवास करते थे, तहां वेदका वेत्ता शांतरूप इंदु नाम ब्राह्मण कश्यप ऋषिके कुलते प्रगट हुआ था, सो तिस कुटीकेविषे जाइके स्त्रीसहित निवास करत भया, तिस स्त्रीविषे प्राणोंकी नाई स्नेह था- सो स्त्री पुत्रते रहित होत भई जैसे मरुस्थलविषे घास नहीं उपजता, तैसे उसते संतान न उपजे, अरु बहुत सुंदर पुत्रते रहित थी, जैसे शरत्कालकी वेलि बहुत सुंदर होती है, परंतु फलते शून्य होती है, तैसे वह थी, तब दोनों पुरुष अरु स्त्री पुत्रके निमित्त तप करने लगे, कैलासके निकट निर्जन स्थानमें कुजविषे एक वृक्ष था, तिसके ऊपर चढ़ि बैठे, तहां बैठिकरि तप करने लगे, जलपान करें, अरु भोजन कछु न करें, इसप्रकार रात्रि दिन व्यतीत करें, बहुरि एकही अंजली पान करनेलगे, फिर तिसका भी त्याग किया, फुरनेते रहित वृक्षकी नाईं होके बैठे रहे, तिनको तप करते त्रेता अरु द्वापर युग व्यतीत भये, तब शशिकलाधारी रुद्र तुष्टमान होइकरि तिनके निकट भवानी-शंकर दोनों आये, तिनके सन्मुख देखते भये, जो स्त्रीपुरुष दोनों वृक्षके ऊपर बैठे हैं, तब तिन्होंने शिवको देखिके प्रणाम किया, अरु दोनों प्रफुल्लित हो आये, जैसे दिनकी तपत करि सकुचि हुई चंद्रमुखी कमलिनी चंद्रमा उदय हुए प्रफुल्लित हो जाती है, तैसे महाहिमकी नाईं शिवको

देखिकारि प्रफुल्लित भई, मानो आकाश अरु पृथ्वी दोनों रूप धारिकै आन खडे हुए हैं, ऐसे भवानीशंकर तिस ब्राह्मणको कहते भये ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण! तू वर माँग, मै तुझपर तुष्ट हुआ हौं, जो कछु तुझको वांछित वर है, सो तू माँग ॥ हे ब्रह्माजी! जब ऐसे शिवने कहा तब ब्राह्मण प्रफुल्लित होकारि कहत भया ॥ हे भगवन्! देवदेवेश, मेरे गृहविषे दश पुत्र होवैं, सो वडे बुद्धिमान् होवैं, अरु कल्याणमूर्ति होवैं, जिसकारि मुझको बहुरि शोक कदाचित् न होवै ॥ भानुरुवाच ॥ हे भगवन्! इसप्रकार जब ब्राह्मणने कहा, तब ईश्वरने कहा, ऐसेही होवैगा, ऐसे कहिकारि अंतर्धान भये, जैसे समुद्रका तरंग उछलिके मिट जाता है, तैसे शिव अंतर्धान भये, तब वह पुरुष स्त्री दोनों शिवके चरणोंको ग्रहण करिकै प्रसन्न भये, जैसे सदाशिव अरु भवानीकी मूर्त्ति है, तैसे वह प्रसन्न होइकारि अपने गृहविषे आवत भये, तब ब्राह्मणी गर्भवती होती भई, जैसे वर्षाकालके बादल जलकारि पूर्ण होते हैं, तैसे वह गर्भकारि पूर्ण भई, समय पायके दशही पुत्र तिसको होत भये, जैसे द्वितीयाके चंद्रमाकी शोभा होती है, तैसे उनकी शोभा भई, अरु षोडश वर्षके आकारकी नाईं ब्राह्मणीका आकार रहा, वृद्धभावको न प्राप्त भई, अरु वह दशही संस्कारको ले उपजे, अरु थोडे कालविषे वड़े हो गये, जैसे वर्षाकालकी बादली थोडी भी शीघ्र वड़ी हो जाती है, तैसे वह थोडे कालविषे वड़े हो गये, जब सप्त वर्षोंके भये, तब सब वाणीके वेत्ता भये, तब उनके माता अरु पिता दोनों शरीरको त्यागिकै अपनी गतिको प्राप्त भये, वह दशही ब्राह्मण मातापितातें रहित भये, अपने गृहको त्यागिकारिकै कैलासके शिखरऊपर चढ़े, अरु परस्पर विचार करने लगे कि, वह कौन ईश्वर है, जो परमेश्वररूप है, अरु वह कवन ईश्वरपद है, जिसके पायेतें बहुरि दुःखी न होवै, अरु जिसका नाश भी न होवै, जिसके पायेते सबका ईश्वर होवै, तब एक भाईने कहा कि, सबते वड़ा ऐश्वर्य मंडलेश्वरका है, सबकेऊपर तिसकी आज्ञा चलती है, बहुरि दूसरे भाईने कहा, मंडलेश्वरकी विभूति भी कछु नहीं, काहेते कि, वह भी राजाके अधीन होता है, ताते राजाका पद वड़ा होता है, बहुरि और भाईने कहा, राजाकी

विभूति भी कछु नहीं, काहेते कि, राजा चक्रवर्तीके अधीन होताहै, ताते चक्रवर्तीका पद वड़ा है,वहुरि और भाईने कहा चक्रवर्त्ती भी कछु नहीं, वह भी यमके अधीन होता है,ताते यमका पद वड़ा है, वहुरि और भाईने कहा कि, इंद्रके आगे यमकी विभूति कछु नहीं, ताते इंद्रका पद वडा है तब और भाईने कहा इन्द्रकी विभूति भी कछु नहीं, ब्रह्माके एक मुहूर्त्तविषे इंद्र नष्ट हो जाता है,तब सबसे ज्येष्ट वड़े भाईने कहा,जैसे मृगके समूहको मृग कहै, तैसे छोटे भाईको बुद्धिमान् वडा भाई गंभीर वचनकरि कहत भया, जेती कछु विभूति हैं,सो सब ब्रह्माके कल्पविषे नष्ट हो जाती हैं, ताते वडा ऐश्वर्य ब्रह्माजीका है, इसते वड़ा और कोऊ नहीं ॥ हे भगवन् ! इसप्रकार जब वड़े भाईने कहा, तब सबने कहा, भली कही भली कही ! और फिर सबते वड़े भाईसे कहा, हे तात ! जो सब दुःखका नाशकर्त्ता जगत्पूज्य ब्रह्मपद है, तिसको हम कैसे प्राप्त होवैं ? जिस उपायकरि प्राप्त होवें, सो उपाय कहौ, वहुरि भाई कहत भया, हे भ्राता ! और सब भावनाको त्याग करौ, अरु यह भावना निश्चयकरिके करौ कि, हम ब्रह्मा हैं, अरु पद्मासनपर बैठे है, मै ब्रह्मा हौं, अरु सब सृष्टिका कर्त्ता हौं, अरु सबकी पालना कर्त्ता हौं, अरु संहारकर्त्ता मैंही हौं, जेती [illegible] जगज्जाल है, तिसका आश्रयभूत मैंही हौं, सब सृष्टि मेरे अंग [illegible] है [illegible] यको धारिकै बैठो, अरु सजातीय भावनाको धा[illegible] ब्रह्माका पद प्राप्त होवैगा ॥ हे भगवन् ! जब [illegible] तब छोटे भाइयोंने कहा, हे [illegible] यथार्थ कहा है, तैसेही हम करते [illegible] वडे भ[illegible] विषे स्थित भए, जैसे कागज[illegible] ध्यानविषे जुरि गये, अरु मन[illegible] हौं, कमल आसन मेरा है, मैं [illegible] श्वर भी मैंही हौं, सांगोपांग जगत् [illegible] गायत्रीसहित जो वेद हैं, सो मेरे आगे [illegible] सिद्धोंके मंडलोंको पालनेवाला हौं सो सब [illegible] लोक पाताललोक, पहाड, नदियां,समुद्र [illegible]

वज्रके धारनेहारा यज्ञोंका भोक्ता इंद्र मैंनेही रचा है, अरु सूर्य मेरी आज्ञासे तपता है, अरु जगत्की मर्यादानिमित्त सब लोकपाल मैंनेही रचे है. जैसे गौको गोपाल पालता है, तैसे लोकपाल मेरी आज्ञा पाइकरि जीवोंको पालते हैं अरु जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते है, बहुरि मिट जाते हैं, तैसे जगत् मुझते उपजा है, बहुरि मेरेहीविषे लीन होता है अरु मै सदा आत्मपदविषे स्थित हौं, अरु क्षण दिन मास वर्ष युग आदिक काल मेराही रचा हुआ है मैंनेही सब कालके नाम रक्खे है, मैंही दिनको उत्पन्न करता हौं, अरु रात्रिको लीन करिलेता हौं सदा आत्म पदविषे स्थित हौ, पूर्ण परमेश्वर मैंही हौं ॥ हे ब्रह्माजी ! इसप्रकार वह दशही भाई भावना धारिकरि बैठेरहे, मानो कागजऊपर मूर्ति लिख छोडी है, तैसे सब वृत्तिके जालको अंतरते त्यागिकरि एक ब्रह्माके ध्यानविषे जुरि गये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवसमाधिवर्णन नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३

जगद्रचनानिर्वाणवर्णनम् ।

॥ भानुरुवाच ॥ हे भगवन् ! इसप्रकार इंदुके दशों पुत्र पितामहकी भावना धारिकरि बैठे, तब तिनके देह धूप अरु पवनकरिके सूख गए, जैसे ज्येष्ठ आषाढविषे कमलपत्र सूखकरि गिर पडते हैं, तैसे तिनके देह सूखकरि गिरपडे, तब वनचर जीव तिनको भक्षण करिगये, अरु शरीरको आपोआप खैंचे, जैसे फलको वानर पकडते हैं, अरु विदारण करते हैं तैसे इनके देहको विदारने लगे, अरु तिनकी वृत्ति ध्यानते छूटके बाह्य देहादिक अध्यासविषे न आई, ब्रह्माकी भावनाविषेही लगी रही, इसप्रकार जब चतुर्युगका अंत भया, अरु तुम्हारे कल्पदिनका होने लगा, द्वादश सूर्य तपने लगे, पुष्कल मेघ गार्जिके वर्षने लगे, बडा भूचालन भया, वायु चलने लगा, समुद्र उछल पडे, सब जलही जल होगया, सब भूत क्षयको प्राप्त भये, सबको संहार करके रात्रिको तुम आत्मपदविषे

किसीकरि नहीं होता, जैसे जलके सींचनेकरि पर्वत नहीं चलायमान होता, तैसे चित्तका निश्चय औरकरि नहीं चलायमान होता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवनिश्चयकथन नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ६५.

कृत्रिमेंद्रवाक्यम् ।

॥ भानुरुवाच ॥ हे देवेश ! इसपर एक पूर्व इतिहास हुआ है, सो तुम श्रवण करो, एक इंद्रद्युमनाम राजा था, तिसकी कमलनयनी स्त्री थी, तिसका नाम अहल्या था, तिसके नगरविषे इंद्र नाम एक पुरुष था, सो ब्राह्मणका पुत्र बहुत सुंदर बडा बलवान् था; अरु अहल्या राजाकी पट्टराणी थी, तब तिस राणीने पूर्वकी अहल्या गौतमकी स्त्री इंद्रकी कथा सुनी, तब एक सहेलीने कहा, हे राणी ! जैसे पूर्व अहल्या थी तैसे तू है, अरु जैसा वह इंद्र सुंदर था, तैसे तुम्हारे नगरविषे भी एक इंद्र ब्राह्मण है ॥ हे भगवन्! जब इसप्रकार राणीने सुना तब उस इंद्रविषे भी राणीका अनुराग हुआ, परंतु वह राणीको प्राप्त न होवे, राणीका शरीर इसी कारणते सूखता जावे, तब राजाने सुना कि इसको गरमीका कछु रोग है, तिसके निवारणेअर्थ केलेके पत्र और शीतलऔषध तिसको दिलवाये, परंतु उसको वांछित पदार्थ कोऊ इष्ट न आवै, खान पान शय्यादिक जेते कछु इंद्रियोंके वांछित पदार्थ है, सो तिसको सुखरूप कोऊ न भासे, वह दिनदिनविषे पीत वर्ण होती जावे, अरु इंद्रके वियोगकरिके तलफत रहै जैसे जलविना मछली मरुस्थलविषे तलफती है, तैसे वह तलफती रहै, अरु कहै, हा इंद्र ! हा इंद्र ! ऐसे विलाप करती रहै, लोकलाजको त्यागिदीनी, उस इंद्रविषे बहुत स्नेह बढि गया, तब विचारकरि एक सखीने कहा, हे राणी ! मै इंद्र ब्राह्मणको ले आती हौं, जब इसप्रकार सखीने कहा; तब राणी सावधान हो आई, जैसे चंद्रमाको देखिके कमलिनी खिल आती है, तैसे उसके शब्दकरि राणी खिल आई, तब वह सखी ब्राह्मणके

घर गई, इस इंद्रको प्रवोधकरिके रात्रिके समय अहल्याके पास ले आई, तव गोप्यस्थानविषे इकट्ठे भये, तहाँ परस्पर लीलाकरि अरु दोनोंका चित्त परस्पर स्नेहकरि वधायमान भया, अरु वहुत प्रसन्न भी भये, जैसे चकवी अरु चकवेका आपसमें स्नेह होता है, तैसे उनका स्नेह भया, जैसे रति अरु कामदेवका स्नेह होता है, तैसे उनका स्नेह भया, एक दूसरेविना एक क्षण भी रहि न सकें, और सव क्रिया उनकी निवृत्त होगई, अरु लज्जा भी दूर होगई, जैसे चद्रमाको देखिकै चंद्रमुखी कमल प्रसन्न होवे, तैसे एक दूसरेको देखिकै वह प्रसन्न होवें ॥ हे भगवन् ! ब्रह्माजी उस रानीका भर्त्ता भी वडा गुणवान् था, परतु रानीने भर्ताको त्याग किया, अरु इद्रकेसाथ उसका परस्पर स्नेह भया, जव राजाने उनका संपूर्ण वृत्तात श्रवण किया, तव वलकरि इनको दडताड़ना करावने लगा,परतु उनको खेद कछु न होवे, जव चिकडविषे उनको डारें तव कमलकी नाई ऊपरही रहै, कष्ट कछु न होवे, वहुरि वर्फविषे उनको डारि दिये तौ भी खेदवान् न हुवे तव राजाने कहा, हे दुर्मतियो ! तुमको दु ख कछु क्यों नहीं होता ? उन्होंने कहा, हमको दु.ख कैसे होवे, हम तौ आपको भी नहीं जानते, तव अहल्याने कहा, मुझको सव इद्रही भासता है, भिन्न दु'ख कहाँ होवै, इंद्रने कहा, मुझको सव अहाल्याही भासती है, भिन्न दु ख कहां होवे, तेरे दंड करनेकरि हमको कछु दु ख नहीं होता, परस्पर हम हर्षवान् हैं, तव राजाने उनको वांध डारे, वहुरि अग्निविषे डार दिये, तौ भी जले नहीं, वहुरि हस्तिके चरणोंविषे डार दिये, तो भी कष्ट कछु न भया, तव राजाने कहा, रे पापियो ! तुमको अग्नि आदिकविषे दु ख क्यों नहीं होते, तव इद्रने कहा, हे राजन् ! जेती कछु जगज्जाल है, सो मनविषे स्थित है, अरु जैसा मन है, तैसा रूप पुरुपका है जैसा निश्चय मनविषे दृढ होता है,तिसको दूर करनेको कोऊ समर्थ नहीं भावे सो दड हमको दो, परंतु कछु दु.ख नहीं होवेगा, काहेते कि हमारे हृदयविषे परस्पर प्रतिभा हो रही है, जो कुछ अनिष्ट हमको होवै, तव दु ख भी होवे, अनिष्ट तो कुछ हुआ नहीं तव दु ख कैसे होवे ? हे राजन् ! जो कछु मनविषे दृढीभूत होता है, सोई पडा भासता है, तिसका

निश्चय दूर कोऊ नहीं कारसकता, शरीर नष्ट हो जाता है, परंतु मनका निश्चय नाश नहीं होता ॥ हे राजन् ! जो मनविषे तीव्र संवेग होता है, सो वर अरु शापकरि भी दूर नहीं होता, जैसे सुमेरु पर्वतको मंद मंद वायु चलाय नहीं सकता, तैसे मनके निश्चयको कोऊ नहीं चलाय सकता, इसी कारणते कहा है कि, मेरे हृदयविषे इसकी मूर्ति स्थिरीभूत है, इसके हृदयविषे मेरीमूर्ति स्थिरीभूत है, इसको सब जगत् यही भासता हौं, अरु मुझको सब जगत् यही भासती है, जो कछु दूसरा भासै तब दुःख भी होवै, जैसे लोहेके कोटविषे होवै तिसको दुःख देनेको कोऊ समर्थ नहीं तैसे मुझको दुःख कोऊ नहीं, जहां मैं जाता हौं, तहां सब ओरते अहल्याही भासती है, ताते दुःख कोऊ नहीं, जैसे ज्येष्ठ आषाढकी वर्षाविषे पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे हमको दुःख नहीं होता ॥ हे राजन् ! मनका नाम अहल्या है, अरु मनका नाम इंद्र है, अरु मनने सब जगत् रचा है, जैसा जैसा मनविषे दृढ निश्चय होता है, तैसाही भासता है, सुमेरुकी नाईं स्थिर हो जाता है, नष्ट नहीं होता, जैसे पत्र, फूल, फल, टासके काटेते वृक्ष नष्ट नहीं होता, जब बीजही नष्ट होवै, तब वृक्ष नष्ट होता है, तैसे शरीरके नष्ट हुएते मनका निश्चय नष्ट नहीं होता, जब मनका निश्चयही उलट पड़े तबही दूर होता है, एक शरीर जब नष्ट होता है, तब और शरीर धारि लेता है, जैसे स्वप्नविषे यह शरीर रहता है, अरु और शरीर धारिकै चेष्टा करता है तो शरीरके अधीन हुआ क्या ? तैसे शरीरके नष्ट हुए मनका निश्चय दूर नहीं होता, जब मन नष्ट होवै, तब शरीरके होते भी कछु क्रिया सिद्ध नहीं होती, ताते सबका बीज मन है, जैसे पत्र टास फल फूल तिन सबनका कारण जल है, तैसे सब पदार्थका कारण मन है, जैसा चित्त है, तैसा रूप पुरुषका है, ताते जहां जाता है, तहां सब ओरते रानी भासती है, मुझको दुःख कैसे होवै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे कृत्रिमेंद्रवाक्यवर्णनं नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्पष्टितमः सर्गः ६६.

अहल्यानुरागसमाप्तिवर्णनम् ।

भानुरुवाच ॥ हे भगवन् ! इसप्रकार जब इंद्र ब्राह्मणने कहा, तब कमलनयन राजाके समीप जो भरत नाम मुनीश्वर बैठा था, तिसको राजा कहत भया, हे सर्व धर्मोके वेत्ता, भरत मुनीश्वर, तुम देखो कैसे यह ढीठ पापात्मा हैं, जैसा इनका पाप है तिनके अनुसार इनको शाप देहु, जो यह मरि जावैं, जो मारने योग्य न होवै, तिसको राजा मारै, तब राजाको पाप होता है, जैसे तिसके मारनेते पाप होता है, तैसे पापीको न मारनेते भी पाप होता है, ताते इन पापियोंको शाप देहु, जिससे नष्ट हो जावें ॥ हे भगवन्! जब इसप्रकार राजा शार्दूलने कहा, तब भरत मुनिने तिनके पापको विचारिकै कहा, अरे पापियो ! तुम मर जाओ, जब इसप्रकार मुनीश्वरने कहा, तब उस इंद्र ब्राह्मणने कहा, रे दुष्टो ! तुमने शाप दिया, तिससे कहा होवैगा ? तिसकरिकै शरीर नष्ट होवैगा तिसकरिकै हमारा मन तौ नष्ट होनेका नहीं तुम भावै लक्ष यत्न करौ,तिस मनकरि शरीर होवैंगे, हमारेको मनके नष्ट हुए विना विपर्ययदशा नहीं होती,ऐसा कहिकरि दोनों पृथ्वीपर गिर पड़े, जैसे मूलके काटेते वृक्ष गिर पड़ता है, तैसे वे गिरपड़े, अरु वासनासयोग जो थे, तिसकरि दोनों मृग भये । तहां भी परस्पर स्नेहविषे रहे, बहुरि तिस जन्मको त्यागिकै पक्षीजन्मको पाया ॥ हे ब्रह्माजी ! तिस देहका भी त्याग किया, अब हमारी सृष्टिविषे तप करता पुण्यवान् ब्राह्मण अरु ब्राह्मणी भये है,ताते तुम देखो जो भरत मुनिने शाप दिया, तब उनके शरीर नष्ट हुए, परतु मनका जो कछु निश्चय था, सो नष्ट न भया, जहां शरीर पावै, तहां दोनों इकट्ठे रहैं, आपसमें अकृत्रिम प्रेमवान् भये, सो और किसीकरि आनंदवान् न होवै ॥ इति श्रीयो० उत्पत्तिप्रकरणे अहल्यानुरागसमाप्तिवर्णनं नाम षट्पष्टितम सर्ग. ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७.

जीवकर्मोपदेशवर्णनम् ।

भानुरुवाच ॥ हे नाथ ! तुम देखो कि, जैसा मनका निश्चय होता है, तिसीके अनुसार आगे भासता है, इंद्रके पुत्रकी सृष्टिवत् मनके निश्चयको कोऊ दूर नहीं कर सकता है, जगत्के पति मनही जगत्का कर्त्ता है, अरु मनही पुरुष है, मनका किया होता है, शरीरका किया कार्य नहीं होता, जो मनविषे दृढ निश्चय होता है, सो किसी औषधकरिके दूर नहीं होता जैसे मणिविषे प्रतिबिंब होता है, सो मणिके उठायेबिना दूर नहीं होता, तैसे मनके निश्चय भी किसी औरकरि दूर नहीं होता, जब मनही उलटै तबहीं दूर होवै, इसते कहा है, जो अनेक सृष्टिके भ्रम चित्तविषे स्थित हैं, ताते हे ब्रह्माजी ! तुम भी चिदाकाशविषे सृष्टिको रचौ ॥ हे नाथ ! तीन आकाश हैं, एक भूताकाश है, एक चित्ताकाश है, एक चिदाकाश है, सो तीनों अनंत है, इनका अंत कहूं नहीं, भूताकाश चित्ताकाशके आश्रय-स्थित है, अरु चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय स्थित है, भूताकाश अरु चित्ताकाश ये दोनों चिदाकाशके आश्रय प्रकाशते हैं, ताते चिदाकाशके आश्रय जेती तुम्हारी इच्छा होवे, तेती सृष्टि तुम भी रचौ, चिदाकाश अनंतरूप है, इंद्र ब्राह्मणके पुत्रोंने तुम्हारा क्या लिया है ? अपना नित्य-कर्म तुम भी करो ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हेवसिष्ठजी ! इसप्रकार जब सूर्यने मुझको कहा, जो सब जगत्जाल मनते उठी है, तब मैं विचारकरिकै कहा, हेभानु ! तुमने युक्त वचन कहे हैं कि, एक भूताकाश है, एक चित्ताकाश है, एक चिदाकाशहै, सो तीनों अनंत हैं, परंतु भूताकाश और चित्ताकाश दोनों चिदाकाशके आश्रय फुरतेहैं ताते हमभी अपने नित्यकर्मको करते हैं,अरु जो कछु मैं तुमको कहता हौं, सो तुम भी मानो, मेरी सृष्टिके तुम मनु प्रजापति होहु, जैसे तुम्हारी इच्छा होवै, तैसे रचौ, ऐसे जब मैं कहा, तब सूर्य मेरी आज्ञा मानिकै अपने दो शरीर करत भया, एक तौ पूर्वका सूर्यरूप किया, उस सृष्टिका सूर्य हुआ, अरु दूसरा शरीर उस स्वयम् मनुरूप किया ॥ हे वसिष्ठजी ! मेरी आज्ञाके अनुसार उसने सृष्टि रची, ताते मन

तुझको कहा है, जो यह जगत् सब मनका रचा हुआ है, जो मनविषे दृढ निश्चय होता है, सोई सफल होता है, जैसे इन्द्र ब्राह्मणकी सृष्टि हुई ॥ हे मुनीश्वर ! देहके नष्ट हुए भी मनका निश्चय दूर नहीं होता, चित्तविषे वही भासि आता है, सो चित्त आत्माका किंचनरूप है, जैसे तिसविषे फुरना होता है, तैसाही होय भासता है, प्रथम जो शुद्ध संविद्रूपविषे उत्थान हुआ है, सो अंतवाहक शरीर है- बहुरि जो उसाविषे दृढ अभ्यास हुआ है अरु स्वरूपका प्रमाद हुआ है, तब अधिभूतका शरीर हुए, जब अधिभूतकका अभिमानी भया तब इसका नाम जीव हुआ, अरु देहाभिमानकरि नानाप्रकारकी वासना होती है, तिसके अनुसार घटीयंत्रकी नाई भटकता है, जब बहुरि आत्माका बोध होवे; तब देहते आदि लेकरि दृश्य शात हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! जेता कछु दृश्य भासता है. सो ब्रह्मकरिकै भासता है, वास्तवते न कोऊ उपजा है, न कोऊ जगत् है, यह भ्रम सब चित्तकरि रचा है, तिसके अनुसार घटीयन्त्रकी नाई भटकता है, जब बहुरि आत्माका बोध होता है, तब देहते आदि लेकरि सब प्रपंच शात होता है ॥ हे मुनीश्वर ! जेता कछु दृश्य भासता है, सो मनकरिकै भासता है, वास्तवते न कोऊ माया है, न कोऊ जगत् है, यह सब भ्रम भासता है ॥ हे वसिष्ठजी ! और द्वैत कछु नहीं, चित्तके फुरणेकरिकै अह त्व आदिक भ्रम भासता है, जैसे इन्द्रब्राह्मणके पुत्र मनके निश्चयकरिकै ब्रह्मारूप होत भये, तैसे मैं ब्रह्मा हौं, शुद्ध आत्माविषे चैत्यता होती है, सोई चैत्यता ब्रह्मारूप होइकरि स्थित है, अरु शुद्ध आत्माविषे जो चैत्यता होती है, सोई मनरूप है, तिस मनके संयोगकरि चेतनको जीव कहते हैं, जब इसविषे जीवत्व होता है, तब अपनी देहको देखता है, बहुरि नानाप्रकारके जगत्भ्रमको देखता है, जैसे इन्द्र ब्राह्मणके पुत्रको सृष्टि हुई, तैसे यह जगत् है, जैसे भ्रमकरि आकाशविषे दूसरा चन्द्रमा भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, सो जगत सत्य भी नहीं, अरु असत्य भी नहीं, प्रत्यक्ष देखनेकरि सत्य भासता है, अरु नाशभावकरि असत्य है, सो सब मनविषे फुरता है. अरु मनके दो रूप हैं, एक जड़रूप है, दूसरा चेतनरूप है, जडरूप मनका दृश्यरूप है, अरु

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७.

जीवक्रमोपदेशवर्णनम् ।

भानुरुवाच ॥ हे नाथ ! तुम देखो कि, जैसा मनका निश्चय होता है, तिसीके अनुसार आगे भासता है, इंद्रके पुत्रकी सृष्टिवत् मनके निश्चयको कोऊ दूर नहीं कर सकता है, जगत्के पति मनही जगत्का कर्ता है, अरु मनही पुरुष है, मनका किया होता है, शरीरका किया कार्य नहीं होता, जो मनविषे दृढ निश्चय होता है, सो किसी औषधकरिकै दूर नहीं होता जैसे मणिविषे प्रतिबिंब होता है, सो मणिके उठायेबिना दूर नहीं होता, तैसे मनके निश्चय भी किसी औरकरि दूर नहीं होता, जब मनही उलटै तबहीं दूर होवै, इसते कहा है, जो अनेक सृष्टिके भ्रम चित्तविषे स्थित है, ताते हे ब्रह्माजी ! तुम भी चिदाकाशविषे सृष्टिको रचौ ॥ हे नाथ ! तीन आकाश हैं, एक भूताकाश है, एक चित्ताकाश है, एक चिदाकाश है, सो तीनों अनंत है, इनका अत कहूं नहीं, भूताकाश चित्ताकाशके आश्रय-स्थित है, अरु चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय स्थित है, भूताकाश अरु चित्ताकाश ये दोनों चिदाकाशके आश्रय प्रकाशते हैं, ताते चिदाकाशके आश्रय जेती तुम्हारी इच्छा होवै, तेती सृष्टि तुम भी रचौ, चिदाकाश अनतरूप है, इंद्र ब्राह्मणके पुत्रोंने तुम्हारा क्या लिया है ? अपना नित्य-कर्म तुम भी करो ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हेवसिष्ठजी ! इसप्रकार जब सूर्यने मुझको कहा, जो सब जगत्जाल मनते उठी है, तब मैं विचारकरिकै कहा, हेभानु! तुमने युक्त वचन कहे हैं कि, एक भूताकाश है, एक चित्ताकाश है, एक चिदाकाशहै, सो तीनों अनत हैं, परन्तु भूताकाश और चित्ताकाश दोनों चिदाकाशके आश्रय फुरतेहैं ताते हमभी अपने नित्यकर्मको करते हैं, अरु जो कछु मैं तुमको कहता हौं, सो तुम भी मानो, मेरी सृष्टिके तुम मनु प्रजा-पति होहु, जैसे तुम्हारी इच्छा होवै, तैसे रचौ, ऐसे जब मैं कहा, तब सूर्य मेरी आज्ञा मानिकै अपने दो शरीर करत भया, एक तो पूर्वका सूर्यरूप किया, उस सृष्टिका सूर्य हुआ, अरु दूसरा शरीर उस स्वयंभू मनुका किया ॥ हे वसिष्ठजी ! मेरी आज्ञाके अनुसार उसने सृष्टि रची, ताते मैने

तैसे जब मन आत्माविषे स्थित होता है, तब मनकी जडताका दृश्यभाव नहीं रहता, अरु जैसे सुवर्णको शोधन करता है, तब मेल जलता है, शुद्धही शेष रहता है, तैसे चित्त जब आत्माविषे स्थित होता है, तब जडभाव इसका जलजाता है, शुद्ध चेतनमात्र शेष रहता है, अरु वास्तवते पूछे तौ शुद्ध भी द्वैतविषे होता है, आत्माविषे द्वैतकछु नहीं, ताते शुद्ध कैसे होवै, जैसे आकाशके फूल वृक्ष वास्तवते कछु नहीं, तैसे शोधन भी वास्तवते कछु नहीं॥ हे मुनीश्वर! जबलग आत्माका अज्ञान है, तबलग नानाप्रकारका जगत् भासता है, जब आत्माका बोध होता है, तब जगद्भ्रम नष्ट हो जाता है, यह जगद्भ्रम चित्तविषे है, जैसा निश्चय चित्तविषे होता है, तैसाही हो भासता है, इसके ऊपर अहल्या अरु इंद्रका दृष्टांत कहा है, ताते जैसी भावना दृढ होती है, तैसा होइ भासता है॥ हे वसिष्ठजी। जिसको यही भावना दृढ है, कि मैं देह हौं, सो पुरुष जो कछु चेष्टा करता है, सो देहके निमित्त करता है, तिस कारणते बहुत कालपर्यंत कष्ट पाता है, जैसे बालक वैतालकी कल्पना करता है, तिसकरि आप भय पावता है, तैसे देहविषे अभिमानकरिकै पुरुष कष्ट पावता है, अरु जिसकी भावना देहविषे निवृत्त भई है, अरु शुद्ध चेतनभावविषे प्राप्त भई है, तिसका देहादिक जगद्भ्रम शांत हो जाता है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जीवक्रमोपदेशवर्णन नाम सप्तषष्टितमः सर्गः॥ ६७॥



अष्टषष्टितमः सर्गः ६८

—o—

मनोमाहात्म्यवर्णनम्।

॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी। जब इसप्रकार ब्रह्माजीने मुझको कहा, तब मैं बहुरि प्रश्न किया, जो हे भगवन्। तुमने कहा जो शापविषे मन्त्रादिकोंका बल होता है, सो शाप भी अचलरूप है, मिटता नहीं, सो मैं ऐसे भी देखा है, जो शापकरिकै मन, बुद्धि, इंद्रियां भी जडीभूत हो जाती हैं, ऐसे तो नहीं, जो देहको शाप होवै, अरु मनको न होवै॥

चेतनरूप मनका ब्रह्म है, जब दृश्यकी ओर फुरता है, तब दृश्यरूप होता है, जब चेतनभावकी ओर स्थित होता है, तब जडभाव दृश्यरूप इसका नष्ट हो जाता है, जैसे स्वर्णके जाननेते भूषणभाव नष्ट हो जाता है, अरु जब जडभावविषे फुरता है, तब नानाप्रकारके जगत्को देखता है, वास्तवते ब्रह्मादि तृणपर्यंत सबही चेतनरूप हैं जड तिसको कहते हैं, जो अभावरूप होवै, जैसे लकडीविषे चित्तनहीं भासता, अरु प्राणधारियोंविषे चित्त भासता है, परंतु स्वरूपते दोनों तुल्य है. काहेते जो सब परमात्मा करिकै प्रकाशता है॥ हे वसिष्ठजी! स्वरूपते सब चेतनस्वरूप है, जो चेतनस्वरूप न होवै, तो क्यों भासैं, चेतनताकरि उपलब्धरूप होते हैं, जड अरु चेतनका विभाग अवाच्य ब्रह्मविषे नहीं पाता, जडचेतनका विभाग प्रमाद दोषकरिकै है, वास्तवते नहीं, जैसे स्वप्नविषे दो प्रकारके भूत भासते हैं, जड अरु चेतनरूप तिस रूपका प्रमाद होता है, तिस चेतनभूत प्राणीको जड चेतनविभाग भासता है, अरु स्वरूपदर्शीको सब एकस्वरूप है॥ हे मुनीश्वर! ब्रह्मविषे चैत्यता भई सो मन भया, तिस मनविषे जो चेतनभाग है, सो ब्रह्मा है, अरु जडभाग है, सो अबोध है, जब अबोधभाव होता है, तब दृश्य भ्रमको देखता है, जब चेतनभावविषे स्थित होता है, तब शुद्धरूप होता है॥ हे मुनीश्वर! चेतनमात्रविषे अहंकार उत्थान दृश्य है, अरु परमार्थते कछु भेद नहीं, जैसे तरंग जलते भिन्न नहीं, तैसे अहं चेतनमात्रते भिन्न नहीं होता, सबकी प्रतीत ब्रह्महीविषे होती है, सो परमपद है, सब दुःखोंते रहित है, सोई शुद्ध चित्त जीव चैत्यभावको चेतता है, तब जडभावको देखता है, जैसे स्वप्नविषे कोऊ अपना मरणा देखता है, तैसे यह चित्त जडभावको देखता है, सो आत्मा सर्वशक्तिमान् है, कर्त्ता है, तौ भी कछु नहीं करता, तिसके समान और कछु नहीं॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् कछु वास्तवते उपजा नहीं, चित्तके फुरनेकरिकै भासता है, जब चित्तका फुरणा होता है, तब जगज्जाल भासता है, जब चेतन आत्माविषे स्थित होता है, तब मनका जडभाव नहीं रहता, जैसे पारसमणिके मिलापते लोहा स्वर्ण हो जाता है, बहुरि लोहभाव तिसका नहीं रहता,

दृढीभूत होकरि लगता है, तिसको वही भासता है, और किसी संसारके कष्टकरि अरु शापकरि मन चलायमान नहीं होता, अरु जो किसी दुःख शापकरि मन विपर्ययभावको प्राप्त हो जावै तो जानिये कि, यह दृढ लगा न था, अभ्यासकी शिथिलता है ॥ हे मुनीश्वर! मनकी तीव्रताके हिलावनेको किसी पदार्थकी शक्ति नहीं, काहेते जो सृष्टि मानसी है, ताते मनके साथ मनको समाय चित्तको परमपदविषे जोडो, जब चित्त आत्माविषे दृढ होता है, तब जगत्के पदार्थोंकरि चलायमान नहीं होता, जैसे माडव्य ऋषीश्वर शूलीपर चढा था, अरु तिसका जो चित्त आत्मपदविषे लगा हुआ था, तिसको शूलीपर भी खेद न हुआ ॥ हे मुनीश्वर! जिसविषे मन दृढ होकरि लगता है, तिसको चलाय कोऊ नहीं सकता, जैसे इन्द्र ब्राह्मण चलायमान न भये तैसे मन आत्माविषे स्थिर हुआ, चलायमान नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! जैसा जैसा मनविषे तीव्र भाव होता है, तिसीकी सिद्धता होती है ॥ दीर्घतपा एक ऋषि था, वह अंधे कूपविषे किसीप्रकार गिर पडा, तिस कूपविषे मनकरि यज्ञ करने लगा, मनविषे दृढकरि यज्ञको किया, तिस यज्ञकरि मनविषे देवता होकरि फल इंद्रपुरीविषे भोगने लगा, अरु जैसे इन्द्र ब्राह्मणके पुत्र मनुष्योंके समान थे, अरु मनविषे जो ब्रह्माकी भावना करी, तिसकरि दशही ब्रह्मा भये, अरु दशही तिनने अपनी अपनी सृष्टि रची, सो कैसी सृष्टि है, जो मुझकरि भी खंडित नहीं होती, ताते जो कछु दृढ अभ्यास होताहै, सो नष्ट नहीं होता और भी जो देवता महाऋषि आदि धैर्यवान् हुए हैं, जिनकी एक क्षणमात्र भी वृत्ति चलायमान नहीं होती, तिनको संसारका ताप, आधि, व्याधि, शाप, मंत्र, पाप, कर्म इसते लेकरि जो संसारके क्षोभ दुःखद, तिनको कोऊ नहीं स्पर्श करता, जैसे कमलफूलका प्रहार शिलाको फोड नहीं सकता, तैसे धैर्यवानको संसारका ताप नहीं खंडन करि सकता, अरु जिनको आधि व्याधि दुःख करते हैं सो जानिये कि यह परमार्थदर्शनते शून्यहै ॥ हेमुनीश्वर! जो पुरुष स्वरूपविषे सावधान भये हैं, तिनको कोई दुःख स्पर्श नहीं करते, स्वप्नविषे भी तिनको दुःखका अनुभव नहीं होता, काहेते कि तिनका चित्त स्वान-

हे भगवन्! मन अरु देह तो अनन्यरूप है, जैसे वायु अरु स्पदविषे भेद नहीं, जैसे घृत अरु चिकनाईविषे भेद नहीं, तैसे मन अरु जगतविषे भेद नहीं, अरु जो कहिये देह कछु वस्तु नहीं, चैतन्यही चित्त है, देह भी चित्तविषे कल्पित है, जैसे स्वप्नदेह होता है, जैसे मृगतृष्णाका जल होता है, जैसे दूसरा चंद्रमा भासता है, सो एकके नष्ट हुए, दोनों क्यों नहीं नष्ट होते, तैसे देहके शापकरि चाहिये कि, मनको शापभी लगि जावे, सो मैं देखा है, जो शापकरि भी जड़ीभूत हो गये हैं, अरु तुम कहते हौ, देहका कर्म मनको नहीं लगता, सो कैसे जानिये ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे मुनीश्वर! ऐसा पदार्थ जगत्‌विषे कोऊ नहीं, जो सब कर्मको त्यागिकै पुण्यरूप पुरुषार्थ कियेते सिद्ध न होवै, पुरुषार्थ कियेते सब कछु होता है, ब्रह्मा आदि चींटीपर्यंत जिस जिसकी भावना होती है, तैसा रूप हो भासता है, अरु सब जगत्‌के दो शरीर हैं, एक मनरूपी शरीर है सो चचलरूप है, दूसरा अधिभूतक मांसमय शरीर है, तिसका किया कार्य निष्फल है, अरु जो मनकरिकै चेष्टा होती है, सो सफल होती है ॥ हे मुनीश्वर! जिस पुरुषको मांसमय शरीरकेसाथ अहंभाव है, तिसको आधि व्याधि अरु शाप भी अवश्य लगता है, अरु मांसमय शरीर जो मूक है, गूँगा है, अरु दीन है, अरु क्षणनाशी है, इसकेसाथ जिसका संयोग है, सो दीन रहता है, अरु चित्तरूपी शरीर चचल है, अपना चित्त वश किसीको नहीं होता। अर्थ यह कि, वश करना महाकठिन है, जब दृढ वैराग्य अभ्यास होवै, तब वश होवै, अन्यथा नहीं होता, मन महाचचल है, अरु यह जगत् मनविषे है, जैसा जैसा मनविषे निश्चय है, सो दूर नहीं होता, मांसमयका किया सफल नहीं होता, अरु जो मनविषे निश्चय है, सो दूर नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! जिन पुरुषोंने चित्तको आत्मपदविषे स्थित किया है, तिनको अग्निविषे डारिये तौ भी दुःख कछु नहीं होता, अरु जलविषे डारिये तौ भी दुःख नहीं होता, काहेते कि, उनका चित्त बाह्य शरीरादिक भावको ग्रहण नहीं करता, आत्माविषे स्थित होता है ॥ हे मुनीश्वर! जो सब भावको त्यागिकरि मनका निश्चय जिसविषे दृढ होता है, सोई भासता है, जहां मन

है ॥ हे रामजी ! सो ब्रह्माजी मनरूप है, अरु मनही ब्रह्मारूप है, तिसका रूप संकल्प है, बहुरि आगे जैसा सकल्प करता है, तैसाही होता है, तिस ब्रह्माने एक अविद्याशक्ति कल्पी है, अनात्मविषे आत्माभिमान करना इसका नाम अविद्या है, बहुरि अविद्याकी निवृत्ति विद्या कल्पी, इसीप्रकार पहाड़, तृण, जल,समुद्र, स्थावर, जंगम पूर्ण जगत्को उत्पन्न किया. इसप्रकार ब्रह्मा हुआ, अरु इसप्रकार जगत् हुआ, जैसे तुमने कहा सो जगत् कैसे उपजता है, अरु कैसे मिटजाता है सो श्रवण करहु, जैसे समुद्रविषे तरग उपजते हैं, अरु समुद्रहीविषे लीन होते है, तैसे सपूर्ण जगत् ब्रह्मविषे उपजता है, अरु ब्रह्महीविषे लीन होता है ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो अहकार उल्लेख हुआ है, सो मन है, अरु सोई ब्रह्मा है, तिसहीने नानाप्रकार जगत् रचा है, सो सर्व चित्त शक्ति पसरी है सो चित्तके फुरने करि, नानात्व भासता है हे रामजी ! जेते कछु जीव हैं,तिन सर्वोविषे आत्मसत्ता स्थित है,परतु अपने स्वरूपके प्रमाद करिके पड़े भटकते है,जैसे वायु करिके वनके कुजोविषेसूखे पात भटकते हैं तैसे कर्मरूपी वायुकरि जीव भटकते है, अध अरु ऊर्ध्वविषे घटीयंत्रकी नाई अनेक जन्मोंको धरते हैं, जब काकतालीवत् सत्सगकी प्राप्ति होवै, अरु अपना पुरुषार्थ करै, तब मुक्त होवै, इसकी जबलग प्राप्ति नहीं भई तबलग कर्मरूपी जेवरीसाथ बांधेहुए अनेकजन्मोविषे भटकते है, जब ज्ञानकी प्राप्ति होवै तबही दृश्यभ्रमते छूटैं, अन्यथा न छूटैंगे ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ब्रह्माते जीव उपजते हैं अरु मिटते हैं, अनत सकटोंका कारण वासनाही नानाप्रकारके भ्रम दिखाती है, अरु जगत्रूपी वनकी जन्मरूपी वेतालवेलि वासना जलकरि बढती है, जब सम्यक्ज्ञान प्राप्त होवै; तब सोई कुठारकरिकै काटो, जब मनविषे वासनाका क्षोभ मिटै, तब शरीररूपी अकुर मनरूपी बीजते उपजे नहीं, जैसे भूना बीज अकुर नहीं लेता, तैसे वासनाते रहित मन शरीरको नहीं धारता ॥ इति श्रीयो० उत्पत्तिप्रकरणे वासनात्यागवर्णनं नाम एकोनसप्ततितम सर्ग. ॥ ६९ ॥

धान है, ताते दृढ पुरुषार्थकरि मनके साथ मनको मारो, तिसकरि जगद्भ्रम नष्ट होजावैगा ॥ हे मुनीश्वर! जिसको स्वरूपका प्रमाद होता है, तिसको क्षणविषे जगद्भ्रम दृढ हो जाता है, जैसे बालकको क्षणविषे वैताल भासि आता है, तैसे प्रमादकरि जगत् भासता है ॥ हे मुनीश्वर! मनरूपी कुलाल है, अरु वृत्तिरूपी मृत्तिका है, तिस मनकरि वृत्ति अनेक आकार क्षणविषे धारती है, जैसे मृत्तिका कुलालकरि घटादिक अनेक आकारको धारती है, तैसे निश्चयके अनुसार वृत्ति अनेक आकारोंको पाती है, जैसे सूर्यविषे उलूकादिक भावनाकरिकै अंधकारको देखते है, अरु तिनको चद्रमाकी किरणैभी भावनाकरि अग्निरूप भासती है, जिनको विषविषे अमृतकी भावना होती है, तिनको विष भी अमृतरूप होइ भासता है, इसीप्रकार कटुक अम्ल नोन भी भावनाके अनुसार भासता है, जैसा मनविषे निश्चय होता है तैसाही इसको भासता है, मनरूपी बाजीगर है, जैसी रचना चाहता है तैसी रच लेता है, अरु मनका रचा जगत है सो सत्य नहीं अरु असत्य भी नहीं, प्रत्यक्ष भापणकरि सत्य है असत्य नहीं, अरु नष्टभावते असत्य है, सत्य नहीं, अरु सत्य असत्य भी मनकरिकै भासता है, वास्तव कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनोमाहात्म्यवर्णन नाम अष्टषष्टितम सर्ग. ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९.

वासनात्यागवर्णनम्।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार प्रथम ब्रह्माजीने मुझको कहा था, सो मैंने अब तुझको कहा है, जो प्रथम ब्रह्म अहं शब्द पदविषे स्थित था, तिसविषे चित्त हुआ, अर्थ यह जो अहं अस्मि चेतनताका लक्षण हुआ, तिसकी जब दृढ़ता हुई, तब मन हुआ, तिस मनने पचतन्मात्राकी कल्पना करी, सो तेजाकार ब्रह्मा परमेष्ठी कहाता

हैं ॥ हे रामजी! सो ब्रह्माजी मनरूप है, अरु मनही ब्रह्मारूप है, तिसका रूप संकल्प है, बहुरि आगे जैसा सकल्प करता है, तैसाही होता है, तिस ब्रह्माने एक अविद्याशक्ति कल्पी है, अनात्मविषे आत्माभिमान करना इसका नाम अविद्या है, बहुरि अविद्याकी निवृत्ति विद्या कल्पी, इसीप्रकार पहाड़, तृण, जल,समुद्र, स्थावर, जंगम पूर्ण जगत्को उत्पन्न किया. इसप्रकार ब्रह्मा हुआ, अरु इसप्रकार जगत् हुआ, जैसे तुमने कहा सो जगत् कैसे उपजता है, अरु कैसे मिटजाता है सो श्रवण करहु, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, अरु समुद्रहीविषे लीन होते हैं, तैसे सपूर्ण जगत् ब्रह्मविषे उपजता है, अरु ब्रह्महीविषे लीन होता है ॥ हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो अहंकार उल्लेख हुआ है, सो मन है, अरु सोई ब्रह्मा है, तिसहीने नानाप्रकार जगत् रचा है, सो सर्व चित्त शक्ति पसरी है सो चित्तके फुरने करि, नानात्व भासता है. हे रामजी! जेते कछु जीव हैं,तिन सर्वोंविषे आत्मसत्ता स्थित है,परंतु अपने स्वरूपके प्रमाद करिके पड़े भटकते है,जैसे वायु करिके वनके कुजोविषेसूखे पात भटकते है तैसे कर्मरूपी वायुकरि जीव भटकते है, अध अरु ऊर्ध्वविषे घटीयन्त्रकी नाईं अनेक जन्मोंको धरते हैं, जब काकतालीवत् सत्संगकी प्राप्ति होवै, अरु अपना पुरुषार्थ करै, तब मुक्त होवै, इसकी जबलग प्राप्ति नहीं भई तबलग कर्मरूपी जेवरीसाथ बाँधेहुए अनेकजन्मविषे भटकते है, जब ज्ञानकी प्राप्ति होवै तबही दृश्यभ्रमते छूटैं, अन्यथा न छूटैंगे ॥ हे रामजी! इसप्रकार ब्रह्माते जीव उपजते है अरु मिटते हैं, अनत संकटोंका कारण वासनाही नानाप्रकारके भ्रम दिखाती है, अरु जगत्रूपी वनको जन्मरूपी वेतालवेलि वासना जलकरि बढती है, जब सम्यक्ज्ञान प्राप्त होवै; तब सोई कुठारकरिकै काटो, जब मनविषे वासनाका क्षोभ मिटै, तब शरीररूपी अकुर मनरूपी बीजते उपजै नहीं, जैसे भूना बीज अकुर नहीं लेता, तैसे वासनाते रहित मन शरीरको नहीं धारता ॥ इति श्रीयो० उत्पत्तिप्रकरणे वासनात्यागवर्णन नाम एकोनसप्ततितम सर्ग ॥ ६९ ॥

धान है, ताते दृढ पुरुषार्थकरि मनके साथ मनको मारो, तिसकरि जगद्भ्रम नष्ट होजावैगा ॥ हे मुनीश्वर! जिसको स्वरूपका प्रमाद होता है, तिसको क्षणविषे जगद्भ्रम दृढ हो जाता है, जैसे बालकको क्षणविषे वैताल भासि आता है, तैसे प्रमादकरि जगत् भासता है ॥ हे मुनीश्वर! मनरूपी कुलाल है, अरु वृत्तिरूपी मृत्तिका है, तिस मनकरि वृत्ति अअनेक आकार क्षणविषे धारती है, जैसे मृत्तिका कुलालकरि घटादिक अनेक आकारको धारती है, तैसे निश्चयके अनुसार वृत्ति अनेक आकारोंको पाती है, जैसे सूर्यविषे उलूकादिक भावनाकरिकै अंधकारको देखते हैं, अरु तिनको चंद्रमाकी किरणैंभी भावनाकरि अग्निरूप भासती है, जिनको विषविषे अमृतकी भावना होती है, तिनको विष भी अमृतरूप होइ भासता है, इसीप्रकार कटुक अम्ल नोन भी भावनाके अनुसार भासता है, जैसा मनविषे निश्चय होता है तैसाही इसको भासता है, मनरूपी बाजीगर है, जैसी रचना चाहता है तैसी रच लेता है, अरु मनका रचा जगत है सो सत्य नहीं अरु असत्य भी नहीं, प्रत्यक्ष भापणकरि सत्य है असत्य नहीं, अरु नष्टभावते असत्य है, सत्य नहीं, अरु सत्य असत्य भी मनकरिकै भासता है, वास्तव कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनोमाहात्म्यवर्णन नाम अष्टषष्टितम सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९

वासनात्यागवर्णनम्।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार प्रथम ब्रह्माजीने मुझको कहा था, सो मैंने अब तुझको कहा है, जो प्रथम ब्रह्म अहं शब्द पदविषे स्थित था, तिसविषे चित्त हुआ, अर्थ यह जो अहं अस्मि चेतनताका लक्षण हुआ, तिसकी जब दृढता हुई, तब मन हुआ, तिस मनने पंचतन्मात्राकी कल्पना करी, सो तेजाकार ब्रह्मा परमेष्ठी कहाता

है ॥ हे रामजी! सो ब्रह्माजी मनरूप है, अरु मनही ब्रह्मारूप है, तिसका रूप संकल्प है, बहुरि आगे जैसा संकल्प करता है, तैसाही होता है, तिस ब्रह्माने एक अविद्याशक्ति कल्पी है, अनात्मविषे आत्माभिमान करना इसका नाम अविद्या है, बहुरि अविद्याकी निवृत्ति विद्या कल्पी, इसीप्रकार पहाड़, तृण, जल,समुद्र, स्थावर, जगम पूर्ण जगत्को उत्पन्न किया. इसप्रकार ब्रह्मा हुआ, अरु इसप्रकार जगत हुआ, जैसे तुमने कहा सो जगत् कैसे उपजता है, अरु कैसे मिटजाता है सो श्रवण करहु, जैसे समुद्रविषे तरग उपजते हैं, अरु समुद्रहीविषे लीन होते है, तैसे सपूर्ण जगत् ब्रह्मविषे उपजता है, अरु ब्रह्महीविषे लीन होता है ॥ हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो अहकार उल्लेख हुआ है, सो मन है, अरु सोई ब्रह्मा है, तिसहीने नानाप्रकार जगत् रचा है, सो सर्व चित्त शक्ति पसरी है सो चित्तके फुरने करि, नानात्व भासता है हे रामजी! जेते कछु जीव हैं,तिन सर्वोविषे आत्मसत्ता स्थित है,परतु अपने स्वरूपके प्रमाद करिकै पड़े भटकते है,जैसे वायु करिकै वनके कुजोविषेसूखे पात भटकते है तैसे कर्मरूपी वायुकरि जीव भटकते है, अध अरु ऊर्ध्वविषे घटीयन्त्रकी नाई अनेक जन्मोंको धरते हैं, जब काकतालीयवत् सत्संगकी प्राप्ति होवे, अरु अपना पुरुपार्थ करै, तब मुक्त होवै, इसकी जबलग प्राप्ति नही भई तबलग कर्मरूपी जेवरीसाथ बाँधेहुए अनेकजन्मविषे भटकते है, जब ज्ञानकी प्राप्ति होवै तबही दृश्यभ्रमते छूटैं, अन्यथा न छूटैंगे ॥ हे रामजी! इसप्रकार ब्रह्माते जीव उपजते है अरु मिटते है, अनत सकटोंका कारण वासनाही नानाप्रकारके भ्रम दिखाती है, अरु जगत्रूपी वनकी जन्मरूपी वेतालवेलि वासना जलकरि बढती है, जब सम्यक्ज्ञान प्राप्त होवै; तब सोई कुठारकरिकै काटो, जब मनविषे वासनाका क्षोभ मिटै, तब शरीररूपी अकुर मनरूपी बीजते उपजे नहीं, जैसे भूना बीज अकुर नहीं लेता, तैसे वासनाते रहित मन शरीरको नहीं धारता ॥ इति श्रीयो० उत्पत्तिप्रकरणे वासनात्यागवर्णनं नाम एकोनसप्ततितम सर्ग ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ७०.

सर्वब्रह्मप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेती कछु भूतजाती हैं, सो ब्रह्मते उपजी है, जैसे समुद्रते तरंग बुद्बुदे कई वडे कई छोटे, कई मध्यमभावके होते हैं, सो सब जल है, तैसे यह जीव ब्रह्मते उपजे हैं, सो ब्रह्मरूप हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, जैसे अग्निते चिनगारे उपजते हैं, तैसे ब्रह्मते जीव उपजते हैं, जैसे कल्पवृक्षकी मजरी नानारूपको धरती है, तैसे ब्रह्मते जीव हुए है, जैसे चद्रमाते किरणोंका विस्तार होता है, अरु जैसे वृक्षते पत्र, फूल, फल आदिक होते है, तैसे ब्रह्मते जीव होते हैं जैसे सुवर्णते अनेक भूषण होते हैं, तैसे ब्रह्मते जगत् होता है, जैसे झरनोंते जलके कणके उपजते हैं, तैसे परमात्माते भूत उपजते है, जैसे आकाश एकही है, तिसविषे घटमठकी उपाधिकरि घटाकाश मठाकाश कहाता है, तैसे सवेदनके फुरणेकरि जीवकल्पना होती है, जैसे जलही द्रवताकरिकै तरग आवर्तरूप होइ भासता है, तैसे ब्रह्मही संवेदनकरिकै जगद्रूप होइ भासता है, द्रष्टा दर्शन दृश्य सब ब्रह्मते उपजा है, जैसे सूर्यके तेजकरि मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे सवेदनकरिकै ब्रह्मविषे द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटी भासती है, वास्तवते द्रष्टा दर्शन दृश्य कल्पना कोऊ नहीं। जैसे चंद्रमा अरु शीतलताविषे कछु भेद नहीं, जैसे सूर्य अरु ... द नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, ... ह, अरु समुद्रमेंही लीन होते हैं, तैसे जीव ब्र... ब्रह्मही ... होते हैं ॥ कई सहस्रों जन्मके अ... बहुत जन्मको प्राप्त होइ ... है, अरु ... होइ भासते हैं ... सप्ततित...

एकसप्ततितमः सर्गः ७१.

कर्मपौरुषयोरैक्यप्रतिपादनम्।

हे रामजी ! कर्त्ता अरु कर्म यह अभिन्नरूप है, अरु इकट्ठे ही ब्रह्मते उत्पन्न हुए हैं, जैसे फूल अरु सुगंध वृक्षते इकट्ठे उत्पन्न होते हैं, तैसे कर्त्ता अरु कर्म इकट्ठे उत्पन्न हुए है,जब जीव सब संकल्पकलनाको त्यागता है, तब निर्मल ब्रह्म होता है,जैसे आकाशविषे नीलता भासती है तैसे आत्माविषे जगत्कल्पना फुरती है, आत्मा अद्वैत सदा अपने आपविषे स्थित है, अरु यह भी अज्ञानीके बोध जतावनेको कहता है, जो जीव ब्रह्मते उपजे हैं, अरु इसप्रकार सात्त्विक राजस तामस गुणोंके भेद स्थित हैं, जो ज्ञानवान् है, तिन्होंप्रति यह कहना भी नहीं बनता, जो ब्रह्मते उपज है, तौ भी दूसरा कछु नहीं, दूसरेको अंगीकार करिकै उपदेश करता है, वास्तवते ब्रह्मसत्ताविषे कोऊ कल्पना नहीं, सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनको सदा ऐसेही प्रत्यक्ष भासता है, अरु अज्ञानी दूरते दूर चले जाते हैं, तिनको सुमेरु अरु मंदराचलकी नाईं आत्मा अरु जीवका अंतर भासता है, जैसे वसंतऋतुकरिकै नानाप्रकारके नूतन अंकुर उपजते हैं, अरु वसंतऋतुके अभाव हुए नष्ट होते हैं, तैसे चित्तके फुरणेकारि जीवराशि उपजते हैं, अरु चित्तके अफुर हुए नष्ट होते हैं, मन अरु कर्मविषे भेद कछु नहीं, मन अरु कर्म इकट्ठेही उत्पन्न होते हैं, जैसे वृक्षसों फल अरु सुगंध इकट्ठे उपजते हैं, तैसे आत्मासों मन अरु कर्म इकट्ठेही उपजते हैं, बहुरि आत्माविषे लीन होता है ॥ हे रामजी ! दैत्य, नाग, मनुष्य, देवता आदिक जेते कछु जीव तुझको भासते हैं, सो आत्माते उपजे हैं, अरु बहुरि आत्माहीविषे लीन होते हैं, इनका उत्पत्तिकारण अज्ञान है, आत्माके अज्ञानकरिकै भटकते हैं, जब आत्मज्ञान उपजता है, तब सब भ्रम निवृत्त हो जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो पदार्थ शास्त्रप्रमाणकरिकै सिद्ध है, सोई सत्य है, अरु शास्त्रप्रमाण वही है, जिसविषे रागद्वेषते रहित निर्णय है, अरु अमानित्व अदंभित्व आदिक गुण प्रतिपादन किये हैं, तिस मत दृष्टिकरि जो उपदेश

किया है, सो पदार्थ प्रमाण है, तिनके अनुसार जो जीव विचरते हैं, सो भली उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं, अरु जो शास्त्रप्रमाणते विपरीत वर्तते हैं, सो अशुभगतिको प्राप्त होते हैं, अरु लोकविषे भी प्रसिद्ध सुनाता है कि, कर्मोंके अनुसार जीव वर्त्तते उपजते हैं, जैसे बीजते अंकुर उपजता है, सो जैसा बीज होता है, तैसाही तिसते अंकुर उपजता है, तैसे जैसा कर्म होता है, तैसी गति इसको प्राप्त होती है, अरु कर्त्ताकरिकै कर्म होता है, यह परस्पर अभिन्न हैं, इनका इकट्ठा होना क्योंकरि होवै, कर्ताकरि कर्म होते हैं, अरु कर्मकरिकै गति प्राप्त होती है, अरु तुम कहते हौ मन अरु कर्म ब्रह्मते इकट्ठेही उत्पन्न हुए हैं, इसकारिकै शास्त्रके वचन अरु लोकके वचन अप्रमाण होते हैं, हे देवताविषे श्रेष्ठ ! यह संशय दूर करनेको तुमही योग्य हौ, जैसे सत्य है, तैसेही कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह प्रश्न तुझने भला किया है, तिसका उत्तर मैं तुझको कहता हौं, जिसके श्रवण कियेते तुझको ज्ञानप्रकाश आवैगा ॥ हे रामजी ! शुद्ध संवित्मात्र आत्मतत्त्वविषे जो सवेदन फुरा सो कर्मका बीज मन हुआ, सो सबका कर्मरूप है, तिस बीजते सब फल होते हैं, ताते कर्म अरु मनमें कछु भेद नहीं, जैसे सुगंध अरु कमलविषे कछु भेद नहीं, तैसे मन अरु कर्मविषे कछु भेद नहीं, मनविषे सकल्प होता है, सो अकुर कर्म ज्ञानवान् कहते है ॥ हे रामजी ! पूर्व इसका देह मनही है, तिस मनरूपी शरीरसाथ कर्म होते है, सो फलपर्यंत सिद्ध होता है, मनविषे जो फुरना होता है, सोई क्रिया है, अरु सोई कर्म है, तिस मनकरि किया कर्म अवश्य सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं होता ऐसा पर्वत कोऊ नहीं, न आकाश है, न कोऊ लोक है, जिसको प्राप्त होइकरि कर्मो ते छूटे, जो कछु मनके संकल्पसाथ किया है, सो अवश्यमेव सिद्ध होता है, पूर्व जो पुरुषार्थ प्रयत्न कछु किया है, सो निष्फल सहीं होता, अवश्यमेव तिसकी प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मविषे जो चैत्यता हुई है, सोई मन है, अरु मन कर्मरूप है॥ अरु सर्व लोकोंका बीज है, इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जब [illegible] देशते देशांतरको जाने लगता है, तब जानेका संकल्प ले जाता [illegible] है, सो चलना कर्म है, ताते फुरणरूप कर्म हुआ, अरु फुरणारूप [illegible] [illegible]का है,

मन अरु कर्मविषे भेद कछु नही, अक्षोभ समुद्ररूपी ब्रह्म है, तिसविषे द्रवतारूपी चैत्यता है, सो चैत्यता जीवरूप है, अरु तिसहीका नाम मन है, सो मन कर्मरूप है, जैसे मन फुरता है, सोई सिद्ध होता है, जो कछु मनकरिकै कार्य करता है, सोई सिद्ध होता है, शरीरकरि चेष्टा सिद्ध नहीं होती, इसकारणते कहा है कि, मन अरु कर्मविषे भेद कछु नहीं, भिन्न भिन्न भासते है, सो मिथ्या कल्पना मूर्ख करते हैं, बुद्धिमान् नहीं करते, जैसे समुद्र अरु तरंगोंविषे मूर्ख भेद मानते है, बुद्धिमान्को भेद कछु नहीं भासता, प्रथम परमात्मासों मन अरु कर्म इकट्ठेही उपजे हैं, जैसे समुद्रसे तरंग द्रवताकरि उपजते हैं, तैसे चित्तके फुरणेकरि कर्म आत्माते उपजते हैं, जैसे तरंग समुद्रविषे लीन होते है, तैसे मन अरु कर्म परमात्माहीविषे लीन होते है, जैसे जो पदार्थ दर्पणके निकट होते हैं, तैसेही प्रतिबिंब भासते हैं, तैसे जो कछु मनका कर्म होता है, सो आत्मारूपी दर्पणविषे प्रतिबिंब भासता है, जैसे बर्फका रूप शीतल है, शीतलताविना बर्फ नहीं होता, तैसे चित्त कर्म है, कर्मोविना चित्त नहीं होता, जब चित्तसों स्पंदता मिट जाती है, तब चित्त भी नष्ट हो जाता है, चित्तके नष्ट हुए कर्मभी नष्ट हो जाते हैं, अरु कर्मके नाश हुए मनका नाश होताहै जो पुरुष मनते मुक्त हुआहै, सोई मुक्तहै, जो चित्तते मुक्त नहीं हुआ सो बंधनमें है, एकके नाश हुए दोनोंका नाश होता है, जैसे अग्निके नाश हुए उष्णता भी नाश होती है, अरु जब उष्णता नाश होती है, तब अग्नि भी नाश होता है, तैसे मनके नष्ट हुए कर्म भी नाश होते है, अरु कर्म नाश हुए मन भी नष्ट होता है, एकके अभाव भये दोनोंका अभाव होता है, कर्मरूपी चित्त है, अरु चित्तरूपी कर्म है, परस्पर अभेदरूप हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे कर्मपौरुषयोरैक्यप्रतिपादन नाम एकसप्ततितम सर्ग ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितम सर्ग ७२.

मनोसंज्ञाविचारवर्णनम्।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मन भावनामात्र है, भावना नाम फुरणेका है, अरु फुरणा क्रियारूप है, तिस क्रिया फुरणेकरि सर्व फलकी प्राप्ति

होती है॥राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! इस मनका रूप विस्तारिकै कहो, जड़ अजड़रूप मनकाहै, तिसको विशेषकरि कहो ॥ वसिष्ठउवाच॥ हेरामजी! आत्मतत्त्व अनंतरूप सर्वशक्तिमान् है, जब तिसविषे संकल्पशक्ति फुरती है, तब तिसको मन कहते हैं, जड़ अजड़के मध्यविषे दोलायमान होता है, तिस मिश्रितरूपका नाम मन है ॥ हे रामजी! भावरूप जो पदार्थ है, तिसके मध्यविषे जो सत्य असत्यका निश्चय करता है, तिसका नाम मन है, तिसविषे जो यह निश्चय करना कि, मैं चिदानंदरूप नहीं, मैं कृपण हौ, देहसों मिलिकरि ऐसे फुरता है, सो मनका रूप है, जो कल्पना करता रहता है, इसते रहित मन नहीं होता, जैसे गुणोंविना गुणी नहीं रहता, तैसे कर्म कल्पनाविना मन नहीं रहता, जैसे उष्णताकी सत्ता अग्निते भिन्न नहीं पड़ती, तैसे कर्मोंकी सत्ता मनते भिन्न नहीं पाते, तथा मन अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं॥हे रामजी! मनरूपी बीज है, तिसते संकल्परूपी नानाप्रकारके फूल होते हैं, तिसकरिकै नानाप्रकारके शरीर होते हैं, तिसकरि संपूर्ण जगत् देखता है, जैसी जैसी मनविषे वासना होती है, तिसके अनुसार फलकी प्राप्ति होती है, ताते मनका फुरणाही कर्मोंका बीज है, तिसकरि जो भिन्न क्रिया होती हैं, सो तिस वृक्षकी शाखा हैं अरु नानाप्रकारके विचित्र फलहै ॥ हेरामजी! जिस ओर मनका निश्चय होता है, तिसी ओर कर्म इंद्रियां भी प्रवर्तती हैं, अरु जो कर्म है, सोई मनका फुरणा है, अरु मनहीं फुरणरूप है इसी कारणते कहा है, कि मन कर्मरूप है, तिस मनकी एती संज्ञा कही हैं, मन, बुद्धि, अहंकार, कर्म, कल्पना, स्मृति, वासना, अविद्या, इंद्रियांपर्यंत प्रकृति, माया इत्यादिक कल्पना संसारका कारण है, चित्तको जब चैत्यका संयोग होता है, तब संसारभ्रम होता है, अरु इह जेती संज्ञा तुझको कही हैं, सो चित्तके फुरणेकरिकै काकतालीयवत् अकस्मात् फुरी है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! अद्वैत तत्त्व परम संवित् आकाशविषे एती कलना कैसे हुई है, अरु तिनविषे अर्थरूप दृढता कैसे हुई है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शुद्ध संवित्मात्र जो सत्ता है, सो फुरणेकी नाईं स्थित होवै तब तिसका नाम मन है, अरु जब वह वृत्ति निश्चयरूप होवै है, जो भाव अभाव पदार्थोंको निश्चय करत भई,

जो यह पदार्थ ऐसा है, यह पदार्थ ऐसा है, तिस वृत्तिका नाम बुद्धि है, अनात्मविषे आत्मभाव परिच्छिन्नरूप जब मिथ्या अभिमान दृढ हुआ, तब तिसका रूप अहंकार हुआ, सोई मिथ्या अहवृत्ति संसारबंधनका कारण है, किसी पदार्थको ग्रहण करती है, किसीको त्याग करती है, बालककी नाईं विचारते रहित धावती है, तिसका नाम चित्त है, अरु वृत्तिका फुरणा धर्म है, तिस फुरणेविषे फलको आरोप करि तिसकी ओर धावना, अरु कर्तव्यका अभिमान फुरै तिसका नाम कर्म है, अरु पूर्व जो कार्य किये हैं, तिस पदार्थको त्यागिके तिसका सस्कार चित्तविषे धारिकारि स्मरण करना, तिसका नाम स्मृति है, अथवा पूर्व तिसका अनुभव नहीं हुआ अरु हृदयविषे फुरि आवै, कि यह पूर्व मैंने किया था, तिसका नाम भी स्मृति है, अरु जिस पदार्थका अनुभव होवै, तिसका सस्कार हृदयविषे दृढ होवै, तिसके अनुसार जो चित्त फुरे, तिसका नाम वासना है ॥ हे रामजी आत्मतत्त्व अद्वैत है, तिसविषे अविद्यमान द्वैत विद्यमान होइकारि भासता है, जिसकारि तिसका नाम अविद्या है, अरु अपने स्वरूपको भुलायकारि अपने नाशके निमित्त स्पद चेष्टा करता है, अरु शुद्ध आत्माविषे विकल्प उठते है, तिसका नाम मूलअविद्या है अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध इन पांचों इंद्रियाको दिखावनेहारा परमात्मा है, अरु अद्वैततत्त्व आत्माविषे जिस दृढ जालको रचा है, तिस स्पदकलनाका नाम प्रकृति कहाता है अरु असत्यको सत्यकी नाईं दिखाती है,अरु सत्यको असत्यकी नाईं दिखाती है, सो माया कहाती है, अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध ये कर्म हैं, अरु जिसकारि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध होते हैं, सो कर्ता कहाता है, सोई कार्य कारण कहाता है, अरु शुद्ध चेतन चैत्यको प्राप्त होता है, सो कलनाकी नाईं होता है, तिस फुरणवृत्तिको विपर्यय कहते हैं, सो फुरणेकरिके सकल्पजाल उठती है, तब इसको जीव कहाता है, मन भी इसका नाम है, चित्त भी इसका नाम है, बंध भी इसका नाम है ॥ हे रामजी! परमार्थशुद्ध चित्तही चैत्यके सयोगकारि स्वरूपते बर्फकी नाईं स्थित भया है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह मन जड है, किंवा चेतन है ? सो एकरूप मुझको कहो, जो मेरे हृदयविषे स्थित होवै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

हे रामजी ! मन जड नहीं, अरु चेतन भी नहीं, जडचेतनकी जो गांठ है, मध्यभाव तिसका नाम मन है अरु संकल्पविकल्पविषे कल्पितरूप मन है, तिस मनते यह जगत् उत्पन्न हुआ है, जड़ अरु चेतन दोनों भावविषे दोलायमान है, अर्थ यह जो कबहू जडभावकी ओर आता है, कबहूं चेतनभावकी ओर आता है, तिसका नाम मन है, शुद्ध चेतनमात्राविषे जो फुरणा हुआ,तिसका नाम मन है, मन बुद्धि, चित्त,अहंकार, जीव आदिक अनेक संज्ञाको मनही प्राप्त हुआ है, जैसे एक नटवा स्वांगोंकरिकै अनेक सज्ञाको पाता है, जिसका स्वांगले आता है, तिसी नामकरि कहाता है, तैसे संकल्पकरिकै मन अनेक संज्ञाको पाता है, जैसे पुरुष विचित्र कर्मोंकरि अनेक संज्ञाको पाता है,पाठकरि पाठक कहाता है,रसोईकरि रसोइयाँ कहाता है, तैसे मन अनेक संकल्पकरि अनेक सज्ञाको पाता है ॥ हे रामजी ! यह जो मैंने तुझे चित्तकी अनेक सज्ञा कही हैं,सो अन्यथा अन्यथाकरि बहुत प्रकार वादियोंने नाम रक्खे है, जैसा २ मत है, तैसा २ स्वभाव लेकरि मन बुद्धि इंद्रियोंको मानते है, जो मनको जड़ मानते हैं, अरु जिसको मनते भिन्न मानते है, अरु अहंकारको भिन्न मानते हैं, सो मिथ्या कल्पना करते हैं, नैयायिक कहते हैं, सृष्टि तत्त्वोंके सूक्ष्म परमाणुते उपजती है, जब प्रलय होता है, तब स्थूल तत्त्व लय हो जाते हैं, तिनके सूक्ष्म परमाणु रहते हैं, बहुरि उत्पत्तिकालविषे वही सूक्ष्म परमाणु दूने तिगुने आदिक होइकरि स्थूलताको प्राप्त होते हैं, तिस पाचों तत्त्वोंते सृष्टि होती है, अरु सांख्यमतवाले कहते है, प्रकृति मायाके परिणामते सृष्टि होती है, अरु चार्वाक पृथ्वी, जल, तेज, वायु चारों तत्त्वोंके इकठे होनेकरि सृष्टि उपजती मानते हैं, अरु चारों तत्त्वोंके शरीरको पुरुष मानते है, जब तत्त्व आपोआपविषे बिछुरि जाते है, तब प्रलय होता है, अरु आर्हत औरही प्रकार मानते हैं, बौद्ध वैशेषिक आदिक और और प्रकारकरि मानते है, पांचरात्रिक और प्रकारही मानते हैं, परन्तु सबहीका सिद्धांत एकही ब्रह्म आत्मतत्त्व है, जैसे एकही स्थानके अनेक मार्ग होवैं सो अनेक मार्गोंकरि वही स्थानको पहुँचता है, तैसे अनेक मतोंका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, अरु जो भिन्न भिन्न मत न मानिकै वाद करते

हैं, सो आत्मतत्त्वके अज्ञानकरिकै करते हैं, सिद्धांत सबका एक है, तिस विपे वाद कोऊ नहीं प्रवेश करता ॥ हे रामजी ! जेते कछु मतवाले हैं, सो अपने अपने मतकी ओर मानते है, दूसरेका अपमान करते हैं, जैसे मार्गके चलनेवाले अपने अपने मार्गकी उपमा करते है, दूसरेकी नहीं करते, तैसे मनके भिन्न भिन्न रूप करिकै अनेक प्रकार जगत्को कहते हैं एक मनकी अनेक सज्ञा हुई हैं, जैसे एक पुरुपको अनेक प्रकारकरि कहते है, स्नान करनेते स्नानकर्त्ता, दान करनेते दानकर्ता, तप करनेते तपस्वी, इत्यादि क्रियाकरिके अनेकसज्ञा होती हैं, तैसे अनेक शक्ति मनकी कही हैं, अनेक नामकरी कहता है, मनहीका नाम जीव है, वासनाभी मनहीका नाम है, कर्म भी तिसहीका नाम है ॥ हे रामजी ! चित्तहीके फुरणेकरिकै सपूर्ण जगत् हुआ है, अरु मनहीके फुरणेकरि भासता है, जब वह पुरुप चैत्यके फुरणेते रहित होता है, तब देखता है, तौ भी कछु नहीं देखता अरु यह प्रसिद्ध जानिये जिस पुरुपको शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध जो इंद्रियोंके विपय हैं, सो इष्ट अनिष्टविपे हर्प शोक देते है, जो इष्ट सुखविपे हर्प देते हैं, अनिष्ट दु खविपे शोक होता है, तिसका नाम जीव है, मनहीकरि सिद्ध होता है, सब अर्थोंका कारण मनही है, जो पुरुप चैत्यते छूटा है, सो मुक्तरूप है, अरु जिसको चैत्यका सयोग है, सो बंधनमें बांधा है ॥ हे रामजी ! जो पुरुप इस मनको केवल जड़ मानते है, तिनको अत्यत जड़ जानना, अरु जो पुरुप इस मनको केवल चेतन मानते है, सो भी जड़ हैं, यह मन केवल जड नहीं अरु केवल चेतनभी नहीं, जो एकही मनका रूप होवै, तब सुख दु'ख आदिक विचित्रता न चाहिये, अरु जगत्की लीनता भी नहीं होती जो केवल चतनही रूप होवै तब जगत्का कारण नहीं होता, अरु जो केवल जड़रूप होवै, तब भी जगतका कारण नहीं होता. काहेते कि, केवल जड़ पापाणरूप होता है, सो पापाणते कछु क्रिया नहीं उत्पन्न होती, तैसे केवल जड़ जगत्का कारण नहीं होता, अरु मन केवल चेतन भी नहीं, केवल चेतन आत्मा है, तिसविपे कर्तृत्व आदि कल्पना नहीं होती, ताते मन केवल चेतन भी नहीं, अरु केवल जड़ भी नहीं, चेतन अरु जड़के

भात्रम सोई जगत्का कारण है ॥ हे रामजी ! सब अर्थोंका कारण मन है, जैसे प्रकाश पदार्थोंका कारण है, जबलग चित्त है, तबलग चैत्य भासता है, जब चित्त अचित्त होवै, तब सर्व भूतजाल लीन हो जाते हैं; जैसे एकही जल रसकरिके अनेक रूप होइ भासता है, तैसे एकही मन अनेक पदार्थरूप होइकरि भासता है, अरु अनेक संज्ञा इसकी शास्त्रोंके मतवालोंने कल्पी है, सबका कारण मनही है, अरु मन भी परमदेव परमात्मा सर्व शक्तिकी एक शक्ति है, तिस परमात्माते यह फुरी है, जड़ भाव फुरि बहुरि तिसहीविषे लीन होती है, जैसे बनोहा आपहीसों ततुको पसराता है, बहुरि आपविषे लीन करि लेता है, तैसे परमात्माते जड़ भाव उपजता है ॥ हे रामजी ! नित्य शुद्ध बोधरूप ब्रह्म है, सोई जब प्रकृतभावको प्राप्त होता है, तब अविद्याके वशते नानाप्रकारके जगत्को धारता है, तिसहीके सर्व पर्याय है जीव, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, इत्यादिक संज्ञा मलिनचित्तकी होती है, तिनकी संख्या भिन्न भिन्न वादीने कल्पी हैं, हमको संख्यासाथ क्या प्रयोजन है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनोसंज्ञाविचारो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३.

चित्तोपाख्यानवर्णनम् ।

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह सब जगत् आडंबर मनहीने रचा है, सब मनरूप है, अरु मनही कर्मरूप है, यह तुम्हारे कहनेकरि मैं निश्चय किया है, परंतु इसका अनुभव कैसे होवै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह मन भावनामात्र है, जैसे प्रचंड सूर्यका धूप होता है, सो मरुस्थलविषे जल होय भासता है, तैसे आत्माका आभासरूप मन होता है, तिस मनकरि जेता कछु जगत् भासता है, सो सब मनरूप है, कहूं मनुष्यरूप होइकरि भासता है, कहूं देवता होइके भासता है, कहूं दैत्य, कहूं यक्ष, कहू गंधर्वरूप भया है, नागपुर पत्तन आदिक जेते कछु रूप भासते हैं, सो सबही मनकरि

विस्तारको प्राप्त भये हैं, सो कैसे हैं, तृण अरु काष्ठके तुल्य हैं, तिनके विचारनेकरि क्या है, यह सब मनकी रचना है, सो मन अविचारसिद्ध है विचार कियेते नष्ट होजाता है, मनके नष्ट हुएते परमात्माही शेष रहता है सो साक्षीभूत सर्वपदते अतीत है, अरु सर्वव्यापी सर्वका आश्रयभूत है, तिसके प्रमादकरिकै मन जगत्को रचनेको समर्थ होता है, इस कारणते कहा है, कि मन अरु कर्म एकरूप हैं, अरु शरीरोंका कारण है॥ हे रामजी! जन्म मरण आदिक जेते कछु विकार हैं, सो मनकरिकै भासते हैं, अरु मन अविचारसिद्ध है, विचार कियेते लीन हो जाता है,जब मन लीन हुआ, तब कर्म आदिक भ्रम भी सब नष्ट हो जाता है जो इस भ्रमते छूटा सो मुक्त है, सो पुरुष बहुरि जन्म अरु मरणविषे नहीं आता, सब भ्रम उसका नष्ट हो जाता है॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! तीन प्रकारक सात्त्विकी राजसी तामसी जीव तुमने कहे, तिनका कारण प्रथम सत्य असत्यरूपी मन कहा, सो मन अशुद्धरूप शुद्ध चिन्मात्र तत्त्वते उपजत भया, अरु उपजिकरि बडे विस्ताररूपी विचित्र जगत्को कैसे प्राप्त भया?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! आकाश तीन हैं, एक चिदाकाश है, अरु एक चित्ताकाश है, तीसरा भूताकाश है, सो आकाश भावकरिकै समानरूप है अरु अपनी अपनी सत्ताहुई है चिदाकाश चित्ताकाशकरि नित्य उपलब्धरूप है, चेतनमात्र सबके अंतर बाहिर स्थित है, अरु अनुमातारूप है, बोधरूप है, सर्व, भूतोंविषे सम व्यापी रहा है सो चिदाकाश है अरु जो भूतोंका कारणरूप है अरु आप जिसने विस्तारा है सो चित्ताकाश कहाता है, अरु दश दिशाको विस्तारिकरि जिसका वपु परिच्छेदको नहीं प्राप्त होता, अरु शून्य है स्वरूप जिसका, अरु पवन आदिक भूतोंका आश्रयभूत है, सो भूताकाश कहाता है॥ हे रामजी! चित्ताकाश अरु भूताकाश ये दोनों चिदाकाशते उपजे हैं, अरु सर्वका कारण हैं, जैसे दिनकरि सब कार्य होते हैं, तैसे चित्तकरि सब पदार्थ प्रगट होते हैं, सो चित्त जड भी नहीं अरु चेतन भी नहीं॥ आकाश भी तिसते उपजता है॥ हे रामजी! तीन आकाश भी अप्रबोधका विषयहै ज्ञानीका विषय नहीं, अरु ज्ञानवान् तीन आकाश कहते हैं, सो

अज्ञानीको उपदेश जतावनेके निमित्त कहते हैं, ज्ञानवान्‌को एक परब्रह्म पूर्ण सर्व कल्पनाते रहित भासता है, द्वैत अरु अद्वैत शब्द भी उपदेशके निमित्त कहते हैं, प्रबोधका विषय कोई नहीं ॥ हे रामजी! जबलग प्रबोध आत्मा नहीं भया, तबलग मैं तीन आकाश कहता हौं, वास्तवते कल्पना कोऊ नहीं, जैसे दावाग्नि लगेते वन जल जाता है, सो शून्य जैसा भासता है, तैसे ज्ञानाग्निकरि जले हुए चित्ताकाश अरु भूताकाश चिदाकाशविषे शून्य कल्पना भासती है, सो फुरणेद्वारा भासती है, मलिन चेतन जो चैत्यताको प्राप्त होता है, इसकरि यह जगत् भासता है, जैसे इन्द्रजालकी बाजी होती है, तैसे यह जगत् है, बोधहीनको यह जगत् भासता है, जैसे असम्यक्‌दर्शीको सीपीविषे रूपा भासता है, तैसे अज्ञानीको जगत् भासता है, आत्मतत्त्व नहीं भासता, जब दृश्यभ्रम नष्ट हो जावै, तब मुक्तरूप होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यान नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४.

चित्तोपाख्यानवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो कछु उपजा है, सो तू चित्तते उपजा जान, सो जैसे उपजा तैसे उपजा, अब तू इसके निवृत्तिवास्ते यत्न करिकै आत्मपदविषे चित्तको जोड़, तब यह जगद्भ्रम नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी! यह इस चित्तऊपर एक चित्ताख्यान हुआ है सो श्रवण करु, जैसे मैंने देखा है, तैसे तुझको कहता हौं, एक महाशून्य वन था, तिसके कोऊ कोणविषे यह आकाश स्थित है, तिस उजाडविषे मैं एक पुरुष देखत भया, सो कैसा था, कि सहस्र जिसके कर अरु लोचन थे, अरु चचलरूप अरु व्याकुलरूप अरु बडा आकार जिसका, अरु सहस्रही भुजाके साथ अपने शरीरको ताडना करै, मारै, बहुरि आपही कष्टमान होइकरि भागै, तब बहुतेरे योजनोंपर चला जावै, अरु दौड़ता दौड़ता थक पड़ै, अग चूर्ण हो जावै, एक कृष्ण-

रात्रिकी नाई भयानकरूप कूपविषे जाय पड़े, जब केताक काल व्यतीत होवे, तब वहांते निकसिकरि करञ्जूवेके वनविषे जाय पडे, तहां कंटक चूभै तब कष्ट पावे, जैसे पतंग दीपकको सुखरूप जानिके तिसविषे प्रवेश करे अरु नाश पावे तैसे वह जहां सुखरूप जानिके तिसविषे प्रवेश करे तहांही कष्ट पावे, बहुरि करञ्जूवेके वनविषे जाइ पड़े, बहुरि निकसिकरि आपको हाथोंकरि प्रहार करे तब तिसकरि कष्टमान होवे; बहुरि दौड़ता दौड़ता अंधे कूपविषे जाय पड़े, वहांते निकसिकरि कदलीके वनविषे जाय प्रवेश करे, तिसते निकसिकरि बहुरि आपको प्रहार करने लगै, जब कदलीवनविषे जावे, तब कछुक शांतिवान् होवे, अरु प्रसन्नताको प्राप्त होवे, बहुरि दौड़े, आपको प्रहार करे, कष्टमान होइके दूरते दूर जाइ पड़े, इसीप्रकार अपना किया आपही कष्ट भोगे, इसप्रकार भटकता फिरे, तब मैं उसको पकडिकरिके पूंछत भया, अरे तू कौन है, अरु क्या करता है, अरु किसनिमित्त करता है? अरु तेरा नाम क्या है? अरु यहां क्यों मिथ्या जगत्विषे मोहको प्राप्त हुआ है॥ हे रामजी! जब इसप्रकार मैंने पूछा, तब वह मुझको कहत भया, कि न मैं कछु हौं, न कछु यह है, न मैं कछु करता हौं, अरु तू तौ मेरा शत्रु है, तेरे देखनेकरि मैं नाशको प्राप्त होता हौं, इसप्रकार वह कहिकरि अपने अंगोंको देखत भया, देखे अरु रुदन करे क्षणविषे उसका वपु नाश होने लगा, मेरे देखते देखते वह पुरुष अपने अंगोंको त्यागत भया, प्रथम उसका शीश गिर पड़ा, बहुरि भुजा गिर पड़ीं, बहुरि वक्षस्थल, बहुरि उदर इसप्रकार क्रमकरिके वह पुरुष अपने शरीरको त्यागत भया, जैसे स्वप्नते जागे स्वप्नका शरीर नष्ट होता है, तब मैं नीतिशक्तिको विचारिकरिके आगे गया, तब आगे एक पुरुष मैंने देखा, सो भी इसीप्रकार आपको आपही प्रहार करे, अरु कष्टमान होयके दौडे, जाइकरि एक कूपविषे गिर पडे, वहांते निकसिकरि बहुरि प्रहार करे, बहुरि वनविषे जावे, कहूं करञ्जूवेके वनविषे, कबहूं कदलीके वनविषे जावे, जब कदलीवनविषे जावे, तब पुष्ट होवे, अरु हर्षको प्राप्त होवे, जब वहांते निकसै तब बहुरि आपको प्रहार करे, बहुरि दौड़े,

करजूवे कदली आदिक वनोंविषे जाय पड़े, तब उसने मुझको देखा, देखिकै प्रसन्न भया, अरु वड़े हर्षको प्राप्त भया, अरु हँसा तब तिसको रोकिकै मैंने उसी प्रकार पूँछा, जब मैने पूछा, तब वह भी मेरे देखते देखते अपने अंगोंको त्यागत भया, त्यागते कष्टमान् हुआ, अरु हर्षमान् भी हुआ, उसको देखिकरि मैं वहुरि आगे गया, तब और एक पुरुष देखा, वह भी इसी प्रकार करता है, अपने हाथोंसे आपको प्रहार करे, वड़े अधकूपविषे जाय पड़े ॥ हे रामजी ! चिरकालपर्यंत मैं उसको देखत भया, जब कूपते निकसा तब मैं उसपर प्रसन्न होकरि उससों पूछत भया, जैसे उसे पूछा था, तब वह मूर्ख मुझको न जानिकै दूरते त्यागि गया और जो कछु अपना व्यवहार था, तिसविषे जाइ लगा, तिसके अनंतर चिरकालपर्यंत मैं उस वनविषे विचरता रहा, तब उसी प्रकार मैं वहुरि पुरुष देखता रहा, जो आपही आपका नाश करे, जिसको मैं पूछौं, अरु वह मेरे पास आवे, तिसको मैं कष्टते छुडाइ देऊं, अरु आनदको प्राप्त करौं, अरु मेरे निकटही न आवे, मुझको त्यागि जावे, उस अटवीविषे तिसका वही हाल होवे, अरु व्यवहार करे ॥ हे रामजी ! वह अटवी तुमने भी देखी है, परंतु तुमने वह व्यवहार नहीं किया और उस अटवीविषे तू जाने योग्य भी नहीं, तू बालक है, अरु वह अटवी महा भयानक है, तिसको प्राप्त हुए कष्टते कष्टको प्राप्त होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यान नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमःसर्गः ७५.

चित्तोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! वह कौन अटवी है, अरु मैंने कव देखी है, अरु वेह कौन हैं, अरु वे पुरुष अपने नाशके निमित्त क्या उद्यम करते थे, सो कहो ॥ वसि [illegible] ! वह अटवी दूर नहीं अरु

वे पुरुष भी दूर नहीं, यह जो गंभीर वड़ा आकाररूप ससार है, सो अटवी है, कैसी अटवी है, जो शून्य है, अरु विकारोंकरि पूर्ण है, अरु यह अटवी भी आत्माकरि सिद्ध होती है, अरु तिसविषे जो पुरुष रहते है सो सव मन है, दु:खरूपी चेष्टा करते हैं, अरु विवेक ज्ञानरूपी जो मैं था सो उनको पकडता था, जो मेरे निकट आते थे, सो मेरे प्रकाशकरिकै प्रफुल्लित होते थे, जैसे सूर्यके प्रकाशकरिकै सूर्यमुखी कमल खिल आते है, तैसे मेरे प्रवोधकरिकै वह महामति हुए, अरु वह चित्ततें उपशम हुए वे परमपदको प्राप्त हुए अरु जो मेरे निकट न आये और अविवेककरिकै मोहे हुए मेरा निरादर करत भये, सो मोहकष्टही विषे रहे, अव तिनके अग अरु प्रहार अरु कूप अरु करजुवे अरु केलेके वनका उपमान सुन ॥ हे रामजी । जेती कछु विषय अभिलाषा हैं, सो तिस मनके अग हैं, अरु हाथोंकरि प्रहार करना यह है, जो सकाम कर्म करते हैं, तिनकरि फटे हुए दूरते दूर दौड़ते है, सो मृतक होते हैं, सोई अंधकूपविषे गिरते हैं सो विवेकका त्याग करना यही है, इसप्रकार वे पुरुष आपसोंकरि आपही प्रहार करते भटकते फिरते है, अरु अभिलाषारूपी सहस्र अगोंकरि आवरे हुए मृतक होकरि नरकरूपी कूपाविषे पड़े हुए जव वाह्य निकसे तव पुण्य कर्मोंकरि स्वर्गविषे जाय प्राप्त होवें, सोई कदलीके वनसमान है, तहां कछुक सुख पावै, तिसते जव निकसे तव करजुवेके वनविषे पड़ै, स्त्री, पुत्र कलत्र आदिक जो कुटुंव है, सो करजूवेके वन हैं; अरु करजूवेसाथ कटक होते हैं सो पुत्र धन अरु लोकोंकी कामना करते हैं तिनकरि पड़े कष्ट पाते हैं, जव महापापकर्म करते हैं, तव नरकरूपी अधकूपविषे पडते है अरु पुण्यकर्म करते है तव कदलीवनकी नाई स्वर्गको प्राप्त होते हैं तव कछुक उल्लासको प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी । गृहस्थाश्रम महादु:खरूप है, करजूवेके वनकी नाई है यह मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं, जो अपने नाशके निमित्तही यत्न करते हैं वहुरि वही दु:खरूप कर्म करते हैं; अरु जो तिन-विषे विहित करिकै विवेकके निकट आते हैं, सो शुभ अशुभ कर्मोंके वंधनते मुक्त होइकरि परमपदको प्राप्त होते हैं, अरु जो विवेकसाथ हित नहीं करते, सो दूरते दूर भटकते हैं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष भोग भोगनेके

निमित्त यत्न करते हैं, तप आदिक पुण्यकर्म करते हैं, सो उत्तम शरीरको धारिके स्वर्गसुख भोगते हैं, अरु वह जो मुझको देखिके मनरूपी पुरुष कहता था, जो तू हमारा शत्रु है, तुझकरि हम नष्ट होते हैं, अरु रुदन करते थे, सो विषय भोग त्यागनेके निमित्त मूर्ख चित्त कष्ट पाता है, मूर्खकी प्रीति विषयविषे होती है, तिसके त्यागनेते कष्टमान होते है, अरु विवेकको देखिकै रुदन करने लगते हैं काहेते कि अर्धप्रबुद्ध हैं, जिनको परमपदकी प्राप्ति नहीं भई सो भोगोंको त्यागते कष्टमान होते हैं, अरु रुदन करते हैं, अरु जब अज्ञानको मूर्ख चित्त अर्धप्रबोध अभिलाषारूपी अगोंको तपायमान न हुआ त्यागता है, अरु विवेकको प्राप्त होता है, तब परम तुष्टमान हुआ हँसने लगता है, ताते विवेकको प्राप्त होइकरि संसारकी वासनाको त्यागौ तब आनंदमान होहुगे, पूर्वका स्वभाव अरु नीच चेष्टाको त्यागिकरि हँसता है कि, मैं मिथ्या चेष्टा करता था, चिरकालपर्यंत मूर्खताकरिकै कष्ट पाता रहा ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विवेकको प्राप्त होइकरि चित्त परमपदविषे विश्राम पाता है, तब पूर्वकी दीन चेष्टाको स्मरण करिकै हँसता है ॥ हे रामजी ! जब मैं उस मनरूपी पुरुषको रोकिकरि पूछता था, अरु वह अपने अगोंको त्यागता जाता था, सो भी सुन, मैं विवेकरूप हौं, जब उस चित्तरूपी पुरुषको मिला, तब उसके सहस्र कर अरु लोचनरूपी अभिलाषाका त्याग भया, अरु अपने प्रहार करनेते भी रहगया; अरु उसका शीश जो प्रथम गिरपड़ा, सो परिच्छिन्न देह अभिमानी जो अहंकार है, सोई शीश था, जब वह गिर पड़ा, तब दुर्वासनारूपी अगोंको त्यागत भया, तिनको त्यागिकरि आप भी नष्ट हो गया, सो अहंकार अपनी निर्वाणताको देखत भया, अर्थ यह जो परमब्रह्मविषे लीन हो गया ॥ हे रामजी ! इस पुरुषको बंधनका कारण वासना है, जैसे बालक विचारते रहित चचलरूपी चेष्टा करता है, सो कष्ट पाता है, अग्निविषे हाथ डारै, गढेविषे गिर पडै; अथवा और कोऊ कार्य ऐसा करै, अरु जैसे घुराणकीट आपही अपने बैठनेकी गृह बनाइके फँस मरती है, तैसे यह पुरुष अपनी वासनाकरि आपही बंधनमें पडता है, जैसे मर्कट लकड़ीविषे हाथ डारिकै कीलीको काढने लगा

है, लीला करता है, तब उसका हाथ फँस पडता है, बहुरि कष्ट पाता है, तैसे अज्ञानीको अपनी चेष्टाही बधन करती है, काहेते जो विचारविना करता है, ताते ॥ हे रामजी ! इस चित्तसाथ शास्त्र अरु संतोंके गुणोंकरि चिरपर्यंत चलो, जो कछु शास्त्रविषे अर्थप्रतिपाद्य है, तिसकी दृढभावना करो, जब अभ्यासकरि तेरा चित्त स्वस्थ होवैगा, तब तुझको शोक कोऊ न होवैगा ॥ हे रामजी ! जब चित्त आत्मपदविषे स्थित होवैगा तब राग अरु द्वेषकरि चलायमान न होवैगा अरु जो कछु देहादिक साथ प्रच्छन्न अहंकार है, सो नष्ट होवैगा, जैसे सूर्य उदय हुए बर्फ गलि जाता है, तैसे तुच्छ अहंकार नष्ट हो जावैगा, अरु सर्व आत्माही भासैगा ॥ हे रामजी ! जबलग इसको आत्मज्ञान नहीं प्राप्त भया, तबलग शास्त्रके अनुसार अनिंदित आचारविषे विचरे, अरु शास्त्रके अर्थविषे अभ्यास करे, अरु मनको रागद्वेषादिकते मौन करे तब पाछे पाने योग्य अजन्मा शुद्ध शांतरूप पदको प्राप्त होवैगा, तब सर्व शोकको तरैगा, शांतरूप होवैगा ॥ हे रामजी ! जबलग आत्मतत्त्वका प्रमाद है, तबलग अनेक दु ख वृद्ध होते जाते हैं, शांति नहीं होती, अरु जब आत्मपदकी प्राप्ति हुई तब सब दु ख नष्ट हो जाते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम पंचसप्ततितम सर्ग ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६

चित्तचिकित्सावर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह चित्त परब्रह्मते उपजा है, सो आत्मरूप है, और आत्मरूप नहीं, जैसे समुद्रते तरंग होते हैं, सो तन्मय भी है, अरु भिन्न भी है, तैसे चित्त है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनको चित्त ब्रह्मरूपही है, इतर कछु नहीं, जैसे जिसको जलका ज्ञान है, तिसको तरंग भी जलरूप भासता है, अरु जो ज्ञानते रहित है, तिनको मन संसार भ्रमका कारण है, जैसे जिनको जलका ज्ञान नहीं, तिसको भिन्न भिन्न तरंग भासते हैं, तैसे जो अज्ञानी हैं, तिनको भिन्न भिन्न

जगत् भासता है, अरु ज्ञानवान्को केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है ॥ हे रामजी। जो ज्ञानवान् भेद कल्पते हैं, सो अज्ञानीको उपदेशनिमित्त भेद कल्पते है, अपनी दृष्टिविषे उनको सर्व ब्रह्मही भासता है, अरु मन आदिक भी तुझको भासते हैं, सो ब्रह्मसों भिन्न नहीं, अनन्यरूप हैं, शक्तिरूप है, तिसते अन्य कोऊ पदार्थ नहीं, सर्व शक्त परब्रह्म है, सो नित्य है, अरु सब ओरते पूर्ण है, अविनाशी है तिसते अन्य कोऊ पदार्थ नहीं, सबही ब्रह्मसत्ताविषे है, सर्वशक्तिमान् आत्मा है, जैसे उसको रुचती है, सोई शक्ति प्रत्यक्ष होती है, सर्व शक्तिरूप होइकरि पसरा है, चेतनशक्ति जीवोंविषे ज्ञानरूपकरिकै प्रत्यक्ष है, वायुविषे स्पंदशक्ति वही है, पत्थरविषे जड़शक्ति है, जलविषे द्रवताशक्ति, अग्निविषे तेजशक्ति अरु आकाशविषे शून्यशक्ति है, भावशक्ति स्वर्गविषे है, नाशशक्ति कालविषे है, शोकविषे शोकशक्ति है, मुदिताविषे आनंदशक्ति है, वीरोंविषे वीरशक्ति है, सर्गके उपजानेविषे उत्पत्ति शक्ति वही है, कल्पके अंतविषे सर्वका नाशक वही है, नाशविषे नाशशक्ति उसकी है, इसते आदि लेकरि जेती कछु भाव अभाव पदार्थशक्ति हैं, सो सब ब्रह्मकी शक्ति है, जैसे फूल, फल, वेली, पत्र, शाखा, वृक्ष, जेता कछु विस्तार है, सो बीजके अंतर्भाव होता है तैसे सब जगत् ब्रह्मविषे स्थित होता है, जीव अरु चित्त अरु मन आदिक भी ब्रह्महीविषे ब्रह्म स्थित है, जैसे नानाप्रकारके पत्र, फूल, फल बीजके अंतर स्थित होते हैं, तैसे सब ब्रह्मविषे स्थित हैं ॥ हे रामजी। जैसे वसंतऋतुकरिकै एकही रस नानाप्रकारके फूल, फल, दास, बहुत रूपोंको धारता है, तैसे एकही आकाश ब्रह्मचैत्यताकरि जगद्रूप होइ भासता है, तिसविषे और देश काल आदिक विचित्रता कोई नहीं, संपूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है, सो ब्रह्म आत्मा सर्वज्ञ है, नित्य उदितरूप है, बृहद्रूप है, अर्थ सबते बडा है वपु जिसका ॥ हे रामचंद्रजी। तिसविषे कछु मननकलना होती है, तब तिसको मन कहते हैं, जैसे आकाशविषे आँतसों तरवरे भासते हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, तैसे आत्माविषे मन है ॥ हे रामजी। ब्रह्मविषे जो चित्त होता है, सो मनका रूप है, तैसो मन ब्रह्मकी शक्तिरूप है, इसी कारण ब्रह्मते इतरकछु नहीं, मनही

है, ब्रह्मते इतर कछु कल्पना करनी अज्ञान है, ब्रह्मविषे मै ऐसा उत्थान हुआ है, इसका नाम मन है, जड अजडरूप मनते आगे जगत् हुआ, मनहीके आगे प्रतियोगी व्यवच्छेदक संख्यारूप यह सब मनके कल्पे है, प्रतियोगी व्यवच्छेद सख्या इनका भेद यह है, प्रतियोगी कहिये, जैसे चेतनका प्रतियोगी जड, अरु व्यवच्छेदक कहिये, जैसे घट अविच्छिन्न पट अविच्छिन्न इत्यादिक सज्ञा कहिये, अनेक रूप जो दृश्य है, सो सब मनके कल्पे है जैसे जैसे ब्रह्मविषे दृढ मन होता है, तैसे तैसे भासता है, इन्द्र ब्राह्मणके पुत्रोंकी नाई, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै तरगचक्र होइ भासते हैं, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे जीव फुरणेकरिकै नानाप्रकारका जगत् होइ भासता है, परतु कछु हुआ नहीं, ब्रह्महो अपने आपविषे स्थित है, जैसे तरगोंके होने अरु मिटनेविषे जल एकही रस है, तैसे जगत्के उपजने अरु मिटनेविषे ब्रह्म ज्योंका त्यों है, जैसे सूर्यकी किरणोंमें दृढ तेजकरिकै जल हो भासता है तैसे आत्मतत्त्वविषे विचित्रता भासती है, परतु सदा अपने आपविषे स्थित है ॥ हेरामजी ! कारण कर्म कर्ता जन्म मरणादिक जेते कछु भासते हैं, सो सबब्रह्मरूप हैं ब्रह्मते इतर कछु नहीं, अरु आत्मा शुद्धरूप है, तिसविषे न लोभ है न मोह है, न तृष्णा है, काहेते कि अद्वैतरूप है, अरु सर्वात्मा है, जैसे सुवर्णते नानाप्रकारके भूषण हो भासते है, तैसे ब्रह्मते जगत् हो भासता है, जो ज्ञानवान् पुरुष है, तिनको सदा ऐसेही भासता है, अरु जो अज्ञानी है, तिनको भिन्न भिन्न कल्पना भासती है, जैसे किसीका बांधव होवै, अरु दूरते दूर देशते चिरकाल पाछे आवै, तब देशकालके व्यवधानकरि बांधवको अबांधव जानता है तैसे अज्ञानके व्यवधानकरिकै अभिन्नरूप आत्माको भिन्नरूप जानता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चन्द्रमा भ्रमकरि भासता है, तैसे सत्य असत्यरूप मन आत्माविषे भासता है, तिस मनने शब्द अर्थरूप भिन्न भिन्न कल्पना रची है, अरु आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे बंध मोक्ष कल्पनाका अभाव है ॥ रामउवाच ॥ हे भगवन् ! जो मनविषे निश्चय होता है, सोई होता है, अन्यथा नहीं होता, अरु मनविषे बंधका निश्चय होता है, सो बंध कैसे सत्य है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! बंधकी कल्पना मूर्ख करते है, ताते

जगत् भासता है, अरु ज्ञानवान्को केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानवान् भेद कल्पते हैं, सो अज्ञानीको उपदेशनिमित्त भेद कल्पते हैं, अपनी दृष्टिविषे उनको सर्व ब्रह्मही भासता है, अरु मन आदिक भी तुझको भासते हैं, सो ब्रह्मसों भिन्न नहीं, अनन्यरूप हैं, शक्तिरूप है, तिसते अन्य कोऊ पदार्थ नहीं, सर्व शक्त परब्रह्म है, सो नित्य है, अरु सब ओरते पूर्ण है, अविनाशी है तिसते अन्य कोऊ पदार्थ नहीं, सबही ब्रह्मसत्ताविषे है, सर्वशक्तिमान् आत्मा है, जैसे उसको रुचती है, सोई शक्ति प्रत्यक्ष होती है, सर्व शक्तिरूप होइकरि पसरा है, चेतनशक्ति जीवोंविषे ज्ञानरूपकरिकै प्रत्यक्ष है, वायुविषे स्पंदशक्ति वही है, पत्थरविषे जड़शक्ति है, जलविषे द्रवताशक्ति, अग्निविषे तेजशक्ति अरु आकाशविषे शून्यशक्ति है, भावशक्ति स्वर्गविषे है, नाशशक्ति कालविषे है, शोकविषे शोकशक्ति है, मुदिताविषे आनंदशक्ति है, वीरोंविषे वीरशक्ति है, सर्गके उपजानेविषे उत्पत्ति शक्ति वही है, कल्पके अंतविषे सर्वका नाशक वही है, नाशविषे नाशशक्ति उसकी है, इसते आदि लेकरि जेती कछु भाव अभाव पदार्थशक्ति है, सो सब ब्रह्मकी शक्ति है, जैसे फूल, फल, वेली, पत्र, शाखा, वृक्ष, जेता कछु विस्तार है, सो बीजके अंतर्भाव होता है तैसे सब जगत् ब्रह्मविषे स्थित होता है, जीव अरु चित्त अरु मन आदिक भी ब्रह्महीविषे ब्रह्म स्थित है, जैसे नानाप्रकारके पत्र, फूल, फल बीजके अंतर स्थित होते हैं, तैसे सब ब्रह्मविषे स्थित हैं ॥ हे रामजी ! जैसे वसंतऋतुकरिकै एकही रस नानाप्रकारके फूल, फल, टास, बहुत रूपोंको धारता है, तैसे एकही आकाश ब्रह्मचैत्यताकरि जगत्रूप होइ भासता है, तिसविषे और देश काल आदिक विचित्रता कोई नहीं, संपूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है, सो ब्रह्म आत्मा सर्वज्ञ है, नित्य उदितरूप है, बृहद्रूप है, अर्थ सबते बडा है वपु जिसका ॥ हे रामचंद्रजी ! तिसविषे कछु मननकलना होती है, तब तिसको मन कहते हैं, जैसे आकाशविषे और सों तरवरे भासते हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, तैसे आत्माविषे मन है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मविषे जो चित्त होता है, सो मनका रूप है, तैसो मन ब्रह्मकी शक्तिरूप है, इसी कारण ब्रह्मते इतरकछु नहीं, ब्रह्मही

है, ब्रह्मते इतर कछु कल्पना करनी अज्ञान है, ब्रह्मविषे मैं ऐसा उत्थान हुआ है, इसका नाम मन है, जड अजडरूप मनते आगे जगत् हुआ, मनहींके आगे प्रतियोगी व्यवच्छेदक संख्यारूप यह सब मनके कल्पे हैं, प्रतियोगी व्यवच्छेद संख्या इनका भेद यह है, प्रतियोगी कहिये, जैसे चेतनका प्रतियोगी जड, अरु व्यवच्छेदक कहिये, जैसे घट अविच्छिन्न पट अविच्छिन्न इत्यादिक संज्ञा कहिये, अनेक रूप जो दृश्य है, सो सब मनके कल्पे है जैसे जैसे ब्रह्मविषे दृढ मन होता है,तैसे तैसे भासता है,इंद्र ब्राह्मणके पुत्रोंकी नाईं,जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै तरंगचक्र होइ भासते हैं, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे जीव फुरणेकरिकै नानाप्रकारका जगत् होइ भासता है, परंतु कछु हुआ नहीं, ब्रह्महीं अपने आपविषे स्थित है, जैसे तरंगोंके होने अरु मिटनेविषे जल एकही रस है, तैसे जगत्के उपजने अरु मिटनेविषे ब्रह्म ज्योंका त्यों है, जैसे सूर्यकी किरणोंमे दृढ तेजकरिकै जल हो भासता है तैसे आत्मतत्त्वविषे विचित्रता भासती है, परंतु सदा अपने आपविषे स्थित है ॥ हेरामजी ! कारण कर्म कर्ता जन्म मरणादिक जेते कछु भासते हैं,सो सबब्रह्म रूप हैं ब्रह्मते इतर कछु नहीं, अरु आत्मा शुद्धरूप है, तिसविषे न लोभ है न मोह है, न तृष्णा है, काहेते कि अद्वैतरूप है, अरु सर्वात्मा है, जैसे सुवर्णते नानाप्रकारके भूषण हो भासते हैं,तैसे ब्रह्मते जगत् हो भासता है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं,तिनको सदा ऐसेही भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको भिन्न भिन्न कल्पना भासती है, जैसे किसीका बाधव होवे, अरु दूरते दूर देशते चिरकाल पाछे आवै, तब देशकालके व्यवधानकरि बांधवको अबांधव जानता है तैसे अज्ञानके व्यवधानकरिकै अभिन्नरूप आत्माको भिन्नरूप जानता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, तैसे सत्य असत्यरूप मन आत्माविषे भासता है, तिस मनने शब्द अर्थरूप भिन्न भिन्न कल्पना रची है, अरु आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे बंध मोक्ष कल्पनाका अभाव है ॥ रामउवाच ॥ हे भगवन् ! जो मनविषे निश्चय होता है, सोई होता है, अन्यथा नहीं होता, अरु मनविषे बंधका निश्चय होता है, सो बंध कैसे सत्य है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! बंधकी कल्पना मूर्ख करते हैं

मिथ्या है, जो बंधकी कल्पना मिथ्या भई, तौ बंधकी अपेक्षाकरि जो मोक्ष है, सो भी मिथ्या है, ताते बंधमोक्षकी कल्पना मूर्ख मिथ्या करते हैं, वास्तवते न बंध है, न मोक्ष है ॥ हे महामति रामजी! अज्ञानकरिके अवस्तुभी वस्तुरूप होइ भासती है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु ज्ञानवान्‌को अवस्तु सत्य नहीं भासती, जैसे जेवरीके ज्ञानते सर्प नहीं भासता, ताते बंध मोक्ष कलना मूर्खोंको भासती है, ज्ञानवान्‌को बंध मोक्ष कलना कोई नहीं भासती ॥ हे रामजी! आदि परमात्माते मन उपजा, तिस मननेही बंध अरु मोहकरि कल्पा है, बहुरि दृश्यप्रपंचको रचा है, सोई प्रपंच कल्पनामात्र है, बालककी कथावत् मूर्खोंको रुचती है, अर्थ यह जो विचारते रहित है, तिनको यह जगत सत्य भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तचिकित्सावर्णनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७.

बालकाख्यायिकावर्णनम् ।

॥ राम उवाच ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! बालककी कथा क्या है; सो क्रमकरिके मुझको कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हेरामचंद्र! एक मूर्ख बालक था, सो धात्री जो दाई, तिससों पूछता भया कि, कोई अपूर्व कथा कहु; जो तुझको आती है, जो आगे न हुई होवे, सो मुझको कहु ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार कहा, तब तिसके विनोदनिमित्त महाबुद्धिमती धात्री कथा कहत भई ॥ धात्र्युवाच ॥ हे पुत्र! सुन, एक बड़ा शून्य नगर था, तिसका एक राजा था, तिस राजाके तीन पुत्र थे, सो पुत्र शुभआचारवान् थे, अरु बड़े सुंदर तेजवान् थे, जैसे आकाशविषे तारे हैं, तैसे सुंदर तेजवान थे, सो दोऊ तौ उपजे न थे, अरु एक गर्भविषे आया न था, सो तीनों शुभआचारवान् शुभ क्रियाकर्त्ता द्रव्यके अर्थ जीतनेको चले, शून्य नगरते बाहिर निकसे निमांगरूप तिसके नगर थे, निर्बुद्ध अरु शोकसहित इकट्ठे जाते, जैसे बुध अरु

शुक्र अरु शनैश्वर इकट्ठे चले, तैसे चलें, अर्थ यह कि, इकट्ठे चलनेका दृष्टांत शुक्र शनैश्वर अरु बुधका नहीं है, निर्बुद्ध अरु शोकका ग्रहणरूप दृष्टांत है, अरु सरसोंके फूलकी नाई तिनके अग कोमल थे, सो मार्गमें थके, ऊपरते सूर्यकी धूप तपे, जैसे ज्येष्ठ आषाढके धूपकारि कमल कुँभलाइ जाते हैं, तैसे कुँभलाइ गये, अरु तप्त चरण कारि तपने लगे, महाशोकको प्राप्त हुए, चरणोंविषे डाभके कटक लगे, अरु मुख धूलकारि धूसर हो गया, तीनों कष्टमान होयके आये आगे तीन वृक्ष देखे, सो कैसे वृक्ष है, जो दो तो उपजे नहीं, अरु तीसरेका बीजभी नहीं बोया, सो तीनों एक एक वृक्षके नीचे आइकारि विश्राम करते भये, जैसे कल्पवृक्षके नीचे स्वर्गविषे इन्द्र अरु यम आइ बैठें, तैसे आइ बैठे, अरु तिनके फल भक्षण किये, अरु फलोका रस काटिकै पान किया, अरु तिन्होंके फूलोंकी माला गलेविषे पहरी, अरु चिरकालपर्यंत तहां विश्राम किया, बहुरि चले, दूरते दूर गये, ऊपर मध्याह्नका समय हुआ, तिसकरि तपायमान हुए, तब आगे तीन नदियां देखीं, तिनके निकट गये, तरंगोंकारि लीलायमान है, और दोनोंविषे जल कछु नहीं, अरु तीसरी सूखी पडी है, तिसाविषे चिरकालपर्यंत क्रीडा करते भये, जैसे स्वर्गकी गंगाविषे ब्रह्मा, विष्णु अरु रुद्र कल्लोल करते हैं, तैसे तिसविषे कल्लोल करें, अरु जलपान करें, जब दिन अस्त होने लगा, तब वहांते चले, एक भविष्यत् नगरको देखत भये, बड़ी ध्वजाकारिकै संपन्न अरु रत्न मणि सुवर्णकारिकै जडी है, मानों सुमेरुका शिखर है, तिसविषे हीरामणिकारिकै जडा एक मंदिर देखा, कैसा मंदिर जो निर्भयरूप, अर्थ यह जो निराकाररूप है, तिसाविषे जाय प्रवेश किया, तहां बहुत अंगना हैं तिस मंदिरविषे जायकारि विचारत भये, कि रसोई करिये, अरु ब्राह्मणोंको भोजन खनाइये, तब कंचनकी तीन बटलोइयां मँगाई, सो कैसी कि, दोका करनेवाला उपजा नहीं, अर्थ यह कि आकारते रहितरूप, अरु तीसरी चूर्णरूप; तिस चूर्णरूप बटलोईविषे तिन्होंने षोडश सेर रसोई चढाई अरु ब्राह्मण अरु आप जो कछु बिंदरूप देह-

मिथ्या है, जो बंधकी कल्पना मिथ्या भई, तौ बंधकी अपेक्षाकरि जो मोक्ष है, सो भी मिथ्या है, ताते बंधमोक्षकी कल्पना मूर्ख मिथ्या करते हैं, वास्तवते न बंध है, न मोक्ष है ॥ हे महामति रामजी! अज्ञानकरिकै अवस्तुभी वस्तुरूप होइ भासती है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु ज्ञानवान्‌को अवस्तु सत्य नहीं भासती, जैसे जेवरीके ज्ञानते सर्प नहीं भासता, ताते बंध मोक्ष कलना मूर्खोंको भासती है, ज्ञानवान्‌को बंध मोक्ष कलना कोई नहीं भासती ॥ हे रामजी! आदि परमात्माते मन उपजा, तिस मननेही बंध अरु मोहकरि कल्पा है, बहुरि दृश्यप्रपंचको रचा है, सोई प्रपच कल्पनामात्र है, बालककी कथावत् मूर्खोंको रुचती है, अर्थ यह जो विचारते रहित हैं, तिनको यह जगत् सत्य भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तचिकित्सावर्णनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७.

बालकाख्यायिकावर्णनम् ।

॥ राम उवाच ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! बालककी कथा क्या है, सो क्रमकरिकै मुझको कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हेरामचंद्र! एक मूर्ख बालक था, सो धात्री जो दाई, तिससों पूछता भया कि, कोई अपूर्व कथा कह, जो तुझको आती है, जो आगे न हुई होवै, सो मुझको कह ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार कहा, तब तिसके विनोदनिमित्त महाबुद्धिमती धात्री कथा कहत भई ॥ धात्र्युवाच ॥ हे पुत्र! सुन, एक बड़ा शून्य नगर था, तिसका एक राजा था, तिस राजाके तीन पुत्र थे, सो पुत्र शुभआचारवान् थे, अरु बड़े सुंदर तेजवान् थे, जैसे आकाशविषे तारे हैं, तैसे सुंदर तेजवान् थे, सो दोऊ तौ उपजे न थे, अरु एक गर्भविषे आया न था, सो तीनों शुभआचारवान् शुभ क्रियाकर्त्ता द्रव्यके अर्थ जीतनेको चले, शून्य नगरते बाहिर निकसे निर्मागरूप तिसके नगर थे, निर्बुद्ध अरु शोकसहित इकट्ठे जावैं, जैसे बुध अरु

शुक्र अरु शनैश्चर इकट्ठे चले, तैसे चलैं, अर्थ यह कि, इकट्ठे चलनेका दृष्टांत शुक्र शनैश्चर अरु बुधका नहीं है, निर्बुद्ध अरु शोकका ग्रहणरूप दृष्टांत है, अरु सरसोंके फूलकी नाईं तिनकें अंग कोमल थे, सो मार्गमें थके, ऊपरते सूर्यकी धूप तपे, जैसे ज्येष्ठ आषाढके धूपकरि कमल कुँभलाइ जाते हैं, तैसे कुँभलाइ गये, अरु तप्त चरण करि तपने लगे, महाशोकको प्राप्त हुए, चरणोंविषे डाभके कंटक लगे, अरु मुख धूलकरि धूसर हो गया, तीनों कष्टमान होयके आये आगे तीन वृक्ष देखे, सो कैसे वृक्ष है, जो दो तौ उपजे नहीं, अरु तीसरेका बीजभी नहीं बोया, सो तीनों एक एक वृक्षके नीचे आइकरि विश्राम करते भये, जैसे कल्पवृक्षके नीचे स्वर्गविषे इन्द्र अरु यम आइ बैठैं, तैसे आइ बैठे, अरु तिनके फल भक्षण किये, अरु फलोंका रस काटिकै पान किया, अरु तिन्होंके फूलोंकी माला गलेविषे पहरी, अरु चिरकालपर्यंत तहां विश्राम किया, बहुरि चले, दूरते दूर गये, ऊपर मध्याह्नका समय हुआ, तिसकरि तपायमान हुए, तब आगे तीन नदियां देखीं, तिनके निकट गये, तरंगोंकरि लीलायमान है, और दोनोंविषे जल कछु नहीं, अरु तीसरी सूखी पडी है, तिसविषे चिरकालपर्यंत क्रीडा करते भये, जैसे स्वर्गकी गंगाविषे ब्रह्मा, विष्णु अरु रुद्र कल्लोल करते हैं, तैसे तिसविषे कल्लोल करैं, अरु जलपान करैं, जब दिन अस्त होने लगा, तब वहांते चले, एक भविष्यत् नगरको देखत भये, बड़ी ध्वजाकरिकै सपन्न अरु रत्न मणि सुवर्णकरिकै जडी है, मानों सुमेरुका शिखर है, तिसविषे हीरामणिकरिकै जडा एक मंदिर देखा, कैसा मंदिर जो निर्भयरूप, अर्थ यह जो निराकाररूप है, तिसविषे जाय प्रवेश किया, तहां बहुत अंगना है तिस मंदिरविषे जायकरि विचारत भये, कि रसोई करिये, अरु ब्राह्मणोंको भोजन खवाइये, तब कंचनकी तीन बटलोइयां मँगाई, सो कैसी कि, दोका करनेवाला उपजा नहीं, अर्थ यह कि आकारते रहितरूप, अरु तीसरी चूर्णरूप, तिस चूर्णरूप बटलोईविषे तिन्होंने षोडश सेर रसोई चढाई अरु ब्राह्मण अरु आप जो रुद्र विदिहरूप देह-

हीन थे, तिन्होंने अरु निमुंख ऋषियोंने भोजन किया, तिसकरि सैकडों ब्राह्मणोंको भोजन कराये, आप भी भोजन करत भये, अर्थ यह जो षोडश सेरका एक द्रोण होता है, तीनोंने चावल राधे, अर्थ यह कि,साढे उनतालीस मन अरु चालीस सेर तिनका तोल होता है, तीनोंने साढे उनतालीस मन चार सेर घट रांधा, इसप्रकार वह तीन राजपुत्र आजपर्यंत सुखसाथ स्थित है ॥ हे पुत्र ! यह रमणीक कथा मैं तुझको अब सुनाई है, जब तू इसको हृदयविषे धारैगा, तब पडित होवैगा ॥ हे रामजी ! इसप्रकार धात्रीने बालकको कथा सुनाई, तब बालकके मनविषे सांच आय गई, जैसे उस कथाका रूप संकल्पते इतर कछु न था, तैसे यह जगत् है, सब सकल्पमात्र है, अज्ञानकरिकै हृदयविषे स्थिर हो रहा है, भ्रमकरिकै इसविषे आस्था भई है, बंध मोक्ष भी कल्पनामात्र है, संकल्पते इतर इसका स्वरूप कछु नही ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मा निष्किंचनरूप है, सकल्पके वशते किंचनरूप हो भासता है, पृथ्वी, वायु आकाशपर्यंत नदियां देश आदिक जो पचभूतक सृष्टि है, सो सब संकल्पमात्र है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकार सृष्टि भासती है, अरु है कछु नहीं, उपजी भी नहीं, तैसे यह जगत् जान जैसे कल्पित राजपुत्र भविष्यत् नगरविषे स्थित हुए, सो रचनासंकल्प बालकको स्थिरीभूत भया, तैसे यह जगत् संकल्पमात्र मनके फुरनेकरि दृढ भया है, जैसे द्रवताकरिकै जलते तरंग होते हैं, सो जलही जलविषे है, तसे आत्माही आत्मा विषे स्थित है, यह सब जगत् सकल्पकरि उपजा है, अरु बड़े विस्तारको प्राप्त भया है, जैसे दिनकरिकै व्यवहार विस्तारको प्राप्त होता है तैसे सकल्पजालकरि उपजा जगत् विस्तारको प्राप्त होता है, अरु चित्तका विलास है, चित्तके फुरनेकरिकै भासता है ॥ ताते हे रामजी ! संकल्परूपी मैलको त्यागिकरि निर्विकल्प आत्मतत्त्वका आश्रय करौ, जब तिस पदविषे स्थित होहुगे, तब परम शांतिकी प्राप्ति होवैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बालकाख्यायिकावर्णनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८



मननिर्वाणोपदेशवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो मूढ अज्ञानी पुरुष है सो अपने संकल्पकरिकै आपही मोहको प्राप्त होता है, अरु जो पंडित है, सो मोहको नहीं प्राप्त होता, जैसे मूर्ख बालक अपने परछाईंविषे पिशाच कल्पिकरिकै भयको प्राप्त होता है, तैसे मूर्ख अपनी कल्पनाकरि दुःखी होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ, वह संकल्प क्या है, अरु छाया क्या है, जो असत्यही सत्यरूप, पिशाचकी नाईं दीखता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! पांचभौतिक शरीर परछायेकी नाईं है, काहेते कि, अपनी कल्पनाकरि रचा है, अरु अहंकाररूपी पिशाच है, जैसे मिथ्या परछायेविषे पिशाचको देखिकै भयमान होता है, तैसे देहविषे अहंकारको देखिकै खेदको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! एक परमात्मा सर्वविषे स्थित है, तब अहंकार कैसे होवै, वास्तवते अहंकार कोई नहीं, परमात्माही अभेदरूप है, तिसविषे अहंबुद्धि भ्रमकरिकै भासती है, जैसे मिथ्यादर्शीको मरुस्थलविषे जल भासता है, तैसे मिथ्या ज्ञानकरिकै अहंकारकल्पना होती है, जैसे मणिका प्रकाश मणिकेऊपर पडता है, सो मणिते इतर कछु नहीं, मणिरूप है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, सो आत्माहीविषे स्थित है, जैसे जलविषे द्रवताकरिकै चक्रतरंग होइ भासते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे आत्माविषे चित्तकरिकै नानात्व होइ भासता है, सो आत्माते इतर कछु नहीं, असम्यक् दर्शन करिकै नानात्व भासता है, ताते असम्यक् दृष्टिको त्यागिकै आनंदरूपका आश्रय करो, मोहके आरंभको त्यागिकरि शुद्ध बुद्धिसहित विचरो, विचार करिकै सत्यको ग्रहण करो, असत्यका त्याग करो ॥ हे रामजी ! तुम मोहका माहात्म्य देखो, जो देह स्थूलरूप नाशवत है, तिसके रखनेका उपाय करता है, सो रहता नहीं, अरु जिस मनरूपी शरीरके नाश हुए कल्याण होता है, तिसको

पुष्ट करता है ॥ हे रामजी ! सब मोहका आरंभ मिथ्याभ्रमकरिकै दृढ हुआ है, अनत आत्मतत्त्वविषे कल्पना कोऊ नही, कौन किसको कहे ? जेता कछु नानात्व भासता है सो है नहीं, अरु जीव ब्रह्मसाथ अभिन्न है, तिस ब्रह्मतत्त्वकेविषे कौन बंध कहिये ? अरु कौन मोक्ष कहिये ? वास्तवते न कोऊ वध है, न मोक्ष है काहेते कि, आत्मसत्ता अनतरूप है ॥ हे रामजी ! वास्तव कछु द्वैतकल्पना हुई नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे है, जो आत्मतत्त्व अनंत है, सोई अज्ञानकरिकै अन्यकी नाई भासता है, जब अनात्म विषे आत्माभिमान करता है, तब परिच्छिन्न कल्पना होती है, तब शरीरको अच्छेदरूप जानिकै कष्टमान होता है, अरु आत्मपदविषे भेद अभेद विकार कोऊ नहीं, काहेते कि, वह नित्य शुद्धबोध अविनाशी पुरुष है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे न कोई विकार है, न वध है, न मोक्ष है, काहेते कि, आत्मतत्त्व अनंतरूप निर्विकार अच्छेदरूप है, निराकार अद्वैतरूप है, तिसको बंधविकारकल्पना कैसी होवै ? ॥ हे रामजी ! देहके नष्ट हुए आत्मा नष्ट नहीं होता, जैसे चमड़ीविषे आकाश होता है, सो चमडीके नाश हुएते आकाशका नाश नहीं होता; तैसे देहके नाश हुएते आत्माका नाश नहीं होता, जैसे फूलके नाश हुएते गध आकाशविषे लीन होता है, जैसे कमलऊपर वर्फ पडता है, तब कमल नष्ट हो जाता है, भ्रमर नाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुएते आत्माका नाश नहीं होता, जैसे मेघके नाश हुएते पवनका नाश नहीं होता ॥ हे रामजी! सबका शरीर मन है, सो मन आत्माकी शक्ति है, तिस मनविषे आगे यह शरीर आदिक जगत् रचा है, तिस मनका ज्ञानविना नाश नही होता, तौ बहुरि शरीर आदिके नष्ट हुएते आत्माका नाश कैसे होवै ? ॥ हे रामजी ! शरीरके नष्ट हुएते तेरा नाश नहीं होता, तू क्यों मिथ्या शोकवान् होता है, तू तो नित्य शुद्ध ज्ञानरूप आत्मा है ॥ हे रामजी ! मेघके क्षीण हुएते पवन क्षीण नहीं होता, कमलोंके सुखेते भ्रमर नष्ट नहीं होता, तैसे देहके नष्ट हुएते आत्मा नष्ट नहीं होता संसारविषे क्रीडाकर्ता जो मन है, तिसका भी ससारविषे नाश नहीं होता तौ आत्माका नाश कैसे होवै। जैसे घटके नाश हुएते घटाकाशका नाश

नहीं होता ॥ हे रामजी ! जैसे जलका कुंडा होता है, तिसविषे सूर्यका प्रतिबिंब पडता है, तिस कुंडके नाश हुएते प्रतिबिंबका नाश नहीं होता, तिस जलको और ठौर ले जाय तब प्रतिबिंब भी चलता भासता है, तैसे देहविषे जो आत्मा स्थित है, सो देहके चलनेते चलता भासता है, जैसे घटके फूटेते घटाकाश महाकाशविषे स्थित होता है, तैसे देहके नाश हुएते आत्मा निरामय पदविषे स्थित होता है ॥ हे रामजी ! सब जीवोंको देह मनरूपी है, जब मृतक होता है तब कोई काल मुहूर्तपर्यंत देश काल पदार्थका अभाव हो जाता है, तिसके अनंतर बहुरि पदार्थ भासते है, तिस मूर्च्छाका नाम मृतक है, और आत्माका नाश तो नहीं होता, चित्तकी मूर्च्छाकरिकै देश काल पदार्थोंका अभाव होना इसीका नाम मृत्तक है ॥ हे रामजी ! संसारभ्रमको रचनेहारा जो मन है, तिसका ज्ञान रूपी अग्निकरि नाश होता है, आत्मतत्त्वका नाश कैसे होवे ॥ हे रामजी ! देश काल वस्तुकरि मनका निश्चय विपर्ययभावको प्राप्त होता है, परंतु ज्ञानविना नष्ट नहीं होता, अनेक यत्न करै ॥ हे रामजी ! जन्मकल्पित रूपका नाश नहीं होता, जगत्के पदार्थकरि आत्मसत्ताका नाश कैसे होवै, तिसकारणते शोक किसीका नहीं करना ॥ हे महाबाहो ! तुम तो नित्य शुद्ध अविनाशी पुरुष हौ, यह संकल्पवासनाकरिकै तेरेविषे जन्ममरण आदिक भासते है सो भ्रममात्र है, ताते इस वासनाको त्यागिकरिकै शुद्ध चिदाकाशविषे स्थित होहु, जैसे गरुडपक्षी अंडेको त्यागिकरिकै आकाशको उडता है, तैसे वासनाको त्यागिकरि तुम चिदाकाशविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्माविषे जो मनन फुरता है, सोई मन है, सो मननशक्ति इष्ट अनिष्टकरिकै इसको बंधनका कारण है, सो मन मिथ्या भ्रांतिकरिकै उदय हुआ है, जैसे स्वप्नद्रष्टा भ्रांतिमात्र होता है, तैसे जाग्रत सृष्टि भ्रांतिमात्र है ॥ हे रामजी ! यह जगत् अविद्याकरिकै बंधनमय है, अरु दुःखका कारण है, सो अविद्याको तरना कठिन है, अविचारकरिकै अविद्या सिद्ध है, विचार कियेते नष्ट होती है, तिस अविद्याने जगत्को विस्तारा है, यह जगत् बर्फकी कंद है, जब ज्ञानरूपी अग्निका तेज होवै, तब निवृत्त हो जावैगी ॥ हे रामजी ! यह जगत् आकाशरूप है, अविद्या-

भ्राति दृष्टिकरि,आकार होइ भासता है,असत्य अविद्याकरिकै बड़े विस्तारको प्राप्त होता है, दीर्घ स्वप्न है, विचार कियेते निवृत्त हो जाता है ॥ हे रामजी ! यह जगत् भावनामात्र है,वास्तवते कछु उपजा नहीं,जैसे आकाशविषे भ्रांतिकरिकै मोरपुच्छकी नाईं तरुवरे भासते हैं, तैसे भ्रातिकरिकै जगत् भासता है जैसे वर्फकी शिला तप्त करिकै लीन हो जातीहै, तैसे आत्म विचारते जगत् लीन हो जाता है, जैसे वर्फकी शिला उष्णताविना शीतत्वभावको त्यागती नहीं, तैसे आत्मविचारते जगत लीन होजाता है ॥ हे रामजी ! यह जगत् अविद्याकरिकै बँधा है,सो अनर्थका कारण है, जैसे जैसे चित्त फुरता है, तैसे तैसे होय भासता है, जैसे इंद्रजाली सुवर्णकी वर्षा आदिक माया रचता है, तैसे चित्त जैसे फुरता है, तैसा होइके भासता है, जेती कछु चेष्टा आत्माके प्रमादकरिकै मन करता है, सो अपने नाशके कारण होती हैं, जैसे धुराणकी चेष्टा अपने बधनका कारण होती है, तैसे मनकी चेष्टा अपने नाशके निमित्त होती है,अरु जैसे नटवा अपनी क्रियाकरिकै नानाप्रकारके रूपको धारता है,तैसे मन अपने सकल्पको विकल्पकरिकै नानाप्रकारके भाव अभावरूपोंको धारता है, अरु जब चित्त अपने संकल्प विकल्पको त्यागिकरि आत्माकी ओर देखता है, तब चित्त नष्ट हो जाता है,जबलग आत्माकी ओर नहीं देखता,तबलग जगत्को पसारता है, सो दु:खका कारण होता है ॥ हे रामजी ! सकल्पमात्र होना इसविषे तौ यत्न कछु नहीं, संकल्प आवरणको दूर करौ, तब आत्मतत्त्व प्रकाशैगा, सकल्पविकल्पही आत्मविषे आवरण है, जब दृश्यको त्यागौगे तब आत्मबोध प्रकाशैगा ॥ हे रामजी ! मनके नाशविषे बड़ा आनद उदय होता है, अरु मनके उदय हुएते बड़ा अनर्थ होता है, ताते मनके नाश करनेका यत्न करौ, मनको बढ़ावनेका यत्न मत करौ ॥ हे रामजी ! मनरूपी किसानने जगत्रूपी वन रचा है, तिस वनविषे सुखदु:खरूपी वृक्ष हैं, अरु मनरूपी सर्प तिसविषे रहता है, सो विवेकते रहित जो पुरुष है, तिनको भोजन करता है ॥ हे रामजी ! यह मन परमदु:खका कारण है, ताते इस मनरूपी शत्रुको वैराग्य अरु अभ्यासरूपी खड्गसे मारौ, तब आत्मपदको प्राप्त होहुगे ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब वसिष्ठजीने

कहा, तब सायकालका समय हुआ, सब श्रोता परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गये, बहुरि सूर्यकी किरणोंके उदय हुए अपने २ स्थानपर आय बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मननिर्वाणोपदेशवर्णन नाम अष्टसप्ततितमः सर्ग ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ७९.

चित्तमाहात्म्यवर्णनम्।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी। यह चित्र भी परमात्माते उठे है, जैसे समुद्रते लीलाकरिकै जलकणिका होती है, तैसे परमात्माते मन हुआ है, बहुरि मनने जगत् रचा है, सो जगत् बड़े विस्तारको प्राप्त हुआ है, छोटेको बड़ा करि लेता है, अरु बड़ेको छोटा करता है, जो अपना आपरूप है, तिसको अन्यकी नाईं दिखावता है, अरु जो अन्यरूप है, तिसको अपना रूप दिखाता है, अर्थ यह जो आत्माको अनात्मभाव प्राप्त करता है, अरु अनात्माको आत्मभाव प्राप्त करता है, ऐसा जो भ्रांतिरूप मन है, सो निकट वस्तुको दूर देखता है, अरु दूर वस्तुको निकट करि देखता है, जैसे निकट वस्तु स्वप्नविषे दूर होय भासती है, अरु दूर वस्तु निकट होय भासती है ॥ हे रामजी। एक निमेषविषे मन ससारको उत्पन्न करता है, अरु निमेषविषे लीन करि लेता है, जेता कछु स्थावर जगमरूप जगत भासता है, सो सब मनहीते उपजता है, देश काल क्रिया द्रव्य अनेक शक्ति विपर्ययरूप मनही दिखाता है, अपने फुरणेकरिकै नानाप्रकारके भावअभावको मनही प्राप्त होता है, जैसे नट लीला करिकै नानाप्रकारके स्वांगोंको प्राप्त होता है, सांचको असांच अरु असांचको सांच करि दिखाताहै, तैसे मनविषे जैसा फुरना दृढ होता है, तैसे ही भासता है, जैसा जैसा निश्चय चचल मन-विषे होता है, तिनके अनुसार इंद्रिय भी विचरती हैं, अन्यथा नहीं विच-रती ॥ हे रामजी। जो मनकरि चेष्टा होती है, सोई सफल होती है, शरी-रकी करी चेष्टा मनविना सफल नहीं होती जैसा जैसा बालिका बीज

होता है, तैसाही उसका फल होता है, और प्रकार नहीं होता, तैसे जो कछु मनविषे निश्चय होता है, सोई सफल होता है, जैसे बालक मृत्तिकाकी सेना बनाता है, अरु नानाप्रकारके नाम रखता है, तैसे मन भी संकल्पकरिकै जगत्को रचि लेता है, जैसे माटीकी सेना माटीसों भिन्न नहीं, तैसे आत्माविषे नानाप्रकारका जगत कल्पा है, सो आत्माते भिन्न कछु नहीं, जैसे मन संकल्पाविषे अर्थोंको नानाप्रकार कल्पता है, तैसे यह जाग्रत् जगत् भी भ्रमकरि कल्पा है ॥ हे रामजी ! एक गोपदविषे मन अनेक योजनको रचि लेता है, अरु कल्पका क्षण अरु क्षणका कल्प रचि लेता है, जैसा कछु मनविषे तीव्र संवेग होता है, तैसाही होइकरि भासता है, तिसको रचनेविषे विलंब नहीं लगता, रचनेको समर्थ है, जैसा तीव्र संवेग होता है, तैसाही भासता है, जेते कछु देश काल पदार्थ है, सो मनते उपजे है, सबका कारणरूप मन है, जैसे पत्र, फूल, फल, टास वृक्षते उपजे है, सो वृक्षरूप हैं, अरु जैसे समुद्रते लहरी, तरंग होते है, सो जलरूप है, अरु जैसे अग्नि उष्णतारूप है, तैसे नानाप्रकारके स्वभाव मनते उपजे दृष्ट आते हैं, सो मनरूप है ॥ हे रामजी ! कर्त्ता कर्म क्रिया, द्रष्टा दर्शन दृश्य, सब मनकाही पसारा है, जैसे सुवर्णते नानाप्रकारके भूषण भासते हैं, अरु जब सुवर्णका ज्ञान हुआ तब सर्व भूषण एक सुवर्णही भासता है, भूषणभाव नहीं भासता, तैसे जब लग आत्माका प्रमाद है, तबलग द्वैतरूप जगत् भासता है, जब आत्मज्ञान हुआ, तब सब भ्रम मिटि जाता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तमाहात्म्यवर्णन नाम एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ८०.

नृपमोहवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अब एक वृत्तांत तुझको कहता हौं, जो पूर्व व्यतीत हुआ है, यह जगत इंद्रजालवत् है, जैसे मनरूपी इंद्रजालविषे यह जगत् स्थित है, तैसे तू सुन ॥ हे रामजी ! इस पृथ्वीविषे

एक उत्तरपाद नाम देश था, तहां तिसविषे एक वड़ा वन था, तिसविषे नानाप्रकारके वृक्ष अरु फूल, फल, ताल थे, तहां विद्याधरी आयकरि कल्लोल करती थीं, अरु वड़े सुंदर स्थान थे, केलेके वृक्ष अरु खजूर अरु जोवेके वृक्ष थे, तहां मोर शब्द करते थे, और अनेक प्रकारके पक्षी शब्द करते थे, अरु अनेक प्रकारके फूलोंते सुगंध निकस रहीथी तहां विद्याधर अरु सिद्धगण देवता आय विश्राम करते थे, किन्नर आय गान करते थे, मंद पवन चलता था, तिस स्थानविषे महासुंदर रचना वनी थी, सुवर्णवत् महाकल्पवृक्ष पारिजातकवृक्ष लगे थे, तिस देशका लवण नाम राजा हरिश्चंद्रके कुलविषे उपजा, सो वड़ा धर्मात्मा होत भया, मानों दूसरा सूर्य वड़ा तेजवान् पृथ्वीविषे आय उदय हुआ है, जेते कछु शत्रु हैं, तिन सवका कुहाडेसे नाश किया, अरु जो साधु पुरुष पुण्यवान् थे, तिनकी रक्षा करी, और दुष्टोंको मारा ॥ हे रामजी! ऐसा तेज उसका हुआ कि, जो शत्रु राजाका नामस्मरण करै तव उसको ताप चढि जावै, अरु श्रेष्ठ पुरुषकी पालना करै, तिस राजाके यशकारि संपूर्ण पृथ्वी पूर्ण भई, स्वर्गविषे देवता विद्याधर यश गावैं, लोकपाल भी जिसका यश सुनै, सव लोकविषे उसका यश प्रसिद्ध भया ॥ हे रामजी! तिस राजाके समान और कोऊ स्वप्नविषे भी दृष्ट न आवै, कुटिलता अरु लोभ तिसविषे कछु दृष्ट न आवै, अरु वडा वुद्धिवान् अरु उदार था, जैसे ब्रह्माजीके कंठ हाथविषे रुद्राक्षकी माला प्रत्यक्ष पाइये तैसे उसकी उदारता अरु तेज दृष्ट आवै; सो धर्मात्मा एक दिन सभासंयुक्त वैठा था, अरु दो मुहूर्त दिन रहा तव वडे सिंहासनपर वैठा था, जैसे देवताकी सभाविषे इंद्र वैठे तैसे वैठा था, अरु मंडलेश्वरकी सेना अंतर प्रवेश करि वाहिर निकसे, स्त्रियोंका नृत्य होता था, वाजित्र वाजते थे, मधुर ध्वनि होती थी, चमर शीशपर झूलता था, मंत्री आगे खड़े थे, जैसे देवगुरु वृहस्पति हैं, तिसके समान राजाको मंत्री देशमंडलकी वार्त्ता सुनाते थे, अरु इतिहास कथाका पुस्तक वांचिकै ढाप रक्खा था, भट्ट कवि स्तुति करते थे, तिस कालविषे एक इंद्रजाली वाजीगर उसकी सभामें आड-

वरसयुक्त आया, जैसे वर्षाकालका मेघ जलकरि पूर्ण हो आता है, तैसे आया, अरु राजा सुमेरुके शिखर जैसे ऊँचे आसनपर ग्रीवाको ऊँचे कर बैठा था, अरु जैसे पहाड़के ऊपर वृक्ष होता है, अरु तिसके फल लटकते हैं, तैसे राजा ऊँचे सिंहासनपर बैठा था, अरु चरण लटकते थे, तिस राजाके निकट इंद्रजाली आया, जैसे वृक्षके निकट मर्कट आते है तैसे आयके कहत भया ॥ हे राजन् ! एक तुम मेरा कौतुक देखो, हे रामजी ! ऐसे कहिकरि उसने पेटारा खोला, तिसते एक मोरका पुच्छ भ्रमावने लगा, तिसके भ्रमणेकरि नानाप्रकारकी रचना भासने लगी, मानों परमात्माकी माया है, तिसते नानाप्रकारके रंगोंको राजा देखत भया, जैसे इंद्रधनुष आकाशविषे भासता है, तैसे सूर्यकी किरणवत् प्रकाशवान् रंग भासने लगे, बहुरि तिसी क्षणविषे एक मंडलेश्वरका दूत आया, जैसे आकाशकेविषे तारामंडलको लघकरि मेघ आता है, तैसे हाथविषे घोड़ा अरु सभाको लघिकरि आया, अरु कहता भया ॥ हे राजन् ! यह महाबलवान् घोड़ा मेरे राजाने तुमको दिया है, सो कैसा घोड़ा है, जैसे उच्चैःश्रवस् इंद्रका घोडा समुद्रके मथनेते निकसा है, तैसा यह घोड़ा है, अरु पवनकी नाईं इसका वेग है, मानो पवनकी मूर्ति है, मेरे स्वामीने कहा कि, जो उत्तम पदार्थ है, सो बडेको देना योग्य है, इसकारणते यह घोडा रत्न तुमको दिया है, तुम्हारे योग्य है, ताते लेहु ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार दूतने कहा, तब इंद्रजाली बोला, जैसे मेघ गर्जिकरि चुप होता है, अरु पाछे बबीहा बोलता है, तैसे इंद्रजालीने कहा ॥ हे राजन् ! इस घोडेपर तुम आरूढ होकरि विचरो, आप शोभा पाओगे, जैसे आकाशविषे सूर्य शोभता है, अरु जगत्को भी शोभा देता है, तैसे तुम शोभोगे ॥ हे राजन् ! तुम भी शोभोगे, अरु घोडा भी शोभैगा ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार इंद्रजालीने कहा तब राजा घोडेकी ओर देखत भया, देखिकरि मूर्च्छित भया, जैसे कागजपर मूर्ति लिखी होती है, तैसे दो मुहूर्तपर्यंत राजा मूर्च्छित हो गया, जैसे वीतराग मुनीश्वर परमानंद आत्मपदविषे स्थित होता है, तैसे राजा हो गया ॥ हे रामजी ! तिस राजाके भयकरिके मंत्री भी जगावें नहीं, हाथ पाँव राजाके कछु

हिले नहीं, शिरपर चमर होवे, जैसे चिक्कडविषे कमल अचल होता है, तैसे राजा अचल हो गया, जैसे मृत्तिकाको कमल स्पष्ट होता है, तैसे राजा हो गया, भाट कवि शब्द स्तुति करते थे, सो भी चुप हो रहे, जैसे वर्षाकालका मेघ गर्जिकरि शांत हो जाता है, तैसे शात होगए, अरु मन्त्री टहलुए सब भय संशयके समुद्रविषे डूब गए, जानत भये कि, राजाके मनविषे कोऊ वडी चिंता उपजी है, अरु सब सभाके लोक आश्चर्यमान् हुए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे इंद्रजालोपाख्याने नामनृपमोहोनामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ८१

राजाप्रबोधवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब राजा दो मुहूर्तउपरांत चैतन्य हुआ जैसे वर्षाकालके मेघते छूटिकारि कमल प्रफुल्लित होइ आता है; तैसे राजा जागिके सिंहासनपर कँपने लगा, जैसे भूकंपविषे पर्वत हिलते हैं, तैसे राजाके अंग हिलने लगे, जैसे समुद्रके मथनते मंदराचल कँपता था, तैसे कंपिकारि राजा गिरने लगा, तब मंत्री अरु टहलुये भुजा पकडिके राजाको थाभते भए, जैसे प्रलयकालविषे सुमेरु गिरने लगे, अरु पासके पर्वत थाभ गिरने न देवे, तैसे राजाको गिरने न दिया, परंतु राजाकी बुद्धि व्याकुल हो गई, तब राजा बोलत भया, यह नगर किसका है, अरु सभा किसकी है, अरु राजा कौन है, यह क्या है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार राजाका वचन सुना, तब मंत्री कछुक शांत भये, जैसे सूर्य राहुते छूटता है, तब कमल खिल आते हैं, अरु तिनको देखिके भ्रमर प्रसन्न होते हैं, अरु शब्द करते हैं, तैसे मंत्री टहलुए प्रसन्न होइके कहत भये, जैसे प्रलयक्षोभते भ्रमते हुए मार्कंडेय ऋषिको देवता पूछते भये तैसे पूछत भये ॥ हे राजन् ! तू क्यों व्याकुलताको प्राप्त भया है ? तेरा तो निर्मल मन है, तू तौ उदार आत्म है ? हे देव ! जिन पुरुषोंकी प्रीति पदार्थविषे है, अरु आपातरमणीय

भोगोंविषे जिनका चित्त है, तिनका मन मोहविषे भर जाता है, अरु जो संतजन उदारचित्त है, तिनका मन निर्मल होता है, तिनका मन मोहविषे कैसे पडे ?॥ हे देव! जिनका चित्त भोगोंकी तृष्णाविषे बधमान है, तिनका मन मोहको प्राप्त होताहै, अरु जो महापुरुष संतजन हैं; तिनका मन मोहविषे डूबता नहीं, जिनका चित्त पूर्ण आत्मतत्त्वविषे स्थित हुआ है, अरु जे बडे गुणोंकरिकै संपन्न हैं, तिनको शरीरके रहनेविषे अरु नष्ट होनेविषे कछु मोह नहीं उपजता, अरु जिनको आत्मतत्त्वका अभ्यास नहीं प्राप्त भया, अविवेकी है, तिनका चित देशकाल, मंत्र औषधके वशकरि मोहको प्राप्त होता है, तुम्हारा चित्त तौ विवेकभावको ग्रहण करता है, जो नित्यही नूतन उदार कथा अरु शब्द सुनते हौ, अब कैसे मोहकरि चलायमान हुए हौ ? जैसे वायुकरिकै पर्वत चलायमान होवै तैसे तुम चलायमान हुए हौ यह आश्चर्य है तुम अपनी उदारताको स्मरण करौ ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार मंत्री दृढ, हुए कहत भये, तब राजा सावधान भया, अरु मुखकी कांति उज्ज्वल भई, जैसे शरत्कालकी मंजरी सूखी हुई वसंतऋतुविषे प्रफुल्लित होती है, तैसे राजा नेत्रोंको खोलिकरि देखता भया, जैसे सूर्य राहुकी ओर देखता है, जैसे सर्प नौलेकी ओर देखता है, तैसे इंद्रजालकी ओर देखिकरि कहा ॥ हे दुष्ट इंद्रजाल! तैने यह क्या कर्म किया, राजासेभी कोऊ ऐसा कर्म करता है, जैसे जलविना मछली कष्ट पायके बहुरि जलविषे प्रसन्न होवै, तैसे मैं हुआ हौं, बड़ा आश्चर्य है, परमात्मा अनंतशक्ति है, अनेक प्रकारके पदार्थ फुरते हैं, मैं दो मुहूर्तविषे क्या भ्रम देखा, मेरा मन सदा ज्ञानके अभ्यासविषे था, सो मोह गया, तौ प्राकृत जीवोंकी बात क्या कहनी, मैंने बड़ा आश्चर्यभ्रम देखा है, सो सबही मुझते सुनो, यह जो इंद्रजाली है, सो मानो शंबर दैत्य है, जिसने दो मुहूर्तविषे मुझको अनेक देश, काल, पदार्थ, दिखाये, जैसे ब्रह्मा एक मुहूर्तविषे नानाप्रकारके पदार्थ रचि लेवै, तैसे एक मुहूर्त्तविषे इसने मुझको अनेक भ्रम दिखाये हैं, सो सबही मैं तुम्हारे आगे कहता हौं, मानौ सारी सृष्टि इसके पेटारेविषे है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राजाप्रबोधो वर्णनं नाम एकाशीतितम सर्ग ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ८२.

चाडालीविवाहवर्णनम्।

राजोवाच ॥ हे साधो ! इस पृथ्वीका मैं राजा हौं, सब पृथ्वीविषे मेरी आज्ञा चलती है, अरु मैं इंद्रजालकी नाईं सिंहासनपर बैठता हौं, जैसे स्वर्गविषे इंद्रके आगे देवता होते हैं, तैसे मेरे आगे भृत्य मंत्री हैं, ऐसी उदारताकरि मैं संपन्न हौं, सो मैं वडे भ्रमको देखता भया ॥ हे साधो ! जब इस इंद्रजालीने पेटारेसों काढिकरि मोरके पुच्छको भ्रमाया, तब वह पुच्छ मुझको सूर्यकी किरणोंकी नाईं भासा, जैसे वडा मेघ गर्जिके शांत होता है, अरु पाछेते इंद्रधनुष दृष्ट आता है, तैसे विचित्ररूप पुच्छ मुझको दृष्ट आया, तब तिसके अनंतर एक दूत घोडा ले आया, तिस घोडेपर मैं आरूढ भया, सो चित्तहीकरि घोड़ा मुझको दूरते दूर ले गया, यहांही बैठा रहा, अरु घोडा मुझको दूरते दूर ले गया, जैसे भोगोंकी वासनाकरिके मूर्ख घरही बैठे दूरते दूर भटकते फिरें, तैसे मुझको घोड़ा दूरते दूर ले गया, एक महाभयानक निर्जन देशविषे ले गया, जैसे प्रलयकालकेविषे जले हुए स्थान होते हैं, तैसे स्थानविषे मुझे ले गया, मानों दूसरा आकाश है, मानों सात समुद्र हैं, तिनसमान अष्टमा समुद्र है चारों दिशोंके जो चार समुद्र वर्णन किये हैं, तिनसमान मानों पांचवाँ समुद्र है, महाभयानक स्थानोंको ले गया, देशोंको लंघिकरि महाअटवीविषे ले आया, जैसे आकाशवत् ज्ञानीका चित्त होता है, अरु जैसे अज्ञानीका चित्त कठोर होता है, अरु शून्य होता है, तैसे स्थानविषे ले गया, जहां घास वृक्ष जीव मनुष्य कोऊ दृष्ट न आवै, तहां मैं महाकष्टवान दीनताको प्राप्त हुआ, जैसे धन अरु बांधवोंते तथा देश अरु बलते रहित पुरुष कष्ट पावता है, तैसे मैं कष्टवान् हुआ, तब दिनका अंत हो गया, तहां उजाड़विषे कष्टसाथ मैं रातको व्यतीत कीनी, रात्रिको पृथ्वीपर शयन किया, परंतु निद्रा न आई, कल्पसमान रात्रि हो गई, दुःख करिके जब सूर्य उदय हुआ तब मैं वहांते चला, आगे गया, पक्षियोंका शब्द सुना, वहुरि वृक्ष दृष्टि आये, परंतु खानपान कछु न पाया, तिन

भोगोंविषे जिनका चित्त है, तिनका मन मोहविषे भर जाता है, अरु जो सतजन उदारचित्त है, तिनका मन निर्मल होता है, तिनका मन मोहविषे कैसे पडै ?॥ हे देव! जिनका चित्त भोगोंकी तृष्णाविषे बधमान है, तिनका मन मोहको प्राप्त होताहै, अरु जो महापुरुष सतजन हैं, तिनका मन मोहविषे डूबता नही, जिनका चित्त पूर्ण आत्मतत्त्वविषे स्थित हुआ है, अरु जे बडे गुणोंकरिकै सपन्न हैं, तिनको शरीरके रहनेविषे अरु नष्ट होनेविषे कछु मोह नहीं उपजता; अरु जिनको आत्मतत्त्वका अभ्यास नहीं प्राप्त भया, अविवेकी हैं, तिनका चित्त देशकाल, मत्र औषधके वशकरि मोहको प्राप्त होता है, तुम्हारा चित्त तौ विवेकभावको ग्रहण करता है, जो नित्यही नूतन उदार कथा अरु शब्द सुनते हौ, अब कैसे मोहकरि चलायमान हुए हौ ? जैसे वायुकरिकै पर्वत चलायमान होवै तैसे तुम चलायमान हुए हौ यह आश्चर्य है तुम अपनी उदारताको स्मरण करौ ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार मन्त्री टहलुए कहत भये, तब राजा सावधान भया, अरु मुखकी कांति उज्ज्वल भई, जैसे शरत्कालकी मजरी सूखी हुई वसंतऋतुविषे प्रफुल्लित होती है, तैसे राजा नेत्रोंको खोलिकरि देखता भया, जैसे सूर्य राहुकी ओर देखता है, जैसे सर्प नौलेकी ओर देखता है, तैसे इन्द्रजालकी ओर देखिकरि कहा ॥ हे दुष्ट इन्द्रजाल ! तैने यह क्या कर्म किया, राजासेभी कोऊ ऐसा कर्म करता है, जैसे जलविना मछली कष्ट पायके बहुरि जलविषे प्रसन्न होवै, तैसे मैं हुआ हौं, बड़ा आश्चर्य है, परमात्मा अनंतशक्ति है, अनेक प्रकारके पदार्थ फुरते हैं, मैं दो मुहूर्तविषे क्या भ्रम देखा, मेरा मन सदा ज्ञानके अभ्यासविषे था, सो मोह गया, तौ प्राकृत जीवोंकी बात क्या कहनी, मैंने बड़ा आश्चर्यभ्रम देखा है, सो सबही मुझते सुनो, यह जो इन्द्रजाली है, सो मानो शंबर दैत्य है, जिसने दो मुहूर्तविषे मुझको अनेक देश, काल, पदार्थ, दिखाये, जैसे ब्रह्मा एक मुहूर्तविषे नानाप्रकारके पदार्थ रचि लेवै, तैसे एक मुहूर्तविषे इसने मुझको अनेक भ्रम दिखाये हैं, सो सबही मैं तुम्हारे आगे कहता हौं, मानो सारी सृष्टि इसके पेटारेविषे है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राजाप्रबोधो वर्णन नाम एकाशीतितम सर्ग ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ८२.

चांडालीविवाहवर्णनम् ।

राजोवाच ॥ हे साधो ! इस पृथ्वीका मैं राजा हौं, सब पृथ्वीविषे मेरी आज्ञा चलती है, अरु मैं इंद्रजालकी नाईं सिंहासनपर बैठता हौं, जैसे स्वर्गविषे इंद्रके आगे देवता होते हैं, तैसे मेरे आगे भृत्य मंत्री हैं, ऐसी उदारताकरि मैं संपन्न हौं, सो मैं बडे भ्रमको देखता भया ॥ हे साधो ! जब इस इंद्रजालीने पेटारेसों काढिकरि मोरके पुच्छको भ्रमाया, तब वह पुच्छ मुझको सूर्यकी किरणोंकी नाईं भासा, जैसे बड़ा मेघ गर्जिके शांत होता है, अरु पाछेते इंद्रधनुष दृष्ट आता है, तैसे विचित्ररूप पुच्छ मुझको दृष्ट आया, तब तिसके अनंतर एक दूत घोडा ले आया, तिस घोडेपर मैं आरूढ भया, सो चित्तहीकरि घोड़ा मुझको दूरते दूर ले गया, यहाही बैठा रहा, अरु घोडा मुझको दूरते दूर ले गया, जैसे भोगोंकी वासनाकरिके मूर्ख घरही बैठे दूरते दूर भटकते फिरैं, तैसे मुझको घोड़ा दूरते दूर ले गया, एक महाभयानक निर्जन देशविषे ले गया, जैसे प्रलयकालकेविषे जले हुए स्थान होते हैं, तैसे स्थानविषे मुझे ले गया, मानो दूसरा आकाश है, मानो सात समुद्र हैं, तिनसमान अष्टमा समुद्र है चारों दिशोंके जो चार समुद्र वर्णन किये हैं, तिनसमान मानो पांचवाँ समुद्र है, महाभयानक स्थानोंको ले गया, देशोंको लंघिकरि महाअटवीविषे ले आया, जैसे आकाशवत् ज्ञानीका चित्त होता है, अरु जैसे अज्ञानीका चित्त कठोर होता है, अरु शून्य होता है, तैसे स्थानविषे ले गया, जहां घास वृक्ष जीव मनुष्य कोऊ दृष्ट न आवै, तहां मैं महाकष्टवान् दीनताको प्राप्त हुआ, जैसे धन अरु बांधवोंते तथा देश अरु कुलते रहित पुरुष कष्ट पावता है, तैसे मैं कष्टवान् हुआ, तब दिनका अंत हो गया, तहां उजाड़विषे कष्टसाथ मैं रातको व्यतीत कीनी, पत्तेको पृथ्वीपर डा[illegible] शयन किया, परंतु निद्रा न आई, कल्पसमान [illegible] हो गई, दु[illegible] तहाँ करिकै जब सूर्य उदय हुआ तब मैं वहांते चल[illegible] गया, पक्षि[illegible] तब वह शब्द सुना, बहुरि वृक्ष दृष्टि आये, परंतु [illegible]नि कछु न [illegible]

वृक्षोंको देखिकै प्रसन्न भया, जैसे मरणेते छूटे पुरुप रोगकरि भी प्रसन्न होवे, तैसे मैं वृक्षोंको देखिकारि प्रसन्न हुआ एक जामके वृक्षका मैंने आश्रय लिया, जैसे मार्कंडेय ऋपिने प्रलयके समुद्रविपे भ्रमता हुआ वटका आश्रय लिया था तैसे मैंने वृक्षका आश्रय किया, तब घोड़ा मुझको छोड़िकै चल दिया, जैसे गंगाविपे डुबकी लेनेकरि पाप चल देते हैं, तैसे घोड़ा मुझको छोड़ि गया, बहुरि सूर्य अस्त भया, तहाँ रात्रि मैं व्यतीत करी, न कछु भोजन किया, न जलपान किया, न स्नान किया, महादीनताको मैं प्राप्त हुआ, जैसे कोऊ विकाया मनुष्य दीन हो जाता है, अरु जैसे अंधकूपविपे गिरा मनुष्य कष्टमान् होवै, तैसे कष्टमान् हुआ, अरु कल्पके समान रात्रि व्यतीत भई, दीन हुआ, कोऊ फूल, फल, पत्र, जल, वहां दृष्ट न आवे, जैसे मूर्खके शरीरविपे कोऊ गुण दृष्ट न आवे, तैसे वहां अन्नपान कछु दृष्ट न आवे, तब मैं आगे गया, तहा पक्षी शब्द करते थे, अरु आधा प्रहर दिन रहा, एक कन्या मुझे दृष्ट आई, तिसके हाथविपे मृत्तिकाकी मटकी,तिसविपे रँधे चावल, अरु जाबूके रसकी टीड भरी हुई ले जाती है,तिसको देखिकारि मैं तिसके सन्मुख आया, जैसे रात्रिके सन्मुख चंद्रमा आता है, तैसे मैं आइके कहा, हे बाले ! मुझको भोजन दे, मैं क्षुधाकारिकै आतुर हौं, जो कोऊ दीन आर्तको अन्न देता है, सो बड़ी संपदाको प्राप्त होता है,ताते तू भोजन मुझको देहु ॥ हे साधो! जब मैंने वारंवार कहा,तब उसने कहा,तू तौ कोल राजा भासता है, जो नानाप्रकारके भूपण वस्त्र पहिरे हुए है, तू जो भोजन माँगता है, सो मैं न देऊँगी, ऐसे कहिकारि आगे चली जावै, अरु मैं भी तिसके पाछे जैसे छाया जावे, तैसे चला जाऊं, मैं कहता जाऊँ हे बाले! मुझे भोजन देहु, जो मेरी क्षुधा शांत होवै, तब उसने क[illegible] [illegible]जन् ! हम नीच लोक हैं, अपने प्रयोजनविना [illegible] नहीं दे[illegible] मेरा [illegible] भर्त्ता होवै, तब मैं देवौं, यह अन्न मैं पि[illegible] ले[illegible] मान्नानाविपे वेतालकी नाई अ[illegible] [illegible]ोइ [illegible] राजाप्र[illegible]मेरा भर्त्ता होऊ तब [illegible] प[illegible] [illegible] [illegible]ामों क्षमा कर[illegible] है

कहा, तब मैंने कहा, भला मैं भर्त्ता होऊंगा, मुझे भोजन दे ॥ हे साधो ! ऐसा कौन है, जो ऐसी आपदाविषे अपने वर्णाश्रमके धर्मको दृढ राखे ? तब उसने मुझको अर्धभाग भोजन दिया, अरु अर्ध जांबूका रस दिया, तिसका भोजन पान किया, तब कछुक शांतिवान् हुआ परंतु मेरा मोह निवृत्त न भया, तब दोनों मेरे हाथ पकड़िकरि मुझको आगे लगाय लिया और अपने पिताके निकट ले गई, जैसे पापीको यमदूत ले जाते हैं, तब उसने कहा, हे पिता ! यह मैंने भर्ता किया है, पिताने कहा, भला किया ऐसे कहकरि चावल अरु जांबूके रसका भोजन कराया, भोजन करिकै पिताने कहा ॥ हे पुत्रि ! इसको अपने घर ले जा, तब मुझको अपने घर ले गई, जब घरके निकट गये, तब मैंने देखा, कि अस्थि, मांस रुधिर, बहुत पड़ा है, कुत्ते कूकुर गर्दभ हस्ती आदिक जीवोंकी खालडियां पड़ी हैं, तिनको लघिकरि अपने घरविषे ले गई, जैसे पापीको नरकविषे यमदूत ले जाते हैं, एक बगीचा निकट था, तिसके आगे अपनी माताके पास मुझे ले गई, अरु कहा, हे माता ! यह तेरा जवाई हुआ है, माताने कहा, भली बात है, तब उनके घर हम विश्राम किया, उस चंडालीने मुझको भोजन दिया, तिसका भोजन किया, मानों अनेक जन्मोंके पाप भोगते हैं, बहुरि विवाहका दिन स्थापन किया, तिस दिनविषे विवाह किया, चंडाल हँसे, अरु नृत्य करें, मानों मेरे पाप नृत्य करते हैं, वह चंडाली मुझको विवाहि दीनी, जैसे पापीको शासन देते हैं, तैसे चंडालीका वस्त्र आदिक पदार्थसहित मुझको विवाह कर दिया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चंडालीविवाहवर्णन नाम द्व्यशीतितम सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितम सर्गः ८३.

इन्द्रजालोपाख्यानउपद्रववर्णनम् ।

राजोवाच ॥ हे साधो ! बहुत कहनेकरि क्या है ? वहां मैं बड़ा चंडाल होता भया सप्त दिन विवाहका उत्साह होता भया, नव अष्टमास मैं रहा, तिनके अनंतर मैं और स्थानोंविषे रहा, तब वह चंडाली गर्भवती भई, तिसते एक कन्या उत्पन्न भई, जैसे पापक्रियेते

दुःख उत्पन्न होते हैं, तैसे दुःखनाम्नी कन्या भई, अरु शीघ्रही बढ़ गई, जैसे मूर्खके चित्तविषे चिंता बढजाती है, बहुरि तीसरे वर्ष पाछे तिसको बालक उत्पन्न हो गया, जैसे दुर्बुद्धिते अनर्थ उत्पन्न होता है बहुरि पुत्र बहुरि कन्या उपजी, इसीप्रकार तीन पुत्र अरु तीन कन्या उत्पन्न हुए, तब मै बड़ा चंडाल परिवारवान् हुआ, तिस चंडाली-साथ मैं चिरकालपर्यंत चंडालोंविषे विचरता रहा, जैसे ब्रह्महत्यारा नरकोंविषे चितासहित बसता रहै, तैसे मैं रहा, अरु तिसके साथ मेरा बहुत स्नेह भया, जैसे जालविषे पक्षी बधायमान होता है, तैसे मै तिन्हों-विषे बधमान भया ॥ हे साधो ! तिनाविषे मैं बड़ा कष्ट पाया, प्रथम जो पटका वस्त्र भी चुभता था ऐसे तिस शिरविषे मैं भार उठाऊं, अरु नीचे चरण तपायमान होवें, अरु शिरपर सूर्य तपै, रात्रिको कंटकोंपर शयन करों, तिसकरि मै बड़े कष्टको पाता भया, ऊपर वस्त्र कोऊ प्राप्त न होवे, अरु पुरातन कोपीन जीवजतोंके लोहूसे भरे हुए, अरु आर्द्र शिराने देवैं, अरु कुक्कुट हस्ती आदिक अशुचि पदार्थोंका भोजन करें, अरु रुधिरका पान करें ऐसी हमारी चेष्टा हुई जालसे पक्षी मारों, कुंडीसे मच्छ कच्छ आदिक मारों, अनेक प्रकारके क्रूर नीच कर्म हम करते भये; जैसी तैसी जो वस्तु पाई सो भोजन करें, विचारते हीन हम चिरकाल-पर्यंत ऐसी चेष्टा करते रहे, अरु ऐसी अवस्था भई कि, अस्थिमांसके निमित्त हम आपसमें लडें, पुत्र अरु स्त्री सब लडें, अरु शीतकालमें शीतकरि कष्ट पावै, उष्णकालमें उष्णताकरि कष्टमान् होवें, मेरा शरीर बहुत कृश हो गया, अवस्था भी वृद्ध भई; मशानोंविषे हमारा बहुत काल व्यतीत भया, मास अरु रक्तपान करें, अरु जो वेतालजन आवैं, तिनको हम मारें, जैसे चंडिकाने दैत्योंको मारा था, आतडे अरु चमडे तले बिछाइके शयन करें, अरु शिरके शिराने राखें, ऐसे चिरकालपर्यंत हम चेष्टा करते रहे; बांधवोंमें स्नेह बहुत बढ़गया, ऐसी नीचताको भी हम प्राप्त भये, अरु तृष्णा बढ़ती जावै, जैसे वर्षाकालकी नदी बढ़ती जाती है, तैसे तृष्णा बढ़ती जावै, मृत्तिकाके पात्रोंविषे आगे चंडाल भोजन करि जावें, तिन्हीं वासनोंविषे हम भोजन करें, बहुरि वर्षा होनेते

रहिगई, काल पड़ा, सूर्य तपने लगा, मानौ द्वादश सूर्य इकट्ठे तपे हैं, अरु दावाग्नि वनको लगा, वनके जीव अन्न जलके निमित्त कष्ट पाने लगे, अपने देशको छोडिके देशांतरको जावें, वहां उपद्रव आय प्राप्त हुआ, समयविना मानौ प्रलय आया है, क्षुधा अरु तृष्णाकरिकै कई जीव मृतक हो जावें, कई गिर पडें, वहुत कष्ट आय पडा, तव हम वहासों निकसे, तीन पुत्र, तीन कन्या, स्त्रीसहित मैं निकला, जहां अन्न जल सुनै, तहां जावैं, मांस खावैं, जल अथवा रक्त पान करें, वहुरि यह भी हाथ न आवे, तव वहुत शोकवान् हुए, शरीर निरस जैसा हो गया, ऐसे कष्टमान् हुए, पुत्र पिताको न सभाले, अरु पिता पुत्रको न सभाले, वांधवोंका स्नेह आपसमें छूटगया, अपने वास्ते सव दोड़ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे इंद्रजालोपाख्याने उपद्रववर्णन नाम त्र्यशीतितम सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितम सर्गः ८४.

सांवरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

॥ राजोवाच ॥ हे सभा! इसप्रकार हम चिरकाल विचरते फिरे, मेरा शरीर वृद्ध हो गया, अरु वाल वर्फकी नाई श्वेत हो गये, जैसे सूखा पात वायुकरिकै विचरता है, तैसे हम कर्मोंके वशते भ्रमते रहे, जो कछु अपने राजाका अभिमान था, सो मुझे विस्मरण हो गया, अरु चंडालभाव मेरेविषे दृढ हो गया, तव मैं तहां कंपायमान हुआ, तुम्हारी दृष्टिमें आया, अव कछु सावधान भया, अरु शब्द तुरीयां वाजने लगे, जैसे पत्तोंके टूटेते पहाड अचल भये, तैसे चंडाल कल्प मेरेविषे दृढ हो गया, अरु व्याकुलताकरिकै हम महाकष्टवान् हुए. तृण, फूल, फल, जल, कछू दृष्ट न आवे, अरु अनेक मृगतृष्णा की नदियां दृष्ट आवें, जव वायु चले तव रेतीके कणके उडते मेघकी नाई दृष्ट आवें, सव जीव कष्टमान होइके कलत्रको छोडि जावें, कोऊ पहाडऊपर चढिकरि दुःखके निमित्त गिर गिर पडे, जैसे चिडीका वाज

भोजन करता है, तैसे जीवोंको विघाड भोजन करें, बहुरि एक वृक्ष पाया तिसके नीचे मैंने विश्राम किया, तब एक बालक जो सबते छोटा था, सो मेरे पास आया, अरु कहा, हे पिता, मुझको मास देहु, जो मैं भोजन करौं, नहीं तौ मेरे प्राण निकसते हैं, तब मैंने कहा, मांस तौ है नहीं तब वह कहत भया, भावे तहांसो देहु, तब स्नेहकरि बांधा, अरु छोटा पुत्र सबते प्यारा होता है, तिसकरि मैंने कहा, हे पुत्र ! मेरा मास है, सो खाता है ? तब उस दुर्बुद्धिने कहा, देहु, तब मैं वनते लकडियां इकट्ठे करिकै अग्नि जलाई, अरु कहा, हे पुत्र ! मैं अग्निविषे प्रवेश करता हौं, जब परिपक्व होऊं, तब तू भोजन करना ॥ हे सभा ! इसप्रकार मैंने स्नेहकरिके कहा, कि किसीप्रकार यह जीते रहें ऐसे कहिकरि मैंने चिताविषे प्रवेश किया जब मुझको उष्णता लगी. तब मैं कंपायमान हुआ, तुमको दृष्ट आया, बहुरि कछुक सावधान भया, अरु शब्द तुरीयां बाजने लगीं ॥ हे साधो ! मैं इसप्रकार चरित्र देखा है, तैसे तुम्हारे आगे कहा है, जैसे मार्कंडेयने प्रलयविषे क्षोभको देखा, अरु देवताको कहा, तैसे मैंने तुमको अपना वृत्तांत कहा है जब इंद्रजालीने पूछको भ्रमाया, तिसके भ्रमाणेसाथ मैं घोडेपर आरूढ भया, तिसकरि एता काल मैं भ्रमको प्रत्यक्ष देखता रहा, ताते बडा आश्चर्य है, जो मेरे जैसे विवेकवान् राजाको इसने मोहित किया है, तौ और प्राकृत जीवोंकी क्या वार्ता है, माया महाआश्चर्य है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार तेजवान् राजाने कहा, तब वह सांबरीक अंतर्धान हो गया अरु सभाविषे जो मंत्रीते आदि लेकरि बैठे थे, सो सब आश्चर्यमान् हुए, अरु देखिकै परस्पर कहने लगे, बड़ा आश्चर्य है बड़ा आश्चर्य है, भगवान्की माया विचित्ररूप है, यह सांबरी माया नहीं, काहेते जो सांबरी अपने लोभके निमित्त दिखाता है, पाछे यत्नकरिके धन आदिक पदार्थ मांगता है, अरु यह लियेबिना अंतर्धान हो गया है यह ईश्वरकी माया है, तिसकरि ऐसा विवेकवान् राजा मोहको प्राप्त हुआ है, जो बड़ा तेजवान् अरु शूरमा राजा मोहित भया, तौ सामान्य जीवोंकी क्या बात है ॥ हे रामजी ! एस मंदहमान

होकरि सब स्थित भये, अरु मैं भी उस सभाविषे बैठा था, यह वृत्तांत मैंने प्रत्यक्ष देखा है, किसीके मुखते श्रवणकरिकै नहीं कहा ॥ हे रामजी । यह जो अणुरूप मन है, सो महामोह है, अरु अविद्या है, इसके फुरणेकरि अनेक प्रकारोंका मोह दीखता है, जब यह मन उपशम होवै, तबहीं कल्याण है, ताते मन जो बहुत कलपना उठाता है, तिसको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित करौ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सावरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम चतुरशीतितम सर्ग ॥ ८४ ॥

पंचाशीतितमः सर्गः ८५

चित्तवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी । आदि जो शुद्ध परमात्माते चित्तसंवेदन फुरा है, सो कलनारूप होइके स्थित भया है, तिसकरि दृश्य सत्य होइ भासता है, आत्माके प्रमादकरिकै मोहको प्राप्त हुआ है, सो चित्तके फुरणेकरिकै चिरपर्यंत जगत्‌विषे मग्न हो रहा है, सो मन असत्यरूप है, अरु मननेही, सपूर्ण जगत्‌को विस्तारा है, तिसकरि अनेक दु खको प्राप्त हुआ है, जैसे बालक अपने परछाईविषे वैताल कल्पिकरि आपही भयमान् होता है, अरु वही मन जब संसारकी वासनाको त्यागिकरि आत्मपदमें स्थित होता है, तब एक क्षणविषे सब दु ख नष्ट हो जाते है, जैसे सूर्यकी किरणोंकरि अधकार नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी । ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो अभ्यास कियेते प्राप्त न होवै, ताते जब आत्मपदका अभ्यास करिये तब प्राप्त होता है, आत्मपदके अभ्यास कियेते आत्मा निकट भासता है, अरु ससार दूर भासता है, अरु जब जगतका अभ्यास दृढ होता है, तब जगत निकट भासता है, आत्मा दूर भासता है ॥ हे रामजी । जो मूर्ख मनुष्य है, तिनको अभयपदविषे भय होता है, जैसे पथीको दूरते वृक्षविषे वैतालकल्पना होती है, और भयको पाता है, तैसे चित्तकी वासनाकरि जीव भयको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी । जो वासनासहित मलीन मन होता है, तिसविषे नानाप्रकार ससारभ्रम

उठता है, जब आत्मपदविषे स्थित होता है, तब भ्रम मिटजाता है, अरु जैसा मनविषे निश्चय होता है, तैसाही हो भासता है, जब मित्रविषे शत्रुबुद्धि होती है, तब निश्चयकरि शत्रु हो जाता है, अरु जो मदकरि उन्मत्त होता है, तिसको संपूर्ण पृथ्वी भ्रमती दृष्ट आती है, अरु व्याकुल मन होता है, तब चंद्रमा भी श्याम जैसा भासता है, जो अमृतविषे विषकी भावना होती है, तब अमृत भी विषकी नाईं भासता है, जेते कछु जाग्रत पदार्थ देश, काल, क्रिया, पत्तन भासते हैं, सो मनकरि भासते हैं॥ हे रामजी! संसारका जो कारण है, सो मोह है, तिस मोहकरिकै जीव भटकता है, ताते ज्ञानरूपी कुहाडेकरिकै वासनारूपी मलिनताको काटो, आत्मपद पानेविषे वासनाही आवरण है ॥ हे रामजी ! वासनारूपी जालकरिकै मनुष्यरूपी हरिण आवृत है, अरु ससाररूपी वनविषे भटकता है, जिस पुरुषने विचारकरिकै वासनाको नष्ट की है, तिसको परमात्मप्रकाश भासता है, जैसे बादलते रहित सूर्य प्रकाशता है, तैसे वासनारहित चित्तविषे आत्मा प्रकाशता है ॥ हे रामजी ! मनहीको तू पुरुष जान, देहको मनुष्य नहीं जानना, काहेते कि देह जड़ है, अरु मन जड़ अरु चेतनते विलक्षण है, जो मनकरि कार्य करता है, सो कार्य सफल होता है, जो मनकरि दिया है, अरु जो मनकरि लिया है, सोई दिया अरु लिया है, जो देहकरि किया है, सो मननेही किया है ॥ हे रामजी ! यह सपूर्ण जगत् मनरूप है, मनही पर्वत है, मनही आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी सब मनही है, सूर्य आदिकोंका प्रकाश मनही करि होता है, अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध सब मनहीकरि ग्रहण होते हैं, अरु नानाप्रकारकी वासनाकरिकै नानाप्रकारके रूप मनही धरता है, जैसे नटवा नानाप्रकारके स्वांगोंको धरता है, तैसे नानाप्रकारके रूप मनही धरता है, लघु पदार्थको दीर्घ मनही करता है, सत्यको असत्यकी नाईं अरु असत्य जगत्के पदार्थको सत्यकी नाईं करता है, मित्रको शत्रु करता है, शत्रुको मित्र करता है॥ [illegible] जैसी वृत्ति मनकी दृढ होती है, सोई सत्य होइ भासै [illegible] बारह वर्ष हो भासे, अरु [illegible]

हुआ, अरु मनहीके दृढ निश्चयते इंद्र ब्राह्मणके पुत्र दशही ब्रह्मपदको प्राप्त भये ॥ हे रामजी ! जो सुखसाथ बैठा है अरु मनविषे कोऊ चिंता आन लगी, तो सुखहीविषे उसको रौरव नरक हो जाता है, अरु जो दुःखविषे बैठा है अरु मनविषे शांत है, तो दुःख भी सुख हो जाता है, ताते जैसा निश्चय मनविषे होता है, तैसाही होइ भासता है, अरु जिस ओर मनका निश्चय होता है, तिसी ओर मन इंद्रियोंका समूह विचरता है, अरु इंद्रियोंका आधारभूत मन है जो मन टूट पड़ता है, तब इंद्रियां भिन्न भिन्न हो जानी है, जैसे तागेके टूटेते मणके भिन्न भिन्न होइ पडते हैं, तैसे मनते रहित इंद्रियां अर्थोंते रहित भिन्न होती हैं, अरु वास्तव आत्मतत्त्व सबविषे अधिष्ठान स्थित है, सो स्वच्छ निर्विकार सूक्ष्म समभाव नित्य है, अरु सबका साक्षीभूत है, अरु सब पदार्थोंका ज्ञाता है, अरु देहते भी, अधिक सूक्ष्मरूप है, अर्थ यह कि अहंभावके उत्थानते रहित चिन्मात्र है, तिसविषे मनके फुरणेकरिकै संसार भासता है, वास्तव द्वैतभ्रमते रहित है, सब जगत् आत्माका किंचनमय रचा है, सबविषे चेतनशक्ति व्यापी है, वायुविषे स्पंदरूप वही है, पृथ्वीविषे कठोरता वही है, सूर्य अग्नि आदिकविषे प्रकाश वही है, जलविषे द्रवतारूपी वही है, आकाशविषे शून्यता वही है, सब पदार्थोंविषे चेतनशक्ति व्यापि रही है, सो अनेकता वास्तव नहीं, मनकरिकै अनेकता भासती है, शुक्ल पदार्थको कृष्ण करता है, देश, काल, पदार्थ, क्रिया द्रव्यको मनही विपर्यय करता है ॥ हे रामजी ! जैसे निश्चय मनविषे दृढ होना है, सोई सिद्ध होता है, मनविना किसी पदार्थका ज्ञान नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिह्वाकरिकै नानाप्रकारके भोजन करता है, परंतु मन और ठौर होता है, तब उसका स्वाद कछु नहीं आता अरु नेत्रों करि चित्तसहित देखता है, बहुरि रूपका ज्ञान होता है, इसकारण मनविना [illegible] विषय सिद्ध नहीं होता, अंधकार अरु प्रकाश भी मनविना [illegible] जी ! सब पदार्थ भासते हैं सो मनकरि भासते हैं, जैसे [illegible] नहीं होता, तो नहीं भासता, तैसे नियमान [illegible] रामजी ! इंद्रियोंने मन नहीं उपना परंतु

मनते इंद्रियां उपजी हैं, अरु जेता कछु इंद्रियोंका विषय दृश्यजाल है, सो सब मनते उपजा है, जिन पुरुषोंने मनको वश किया है सोई महात्मा पुरुष पंडित है, तिनको नमस्कार है ॥ हे रामजी! नानाप्रकारके भूषण अरु फूल पहिरे हुए स्त्री प्रीतिसाथ कंठ मिले, अरु जो चित्त इसका आत्मपदविषे स्थित है, तब वह उसको मृतककी कंधके समान है अर्थ यह कि, उसको इष्ट अनिष्टका राग, द्वेष कछु नहीं उपजता, इष्ट अनिष्टविषे राग, द्वेष मन उपजाता है, मनके स्थित हुएते राग द्वेष कछु नहीं उपजता ॥ हे रामजी! एक वीतराग ब्राह्मण ध्यानस्थित वनविषे बैठा था, तिसके हाथको कोऊ वनचर जीव तोड ले गया, परंतु तिसको कछु कष्ट न भया, काहेते कि मन स्थिर था, यही मन फुरनेकरि सुखको भी दुःख करता है, अरु अपनेविषे स्थित हुए दुःखको भी सुख करता है ॥ हे रामजी! कथाके श्रवणविषे बैठा है, अरु जो मन चितवनाविषे जाता है तब कथाके अर्थ समझविषे नहीं आते, अरु अपने गृहविषे बैठा है, अरु मनके संकल्पकरिकै पहाड़ ऊपर दौडता टूट पड़ता है, तब उसको प्रत्यक्ष अनुभव होता है, सो मनका भ्रम है, जैसी फुरना मनविषे फुरती है सोई भासती है, जैसे स्वप्नविषे एक क्षणमें नदी, पहाड, आकाश आदि पदार्थ भासने लगते हैं, तैसे यह पदार्थ भासते हैं ॥ हे रामजी! अपने अंतर सृष्टि भी मनके भ्रमते भासती है, जैसे जलके अंतर अनेक तरंग होते हैं, जैसे वृक्षके अंतर पत्र, फूल, फल, टास होते हैं, तैसे एक मनके अंतर जागृत स्वप्न आदिक भ्रम होते हैं, जैसे सुवर्णते भूषण अन्य नहीं होते, तैसे जागृत अरु स्वप्न अवस्था भिन्न नहीं होती, जैसे तरंग बुद्बुद जलते भिन्न नहीं, जैसे नटवा नानाप्रकारके स्वांगोंको लेकर अनेक रूप धरता है, तैसे मन वासनाकारिकै अनेक रूपोंको धरता है ॥ हे रामजी! जैसे स्पंदविषे दृढ होता है, तैसाही अनुभव होता है, जैसे लवणराजाको भ्रमकरिकै चंडालीका अनुभव भया, तैसे यह जगतका अनुभव मनोमात्र है, चित्तके भ्रमकरिकै भासता है ॥ हे रामजी! जैसी जैसी प्रतिमा मनविषे होती है, तैसाही इसको अनुभव होता है यह संपूर्ण जगत् मनमात्र है, जैसे तेरी इच्छा

होवै तैसे कर, जैसा जैसा फुरणा मनविषे होता है, तैसा होय भासता है, मनके फुरणेकरि देवता भी दैत्य हो जाते हैं, अरु दैत्य भी मनके फुरणेकरि देवता हो जाते हैं मनुष्य नाग हो जाते हैं, वृक्ष हो जाते हैं, जैसे लवण राजा आपदाका अनुभव करता भया ॥ हे रामजी ! मनके फुरणे करि मरणा होता है, बहुरि मनके फुरणेकरि जन्म होता है, संकल्पकरि पुरुषते स्त्री हो जाती है, अरु स्त्रीते पुरुष हो जाता है, पिता पुत्र हो जाता है, अरु पुत्र पिता हो जाता है, जैसे नटवा शीघ्रही अपने स्वांगकरि अनेक रूपोंको धारता है, तैसे अपने संकल्पकरि मन भी अनेक रूपोंको धारता है ॥ हे रामजी ! जीव निराकार है, अरु मनकरिके आकारकी नांई भासता है, तिस मनविषे जो मनन है, सो मूढता है तिस मूढताकरिके जो वासना हुई है, तिस वासनारूपी पवनकरिके यह जीवरूपी पत्र भटकता है, संकल्पके वशहुआ सुख दुःख भयको प्राप्त होता है, जैसे तेल तिलोंविषे रहता है, तैसे सुख दुःख मनविषे रहते हैं, जैसे तिलोंको कोल्हूविषे पीडता है, तब तेल प्रगट भासता है, तैसे मनको मनके संयोगते सुख दुःख प्रगट भासते हैं, जो संकल्प देश, काल, क्रियाकरिके घनत्व होता है, अरु देश काल आदिक भी मनविषे स्थित होते हैं, अरु जिनका मन फुरता है, तिनको नानाप्रकारका क्षोभवान् जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जिनका मन आत्मपदविषे स्थित भया है तिनको क्षोभ भी दृष्ट आता है, परंतु मन आत्मपदते चलायमान नहीं होता, जैसे घोडेका असवार रणविषे जाय पडता है, तौ भी घोडा उसके वश रहता है, तैसे उसका मन जो विस्तारकी ओर जाता है; तौ भी अपने वशही रहता है, ॥ हे रामजी ! जब मनकी चपलता वैराग्यकरिके दूर होती है, तब मन वश होइ जाता है, जैसे वचनोंकरिके हस्ती वश होता है; तैसे जिस पुरुषका मन वश होता है; अरु संसारकी ओरते निवृत्त होइ करि आत्मपदविषे स्थित भया है, सो श्रेष्ठ महापुरुष कहाते हैं अरु जिनका मन संसारकी ओर धावता है सो चिकडके कीट हैं अरु जिनका मन अचपल है शास्त्रके अर्थरूपी संगकरि अरु संसारकी ओरते निवृत्त होकरि एकाग्र भावविषे स्थित हुआ है, अरु आत्मपदके ध्यानविषे लगा हुआ है, सो संसारके

बंधनते मुक्त होता है ॥ हे रामजी ! जब मनसों मनन दूर होता है, तब इसको शांति प्राप्त होती है, जैसे क्षीरसमुद्रते मंदराचल निकसा, तब शांतिको प्राप्त भया, जिस पुरुषका मन भोगोंकी ओर प्रवृत्त होता है, सो पुरुष संसाररूपी विषयके वृक्षका बीज होता है ॥ हे रामजी ! जिनका चित्त स्वरूपते मूढ हुआ है, अरु ससारके भोगोंविषे लगा है, सो बडे कष्टको पाते है, जैसे तृण जलके चक्रविषे आया क्षोभमान होता है, तैसे यह जीव मनभावको प्राप्त हुआ भ्रमको प्राप्त होता है, ताते इस मनको स्थित करो, जो शातात्मा होवो ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तवर्णन नाम पंचाशीतितम. सर्ग ॥ ८५ ॥

षडशीतितम· सर्गः ८६

मनशक्तिरूपप्रतिपादनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह चित्तरूपी महाव्याधि है, तिसकी निवृत्ति अर्थ मैं तुझको श्रेष्ठ औषध कहता हौ, सो तू सुन, यत्न भी अपना होवे, अरु आपही साध्य होता है, अरु औषध भी आप होता है, सब पुरुषार्थ आपहीकरि सिद्ध होता है, ताते यत्नकरिके चित्तरूपी वेतालको नष्ट करो ॥ हे रामजी ! जो कछु पदार्थ तुमको रससयुक्त दृष्ट आवे, तिसको त्याग करो, जब वांछित पदार्थका त्याग करोगे, तब मनकी जीत होवैगी, अरु अचल पदको प्राप्त होहुगे, जैसे लोहके साथ लोहको काटता है, तैसे मनसाथ मनको काटो, अरु यत्नकरिके शुभ गुणोंकरिके चित्तरूपी वेतालको दूर करो, अवस्तु देहादिकविषे जो वस्तुकी भावना है, तिसको त्याग, अरु वस्तु आत्मतत्त्वविषे जो देहादिककी भावना है, तिसका त्याग करके आत्मतत्त्वमें भावना जोड़ो ॥ हे रामजी ! जैसे चित्तविषे पदार्थोंकी चितना होती है, तैसे आत्मपद पानेकी चितना कर, सत्य कर्मकी शुद्धता लेकर चित्तको यत्नकरिके चेतनसंवित्की ओर लगाओ अरु सब वासनाको त्यागिकै एकाग्रता करो, तब परमपदकी प्राप्ति होवैगी ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंको अपनी इच्छा त्या-

गनी कठिन हुई है, सो विषयोंके कीट हैं, काहेते जो अशुभ पदार्थ मूढताकरिकै रमणीय भासते हैं, तिन अशुभको अशुभ अरु शुभको शुभ जानना यह पुरुषार्थ है ॥ हे रामजी! शुभ अशुभ दोनों पहलवान हैं, तिन दोनोंविषे जो बली होता है, तिसका जय होता है, ताते शीघ्रही पुरुष प्रयत्न करिके अपने चित्तको जीतो, जब तू अचित्त होवैगा, तब यत्नविना आत्मपदको प्राप्त होवैगा, जैसे बादलोंके अभाव हुएते यत्न-विना सूर्य भासआता है, आत्मपदके आगे चित्तका फुरणा जो बादल-वत् आवरण है, सो चित्तका फुरणा जब अभाव होवैगा, तब अयत्न-सिद्ध आत्मपद भासैगा, सो चित्तके स्थित करनेका मंत्रभी आपकरि होता है, अरु जिसको अपना चित्त वश करनेकी भी शक्ति नहीं, तिसको धिक्कार है, वह मनुष्यविषे गर्दभ है, अपने पुरुषार्थकरिकै मनको वश करना सो अपनेसाथ परम मित्रता है, अरु अपने मनको वश कियेविना अपना आपही शत्रु है, अर्थ यह जो मनको उपशम कियेविना घटीयन्त्र-की नाईं संसारचक्रविषे भटकता है, अरु जिन मनुष्योंने मनको उपशम किया है, तिनको परमलाभ हुआ है ॥ हे रामजी! मनके मारणेका मन्त्र यही है, कि दृश्यकी ओरते चित्तको निवृत्त करना, अरु आत्मचेतन संवित्‌विषे लगाना, ऐसाही मनको जीतना है, आत्मचिंतनाकरिकै चित्तको मारना, आप करिकै सुखरूप है ॥ हे रामजी! इच्छाकरिकै मन पुष्ट रहता है, जब अंतरते इच्छा निवृत्त भई, तब मन उपशम होता है, जब मन उपशम हुआ, तब गुरुशास्त्रोंके उपदेश अरु मंत्र अर्थ आदिकोंकी अपेक्षा नहीं रहती ॥ हे रामजी! जब यह पुरुष असंकल्परूपी औषधकरिकै चित्तरूपी रोगको काटै, तब तिस पदको प्राप्त होवै, जो सर्व है, अरु सर्वगत शांतरूप है, अरु जो देह है, सो निश्चयकरिकै मूढ मनने संक-ल्पकरिकै कल्पी है, ताते पुरुषार्थकरिकै चित्तको अचित्त करो, तब इस बंधनते छूटोगे ॥ हे रामजी! शुद्ध चित्त आकाशविषे यत्नकरिकै चित्तको जोडो, जब चिरकालपर्यंत मनका तीव्र संवेग आत्माकी ओर होवैगा, तब चेतन चित्तका भक्षण करि लेवैगा, जब चित्तका चित्तत्व निवृत्त हो जावैगा, तब केवल चेतनमात्रही शेष रहैगा ॥ हे रामजी! जब ७

भावनाते तू मुक्त होवैगा, तब तेरी बुद्धि परमार्थतत्त्वविषे जुडेगी, अर्थ यह कि बोधरूप होजावैगी, ताते इस चित्तको चित्तकरिकै ग्रासकरि ले, जब तू परमपुरुषार्थकरिकै चित्तको अचित्त करैगा, तब महा अद्वैत पदको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! मनके जीतनेविषे और तुझको यत्न कछु नहीं, एक संवेदनका प्रवाह उलटावना है, जो दृश्यकी ओरते निवृत्तकरिकै आत्माकी ओर लगाना, इसकरि चित्त अचित्त हो जावैगा, चित्तके क्षोभते रहित होना परमकल्याण है, ताते क्षोभते रहित होहु, जिनने मनको जीता है, तिनको त्रिलोकीका जीतना तृणसमान है ॥ हे रामजी ! ऐसे शूरमा हैं, जो शस्त्रोंके प्रहारको सहते हैं, अरु अग्निकरि जलना भी सहते हैं, अरु शत्रुको मारते हैं, तब स्वाभाविक फुरणेके सहनेविषे तुझको क्या कृपणता है, जो समर्थ नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिसको अपने चित्तके उलटावनेकी समर्थता नहीं, सो नरोंविषे अधम है, जिसका यह अनुभव होता है, कि मैं जन्मा हौं, अरु मरौंगा, मैं जीव हौं, सो असत्यरूप प्रमाद चपलताकरिकै भासता है, जैसे किसी स्थान-विषे बैठा होवै, अरु मनके फुरणेकरि और देशविषे कार्य करने लगै, सो भ्रमरूप है, तैसेही आपको जन्म मरण भ्रमकरिकै मानताहै ॥ हे रामजी ! यह पुरुष मनरूपी शरीरसाथ इस लोक अरु परलोकविषे भटकता है, सो मोक्ष होनेपर्यंत चित्तविषे भटकता है, जो चित्त भी मोक्षपर्यंत नाश नहीं होता,तब तुझको मृत्युका भय कैसे होता है ? तेरा स्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध सर्व विकारते रहित है, अरु यह लोक आदिक भ्रम चित्तविषे मनके फुरनेते उपजा है, मनते इतर चित्तका रूप कछु नहीं, अरु पुत्र भाई टहलुए आदिक जो स्नेहका स्थान हैं, तिनके क्लेशकरि आपको क्लेश मानते हैं, सो भी चित्तकरि मानता है, जब चित्त अचित्त हो जावै, तब सर्व बंधनते मुक्त होवै ॥ हे रामजी ! मैंने ऊर्ध्व अध सब स्थान देखे हैं, अरु सब शास्त्र भी देखे हैं, तिनको एकांत बैठिकरि वारंवार विचारे हैं, कि शांति प्राप्त होनेको और उपाय कोई नहीं, चित्तका उपशम करनाही उपाय है, जबलग चित्त दृश्यको चितवता है, तबलग शांति प्राप्त नहीं होती, अरु जब चित्त उपशम होवै, तब

इसको तिस पदविषे विश्राम होता है, जो नित्य है, अरु शुद्ध है, सर्वात्मा है, सर्वके हृदयाविषे चेतन आकाश है, परमशांतरूप है, तिस पदविषे विश्राम पावैगा ॥ हे रामजी ! हृदयाकाशविषे जो चैतन्यचक्र है, तिसका अर्थ यह कि, ब्रह्माकार वृत्ति है, जब मनका तीव्र संवेग तिस-की ओर होवे, तब सबही दुःखोंका अभाव हो जावै, मनका मनभाव तिस ब्रह्माकार वृत्तिरूपी चक्रकरि नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी ! जो संसारके भोग मनकरि रमणीय भासते हैं, सो जब रमणीय भासै नहीं, तब जानिये कि मनके अंग काटे हैं, जेते कछु अहं अरु त्वं आदि शब्दार्थ भासते हैं, सो सब मनोमात्र भासते हैं, जब दृढविचार करिके इनकी अभावना होवै, तब मनकी वासना नष्ट हो जावै, जैसे दात्रकरिके खेती नष्ट हो जाती है, तैसे वासना नष्ट होनेते परम तत्त्व शुद्ध भासैगा, जैसे घटाके अभाव हुए शरद्कालका आकाश निर्मल भासता है, तैसे वास-नाते रहित मन शुद्ध भासैगा ॥ हे रामजी ! मन इसका परमशत्रु है, सो मन इच्छा संकल्पकरिके पुष्ट हो जाता है, अरु जब इच्छा कोऊ न उपजे, तब आपही निवृत्त हो जावैगा, जैसे अग्निविषे काष्ठ डारिये तब अग्नि बढ़ जाता है, अरु जब काष्ठ नहीं डारै, तब अग्नि आपही नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! इस मनविषे जो संकल्पकल्पना उठती है तिसका त्याग करे, तब तेरा मन स्वतः नष्ट होवैगा, जहां शस्त्र चलते हैं, अरु अग्नि लगता है, तहां शूरमा निर्भय होयके जाय पड़ते हैं, अरु शत्रुको मारते हैं, प्राण जानेका भय रखते नहीं, तब तुझको संकल्प त्यागनेमें क्या भय होता है ॥ हे रामजी ! चित्त पसारनेविषे अनर्थ होता है, अरु चित्तके अस्फुरण हुएते कल्याण होता है, यह वार्ता बालक भी जानता है, जैसे पिता बालकको अनुग्रह करिके कहता है, तैसे मैं तुझको समझाता हौं जो मनरूपी एक शत्रुने भयको प्राप्त किया है, संकल्पकलना करिके जेती कछु आपदा है, सो मनते उपजती हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंकरिके मृगतृष्णाका जल दीखता है, तैसे सब आपदा मनते दीखती हैं, जिसका मन स्थित हुआ है, तिसको क्षोभ कोऊ नहीं होता ॥ हे रामजी ! प्रलयकालका पवन चले अरु

भावनाते तू मुक्त होवेगा, तब तेरी बुद्धि परमार्थतत्त्वविषे जुड़ेगी, अर्थ यह कि बोधरूप होजावेगी, ताते इस चित्तको चित्तकरिकै ग्रासकरि ले, जब तू परमपुरुषार्थकरिकै चित्तको अचित्त करैगा, तब महा अद्वैत पदको प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी! मनके जीतनेविषे और तुझको यत्न कछु नहीं, एक संवेदनका प्रवाह उलटावना है, जो दृश्यकी ओरते निवृत्तकरिकै आत्माकी ओर लगाना, इसकरि चित्त अचित्त हो जावैगा. चित्तके क्षोभते रहित होना परमकल्याण है, ताते क्षोभते रहित होहु, जिनने मनको जीता है, तिनको त्रिलोकीका जीतना तृणसमान है॥ हे रामजी! ऐसे शूरमा हैं, जो शस्त्रोंके प्रहारको सहते हैं, अरु अग्निकरि जलना भी सहते हैं, अरु शत्रुको मारते हैं, तब स्वाभाविक फुरणेके सहनेविषे तुझको क्या कृपणता है, जो समर्थ नहीं होता॥ हे रामजी! जिसको अपने चित्तके उलटावनेकी समर्थता नहीं, सो नरोंविषे अधम है, जिसका यह अनुभव होता है, कि मैं जन्मा हौं, अरु मरौंगा, मैं जीव हौं, सो असत्यरूप प्रमाद चपलताकरिकै भासता है, जैसे किसी स्थानविषे बैठा होवै, अरु मनके फुरणेकरि और देशविषे कार्य करने लगै, सो भ्रमरूप है, तैसेही आपको जन्म मरण भ्रमकरिकै मानताहै॥ हे रामजी! यह पुरुष मनरूपी शरीरसाथ इस लोक अरु परलोकविषे भटकना है, सो मोक्ष होनेपर्यंत चित्तविषे भटकता है, जो चित्त भी मोक्षपर्यंत नाश नहीं होता, तब तुझको मृत्युका भय कैसे होता है? तेरा स्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध सर्व विकारते रहित है, अरु यह लोक आदिक भ्रम चित्तविषे मनके फुरनेते उपजा है, मनते इतर चित्तका रूप कछु नहीं, अरु पुत्र भाई टहलुए आदिक जो स्नेहका स्थान हैं, तिनके क्लेशकरि आपको क्लेश मानते हैं, सो भी चित्तकरि मानता है, जब चित्त अचित्त हो जावै, तब सर्व बंधनते मुक्त होवै॥ हे रामजी! मैंने ऊर्ध्व अध सब स्थान देखे हैं, अरु सब शास्त्र भी देखे हैं, तिनको एकांत बैठिकरि वारंवार विचारे हैं, कि शांति प्राप्त होनेको और उपाय कोई नहीं, चित्तका उपशम करनाही उपाय है, जबलग चित्त दृश्यको चितवता है, तबलग शांति प्राप्त नहीं होती, अरु जब चित्त उपशम होवै, तब

इसको तिस पदविषे विश्राम होता है, जो नित्य है, अरु शुद्ध है, सर्वात्मा है, सर्वके हृदयाविषे चेतन आकाश है, परमशांतरूप है, तिस पदविषे विश्राम पावैगा ॥ हे रामजी ! हृदयाकाशविषे जो चैतन्यचक्र है, तिसका अर्थ यह कि, ब्रह्माकार वृत्ति है, जब मनका तीव्र संवेग तिसकी ओर होवै, तब सबही दुःखोंका अभाव हो जावै, मनका मनभाव तिस ब्रह्माकार वृत्तिरूपी चक्रकरि नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी ! जो संसारके भोग मनकरि रमणीय भासते हैं, सो जब रमणीय भासै नहीं, तब जानिये कि मनके अंग काटे हैं, जेते कछु अहं अरु त्वं आदि शब्दार्थ भासते हैं, सो सब मनोमात्र भासते हैं, जब दृढविचार करिके इनकी अभावना होवै, तब मनकी वासना नष्ट हो जावै, जैसे दात्रकरिके खेती नष्ट हो जाती है, तैसे वासना नष्ट होनेते परम तत्त्व शुद्ध भासैगा, जैसे घटाके अभाव हुए शरद्कालका आकाश निर्मल भासता है, तैसे वासनाते रहित मन शुद्ध भासैगा ॥ हे रामजी ! मन इसका परमशत्रु है, सो मन इच्छा संकल्पकरिके पुष्ट हो जाता है, अरु जब इच्छा कोऊ न उपजै, तब आपही निवृत्त हो जावैगा, जैसे अग्निविषे काष्ठ डारिये तब अग्नि बढ़ जाता है, अरु जब काष्ठ नहीं डारै, तब अग्नि आपही नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! इस मनविषे जो संकल्पकल्पना उठती है तिसका त्याग करै, तब तेरा मन स्वतः नष्ट होवैगा, जहां शस्त्र चलते हैं, अरु अग्नि लगता है, तहां शूरमा निर्भय होयके जाय पड़ते हैं, अरु शत्रुको मारते हैं, प्राण जानेका भय रखते नहीं, तब तुझको संकल्प त्यागनेमें क्या भय होता है ॥ हे रामजी ! चित्त पसारनेविषे अनर्थ होता है, अरु चित्तके अस्फुरण हुएते कल्याण होता है, यह वार्ता बालक भी जानता है, जैसे पिता बालकको अनुग्रह करिके कहता है, तैसे मैं तुझको समझाता हौं जो मनरूपी एक शत्रुने भयको प्राप्त किया है, संकल्पकलना करिके जेती कछु आपदा है, सो मनते उपजती हैं; जैसे सूर्यकी किरणोंकरिके मृगतृष्णाका जल दीखता है, तैसे सब आपदा मनते दीखती है, जिसका मन स्थित हुआ है, तिसको क्षोभ कोऊ नहीं होता ॥ हे रामजी ! प्रलयकालका पवन चलै अरु सब समुद्र

मर्यादाको त्यागिके इकट्ठे हो जावैं अरु द्वादश सूर्य इकट्ठे होइके तपै तौ भी मनते रहित जो पुरुष है, तिसको विघ्न कोऊ नहीं होता, वह सदा शांतरूप है ॥ हे रामजी ! मनरूपी बीज है, तिसते संसारवृक्ष उपजा है सप्त लोक तिसके पत्र हैं, अरु शुभ अशुभ सुख दुःख तिसके फल हैं, सो मन संकल्पते रहित नष्ट हो जाता है, संकल्पके बढनेते अनर्थका कारण बढ़ता है, ताते संकल्पते रहित जो चक्रवर्ती राजपद है, तिसविषे आरूढ हुआ परमपदको प्राप्त होवैगा, जिस पदविषे स्थित हुए चक्रवर्ती राजा तृणवत् भासता है॥ हे रामजी ! मनके क्षीण होनेकरिकै यह परमानंद उत्तम पदको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! संतोषकरिकै मन वश होता है, तब नित्य उदयरूप निरीह परमपावन निर्मल शम अरु अनंत सर्व विकार विकल्पते रहित आत्मपद शेष रहता है; सो तुझको प्राप्त होवैगा॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनशक्तिरूपप्रतिपादनं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७.

सुखोपदेशकथनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जहां जिसके मनविषे तीव्र संवेग होताहै, तिसको मन देखता है, अज्ञानकरिकै जो दृश्यका तीव्र संवेग भयाहै, तिसकरिकै चित्त जन्ममरणादिक विकारोंको देखता है, जिसका निश्चय मनविषे दृढ होता है, तिसीका अनुभव करता है, जैसा मनका फुरणा फुरता है, तैसा रूप हो जाता है, जैसे बर्फका शीतल शुक्ल रूप है, अरु काजलका कृष्ण रूप है, तैसे मनका रूप चचलहै ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! यह जो मनवेग अवेगका कारण चंचल रूप है, तिस मनकी चपलता जैसे निवृत्त होवैगी सो प्रकार तुम कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तू सत्य कहता है, चचलताते रहित मन कहूं नहीं दीखता, काहेते कि मनका चचल स्वभाव है ॥ हे रामजी ! जो मनविषे चंचल फुरणाशक्ति है, सो मानसी शक्ति है, सोई जगत आडंबरका कारणरूप है, जैसे

वायुका स्पंद रूप है, तैसे मनका चचल रूप है, जहा चंचलताते रहित मन है, तिसको मृतक कहते है ॥ हे रामजी। तपका अरु शास्त्रका जो सिद्धांत है, सो यही है, मनके मृतक रूपको मोक्ष कहते है, मन क्षीण हुएते सब दुःख नष्ट हो जाता है, जब चित्तरूपी राक्षस उठता है, तब बड़े दुःखको प्राप्त होता है, चित्तके लय हुएते अनंत सुखभोग प्राप्त होते है, अर्थ यह कि, परमानद स्वरूप आत्मपद प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! मनविषे जो चंचलता है, सोई अविचारसिद्ध है, विचारते नष्ट हो जाती है, चित्तकी चचलतारूप जो वासना अतर स्थित है, जब यह नष्ट होवैगी तब परमसारकी प्राप्ति होवैगी, ताते यत्नकरिकै चपलतारूप अविद्याका त्याग करौ, जब चपलता निवृत्त होवैगी, तब मन शात हो जाता है, सो मनका रूप सुन ॥ हे रामजी। सत्य असत्यके मध्य जडचेतनके मध्ये जो डोलायमान है, तिसका नाम मन ॥ हे रामजी। जब यह तीव्रताकरिकै जडकी ओर लगता है, तब आत्माके प्रमादकरि जडरूप हो जाता है, अर्थ यह कि अनात्मविषे आत्मप्रतीति होती है, अरु जब विवेक विचारविषे लगता है, तब तिस अभ्यासकरि जडता निवृत्त हो जाती है, केवल चेतन आत्मतत्त्व पड़ा भासता है, जैसे अभ्यास दृढ़ होता है, तैसा अनुभव इसको होता है, जैसे पदार्थकी एकता चित्तविषे होती है, अभ्यासके वशते चित्त तैसा रूप हो जाता है ॥ हे रामजी। जिस पदके निमित्त मन पुरुष प्रयत्न करता है, तिस पदको प्राप्त होता है, अरु अभ्यासकी तीव्रताते भावितरूप हो जाता है, इसी कार्यते तुझको कहता हौं कि, चित्तको चित्तकरिकै स्थिर करौ, अरु अशोकपदका आश्रय करौ, जेते कछु भावअभावरूप ससारके पदार्थ हैं, सो सब मनते उपजे हैं, ताते मनके उपशम करनेका प्रयत्न करौ मनके उपशमबिना और उपाय छूटनेका कोई नहीं, अरु मनको मनही निग्रह करता है, कोऊ समर्थ नहीं, जैसे गजासाथ गजाही युद्ध करता है, और कोऊ समर्थ नहीं, तैसे मनसाथ मनही युद्ध करता है, ताते तू मनहीकेसाथ मनको मार, जो शांतिको प्राप्त होवै ॥ हे रामजी। यह पुरुष बड़े संसारसमुद्रविषे पड़ा है, तिसविषे तृष्णारूपी तंतुने इसका आवरण किया है,

मर्यादाको त्यागिके इकट्ठे हो जावैं अरु द्वादश सूर्य इकट्ठे होइके तपैं तो भी मनते रहित जो पुरुष है, तिसको विघ्न कोऊ नहीं होता, वह सदा शांतरूप है॥ हे रामजी! मनरूपी बीज है, तिसते संसारवृक्ष उपजा है सप्त लोक तिसके पत्र हैं, अरु शुभ अशुभ सुख दुःख तिसके फल हैं, सो मन संकल्पते रहित नष्ट हो जाता है, संकल्पके बढनेते अनर्थका कारण बढ़ता है, ताते संकल्पते रहित जो चक्रवर्ती राजपद है, तिसविषे आरूढ हुआ परमपदको प्राप्त होवैगा, जिस पदविषे स्थित हुए चक्रवर्ती राजा तृणवत् भासता है॥ हे रामजी! मनके क्षीण होनेकरिकै यह परमानंद उत्तम पदको प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी! संतोषकरिकै मन वश होता है, तब नित्य उदयरूप निरीह परमपावन निर्मल शम अरु अनंत सर्व विकार विकल्पते रहित आत्मपद शेष रहता है, सो तुझको प्राप्त होवैगा॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनशक्तिरूपप्रतिपादनं नाम षडशीतितमः सर्गः॥ ८६॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७.

सुखोपदेशकथनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जहां जिसके मनविषे तीव्र संवेग होताहै, तिसको मन देखता है; अज्ञानकरिकै जो दृश्यका तीव्र संवेग भयाहै, तिसकरिकै चित्त जन्ममरणादिक विकारोंको देखता है, जिसका निश्चय मनविषे दृढ होता है, तिसीका अनुभव करता है, जैसा मनका फुरणा फुरता है, तैसा रूप हो जाता है, जैसे बर्फका शीतल शुक्ल रूप है, अरु काजलका कृष्ण रूप है, तैसे मनका रूप चचलहै॥ राम उवाच॥ हे ब्राह्मण! यह जो मनवेग अवेगका कारण चंचल रूप है, तिस मनकी चपलता जैसे निवृत्त होवैगी सो प्रकार तुम कहो॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! तू सत्य कहता है, चचलताते रहित मन कहूं नहीं दीखता, काहेते कि मनका चंचल स्वभाव है॥ हे रामजी! जो मनविषे चंचल फुरणाशक्ति है, सो मानसी शक्ति है, सोई जगत् आडंबरका कारणरूप है; जैसे

वायुका स्पंद रूप है, तैसे मनका चचल रूप है, जहां चंचलताते रहित मन है, तिसको मृतक कहते है ॥ हे रामजी! तपका अरु शास्त्रका जो सिद्धांत है, सो यही है, मनके मृतक रूपको मोक्ष कहते हैं, मन क्षीण हुएते सब दुःख नष्ट हो जाता है, जब चित्तरूपी राक्षस उठता है, तब बड़े दुःखको प्राप्त होता है, चित्तके लय हुएते अनत सुखभोग प्राप्त होते है, अर्थ यह कि, परमानद स्वरूप आत्मपद प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! मनविषे जो चचलता है, सोई अविचारसिद्ध है, विचारते नष्ट हो जाती है, चित्तकी चचलतारूप जो वासना अतर स्थित है, जब यह नष्ट होवैगी तब परमसारकी प्राप्ति होवैगी, ताते यत्नकरिकै चपलतारूप अविद्याका त्याग करो, जब चपलता निवृत्त होवैगी, तब मन शात हो जाता है, सो मनका रूप सुन ॥ हे रामजी! सत्य असत्यके मध्य जडचेतनके मध्ये जो डोलायमान है, तिसका नाम मन ॥ हे रामजी! जब यह तीव्रताकरिकै जडकी ओर लगता है, तब आत्माके प्रमादकरि जडरूप हो जाता है, अर्थ यह कि अनात्मविषे आत्मप्रतीति होती है, अरु जब विवेक विचारविषे लगता है, तब तिस अभ्यासकरि जडता निवृत्त हो जाती है, केवल चेतन आत्मतत्त्व पड़ा भासता है, जैसे अभ्यास दृढ होता है, तैसा अनुभव इसको होता है, जैसे पदार्थकी एकता चित्तविषे होती है, अभ्यासके वशते चित्त तैसा रूप हो जाता है ॥ हे रामजी! जिस पदके निमित्त मन पुरुप प्रयत्न करता है, तिस पदको प्राप्त होता है, अरु अभ्यासकी तीव्रताते भावितरूप हो जाता है, इसी कार्यते तुझको कहता हों कि, चित्तको चित्तकरिकै स्थिर करो, अरु अशोकपदका आश्रय करो, जेते कछु भावअभावरूप ससारके पदार्थ हैं, सो सब मनते उपजे हैं, ताते मनके उपशम करनेका प्रयत्न करो मनके उपशमविना और उपाय छूटनेका कोई नहीं, अरु मनको मनही निग्रह करता है, कोऊ समर्थ नहीं, जैसे राजासाथ राजाही युद्ध करता है, और कोऊ समर्थ नहीं, तैसे मनसाथ मनही युद्ध करता है, ताते तू मनहीकेसाथ मनको मार, जो शातिको प्राप्त होवै ॥ हे रामजी! यह पुरुष जो संसारसमुद्रविषे पड़ा है, तिसविषे तृष्णारूपी तंतुने इसको आ-

तिसकरि अध को चला जाता है, अरु रागद्वेषरूपी घूमर घेराविषे कष्ट पाता है, तिसविषे तरनेके निमित्त भी मनरूपी बेडा है, जब शुद्ध मनरूपी बेडापर आरूढ होवे, तब संसारसमुद्रते पार पहुँचे, अन्यथा कष्टको प्राप्त होवे॥ हे रामजी! अपना मनही बंधनका कारण फाँसी है, तिसको मनहीसाथ छेदन करौ, सो किसप्रकार छेदिये, दृश्यकी ओर मन जो सदा धावता है, तिसते वैराग्य करै, अरु आत्मतत्त्वका अभ्यास करै, तब छूटै, और उपाय छूटनेका नहीं, जहां जैसी वासनाकरि मन आशाकरि उठै, तिसको तहांही बोधकरिकै त्यागेते तेरी अविद्या नष्ट हो जावैगी॥ हे रामजी! जब प्रथम भोगोंकी वासनाका त्याग करैगा, तब यत्नविना जगत्की वासना छूटि जावैगी, जब भाव अभावरूप जगत्का त्याग किया, तब निर्विकल्प सुखरूप होवैगा, जब सब दृश्यभाव पदार्थका अभाव होता है, तब भावना करनेहारा मन भी नष्ट होता है॥ हे रामजी! जो कछु संवेदन फुरता है, इस संवेदनका होना जगत् है, अरु असंवेदन होना इसीका नाम निर्वाण है, अरु संवेदन होनेकरि दुःख है, ताते प्रयत्नकरिकै संवेदनका अभाव करना कर्तव्य है, जब भावनाकी अभावना होवै, तब कल्याण होवै, जेते कछु भाव अभाव पदार्थोंका राग द्वेष उठता है, सो मनके अबोधकरि होता है, वे पदार्थ मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या हैं, ताते इनकी आस्थाका त्याग करौ, यह सब अवस्तुरूप है, अरु तेरा स्वरूप नित्यतृप्त अपने आपविषे स्थित है॥ इति श्रीयोग० उत्पत्ति० सुखोपदेशकथन नाम सप्ताशीतितमः सर्गः॥ ८७॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ८८

अविद्यावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हेरामजी! यह जो वासनाहै, सो भ्रांतिकरिकै उठीहै जैसे आकाशविषे दूसरा चन्द्रमा भ्रांतिकरिकै भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भ्रांतिकरि भासता है, इसकी वासना दूरते त्याग करौ॥ हे रामजी! जो ज्ञानवान् है, तिनको जगत् नहीं भासता, अरु जो अज्ञानी है, तिनको अविद्या

मान विद्यमान भासता है, अरु संसार नामकरिकै संसारको अंगीकार करते हैं, अरु ज्ञानवान् सम्यक्दर्शीको आत्मतत्त्वते इतर सब अवस्तुरूप भासता है, जैसे समुद्र द्रवताकरिकै तरंग बुद्बुद होइके भासता है, परंतु जलते इतर कछु नहीं, तैसे अपने विकल्पकरिकै भाव अभावरूप जगत्को देखता है, वस्तुते असत्यरूप है, आत्मतत्त्वही अपने आपविषे स्थित है, सो नित्य शुद्ध सम अद्वैत तेरा अपना आप है, न तू कर्त्ता है, न अकर्त्ता है, अरु कर्त्ता अकर्त्ता ग्रहण अरु त्याग भेदको लेकरि कहाता है, तू दोनों विकल्पको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु जो कछु क्रिया आचार आय प्राप्त होवै, तिसको कर, अरु अंतरते अनासक्त होहु, अर्थ यह कि, कर्तृत्व भोक्तृत्व अपनेविषे माननेते रहित होहु, काहेते कि, कर्तव्य आदिक तब होते हैं, जब कछु ग्रहण करना होता है, कछु त्याग करना होता है, अरु ग्रहणत्याग तब होते हैं, जब पदार्थ सत्य भासता है, सो तौ यह सब पदार्थ मिथ्या इंद्रजालकी मायावत् है ॥ हे रामजी ! मिथ्या पदार्थोंविषे आस्था करनी तिसकरि ग्रहण अरु त्याग करना क्या है, सब संसारका बीज अविद्या है, सो अविद्या स्वरूपके प्रमादकरि अविद्यमानही सत्यकी नाईं हो भासती है ॥ हे रामजी ! चित्तविषे चैत्यमय वासना फुरती है, सो मोहका कारण है, संसाररूपी वासनाका चक्र है, जैसे कुम्हार चक्रपर चढायके मृत्तिकाते अनेक प्रकारके घट आदिक वर्त्तन रचता है, तैसे चित्तते जो चैत्यमय वासना फुरती है, सो संसारके पदार्थोंको उत्पन्न करती है, अरु यह अविद्यारूप संसार देखनेमात्र बडा सुंदर भासता है, परंतु अंतरते शून्य है, जैसे वांस बडे विस्तारको प्राप्त होते है, अरु अंतरते शून्य है, अरु जैसे केलेका वृक्ष देखनेको विस्तारसहित भासता है, अरु अंतर तिसके सार कछु नहीं, तैसे संसार असाररूप है, अरु जैसे नदीका प्रवाह चला जाता है, तैसे संसार नाशरूप है ॥ हे रामजी ! यह अविद्या कैसी है, जो पकडिये तौ ग्रहण कछु नहीं होती, अरु कोमल भासती है, अरु अत्यंत क्षीणरूप है, प्रगट आकार भी दृष्ट आते है, अरु मृगतृष्णाके जल समान असत्यरूप है, अविद्या माया कहूं विकाररूप भासती है, कहूं स्पष्टरूप भासती

कहूं दीर्घरूप भासती है, जिसकरि यह जगत् उपजता है, अरु आत्माते व्यतिरेकभावको प्राप्त होती है अरु जड है, परंतु आत्माकी सत्ता पाइके चेतन होती है, चेतनरूप भासती है, तौ भी असत्यरूप है, अरु एक निमेषके भूलनेकरिके वडे भ्रमको दिखाती है, जहां निर्मल प्रकाशरूप आत्मा है, तिसविषे तमको दिखाती है, कि, मै आत्माको नहीं जानता, जैसे उलूकको सूर्यविषे अधकार भासता है, तैसे मूर्खोंको अनुभवरूप आत्मा नहीं भासता, जगत् भासता है अरु स्वरूपते असत्यरूप है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी विस्तारसहित भासती है, तैसे अविद्या नाना रग विलास विकाररूप, विषमरूप, सूक्ष्मरूप, मृदु कहत कोमलरूप अरु कठिनरूप है, अरु स्त्रीकी नाई चंचल है अरु क्षोभरूप सर्पिणी है, सो तृष्णारूपी जिह्वासाथ मार डारती है, अरु दीपककी शिखावत् प्रकाशमान् है, जबलग स्नेह होता है, तबलग दीपकवत् प्रज्वालित होता है, जब तेल पूर्ण भया, तब निर्वाण हो जाता है, तैसे जबलग भोगोंविषे प्रीति है, तबलग अविद्या वृद्ध रहती है जब भोगोंविषे स्नेह क्षीण भया, तब नष्ट हो जातीहै, रागरूप अविद्या तृष्णाविना नहीं रहती, अरु भोगरूप प्रकाश बिजलीकी नाई चमत्कार करती है, इनके आश्रय मे जो कार्य करौं, सो नहीं होता, क्षणभगुररूप है, जैसे बिजली मेघके आश्रय है, तैसे अविद्या जड़ोंमूर्खोंके आश्रय रहती है, अरु अविद्या तृष्णा देनेहारी है, अरु भोगपदार्थ वड़े यत्नकरिके प्राप्त होते है, अरु जब प्राप्त होवै, तब अनर्थको उत्पन्न करते हैं, जो भोगोंके निमित्त यत्न करते हैं, तिनको मेरा धिक्कार है, काहेते जो भोग बड़े यत्न करिके प्राप्त होते है, फिर स्थिर भी नहीं रहते, अरु अनर्थको उत्पन्न करते हैं, तिनकी तृष्णाकरिके भटकते है,सो महामूर्ख हैं ॥ हेरामजी।ज्यों ज्यों इसका स्मरण होताहै त्यों त्यों अनर्थ होते हैं अरु ज्यों ज्यों इसका विस्मरण होता है त्यों त्यों सुख होताहै इस कारणते अत्यत सुखके निमित्त विस्मरण है, अरु स्मरण दुःखके निमित्त है जैसे किसकी दृष्टिमें क्रूर स्वप्न आता है बहुरि तिसके स्मरणविषे कष्टमान् होता है जैसे और किसी उपद्रव प्राप्त होनेकी स्मृतिविषे अनर्थ जानता है, तैसे अविद्या जगत्के स्मरणेविषे कष्ट अर्थ होना है, अविद्या

एक मुहूर्तविषे त्रिलोकीको रचिलेती है; अरु एक क्षणविषे ग्रास लेती है॥ हे रामजी! जो स्त्रीका वियोगवान् रोगी पुरुष होताहै, तिसको रात्रि कल्पकी नाईं व्यतीत होती हैं, अरु जो बहुत सुखी होता है, तिसको रात्रि क्षणकी नाईं व्यतीत हो जाती है, दुःखीको दीर्घरूप होती है, काल भी अविद्या प्रमादकरिके विपर्ययरूप हो जाता है॥ हे रामजी! ऐसा कोऊ पदार्थ नहीं जो अविद्याकरिकै विपर्यय न होवै, शुद्ध निर्विकार निराकार अद्वैत तत्त्वविषे इसकरि कर्तृत्व भोक्तृत्वका स्पंद फुरताहै॥ हे रामजी! जेती कछु जगज्जाल तुझको भासता है, सो अविद्याकरि भासता है जैसे दीपकका प्रकाश इंद्रियोंको रूप दीखता है, तैसे अविद्या पदार्थोंको दिखाती है, सो सब असत्यरूप है, जैसे नानाप्रकारकी सृष्टि मनोराज्यविषे भासती है, अरु जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, तिसविषे अनेक शाखासंयुक्त वृक्ष भासते हैं, सो तिसविषे असत्यरूप है, तैसे यह जगत् असत्यरूप है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी बड़े आडंबरसहित भासती है, तैसे यह जगत् है, जैसे मृगतृष्णाकी नदीको देखिकै मूर्ख मृग पानके निमित्त दौड़ते हैं, अरु कष्टमान् होते है, तैसे मनुष्य नहीं दौड़ते है,जगत्के पदार्थोंको देखिकरि अज्ञानी दौड़िके यत्न करते हैं, तैसे ज्ञानवान् यत्नतृष्णा नहीं करते, ज्यों ज्यों मूर्ख मृग दौड़ते है, त्यों त्यों कष्ट पाते है, शांतिको नहीं प्राप्त होते, तैसे अज्ञानी जगत्के भोगोंकी तृष्णा करते हैं, परंतु शांतिको नहीं प्राप्त होते, जैसे तरंग बुद्बुद सुंदर भासते हैं, परंतु ग्रहण कियेते कछु नहीं, निकसते,तैसे शांतिका कारण जगतविषे सार पदार्थ कोऊ नहीं निकसता, जड़रूप अविद्या चिदाकार हुई है, सो चेतनसाथ अभिन्नरूप है, परंतु भिन्नकी नाईं स्थित भई है, जैसे बबोहा अपनी तंतुको पसारता है, बहुरि अपनेविषे लीन करि लेता है, सो तंतु बबोहेसाथ अभिन्नरूप है, परंतु भिन्नकी नाईं भासती है, हे रामजी! अग्निते धूम निकसिकरि बादलका आकार होता है, सो रसको खैंचता है, बहुरि मेघ होइकरि वर्षा करता है, तैसे अविद्या आत्माते उपजिकरि आत्माकी सत्ता पाइकरि जगत्को रचती है, तिस जगत्विषे यह जीव घटीयंत्रकी नाईं भटकता है जैसे जेवरीसे बांधी हुई टीडी अध ऊर्ध्वको भटकती

है, तैसे तिनकी वासनासाथ बांधाहुआ जीव भटकता है, जैसे चिकडते भेह उपजती है, अरु तिसके अतर छिद्र होते हैं, तैसे अविद्यारूपी चिकडते यह जगत् उपजा है, अरु विकाररूपी दृश्य इसविषे छिद्र है, सारभूत इसविषे कछु नहीं नहीं रूप है, अरु जैसे अग्नि घृत अरु ईंधनके सयोगते वढता जाता है, तैसे अविद्या विषयोंकी तृष्णाकरि वढ़ती जाती है, जैसे अग्नि घृत अरु ईंधनोंते रहित शात हो जाता है, तैसे तृष्णाते रहित अविद्या शांत हो जाती है, जब विवेकरूपी जलका सिंचन होवै, तृष्णारूपी घृत न पडे, तब अग्निरूप अविद्या नष्ट हो जाती है, अन्यथा नहीं होती ॥ हे रामजी ! यह अविद्या दीपककी शिखावत् है, अरु तृष्णा रूपी तेलकरिकै अधिक प्रकाशमान् होती है, जब तृष्णारूपी तेलते रहित होवै, अरु विवेकरूपी वायु चलै, तब दीपक शिखारूप अविद्या निर्वाण हो जावैगी, अरु न जानिये कि, कहां गई, अरु अविद्या कुहिडकी नाई आवरण करती भासती है, परतु ग्रहण करिये तौ कछु नहीं हाथ आती देखनेमात्र स्पष्ट दृष्ट आती है, परतु विचार कियेते अणुमात्र भी नहीं रहती, जैसे रात्रिको वड़ा अंधकार भासता है, परतु जब दीपक लेकरि देखिये तब अंधकार अणुमात्र भी नहीं दृष्ट आता; तैसे अविद्या विचार कियेते नहीं रहती, बहुरि कैसी है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु दूसरा चद्रमा भ्रांतिकरि भासता है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भ्रममात्र भासती है, जैसे वेडीपर चढेते तटके वृक्ष किनारे चलते भासते हैं, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रांतिकरिकै भासती है; अरु जैसे सीपीविषे रूपा अरु जेवरीविषे सर्प भ्रमकरिकै भासता है, तैसे अविद्यारूपी जगत् अज्ञानीको सत्य भासता है ॥ हे रामजी ! यह जागृत जगत् भी दीर्घकालका स्वप्न है; जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलबुद्धि मृगके चित्तविषे आई है,तैसे जगत्की सत्यता मूर्खके चित्तविषे रहती है ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंकी पदार्थोंविषे रति आरूढ हो रही है, तिनकी भावनाकरिकै उनका चित्त खैंचता है, अरु तिन पदार्थोंको अंगीकार करिकै वड़े कष्टको पाते हैं, जैसे पक्षी आकाशको उड़ता है, अरु दाणेविषे उसकी प्रीति होती है, चुगनेके निमित्त पृथ्वीपर आता है, जब सुखरूप जानिकै चुगने लगताहै तब जालविषे फँसता है,

बहुरि कष्टमान होता है, जैसे कणकी तृष्णा पक्षीको दु:ख देती है, तैसे जीवोंको भोगोंकी तृष्णा दु:ख देती है ॥ हे रामजी ! यह भोग प्रथम तौ अमृतकी नाई सुखरूप भासते हैं, अरु परिणामविषे विपकी नाई होते हैं, मूर्ख अज्ञानीको यह सुंदर भासते हैं, जैसे मूर्ख पतंग दीपकको सुखरूप जानिकै वांछा करता है, परंतु जब दीपकसाथ स्पर्श करता है, तब नाशको प्राप्त होताहै, तैसे यह भोगोंके स्पर्शकरि जीव नाश होते हैं, जैसे संध्याकालमें आकाशविषे लाली भासती है, तैसे अविद्याकरि जगत् भासता है, जैसे दूर वस्तु निकट भासती है, अरु निकट वस्तु भ्रमकरिकै दूर भासती है, जैसे स्वप्नविषे बहुत कालमें थोडा भासता है अरु थोडे कालमें बहुत भासता है, तैसे यह जगज्जाल सब अविद्याकरिकै भासता है, सो अविद्या आत्मज्ञान करिकै नष्ट हो जाती है, ताते यत्नकरिकै मनके प्रवाहको रोको ॥ हे रामजी ! जो कछु दृश्यमान जगत् है, सो सब तुच्छरूप है, मिथ्या भावनाकरिकै जगत् अंध हुआहै, बड़ा आश्चर्य है ॥ हे रामजी ! अविद्याका रूप निराकार है अरु शून्य है, तिसने सत्य होइकरि जगत्को अंध किया है अर्थ यह कि, जो असत्‌रूप पदार्थोंको सत् जानिकै यत्न करते हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशविषे उलूकको अंधकार भासता है, भ्रांतिकरिकै सूर्य उनको नहीं भासता, तैसे चिदानंद आत्मा सदा अनुभवकरि प्रकाशता है, अरु अविद्याकरिकै नहीं भासता है, असत्यरूप अविद्याने जगत्को अंध किया है, जो विकर्मोंको कराती है, अरु विचार कियेते रहती भी नहीं, तिसकरि अपना आप नहीं भासता, बड़ा आश्चर्य है, जो धैर्यवान् धर्मात्माको भी अपने वश करिकै समर्थ होने नहीं देती अरु अविचारित सिद्ध अविद्यारूपी स्त्रीने पुरुषको अंध किया है, अनंत दु:खोंका विस्तार पसारती है, उत्पत्ति अरु नाश सुखदु:खको करती है, आत्माको भ्रमाती है, अनंत दु:ख अज्ञानकरि दिखाती है, बोधते हीन करती है, काम क्रोध उपजाती है, मनविषे वासनाकरि यही भावना दृढ करती है ॥ हे रामजी ! यह अविद्या कैसी है, जो निराकार अरूप है, अरु इसने जीवको बांधा है, अन-

जैसे स्वप्नविषे कोई आपको बांधा देखै, तैसी अविद्या है स्वरूपके प्रमाद-का नाम अविद्या है, और कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अविद्यावर्णन नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

नवाशीतितमः सर्गः ८९.

दोषपरिहारोपदेशवर्णनम् ।

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जेता कछु जगत् दृष्ट आता है, सो सब अविद्याकरिके उपजा है, सो अविद्या किसभाँति निवृत्त होती है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे बर्फकी पुतली क्षणविषे सूर्यके तेजकरिकै नष्ट हो जाती है, तैसे अविद्या आत्माके प्रकाशकरिकै नष्ट हो जाती है, जबलग आत्माका दर्शन नहीं भया, तबलग अविद्या पुरुषको भ्रम दिखाती है, अरु नानाप्रकारके दुःखोंको प्राप्त करती है, जब आत्माके दर्शनकी इच्छा होती है, तब वही इच्छा मोहको नाश करती है, जैसे धूपकरि छाया क्षीण हो जाती है, तैसे आत्मपदकी इच्छाकरि अविद्या क्षीण हो जाती है, अरु सर्वगत देव आत्माके साक्षात्कार हुएते नष्ट हो जाती है, जैसे द्वादश सूर्य उदित हुएते सब दिशाकी छाया नष्ट हो जाय ॥ हे रामजी ! जो दृश्य पदार्थकी इच्छा उपजती है, इसीका नाम अविद्या है, अरु तिस इच्छाके नाशका नाम विद्या है, अरु तिस विद्याहीका नाम मोक्ष है, सो अविद्याका नाश संकल्पमात्र है, जेता कछु दृश्य पदार्थ है तिसकी इच्छा न उपजे अरु केवल चिन्मात्रविषे चित्तकी वृत्ति स्थित होवै, यह अविद्यानाशका उपाय है, जब सब वासना निवृत्त होवैं, तब आत्मतत्त्व प्रकाश आवै, जैसे रात्रिके क्षय हुएते सूर्य प्रकाशता है, तैसे वासनाके क्षय हुएते आत्मा प्रकाशता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते नहीं जानता कि, रात्रि कहां गई, तैसे विवेकके उपजे नहीं जानता कि, अविद्या कहां गई ॥ हे रामजी ! यह पुरुष संसारकी दृढ वासनाकरिके बांधा है, जैसे संध्याकालविषे मूर्ख बालक परछाईंविषे बैताल कल्पिकरि भयमान होता है, तैसे यह पुरुष अपनी वासनाकरि

भयको पाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो कछु दृश्य है, सो अविद्याकरि हुआ है, अरु अविद्या आत्मभावकरि नाश होती है, सो आत्मा कैसा है ? वसिष्ठ उवाच ॥ चैत्योन्मुखत्वते रहित अरु सर्वगत समान अनुभवरूप ऐसा जो चेतन तत्त्व अशब्दरूप है, सो आत्मा परमेश्वर है ॥ हे रामजी ! ब्रह्माते लेकरि तृणपर्यंत जो जगत् है, सो सब आत्मा है, और अविद्या कछु नहीं ॥ हे रामजी ! सब देहोंविषे नित्य चेतनघन अविनाशी पुरुष स्थित है, तिसविषे मनोनाम्नी कल्पना आभास अन्यकी नाईं होइकरि भासती है, अरु आत्मतत्त्वते इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! कोऊ न जन्मता है, न मरता है, न कोऊ विकार है, केवल आत्मतत्त्व प्रकाशसत्ता समान है, अविनाशी चैत्यते रहित शुद्ध चिन्मात्र तत्त्व अपने आपविषे स्थित है,सो नित्य सर्वगत है, शुद्ध चिन्मात्र है,निरुपद्रव है, शांतरूप सत्ता समान निर्विकार अद्वैत आत्मा है ॥ हे रामजी ! तिस एक सर्वगत देव सर्वशक्ति महात्माकी जब विभागकलनाशक्ति होती है, तिसका नाम मन है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै लहरी होती है, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चैत्यता होती है, तिसका नाम मन होता है, संकल्प कलनाकरिकै दृश्यकी नाईं भासती है, तिसी संकल्पकल्पनाका नाम अविद्या है, संकल्पहीकरि उपजी संकल्पही करि नाश हो जाती है जैसे वायुकरि अग्नि उपजता है, अरु वायुकरिही लीन होता है, तैसे संकल्पकरिकै अविद्यारूपी जगत् उपजता है अरु संकल्पहीकरि नष्ट हो जाता है, जब चित्तकी वृत्ति दृश्यकी ओर फुरती है, तब अविद्या बढती है,जब वृत्ति दृश्यकी नष्ट हो जावै, दृश्यको त्यागिकरि स्वरूपकी ओर आवै, तब अविद्या नष्ट हो जाती है ॥ हे रामजी ! जब संकल्प करता है कि, मैं ब्रह्म नहीं, तब मन दृढ बंधनमय होता है, अरु जब यही संकल्प दृढ करता है कि, सब ब्रह्म है, तब मुक्त होता है, अरु जब अनात्मविषे अहं अभिमानका संकल्प दृढ करता है, तब बंधन होता है, अरु सर्व ब्रह्मके संकल्पकरि मुक्त होता है, दृश्यका संकल्प बंध है, अरु असंकल्प मोक्ष है, आगे जैसे तेरी इच्छा होवै तैसे कर, जैसे बालक आकाशविषे स्वर्णके कमलोंकी कल्पना करे, जो सुंगंत प्रकाश अरु सुगंधको

है, सो भावनामात्र होते हैं, तैसे अविद्या भावनामात्र है, जो अज्ञानी जानता है, मैं कृश हौं, अतिदुःखी हौं, वृद्ध हौं, हस्तपादइन्द्रियवाला हौं, ऐसे व्यवहारकरि बंधमान होता है, अरु जब ऐसे जाने कि, मैं दुःखी नहीं, न मेरा देह है, न मेरे बंधन है, तब भावनाकरि मुक्त होता है, न मैं मांस हौं, न अस्थि हौं, देहते अन्य साक्षी हौं, ऐसे निश्चयवान्‌को अंतर अविद्याते मुक्त कहते हैं, जैसे सूर्यविषे अंधकार नहीं, मणिके प्रकाशविषे अंधकार नहीं, तैसे आत्माविषे अविद्या नहीं, जैसे पृथ्वीपर स्थित पुरुष आकाशविषे नीलता कल्पता है, तैसे अज्ञानी आत्माविषे अविद्या कल्पता है, वास्तव कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सुमेरुकी छाया आकाशविषे पड़ती है, अथवा तमकी प्रभा है अथवा और कुछ है, यह आकाशविषे नीलता कैसे भासती है ! ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आकाशविषे नीलता है नहीं, यह शून्यता गुण है, न सुमेरुकी छाया है, अरु न तम है, आकाश पोलमात्र है ॥ हे रामजी ! यह ब्रह्मांड तेजरूप है, इसका प्रकाशही स्वरूप है, तमका स्वभाव नहीं तम ब्रह्मांडके बाह्य है, अंतर नहीं, ब्रह्मांडका प्रकाशस्वभाव है, अरु यह जो नीलता भासती है, सो दृढ शून्यताकरिकै आकाशविषे नीलता भासती है, और नीलता कछु नहीं, जिसकी मंद दृष्टि है, तिसको नीलता भासती है, जिसकी दिव्यदृष्टि है, तिसको नीलता नहीं भासती, पोल भासती है, जैसे मंद दृष्टिको आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे अज्ञानीको अविद्या सत्य भासती है, जैसे दिव्यदृष्टिवालेको नीलता नहीं भासती, तैसे ज्ञानवान्‌को अविद्या नहीं भासती, ब्रह्मसत्ताही भासती है ॥ हे रामजी ! जहांलग इसके नेत्रोंकी दृष्टि जाती है, तहांलग अवकाश भासता है, अरु जहां वृत्ति कुंठित होती है, तहां इसको नीलता भासती है ॥ हे रामजी ! जैसे जिसकी दृष्टि क्षय होती है, तहां तिसको नीलता भासती है, तैसे ज[illegible] इस जीव-की आत्मदृष्टि क्षय होती है, तहां इसको अविद्या[illegible] भासने लगती है, सो यह दुःखरूप है ॥ हे[illegible] ! चेतनको[illegible] जो कछु स्मरण करता है, तिसका नाम[illegible], अरु

होता है, तब अविद्या नष्ट हो जाती है, असंकल्प होनेकरि अविद्या नष्ट होती है, जैसे आकाशके फूल तैसे अविद्या है, यह भ्रमरूप जगत् मूर्खों-को सत्य भासता है, वास्तवते कछु नहीं, मनके फुरणेते रहित होवै, तब जगत् कछु नहीं, भावनामात्र जगत् है, तिसीका नाम अविद्या है, सो मोहका कारण है, जब वही भावना उलटिकरि आत्माकी ओर आवै, तब अविद्या नाश होवै, जो वारवार चितवना करणी इसका नाम भावना है, जब भावना आत्माकी ओर वृद्ध होती है, तब आत्माकी प्राप्ति होती है, तथा अविद्या नष्ट होजातीहै, मनके संसरणेका नाम अविद्याहै, जब संसरणा आत्माकी ओर हुआ, तब अविद्या नष्ट भई ॥ हे रामजी ! जैसे राजाके आगे मंत्री टहलुए कार्यको करते हैं, तैसे मनके आगे इंद्रियां कार्यको करती है ॥ हे रामजी ! बाह्यके विषय पदार्थोंकी भावना छोड़िकै तुम अंतर आत्माकी भावना करो, तब आत्मपदको प्राप्त होहुगे, जिन पुरुषोंने अंतर आत्माकी भावनाका यत्न किया है, सो शांतिको प्राप्त भये हैं ॥ हे रामजी ! जो पदार्थ आदिविषे नहीं होता, सो अंतविषे भी नहीं रहता, तातें जो कछु भासता है, सो सब ब्रह्मसत्ता है, इतर कछु नहीं, जो कछु इतर भासता है, सो मननमात्र है, अरु तेरा स्वरूप निर्विकार आदिअंतते रहित ब्रह्मतत्त्व है, तू क्यों शोक करता है, अपने पुरुषार्थकरिकै संसारके भोगवासना चित्तसों मूलते उखाडो, अरु आत्मपदका अभ्यास करो, जो दृश्यभ्रम मिटि जावै ॥ हे रामजी ! यह संसारकी वासनाका उदय होना, जरा मरण मोहको देनेहारा है, जब स्वरूपका प्रमाद होता है, तब इसको यह कल्पना उठती है, आशारूपी अनंत फाँसियोंकरि बंधमान होता है, अरु वासना वृद्ध हो जाती है, कहता है, मेरे पुत्र हैं, मेरा धन है, मेरे बांधव हैं, यह मैं हौं, यह और है, इसते लेकरि वासना तिसके चित्तविषे उत्पन्न होती है ॥ हे रामजी ! ऐसे शरीरसाथ मिलकरि यह कल्पना करता है, सो शरीर शून्यरूप है, जैसे वायुविरोलेसाथ तृण उडते है, तैसे अविद्यारूपी वासनाकरिकै शरीर उड़ते है, अरु रत्न आदिक जगत् सब अज्ञानीको भासता है, अरु ज्ञान-वान्को केवल ब्रह्म सत्य भासता है, पृथिवी, नदियोंते लेकरि जगत

अज्ञानमात्रकरिकै भासता है, अरु ज्ञानते नष्ट हो जाता है, जैसे जेवरीके न जाननेकरि सर्प भासता है, अरु जेवरीके सम्यक् ज्ञानकरि नष्ट होता है, तैसे आत्माके अज्ञानकरिकै जगत् भासता है, अरु आत्माके सम्यक् ज्ञान हुएते जगद्भ्रम नष्ट हो जाता है, ताते आत्माकी भावना करो॥ हे रामजी ! जेवरीविषे दो विकल्प होते हैं, एक जेवरीका, दूसरा सर्पका, सो दोनों विकल्प अज्ञानीको होते हैं, ज्ञानीको दो विकल्प नहीं होते, जो जिज्ञासी होता है, तिसकी वृत्ति सत्य अरु असत्यविषे डोलायमान होती है, अरु जो ज्ञानवान् है, तिसको विचारते रहित ब्रह्मतत्त्वही भासता है, ताते तू अज्ञानी मत होहु, ज्ञानवान् होहु, जेती कछु जगत्की वासनाहै, उन सबको त्याग करु, तब शांतिवान् होवैगा ॥ हे रामजी ! संसारभोगकी वासना भी तब होती है, जब अनात्मविषे आत्माभिमान होता है, सो तू देहके साथ किसका अभिमान करता है, यह देह तौ मृक जड़ है, अरु अस्थिमांसकी थैली है, ऐसी देह तू क्यो होता है, जबलग देहविषे अभिमान होता है, तबलग सुख अरु दुःखको भुगतता है, अरु इच्छा करता है, जैसे काष्ट अरु लाखका संयोग होता है, अरु जैसे घट अरु आकाशका संयोग होता है तैसे देह अरु देहीका संयोग होता है, जैसे चमडीके अंतर आकाश होता है, सो चमडीके नष्ट हुए आकाश नष्ट नहीं होता, अरु जैसे घटके नष्ट हुएते घटाकाश नष्ट नहीं होता, तैसे देहके नष्ट हुएते आत्मा नाश नहीं होता ॥ हे रामजी ! जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रांतिकरिकै भासती है, तैसे अज्ञानकरिकै सुखदुःखकी कल्पना होती है, ताते सुखदुःखकी कल्पनाको त्यागिकरि अपने स्वभावसत्ताविषे स्थित होहु, बड़ा आश्चर्य है, जो ब्रह्मतत्त्व सत्यस्वरूप है, सो मनुष्य भूल गया है, अरु जो असत्य अविद्या है, तिसको वारवार स्मरण करता है, ऐसी अविद्याको तू मत प्राप्त होहु ॥ हे रामजी ! मनका जो मनन है, सोई अविद्या है, अरु यह अनर्थका कारण है, इसकरि जीव अनेक भ्रमको देखता है, मनके फुरणेकरि चंद्रमाका बिंब अमृतकरि पूर्ण भी नरकके अग्निसमान भासता है, अरु वही लहरी तरंगसहित अरु कमलोंसंयुक्त जल भी मरुस्थलकी नदीकेसमान भासता है, जैसे स्वप्नविषे मनके फुरणेकरिकै नाना-

प्रकारके सुख अरु दु खका अनुभव होता है, तैसे यह सब जगद्भ्रम चित्तकी वासनाकरिकै भासता है, जाग्रत् अरु स्वप्नविषे यह जीव विचित्र रचनाको देखता है, सो मनके फुरणेकरिकै देखता है, जो स्वर्गविषे बैठा होता है, अरु स्वप्नविषे उसको नरकोंका अनुभव होता है, तैसे आनंदरूप आत्माविषे प्रमादकरि इसको दु खका अनुभव होता है ॥ हे रामजी ! अज्ञानी मनके फुरणेकरिकै शून्य अणुविषे सपूर्ण जगद्भ्रमको देखता है, जैसे राजा लवण सिंहासनपर बैठा हुआ चडालकी अवस्थाका अनुभव करत भया, ताते ससारकी वासना चित्तते त्याग देहु, यह संसारवासना बंधनका कारण है, सर्व भावोंविषे वर्तो, परतु राग किसी- विषे न होवै, जैसे स्फटिकमणि सब प्रतिबिंबको लेता है, परंतु रग किसीका नहीं लेता, तैसे तुम सब कार्य करौ, परतु द्वेष किसीविषे न होवै, ऐसा जो पुरुष है, सो निर्बंधन है, किसको शास्त्रका उपदेश नहीं, वह निजरूप है ॥ हे रामजी ! जो कछु प्रकृत आचार तुमको आय प्राप्त होवै, देना, लेना, बोलना, चलना, आदिक सब कार्य करौ, परतु अंतरते अभिमान कछु न करौ, निरभिमान होकरि कार्य करौ, यह ज्ञान सबते श्रेष्ठ है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे यथाकथितदोषपरिहारो- पदेशवर्णन नाम नवाशीतितम सर्ग ॥ ८९ ॥

नवतितम· सर्गः ९०.

सुखदुःखभोक्तृव्योपदेशकथनम् ।

वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब महात्मा पुरुष वसिष्ठजीने कहा, तब कमलनयन रामजी वसिष्ठजीकी ओर देखत भया, अरु अंत करण प्रफुल्लित हो आया जैसे रात्रिके मुँदेहुए कमल सूर्यके उदय हुए प्रफुल्लित हो आते है, तैसे प्रफु. ·त होइकरि रामजी बोलत भये ॥ राम उवाच ॥ बड़ा आश्चर्य है, जो प. ·ी ततुकेसाथ पर्वत बांधा है, अविद्यमान जो है अविद्या, तिसने सपूर्ण जगत ·श किया है, अरु अविद्यमान जगतको वज्रसारवत् दृढ किया है, सन जगत असत्यरूप है, मत्यकी नाई स्थित

अज्ञानमात्रकरिकै भासता है, अरु ज्ञानते नष्ट हो जाता है, जैसे जेवरीके न जाननेकरि सर्प भासता है, अरु जेवरीके सम्यक् ज्ञानकरि नष्ट होता है, तैसे आत्माके अज्ञानकरिकै जगत् भासता है, अरु आत्माके सम्यक् ज्ञान हुएते जगद्भ्रम नष्ट हो जाता है, ताते आत्माकी भावना करो ॥ हे रामजी ! जेवरीविषे दो विकल्प होते हैं, एक जेवरीका, दूसरा सर्पका, सो दोनों विकल्प अज्ञानीको होते हैं, ज्ञानीको दो विकल्प नहीं होते, जो जिज्ञासी होता है, तिसकी वृत्ति सत्य अरु असत्यविषे डोलायमान होती है, अरु जो ज्ञानवान् है, तिसको विचारते रहित ब्रह्मतत्त्वही भासता है, ताते तू अज्ञानी मत होहु, ज्ञानवान् हो[illegible] जगत्की वासनाहैं, उन सबको त्याग करु, तब शांति[illegible] चित्तके फुरणेकरिकै संसार [illegible] चंचल है, अरु अपने फुरणेरूप कर्मोंकरि वासना भी तब [illegible]रीरोंको धरता है, तिस चित्तके एते नाम हैं, अहंकार, मन, जीव इत्यादिक नाम चित्तके हैं, सो चित्तही अज्ञानकरिकै सुखदुःखको भोगता है, शरीर नहीं भोगता, अरु जो प्रबोध चित्त है, सो शांतरूप है, जबलग मन अप्रबोध है, अरु अविद्यारूपी निद्राकरिकै सोया है, तबलग स्वप्नरूप अनेक सृष्टिको देखता है, अरु जब अविद्या निद्राते जागता है, तब नहीं देखता है ॥ हे रामजी ! जबलग जीव अविद्यासाथ मलिन है, तबलग संसारभ्रमको देखता है, अरु जब बोधवान् हुआ, तब संसारभ्रम निवृत्त होता है, जैसे रात्रिकरि कमल मुँदे जाते हैं, अरु सूर्यके उदय हुएते खिलि आते हैं, तैसे अविद्याकरि जगद्भ्रम देखता है, बोधकरिकै अद्वैतरूप होता है, ताते अज्ञानही दुःखका कारण है, अविवेककरिकै पंचकोश जो देह है, तिसविषे अभिमानी होइकरि जैसे कर्म करता है, तैसेही भोगता है, शुभ करता है, तब सुख भोगता है, अशुभ करता है, तब अशुभदुःख भोगता है; जैसे नटवा अपनी क्रियाकरिकै अनेक स्वांगोंको धरता है, तैसे मन अपने फुरणेकरिकै अनेक शरीरोंको धरता है, जैसे कछु इष्ट अनिष्ट सुख दुःख है सो एक मनके फुरणेविषे है, शरीरविषे स्थित होइकरि मन करता है जैसे रथ ऊपर आरूढ होइकरि र[illegible] करता है, जैसे कोटरविषे बैठिकै सर्प चेष्टा करते [illegible] शरीर[illegible] हो-

प्रकारके सुख अरु दुःखका अनुभव होता है, तैसे यह सब जगद्भ्रम चित्तकी वासनाकरिकै भासता है, जाग्रत् अरु स्वप्नविषे यह जीव विचित्र रचनाको देखता है, सो मनके फुरणेकारिके देखता है, जो स्वर्गविषे बैठा होता है, अरु स्वप्नविषे उसको नरकोंका अनुभव होता है, तैसे आनदरूप आत्माविषे प्रमादकरि इसको दु खका अनुभव होता है ॥ हे रामजी ! अज्ञानी मनके फुरणेकारिकै शून्य अणुविषे सपूर्ण जगद्भ्रमको देखता है, जैसे राजा लवण सिंहासनपर बैठा हुआ चडालकी अवस्थाका अनुभव करत भया, ताते ससारकी वासना चित्तते त्याग देहु, यह संसारवासना बंधनकु...कारण है, सर्व भावोंविषे वर्तौ, परतु राग किसी-विषे न होवै चिंतना करिके लवणने... प्रातिबिंबको लेता है, परतु रंग ऋषीश्वर, मुनीश्वर, सबनकी मनकरि ...करौ, परतु द्वेष किसीविषे न आदिक देवताओंको पूजत भया, मन्त्र अरु सामग्री जो ...नहीं... कर्म है, सो संपूर्ण करत भया, अरु मनहीकरि सब दक्षिणा देत भया, सवा वर्ष पर्यंत यज्ञ पूर्ण किया, अरु मनहीकरि तिसका फल भोगत भया. ताते हे रामजी ! मनहीकरि सब कर्म होता है, अरु मनही भोगता है, जैसा चित्त है, तैसाही पुरुष है, पूर्ण चित्तकरि पूर्ण होता है, अरु नष्ट चित्तकरि नष्ट होता है, अर्थ यह कि, जिसका चित्त आत्मतत्त्वकरि पूर्ण है, सो पूर्ण है, अरु जो आत्मतत्त्वते नष्टचित्त है, सो नष्ट पुरुष है ॥ हे रामजी ! जिसको यह निश्चय है कि, मैं देह हौं, सो नीचबुद्धि है, अनेक दुःखको प्राप्त होवैगा, अरु जिसका चित्त पूर्ण विवेकविषे जागा है, तिसको सब दु खोंका अभाव हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते कमलोंका सकुचना दूर हो जाता है अरु खिलि आते है, तैसे विवेक-रूपी सूर्यके प्रकाशते रहित पुरुष दु खोंकरि सकुच रहते है, अरु जो विवेकरूपी सूर्यके प्रकाशकरि प्रफुल्लित भये है, सो मनरूपके दु खको तरि जाते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सुखदु खभोक्तव्योपदेशक-थन नाम नवतितम सर्ग ॥९०॥

एकनवतितमःसर्गः ९१.

सात्विकजन्मावतारवर्णनम् ।

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! राजा लवण राजसूययज्ञ मनकरि करत भया, अरु मनहीकरि तिसका फल भोगा, परंतु ऐसा साँवरी कौन था, जिसने उसको भ्रम दिखाया ? ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! जब वह साँवरी लवणराजाकी सभाविषे आया, तब मैं वहा था,मैं उसे देखा था, तब तहां मुझसों लवण अरु मंत्री पूछत भये कि, यह कौन था, तब मैंने उनको जो कछु कहा था, सो तुझको कहता हौं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष राजसूययज्ञ करता है, तिसको द्वादश वर्षकी आपदा प्राप्त होती है, तिस द्वादश वर्षमें अनेक दु खको देखता है, तब राजा लवण जो मनकरि यज्ञ करत भया, तिसको आपदा भी मनकरि प्राप्त भई, स्वर्गते इंद्रने अपना दूत पठाया, आपदा भुगतावनेनिमित्त साँवरी आकारवान् होइकरि आया, राजाको चंडालकी आपदा भुगताइकरि बहुरि स्वर्गको चला गया ॥ हे रामजी ! जो कछु मैंने प्रत्यक्ष देखा था, सो तुझको कहा, ताते मनही करता है, अरु मनही भोगता है, जैसा जैसा दृढ संकल्प मनविषे फुरता है, तिसके अनुसार इसको सुखदु:खका अनुभव होता है ॥ हे रामजी ! जबलग चित्त फुरता है, तबलग इसको आपदा प्राप्त होती है, जैसे ज्यों ज्यों किंकरका वृक्ष बढता है, त्यों त्यों कंटक बढते जाते हैं, तैसे मनके फुरणे-करि आपदा बढती जाती है, अरु जब मन स्थिर होता है, तब आपदा मिटजाती है ॥ ताते, हे रामजी ! इस चित्तरूपी वर्फको विवेकरूपी तप्त-करि गालौ, तब परमसारकी प्राप्ति होवैगी, यह चित्तही परम सकल जगत आडंबरका कारण है, तिसको तू अविद्या जान, जैसे वृक्ष, विटप, तरु, सो एकही वस्तुके नाम हैं, तैसे अविद्या, जीव, बुद्धि, अहंकार, मन फुरणेके नाम हैं, इसको विवेककरि लीन करौ ॥ हे रामजी ! जैसा संक-ल्प इसविषे दृढ होता है, तैसा देखता है ॥ हे रामजी ! यह कवन पदार्थ है, जो यत्न कियेते सिद्ध न होवै ? जो हठकरि पाछे न फिरै तौ, सब कछु सिद्धता है, जैसे वर्फके वासनोंको जलविषे डारिये तब जलकी प्रा-

ताही हो जाती है, तैसे आत्मवोधकरि सव पदार्थोंकी एकता हो जाती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमने कहा कि, सुखदु ख सव मनहीविषे स्थित है, अरु मनकी वृत्ति नष्ट हुएते सव नष्ट हो जाती है, सो चपल वृत्ति कैसे क्षय होवै ? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रघुकुलश्रेष्ठ आकाशके चद्रमा ! मैं तुझको मनके उपशमकी युक्ति कहता हौं, जैसे सवारके वश घोडा होता है, तैसे मन तेरे वश रहैगा ॥ हे रामजी ! सव भूत ब्रह्महीते उपजे है, सो तिनकी उत्पत्ति तीन प्रकारकी है, एक सात्विकी, एक राजसी, एक तामसी, प्रथम जो शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मविषे कलना उठी है, तिस वाह्यमुखी फुरणेका नाम मन हुआ, सो ब्रह्मारूप है, सो ब्रह्मा सकल्परूप आगे सकल्प करत भया, जैसा सकल्प किया तैसा आगे देखत भया, तिसने यह भुवन आडवर कल्पा, तिसविषे जन्म मरण सुखदु.ख मोह आदिक ससरणा कल्पा, इसप्रकार अपने आरभसयुक्त जैसे वर्फका कणका समुद्रते उपजिकरि सूर्यके तेजकरि लीन हो जावै, तैसे आरभकरि निर्वाण हो गया, वहुरि सकल्पके वशते उपजा, वहुरि लीन होगया, इसप्रकार कई अनत कोटि ब्रह्मांड ब्रह्माते उपजि उपजि लीन हो गये है, अरु कई होवैगे, अव जैसे ब्रह्मतत्त्वते उपजे है, अरु जैसे मुक्त होते है, सो सुन ॥ हे रामजी ! शुद्ध ब्रह्मतत्त्वते प्रथम मनसत्ता उपजी है, सो जव आकाशको चेतती भई, तव आकाश हुआ, तिसते वहुरि पवन हुआ, वहुरि अग्नि भया, तिसते आगे जल हुआ, तिसकी दृढताते पृथ्वी भई, तव चित्तशक्ति दृढ सकल्पकरि पाच भूतको प्राप्त भई, तव अत करण जो सूक्ष्म प्रकृति है, सो पृथ्वी, तेज, वायुसाथ मिलिकरि धान्यविषे आय प्राप्त होती है, तिसको पुरुष भोजन करते है, तव वह परिणाम होइकरि वीर्य रुधिररूप गर्भविषे निवास करती है, जिसते पुरुष उपजता है, सो पुरुष जन्ममात्रते वेदको पढने लगता है, वहुरि गुरुके निकट जाता है, वहुरि क्रमकरिकै तिसकी वुद्धि विवेकसों चमत्कारवान् हो जाती है, ग्रहण अरु त्याग शुभ अशुभविषे विचार उसको उपजता है, तव निर्मल अत करणसहित पुरुष स्थिर होता है, तव क्रमकरिकै सप्त भूमिका चंद्रमाकी नाई तिसके चित्तविषे प्रकाशती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सात्विकजन्मावतारो नाम एकनवतितम सर्ग ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ९२.



अज्ञानभूमिकावर्णनम् ।

॥ राम उवाच ॥ हे सर्व शास्त्रोंके तत्त्ववेत्ता भगवन् ! कैसे वह सप्त भूमिका ज्ञानसे निवास करनेहारी हैं, सो संक्षेपते मुझको कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सप्त भूमिका अज्ञानकी हैं, अरु सप्त भूमिका ज्ञानकी है, तिनके अंतर्गत और अवस्था बहुत है, तिनकी संख्या कछु नहीं; ज्ञानकी अज्ञानकी असंख्य है, परंतु सप्तके अंतर्गत हैं ॥ हे रामचंद्र ! आत्मरूपी वृक्ष है, अपना पुरुषार्थरूपी वसंतऋतु है, तिसकरि दो प्रकारकी वेलि उत्पन्न होती है, एक शुभ अरु एक अशुभ है, तिस पुरुषार्थरूपी रसके बढनेकरि फलकी प्राप्ति होती है, अब ज्ञान किसको कहते हैं, सो सुन, प्रथम शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्य दृश्य फुरणेते रहित होइकरि स्थित होना इसीका नाम ज्ञान है, अरु शुद्ध चिन्मात्र अद्वैतविषे अहं संवेदना उठती है, सो स्वरूपते गिरना है, सोई अज्ञानदशा है ॥ हे रामचंद्र ! यह मैंने तुझको संक्षेपते ज्ञान अरु अज्ञानका लक्षण कहा है, शुद्ध चिन्मात्रविषे जिनकी निष्ठा है, अरु सत्य स्वरूपते चलायमान नहीं होता, अरु राग द्वेष किसी विषे नहीं, सो ज्ञानी है, अरु ऐसे शुद्ध चिन्मात्र स्वरूपते जो गिरे हैं, सो अज्ञानी है, जगत्के पदार्थोंविषे मग्न है, सो अज्ञानी है, इसते परे मोह कोऊ नहीं, न हुआ है, यही परम मोह है, अरु स्वरूपस्थिति किसका नाम है, एक अर्थको छोडिके जो संवित् और अर्थको प्राप्त होता है, जैसे जाग्रतको त्यागिकरि सुषुप्तिको प्राप्त होना है, तिनके मध्यविषे जो निर्मननरूप सत्ता है, तिसविषे स्थित होना, सो स्वरूपस्थिति कहाती है ॥ हे रामचंद्र ! भलीप्रकार मनके संकल्प जिसके शांत हुए हैं, अरु शिलाके अंतरवत् शून्य है, कैसी शून्यता है कि निद्रा अरु जडताते रहित है, तिस सत्ताविषे स्थित होना सो स्वरूपस्थिति कही है, कैसा स्वरूप है, अहं त्व आदिक फुरणेते रहित है, भेदनिकाग्ते रहित है, जडते रहित अचैत्य चिन्मात्र है, सो आत्मत-

रूप कहाता है, तिस तत्त्वते फिरिकरि जो जीवोंकी अवस्था हुई है, सो सुन ॥ हे रामचंद्र ! बीजजागृत १, जागृत २, महाजागृत ३, जागृतस्वप्न ४, पंचम स्वप्न ५, स्वप्नजागृत ६, सुपुप्ति ७, ये सप्तप्रकार मोहकी अवस्था है, इनके अंतर्गत और अनेक हैं, मुख्य ये सप्त है, अब इनके लक्षण सुन ॥ हे रामजी ! प्रथम जो शुद्ध चिन्मात्र अशब्द पद तत्त्वसों चेतनताका अहं है, तिसका भविष्यत् जीव नाम होता है, सो आदि सर्व पदार्थोंका बीजरूप है, सो तिसका नाम बीज जागृत है, अरु तिसके अनंतर जो अहं अरु यह मेरा इत्यादिक प्रतीत दृढ़ हो गई, जन्मांतरविषे भासे, तिसका नाम जागृत है, अरु यह है, सो है, मैं हौं, इत्यादिक शब्दसाथ तन्मय होना, और जन्मांतरविषे जो यह दृढ प्रतीति हो जावे, तिसका नाम महाजागृत है, अरु महाजागृतविषे बैठे हुए मन फुरता है, मनोराज्यविषे वह फुरणा दृढ हो भासे, अथवा अदृढ होवे, सो जागृत स्वप्न कहाता है, अरु दूसरा चंद्रमा भासे, सीपीविषे रूपा भासे, मृगतृष्णाका जल भासे, इत्यादिक विपर्यय भासना सो जागृत स्वप्न है, अरु निद्रा आई तिसविषे मन फुरणे लगा, नानाप्रकारके पदार्थ चित्तके फुरणेकरि भासने लगे, जब जाग उठा तब कहता है, मैं अल्पकालविषे केते पदार्थ देखे, निद्राकालविषे जो पदार्थ देखे थे, तिनको असत्यरूप जागृतमें जानता भया, तिस निद्राकालविषे फुरणेका नाम स्वप्न है, अरु स्वप्न आया, तिसविषे दीर्घकाल बीत गया, प्रफुल्लित अपना बड़ा वपु देखत भया, तिसविषे अहं मम भाव दृढ हुआ, अरु आपको सत्य जानिकरि जन्म मरण आदिक देखता भया, यहां देह रहै, अथवा न रहै, तिसका नाम स्वप्नजागृत है, वह स्वप्न महाजागृत रूपको प्राप्त होता है यह स्वप्नजागृत है; अरु इस छवि अवस्थाका जहां अभाव हो जावे, जडरूप होवे; अरु भाविष्यत होवे; तिसका नाम सुपुप्ति है; तिस अवस्थाविषे घास; पत्थर, वृक्ष आदिक स्थित हैं ॥ हे रामजी ! यह अज्ञानकी सप्त भूमिका कही हैं तिनके एकएकविषे अवस्थाभेद है ॥ हे रामचंद्र ! स्वप्न चिरकालकरिके

जागृतरूप हो जाता है, तिसके अंतर्गत और स्वप्न जागृत है, तिसके अंतर और है इसप्रकार एकएकके अंतर अनेक है, यह मोहकी घनता है, तिसकरि जीव भ्रमते हैं, जैसे जल नीचेते नीचेको चला जाता है, तैसे मोहते अनंतर मोहको पातेहैं॥ हे रामजी! यह तुझको अज्ञानकी अवस्था कही हैं, नानाप्रकारका मोहभ्रम विकार है, तिनते तू विचारकरि मुक्त होहु, जब तू महात्मा पुरुष आत्मविचार करिके निर्मल बोधवान होवैगा, तब इस भ्रमको तर जावैगा, ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अज्ञानभूमिकावर्णन नाम द्विनवतितम. सर्ग ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ९३.

ज्ञानभूमिकोपदेशवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र! अब तू ज्ञानकी सप्तभूमिका सुन, भूमिका कहिये चित्तकी अवस्था सो ज्ञानकी भूमिका जाननेते बहुरि मोहरूप चिकड़विषे डूबता नहीं ॥ हे रामचंद्र! मतोंवाले भूमिकाको बहुत प्रकारकरि कहते हैं, अरु मेरा अभिमत पूछे तो यह है, इसकरि सुगम निर्मल बोधको प्राप्त होता है, स्वरूपविषे जागनेका नाम ज्ञान है, तिस ज्ञानकी सप्त भूमिका हैं अरु जो मुक्त इन सप्त भूमिकाके परे हैं, सो विदेहमुक्त हैं ॥ अब भूमिकाके नाम भेद सुन ॥ प्रथम शुभेच्छा, दूसरी विचारणा, तीसरी तनुमानसा, चतुर्थ सत्त्वापत्ति, पंचम असंसक्ति, षष्ठी पदार्थाभाविनी, सप्तम तुरीया ॥ इसके सारको प्राप्त हुआ बहुरि शोक नहीं करता, अब इसका अर्थ श्रवण करु ॥ हे रामजी! जिसको यह विचार फुरै और कि, मैं महामूढ हो रहा हौं, मेरी बुद्धि सत्यविषे नहीं, अरु संसारकी ओर लगी है, ऐसे विचार करिके सच्छास्त्र अरु सज्जनोंकी संगति वैराग्यपूर्वक सत्यकी इच्छा होवै, इसका नाम शुभेच्छा है, अरु सच्छास्त्रोंका विचारणा अरु सन्तोंकी संगति अरु विपर्यति वैराग्य सत्यमार्गका अभ्यास इनसहित सत्य आचारविषे प्रवर्तना, सत्यको सत्य जानना, अरु अस-

त्यको असत्य जानिकारि त्याग करना इसका नाम विचार है, विचार अरु शुभेच्छासहित तत्त्वका अभ्यास करना, अरु इंद्रियोंके विषयोंते वैराग्य करना अरु मन सूक्ष्म होता है, सो तीसरी भूमिकाका नाम तनुमानसा है, तीन भूमिकाका अभ्यास करना, अरु इंद्रियोंके अर्थते वैराग्य करना जगत्‌ते वैराग्य करना अरु श्रवण मनन निदिध्यासनकारि सत्य आत्माविषे स्थित होना, इसका नाम सत्त्वापत्ति है,' तामें सत्य आत्माका अभ्यास होता है यह चार भूमिका जो हैं सयमरूप, तिसका फल जो है शुद्ध विभूति, तिस फलविषे असंसक्त रहना, तिसका नाम असंसक्ति है, दृश्यका विस्मरण अरु आत्मारामीपना अंतरबाहिरते नानाप्रकारके पदार्थोंका तुच्छ भासना, तिसका नाम पदार्थाभाविनी है,सो छठी भूमिका है ॥ हे रामचंद्र । चिरपर्यंत जो छठी भूमिकाका अभ्यासकारि भेदकलनाका अभाव हो जाता है, स्वरूपविषे दृढ़ परिणाम होता है, छ भूमिका जहां एकताको प्राप्त होवैं, तिसका नाम तुरीया है, यह जीवन्मुक्तकी अवस्था है, जीवन्मुक्त तुरीयापदविषे स्थित है, अर्थ यह कि, तीन भूमिका जगत्‌की जाग्रत अवस्थामें हैं,अरु चौथी तत्त्वज्ञानीकी है,अरु पाँचवीं छठी अरु सातवीं जीवन्मुक्तकी अवस्था है, अरु तुरीयातीत पदविषे विदेहमुक्त होता है ॥ हे रामचंद्र । जो पुरुष महाभाग्यवान् है, सो सप्त भूमिकाविषे स्थित होता है, सो आत्मारामी महापुरुष परमपदको प्राप्त होता है ॥ हे रामचंद्र । जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं, सो सुखदुःखविषे मग्न नहीं होते, शांतरूप होइके अपने प्रकृत आचारको करते हैं, अथवा नहीं करते, तौ भी तिनको बंधन कछु नहीं, तिनको क्रियाका बोध कछु नहीं रहता, जैसे सुषुप्त पुरुषके निकट जाइके क्रिया करै, तब बोध कछु नहीं, तैसे उसको क्रियाबोध कछु नहीं सुषुप्तिवत् उन्मीलितलोचन है ॥ हे रामचंद्र । जैसे सुषुप्त पुरुषको रूप अरु इंद्रियाँ इनका अभाव हो जाता है, तैसे सप्त भूमिकाविषे अभाव हो जाता है, यह सप्त भूमिका ज्ञानकी ज्ञानवान्‌का विषय हैं, पशु वृक्ष म्लेच्छवत् जो मूर्ख हैं, अरु पापाचारी हैं, तिनके चित्तविषे इनका अधिकार नहीं होता, जिसका मन निर्मल है, तिसको इन भूमिकाविषे अधिकार है, अरु पशु म्लेच्छ आदिकों भी

इनका अभ्यास होवै, तब वह भी मुक्त हो जाते हैं, इसविषे संशय कछु नहीं है ॥ हे रामचंद्र ! आत्मज्ञानकरि जिनके हृदयकी गांठ टूटि गई है, तिनको संसार मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या भासता है, वह मुक्त रूप है, अरु जो संसारते विरक्त होइकरि इन भूमिकाविषे आये हैं, अरु मोहरूपी समुद्रको तरे नहीं, पूर्णपदको प्राप्त नहीं भये, अरु सप्त भूमिकाविषे किसी भूमिकाविषे लगे हैं, सो भी आत्मपदको पाइकरि पूर्ण आत्मा होवैंगे हे रामचंद्र ! एक सप्त भूमिकाको प्राप्त हुए हैं, कोऊ एक भूमिकाको, कोऊ दूसरीको, कोऊ तीसरीको प्राप्त हुए हैं, कोऊ चौथी, कोऊ पाँचवीं कोऊ छठीको अरु कोऊ अर्ध भूमिकाको प्राप्त भया है, कोऊ गृहविषे स्थित है, कोऊ वनविषे है, कोऊ तापसी है, कोऊ अतीत है, इसते आदि लेकरि सो पुरुष धन्य है, अरु बड़े शूरमें वही हैं, जो बड़े दिक्पाल हस्ती हैं, अरु बड़े बडे शूरमे हैं, सो तिनके शूरत्व आगे तृणवत् हैं, काहेते जो और शूरत्व सुगम है, परंतु इंद्रियांरूपी शत्रुको जीतना कठिन है, जिन पुरुषोंने इनको जीता है, सो बडे शूरमे हैं, जिस पुरुषने किसी भूमिकाको जीती है सो वंदना करने योग्य है तिसको चक्रवर्ती राजा जानना, राज्य अरु और बड़ा ईश्वर विभूति सब तिनको तृणवत् है, वह परमपदको प्राप्त हुए हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ज्ञानभूमिकोपदेशवर्णनं नाम त्रिनवतितम सर्ग. ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितम· सर्गः ९४.

युक्तोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे सुवर्णविषे भूषण फुरे अरु सो अपना सुवर्णभाव भूलि जावै अरु कहै मैं भूषण हौं, तैसे चित्तसंवेदन जिस स्वरूपते फुरा है, तिसते भूलिकरि अहंवेदना हुई है, ताते अहंकाररूप भया है, जो मैं यह कछु हौं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सुवर्णविषे जो भूषण होते हैं, सो मैं जानता हौं, परंतु आत्माविषे अहंभाव कैसे होता है, सो कहो ! ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र ! अहंकार आदिकोंका जो

होना है सो असत्यरूप आगमापायी है, तिसका कछु भिन्नरूप नहीं, यह आत्माका चमत्कार है, वास्तवते द्वैत कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे अधऊर्ध्व जलही जल है, और कछु नहीं, तैसे परम तत्त्वविषे और विभागकल्पना कोई नहीं, शांतरूप है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै तरंग आदिक भासते हैं, तैसे संवेदनकरिकै जगद्भ्रम भासते हैं, आत्माविषे नानाप्रकारका भ्रम भासता है, परंतु और कछु नहीं जैसे सुवर्णविषे भूषण भासते है, जैसे जलविषे द्रवता और वायुविषे स्पंद भासते है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, फुरणेते रहित शांतरूप परमपद हैं ॥ हे रामजी ! जैसे मृत्तिकाकी सेना होती है, तिसविषे हस्ती घोड़ा पशुही होते हैं, सो सब मृत्तिकारूप है, इतर कछु नहीं, तैसे सब जगत् आत्मरूप है, भ्रमकरिकै नानात्व भासता है, आत्माही पूर्णरूप है, आपविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे आकाशस्थित है, तैसे ब्रह्मविषे ब्रह्म स्थित है, सत्यविषे सत्य स्थित है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे स्वप्नविषे दूर पदार्थ अदूर भासते है, अरु अदूर दूर भासते है, सो भ्रममात्र है, तैसे आत्माविषे विपर्यय दृष्टिकरि जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! असत्य जगत् भ्रमकरिकै सत्‌रूप भासता है, वस्तुते असत्यरूप है, जैसे दर्पणविषे नगरका प्रतिबिंब होवै जैसे मृगतृष्णाका जल होताहै,जैसे आकाशमें दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे यह जगत् आत्माविषे भासताहै, जैसे इंद्रजालके योगकरि आकाशविषे नगर भासै, तैसे यह असत्यरूप जगत अज्ञानकरिकै सत्य भासता है, जबलग आत्मविचाररूपी अग्निकरि अविद्यारूपी वल्लीको तू नहीं जलावैगा, तबलग जगतरूपी वेलि निवृत्त न होवैगी, अनेक प्रकारके सुखदु:ख दिखावैगी, जब विचारकरिकै मूलसहित इसको जलावैगा, तब शांतपदको प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे युक्तोपदेशो नाम चतुर्नवतितम सर्ग ॥ ९४ ॥

पंचनवतितमः सर्गः ९५.

चांडालीशोकवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र ! जैसे सुवर्णविषे भूषण होते हैं, सो मिथ्यारूप हैं, तैसे आत्माविषे अहं त्वं आदिक अविद्यारूप हैं, जो लवणकी कथा तैंने सुनी है, सो अब बहुरि सुन ॥ हे रामजी ! वह जो लवण राजा था, सो दूसरे दिन विचार करने लगा कि, यह जो मुझको भ्रम भासा है, परंतु सत्यरूप होइकरि देखा है, देश नगर मनुष्य आदिक पदार्थ मुझको प्रत्यक्ष दृष्ट आये हैं, सो बहुरि जायकरि देखौं कि, कैसी वार्त्ता है ? ऐसे विचारकरिकै दिग्विजय मान करिकै मंत्री अरु सेनाको साथ लेकरि दक्षिण दिशाकी ओर चला, देशको लंघता लंघता विंध्याचल पर्वतको जाय प्राप्त हुआ; पूर्व अरु दक्षिणके समुद्रके मध्यविषे अटवीको भ्रमता भ्रमता जाय प्राप्त हुआ, जैसे आकाशकी वीथियोंविषे सूर्य भ्रमता है, तैसे राजा भ्रमता देखता भया; जो वृत्तांत अरु देश ग्राम पदार्थ भ्रमविषे देखे थे, सो प्रत्यक्ष देखता भया, तब विस्मयको प्राप्त भया. हे देव ! यह क्या है, जो कछु मैं भ्रमविषे देखा था, सो अब मुझको प्रत्यक्ष भासता है, यह बडा आश्चर्य है ! ऐसे विचारिकै आगे गया, तो क्या देखा कि, अग्निकरि वृक्ष जले हैं, अरु अकाल दुर्भिक्ष पडा था, तिसकरि जो संबंधी देखे थे, तिनकी चेष्टाके स्थान देखे, अरु उनकी कथा सुनी इसप्रकार देखते देखते आगे गया तो क्या देखा कि, चंडालशरीरकी सासु बैठी रुदन करती है, हे देव ! मेरा पुत्र कहां गया ? हे पुत्र ! तुम कहां गये ? मेरी कन्या जीर्णदेह हो गई है चंद्रमाकी नाईं जिसका मुख, ऐसा राजकुमार था, अरु मृगनयनी मेरी बेटी थी; अरु दुहिता दुहितियां थीं सो दुर्भिक्षताकरि नष्ट जाते रहे। तिनके यह खानेके पदार्थ हैं, चेष्टाके स्थान हैं, रत्तिकाकी माला कंठविषे डारते थे, अरु चेष्टा करते थे, जीवोंके मांस खाते थे, अरु रुधिरपान करते थे, यह कहां गये ? इसते लेकरि पुत्र, पुत्री, भर्ता, जँवाईका नाम लेकरि रुदन करै और लोग आय बैठें, यह भी रुदन करैं, तब राजाने

उसको रुदनते छुडाई अरु वृत्तांत पूछने लगा कि, तू किसानिमित्त रुदन करती है, किससे तेरा वियोग हुआ है? ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्ति प्रकरणे चांडालीशोकवर्णनं नाम पंचनवतितमः सर्ग ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमः सर्ग ९६.

चित्ताभावप्रतिपादनम् ।

चांडाल्युवाच ॥ हे राजन्! एक काल वर्षा होनेते रहिगई, काल पडा, जीवोंको बड़ा दुःख प्राप्त भया, सब मेरे पुत्र, अरु दुहिते, दुहितियां जँवाई, भर्त्ता आदिक बाधव थे, सो निकस गये वह कहू कष्टको पावत मरिगये, उनके वियोगकरिके मैं दुःखी होइकरि रुदन करती हौं, तिन विना मै शून्य हो गई हौं, जैसे बिछुरी हुई कुज कुम्हलाती है, तैसे मैं कुम्हलाती हौं ॥ हे रामचद्र! जब इसप्रकार चांडालीने कहा, तब राजा विस्मयको प्राप्त भया, अरु मंत्रीके मुखकी ओर देखने लगा, जैसे कागजकेऊपर पुतली होती हैं, तैसे राजा होगया, विचारै और आश्चर्यमान् होवै, उस चांडालीसों वारंवार पूछै, वह बहुरि कहै, और राजा आश्चर्यमान् होवै तब राजा उसको यथायोग्य धन देकरि चिरपर्यंत रहा, बहुरि अपने राजमदिरको आता भया, जब प्रातःकाल हुआ, तब सभाविषे राजा मुझसे पूँछत भया ॥ हे मुनीश्वर! यह स्वप्न मुझको प्रत्यक्ष कैसे भया, इसको देखिकरि मैं आश्चर्यमान् हुआ हौं; जब इसप्रकार राजाने कहा, तब मैंने प्रश्नानुसार उसको युक्तिसों उत्तर दिया, उसके चित्तका संशय दूर किया, जैसे मेघको वायु दूर करै, सो तुझको कहता हौं ॥ हे रामजी! अविद्या ऐसी है, जो असत्यको शीघ्रही सत्य दिखाती है, अरु सत्यको असत्य करि दिखाती है, बड़े भ्रमको दिखानेहारी है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! स्वप्न सत्य कैसे हुआ, यह मेरे चित्तविषे भारी संशय स्थित भया है, तिसको दूर करो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसविषे क्या आश्चर्य है? अविद्याविषे सब कछु बनता है, स्वप्नविषे तू प्रत्यक्ष देख कि, घटते पट हो जाता है, अरु पटते घट हो जाता है,

स्वप्नमें अरु मृत्युविषे मूर्च्छाके अनंतर बुद्धि विपर्यय हो जाती है, वासनाकरि वेष्टित जिनका चित्त है, तिनको जैसा संवेदन फुरता है, तैसे भासता है ॥ हे रामजी। जिनका चित्त स्वरूपते गिरा है, तिनको अविद्या अनेक भ्रम दिखाती है ॥ हे रामजी। जैसे मद्यपान करनेवाला अरु विष पीनेवाला भ्रमको प्राप्त होता है तैसे अविद्याकरि जीव भ्रमको प्राप्त होता है, एक और राजा था, तिसको यह अवस्था प्राप्त हुई थी, सो सब लवण राजाके चित्तविषे फुर आई, जैसे उसकी चेष्टा हुई थी, तैसे इसको फुरि आई, तब जानता भया कि, मैंने यह क्रिया करी है, जैसे अभोक्ता पुरुष आपको स्वप्नविषे भोक्ता देखता है कि, मैं राजा हुआ हौं, अरु तृप्त हौं, अरु भूखा सोया हौं अरु सोया तौ अकर्त्तारूप अरु आपको कर्त्ता देखता है कि, यह क्रिया मैंने करी है, स्वप्नविषे जैसे देशांतरको जावै, तब अचलरूपही चलता भासता है, तैसे लवणको फुरि आया, सो प्रतिमा भासमात्र है, सभाविषे बैठे चांडालीकी चेष्टा लवणको फुरि आई, अथवा विंध्याचल पर्वतके चंडालोंको लवणकी प्रतिमा फुरी, लवणके चित्तका भ्रम उनको दृढ हो गया है, जैसे एकही सदृश भ्रम अनेकको फुरि आता है, स्वप्न सदृश होता है, एकही जेवरीविषे अनेकको सर्प भासता है, इसीप्रकार अनेक जीवोंको एक भ्रम अनेक हो भासता है ॥ हे रामजी। जेते कछु पदार्थ भासते हैं, तिनकी सत्तारूप संवेदन है, जैसे तिसविषे संकल्प दृढ होता है, तैसे होइकरि भासता है, जो पदार्थ सत्यरूप होइ भासता है, सो सत्य होता है, अरु असत्यरूप हो भासता है, सो असत्य हो जाता है, सबही पदार्थ संवेदनरूप हैं, तीनोंकाल संवेदनकरि उपजे हैं, इनका बीज संवेदन है, सब पदार्थ अविद्यारूप हैं, अरु जैसे रेतीविषे तेल है, तैसे आत्माविषे अविद्या है, आत्माको अविद्याका संबंध कदाचित् नहीं, काहेते कि, जो संबंध तिसका होता है, जो समरूप होता है, जैसे काष्ठ अरु लाखका संबंध होता है, सो आकारसहित है, जो आकारते रहित होवै, तिसका संबंध कैसे होवै? जैसे प्रकाश अरु तमका संबंध नहीं होता, चेतनके साथ चेतनका संबंध होता है, सो सजातीयरूपका होता है, विजातीयका संबंध नहीं होता, ताते अविद्यारूप देहको आत्माके साथ

सबंध नहीं, जो जड़केसाथ आत्माका संबध होवे तो आत्मा जड़ होवे, सो तो आत्मा सदा चेतनरूप है, सर्वदा अनुभवकरिकै प्रकाशता है, तिसको जड़ कैसे कहिये ? जैसे स्वादको जिह्वा ग्रहण करती है, और अंग नहीं करते, तैसे चेतनकेसाथ चेतनकी, जडकेसाथ जडकी, जलकेसाथ जलकी, माटीकेसाथ माटीकी, अग्निकेसाथ अग्निकी, प्रकाशकेसाथ प्रकाशकी, तमकेसाथ तमकी, इसीप्रकार सर्व पदार्थोंकी सजातीयकेसाथ एकता होती है, विजातीयकी नहीं होती, ताते सब चैतन्याकाश है, और पाषाणादिक दृश्यवर्ग कोऊ नहीं, भ्रमकरिके इनके आकार भानरूप भासत है, जैसे स्वर्णबुद्धिको त्यागिकरि नाना-प्रकारके भूषण भासते है, तैसे जब अहंवेदना आत्माविषे फुरती है, तब अनेकरूप होइकरि विश्व भासता है ॥ जैसे सुवर्णकी ओर देखिये तब भूषण स्वर्णरूप भासते हैं, तैसे जब ब्रह्मसत्ताकी ओर देखिये तब सर्व जगत् ब्रह्मरूप भासता है, जैसे मृत्तिकाकी सेना बालकको अनेक-रूप भासती है, अरु बुद्धिवान्का एक मृत्तिकारूप है, तैसे अज्ञानीको यह जगत् नानारूप भासता है, ज्ञानवान्को एक ब्रह्मसत्ताही भासती है, सो कौन ब्रह्म है, जो द्रष्टा दर्शन दृश्य, जिसविषे फुरे हैं, इनके मध्य अरु इनते रहित जो सत्ता है सो ब्रह्मसत्ता है ॥ हे रामचंद्र ! जो सत्ता अजडरूप है, अरु शिलाके कोशवत् निर्विकल्प है, तन्मयरूप है, तिसविषे जब स्थित होवै, जब समाधिविषे रहै, अथवा उत्पत्ति न होवैगी तब तुझको सब वही रूप भासैगा ॥ हे रामचंद्र ! जो पुरुष निर्मन सत्ताविषे स्थित भया है, सो शरीरके इष्टविषे हर्षवान् नहीं होता, अरु अनिष्टविषे शोकवान् नहीं होता, निर्मनरूप होइकरि स्थित होता है, जैसे भविष्यत् नगरविषे जीव रमते हैं, अरु अनेक चिताकरि संयुक्त भासते है, सो सब तिसके चित्तविषे स्थित होते हैं, जैसे पुरुष देशांतरको जाते है, ताको अनेक पदार्थ मार्गविषे इष्ट अनिष्टरूप भासते है, परंतु जहां जाना है, तिसकी ओर वृत्ति रहती है, मार्गके पदार्थोंविषे उनको राग द्वेष नहीं होता, तैसे तू होजा, जैसे पत्थरसों जल नहीं निकसता, जैसे जलसों अग्नि नहीं निकसता, तैसे आत्माविषे चित्त नहीं, अविचार

भ्रमकरिकै चित्त जानता है, विचारकरिकै नहीं पाता, जैसे भ्रमकरिकै आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे आत्माविषे चित्त भासता है, वास्तवते कछु नहीं, सो सत्ता नित्य शुद्ध परमानंदस्वरूप अपने आपविषे स्थित अनुभवरूप है, तिसके विस्मरणकरिकै दुःखको प्राप्त होता है, सो महामूर्ख है, तिसको अमृतरूपी चंद्रमाविषे अग्नि प्राप्त होता है, ताते ॥ हे रामचंद्र ! तू सावधान होउ, यह जो फुरणा उठना है, इसीका नाम चित्त है, और तौ चित्त कोऊ नहीं इस चित्तको दूरते त्याग करो, जो तू है, सोई स्थित है ॥ हे रामचंद्र ! असत्यरूप चित्तही संसार है, तिसको असत्य जानिकै त्याग नहीं करता है, सो आकाशके वनविषे विचरता है। तिसको धिक्कार है, अरु जिसका मननभाव नष्ट हुआ है, सो महापुरुष संसारके पारको प्राप्त हुए हैं, परमपद निश्चितरूप हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्ताभावप्रतिपादन नाम षण्णवतितमः सर्गः ॥९६॥

सप्तनवतितमः सर्गः ९७

परमार्थनिरूपणम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह पुरुष भूमिकाको जैसे प्राप्त होता है तिसका क्रम सुन। प्रथम जन्मते पुरुषको कछुक बोध होता है, बहुरि क्रमकरिकै बड़ा होकरि संतोंकी संगति कर[illegible] सदा दृश्यरूप[illegible] रका प्रवाह है, तिसके तरनेको सत्य शा[illegible] समर्थ नहीं होता, जब संतोंका संग अरु स[illegible] विचार [illegible] है, तब इसको ग्रहण अरु [illegible]गकी बुद्धि [illegible] अरु यह त्यागने योग्य [illegible] है, जब यह इच्छा हुई, [illegible] शुभ है, अरु यह अ[illegible] करना, यथाशास्त्र वि[illegible] दृढ होता है, तब [illegible]

स्थित होता है, इसका नाम तनुमानसा है, जब संसारकी वासना क्षीण होती है, अरु सत्यका दृढ़ अभ्यास होता है, तब तिस वैराग्य अरु अभ्यास करि सम्यक् ज्ञान उपजता है, आत्माका साक्षात्कार होता है, तिसका नाम सत्त्वापत्ति है, मनते वासना नष्ट हो जाती है अरु तिसकरि सिद्धि आदिक पदार्थ प्राप्त होते हैं, तिनकी प्राप्तिविषे भी संसक्ति नहीं होती, स्वरूपाविषे सदा सावधान रहता है, सिद्धि आदिक पदार्थ प्रारब्धकारि प्राप्त होते हैं, तिनको स्वप्नरूप जानता है और कर्मोंके फलविषे बंधमान नहीं होता, इसका नाम असंसक्ति है, इसके अनंतर मनकी तनुता हो गई, अरु स्वरूपकी ओर चित्तका परिणाम होता है, तब दृढ़ परिणाम करिकै व्यवहारका भी अभाव हो जाता है, जो पलपलविषे कर्म करना, अथवा प्रारब्धवेगकरि करता है, परंतु उसके चित्तविषे फुरणा कछु नहीं फुरता, मन क्षीणभावको प्राप्त होता है, कर्ता हुआ भी वह कछु करता नहीं, देखता है, तौ भी नहीं देखता, अर्ध सुषुप्तवत् होता है, कर्तव्यकी भावना नहीं फुरती, मन नहीं फुरता, इसका नाम पदार्थाभाविनी योगभूमिका है, इसविषे चित्त लीन हो जाता है, इस अवस्थाविषे जो अभ्यास होता है, सो स्वाभाविक चित्तका जब केतिक काल इस अभ्यासविषे व्यतीत होता है, अरु अंतरते पदार्थोंका अभाव दृढ़ होता है, तब तुरीयारूप होता है, तब जीवन्मुक्त कहाता है, इष्टको पायके हर्षवान् नहीं होता, अरु तिसकी निवृत्तिविषे शोकवान् नहीं होता, केवल विगतसंदेह होता है, सो उत्तम पदको प्राप्त होता है ॥ हे रामचंद्र ! तू भी अब ज्ञातज्ञेय हुआ है, जो कछु जानने योग्य है, सो तुझने ज्योंका त्यों जाना है, सब पदार्थोंकी भावना तेरी तनुताको प्राप्त भई है, अब तेरे साथ शरीर रहै अथवा न रहै, हर्षशोकते रहित तू निरामय आत्मा है, तू स्वच्छ आत्मतत्त्वविषे स्थित है, सर्वगत सदा उद्योतरूप है, जन्म मरण जरा सुख दुःखते रहित तू आत्मरूप है, बोधरूप शोकते रहित है, तू अद्वैतरूप अपने आपविषे स्थित है, देह उदय भी होता है, अरु लीन भी हो जाता है, देश काल वस्तुके भेदते रहित जो आत्मा है, सो उदय अरु अस्त कैसे होवै ॥ हे रामचंद्र ! तू अविनाशी है, आपको नाशरूप जानिकरि शोक काहेको करता है, तू अमृत स्वच्छरूप है, जैसे घटके फुरणेकरि घटाकाश नाश

नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुएते तू नाश नहीं होता, जैसे सूर्यकी किरणोंके जानेते मृगतृष्णाके जलका नाश हो जाता है, परु किरण नाश नहीं होती, तैसे हे रामचन्द्र! जेते कछु जगत्‌के पदार्थ भासते हैं, सो असत्यरूप है, तिनकी वासना भ्रांतिकारिके होती है, तू तौ अद्वैतरूप है, यह सब तेरी छायामात्र है, तू किसकी वांछा करता है, शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये जो पाँचों विषयरूप दृश्य है, सो तुझते भिन्न रंचकमात्र भी नहीं, सब तेरा स्वरूप है, तू भ्रमको मत प्राप्त होहु॥ हे रामजी! सर्वशक्ति आत्मा है, सोई आभासकारिके अनेकरूप कारिके भासता है, जैसे आकाशविषे शून्यता शक्ति है, सो आकाशते भिन्न नहीं, तैसे आत्माविषे सर्वशक्ति है, जो जगत् द्वैतरूप होइकारि भासता है, सोई चित्तकरिके दृढ हुआ है, सो तीन प्रकारके क्रमकारि त्रय लोक जगत जीवको भ्रम हुआ है, एक सात्विक, एक राजस, एक तामस, जब इन तीनोंको उपशम होवै, तब कल्याण होता है, जब वासना क्षय होवै, तब तिसके कर्म क्षय हो जाते हैं, तिसकारि भी भ्रम नाश हो जाता है, चित्तके संसरणेका नाम वासना है, सो कर्म संसार मायामात्र है, इसके नष्ट हुएते सब शांत हो जाता है॥ हे रामजी! यह संसार घटीयंत्रकी नाईं है जीवरूपी टीडी वासनारूपी रस्सीके साथ बँधी हुई भ्रमती है, तू आत्मविचाररूपी शस्त्रकरिके यत्नसों इसको काट, अरु अविद्याको जबलग जानता नहीं, तबलग यह बडे मोहभ्रमको दिखाती है, अरु जब इसको जानता है, तब बड़े सुखको प्राप्त करती है, अर्थ यह कि जबलग अविद्याको वस्तुते नहीं जानता कि, क्या है? तबलग संसार सत्य भासता है, तिसविषे अनेक भ्रम भासते हैं, जब इसको स्वरूपते जाना कि वस्तु कछु नहीं, भ्रमरूप है, तब संसारवृत्तिको त्याग करता है अरु स्वरूपको प्राप्त होता है, यह संसार भ्रमते उपजा है, अरु इसीकारि भोग भोगता है, लीला करता है, बहुरि ब्रह्महीविषे लीन हो जाता है॥ हे रामचंद्र! शिवतत्त्व जो है, सो अनंतरूप है, अरु अप्रमेय निर्गुणरूप है, सब शिवतत्त्वते उपजते हैं, जैसे जलते तरंग अरु अग्निते उष्णता होती है, तैसे ब्रह्मते जगत होता है, अरु तिसविषे स्थित है जो वही रूप है, सो सबका आत्मा है, सो आत्माही ब्रह्मकारि कहाता है, तिसके जाननेते जगत जानता है,

अरु तीनों लोकोंको जाननेते उसको नहीं जानता अच्युत निर्वाणरूप है, तिसके जाननेनिमित्त शास्त्रकारोंने ब्रह्म आत्मा आदिक नाम कल्पे है, वास्तवते नामसञ्ज्ञा कोऊ नहीं ॥ हे रामचंद्र ! जो पुरुष रागदोषते रहित है, इंद्रियों अरु विषयोंके सयोगवियोगविषे द्वेषको नहीं प्राप्त होता जो एक चेतन शुद्ध संवित् अनुभवरूप है, अविनाशी अरु आकाशते भी स्वच्छ निर्मल है, तिसविषे जगत् ऐसे स्थित है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है, अतर्बाह्यरूप होइकरि स्थित है, ऐसे जो जानता है, तो लोभमोहादिकते भिन्न नहीं, अरु बोध आत्माते व्यतिरेक नहीं, वही रूप है, ताते द्वैतरूप कछु नहीं ॥ हे रामचद्र ! देहते रहित निर्विकल्प चेतन तेरा आकार है, लज्जा मोह आदिक विकार तुझको कहां है, तू आदिरूप है, लज्जा हर्ष भय आदिक असत्यरूप हैं, तू क्यों दुर्बुद्धि मूर्खकी नाईं विकल्पजालको प्राप्त होता है, तू चेतन आत्मा अखडरूप है, देहके खडित हुएते आत्माका अभाव नहीं होता, असम्यक्दर्शी भी ऐसे मानते हैं, तो बोधवानोंकी क्या कहनी है हे रामचद्र ! चित्तसवेदन जो जानता है, तिसके अनुभव करनेवाली जो सत्ता है जो सूर्यके मार्गकरिकै भी नहीं रोकी जाती, तिसको तू चित्तसत्ता जान, सोई पुरुष है, शरीर पुरुषरूप नहीं ॥ हे रामचद्र ! शरीर सत्य होवै अथवा असत्य होवै, पुरुष तो शरीर नहीं, देहके रहने अरु नष्ट होनेकरि आत्मा ज्योंका त्योंही है, अरु यह जो सुखदु खको ग्रहण करते हैं, सो देह इद्रियादिक चिदात्माको नहीं ग्रहण करते, जिन पुरुषोंका अज्ञानकरिकै देहविषे अभिमान हुआ है, तिनको सुखदु खका अभिमान होता है, ज्ञानवान्को नहीं होता, आत्माको दु ख स्पर्श नहीं करता, मन विकारोंते रहित है, मनके मार्गते अतीत शून्यकी नाईं स्थित है, तिसको सुख दु ख कैसे होवै ? अरु देहसाथ मिला हुआ भासता है, सो स्वरूपको त्यागिकरि दृश्यके चेतनेकरि देहादिक भ्रम भासते हैं, अरु वासनाके अनुसार देहकेसाथ संबंध होता है, जैसे भ्रमर अरु कमलोंका सयोग होता है, सो देहपिंजरेके नाश हुएते आत्माका नाश तौ नहीं होता, जैसे कमलके नाश हुएते भ्रमरका नाश नहीं होता ताते तू क्यों वृथा शोक करता है? ॥ हे रामजी ! जगतको

असत्य जानिकरि अभावना करै, मन निरिच्छित हो; साक्षीभूत सम स्वच्छ निर्विकल्प चिदात्माविषे जगत् होइ भासता है, जैसे मणि प्रकाशरूप होइ भासता है, बहुरि जगत् अरु आत्माका संबंध कैसे होवै ? जैसे अनिश्चित दर्पणविषे प्रतिबिंब आय प्राप्त होता है, तैसे आत्माको जगत्का संबंध भासता है॥ जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब द्वैतरूप होता है, तैसे आत्माविषे जगत भेद भी अभेदरूप है, जैसे सूर्यके उदयकारि सब जीवोंकी क्रिया होती हैं, जैसे दीपककरिके पदार्थोंका ग्रहण होता है, तैसे आत्मसत्ताकरि जगत् पदार्थका अनुभव होता है, यह जगत् चैतन्यतत्त्वके स्वभावते उपजा है, प्रथम आत्माते मन उपजा है, तिस मनकरि यह जगज्जाल रचा है, वास्तवते आत्मसत्ताविषे आत्मसत्ता स्थित है, जैसे शून्याकाश शून्यताविषे स्थित है, तिसविषे जगत् भासा है, सो ऐसे है, जैसे आकाशविषे नीलता, इन्द्रधनुष भासता है, सो नानारूप होता है, परंतु स्वरूपते शून्य है, हुआ तौ कछु नहीं, तैसे यह जगत् कछु हुआ नहीं॥ हे रामचंद्र ! यह जगत् चित्तविषे स्थित है, सो चित्त संकल्परूप है, जब संकल्प क्षय होता है, तब चित्त नष्ट हो जाता है, जब चित्त नष्ट हुआ तब संसाररूपी कुहिड नष्ट हो जाती है, निर्मल शरत्कालके आकाशवत् आत्मसत्ता प्रकाशती है सो चेतनमात्र सत्ता एक अज आदि अन्त मध्यते रहित है, तिसते स्पंद फुरा है, सो संकल्परूप ब्रह्मा होकरि स्थित भया है, तिसने आगे नानाप्रकारका जगत रचा है, सो जगत शून्यरूप है, मूर्ख बालकको सत्यरूप भासता है, जैसे बालकको परछाईविषे वैताल भासता है, जैसे जीवोंको अज्ञानकरि देहाभिमान होता है, असत्यरूपही सत्य होइकरि भासता है, जब सम्यक् ज्ञान होता है, तब लीन हो जाता है, अपने आपने उपजिकरि लीन हो जाता है, जैसे समुद्रते तरंग उपजिकरि समुद्रविषे लीन होता है, तैसे आत्माविषे जगत उपजिकरि आत्माविषे लीन होता है॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे आर्षे महारामायणे शतसाहस्र्यां संहितायामुत्पत्तिप्रकरणे मोक्षोपाये परमार्थनिरूपणं नाम समनवतितमः सर्गः ॥ ९७॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे तृतीयं उत्पत्तिप्रकरणं समाप्तम् ॥

॥ ॐ सच्चिदानन्दाय नमः ॥

अथ श्रीयोगवासिष्ठे चतुर्थं स्थितिप्रकरणम् ४.

प्रथमः सर्गः १.

जगन्निराकरणवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अब स्थितिप्रकरण श्रवण कर, जिसके सुननेते जगत् निर्वाणताको प्राप्त होवै, कैसा है जगत् ? अहंता है आदि जिसके ऐसा जो दृश्यरूप जगत् है, सो भ्रांतिमात्र है, जैसे आकाशविषे नानाप्रकारके रंगसहित इंद्रधनुष भासता है, सो असत्‌रूप है, तैसे यह जगत् है, जैसे द्रष्टाविना अनुभव होता है, अरु जैसे निद्राविना स्वप्न भासता है, जैसे भविष्यत् नगर चित्तके फुरणेकरि भासता है, तैसे भ्रमकरिके जगत् चित्तविषे स्थित हुआ है, जैसे वानर रतिकाको इकट्ठी करि अग्निकी कल्पना करते है, सो तिसकरि शीत निवृत्त नहीं होता, भावनामात्र अग्नि होता है, तैसे यह जगत् भावनामात्र है, जैसे आकाशविषे रत्नमणिका प्रकाश अरु गंधर्वनगर भासता है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे यह जगत् असत्‌रूप भ्रमकरिके सत्‌रूप हो भासता है, जैसे संकल्प दृढ अनुभवकरिके भासता है, तौ भी असत्‌रूप है, जैसे कथाके अर्थ चित्तविषे भासते हैं, तैसे निःसाररूप जगत् चित्तविषे साररूप हो भासता है, जैसे स्वप्नविषे पहाड, नदियां भास आती हैं, तैसे सब वडे भूत भी भासते है, तौ भी आकाशवत् शून्यरूप है, जैसे स्वप्नविषे अंगनाकेसाथ प्रेम करता है, सो अर्थते रहित असत्‌रूप है, जैसे मूर्तिके लिखे अग्नि सूर्य होते है, परंतु तिनते अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता, तैसे यह जगत् भी प्रत्यक्ष भासता है, परंतु वास्तव कछु नहीं, अर्थते रहित है, जैसे चित्रकी लिखी कमलिनी सुगंधते रहित होती है, तैसे यह जगत शून्यरूप है, जैसे आकाशविषे इंद्रधनुष भासता है, जैसे केलेका स्तंभ सुंदर भासता है, परंतु तिसविषे सार कछु नहीं निकसता; तैसे यह जगत् देखनेमात्र रमणीय भासता है, परंतु अत्यंत अम-

स्वरूप है, इसविषे सार कछु नहीं निकसता, प्रत्यक्ष देखनेविषे अनुभव होता है, परंतु मृगतृष्णाकी नदीवत् असत्‌रूप है, है कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व संशयके नाशकर्त्ता ! जब महाकल्पक्षय होता है, तब दृश्यमान जगत् सब आत्मरूप बीजविषे जाय लीन होता है, जैसे बीजविषे अंकुर रहता है, बहुरि तिसते उपजता है, तिसकरि स्थित होता है, बहुरि तिसीविषे लीन होता है, यह जो बुद्धि है, सो ज्ञानकी है, किंवा अज्ञानकी है ? याते सर्व संशयोंके निवृत्तिके अर्थ मुझको स्पष्ट करिकै कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार महाकल्पके क्षय हुए बीजरूप आत्माविषे जगत् स्थित होता है, ऐसे कहते हैं, सो परम अज्ञानी हैं, वे महामूर्ख बालक हैं, जो ब्रह्मको जगत्‌का कारण बीजते अंकुरकी नाईं कहते हैं, सो मूर्खका कहना है, बीज तो दृश्यरूप इंद्रियहूका विषय होता है, जैसे वटबीजते अंकुर होता है बहुरि विस्तारको पाता है, सो इंद्रियहूका विषय है, अरु जो मनसहित षट् इंद्रियते अतीत है, अर्थ यह जो इंद्रियहूका विषय नहीं, आकाशते भी अधिक निर्मल है, तिसको जगत्‌का बीज कैसे कहिये ? आकाशते भी अधिक सूक्ष्म परमउत्तम अनुभवकरि उपलब्ध है, नित्य प्राप्त है, तिसको बीजभाव कहना नहीं बनता ॥ हे रामजी ! जो शांत सूक्ष्म सदा प्रकाशसत्ता है, अरु दृश्य जगत् जिसविषे असत्‌रूप है, तिसको बीजरूप कैसे कहिये ? जो बीजरूप कहना नहीं बनता तब तिसते जगत कैसे कहिये ? आकाशते अधिक सूक्ष्म निर्मल परमपदविषे सुमेरु समुद्र आकाश आदिक जगत नहीं बनता, जो किंचन अरु अकिंचन है, निराकार सूक्ष्मकी नाईं सत्ता है, तिसविषे विद्यमान जगत् कैसे होवै ? महासूक्ष्मरूप है, दृश्य तिसविषे निरुद्धरूप है, जैसे सूर्यविषे छाया नहीं, जैसे सूर्यविषे अंधकार नहीं, जैसे अग्निविषे बर्फ नहीं जैसे अणुविषे सुमेरु नहीं होता, तैसे आत्माविषे जगत् नहीं होता, सत्यरूप आत्माविषे असत्यरूप जगत् कैसे होवै ? वटका बीज भी साकाररूप होता है, अरु निराकाररूप आत्माविषे साकाररूप जगत होना अयुक्त है ॥ हे रामजी ! कारण दो प्रकारका होता है, एक समवायिकारण, दूसरा निमित्तकारण है, सो आत्मा दोनों

कारणभावते रहित है, निमित्तकारण तब होताहै, जब कार्यते कर्ता भिन्न होता है, आत्मा अद्वैतहै, तिसते निकट दूसरी वस्तु हैही नहीं, कर्त्ता कैसे होवै, अरु किसका होवै ? सहकारी भी नहीं, जिसकरि कार्यको करै, मन अरु इंद्रियहुते रहित निराकार अविकृतरूप है, अरु समवायिकारण भी परिणामकरिकै होता है, जैसे वटबीज परिणामकरि वृक्ष होता है, सो आत्मा अच्युतरूप है, परिणामको कदाचित् प्राप्त नहीं होता,समवायिकारण कैसे होवै ? जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, क्षीयते, नश्यति, इन षट् विकारहुते रहित निर्विकार आत्मा जगत्का कारण कैसे होवै ? ताते यह जगत् अकारणरूप भ्रांतिकरिकै भासता है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु सीपीविषे रूपा भासता है, जैसे निद्रादोषकरिकै स्वप्नदृष्टि भासती है, तैसे यह जगत् भ्रांतिकरिकै भासता है, जब स्वरूपविषे जागै तब जगद्भ्रम मिटि जाता है, ताते कारण कार्य भ्रमको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, दुर्बोधकरि संकल्परचना हुई है, तिसको त्यागिकरि आदि मध्य अरु अंतते रहित जो सत्ता है, तिसविषे स्थित होहु, तब जगद्भ्रम मिटि जावै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगन्निराकरणवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग २

स्मृतिबीजोपन्यास।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे देवताविषे श्रेष्ठ रामजी ! बीजते अंकुरवत् आत्माते जगत्का होना अंगीकार करिये तौ नहीं बनता, आत्मा सर्व कल्पनाते रहित महाचैतन्य निर्मल आकाशवत् है, तिसको जगत्का बीज कैसे मानिये ? बीज परिणामकरि अंकुर होता है, अरु कारण समवायिकरि होता है, आत्माविषे समवायि अरु निमित्त सहकारी कदाचित् नहीं बनते, जैसे वंध्यास्त्रीका संतान किसीने नहीं देखा, तैसे आत्माते जगत् नहीं होता, जो समवायि अरु निमित्तकारणबिना सहकारी पदार्थ भासै, तौ जानिये कि, यह है नहीं, भ्रांतिमात्र भासता है, आत्मसत्ता

अपने आपविषे स्थित है, सृष्टि स्थिति प्रलय करिके ब्रह्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, जो इसप्रकार स्थित है, तौ कारणकार्यका क्रम कैसे होवै ? जो कारणकार्यका भाव न हुआ तौ पृथ्वी आदिक भूत कहां ते उपजे ? कहूं हैं भी नहीं, अरु जो कारण कार्य मानिये तौ पूर्व जो विकार कहे हैं; तिनका दूषण आता है; ताते न कोऊ कारण है; न कार्य है; कारणकार्यविना जो पदार्थ भासै तिसको सत्रूप जानै सो मूर्ख बालक है, वह विनिकते रहित है, ताते यह जगत् न आगे था; न अब है, न पाछे होवैगा स्वच्छ चिदाकाशसत्ता अपने आपविषे स्थित है; जब जगत्का अत्यन्तभाव होता है; तब सपूर्ण ब्रह्मही दृष्टि आता है; जैसे समुद्रविषे तरंग भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, अन्यथा कारणकार्यभाव कोऊ नहीं, प्रागभाव अरु प्रध्वंसाभाव अन्योन्याभाव कोऊ नहीं प्रागभाव कहिये जो प्रथम न था, जैसे प्रथम पुत्र नहीं होता, अरु पाछे उत्पन्न होता है, जैसे मृत्तिकासों घट उत्पन्न होता है, अरु प्रध्वंसाभाव वह है, जो प्रथम होकरि नष्ट हो जाता है; जैसे घट था, अरु नष्ट हो गया, अरु अन्योन्याभाव कहिये जैसे घटविषे पटका अभाव है अरु पटविषे घटका अभाव है, यह तीन प्रकारका भाव जिसके हृदय-विषे है, तिसकरि जगत् दृढ होता है उसको शांति नहीं प्राप्त होती जब जगत्का अत्यंताभाव दीखता है; तब चित्त शांतिमान् होता है, सो जगत्के अत्यंताभावका इस युक्तिविना और उपाय कोई नहीं अरु अशेष जगत्की निवृत्तिविना मुक्ति नहीं होती, सूर्यते आदि लेकरि जितना कछु प्रकाश है, अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व है, अरु क्षण पल कला आदिक जो काल है, यह मैं हौं, यह और है, अरु रूप अलोक मन संस्कार इत्यादिक जगत् सब संकल्पमात्र है, कल्प अरु कल्पके ब्रह्मांड अरु ब्रह्मा अरु विष्णु रुद्र इंद्र कीटते आदि लेकरि जेता कछु जगत्जाल है, सो उपज उपजि अंतर्धान हो जाता है, महाचैतन्य परम आकाशविषे अनंत सृष्टि उठती है, जैसे जगत्के पूर्व शांत हुता था, तैसे तू अब भी जान, अपर कछु हुआ नहीं, परमाणुका सहस्रांश होवै, तिसका नाईं सूक्ष्म चित्तरूप है, तिस चित्तरूपविषे अनेक कोटि सृष्टि

स्थित है, वही चित्तसत्ता फुरनेकरि जगत्‌रूप हो भासती है, अरु प्रकाशरूप है, निराकार शांतरूप है, न उदय होता है, न अस्त होता है, न आता है, न जाता है, जैसे शिलाविषे रेखा होती है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे आकाशविषे आकाशसत्ता फुरती है, तैसे आत्माविषे जगत् फुरता है, अरु आत्माहीविषे जगत् स्थित है, निराकार निर्विकाररूप विज्ञानघनसत्ता अपने आपविषे स्थित है, उदय अरु अस्तते रहित विस्तृतरूप है ॥ हे रामजी ! जो सहकारी कारण कोऊ न हुआ, तौ जगत् शून्य हुआ, क्योंकि ऐसे जाननेते सर्व कलककलना शात हो जाती है, दीर्घ निद्राविषे सोया है, तिसका अभावकरिकै ज्ञानभूमिकाको प्राप्त होहु, जागेते नि शोकपद प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे स्मृतिबीजोपन्यासो नाम द्वितीय' सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३.

जगदनतवर्णनम् ।

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! महाप्रलयके अतविषे अरु सृष्टिके आदिविषे जो प्रजापति होता है, सो जगत्को पूर्वकी स्मृतिकरिकै तिसी भांति रचता है, तौ जगत् स्मृतिरूप क्यों न होवै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! महाप्रलयके आदिविषे जो प्रजापति होता है, अरु वह स्मरणकरिकै पूर्वकी नाई जगत्को रचता है, ऐसे मानिये तौ नहीं बनता, काहेते कि, महाप्रलयविषे प्रजापति कहां रहता है, जो आपही न रहै, तिसकी स्मृति कैसी मानिये ? जैसे आकाशविषे वृक्ष नहीं होता, तैसे महाप्रलयविषे प्रजापति नहीं होता ॥ राम उवाच ॥ हे ब्रह्मण्य ! जगत्के आदिविषे जो ब्रह्मा था, अरु तिसने जगतको रचा था, महाप्रलयविषे तिसकी स्मृतिका नाश तौ नहीं होता, सुषुप्तिते उठेकी नाई बहुरि स्मृतिकरि जगत्को रचता है, तो बननाहै, तुम कैसे कहते हो कि, नहीं बनता ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे शुभतत्त्व रामजी ! महाप्रलयके पूर्व जो ब्रह्मादिक होते है, सो महाप्रलयविषे सब निर्वाण हो जाते हैं अर्थ यह कि, विदेह-

मुक्त होते है, ब्रह्मतत्त्वविषे लीन होते है, जो स्मृति करनेवाले अतर्धान हो गये तौ स्मृति कहां रही, जो स्मृति निर्मूल भई, तौ तिसको जगत्का कारण कैसे कहिये? महाप्रलय तिसका नाम है, जहा सर्व शब्द अर्थसहित निर्मूल हो जाते है, जहां सर्व अंतर्धान हो गये तहां स्मृति किसकी कहिये? जो स्मृतिका अभाव भया, तौ कारण किसका किसकी नाईं कहिये? ताते सर्व जगत् चित्तके फुरनेमात्र है,जब महाप्रलय होता है, तब सब यत्न बिना मोक्षभागी होते हैं, जो आत्मज्ञान होवै तो जगत्के होते भी मोक्षभागी होते है अरु जो आत्मज्ञान नहीं होवै तौ जगत् दृढ होता है, निवृत्त नहीं होता, जब दृश्य जगत्का अभाव होवै, तब स्वच्छ चैतन्य सत्ता प्रकाशती है, सो आदिअतते रहित है, जगत् भी सब वहीरूप भासता है, अनादिसिद्ध ब्रह्मतत्त्वही प्रकाशता है तिसविषे जो, आदि संवेदन फुरता है, सो ब्रह्मरूप है,अंतवाहक देह विराट् जगत् हो भासता है, तिसका एक परमाणुरूप यह तीनों जगत् है, तिसविषे देश, काल, क्रिया, द्रव्य, दिन, रात्रि क्रम हुआ है, बहुरि तिसके अणुविषे जगत् पडे फुरते हैं, सो क्या है? सब संकल्परूप है, ब्रह्मसत्ताका प्रकाश है, जो प्रबुद्ध आत्मज्ञानी है, तिसको सब जगत् एक ब्रह्मरूप हो भासता है, अरु जो अज्ञानी है, तिसके चित्तविषे अनेक प्रकार जगत्की भावना होती है, द्वैतभावनाकरिकै वह पड़ा भ्रमता है, जैसे इस ब्रह्मांडके अनेक जीव परमाणु हैं, तिनके अतर अनंत सृष्टियाँ है, तिनके अंतर और अनंत स्रष्टा हैं, तैसे और जो अनत स्रष्टा हैं, तिनके अतर और अनत सृष्टियाँ फुरती है, सो ब्रह्मतत्त्वका प्रकाश है, जैसे बडे स्तंभविषे अनेक पुतलियाँ शिल्पी कल्पै तिसकु अतर और अनेक पुतलियाँ कल्पै, तिनके अंतर और अनेक [illegible] होवै तैसे परमाणुपरमाणुके अंतर त्रिलोकी स्थित [illegible] अभिन्न [illegible] कछु हुआ नहीं जैसे पहाडके अंतर्गत असंख्य [illegible] हैं [illegible] है, तैसे ब्रह्मरूपी महासुमेरु है, [illegible] है, सो अभिन्नरूप है ॥ हे [illegible] सूक्ष्म त्रसरेणु [illegible]

अंतते रहित जो आत्मरूपी सूर्य है तिसके त्रिलोकरूपी परमाणुकी सख्या करनेको कोऊ समर्थ नहीं, जैसे समुद्रविषे जलते परमाणु होते हैं, जैसे पृथ्वीविषे धूरके परमाणु होते हैं, सो असंख्य हैं तैसे आत्मविषे असख्य परमाणु सृष्टियाँ हैं, जैसे आकाश शून्यरूप है तैसे आत्मा चिदाकाश जगत्‌रूप है, यह जो मैने उसको सृष्टि कही है, जो इनको तू जगत् शब्दकारि जानेगा, तौ अज्ञानबुद्धि है अरु दु ख भ्रमको देखेगा, अरु जो इनको ब्रह्मशब्दका अर्थकारि जानेगा तौ इस बुद्धिकरि परमसारको प्राप्त होवैगा, सर्व विश्व ब्रह्मते फुरता है, अरु विज्ञानघन ब्रह्मरूप है और द्वैत कछु हुआ नहीं, 'जब जागेगा तब तुझको ऐसेही भासैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगदनतवर्णन नाम तृतीय॰ सर्ग ॥ ३ ॥

चतुर्थ॰ सर्गः ४.

अंकुरवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इद्रियनका जो ग्राम है तिसकेसाथ युद्ध करना, तिनका जीतना सो ससाररूपी समुद्रके पार करनेको वेड़ा है अर्थ यह कि, इद्रियनहूको जीतना मोक्षका कारण है और किसी क्रम उपायकरि ससारसमुद्र तरा नहीं जाता, सतका सग करना, अरु सच्छास्त्रका विचारना, इसकरि जब आत्मतत्त्वका बोध होता है, तब इंद्रियनका जीतना होता है, अरु जगत्‌का अत्यत अभाव होता है, जबलग ससारका अत्यत अभाव नहीं होता, तबलग आत्मबोध नहीं होता, यह मैंने तुझको क्रम कहा है, सो ससारसमुद्र तरनेका उपाय है, बहुत कहनेते क्या है ? सब कर्मका बीज मन है, मनके छेदते सब जगत्‌का छेद होता है, जब मनरूपी बीज नष्ट होता है, तब जगतरूपी अंकुर भी नष्ट हो जाता है, सर्व जगत् मनका रूप है, इसके अभावका उपाय करो, मलीन मनते अनेक जन्मके समूह उत्पन्न होते हैं, इसके जीतनेते सर्व लोकमें जय होता है, सब जगत मनकरिकै हुआ है, मनरहित हुएते देह भी नहीं भासता, जब मनमों दृश्यका अभाव होता है

तब मन मृतक हो जाता है, और उपाय कोऊ नही॥ हे रामजी। पिशाच है, तिसका नाश और उपाय किसीकरि नहीं होता, कल्प बीतगये हैं, अरु बीतजॉय, तब भी नाश नहीं होता, ताते दृश्यमान है, तबलग इसका उपाय करै, जगत्का अत्यत अभाव बना अरु स्वरूप आत्माका अभ्यास करना, यह परम औपध है, उपायकरि मनरूपी द्रष्टा नष्ट होता है, जबलग मन नष्ट नहीं होता, लग मनके मोहकरि जन्ममरणको पावैगा, जब ईश्वर परमात्माकी नता होती है, तब मन बंधनते मुक्त होता है,संपूर्ण जगत् मनके भासता है, जैसे आकाशविषे शून्यता भासती है; अथवा जैसे गधर्वनगर भासता है, तैसे सपूर्ण जगत् मनविषे भासता है, जैसे पुष्पमे सुगध रहता है, जैसे तिलमे तेल रहतता है, जैसे गुणीमे गुण रहता है, जैसे धर्मीमें धर्म रहता है, तैसे यह सत् असत् स्थूल सूक्ष्म कारण कार्यरूप जगत् मनमें रहता है,जैसे समुद्रमें तरग फुरते हैं,जैसे आकाशमें दूसरा चद्रमा फुरताहै, जैसे मरुस्थलमें मृगतृष्णाका जल फुरता है, तैसे चित्तविषे जगत् फुरताहै, जैसे सूर्यविषे किरणे है,जैसे तेजविषे प्रकाश है, जैसें अग्निविषे उष्णता है, तैसे मनविषे जगत् है,जैसे बर्फविषे शीतलता है, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जैसे पवनविषे स्पदता है तैसे मनविषे जगत् है, सपूर्ण जगत् मनरूप है, अरु मन जगत्रूप है, परस्पर एक रूप है, दोनोंमेंते एक नष्ट होवै तब दोनो नष्ट हो जाते हैं, जब जगत् नष्ट होवै, तब मन भी नष्ट हो जाता है, जैसे वृक्षके नष्ट हुएते पत्र, टास, फूल, फल सभी नष्ट हो जाते हैं, फूलफलके नष्ट हुएते वृक्ष नष्ट नही होता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अंकुरवर्णनं नाम चतुर्थः सर्ग ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५

भार्गवसविद्रूमनवर्णनम् ।

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व धर्मोंके वेत्ता! पूर्व अपरके ज्ञाता! मनके फुरणेकरिकै जगत् कैसे फुरता है [illegible] भया है? जैसे प्राप्त भया है तैसे दृष्टांतदृष्टिकरिकै [illegible] ॥ हे रामजी! जैसे इंद्र

ब्राह्मणके पुत्रहूकी दश सृष्टियाँ होत भई अरु दशही ब्रह्मा होत भये, सो मनके फुरणेते उपजिकरि मनके फुरणेविषे स्थित भये, अरु जैसे लवणराजाको इंद्रजालकी मायाकरिकै चंडालकी प्रतिमा दृढ होकरि भासी, तैसे यह जगत् मनमें फुरणेविषे स्थित भया है, जैसे भार्गव शुक्र मनके फुरणे करि चिरकाल स्वर्गको भोगता रहा, अरु अपर अनेक भ्रम देखे, सो मनहीका भ्रम दृढ होकरि भासा, तैसे यह जगत् मनके भ्रमकरि स्थित भया है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! भृगुऋषीश्वरके पुत्रने मनके भ्रमकरि कैसे स्वर्गसुख भोगे हैं? अरु कैसे भोगका अधिपति हुआ है? अरु कैसे संसारी होकरि भ्रमको देखता भया है?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! भृगुके पुत्रका वृत्तांत सुन, भृगु अरु कालका संवाद मंदराचल पर्वतविषे हुआ है॥ एक कालमें भृगु अरु शुक्र दोनों मंदराचल पर्वतविषे स्थित थे, चंद्रमाकी नाईं शुक्रका मुख अरु बड़ा प्रकाशी है, अरु भृगुजी बड़ा उदार आत्मा तहां स्थित है, जहां कल्पवृक्ष अरु मंदारवृक्ष आदिक बहुत सुंदर स्थान दिव्य मूर्ति है, तहाँ भृगुजी तप करते थे, अरु शुक्रजी टहल करते थे, एक समय भृगुजी निर्विकल्प समाधिमें स्थित भये, तब निर्मल मूर्ति शुक्र एकांत जाय बैठे, कंठविषे मंदारकल्पवृक्षके फूलनकी माला पहरे हुये, सो शुक्र विद्या अरु अविद्याके मध्यमें स्थित था, जैसे त्रिशंकु राजा चंडाल था, सो विश्वामित्रके वरको पायके स्वर्गमें गया, तब देवतोंने अनादर किया, स्वर्गते गिराय दिया कि, यह चंडाल है, तब विश्वामित्रने देखिके कहा कि, यहाही खड़े रहो, तब वह भूमि अरु आकाशके मध्य स्थित भया, तैसे शुक्र बैठा है और एक महासुंदर अप्सरा तिसके ऊर्ध्व स्वर्गकी ओर चली जाती देखत भया, जैसे लक्ष्मीको और विष्णुजी देखें, तैसे अप्सराको देखा, जो महासुंदर अनेक प्रकारके भूषण पहरे हुए थी अरु दिव्य वस्त्र धारण किये थी और जिसके शरीरसे महासुगंध उठती थी, जिसकरि आकाशमार्ग भी सुगंधित भया है, पवन जो तिसको स्पर्श कर चलता है, तिसकी सुगंधि पसरती है, अरु महामदकारि उसके घूर्ण नेत्र है, ऐसी अप्सराको देखिकै शुक्रका मन क्षोभायमान हुआ, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाको देखिकै क्षीरसमुद्र क्षोभित

है, गगाका प्रवाह चलता है, तहा अप्सरोंके गण बैठे हैं, कहू सुगधता-लिये पवन चलता है, कहू झरणेमेंते जल चलता है, सुदर नदनवन है, कहू अप्सरा बैठी हैं, कहू नारद आदिक बैठे है, अपर लोग जिनने पुण्य किये हैं, सो बैठे सुख भोगते है, विमानपर आरूढ हुए फिरते है, कहू इद्रको अप्सरा सेवती है, कामदेवसों मस्त हैं शरीर जिनके, जैसे वनकी लता वनको सेवती हैं, तैसे अप्सरा इद्रको सेवती है, जैसे कल्पवृक्षमें पके फल लगते है, तैसे रत्न अरु चितामणि लगे है, कहू चद्रकातमणि स्रवती है, इसप्रकार मनसों स्वर्गकी रचना शुक्र देखता भया, कैसी रचना देखी, मानों त्रिलोकीकी रचना यहाही है ॥ तब शुक्रको देखिकै इद्र उठ खडा हुआ, मानो दूसरा भृगु आया है, बडे प्रकाशसयुक्त शुक्रकी मूर्त्तिको इद्रने प्रणाम किया, अरु हाथ ग्रहण करिकै अपने पास बैठाया, अरु कहत भया ॥ हे शुक्रजी ! आज हमारे धन्य भाग्य हैं, जो तुम्हारा आगमन भया है, आज हमारा स्वर्ग तुम्हारे आनेसे सफल शोभित निर्मल भया है, अब तुम चिरपर्यंत यहांही स्थित होहु, जब इद्रने ऐसे कहा तब शुक्रजी शोभत भये, तिनको देखिकै सुरके समूह प्रणाम करत भये, कि भृगुका पुत्र शुक्रजी आया है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार शुक्रजी मनसों इद्रके पास जाय बैठा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवमनोराज्यवर्णन नाम षष्ठ सर्ग ॥ ६ ॥

सप्तम सर्गः ७

भार्गवसगमवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार शुक्रजी इद्रके पास जाय बैठा, तब अपना जो कोऊ निज भाव था, तिसको भुलाय दिया, वह जो मदराचल पर्वतपै अपना शरीर था, सो भूल गया, अरु वासनासों मनोराज्यका शरीर दृढ हो गया, एक मुहूर्तपर्यंत इद्रके पास बैठा रहा, परतु चित्त उस अप्सरामें रहा, तिसके अनतर उठ खडा हुआ, स्वर्गको देखने लगा, देवताओंने कहा कि,चलो स्वर्गकी रचना देखो, तब शुक्रजी

होता है, तैसे उसकी वृत्ति और मार्गते रहित होकरि अप्सराविषे जाय स्थित भई, कामदेवका बाण जो है स्मृति करना, सो आय लगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवसंविद्भ्रमनवर्णनं नाम पंचम सर्ग ॥५॥

षष्ठः सर्ग ६



भार्गवमनोराज्यवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार उस अप्सराको देखके नेत्र मूँदता भया मूँदके मनोराज्यको पसारत भया, चितने लगा कि, यह जो ललना मृगनयनी स्वर्गको गई है, मैं तिसके निकट जाय प्राप्त होऊँ, ऐसे विचारिके उसके पाछे चला, जाते जाते मनसों स्वर्गमें जाय प्राप्त भया, तहां मंदार कल्पतरु हैं, तिनको फूलकी सुगंधतासहित देखता भया, द्रवत स्वर्णकी नाईं शरीर जिनके है, ऐसे देवता अरु हास्य विलाससंयुक्त हरिणकी नाईं नेत्र वाली स्त्रियां देखता भया, मणिके समूह देखे, अन्योन्य परस्पर उनविषे प्रतिबिंब पडते हैं, विश्वरूपकी उपमा स्वर्गलोकमें देखी, मंद मंद पवन चलता है, मंदारवृक्षमें मंजरी प्रफुल्लित है, तहा अप्सरोके गण विचरते हैं, आगे इंद्र भागमें गया, तौ ऐरावत हस्ती वडे मदसो मस्त खड़ा है, जिसने युद्धमे दंतनसे दैत्य चूर्ण किये हैं, अरु देवतोंके आगे अप्सरा गायन करती है, अरु स्वर्णके कमल लगे हुए है, तहां ब्रह्माके हंस अरु सारस पक्षी विचरते हैं, गंगाका प्रवाह चला जाता है, देवताके नायक तहां वि[illegible]श्राम करते हैं, बहुरि लोकपालके स्थान देखे, यम, चंद्रमा, सूर्य, इंद्र, वायु, र[illegible] अग्नि, लोकपाल सब देखता भया, महाज्वालावत् प्रकाश है जिनका, ऐसे [illegible] देवताके समूह देखता भया, ऐरावतके दंतमें दैत्यनहूकी पंक्ति देखी, [illegible] देवता देखे, जो विमानपर आरूढ हुए फिरते हैं, भूषण-सहित तिनके हार [illegible] मणिकरिके जडे हुए हैं, सुंदर विमानकी पंक्ति विचरती है, कहूं [illegible] है, कहूं कल्पवृक्ष हैं, तिनके साथ सुंदर बड़िया

हैं, गंगाका प्रवाह चलता है, तहां अप्सरोंके गण बैठे है, कहूं सुगंधता-लिये पवन चलता है, कहूं झरणेमेंते जल चलता है, सुंदर नंदनवन है, कहूं अप्सरा बैठी हैं, कहूं नारद आदिक बैठे है, अपर लोग जिनने पुण्य किये है, सो बैठे सुख भोगते है, विमानपर आरूढ हुए फिरते है, कहूं इंद्रको अप्सरा सेवती है, कामदेवसों मस्त है शरीर जिनके, जैसे वनकी लता वनको सेवती हैं, तैसे अप्सरा इंद्रको सेवती हैं, जैसे कल्पवृक्षमें पक्के फल लगते है, तैसे रत्न अरु चिंतामणि लगे है, कहूं चंद्रकांतमणि स्रवती है, इसप्रकार मनसों स्वर्गकी रचना शुक्र देखता भया, कैसी रचना देखी, मानों त्रिलोकीकी रचना यहांही है ॥ तब शुक्रको देखिके इंद्र उठ खडा हुआ, मानो दूसरा भृगु आया है, बड़े प्रकाशसंयुक्त शुक्रकी मूर्तिको इंद्रने प्रणाम किया, अरु हाथ ग्रहण करिके अपने पास बैठाया, अरु कहत भया ॥ हे शुक्रजी ! आज हमारे धन्य भाग्य हैं, जो तुम्हारा आगमन भया है, आज हमारा स्वर्ग तुम्हारे आनेसे सफल शोभित निर्मल भया है, अब तुम चिरपर्यंत यहांही स्थित होहु, जब इंद्रने ऐसे कहा तब शुक्रजी शोभत भये, तिसको देखिके सुरके समूह प्रणाम करत भये, कि भृगुका पुत्र शुक्रजी आया है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार शुक्रजी मनसों इंद्रके पास जाय बैठा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवमनोराज्यवर्णन नाम षष्ठ सर्ग ॥ ६ ॥

सप्तम सर्गः ७

भार्गवस्तगमवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार शुक्रजी इंद्रके पास जाय बैठा, तब अपना जो कोऊ निज भाव था, तिसको भुलाय दिया, अरु जो मंदराचल पर्वतपै अपना शरीर था, सो भूल गया, अरु वासनासों मनोराज्यका शरीर दृढ हो गया, एक मुहूर्तपर्यंत इंद्रके पास बैठा रहा, परंतु चित्त उस अप्सरामें रहा, तिसके अनंतर उठ खडा हुआ, स्वर्गको देखने लगा, देवताओंने कहा कि, चलो स्वर्गकी रचना देखो, तब शुक्रजी

देखत देखत जहां वह अप्सरा थी तहाँ गये, अरु और भी अप्सरा वहुत थीं, तिनमें वह अप्सरा भी वैठी है, जिसके मृगके ऐसे नेत्र हैं तिसको शुक्रजीने देखा, जैसे चंद्रमा चांदनीको देखै, तैसे देखके शुक्रका शरीर द्रवीभूत होगया, प्रस्वेदसों पूर्ण होत भया, जैसे चंद्रमाको देखिकै चद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे शरीर हो गया, कामदेवके वाण तिसके हृदयमें आय लगे, तिसकरि व्याकुल हो गया, अरु शुक्रको देखिकै उसका चित्त भी मोहित हो गया, शुक्रविषे कामका वाण उसको भी आय लगा, वह भी कामसों पूर्ण हो गई, जैसे वर्षाकालकी नदी जलसों पूर्ण होती है, तैसे परस्पर स्नेह वढा, तव शुक्रजीने मनसों तहां तमको रचा, तव सव स्थानमें तम हो गया, जैसे लोकालोक पर्वतके तटविषे तम होता है, तैसा सूर्यका अभाव हो गया, तव भूतजात सव अपने अपने स्थानमें गये,जैसे दिनके अभाव हुए पशुपक्षी अपने अपने गृहको जाते हैं, तैसे तमके होनेते सव वनको चले गये, तव वह अप्सरा शुक्रके निकट आई, शुक्रजी श्वेत आसनपर वैठ गया, अप्सराभी चरणके निकट वैठी, सुदर वस्त्र अरु भूपण पहिरे हुए है, स्नेहकरि दोनों कामवश हुए, तव अप्सरा मधुरवाणीसों कहत भई ॥ हे नाथ ! मैं निर्वल होकर तुम्हारी शरण आई हौं, मुझको कामदेव दहन करता है, तुम रक्षा करो, मै इसकरि पूर्ण हो गई हौं, अरु स्नेहरूपी जो रस है, तिसको सोई जानता है, जिसको प्राप्त भया है ॥ जिसको रसका स्वाद नहीं आया, सो क्या जाने ? हे साधु ! ऐसा सुख त्रिलोकीमें और कोऊ नहीं, जैसा सुख परस्पर स्नेहसों होता है, अव तुम्हारे चरणोंको पायके आनदवती भई हौं, जैसे चद्रमाको पायके कमलिनी आनदवती होती है, जैसे चकोर चद्रमाकी किरणोंको पायके आनंदवान् होता है, तैसे मुझको स्पर्श करिकै आनद होवैगा, जव इसप्रकार अप्सराने कहा, तव दोनों कामके वश होइकरि क्रीडा करने लगे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवसगमवर्णन नाम सप्तम: सर्ग: ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

भार्गवोपाख्याने विविधजन्मवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार तिसको पायके शुक्र आपको आनदवान् मानता भया, मदार अरु कल्पवृक्षके नीचे क्रीडा करते हैं, दिव्य वस्त्र अरु भूषण फूलोंकी माला पहिरे हुये, वन वगीचे अरु किनारेविषे क्रीडा करते है, चद्रमाकी किरणोंके मार्गसों अमृतपान करते रहैं, स्वर्गमें विचरें, विद्याधरोंके गणन साथ रहें, तिनके स्थानमें नदनवन इत्यादिक स्थानविषे क्रीडा करत भोगते कैलास पर्वतमें गये, अप्सरा, सहित तहां वनकुजमें फिरते रहैं, वहुरि लोकालोक पर्वतपर क्रीडा करते भये, मंदराचल पर्वतके कुजमें विचरते भये, श्वेतद्वीपविषे रहे, अर्धशत युगपर्यंत वहुरि गधर्वके नगराविषे रहे, इद्रके वनविषे रहे, वत्तीस युगपर्यंत स्वर्गमें रहे, जब पुण्य क्षीण भया, तव भूमिलोकमें गिराय दिये गये, गिरते गिरते तिनके शरीर टूटि गये, जैसे झरणेमेंते जल वद होवै, तैसे शरीर अतर्धान हो गया, तव चितासयुक्त उनकी पुर्यष्टक आकाशमें निराधार हो रही, जैसे पक्षी नीडविना स्थित है, तैसे उनकी पुर्यष्टक चितासहित निराधार भई, तव वासनारूप दोनों चन्द्रमाकी किरणोंविषे जाय स्थित हुए, वहुरि किरणोंद्वारा धान्यमें आय निवास किया, तव दशारण्य नाम ब्राह्मण था, तिसने धान्यका भोजन किया, तव वह चावल वीर्य होकरि ब्राह्मणीके गर्भमें जाय रहा, फेर वह धान्यका मालवदेशका राजा भोजन करत भया, तिसके वीर्यद्वारा अप्सरा स्त्रीके उदरविषे जाय स्थित भई, अरु दशारण्य ब्राह्मणके गृहमें शुक्र पुत्र हुआ, अरु वह मालव देशके राजाके यहा अप्सरा पुत्री हुई, तव क्रमकरिके वडी हुई, जब षोडशवर्षकी भई, पिताके गृहविषे यौवनवती हुई, तव महादेवकी पूजा करत भई और प्रार्थना करी कि, हे देव ! मुझको पूर्वके भर्त्तारकी प्राप्ति कर देहु, इसप्रकार नित्य पूजन करै, अरु वर मांगै, यहां वह यौवनवान हुआ, यहां यह यौवनवती हुई, तव राजाने यज्ञका आरंभ किया, तिसमें सव राजा अरु ब्राह्मण आये, तहां दशारण्य ब्राह्मण पुत्रस-

देखत देखत जहां वह अप्सरा थी तहाँ गये, अरु और भी अप्सरा बहुत थीं, तिनमें वह अप्सरा भी बैठी है, जिसके मृगके ऐसे नेत्र हैं तिसको शुक्रजीने देखा, जैसे चंद्रमा चांदनीको देखै, तैसे देखके शुक्रका शरीर द्रवीभूत होगया, प्रस्वेदसों पूर्ण होत भया, जैसे चंद्रमाको देखिके चद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे शरीर हो गया, कामदेवके बाण तिसके हृदयमें आय लगे, तिसकरि व्याकुल हो गया, अरु शुक्रको देखिके उसका चित्त भी मोहित हो गया, शुक्रविषे कामका बाण उसको भी आय लगा, वह भी कामसों पूर्ण हो गई, जैसे वर्षाकालकी नदी जलसों पूर्ण होती है, तैसे परस्पर स्नेह बढा, तब शुक्रजीने मनसों तहां तमको रचा, तब सब स्थानमें तम हो गया, जैसे लोकालोक पर्वतके तटविषे तम होता है, तैसा सूर्यका अभाव हो गया, तब भूतजात सब अपने अपने स्थानमें गये,जैसे दिनके अभाव हुए पशुपक्षी अपने अपने गृहको जाते हैं, तैसे तमके होनेते सब वनको चले गये, तब वह अप्सरा शुक्रके निकट आई, शुक्रजी श्वेत आसनपर बैठ गया, अप्सरा भी चरणके निकट बैठी, सुंदर वस्त्र अरु भूषण पहिरे हुए है, स्नेहकरि दोनों कामवश हुए, तब अप्सरा मधुरवाणीसों कहत भई ॥ हे नाथ ! मैं निर्बल होकर तुम्हारी शरण आई हौं, मुझको कामदेव दहन करता है, तुम रक्षा करो, मै इसकरि पूर्ण हो गई हौ, अरु स्नेहरूपी जो रस है, तिसको सोई जानता है, जिसको प्राप्त भया है ॥ जिसको रसका स्वाद नहीं आया, सो क्या जाने ? हे साधु ! ऐसा सुख त्रिलोकीमें और कोऊ नहीं, जैसा सुख परस्पर स्नेहसों होता है, अब तुम्हारे चरणोंको पायके आनदवती भई हौं, जैसे चद्रमाको पायके कमलिनी आनंदवती होती है, जैसे चकोर चद्रमाकी किरणोंको पायके आनंदवान् होता है, तैसे मुझको स्पर्श करिके आनद होवैगा, जब इसप्रकार अप्सराने कहा, तब दोनों कामके वश होइकरि क्रीडा करने लगे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवसंगमवर्णन नाम सप्तम सर्ग ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

भार्गवोपाख्याने विविधजन्मवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार तिसको पायके शुक्र आपको आनदवान् मानता भया, मदार अरु कल्पवृक्षके नीचे क्रीडा करते हैं, दिव्य वस्त्र अरु भूषण फूलोंकी माला पहिरे हुये, वन बगीचे अरु किनारेविषे क्रीडा करते हैं, चन्द्रमाकी किरणोंके मार्गसों अमृतपान करते रहैं, स्वर्गमें विचरैं, विद्याधरोंके गणन साथ रहैं, तिनके स्थानमें नदनवन इत्यादिक स्थानविषे क्रीडा करत भोगते कैलास पर्वतमें गये, अप्सरा, सहित तहा वनकुजमें फिरते रहैं, बहुरि लोकालोक पर्वतपर क्रीडा करते भये, मदराचल पर्वतके कुजमें विचरते भये, श्वेतद्वीपविषे रहे, अर्धशत युगपर्यंत बहुरि गधर्वके नगराविषे रहे, इंद्रके वनविषे रहे, बत्तीस युगपर्यंत स्वर्गमें रहे, जब पुण्य क्षीण भया, तब भूमिलोकमें गिराय दिये गये, गिरते गिरते तिनके शरीर टूटि गये, जैसे झरणेमेंते जल वद होवे, तैसे शरीर अतर्धान हो गया, तब चितासयुक्त उनकी पुर्यष्टक आकाशमें निराधार हो रही, जैसे पक्षी नीडविना स्थित है, तैसे उनकी पुर्यष्टक चितासहित निराधार भई, तब वासनारूप दोनों चन्द्रमाकी किरणोंविषे जाय स्थित हुए, बहुरि किरणोंद्वारा धान्यमें आय निवास किया, तब दशारण्य नाम ब्राह्मण था, तिसने धान्यका भोजन किया, तब वह चावल वीर्य होकरि ब्राह्मणीके गर्भमें जाय रहा, फेर वह धान्यका मालवदेशका राजा भोजन करत भया, तिसके वीर्यद्वारा अप्सरा स्त्रीके उदरविषे जाय स्थित भई, अरु दशारण्य ब्राह्मणके गृहमें शुक्र पुत्र हुआ, अरु वह मालव देशके राजाके यहा अप्सरा पुत्री हुई, तब क्रमकरिकै बडी हुई, जब षोडशवर्षकी भई, पिताके गृहविषे यौवनवती हुई, तब महादेवकी पूजा करत भई और प्रार्थना करी कि, हे देव ! मुझको पूर्वके भर्त्तारकी प्राप्ति कर देहु, इसप्रकार नित्य पूजन करै, अरु वर मांगै, यहा वह यौवनवान हुआ, यहां यह यौवनवती हुई, तब राजाने यज्ञका आरभ किया, तिसमें सब राजा अरु ब्राह्मण आये, तहां दशारण्य ब्राह्मण पुत्रस-

हित आया, तब राजपुत्रीने तिस पूर्वजन्मके भर्त्तारको देखा, जैसे चंद्रमाको देखिकै चंद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे राजकन्या होगई, अरु स्नेहसों नेत्रते जल चलने लगा, तब राजकन्या दशारण्यके पुत्रको देखिकै तिसके कंठविषे फूलनकी माला डारिकै अपना भर्त्तार किया, तब यज्ञमें देखिकै राजा आश्चर्यमान हुआ, अरु निश्चय किया कि, भला हुआ; बहुरि क्रमसों विवाह किया, तब राजा, पुत्री अरु जँवाईको राज्य देके आप वनको तप करने लिये चला गया, यहां यह पुरुष अरु स्त्री मालवदेशका राज्य करने लगे, चिरकाल राज्य करते रहे, बहुरि दोनों वृद्ध भये, शरीर जर्जरीभूत हो गये, तब तिसको शरीरमें वैराग्य हुआ कि,स्त्री महादुःखरूप है, सो दुःखरूप अवस्था देखिकै समानवैराग्य हुआ, विशेष वैराग्य न उपजा, जर्जरीभूत अंगविषे सेवनेते अशक्त भये, परतु तृष्णा निवृत्त नहीं भई, राजा मृत्यु अवस्थाको प्राप्त भया, सो बांधवोंने जलाय दिया, यह महा अंधकूप मोहविषे ज्ञानकी प्राप्तिबिना जाय पड़ा ॥ हे रामजी ! मृत्यु मूर्च्छाके अनतर परलोक तिसको भासि आया, तहां कर्मके अनुसार सुखदुःखको भोगिकै अंग वंग देशमें धीमर हुआ, तहां अपने धीमरकर्म करत भया, बहुरि वृद्ध अवस्था आई, तब शरीरविषे वैराग्य हुआ कि, यह ससार महादुःखरूप है, ऐसे जानिकै सूर्यभगवान्‌का तप करने लगा, जब मृतक हुआ तब तपके वशते सूर्यवंशविषे राजा भया सो भावनाके वशते तहां कछुक ज्ञानवान हुआ, योग करै, अरु वेद पढै, योगकी भावनाकरि जो शरीर छूटा, तब बड़ा गुरु हुआ, सबको उपदेश करै, मन्त्रसिद्धि करता भया, वेदमें बहुत परिपक्व हुआ, तब मन्त्रके वशते विद्याधर हुआ, चिरकालपर्यंत विद्याधरमें एक कल्पपर्यंत रहा, जब कल्पका अत भया, तब सशरीर अतर्धान हो गया, तब इसका पवनरूपी शरीर वासनासहित हो रहा, जब ब्रह्माकी रात्रि क्षय हुई, अरु दिन हुआ बहुरि सृष्टि रची, तब एक मुनीश्वरके गृहमें पुत्र हुआ, तहां बडा तप करत भया, बहुरि सुमेरु पर्वतपर जाय स्थित भया, एक मन्वतरपर्यंत वहा रहा, इकहतर चौकड़ी युग व्यतीत भई, तहां भोगकरि हरणीका पुत्र हुआ, अरु मनुष्यका आकार तहाँ रहा, तिस पुत्रके स्नेहसों मोहको

प्राप्त भया कि, जो इस मेरे पुत्रको धन होवै, गुण आयुर्दाय बल बहुत होवे, निरतर यही चिंतन करने लगा, इस कारणते अपने तप धर्मते विरक्त हुआ, आयुष्य क्षीण भया, मृतरूप सर्पने ग्रास लिया, तपोभ्रष्ट निमित्त अरु तपके बलकरि शरीर छूटा, तब भोगकी चितासंयुक्त मद्रदेशके राजाके गृहविषे पुत्र हुआ, तिस देशका राजा भया, चिरपर्यंत राज भोगकरि वृद्ध अवस्थाको प्राप्त भया, शरीर जर्जरीभृत हो गया, तहां तपकी अभिलाषामें शरीर छूटा, तिसकरि तपेश्वर गृहविषे पुत्र हुआ अन्न संतापते रहित होइकरि गंगाजीके किनारेपर तप करनेको लगा है हे रामजी! इसप्रकार मनके फुरणेकरिके शुक्र अनेक शरीरको भोगता भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने विविधजन्मवर्णन नाम अष्टम सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९

भार्गवकलेवरवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार शुक्र मनसों भ्रमता फिरा, तब भृगुके पास जो शरीर था, सो निर्जीव हुआ, पुर्यष्टक निकरि गई थी, पवन अरु धूपसों शरीर जर्जरीभूत हो गया, जैसे शूलते काटा वृक्ष गिर पडता है, तैसे शरीर गिर पड़ा, मन जो चचल है सो भोगकी तृष्णामों वही गया था, जैसे हरिण वनविषे भ्रमता है, अथवा जैसे चक्र पर चढा वासन भ्रमता है, तैसे भ्रमते.भ्रमातरको देखा, जब मुनीश्वरके गृहमें जन्म लिया, तब चित्तमें विश्राम हुआ, गंगाके तटपर तप करने लगा, मदराचल पर्वतवाला शरीर निरस हो गया, अस्थि चर्म मात्र शेष रह गया, अरु लोहू सूख गया, शरीरके रध्रमार्गकरि पवन चले,तब बांसुरीवत् शब्द होवे, मानो चेष्टाको त्यागिकै शरीर आनंदवान् हुआ है जब बड़ा पवन चले तब भूमिविषे लोटने लगे, नेत्र आदिक जो रध्र थे, सो गर्त गढेलेवत् हो गये; अरु मुख पसर गया, मानो अपने पूर्व स्वभावको देखिकै हँसता है, जब वर्षाकाल आवे, तब जलकरि पूर्ण हो आवे,

अरु जल तिसविषे प्रवेश करि रन्ध्रके मार्गसो निकसै, जैसे झरणेसों जल निकसता है, तैसे निकसै, जब उष्णकाल आवै, तब धूपसो सूखि जावै, महाकाष्टकी नाई वनविषे मौनरूप होकरि स्थित भया, अरु मृग पक्षी शरीरको नाश करत न भये, सो एक तौ यह कारण है कि, रागद्वेषते रहित पुण्य आश्रम था, तथा भृगुजी महातपस्वी तेजवान् थे, तिसके निकट कोऊ आय न सकैं, इस कारणते देहको नष्ट न करत भये, यहां शरीरकी यह अवस्था भई, अरु वहां शुक्र पवनके शरीरसों चेष्टा करत भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवकलेवरवर्णनं नाम नवम सर्ग. ॥ ९ ॥

दशमः सर्ग. १०

कालवाक्यवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब सहस्र वर्ष व्यतीत भये, सो भूमि लोकके तीन लाख अरु साठ सहस्र वर्ष भये, तब भगवान् भृगुजी समाधिते उतरे, जागिकै देखते भये, तो अपने आगे शुक्रका शरीर दृष्ट न आया, जब भली प्रकार नेत्र पसार देखा तब तहां देखा कि,कृश जैसा होयके शरीर गिर पडा है, तब जानत भया कि,कालने इसको भक्षण किया है, शरीर धूप अरु वायु मेघकरि जर्जरीभूत हो गया है, नेत्र गढेलारूप हो गये हैं, शरीरमें की[illegible] आय स्थित भये है, जीवने आलयस्थान बनाये हैं, घुराण मक्खियां आत[illegible] जाती है, श्वेतदंत निकसि आये है, मानौ शरीरकी दशाको देखि[illegible] हँसते है, मुख ग्रीवा महाभयानकरूप है,खपरी [illegible]
श्रवणस्थान सब जर्जरीभूत हो गये हैं, वायु [illegible]
[illegible]गते है, महा आश्चर्यरूप श[illegible]
रहित होकरि स्थित भया है [illegible]
तौ पुण्यस्थान, दूसरा [illegible]
न करत भये, शरीरकी यह
[illegible]

मारा है, शुक्र परम तपस्वी अरु सृष्टिपर्यंत रहनेवाला था, सो विना-काल मेरे पुत्रको क्यों मारा है ? यह कौन रीति है ? मैं कालको शाप देकर भस्म करौंगा ? मेरे पुत्रको समयविना मारा है, तब कालका रूप जो काल है, सो अद्भुत शरीर धारिकरि आया, षण्मुख, षट्भुजा, हाथनिषे खड्ग, त्रिशूल अरु फाँसी, अरु कानमें मोती पहिरे हुए, मुखसों ज्वाला निकसती है, महाश्याम शरीर, अग्निवत् जिह्वा है, कमलकी नाई ज्वाला निकसती हैं, त्रिशूलके अग्रते अग्निकी लपटें निकसती हैं, जैसे प्रलयकालके अग्निते धूम निकसता है, तैसे श्याम शरीर बड़े पहाड़की नाई उग्ररूप है, जहां चरण रक्खे तहां पृथ्वी पहाड़ कांपने लगे, महाभयानकरूप काल भगवान् भृगुऋषीश्वरके निकट आये, अरु भृगु जो महाप्रलयके समुद्रवत् क्रोधकरि पूर्ण था, तहां आगमन करि कहत भया ॥ हे मुनीश्वर ! जो मर्यादाके वेत्ता हैं, अरु परावर परमात्माके वेत्ता हैं, सो पुरुष क्रोधको नहीं प्राप्त होते, जो कोऊ क्रोध करनेको आवै, तौ भी मोहके वश होइकरि क्रोधवान् नहीं होते, तुम कारणविना काहेको मोहित होयके क्रोधको प्राप्त भये हौ ? तुम ब्रह्मतनय तपस्वी हौ, अरु हम नीतिके पालक हैं, हमारेकरि तुम पूजने योग्य हौ, यही नीतिकी इच्छा है, अरु तपके बलकरि तुम क्षोभ मत करौ, तुम्हारे शापकरि मैं भस्म भी नहीं होता, प्रलयकालका अग्नि भी मुझको दग्ध नहीं करि सकता, तौ तुम्हारे शापकरि मैं, कव भस्म होता हौं ? ॥ हे मुनीश्वर ! मैं तौ अनेक ब्रह्मांड भक्षण करि गया हौं, कई कोटि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ग्रास लिये हैं, तेरा शाप मुझको क्या करि सकता है, जैसे आदिनीति ईश्वरने रची है, तैसे स्थित है, हम सबके भोक्ता हुए हैं, तुमसरीखे हमारा भोग हुए हैं, यह आदिनीति हुई है ॥ हे मुनीश्वर ! अग्नि स्वभावकरि ऊर्ध्वको जाता है, अरु जल स्वभावकरि अध को जाता है, अरु भोग जो है, सो भोक्ताको प्राप्त होता सृष्टि सब कालके मुखमें प्राप्त होती है, आदि परमात्माकी नीति ऐसेही हुई है, जैसे रची है, तैसे स्थित है, अरु जो निष्कलंक ज्ञानदृष्टिकरि देखिये, तौ न कोऊ कर्ता है, न कोऊ भोक्ता है, न कारण है, न कार्य है, एक अद्वैतसत्ताही है, जो अज्ञानकलंक

रिके अनेक शरीर पाता रहा है, विंध्याचल पर्वतविषे गेव हुआ क्रांत देशविषे धीमर हुआ, तरंगित देशविषे राजा हुआ, क्रांत देशविषे हरिण हुआ, वनमें विचरा, बहुरि विद्यावान् गुरु हुआ, बहुरि विद्याधर श्रीमान् हुआ, बहुरि कुंडलादिक भूषणहूकरि संपन्न बडा ऐश्वर्यवान् गंधर्वहूका मुनिनायक भूषण हूआ कल्पपर्यंत वहां रहा, जब प्रलय होने लगा, तब सब लोक पूर्व भस्म हो गये, जैसे अग्निविषे पतंग भस्म होते है, तब तेरा पुत्र निराधार निराकार वासना करिकै आकाशमार्गविषे भ्रमता रहा, जैसे आलयविना पक्षी रहता है, तैसे रहा, जब ब्रह्माकी रात्रि व्यतीत भई, तब सृष्टिकी रचना बनी, तब वह सत्युगविषे ब्राह्मणका बालक वसुदेव नाम गंगाके तटपर तप करता हैं, आठ सौ वर्ष तिसको तप करते बीते है, तू भी ज्ञानदृष्टिकरि देखैगा तौ सबही वृत्तांत उसका तुझको भास आवैगा, तातें देख कि, इसीप्रकार है, अथवा किसी और प्रकार है ? ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कालवाक्य वर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

संसारावर्त्तवर्णनम्।

॥ काल उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! महातरंग उछलते है, अरु झनकार शब्द होते हैं, ऐसी गंगाके तटपर तेरा पुत्र तप करता है, शिरपर बडी जटा हैं, सर्व इंद्रियके भ्रमको तिसने जीता है, जो तुमको इसके मनका विस्तार देखनेकी इच्छा है, तौ इन नेत्रनको मूँदिकरि ज्ञानके नेत्रनसों देखो ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार जगत्के ईश्वर कालने कहा, कैसा काल है ? कि जिसकी समदृष्टि है तब मुनीश्वर चितवता भया, इन नेत्रनको मूँदिकरि ज्ञाननेत्रसे देखा; एक मुहूर्त्तविषे अपने पुत्रका सब वृत्तांत देखता भया, जैसे कोऊ अपनी बुद्धिविषे प्रतिबिंबको देखै, तैसे देखिकै बहुरि मंदराचल पर्वतपर जो भृगुशरीर था, तिसविषे प्रवेश किया, अतवाइक शरीरकरि अरु अपने अग्रभागविषे काल भगवान्को देखता भया, पुत्रको गंगाके तटपर देखा, आश्चर्यको प्राप्त हुआ, तब विकारदृष्टिको त्यागिकरि निर्मल दृष्टिसे वीतराग मुनीश्वर वचन कहत भया ॥

भृगुरुवाच ॥ हे भगवन् ! तीनहूं कालके ज्ञाता ईश्वर ! हम बालक हैं, इसीते निर्दोष है, तुमसरीखे बुद्धिवान् हैं, तीन काल अमलदर्शी हैं ॥ हे भगवन् ! ईश्वरकी माया महाआश्चर्यरूप है, जीवनको अनेक भ्रमदिखावती है, बुद्धिमान्को भी मोह करती है, मूर्खनकी क्या बात है ? तुम सब कछु जानते हो, जीवनकी वार्त्ता सब तुम्हारे अंतर्गत हैं, जीवको मनकी वृत्ति हैं, तिसके अनुसार भ्रमते हैं, सो मनकी वृत्ति सब तुम्हारे अंतर्गत फुरती हैं, इन सबनहूके तुम वेत्ता हो, जैसे इन्द्रजाली अपनी बाजीका वेत्ता होता है ॥ हे भगवन् ! मैं जो भ्रमको प्राप्त होकरि क्रोध किया, सो इस कारणते कि, मेरे पुत्रका मृत्यु न था, चिरजीवी था, अरु तिसको मैं मृतक हुआ देखिकै भ्रमको प्राप्त भया, अरु हमारा जो क्रोध है, सो आपदाका कारण नहीं काहेते कि, मैं पुत्रका शरीर निर्जीव देखा, तब कहा कि, अकालमें मृतक हुआ है, इस कारणते क्रोध हुआ, सो क्रोध भी नीतिरूप है, अर्थ यह कि जो क्रोधका स्थान होवै, तहां क्रोध रहता है, मैं संसारकी गति विचारिकै क्रोध नहीं किया, अर्थ यह कि, पुत्रकी अवस्था देखिकै क्रोध नहीं किया, निर्जीव शरीरको देखिकरि क्रोध किया है, इसीते यह क्रोध आपदाका कारण नहीं, अयुक्ति कारणकरि जो क्रोध है सो आपदाका कारण है, युक्तिकरि जो क्रोध है, सो संपदाका कारण है, यह कर्तव्य संसारकी सत्ताविषे स्थित है, यह नीति है, जबलग जीव है, तबलग जगत्क्रम है, जैसे जबलग अग्नि है, तबलग उष्णता भी है, तैसे जो कर्तव्य है, सो करना है, जो त्यागने योग्य है, सो त्यागना है, यह नीति जगत्विषे स्थित है, जो हेयोपादेय नहीं जानता तिसको त्यागना योग्य है, ताते मैं पुत्रका अकालमृत्यु देखिकै क्रोध किया था, परन्तु विचारकरिकै जब तुमने स्मरण कराया, तब मैं विचारकरि देखा कि, मेरा पुत्र अनेक भ्रमको पाता अब गंगाके तटपर तप करता है ॥ हे भगवन् ! तुम जो कहा जीवनके दो दो शरीर हैं, एक मनोमय दूसरा अधिभूतक अरु मैं तो यह मानता हौं कि, शरीर एक मनही है, दूसरा कोऊ नहीं, मनहीकरि किया सफल होता है, शरीरका नहीं होता ॥ काल उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तुमने यथार्थ कहा है, शरीर

एक मनही है, स्थूल देह मनकारि रचा है, जैसे घटको कुलाल रचता है; तैसे मन देहको रचता है, जो मन शरीरते रहित निराकार होता है, क्षण-विषे आकारको रचि लेता है, जैसे वालक परछाईविषे वेतालको रचता है, भ्रमकारिके मनविषे जो फुरणसत्ता है, स्वप्नभ्रम तिसकारि दिखाता है, बडे आकार अरु गधर्वनगर भासि आते है, सो मनहीकी सत्ता है स्थूल दृष्टिकारि जीवको दो शरीर भासते हैं, बोधवान्को तीनों जगत् मनरूप भासते हैं सब मनकारि रचे हैं, जब भेदवासना होती है, तब असत्‌रूप जगत नानाप्रकार हो भासता है, जैसे असम्यक् दृष्टिकारि दो चंद्रमा भासते हैं, सम्यक्‌दर्शीको एक चंद्रमावत् सब शातरूप आत्माही भासता है, भेद भावनाकारि घट पट आदिक अनेक पदार्थ भासते है कि, मै दुर्वल हौ, मोटा हौ सुखी हौं दु·खी हौ, यह जगत् है, यह कालहै, इत्यादि अनेक भ्रमको देखता है, सो ससार वासनामात्र है, जब मन शरीरकी वासनाको त्यागिकारि परमार्थकी ओर आवता है, तब भ्रमको प्राप्त होता है ॥ *हे मुनीश्वर !* समुद्रते तरंग उठिकारि ऊर्ध्वको जाता है, जो वह [illegible] मै तरगहू तो मूर्ख है, यही अज्ञानदृष्टि [illegible] ऊर्ध्वको गया हौं, नीचे जावैग[illegible] मै [illegible] यह कल्पना अज्ञान है, वास्त[illegible] होय, अथवा ऊर्ध्व होय, परतु [illegible] परिच्छिन्न देहादिकविषे [illegible] है, सम्यक्‌दर्शी सब आत्मरूप [illegible] द्रके तरंग हैं, अज्ञानकारि भिन्न [illegible] रूपी समुद्र सम है स्वच्छ है, [illegible] विस्तृतरूप अपने महिमाविषे [illegible] जलविषे स्थित है, और तटके ऊपर [illegible] आग्निका प्रतिविंव [illegible] सो जैसे भ्रमकारि [illegible] जगत् दु·खदायक [illegible] विवित भासते है, अरु

गत्को जीव नानारूप मानते हैं, जैसे एक समुद्रविषे नाना तरंग भासते हैं, तैसे आत्माविषे अनेक आकार जगत भासता है, वास्तवते त कछु नहीं, सर्वशक्तिरूप ब्रह्मसत्ता है, तिसकरि विचित्ररूप चचल भासता है, तौ भी एकरूप है, अपने आपविषे स्थित है, ब्रह्मविषे जगत् फुरता है बहुरि तिसीविषे लीन होता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, बहुरि तेसविषे लीन होते हैं, और भेद कछु नहीं, पूर्णविषे पूर्णही स्थित है, जैसे जलते तरग भिन्न नहीं, तैसे ईश्वरते जगत् भिन्न नहीं, जैसे पत्र, डार, फूल, फल, वृक्षरूप हैं, तैसे सब जगत् आत्मरूप है, सो आत्मा अनेक शक्तिरूप है, जैसे एक पुरुष अनेक कर्मका कर्त्ता होता है, जैसा कर्म करता है, तैसे सगको पाता है, पाठ करनेते पाठक कहाता है, पाक करनेते पाचक कहाता है जापक, तापक आदि अनेक नामको धारता है, तैसे एक आत्मा अनेक शक्तिको धारता है, जैसे एक परछाया जिस आकारका पड़ता है, तैसा आकार भासता है, जैसे एक मेघविषे अनेक रंगसहित इन्द्रधनुष भासता है, तैसे यह अनेक भ्रमको पावता है ॥ हे साधो ! जगत् ब्रह्मते फुरे हैं, जड भासते हैं, सोभी चैतन्यसत्ताते फुरे हैं, जैसे ववोदा अपने मुखसों ततु निकासिकरि आपहीको ग्रास लेता है, तैसे चैतन्यते जड उत्पन्न होते हैं, बहुरि लीन हो जाते हैं, चैतन्यजीनते सुषुप्ति जड़ता उपजती है, बहुरि तिसीविषे निवृत्त होती है, ताते अपनी इच्छाकरि यह पुरुष बधमान होता है, अरु अपनी इच्छाकरि मुक्त होता है, जब बहिर्मुख देहादिक अभिमानकेसाथ मिलता है, तब आपको बंधमान करता है, जैसे घुरान आपही गृह रचिके बंधमान होती है, अरु जो पुरुषार्थकरिकै अतर्मुख होता है, तब मुक्तिको पाता है, जैसे अपने हाथके बलकरि बधनको तोड़िके कोऊ बली निकसि जाता है ॥ हे साधो ! ईश्वरकी विचित्ररूप शक्ति है, जैसी शक्ति फुरती है, तैसा रूप दिखावती है, जैसे ओस आकाशविषे उपजती है, तिसीको आच्छादि लेती है, तैसे आत्माविषे जो इच्छाशक्ति उपजती है, सोई आवरणकरि लेती है, तन्मयरूप हो जाती है, अरु वास्तवते इनको बधनते बधन नहीं, मोक्षसों मोक्ष नहीं; बध अरु मोक्ष दोनों शब्द भ्रांतिमात्र हैं, मैं जानता नहीं कि,

वंध अरु मोक्ष लोकविषे कहांते आये है, आत्माको न वंधन है, न मोक्ष है, ऐसे सत्रूपको असत्य रूपने ग्रसा है, जो कहता है, मैं दुःखी हौ, सुखी हौं, दुवला हौ मोटा हौ इत्यादिक भ्रमनको देखता है, माया महाआश्चर्यरूप है, जिसने जगत्‌को मोहित किया है॥ हे मुनीश्वर! जब चित्त सवित् कलनारूप होताहै,अर्थ यह कि,जब दृश्यके साथ मिलिकै फुरणारूप होता है, तब घुरानकी नाईं आपही आपको वंधन करता है, अरु जब दृश्यते रहित अंतर्मुख होता है, तव शुद्ध मोक्षरूप भासता है, वंध अरु मुक्ति दोनों मनकी शक्ति है, जैसा जैसा मन फुरता है, तैसा तैसा रूप भासता है, सो अनेक शक्ति आत्मासाथ अनन्यरूप है, सब आत्माते उपजी हैं, अरु आत्माविषे स्थित है, तिसविषे भिन्न होइकरि भासती है, तिसविषे लीन होती है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तिसविषे स्थित होकारि लीन हो जाते है, जैसे चद्रमाते किरणै उदय होइकरि भिन्न भासती है, वहुरि तिसीविषे लीन होती है, तैसे परमात्मरूपी महासमुद्र है, चेतनारूपी तिसविषे जल है, तिसते जीवरूपी अनेक तरग उपजते हैं, तिसविषे स्थित है, वहुरि लीन हो जाते हैं, कोऊ तरंग ब्रह्मरूप, कोऊ विष्णुरूप, कोऊ रुद्ररूप होइकारि प्रकाशते हैं, जिस ते उपजे है, तिसी स्वभावविषे स्थित होते हैं, प्रमादते रहित कोऊ लहरी यम, कोऊ कुवेर, कोऊ इंद्र, कोऊ सूर्य, कोऊ अग्नि, कोऊ मनुष्य, कोऊ देवता, कोऊ गंधर्व, कोऊ विद्याधर, यक्ष, किन्नर आदिक रूप होइकरि उपजते है, वहुरि लीन हो जाते है, कोऊ स्थित होइकरि चिरकालपर्यंत रहते हैं, जैसे ब्रह्मादिक हैं, कोऊ उपजिकरि कछु काल रहिकरि विध्वंस हो जाते हैं, सो देवता मनुष्य आदिक हैं, अरु कोऊ कीट सर्प आदिक फुरते हैं, चिरकाल भी रहते हैं, अल्पकालविषे नष्ट हो जातेहैं, आत्मसमुद्रते तरंगवत् फुरते हैं, वहुरि तिसविषे लीन हो जाते है, कोऊ ब्रह्मादिक उपजिकरि अप्रमादी रहता है, कोऊ प्रमादी हो जाता है, तुच्छशरीर होते है, यह संसार स्वप्न आरंभहै, अरु दृढ होकरि भासताहै, कोऊ कैसे कोऊ कैसे रूपकरि स्थित है, स्वरूपके प्रमादकरि दीनताको प्राप्त होताहै, ऐसे मानते हैं, मैं दुःखी हौं, मैं कृश हौं इत्यादिक भ्रमको मूढताकरि देखते हैं

सो सब आत्मरूपके तरंग बडे फुरते हैं, कोऊ जंगमरूप, कोऊ स्थावररूप, मनुष्य, देवता, दैत्य, तिर्यक्, पशु पक्षी सब आत्मसमुद्रकी लहरी हैं, उपाजिकरि बहुरि लीन हो जाते हैं॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारा वर्त्तवर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥

द्वादशः सर्गः १२.

उत्पत्तिविस्तारवर्णनम् ।

काल उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक जो आकार हैं, सो ब्रह्मसाथ अभिन्नरूप हैं, यह सत् है, जब मिथ्या सकल्पकेसाथ जीव कलंकित होता है, तब जानता है कि, मैं ब्रह्म नहीं, इस निश्चयको पायके मोहित होता है, मोहित हुआ अध को चला जाता है, यद्यपि ब्रह्मसाथ अभिन्नरूप है, अरु तिसविषे स्थित है, तौ भी भावनाके वशते आपको भिन्न जानिके मोहको प्राप्त होता है, शुद्ध ब्रह्मविषे संवितका उल्लेख होता है, सो कलंकितरूप कर्मका बीज होता है, तिसते आगे विस्तारको पाता है, जैसे जल जिस जिस बीजकेसाथ मिलता है, तिसी तिसी रसको प्राप्त होताहै,तैसे संवित्का फुरना जैसे कर्मसाथ मिलताहै,तैसी गतिको प्राप्त होता है, संकल्पकारि कलंकितहुआ अनेक दुःख पाता है, यह प्रमादरूप कर्म कैसाहै,जैसे करजुएका बीज है,तिसको मुष्टी भरि भरि बोताहै,सो अपने दुःखका कारणहै,यह जगत् आत्मरूप समुद्रकी लहरियांहैं, विस्तारकरि फुरतीहैं, कोऊ ऊर्ध्वको जातीहैं, कोऊ अधःको जातीहैं, बहुरि लीन हो जाती हैं, ब्रह्मा आदि तृणपर्यंत इन सबनका यही धर्म है, जैसे पवनका स्पंद धर्म है, तैसे इनका भीहै, तिनविषे कई निर्मल पूजने योग्य हैं, सो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक हैं, कईक कछुक मोहमयुक्त हैं, जैसे देवता, मनुष्य, सर्प हैं, कईक अनंत मोहविषे स्थित हैं, जैसे पर्वत वृक्ष आदिक हैं, कईक अज्ञानकारिके मूढ हैं, सो कृमि कीट आदिक योनिको प्राप्त हुए हैं, यह दूरते दूर चले गये हैं, जैसे जलके प्रवाहकरि तृण चला जाता है, देवता, मनुष्य, सर्प आदि कईक भगवान् भी होते

बंध अरु मोक्ष लोकविषे कहते आये हैं, आत्माको न बंधन है, न मोक्ष है, ऐसे सतरूपको असत्य रूपने ग्रसा है, जो कहता है, मैं दुःखी हौं, सुखी हौं, दुबला हौं मोटा हौं इत्यादिक भ्रमनको देखता है, माया महा-आश्चर्यरूप है, जिसने जगतको मोहित किया है॥ हे मुनीश्वर! जब चित्त संवित् कलनारूप होताहै, अर्थ यह कि, जब दृश्यके साथ मिलिकै फुरणारूप होता है, तब घुरानकी नाईं आपही आपको बंधन करता है, अरु जब दृश्यते रहित अंतर्मुख होता है, तब शुद्ध मोक्षरूप भासता है, बंध अरु मुक्ति दोनों मनकी शक्ति है, जैसा जैसा मन फुरता है, तैसा तैसा रूप भासता है, सो अनेक शक्ति आत्मासाथ अनन्यरूप हैं, सब आत्माते उपजी हैं, अरु आत्माविषे स्थित हैं, तिसविषे भिन्न होइकरि भासती हैं, तिसविषे लीन होती हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तिसविषे स्थित होकरि लीन हो जाते हैं, जैसे चंद्रमाते किरणैं उदय होइकरि भिन्न भासती हैं, बहुरि तिसीविषे लीन होती हैं, तैसे परमात्मरूपी महासमुद्र है, चेतनारूपी तिसविषे जल है, तिसते जीवरूपी अनेक तरंग उपजते हैं, तिसविषे स्थित हैं, बहुरि लीन हो जाते हैं, कोऊ तरंग ब्रह्मरूप, कोऊ विष्णुरूप, कोऊ रुद्ररूप होइकरि प्रकाशते हैं, जिस ते उपजे हैं, तिसी स्वभावविषे स्थित होते हैं, प्रमादते रहित कोऊ लहरी यम, कोऊ कुबेर, कोऊ इंद्र, कोऊ सूर्य, कोऊ अग्नि, कोऊ मनुष्य, कोऊ देवता, कोऊ गंधर्व, कोऊ विद्याधर, यक्ष, किन्नर आदिक रूप होइकरि उपजते हैं, बहुरि लीन हो जाते हैं, कोऊ स्थित होइकरि चिरकालपर्यंत रहते हैं, जैसे ब्रह्मादिक हैं, कोऊ उपजिकरि कछु काल रहिकरि विध्वंस हो जाते हैं, सो देवता मनुष्य आदिक हैं, अरु कोऊ कीट सर्प आदिक फुरते हैं, चिरकाल भी रहते हैं, अल्पकालविषे नष्ट हो जाते हैं, आत्मसमुद्रते तरंगवत् फुरते हैं, बहुरि तिसविषे लीन हो जाते हैं, कोऊ ब्रह्मादिक उपजिकरि अप्रमादी रहता है, कोऊ प्रमादी हो जाता है, तुच्छशरीर होते यह संसार स्वप्न आरंभहै, अरु दृढ होकरि भासताहै, कोऊ कैसे कोऊ [illegible]कारि स्थित है, स्वरूपके प्रमादकरि दीनताको प्राप्त होताहै, ऐसे [illegible], मैं दुःखी हौं, मैं कृश हौं इत्यादिक भ्रमको मूढताकरि देखते हैं

सो सब आत्मरूपके तरंग बडे फुरते हैं, कोऊ जंगमरूप, कोऊ स्थावर-रूप, मनुष्य, देवता, दैत्य, तिर्यक्, पशु पक्षी सब आत्मसमुद्रकी लहरी हैं, उपाजिकारि बहुरि लीन हो जाते हैं॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारावर्त्तवर्णन नाम एकादशः सर्गः ॥

द्वादशः सर्गः १२.

उत्पत्तिविस्तारवर्णनम् ।

काल उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक जो आकार हैं, सो ब्रह्मसाथ अभिन्नरूप हैं, यह सत् है, जब मिथ्या सकल्पकेसाथ जीव कलंकित होता है, तब जानता है कि, मैं ब्रह्म नहीं, इस निश्चयको पायके मोहित होता है, मोहित हुआ अधःको चला जाता है, यद्यपि ब्रह्मसाथ अभिन्नरूप है, अरु तिसविषे स्थित है, तो भी भावनाके वशते आपको भिन्न जानिके मोहको प्राप्त होता है, शुद्ध ब्रह्मविषे संवित्का उल्लेख होता है, सो कलंकितरूप कर्मका बीज होता है, तिसते आगे विस्तारको पाता है, जैसे जल जिस जिस बीजकेसाथ मिलता है, तिसी तिसी रसको प्राप्त होताहै,तैसे संवित्का फुरना जैसे कर्मसाथ मिलताहै,तैसी गतिको प्राप्त होता है, सकल्पकरि कलंकितहुआ अनेक दुःख पाता है, यह प्रमादरूप कर्म कैसाहै,जैसे करञ्जुएका बीज है,तिसको मुष्टी भरि भरि बोताहै,सो अपने दुःखका कारणहै,यह जगत् आत्मरूप समुद्रकी लहरियांहैं, विस्तारकारि फुरतीहैं; कोऊ ऊर्ध्वको जातीहैं, कोऊ अधःको जातीहैं, बहुरि लीन हो जाती हैं, ब्रह्मा आदि तृणपर्यंत इन सबनका यही धर्म है, जैसे पवनका स्पंद धर्म है, तैसे इनका भीहै, तिनविषे कई निर्मल पूजने योग्य हैं, सो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक हैं, कईक कछुक मोहसंयुक्त हैं, जैसे देवता, मनुष्य, सर्प हैं, कईक अनंत मोहविषे स्थित हैं, जैसे पर्वत वृक्ष आदिक हैं, कईक अज्ञानकरिके मूढ हैं, सो कृमि कीट आदिक योनिको प्राप्त हुए हैं, यह दूरते दूर चले गये हैं, जैसे जलके प्रमादकरि तृण चला जाता है, देवता, मनुष्य, सर्प आदि कईक भ्रमवान् भी होते

है, कईक तटके निकट आयके वहुरि वहि जाते हैं, अर्थ यह जो सत्सग अरु सच्छास्त्रोको पायके वहुरि मायाके व्यवहारमें वहै जाते है, यमरूप जो ग्राह है, सो तिनको पड़ा काटता है, एक अल्प मोहको प्राप्त होकरि वहुरि ब्रह्मसमुद्रविषे लीन भये है, अरु कईक अतर्गत ब्रह्मसमुद्रको जानिकै स्थित हुए है, तम अज्ञानको तरे है, कईक अनेक कोटि जन्मकरि प्राप्त होते हैं, कई अध-ते ऊर्ध्वको चले जाते है, वहुरि ऊर्ध्वते अधःचले जाते है, प्रमादकरि अनेकयोनि दुःखहूंको पड़े भोगते है, जव आत्मज्ञान होता है, तव आपदाते छूटिकै शातिवान् होते है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे उत्पत्तिविस्तारणं नाम द्वादश' सर्ग' ॥ १२॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

भृग्वाश्वासनवर्णनम् ।

काल उवाच ॥ हे साधो ! यह जेता कछु जगत् भूतजात विस्तार है, सो सव आत्मरूप समुद्रके तरंग हैं, एकही अनेक विचित्र विस्तारको प्राप्त भया है, जैसे वसंतऋतुविषे एकही रस अनेक प्रकारके फूलफलको धरता है, तसे इस जीवनविषे जिनने मनको जीतिकरि सर्वात्मा ब्रह्मका दर्शन किया है, सो जीवन्मुक्त हुए हैं, और मनुष्य, देवता, यक्ष, किन्नर, गंधर्व आदिक सव पड़े भ्रमते है, इनते इतर भी स्थावर मूढ अवस्थाविषे हैं, तिनकी क्या वात करनी है,लोकविषे तीन प्रकारके जीव है, एक अज्ञानी महामूढ है, दूसरे जिज्ञासी है, तीसरे ज्ञानवान् है, जो मूढ है, तिनको शास्त्रके श्रवण अरु विचारविषे कछु रुचि नहीं, अरु जो जिज्ञासी है, तिनके निमित्त ज्ञानवान्ने शास्त्र रचे हैं, जिस जिस मार्गकरि [illegible] प्रबुद्ध आत्मा हुए है, तिस तिस प्रकारके तिनने शास्त्र रचे है, तिस [illegible]करि अपर जीव भी मोक्षभागी होते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! सच्छास्त्र जो ज्ञानवान्ने किये है, सो जव नि पाप पुरुष तिनको विचारता है, तव उसको निर्मल वोध उपजता है, तिसकरि मोह निवृत्त होता है, जव विमलबुद्धि होती है, तव सच्छास्त्रके अभ्यासकरि मोह नष्ट होता है, जैसे

सूर्यके प्रकाशकरि तम नष्ट हो जाता है, अरु जो मूढ अज्ञानी हैं, सो आत्माके प्रमादकरि विषयकी तृष्णाते मोहको प्राप्त होते हैं, जैसे अंधेरी रात्रि होवै, अरु ऊपरते कुहिड भी होवै, तब तमते तम होता है, तैसे मूढ मोहते मोहको प्राप्त होते हैं, अपने सकल्पकरि आपही दुःखी होते हैं जैसे बालक अपने परछायेविषे वेताल कल्पिकरि आपही दुःखी होता है, ताते जेते कछु भूतजात हैं, तिन सबको सुखदुखका कारण मनरूपी शरीर है, जैसे वह फुरता है, तैसी गतिको प्राप्त होता है, मासमय शरीरका किया कछु सफल नहीं होता, असत् मांस आदिकका मिला हुआ जो आधिभौतिक शरीर है, सो मनके सकल्पकरि रचा है, सो वास्तव कछु नहीं, संकल्पकी दृढताते आधिभौतिक भासने लगा है, स्वप्नशरीरकी नाई है, मनरूपी शरीरकरि जो तेरे पुत्रने किया है तिसी गतिको प्राप्त भया है, इसमें हमारा कछु अपराध नहीं है ॥ हे मुनीश्वर ! अपनी वासनाके अनुसार जैसा कोऊ कर्म करता है, तैसे फलको प्राप्त होता है, मांस शरीरमें कछु नहीं होता, जैसे जैसे तीव्र भावनाकरि तेरे पुत्रका मन फुरता गया है, तैसी तैसी गतिको पाता भया है, स्वर्ग नरक सबका भोक्ता भया है, अपने मनके मोहकरि सब देखा है, बहुत कहनेकरि क्या है, उठहु, अब तहांही चलिये, जहां वह ब्राह्मणका पुत्र होकरि तप करने लगा है, गंगाके तटपर तहां उसको देखें ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ हे भारद्वाज ! इसप्रकार जब काल भगवान्‌ने कहा, तब दोनों जगत्‌की गतिको हँसत उठि खडे हुए, हाथमें हाथ पकडिके कहते भये, बड़ा आश्चर्य है, ईश्वरकी नीति आश्चर्यरूप है, जीवको बड़े भ्रमको प्राप्त करती है, जैसे उदयाचल पर्वतते सूर्य उदय होता है, अरु आकाशमार्गविषे चलता है, तैसे प्रकाशकी निधि उदार आत्मा दोनों चले, इसप्रकार वसिष्ठजीने रामजीको कहा, तब सूर्य अस्त हुआ, सर्व सभा स्नानको गई, दिन हुए बहुरि अपनेअपने आसनपर आनि स्थित भये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भृग्वाश्वासनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

हे प्रभो ! मै तुम्हारे दर्शनकरि शांतिको प्राप्त भया हौ, तुम सूर्य अरु चंद्रमा इकट्ठे मेरे आश्रम आये हौ, जो शास्त्रहू अरु तपकरिकै भी मोह निवृत्त होना कठिनहै, सो तुम्हारे दर्शनकरि मेरे मनका मोह नष्ट भया है ॥ हे साधो ! ऐसा सुख ऐश्वर्यकरि नहीं प्राप्त होता, अरु अमृतकी वर्षाकरि भी ऐसा सुख नही प्राप्त होता, जैसा सुख महापुरुषके दर्शनकरि होता है, तुम्हारे दर्शनकरि हमारा मोह नष्ट भया है, तुम ज्ञानके सूर्य अरु चद्रमा हो ॥ हे ऋषीश्वरो ! तुमने हमारा स्थान पवित्र किया है में शांतात्मा हुआ हौं, तुम कौन हो ? जो प्रकाशरूप उदार आत्मा मेरे इस स्थानपर आये हो ? जब इसप्रकार जन्मातरके पुत्रने भृगुजीको कहा तब भृगुजीने कहा ॥ हे साधो ! तू आपको स्मरण कर कि, कौन है, अज्ञानी तो नही, तू प्रबोध आतमा है, जब इसप्रकार भृगुजीने कहा, तब नेत्र मूदिकारि वही ध्यानविपे जुडि गया, एक मुहूर्तविपे अपना सब वृत्तांत देखिके नेत्र खोले, अरु विस्मय होकारि कहत भया कि, ईश्वरकी गति विचित्ररूप है, इसके वश हुआ मैं वडे भ्रमको प्राप्त हुआ हौं, जगतूरूपके चक्रपर आरूढ हुआ अनत जन्मविपे भ्रमा हौं, तिन सबनको स्मरण करिके आश्चर्यमान् होता हौं कि, मैं बहुत दुःख भोगे हैं, अरु अनेक अवस्था भोगी हैं, स्वर्गविपे रहा हौं, मंदराचल कल्पवृक्षके नीचेरहा हौं. सुमेरु कैलास आदिक वनकुंजविपे रहा हौं, अनेक स्थानविपे ऐसा पदार्थ पावनेका नहीं, जो मै नहीं पाया? ऐसा कोऊ कार्य नहीं, जो मैने नहीं किया, ऐसा कोई इष्ट अनिष्ट नरक स्वर्ग पदार्थ नहीं, जो मैने नहीं देखा अब जो कछु जानने योग्य है, सो पाया हौं, अब मैं आत्मतत्त्वविपे विश्रामवान् भया हौं, सकल्पभ्रम मेरा नष्ट हो गया है, अब चलिये मेरा शरीर जहाँ मंदराचल पर्वतपर पड़ा है ॥ हे भगवन् ! अब मुझको इच्छा कछु नहीं है, हेयोपादेय मुझको कछु रहा नहीं तथापि नीतिकी रचना देखिके कहता हौं, जो बोधवान् है सो प्रकृत आचारविपे विचरते है, आगे जैसे इच्छा होवे तैसे करिये, बोधवान् उसी आचारको अगीकार करते हैं, ताते अपने अपने प्रकृत आचारको ग्रहण करिके व्यवहारविपे विचरै ॥ इति श्रीयो० स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मातरवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥

पंचदशः सर्गः १५.

शुक्रकाप्रथमजीवन वर्णनम् ।

वसिष्ट उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचारकरिके तीनों आकाशमार्गको चले, शीघ्रही मेघमडलको उल्लंघिके सिद्धके मार्गसों मदराचल पर्वतपर स्वर्णकी कदराविपे आय स्थित भए, तब पूर्व जो शुक्रका शरीर था तिसको देखते भए, अरु ब्राह्मण तपस्वीने कहा ॥ हे तात ! मेरा पूर्व शरीर देखौ, जो तुमने बहुत पालन किया था, कपूर सुगधिकरि शोभित किया था, फूलकी शय्या पर शयन करता था, सो अब माटीविपे लपटा पडा है, अरु सूख गया है, जिस शरीरको देवस्त्रियां देखिके मोहित होती थीं, अरु मुक्तामाला कठविपे शोभती थीं, मानौ तारेकी पंक्ति है, सो शरीर अब पृथ्वीपर गिर पड़ा है, नदनवनविपे इसने अनेक भोग भोगे है, आत्मरूप जानिके इसको मैं पुष्ट करता था, सो अब मुझको भयानक भासता है, जो शरीर देवागनोंकेसाथ मिलता था, अरु रागवान् होता था, तिनकी चितातै सूख गया है, जिन जिन विलासको चाहता था, तिनको करता था, अब तौ चितातै रहित स्थित हो रहा है, महाअभागी हुआ धूपकरिके सूख गया है, महाविकराल भयानक जैसा भासता है, जिसको मै आत्मरूप जानता था, जिसविपे अहंकारिके विलास करता था, जिस शरीरविपे फूल कमल पडते थे, अरु तारागण प्रकाशते थे, तिसविपे कीडियां फिरती हैं; जो शरीर द्रवत् स्वर्णवत् सुदर प्रकाशरूप था, सो धूपकरि सूखा भयानक भासता है, सब गुण इसको छोडि गये है, मानो विरक्त आत्मा भया है, विपयते मुक्त निर्विकल्प समाधिविपे स्थित भया है ॥ हे शरीर ! तू अदृष्ट तनुको प्राप्त भया है, अब तेरेविपे क्षोभ कोऊ नहीं चित्तरूपी वैताल तेरेविपे शांत हो गया है, आनेजानेते रहित विश्रामवान् हुआ है, सब कल्पना तेरी नष्ट भई है, सकलपजाल मिट गया है, सुखसे सोया है, चित्तरूप मर्कटते रहित शरीररूप वृक्ष ठहरि गया है, हलनेते रहित

भया है सब अनर्थते रहित महाड्की नाई अचल भया है, यह देह अब सर्व दुःखते रहित परमानदविषे स्थित भया है ॥ हे साधो ! सब अनर्थका कारण चित्त है, जबलग चित्त शांतिमान् नहीं होता, तबलग जीवको आनद प्राप्त नहीं होता, जब अमनशक्तिपदको प्राप्त होते है, तब महा आधि व्याधि जगत्के दु:खको तर विगत जो परमानद तिसको प्राप्त होता है राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्मके वेत्ता, भृगुका जो पुत्र था, तिसने तौ अनेक शरीर धारे थे, अरु बहुरि बहुरि भोग भोगे थे, अरु भृगुते जो शरीर उत्पन्न भया था, तिसको बहुत परिदेवना करी, अरु औरका चिंतवना न किया सो क्या कारण है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुक्रकी जो सवेदनकलना थी, सो जीवभावको प्राप्त भई थी सो कर्मात्मक होइकरि भृगुते उपजी थी, सो सुन, आदि जो परमात्मतत्त्वते चित्कला फुरी है, सो भूताकाशको प्राप्त भई है, वही वात कलाविषे स्थित होइकरि पान अपानके मार्गसों भृगुके हृदयविषे प्रवेश करती भई वीर्यके स्थानको प्राप्त होइकरि गर्भमार्गसों उत्पन्न भई, क्रमकरिके बड़ी हुइ; विद्या अरु गुणसपन्न शुक्रशरीर होत भया, तिसको जो चिरकाल सेवन किया था, तिस कारणते उसको परिदेवना करी, यद्यपि वीतराग अरु निरिच्छित था, तौ भी जो चिरकालका अभ्यास किया था, सोई फुरि आया ॥ हे रामजी ! ज्ञानी होवै, अथवा अज्ञानी होवै, व्यवहार दोनोंका तुल्य होता है, परतु शक्ति अशक्तिका भेद है, ज्ञानवान् असंसक्त निर्लेप रहता है, अज्ञानी क्रियाविषे बधमान् होता है, ज्ञानवान् मोक्षरूप है, अरु अज्ञानी दरिद्री है, जैसे वनविषे जालमें पक्षी फँसता है, तैसे अज्ञानी लोक व्यवहारविषे बंधमान् होता है, व्यवहार जैसे ज्ञानी करता है, तैसे अज्ञानी करता है, वासनारहित सो निर्बंध है, वासनासहित बंध है, वासना मात्र भेद है, जबलग शरीर है, तबलग सुखदु:ख भी होता है, परतु ज्ञानवान् दोनोंविषे शांतबुद्धि रहता है, अज्ञानी हर्षशोककरि तपायमान होता है, जैसे स्तंभका प्रतिबिंब जलविषे पडता है, सो जलके हिलनेकरि हिलता भासता है, परतु स्वरूपते स्थितही है, तैसे अज्ञानविषे सुखदु:खकरि सुखी दु:खी भासता है, परंतु स्वरूप ज्योंका त्यों

है, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलके हिलनेकरि हिलता भासता है, परतु स्वरूपते ज्योंका त्यों है, तैसे ज्ञानवान् इंद्रियकरि सुखी दुःखी भासता है, स्वरूपते ज्योंका त्यों है, अरु अज्ञानी बाह्यते क्रियाका त्याग करता है, तौ भी बंध रहता है, ज्ञानवान् क्रिया करता है, तौ भी मोक्षरूप है, अंतःकरण इंद्रियकरि जो अनात्मधर्मोंविषे बंधमान है, बाह्य कर्म इंद्रियकरि मुक्ति है, तौ भी बंधनमें है अरु अंतःकरणकरि मुक्ति है, कर्म इंद्रियकरि बंधन भासता है, तौ भी मुक्तिरूप है, जो सब क्रीडाको त्यागि बैठा है, अरु अंतर जगत्की सत्यता है, भावै कछु करै, भावै न करै, तौ भी वह बंधनमें है, अरु बाह्य भावै तैसा व्यवहार करै, अंतरते अद्वैत ज्ञान है, तौ वह मुक्तिरूप है, तिसको कर्म बंधन नहीं करता, ताते हे रामजी! सब कार्य करौ, अरु अंतरते शून्य रहौ, सर्व ईषणाते रहित आत्मपदविषे स्थित होहु, अपने प्रकृति व्यवहारको करौ यह संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे आधिव्याधिरूपी गढेले है, अहममतारूपी गर्त है, तिसविषे जो गिरा है, सो ऊर्ध्वते अधःको जाता है, ताते संसारके भावविषे मत स्थित होहु, शुद्ध बुद्धि आत्मस्वभावविषे स्थित होहु, ब्रह्म है, शुद्ध है, सर्वात्मा है, निर्विकार निराकार आत्मपदविषे जो स्थित है, तिसको नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे शुक्रप्रथमजीवन नाम पंचदश सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६

भार्गवजन्मांतरवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार जब शुक्रने शरीरका वर्णन किया, अरु विकरालरूप देखिके उसविषे त्यागबुद्धि करी, तब काल भगवान् शुक्रके वचनको न मानिकै गंभीर वाणीसों बोलत भया ॥ काल उवाच ॥ हे शुक्र! तू इस तपरूपी शरीरका त्याग कर, अरु भृगुके पुत्रका जो शरीर है भार्गव, तिसको अंगीकार कर, जैसे राजा देशदेशांतरको भ्रमता अपने नगरविषे आता है, तैसे तू इस शरीरविषे प्रवेश कर

काहेते जो भार्गव तनुके साथ असुरका गुरु होना है, यह आदि परमात्माकी नीति है, महाकल्पपर्यंत तेरा आयुर्बल है, महाकल्पका अंत होवैगा, तब भार्गवतनु नष्ट होवैगा, तुझको बहुरि शरीरका ग्रहण न होवैगा, जैसे रस सूखेते पुष्प गिर पडता है, तैसे प्रारब्धवेगके पूर्ण हुएते तेरा शरीर गिर पड़ेगा, अरु शरीरके होते जीवन्मुक्तिपदको प्राप्त हुआ प्रकृत आचारविषे विचरैगा, ताते तू शुक्रशरीर था, दैत्यका महागुरु होकरि स्थित होहु, यह ईश्वरकी नीति है, ताते इस शरीरको त्यागिकरि भार्गवशरीरविषे प्रवेश करु, अब हम जाते हैं, तुम दोनोंका कल्याण होवै, तुम अपने वांछितको प्राप्त होवहु ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! काल भगवान् ऐसे कह दोनोंके ऊपर पुष्प डारे, अरु अंतर्धान हो गया, तब तपस्वी नीतिको विचारने लगा कि, क्या होना है ? विचारकरि देखा, जैसे काल भगवान्ने कहा, तैसेही होना है, ऐसे विचारकरि महाकृतरूप जो शरीर था तिसविषे प्रवेश किया, अरु तपस्वी ब्राह्मणका देह त्यागि दिया, जैसे वसंतऋतुविषे वल्लीमें रस प्रवेश करता है, तैसे भार्गवशरीरमें प्रवेश किया, जैसे सर्प कंचुकीको त्यागता है, तैसे तपस्वीशरीरका त्याग किया, तब उस शरीरकी शोभा जाती रही, कंप कंप पृथ्वीपर गिर पडा, जैसे मूलके काटेते वल्ली गिर पडती है, तैसा वह देह गिरा, अरु शुक्रदेह जीवकलासंयुक्त हो आया, तब भृगुजी जीवकलासंयुक्त देह कृश जैसा देखिकै उठि खड़े हुए, हाथविषे जलका कमंडलु लिया, अरु मंत्रविद्या जो पुष्टिशक्ति है, तिसको पाठ कर पुत्रके शरीर ऊपर जल डारा, तिसके पानेकरि शरीरकी नाडी सब पुष्ट हो गई, जैसे वसंतऋतुविषे कमलनी प्रफुल्लित होती है, तैसे शरीर प्रफुल्लित हो आया, श्वास आने लगे, तब पिताके सन्मुख होइकरि नमस्कार करत भया, जैसे मेघ जलसों पूर्ण होइकरि पर्वतके आगे नमता है, तैसे विधिसंयुक्त नमस्कार कर नमता भया, अरु स्नेहकरि नेत्रते जल चलने लगा, तब पुत्रको देखिकै भृगुजी कंठ लगाया कि, मेरा पुत्र है, ऐसे स्नेहकरि पूर्ण हो गया ॥ हे रामजी ! जबलग देह है, तबलग देहके धर्म फुरि आते हैं, इसप्रकार ज्ञानीको ममता स्नेह फुरि आई; तौ अपरकी क्या बात

कहनी है, पिता अरु पुत्र दोनों बैठि गये, एक मुहूर्तपर्यंत कथा वार्त्ता करते रहे, बहुरि उठिकरि तपस्वीशरीरको जलाया, जो बुद्धिमान् सो शास्त्राचारविषे स्थित होते हैं, तिसके अनंतर दोनों मंदराचल पर्वत-विषे स्थित भए तपकरिके प्रकाशित है वपु जिनका, अरु श्याम कांति है, जीवन्मुक्त उदार आत्मा होइकरि वहां रहते भये, समयकरिके शुक्रजी दैत्यका गुरु होवैगा, अरु भृगुजी समाधिविषे स्थित होवैगा, ताते जो सब विकारते रहित जीवन्मुक्त पुरुष जगत्गुरु है, सो सबको पूजने योग्यहै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मांतरवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७.

मनोराज्यसंमीलनवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जैसे भृगुके पुत्रको यह प्रतिभा फुरती गई, अरु सिद्ध होती गई तैसे अपर जीवको सिद्धि क्यों नहीं होती ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुक्रका जो ब्रह्मतत्त्वते फुरणा हुआ है, सो भार्गवजन्म हुआ है, अपर जन्मकरि कलंकित नहीं भया, सर्व ईर्षणाते रहित शुद्ध चैतन्य था निर्मल हृदयको जैसा फुरणा होताहै, तैसी सिद्धि हो जातीहै, अरु मलिन हृदयवान्का शीघ्रही संकल्प सिद्ध नहीं होता, जैसे भृगुके पुत्रको मनोराज्य हुआ, अरु भ्रमता फिरा तैसे सबही स्वरू-पके प्रमादकरि भ्रमते हैं, जबलग स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता तब-लग शांति प्राप्त नहीं होती, यह मैंने भृगुके पुत्रका वृत्तांत तुझको सुनाया है, मनोराज्यकी दृढताअर्थ जैसे बीजते अंकुर फूल फल अनेक भावको प्राप्त होते हैं, तैसे सब भूतजातिको मनका भ्रमणा अनेक भ्रमको प्राप्त करता है, जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब मनके फुरनेका रूप है, मिथ्या भ्रमकरिके नानात्व भासता है और कछु हुआ नहीं, एक एक प्रति ऐसा भ्रम है, सब संकल्पमात्र है, न कछु उदय होता है, न अस्त होता है, कदाचित् किसीको सब मिथ्यारूप मायामात्र है, जैसे

स्वप्नपुर अरु सकल्पनगर भासता है, परस्पर व्यवहार दृष्टि आते हैं, अरु हुआ कछु नहीं तैसे यह जाग्रतभ्रम भी अज्ञानकरि दृष्ट आता है, भूत पिशाच आदिक जेते कछु जीव है, तिनका भी संकल्पमात्र शरीर है, जैसे उनको सुखदुःखका भोग होता है, तैसे तुम हमको होता है, जैसे यह जगत है, तैसे अनंत जगत् पड़े वसते हैं, परस्पर अज्ञानत्व है, एकको दूसरा नहीं जानता, जैसे एक स्थानविषे बहुत पुरुष शयन करते है, तिनको मनोराज्य स्वप्नभ्रम परस्पर अज्ञात होता है, तैसे यह जगत् है, वास्तवते कछु हुआ नही, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जो इस जगत्को सत् जानता है, तिसका पुरुषार्थ नष्ट होता है, जो भ्रांतिकरि वस्तु भासती है, तिसका सम्यक् ज्ञानकरि अभाव हो जाता है, यह जाग्रत् जगत् भी दीर्घ स्वप्न है, चित्तरूप हस्तीको बंधन है, चित्तसत्ताकरिके जगत् सब भासता है, अरु जगत् सत्ताकरिके चित्त है, एकके नाश हुएते दोनोंका नाश हो जाता है जब जगत्का सत् भाव नष्ट होता है, तब चित्त नहीं रहता, जब चित्त उपशम होता है, तब जगत शांत होता है, इसप्रकार एकके नाश हुएते दोनोका नाश होता है, सो दोनोंका नाश आत्मविचारकरिके होता है, अरु विचार तहाँ उपजता है जहाँ हृदय निर्मल होता है, जैसे उज्वल वस्त्रपर केसरका रंग शीघ्रही चढ़ि जाता है, मलिन वस्त्रपर नहीं चढ़ता, सो निर्मल हृदय तब होता है जब शास्त्रके अनुसार क्रिया करता है॥ हे रामजी! एक एक जीवको हृदयविषे अपनी अपनी सृष्टि है, मलिन चित्तकरि एकको दूसरा नहीं जानता, जब चित्त शुद्ध होता है, तब औरकी सृष्टिको भी जान लेता है, जैसे शुद्ध धातु परस्पर मिलि जाती है, इसको जब दृढ अभ्यास चिरपर्यंत होता है, तब सब कछु भासने लगता है, काहेते कि, सबका अधिष्ठाता एक आत्मा है, तिसविषे स्थित होनेते मनका ज्ञान होता है॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! शुक्रको प्रतिभा मात्र आभास हुआ था, तिसविषे देश, काल, क्रिया, द्रव्य उसको दृढ होइकरि कैसे भासे हैं? ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो कछु जगत शुक्रने देखा है, सो अपने अनुभवरूप भंडारविषे मनकरि देखा है, जैसे मोरके अंडेसों

अनेक रंगवान् निकसते हैं, तैसे उसको अपने अतर भ्रम भासि आया, जैसे बीजसों पत्र, टास, फूल, फल, निकसते हैं, तैसे जीव जीवको अपने अपने अनुभवविषे ससार खड पड़े फुरते हैं,यहां स्वप्नदृष्टात प्रत्यक्ष है, जैसे एकएकके स्वप्नविषे जगत् होता है, तैसे यह जगत् है, दीर्घ स्वप्न जाग्रत् हो भासता है, जैसा दृढ होता है, तैसा भासने लगता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सृष्टिके समूह परस्पर कैसे मिलते हैं, अरु कैसे नहीं हैं ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मलिन चित्त है, सो परस्पर नहीं मिलता है, जो शुद्ध है, सो मिलता है, जैसे शुद्ध धातु मिलिजाती है, सुषुप्तरूप आत्मासों सब फुरते हैं, सो तन्मयरूप हैं, जिसको तिसविषे विश्राम होता है सो ज्ञानदृष्टिकरि सबके साथ मिलि जाता है, जैसे जल-केसाथ जल मिलि जाता है, तैसे वह सबके साथ मिलिकरि सबको जानता है और कोई नहीं जानता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मनोराज्यसंमीलनवर्णन नाम सप्तदशोऽध्याय. ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

जीवपदवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेते कछु ससार खंड हैं, तिन सबका बीजरूप आत्मा है, सब आत्माहीका आभास है, सो आभासके उदय अस्त होनेविषे आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अपने स्वभावके त्यागते रहित है, अरु सर्व जीवका अपना आप वास्तवरूप है, अरु सुषुप्तकी नाई अस्फुरण है, तिस सत्ताते जीव फुरते हैं, सब स्वप्नवत् जगत् भ्रमको देखते हैं,सो जीव जीव प्रति अपनी सृष्टि स्थित है,जो पुरुष उलटिकै आत्म परायण होता है,सो आत्मपदको प्राप्त होता है,जिन पुरुषोंको आत्मब्रह्मके साथ एकता भई है, तिनको परस्पर औरकी सृष्टि भासती है,अत करणविषे सृष्टि होतीहै, सो तिनका अंत करण मिलता है, तिस अत करण जीवक-लाके मिलेते परस्पर सृष्टि भासि आती है, वह जानते हैं, जीवको अप-नीअपनी सृष्टि है, सबको अपनी आप सन्मात्रसत्ता है, तिसविषे सब

सृष्टि स्थित होती है, जैसे कपूरका पर्वत होवै, तिसके अणुअणुविषे सुगंधता होती है, अरु सर्व अणुकी सुगंधताको पर्वतविषे एकता होती है, तैसे सब जीवका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, जैसे सब नदीके जलका अधिष्ठान समुद्र है, तैसे सब जीवका अधिष्ठान आत्मा है, सो सृष्टि कहूं परस्पर मिलती हैं, कहूं भिन्न भिन्न स्थित है, जहां चैतन्यमात्र सत्ताकेसाथ एकता है, तहां चित्तकी वृत्ति जिसकेसाथ मिला चाहै, तिसको मिलजाती है, मलिनचित्तवाला नहीं मिल सकता, अरु एक एक जीवविषे सहस्र सृष्टि परस्पर गुप्तरूप होती है, जहां जैसा फुरना दृढ होता है तहां तैसाही भासता है, जहां मनका फुरना कोमल होता है, सो सफल नहीं होता अरु जहां दृढ होता है, सो भासने लगता है ॥ हे रामजी ! जब देहकी भावना मिटि जाती है,अरु प्राणपवनहीके स्थित करनेते चित्तकी वृत्ति स्वभावकरि स्थित होतीहै तब अपरके चित्तकी चेष्टा इसके चित्तविषे फुरि आती है, अरु जबलग चित्त मलिन होता है देहकी भावनाको नहीं त्यागता तबलग किसी पदार्थकेसाथ एकता नहीं होती अरु जिसका चित्त निर्मल होता है तिसको जैसे औरके चित्तका ज्ञान हो आता है, तैसे और सृष्टिविषे भी मिलनेकी शक्ति हो आती है अशुद्धको नहीं होती अरु सर्व जीवकी तीन अवस्था जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति होती है, यह तीनोंही अवस्था आत्माविषे जीवत्वका लक्षण हैं, जैसे मृगतृष्णाकी नदीके तरंग किरणोंविषे होते हैं, तिनका अभाव है, अरु जीवको आत्माविषे प्रमाद है, तिसकरि तीनहू अवस्थाविषे पड़ा भटकता है, जब चित्तकला तुरीयाविषे स्थित होती है, तब जीवन्मुक्त होता है, आत्मसत्ता स्वभावविषे स्थित हुएते आत्माके साथ एकताको प्राप्त होता है, अरु सब जीवनके साथ सुहृद्भाव होता है, जब अज्ञानी सुषुप्त आत्मसत्ताते जागता है, अर्थ यह कि संसारको चितवता है, तब संसारको प्राप्त होता है, संसारविषे और संसार, तिसविषे और, इसप्रकार प्रमादकरिकै अनेक सृष्टिको देखता है, जैसे केलेके स्तंभसों पत्रका समूह निकसि आता है, तैसे सृष्टिसों सृष्टिको देखता है, शांतिको नहीं प्राप्त होता, अनेक भ्रमको देखता है जब इलादिक अपने स्वभावविषे स्थित

होता है, तब नानात्वभाव मिटि जाता है, शांतरूप होता है, जैसे केलेका अंतर शीतल होता है ॥ हे रामजी ! जगत्के समूह भासते हैं, तौ भी आत्माविषे कछु द्वैत नहीं, आत्माके साथ एकरूप है, जैसे केलेके अंतर पत्रते इतर कछु नहीं निकसता, तैसे आत्माते इतर जगत् कछु नहीं, जैसे बीज फूलभावको प्राप्त होता है, फूलते बहुरि बीज होता है, तैसे ब्रह्मते मन होता है, बहुरि बुद्धिकरि ब्रह्म होता है, बीजका कारण वही रस है, आत्माविषे कारण कार्यभाव कछु बनता नहीं अद्वैत अचित्यरूप है, आदिपरमात्मा अकारणरूप है, सोई विचारने योग्य है, औरके साथ क्या प्रयोजन है ? बीज जब अपने भावको त्यागता है, तब फूलभावको प्राप्त होता है, अरु ब्रह्मसत्ता अपने स्वभावको कदाचित नहीं त्यागती, अरु बीज परिणामकरि आकाररूप है, आत्मा अकृत्रिम निराकार अच्युतरूप है, इसकारणते आत्मा बीजकी नाईं भी कहना नहीं बनता, आकाशते आकाश नहीं उपजता है, अरु अभिन्नरूप है, न कोऊ उपजता है, न किसीको उपजाया है, केवल ब्रह्म आकाश अपने आपविषे स्थित है, जब द्रष्टा पुरुषको देखता है, तब आपको नहीं देख सकता, काहेते कि; मनोराज्यका जगत्विषे परिणाम जाता है, तब विद्यमानवस्तुकी सभाल नहीं रहती, देहादिकविषे आत्मअभिमान होता है, जो पुरुष आत्मसत्ताको देखता है, तिसको जगतभाव नहीं रहता, अरु जो जगत्को देखता है, तिसको आत्मसत्ता नहीं भासती, जैसे मृगतृष्णाकी नदीको झूठ जानता है, तिसको जलभाव नहीं रहता, अरु जल जानता है, तिसको असत्बुद्धि नहीं होती आकाशकी नाईं पूर्ण पुरुष द्रष्टा है, जब इस दृश्यकी ओर जाते हैं, तब आपको देखि नहीं सकते, आकाशकी नाईं ब्रह्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है, सो अज्ञानीको नहीं भासती, अरु जो दृश्यका अत्यंत भाव है, सोई पड़ा भासता है, अनुभवका भासना दूर हो गया है ॥ हे रामजी ! जो कोऊ स्थूल पदार्थ होता है, पहाड़ वृक्ष आदिक तिसके आगे पटल आवता है, तब वह नहीं भासता, तौ जो सूक्ष्म निराकार द्रष्टा पुरुष है, तिसके आगे आवरण आवै, तब वह कैसे भासै । द्रष्टा पुरुष अपनेही भावविषे स्थित है; दृश्यभावको नहीं प्राप्त

होता, अरु दृश्य भासता है, तब द्रष्टा देखनेविषे नही आता, अरु दृश्य कछु वस्तु नहीं है, ताते द्रष्टा एक परमात्माही अपने आपविषे स्थित है, जो आत्मरूप सर्व शक्तिमान् देव है, जैसा फुरणा तिसविषे होता है, तैसाही शीघ्र भास आता है, जैसे वसंतऋतुविषे एक रस अनेकरूपको धारता है, टास, फूल, फल होते हैं, तैसे एक आत्मसत्ता अनेक जीवदेह होके भातसी है, जैसे अपनेही अंतर अनेक स्वप्नभ्रमको देखता है, तैसे अह आदिक जगत् दृश्यभ्रमको अनुभव प्रासही होता है, अरु स्वरूपते कछु अपर हुआ नहीं, जैसे एक बीजके अंतर पत्र, टास, फूल, फल अनेक होते है, तिसविषे और बीज होता है, बीजके अंतर और वृक्ष, तिसके अंतर और बीज, इसीप्रकार एक बीजके अंतर अनेक वृक्ष होते है, तैसे एक आत्माविषे चिद्‌अणु अनेक फुरते है, तिनके अंतर सृष्टि, बहुरि सृष्टिके अंतर चिद्‌अणु, बहुरि चिद्‌अणुके अंतर सृष्टि, इसीप्रकार आत्माविषे अनेक सृष्टि ब्रह्मांड हैं, तिनकी संख्या कछु कही नहीं जाती अपने आपकरि फुरते है, आप स्वाद लेता है; एक एक चिद्‌अणुके अंतर अनेक सृष्टि है, जैसे तिलविषे तेल है, तैसे चिद्‌अणुविषे आकाश पवन आदिक अनेक सृष्टि स्थित है, आकाशविषे पवन, अग्निविषे जल, सर्व भूतविषे पृथ्वी सृष्टि स्थित है, ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं, जो चित्तसत्ताते रहित होवै, अरु जहां चित्त है, तहां तिसका आभासरूप द्रष्टा भी स्थित है, जैसे एक डब्बेविषे लौंग होते है, तिनके नष्ट हुएते डब्बा नष्ट नहीं होता, जैसा जैसा तिसविषे फुरना होता है, तैसा स्थित होता है, सबका अधिष्ठानरूप आत्मा है, जैसे जेते कछु कमल हैं, तिनको पूरणहारा जल है, तिसकरि सब विस्फूर्जित होते है, अरु प्रकाशते है, तैसे सब नष्टहूको सत्ता देनेहारा आत्मा है, सबका आश्रयरूप आत्मतत्त्व है, अरु यह जगत् दीर्घ स्वप्नरूप अपने अनुभवते उदय हुआ है, सो बाह्यरूप होइ करि भासता है, तिस स्वप्नते आगे और स्वप्नांतर होता है, तिसते आगे और स्वप्न इसीप्रकार सृष्टिकी स्थिति भई है, जैसे एक बीजते अनेक वृक्ष होते है, तैसे एक चिद्‌अणुविषे अनेक सृष्टि स्थित है, जैसे जलविषे अनेक तरंग भासते है, तैसे आत्मानुभवविषे अनेक जगत् भासते है, सो अभिन्नरूप

है, ताते द्वैतभ्रमको त्यागि दे, न कोऊ देश है, न कालक्रिया जगत् है, केवल एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थितहै,तैसे आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थितहै, ब्रह्म आदि कीटपर्यंत जेता कछु जगत् भासता है, सो एक परमात्माही अपने आपविषे किंचनरूप होताहै, जैसे एक रससत्ता कहूं फूल सुगंधसहित भासती है, कहूं काष्ठरूपको प्राप्त होती है, तैसे एक परमात्मसत्ता कहूं चेतनरूप होइकरि भासती है, कहूं जडरूप होइकरि देखाई देती है, जो सर्वगत अविनाशी आत्मा है, सोई सबका बीजरूप है, तिसीके अंतर सब जगत् स्थित है, जिसको आत्माका प्रमाद है, तिसको नानारूप भासता है, जैसे जलविषे डुबै, बहुरि निकसै, बहुरि डुबै, बहुरि निकसै अरु जैसे स्वप्नविषे और स्वप्नांतरको प्राप्त होताहै,तैसे प्रमाददोषकरिकै भ्रमते भ्रमांतर नानाप्रकारके जगत्को देखता है, जगत् अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, जगत् कछु हुआ नहीं, काहेते कि,आत्माही जगत् जैसा हो भासताहै,भ्रांति करिकै जगत् भासताहै,जैसे विचाररहितको स्वर्णविषे भूषणबुद्धि होतीहै, विचार कियेते भूषणबुद्धि नष्ट हो जाती है, एकही स्वर्ण भासता है, तैसे जो विचारते रहित है, तिसको यह जगत्पदार्थ भासतेहै कि, यह मैं हौं, यह जगत् है, यह उपजा है, यह लीन होता है, अरु जिसको सत्संग शास्त्रके संयोगते विचार उपजा है, तिसको दिनप्रतिदिन भोगकी तृष्णा घटती जाती है, आत्मविचार दृढ होता जाता है, जैसे किसीको ताप आता है, सो औषधकरिकै निवृत्त हो जाता है, सो दो लक्षण तिसविषे प्रत्यक्ष होते है, एक तृषा बहुत थी, सो निवृत्त हो जाती है, दूसरी शरीरसों तप्त निवृत्त हो जाती है, शीतलता प्रगट होती है, तैसे ज्यों ज्यों विवेक दृढ होता है, त्यों त्यों इंद्रियका जीतना होता है, संतोषकरि अंतर शीतल होताहै, सर्व आत्मही भासताहै, यह विवेकका फलहै ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषको वचनका विवेक है, अरु निश्चयविषे नहीं, तिसका विवेक कछु कार्य सिद्ध नहीं करता, जैसे [illegible] अग्नि लिखा होता है, तिसते कछु कार्य सिद्ध नहीं [illegible] नि[illegible] वचनका विवेक है, सो दुःखको निवृत्त नहीं क[illegible] न [illegible] जब पवन

चलता है, तब पत्र वृक्ष हिलते हैं, उसका लक्षण भासता है, अरु वाणीकरि कहिये तब हिलने नहीं, तैसे जब विवेक हृदयविषे आता है, तब भोगकी तृष्णा घट जाती है, मुखके कहनेकरि तृष्णा घटती नहीं, जैसे चित्रकी मूर्तिपर अमृत लिखा होवे, सो पान करने अरु अमर होनेका कार्य नहीं करता, अरु मूर्त्तिका लिखा अग्नि तिसको निवृत्त नहीं करता, अरु मूर्त्तिकी लिखी स्त्री स्पर्श करने अरु संतान उपजनेका कार्य नहीं करती, तैसे मुखका विवेक वाणीविलास है, अरु भोगकी तृष्णाको निवृत्त कर शांतिको प्राप्त नहीं करता, जैसे मूर्त्तियां देखनेमात्र हैं, तैसे वह विवेक वाग्विलास है ॥ हे रामजी ! प्रथम जो विवेक आता है, तब रागद्वेषको नाश करता है, अरु ब्रह्मलोकपर्यंत जेते कछु विषय भोगरूप हैं, तिनकी तृष्णा अरु वैरभावको नष्ट करता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट होता है, तैसे विवेकके उदय हुएते अज्ञान नष्ट हो जाता है, अरु पावनपदकी प्राप्ति होती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवपद वर्णनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९



जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीयारूप वर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व जीवका बीज परमात्मा है, सो सर्व ओरते आकाशकी नाई स्थित है, तिसके फुरनेका नाम जीव है, सो जीव जीवके अंतर जगत है, तिसके आगे और नानाप्रकारकी रचना है, वस्तुते चिद्घन जीवके रूपसों अंतर स्थित भया है, ताते सब जीव चिद्घनरूप है, जैसे केलेके स्तंभविषे पत्र होते हैं, तैसे आत्मसत्ताके अंतर जीव स्थित हैं; जैसे पुरुषके अंतर कीट होते हैं तैसे आत्माके अंतर जीवराशि हैं; जैसे प्रस्वेदकरिकै जुआं लीखें आदिक जीव उपजते हैं; और पदार्थते कीट उपज आते हैं, तैसे आत्मामों चित्कलाके फुरनेकरि जीवके समूह फुरि आते हैं, बहुरि जीव जैसी जैसी सिद्धताके निमित्त यत्न उपासना करते हैं, तैसी गतिको प्राप्त होते हैं; उपासनाकी विभिन्न

ताते नानाप्रकारकी गतिको प्राप्त होते है, जो देवताकी उपासना करते हैं सो देवताको प्राप्त होते है, यक्षके उपासक यक्षको प्राप्त होते हैं, इसीप्रकार जिसकी उपासना करते है, तिसीको प्राप्त होते हैं, ब्रह्मके उपासक ब्रह्मको प्राप्त होते है, ताते जो अतुच्छ पद है, तिस महत्पदका आश्रय करो, जैसे शुक जब दृश्यके ओर लगा, तब अनेक प्रकारके दृश्य भ्रमको प्राप्त हुआ, जब शुद्ध बुद्धकी ओर आया, तब निर्मल बोधको प्राप्त हुआ, जैसे जिसकी कोऊ उपासना करता है, सो तिसको प्राप्त होता है, अन्यको नहीं प्राप्त होता ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जाग्रत् अरु स्वप्नका जो भेद है सो कहौ कि, जाग्रत् क्या है, अरु स्वप्न क्या है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! स्थिरप्रतीतिका नाम जाग्रत् है, अरु अस्थिरप्रतीतिका नाम स्वप्न है, जो चिरकाल रहता है, तिसका नाम स्थिर है, अरु जो अल्पकाल रहै, तिसका नाम अस्थिर है, दीर्घ काल प्रतीतिका नाम जाग्रत् है, अल्पकालका नाम स्वप्न है और भेद कोऊ नहीं, दोनोंका अनुभव सम होता है, जो शरीरके अंतर स्थित होइकरि शरीरको जिवावता है, तिसका नाम जीव है, तेजरूप है, बीजरूप है, जीवधातु है, यह सब तिसके नाम है, जब जीवधातु स्पंदरूप होता है, जीवतके रंध्रविषे पसरती है, तब मन वाणी देहकरि सब व्यवहार होता है, रंध्र खुलि जाते हैं, तब इसको जाग्रत् कहते है, अरु जब चित्तकला जाग्रत् व्यवहारविषे स्पष्टरूप होती है, अरु अंतर होइकरि फुरती है, तिसकरि अंतर जगद्भ्रम भासने लगता है, तब स्वप्न कहाता है, अब सुषुप्तिका क्रम श्रवण कर, मन, वाणी अरु शरीरकरि जहां क्षोभ कोऊ नहीं, अरु स्वच्छवृत्ति जीवधातु अंतर स्थित होती है, हृदयकोशविषे प्राणवायुकरि क्षोभ नहीं होता, नाडी रसकरि पूर्ण होती हैं, उस मार्गते प्राण आनेजानेसो रहित होते हैं, क्षोभते रहित सम वायु चलता है, तिसका नाम सुषुप्ति है, जैसे वायुते रहित दीपक गृहविषे एकांत उज्ज्वल प्रकाशता है, तैसे तहां संवित्सत्ता अपने आपका अनुभव लेती है, जैसे तिलविषे तेल स्थित होता है, तैसे जीव संवित्कलनाकरिकै जो कल्पता है, सो तिस कालमें अपने आपविषे स्थित होता है, जैसे बर्फविषे शीतलता होती है, घृतविषे चिक-

नाई होती है; तैसे तहां संवित्‌विषे संवित्‌सत्ता स्थित होती है, तिसका नाम सुषुप्तिअवस्था है, जडरूप तिस सुषुप्तिअवस्थाते जागे अरु दृश्य भावको प्राप्त न होवै, निर्विकल्प प्रकाशताविषे स्थित होवै, सो ज्ञानरूप तुरीया है, तब व्यवहार पडा करे, तो भी जीवन्मुक्त है, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिविषे बधमान् नहीं होता ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ताते फुरना होता है, अरु स्वरूप विस्मरण हो जाता है, अरु फुरना दृढ होकरि स्थित होता है, इसीका नाम जाग्रत् है, अरु स्वरूपते प्रमाददोषकरिके फुरे, जगत् भासै, तिसको सत्‌रूप जानै, यह प्रतीति थोडा काल रहिकरि बहुरि निवृत्त हो जावै, तिसका नाम स्वप्न है, अरु दृश्य फुरनेका अभाव हो जावै अरु अज्ञातवृत्ति जडतारूप तिसका नाम सुषुप्ति है, अरु अनुभवविषे ज्ञान स्थित है,जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका व्यवहार होवै,अरु निश्चयविषे इनका सद्भाव रचक भी न होवै, केवल ज्ञानविषे अहप्रतीति होवै, वृत्ति तिसते चलायमान न होवै, तिसका नाम तुरीयापद है, तिसविषे स्थित भया जीवन्मुक्त होता है, और जो जीव है, सो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीन अवस्थाविषे स्थित होते है, जब नाडी अन्नके रससों पूर्ण हो जाती हैं, प्राणवायु हृदय नाम्नी नाडीविषे नहीं आता, तब चित्तसंवित् अक्षोभरूप सुषुप्त होता है, जब अन्न उस नाडीसों पचता है, अरु प्राणवायु चलने लगता है, तब चित्तसंवित् क्षोभरूप फुरणे लगता है, तिस फुरणेकरि अपने अतरही वडे जगतभ्रमको देखता है, जैसे बीजते वृक्ष होता है, जब वायुका रस नाडीविषे बहुत होता है, तब चित्तसत्ता आकाशविषे उडना, अरु वायु अँधरियादिक पदार्थको देखता है, अरु जब कफका रस नाडीविषे अधिक होता है, तब फूल, वेलिया, बावलियां, जल, मेघ, बगीचे, आदिक पदार्थ भासते है, जब पित्तकी अधिकता होती है; तब उष्णरूप अग्नि रक्त वस्त्र आदिक भासने लगते हैं, इसप्रकार वासनाके अनुसार जगतभ्रमको देखता है, जैसी जैसी भावना दृढ होती है, तैसाही पदार्थ दृढ हो भासता है, अरु जब पवन क्षोभायमान होता है, चित्तसंवित् नेत्र आदिक द्वारसों बाह्य निकसिकरि रूपादिकका अनुभव करती है, सत् जानिके चिरपर्यंतका नाम जाग्रत है, वासनाके अनुसार मनरूपी ग-

रीरसाथ नेत्र जिह्वादिक विना रूपरसादिकका अनुभव होताहै, तिसका नाम स्वप्न है, स्वरूपते न कोऊ स्वप्न है, न जाग्रत है, न सुषुप्ति है केवल सत्ता अपने आपविषे स्थित है,तिसके फुरनेका नाम जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति है,चिरकाल फुरनेका नाम जाग्रत् है, अल्प कालका नाम स्वप्न है, सो प्रतीतिका भेद हुआ,वस्तुते भेद कछु नहीं,जो वस्तुसे भेद हुआ,तौ जगत्स्वरूप हुआ क्यों? ताते यही भावना दृढ करहु कि; जगत् असत्रूप स्वप्नवत् है, सद्भावना करनी इसविषे दुःखका कारण है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयारूपवर्णन नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०

भार्गवोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह मैं तुझको मनका रूप निरूपण करि दिखाया है, अवस्थाका निरूपण भी इसनिमित्त किया है और प्रयोजन कछु नहीं ताते जैसा निश्चय चित्तविषे होता है, तैसाही है भासता है, जैसे अग्निविषे लोहा डारिये सो अग्निरूप हो जाता है, तौ मन जिस पदार्थकेसाथ लगता है, तिसका रूप हो जाता है, भाव अभाव, ग्रहण, त्याग, सब मनहीकरि होते है, और न कोऊ सत् स्पष्ट असत है, केवल मनकी चपलताकरि पडे फुरते है, मनके मोर जगद्भ्रम भासता है, मनके नष्ट हुएते जगत् नष्ट हो जाता है, जो श्रवण कर, सो अपने फुरनेकरि जगत्को रचता है, यह मनही पुरुष है, इसको अशुभ मार्गविषे नही जोड़ना, जब मनको जीतोगे, तब सर्व जगत्विषे तुम्हारी जय होवेगी, मनके जीते सब जगत जीता जाता है, तब बड़ी विभूति प्राप्त होती है, जो शरीरका नाम पुरुष होवे, तौ शुक्रका शरीर पड़ा था और शरीर न रचता, शरीर वहाँ पडा रहा, अरु मन और शरीरको रचता फिरा, ताते शरीरका नाम पुरुष नहीं, मनहीका नाम पुरुष है, शरीर चित्तका किया होता है, शरीरका किया चित्त नहीं होता, जिस ओर चित्त जाय लगता है, तिसी पदार्थकी प्राप्ति होती है इसविषे

संशय नहीं, ताते अति तुच्छ पद है, आत्मसत्ताका चित्तविषे सदा अभ्यास करै और भ्रमको त्यागि देहु, जब मन दृश्यकी ओर संसरता है, तब अनेक जन्मके दुःखको प्राप्त होता है, अरु जब आत्माकी ओर इसका प्रवाह होता है, तब परमपदको प्राप्त होता है, ताते दृश्य भ्रमको त्यागिकै आत्मपदविषे स्थिति करहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशतितमः सर्गः २१

विज्ञानवादवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सब धर्मके वेत्ता ! मेरे हृदयविषे बड़ा संशय उत्पन्न भया है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकै पसर जाता है, तैसे मेरे हृदयविषे संशय पसर गया है, जो देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित नित्य निर्मल विस्तृत निरामय आत्मसत्ता है, तौ तिसविषे मन नामक मलिन संवित् जो है सो कहाते आया, अरु कैसे स्थित भया, जिसते इतर और वस्तुही कछु नहीं, न आगे होवैगी, तिसविषे कलंकता कहाते आई ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तुझने भला प्रश्न किया है, अब तेरी बुद्धि मोक्षभागी हुई है, जैसे नंदनवनके कल्पवृक्षके अपने अंतर मंजरी लगती है, तैसे तेरी बुद्धि पूर्व अपरके विचारते जागी है, अब तू उस पदको प्राप्त होवैगा, जिस पदको शुक आदिक प्राप्त भये हैं, अरु वायु ... तेरे प्रश्नका उत्तर मैं सिद्धांतकालविषे कहौंगा, अरु तिसे कालविषे तुझको आत्मपद हस्तामल भासैगा ॥ हे रामजी ! सिद्धांतका प्रश्न उत्तर सिद्धांत कालविषे शोभता है, जिज्ञासु कालविषे जिज्ञासुका शोभता है, जैसे वर्षाकालविषे मोरकी वाणी शोभती है, अरु शरत्कालविषे हंसकी वाणी शोभती है, अरु जैसे वर्षाकालके नष्ट हुएते स्वाभाविकही आकाशकी नीलता पड़ी भासती है, अरु जैसे वर्षाकालविषे मेघकी घटा शोभती है, तैसे प्रश्न उत्तर भी जैसा समय होवै, तैसाही शोभता है ॥ हे रामजी ! मैं तुझको अनेक प्रकारके दृष्टांत युक्तिकरि

कहौगा, मनका स्वरूप अरु जिसप्रकार यह निवृत्त होता है सो भी क्रम-कारि बहुत प्रकार कहौंगा मनकी शांतिका उपाय वेदने निर्णय किया है अरु शास्त्रकारने कहा है, तिनके लक्षण तू श्रवण कर चंचल जो मन है, तिसने जैसा जैसा भाव अंगीकार किया है, तैसाही रूप होइकारि भासने लगा है, जैसे पवन जैसी सुगंधिकेसाथ मिलता है, तैसा तिसका स्वभाव हो जाता है, जैसे जल जिस रंगकेसाथ मिलता है, तैसा रूप हो भासता है, तैसे मन जिस पदार्थकेसाथ मिलता है, तिसका रूप हो जाता है, जो मनते रहित शरीरकेसाथ क्रिया करता है, तिसका फल कछु नहीं होता, अरु मनकारिकै करता है तिसका फल पूर्ण होता है, जिस ओर मन जाता है, शरीर भी तिसी ओर लगा जाता है, जो कर्म इंद्रिय क्षोभवान् होवै, अरु बुद्धि इंद्रिय जो मनरूप हैं, सो क्षोभको प्राप्त होवै, अरु देह इंद्रिय स्थिर होवै, तौ कार्य होता है जैसे धूलि क्षोभायमान होवै, तौ पवनविना आकाशको उड नहीं सकती अरु पवन क्षोभायमान होवै तौ भावै तैसी धूलि स्थित होवै, तिसको उड़ाय ले जाता है, तैसे देह पड़ा रहता है, मन अपने फुरनेकरि स्वप्नविषे अनेक अवस्थाको प्राप्त होता है, अरु जाग्रत्‌विषे भी जिस ओर मन फुरता है, देहको भी तहां ले जाता है, ताते सब कार्यका बीज मन है, मनते सब कर्म होते है, मन अरु कर्म परस्पर अभिन्नरूप है, जैसे फूल अरु सुगध अभिन्नरूप होते हैं, तैसे मन अरु कर्म है, जिस कर्मका अभ्यास मनविषे दृढ होता है, तिस कर्मकी शाखा पसरता है, अरु तिसी फलको प्राप्त होता है, अरु तिसी स्वादका अनुभव करता है, जिस जिस भावको चित्त ग्रहण करता है, तिसी तिसी भावको प्राप्त होता है, अरु तिसीको कल्पनारूप मानता है धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पदार्थ हैं, तिनविषे जिसकी भावना मन दृढ करता है, तिसको सिद्ध करता है, कपिलदेवने जो सब शास्त्र किये, सो मनकी सत्ताकरि किये है, तिसने निर्णय किया है कि,प्रकृति जो माया है,तिसके दो स्वभाव है, एक अनुलोम परिणाम है, दूसरा प्रतिलोमपरिणाम है, प्रतिलोमपरिणाम होता है, तब दृश्यभावको प्राप्त होतादै,अरु अनुलोमपरिणाम होतादै, तब

अंतर्मुख आत्माकी ओर आता है, आत्मा शुद्धरूप है, आत्माकी ओर अनुलोमपरिणाम मोक्षका कारण है, और उपाय कोऊ नहीं अरु वेदांतवादीने यह निश्चय किया है कि, यह सर्व ब्रह्मही है,शम दम आदिककरि जब मन सपन्न होता है, तब यह निश्चय धारण होता है कि, सर्व ब्रह्म है, ब्रह्मज्ञानविना और यत्नकरि मोक्ष नहीं होता, उनके चित्तविषे यही निश्चय है, अरु विज्ञानवादी कहते हैं, जबलग बुद्धि पडी फुरती है, तबलग ससार है, जब इसका फुरणा अपने स्वभावविषे होता है, तब उस कालविषे स्वरूप स्थित होता है, जब वह काल आवैगा, तब मोक्षकी प्राप्ति होवैगी, अर्हंत जैसे वडे हैं, तिनको अपने निश्चयअनुसार भासता है, मीमांसा, पातजल, वैशेषिक न्यायते आदिक लेकरि शास्त्रकार हैं, सो अपनी बुद्धिकरि जैसा निश्चय तिनने धारा है, तैसाही तिनको भासता है, स्वरूपते न कोऊ मत है, न शास्त्र है, सबका कारण मन है, मनको अगीकार करिकै सब मत हूवे हैं, सबका कारण मन है, न निंब कटु है, न मधु मिष्ट है, न अग्नि उष्ण है, न चद्रमा शीतल है, जैसा जैसा जिनके मनविषे निश्चय होता है, तैसा तैसा तिसको भासता है, किसीको निंब प्यारी होती है, मधु कटु लगता है, नीमका जो कीट है, तिसको मधु नहीं रुचता, तौ मधु कटुक हो गया क्यों ? इसी कारणते वास्तव नहीं, विरहिणी स्त्रीको चद्रमा अग्निवत् भासता है; चकोर अग्निको भक्षण करि लेता है, जैसी जैसी भावना पदार्थनिषे हो गई है, तैसा तैसा हो भासता है, सब जगत् भावनामात्र है, जिस पुरुषको दृश्यविषे भावना है, सो अनेक दुःख भ्रमको देखता है, अरु जिसको शमदमादिक साधनकरिकै अकृत्रिमपदकी प्राप्ति हुई है, अरु मन तदाकार भया है, सो शांतिको प्राप्त भया है, और नहीं प्राप्त होता॥ हे रामजी ! यह जगत् दृश्य तेरे मनके स्मरणविषे स्थित भया है, सो तुच्छरूप है, इसका मनते त्याग करहु, यह सुख दुःख आदिक महाभ्रमको देनेहारा है, यह संसार अपवित्र अरु असत् मोहरूप महाभयका कारण है, आभासरूप है, मायामात्र अविद्यारूप है, इसकी भावना भयका कारण है; जगत्के साथ सवित्की तन्मयता होती है, इसका

कहौगा, मनका स्वरूप अरु जिसप्रकार यह निवृत्त होता है सो भी क्रम-कारि वहुत प्रकार कहौंगा मनकी शांतिका उपाय वेदने निर्णय किया है अरु शास्त्रकारने कहा है, तिनके लक्षण तू श्रवण कर चचल जो मन है, तिसने जैसा जैसा भाव अगीकार किया है, तैसाही रूप होइकारि भासने लगा है, जैसे पवन जैसी सुगंधिकेसाथ मिलता है, तैसा तिसका स्वभाव हो जाता है, जैसे जल जिस रगकेसाथ मिलता है, तैसा रूप हो भासता है, तैसे मन जिस पदार्थकेसाथ मिलता है, तिसका रूप हो जाता है, जो मनते रहित शरीरकेसाथ क्रिया करता है, तिसका फल कछु नहीं होता, अरु मनकारिकै करता है तिसका फल पूर्ण होता है, तिसके मन जाता है, शरीर भी तिसी ओर लाका त्याग करहु, असकल्प क्षोभवान् होवै, अरु बुद्धि इद्रिय जो जव तू सर्व भावविषे असंग प्राप्त होवै, अरु देह इंद्रिय स्थिर होवै, तैप्रसन्न होवैगा, तिसकरि निर्वि-भायमान होवै, तौ पवनविना आ जगत्की सत्ता है, न सुख है, अरु पवन क्षोभायमान होवै तौ भावे तेरपने आपविषे प्रकाशता है, जव उड़ाय ले जाता है, तैसे देह पड़ा रहताावेगी, तव निर्मल स्वरूपविषे स्थित विषे अनेक व दृश्यभ्रम निवृत्त हो जावैगा, जैसे जेवरीके सम्यक् ज्ञानते सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे चिदात्माके सम्यक् ज्ञानते जगद्भ्रम नष्ट हो जावैगा, ताते दृश्य भावनाको त्यागिकै चिदात्माकी भावना कर, जैसे भावना होती है, तैसे हो भासता है, जव प्रथम भावनाका त्याग करि और भावना करता है तव प्रथमका अभाव हो जाता है, जैसे दिन हुएते रात्रिका अभाव हो जाता है, तैसे आत्मभावना दृश्य भावनाका अभाव होता है, जैसे लोहेको लोहा काटता है, तैसे भावनाको भावना काटतीहै, ताते अतुच्छपद निरुपाधि निःसशयरूपका आश्रय करहु, जव तिसकी भावना दृढ होवैगी, तव भ्रमते रहित सिद्ध पदको प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी। तेरा स्वरूप आत्मा है, तू बुद्धि आदिककी कल्पना मत करु, जैसे वालकको कहिये कि, शून्यविषे सिंह है, तव वह भयवान् होताहै, तैसे जव शून्य शरीरादिकविषे विचारते बुद्धि नहीं पाती यह मैं हौं यह अपर है, इत्यादिक जो कल्पना होती है, आत्माकेविषे सो ऐसे हैं, जैसे

अंतर्मुख आत्माकी ओर आता है, आत्मा शुद्धरूप है, आत्माकी ओर अनुलोमपरिणाम मोक्षका कारण है, और उपाय कोऊ नहीं अरु वेदांतवादीने यह निश्चय किया है कि, यह सर्व ब्रह्मही है, शम दम आदिककरि जब मन संपन्न होता है, तब यह निश्चय धारण होता है कि, सर्व ब्रह्म है, ब्रह्मज्ञानविना और यत्नकरि मोक्ष नहीं होता, उनके चित्तविषे यही निश्चय है, अरु विज्ञानवादी कहते हैं, जबलग बुद्धि पडी फुरती है, तबलग संसार है, जब इसका फुरणा अपने स्वभावविषे होता है, तब उस कालविषे स्वरूप स्थित होता है, जब वह काल आवैगा, तब मोक्ष जी संत होवैगी, अर्हत जैसे वडे है, तिनको अपने निश्चयअनुसार जिसने निर्णय किया है, तैसाही, वैशेषिक न्यायते आदिक लेकरि शास्त्र-भावनाको त्यागिकै स्वरूपविषे जैसा निश्चय तिनने धारा है, तैसाही ति- प्रतिबिंब पडता है, तिसके दूर कोऊ मत है, न शास्त्र है, सबका कारण मणिवत् जड नहीं तू चैतन्यरूप सब मत डूबे हैं, सबका कारण मन पड़ता है, तिसका त्याग करहु, कैहै, न अग्नि उष्ण है, न चंद्रमा शीतल तिसको असत्‌रूप जानिकै त्यागि निश्चय होता है, तैसा तैसा तिसको होवै, तिसको करहु, अरु मणिकी नाईं अंतरते रजत राखता है, नीमका प्रतिबिंब बहिर्दृष्टि आता है अरु अंतरते रंग नहीं चढ़ता तैसा बाहरों व्यवहार तेरेविषे भासे, अरु अंतर राग द्वेष स्पर्श न करे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे विज्ञानवादो नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः २२

अनुत्तमविश्रामवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब जीवको संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचारकरि विचार उपजता है, तब अपर ओरते वृत्ति उपरत होती है, अरु संसारका मनन निवृत्त हो जाता है, विवेकरूप बुद्धि आनि उदय होती है, तब संसार दृश्यकी त्यागबुद्धि होती है, द्रष्टा आत्माविषे अंगीकारबुद्धि होती है, द्रष्टा पुरुष प्रकट होता है, दृश्य जो है सो अद्-

श्यताको प्राप्त होता है, अर्थ यह जो द्रष्टाके लक्षकरि दृश्यको असत्रूप जानता है, जब यह पुरुष ज्ञान ज्ञेय होता है, तब परम तत्त्वविषे जागता है, अरु संसारकी ओरते घन सुषुप्त मृतकी नाईं होता है, ससारकी ओरते वैराग्य भोगविषे अभोग, रसविषे नीरस बुद्धि उपजती है, जब ऐसी बुद्धि हुई तब मन अपनी सत्ताको त्यागिकरि आत्मरूप होता है, जैसे वर्फका पूतला सूर्यके तेजकरि जलरूप हो जाता है, जब मनविषे संसारकी सत्ता होती है, तिस फुरनेकरि जड़भागी होता है, जब विवेकरूपी सूर्य उदय होता है, तब मन गलिकै आत्मरूप हो जाता है, जैसे जबलग मरुस्थलविषे धूप होता है तबलग वहांते मृगतृष्णाकी नदी नष्ट नहीं होती, जब वर्षा होती है, तब नष्ट हो जाती है, तैसे जबलग संसारकी सत्यता होती है, तबलग मन नष्ट नहीं होता, जब ज्ञानकी वर्षा होती है, तब दृश्यसहित मन नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! ससाररूपी वासनाकी जालहै, तिसविषे जीवरूपी पक्षी फँसे है, जब वैराग्यरूपी चूहा इसको कतर जाता है, तब जीव निर्बंध होता है, जैसे मलिन जल निर्मल होता है, तैसें वैराग्यके वशते जीवका स्वभाव निर्मल होता है, जब जीव निराग निरुपाधि असग होता है, अरु रागद्वेष मोहते रहित होता है, तब जैसे पिंजर टूटेते पक्षी निर्बंध होता है, तैसे जीव निर्बंध होता है, संदेहकी जो दुर्मति है, सो शांत हो जाती है, जगद्भ्रम नष्ट होता है, अंतर पूर्ण हो जाता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे ज्ञानवान् शोभता है, सबते उत्तम सौंदर्यताको प्राप्त होता है, उदय अस्त राग द्वेष नष्ट हो जाता है, अरु सर्व समताभाव आनि वर्त्तता है, न्यूनता और विशेषता भाव नष्ट हो जाता है, जैसे पवनते रहित सोम समुद्र अचलरूप होता है, तैसे असग पुरुष मूक जड अंध कर्मकी वासनाते रहित अचल हो जाता है, वह सब चेतन प्रकाश देखता है, तिसकी बुद्धि विवेककरि प्रफुल्लित हो आती है, जैसे सूर्यके उदय हुएते सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते है, तैसे वह पुरुष परम लक्ष्मीकरि शोभता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, अरु बहुत कहनेकरि क्या है, ज्ञान ज्ञेय पुरुष जो है, सो आकाशवत् हो जाता है, न उदय होता है, न अस्त

होता है, विचारकरिकै जिसने आत्मतत्त्वको जाना है, सो तिस पदको प्राप्त होता है जहां ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र स्थित हैं, सबही तिसपर प्रसन्न होते हैं, प्रकट आकार उसका भासता है, अरु अंतर अहंकारते रहित है, विकल्पके समूह तिसको खैंच नहीं सकते, जैसे जलका अभाव जाननेवालेको मृगतृष्णाकी नदी खैंच नहीं सकती ॥ हे रामजी ! आविर्भाव अरु तिरोभावरूप जो संसार है, तिसको रमणीयरूप जानिकै ज्ञानवान् खेद नहीं पाता, देहके नाशविषे अपना नाश नहीं मानता उपजनेविषे उपजना नहीं मानता, जैसे घट उपजेते आकाश उपजता नहीं; काहेते जो आगे सिद्ध है, अरु घटके अभावते आकाशका अभाव नहीं होता, तैसे देहके उपजेते आत्मा उपजता नहीं, देहके नष्ट हुएते नष्ट नहीं होता, जब ऐसा विवेक उदय होता है, तब वासनाका जल नष्ट हो जाता है, कोऊ भ्रम नहीं रहता, जैसे मृगतृष्णाकी नदी ज्ञानकरिकै अभाव हो जाती है, जबलग इसको यह विचार नहीं उपजता कि, मैं कौन हौं, अरु जगत् क्या है, तबलग ससाररूपी अंधकार रहता है, अरु जो पुरुष ऐसे जानता है कि, ससारभ्रम मिथ्या उदय हुआ है, परम आपदाका कारण देह अनात्मरूप है, आत्माते भिन्न यह जगत् कछु नहीं, सब आत्मसत्ताकरिकै स्थित है, जो ऐसे देखता है, सोई यथार्थ देखता है, सब चैतन्यसत्ता है, मैं अनत चिदाकाशरूप हौं, देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित हौं, आधि व्याधि भय उद्वेग जरा मरण जन्म आदिक संयुक्त देह है, सो मैं नहीं ऐसे जो देखता है सोई देखता है वालके अग्रके लक्षभाग करिये बहुरि एक भागके कोटि भाग करिये ऐसा सूक्ष्म सर्वव्यापी हौं, ऐसे जो देखता है, सोई देखता है, मैं सर्वशक्त अनत आत्मा हौं, सर्व पदार्थविषे स्थित, मैं अद्वैत चिदादित्य हौं ऐसे जो देखता है सोई देखता है, अध ऊर्ध्व मध्य सबविषे व्यापा हौं, मुझते इतर द्वैत कछु नहीं, ऐसे जो देखता है सोई देखता है, जैसे सूतकरि मणके परोये होते हैं, तैसे सर्व मुझकरि परोये हैं, ऐसे जो देखता है सोई देखता है, न मैं हौं, न यह जगत् है, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, सत् असतके मध्यविषे जो एक देव प्रकाशक है, त्रिलोकीविषे जो एक है सो मैं एक अविनाशी पुरुष हौं जैसे

समुद्रविषे तरग फुरते है, अरु लीन होते हैं, तैसे मेरेविषे जगत् फुरते हैं, अरु लीन होते है, ऐसे जो देखता है, अथवा प्रथम अहं है, तब पाछे दृश्य जगत् होता है, सो न मैं हौं न जगत् है, केवल एक आत्मसत्ता है, अहं अरु मम तिसाविषे कोऊ नहीं, ऐसे जो देखता है सो देखता है, दृश्यते रहित मैं चैतन्यरूप भैरव अपार हौं, मैं जगज्जालको पूर्ण करि रहा हौ, ऐसे जो देखता है, सो देखता है ॥ जो पुरुष ज्ञानवान् है, सो सुखदुःख भाव अभावविषे चलायमान नहीं होता, केवल ब्रह्मरूपविषे स्थित है, और जगत्के भाव अभावते रहित अनाभास सन्मात्ररूप हैं, जो हेयोपादेय बुद्धिते रहित आकाशवत् सर्वात्मभावविषे स्थित भया है, कोऊ पदार्थ जगत्का उसको अपने वश नहीं कर सकता, सो महात्मा पुरुष महेश्वर तमप्रकाशते रहित है, सर्व कल्पनाते मुक्त शम स्वच्छरूप है, उदयअस्तते रहित समवृत्त है, जिसको ऐसी परम बोध अनंतसत्ताविषे स्थिति है, तिसको मेरा नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अनुत्तमविश्राम वर्णन नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३.

शरीरनगरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! उत्तम पदका जिसने आश्रय किया है, ऐसा जो जीवन्मुक्त पुरुष है, जिसका कुंभकारचक्रकी नाईं प्रारब्ध शेष रहा है, सो पुरुष शरीररूपी नगरविषे राज्य करता है, अरु लेपायमान नहीं होता, तिसको भोग अरु मोक्ष दोनों सिद्ध होते है, जैसे इंद्रका वन सुखरूप है, तैसे उसका शरीररूपी नगर सुखरूप होता है, शरीरके सुखकरि सुखी नहीं होता, दुःखकरि दुःखी नहीं होता है, अपने स्वरूपविषे स्थित रहता है ॥ राम उवाच ॥ हे महामुनीश्वर ! शरीररूपी नगर कैसा है, अरु इसविषे रहिके योगिराज कैसे करता है, अरु सुख कैसे भुगतता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ज्ञानीका शरीररूपी नगर रमणीय

होता है, सर्व गुणसंयुक्त ज्ञानवान्‌को अनंत आनंद विलास दिखाता है, जैसे सूर्य प्रकाशको उदय करताहै तिस नगरका स्वरूप और लक्षण श्रवण करहु ॥ शरीरविषे गांठी है, सो ईंटें है, अरु रुधिर मांस चिक्कडके स्थानहैं, अस्थि लकडियां स्तंभ हैं, अरु किंवार पट है, अरु रोम वनस्पती हैं, उदर खाई है, छाती चौक है, नवद्वार हैं तिनविषे नेत्र झरोखे हैं, तिस द्वारकरि त्रिलोकीका प्रकाश होताहै, हाथ गली है, जिसकरि लेता देता है, मुख वडी कंदरा है, ग्रीवा शीश वड़े मंदिर हैं, अरु रेखा माला हैं; भिन्न भिन्न लगी हुई है, अरु नाड़ी विभाग करनेके स्थान है, अरु प्राणवायु आदिककरि नाड़ीविषे जीव विचरते है, आत्मचिंतामणिरूपी तिसविषे श्रेष्ठबुद्धिरूपी स्त्री रहती है, अरु जिनने इंद्रियरूपी वानर वांधि छाड़ हैं, हँसनेरूप जिसविषे महासुंदर फूल हैं, ऐसा शरीररूपी पुर ज्ञानवान्‌को महासुखके निमित्त है, सौभाग्य सुंदररूप है, शरीरके सुखदु खकरि ज्ञानवान् सुखी दु खी नहीं होता॥ हे रामजी ! जो अज्ञानी है, तिसको शरीररूपी नगर अनंत दुःखका भंडार है, अज्ञानकरिकै शरीरके नष्ट हुएते आपको नष्ट हुआ मानता है, अरु ज्ञानवान् इसके नाश हुएते नाश नहीं पाता, जबलग रहता है, तबलग शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इनको ग्रहण करता है, इष्टरूप होकै भासता है, अरु शरीररूपी नगरविषे भ्रमते रहित निष्कंटक राज्य करता है, लोभते रहित है, इस कारणते शत्रु कछु लेता नहीं, अरु उनको अपने स्थानविषे आने नहीं देता, सो शत्रु कौन हैं, काम, क्रोध, मान, मोहादिक अज्ञान देश है तिनकेविषे आप प्रवेश नहीं करता, अरु अपने देशविषे तिनको आने नहीं देता, सावधानही रहता है, सो अपना देश कौन है, उदारता, धैर्य, संतोष, वैराग्य, शमता, मित्रता, मुदिता, उपेक्षा, ज्ञानदेश है, तिसविषे अज्ञानको प्रवेश करने नहीं देता, अरु आप ध्यानरूपी नगरविषे रहता है, सत्यता अरु एकता दोनों स्त्रियोंको साथ रखता है, तिनकरि सदा शोभायमान रहता है, जैसे चंद्रमा चित्रा विशाखा दोनों स्त्रियोंकरि शोभता है, तैसे ज्ञानवान् सत्यता अरु एकताकरि शोभता है, मनरूपी घोडेपर आरूढ होकै तीर्थके स्नानको गमन करता है, विचाररूपी तिसको लगाम रखना है, अरु जीव

समुद्रविषे तरग फुरते है, अरु लीन होते हैं, तैसे मेरेविषे जगत् फुरते हैं, अरु लीन होते है, ऐसे जो देखता है, अथवा प्रथम अहं है, तब पाछे दृश्य जगत् होता है, सो न मैं हौ न जगत् है, केवल एक आत्मसत्ता है, अह अरु मम तिसविषे कोऊ नहीं, ऐसे जो देखता है सो देखता है, दृश्यते रहित मैं चैतन्यरूप भैरव अपार हौं, मैं जगज्जालको पूर्ण करि रहा हौं, ऐसे जो देखता है, सो देखता है ॥ जो पुरुप ज्ञानवान् है, सो सुखदुःख भाव अभावविषे चलायमान नहीं होता, केवल ब्रह्मरूपविषे स्थित है, और जगत्के भाव अभावते रहित अनाभास सन्मात्ररूप है, जो हेयोपादेय बुद्धिते रहित आकाशवत् सर्वात्मभावविषे स्थित भया है, कोऊ पदार्थ जगत्का उसको अपने वश नही कर सकता, सो महात्मा पुरुप महेश्वर तमप्रकाशते रहित है, सर्व कल्पनाते मुक्त शम स्वच्छरूप है, उदयअस्तते रहित समवृत्त है, जिसको ऐसी परम बोध अनतसत्ताविषे स्थिति है, तिसको मेरा नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अनुत्तमविश्राम वर्णन नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३.

शरीरनगरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! उत्तम पदका जिसने आश्रय किया है, ऐसा जो जीवन्मुक्त पुरुप है, जिसका कुंभकारचक्रकी नाई प्रारब्ध शेप रहा है, सो पुरुप शरीररूपी नगरविषे राज्य करता है, अरु लेपायमान नहीं होता, तिसको भोग अरु मोक्ष दोनों सिद्ध होते है, जैसे इद्रका वन सुखरूप है, तैसे उसका शरीररूपी नगर सुखरूप होता है, शरीरके सुखकरि सुखी नहीं होता, दुःखकरि दुःखी नहीं होता है, अपने स्वरूपविषे स्थित रहता है ॥ राम उवाच ॥ हे महामुनीश्वर ! शरीररूपी नगर कैसा है, अरु इसविषे रहिकै योगिराज कैसे करता है, अरु सुख कैसे भुगतता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ज्ञानीका शरीररूपी नगर रमणीय

होता है, सर्व गुणसंयुक्त ज्ञानवान्‌को अनंत आनद विलास दिखाता है, जैसे सूर्य प्रकाशको उदय करताहै तिस नगरका स्वरूप और लक्षण श्रवण करहु ॥ शरीरविषे गांठी है, सो ईटें है, अरु रुधिर मांस चिकडके स्थानहै, अस्थि लकडियां स्तभ है, अरु किवार पट है, अरु रोम वनस्पती हैं, उदर खाई है, छाती चौक है, नवद्वार हैं तिनविषे नेत्र झरोखे है, तिस द्वारकरि त्रिलोकीका प्रकाश होताहै, हाथ गली है, जिसकरि लेता देता है, मुख वडी कदरा है, ग्रीवा शीश वड़े मदिर हैं, अरु रेखा माला है, भिन्न भिन्न लगी हुई है, अरु नाड़ी विभाग करनेके स्थान है, अरु प्राणवायु आदिककरि नाड़ीविषे जीव विचरते है, आत्मचिंतामणिरूपी तिसविषे श्रेष्ठबुद्धिरूपी स्त्री रहती है, अरु जिनने इंद्रियरूपी वानर बांधि छाड़े हं, हसनेरूप जिसविषे महासुदर फूल हैं, ऐसा शरीररूपी पुर ज्ञानवान्‌को महासुखके निमित्त है, सौभाग्य सुंदररूप है, शरीरके सुखदु खकरि ज्ञानवान् सुखी दुःखी नही होता ॥ हे रामजी ! जो अज्ञानी है, तिसको शरीररूपी नगर अनत दुःखका भंडार है, अज्ञानकरिकै शरीरके नष्ट हुएते आपको नष्ट हुआ मानता है, अरु ज्ञानवान् इसके नाश हुएते नाश नहीं पाता, जबलग रहता है, तबलग शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इनको ग्रहण करता है, इष्टरूप होके भासता है, अरु शरीररूपी नगरविषे भ्रमते रहित निष्कटक राज्य करता है, लोभते रहित है, इस कारणते शत्रु कछु लेता नहीं, अरु उनको अपने स्थानविषे आने नहीं देता, सो शत्रु कौन है, काम, क्रोध, मान, मोहादिक अज्ञान देश है तिनकेविषे आप प्रवेश नहीं करता, अरु अपने देशविषे तिनको आने नहीं देता, सावधानही रहता है, सो अपना देश कौन है, उदारता, धैर्य, सतोष, वैराग्य, शमता, मित्रता, मुदिता, उपेक्षा, ज्ञानदेश है, तिसविषे अज्ञानको प्रवेश करने नहीं देता, अरु आप ध्यानरूपी नगरविषे रहता है, सत्यता अरु एकता दोनों स्त्रियोंको साथ रखता है, तिनकरि सदा शोभायमान रहता है, जैसे चंद्रमा चित्रा विशाखा दोनों स्त्रियोंकरि शोभता है, तैसे ज्ञानवान् सत्यता अरु एकताकरि शोभता है, मनरूपी घोडेपर आरूढ होके तीर्थके स्नानको गमन करता है, विचाररूपी तिसको लगाम रखता है, अरु जीव

ब्रह्मकी एकतारूपी सगम तीर्थविषे स्नान करता है, सदा आनदमान रहता है, भोग अरु मोक्ष दोनोंकरि संपन्न होता है, जैसे इंद्र अपने पुरविषे शोभता है, तैसे ज्ञानवान् देहविषे शोभता है, अरु जैसे घटके फूटेते आकाशकी कछु न्यूनता नहीं होती, तैसे देहके नाश हुएते ज्ञानीकी कछु हानि नहीं होती, ज्योंका त्यों रहता है, जो देह होता है, तौ भी तिसके साथ स्पर्श नहीं करता, जैसे घटकेसाथ आकाश स्पर्श नहीं करता, सर्व कियाका कर्त्ता भोक्ता है, परतु किसीकरि लेप नहीं पाता, सदा एकरस भगवान् आत्मदेवविषे रहता है, जब विमानपर आरूढ होइके शरीररूप नगरविषे विचरता है, तब मैत्रीरूप नेत्रोंके साथ सबको देखता स्थित होता है, मैत्रीभाव सदा तिसविषे रहता है अरु सत्यता एकता सदा तिसके पास है, तिसकरि शोभता है, सदा आनदमान विचरता है, अपर जीवको दुःखरूपी आरेकेसाथ कटते देखता है, जैसे कोऊ पहाडके ऊपर चढ़िकै पृथ्वीविषे लोकको जलता देखे, अरु आप आनंदवान् होवै, तैसे ज्ञानवान् जीवको दु खी देखता है, अरु आप आनदमान् है उसीकी दृष्टीविषे तौ सदा अद्वैतरूप है, अरु आत्मानदकी अपेक्षाकरि अनात्मधर्मको दुःखी देखता कहता है, उसके निश्चयविषे जगत जीव कोऊ नहीं, अरु चारों प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तिनके पूर्णताको प्राप्त होता है, किसी ओरते उनको न्यूनता नहीं, सर्व संपदा सपन्न विराजमान होता है, जैसे पूर्णमासीका चद्रमा न्यूनताते रहित विराजता है, यद्यपि भोगको सेवता तौ भी तिसको दु खदायक नहीं होते, जैसे कालकूट विषको सदाशिवने पान कियाथा, परतु तिसको दु खदायक न भया, तैसे वह भी समर्थ है, ताते भोग दुःखदायक नहीं होते, जैसे चोरको जानिकै अपने वशवर्त्ती किया, तब मित्रभाव हो जाताहै, तैसे भोग उसको दु ख नहीं देते, जब भोगको जानता है कि, यह कछु वस्तु नहीं, तब सुखका कारण होते हैं, जबलग इनको सत् जानिकै आसक्त होता है, तबलग दु खके कारण होते हैं ॥ हे रामजी ! जैसे कोऊ यात्राको जाता है, अरु मार्गविषे स्त्रियां पुरुष मिलते है, उनविषे इकट्ठा बैठना, अरु चलना भी होता है, परतु आपसमें आसक्त नहीं होते, आगे पाछे

चले जाते हैं, तैसे ज्ञानवान् ससारके पदार्थोंविषे चित्तको नहीं लगाता, जैसे कोऊ कासिद किसी देशविषे जाता है, अरु मार्गविषे कई सुंदर रमणीय स्थान दृष्ट आते हैं, कई मलिन कष्टके स्थान भासते हैं, परंतु रागद्वेष किसीविषे नहीं करता, जैसे तैसे देखता चला जाता है, तैसे ज्ञानवान् भोगक्रियाविषे रागद्वेषकरि बंधमान नहीं होता, सर्व संशय तिसके सम्यक्ज्ञानकरि शांत हो जाते हैं, कोऊ पदार्थ उसको आश्चर्यताकरि दिखाई नहीं देता, वासनाके समूह नष्ट हो जाते हैं, चक्रवर्त्ती राजाकी नाईं शोभता है, परिपूर्ण होके स्थित होता है, जैसे क्षीरसमुद्र अपने आपविषे पूर्ण समाता नहीं, तैसे ज्ञानी अपने आपविषे पूर्ण समाता नहीं॥ हे रामजी! इन जीवनको भोगकी इच्छा दीन करती है, तिसकरि आत्मपदते गिरते हैं, अनात्माविषे प्राप्त हुए कृपण हो जाते हैं, तिनको देखिके आत्म उत्तमपद आलत्री हँसते हैं कि, यह मिथ्या दीनभावको प्राप्त हुए हैं, जैसे स्वामी होकर स्त्रीके वश होवै, स्त्री स्वामीकी नाईं होवै, अरु भर्त्ता दीन हो जावै, अरु तिसको देखिके लोक हँसते हैं, तैसे ज्ञानवान् भोगकी तृष्णावालेको दीन देखिके हँसते हैं, चचल मनही परमसिद्धातसुखते जीवको गिरावता है, ताते मनरूपी हस्तीको विचाररूपी कुदे से वश करहु, तब सिद्धपदको प्राप्त होवोगे, जिसका मन विषयकी ओर पड़ा धावता है, सो ससाररूपी विषका वीज बोता है, ताते प्रथम इस मनको ताड़न कर, तब शातिकी प्राप्ति होवैगी, जो मानी होता है, अरु कोऊ उसका मान करता है, तब वह उपकार कछु नहीं मानता, जब प्रथम उसको ताडन करता है, तब वडे थोडे उपकार कियेते प्रसन्न होता है, जैसे धान्य जलकरि पूर्ण होते हैं, तब जलके सींचनेकरि उनते उपकार नहीं होता, अरु जो ज्येष्ठ आषाढकी धूपकरि तप्त होते हैं, तब थोडा जल सींचनेकरि भी उनको अमृतवत् होता है, तैसे जब प्रथम मनका सन्मान करिये तब मित्रभाव नहीं होता, अरु जब ताडन करिके पाछे सन्मान करिये, तब उपकार मानिके मित्रभाव हो रहैगा, सो ताडन करना यह है कि, विषयते सयम करना, जब सयम करिके निर्माण हुआ तब यह सन्मान करना कि, ससारके पदार्थ-

विषे वर्तावना, तब शत्रुभावको त्यागिकै मित्र हो जाता है, जैसे वर्षाकालविषे नदी जलकरि पूर्ण होती है, तिसविषे जलका उपकार नहीं होता, शरतकालविषे जलका उपकार होता है, जैसे राजाको अपर देशका राज्य प्राप्त होवै, तब वह कछु प्रसन्नताको नहीं प्राप्त होता, प्रथम बंदीस्थानविषे डारिये, पाछे, एक थोडा ग्रास दीजिये, तिसकरि प्रसन्न होता है, तैसे जब प्रथम मनको ताडन करिये, तब पाछे थोडे सन्मानकरि भी सुखदायक होता है, तातें हाथसों हाथ मीडके अरु दंतसों दंत मिलाइकै अरु अंगसों अंग रोकिकै इंद्रियको जीति ले, इस पुरुषके हृदयविषे मनरूपी सर्प कुंडल मार बैठा है, अरु कल्पनारूपी विषकरि पूर्ण है, जिस पुरुषने उसको मर्दन किया है, तिसको मेरा नमस्कार है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे चतुर्थे स्थितिप्रकरणे शरीरनगरवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४.

मनस्वीसत्यताप्रतिपादनम्।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अज्ञानी जीव महानरकको प्राप्त होता है, आशारूपी बाणकी शलाका तिनको लगती है, इंद्रियरूपी शत्रु मारते हैं, इंद्रियां दुष्ट बडी कृतघ्न है, जिस देहके आश्रय रहती है, तिसको शोक अरु इच्छाकरि पूर्ण करती है, अरु महादुष्ट दुःखदायक भंडार है, इनको तुम जीतहु, इंद्रियां मनरूपी चील पक्षी हैं, जब विषय नहीं होते, तब ऊर्ध्वको उडते हैं, जब विषय प्राप्त होते है, तब नीचेको आय गिरते हैं, जिस पुरुषने विवेकरूपी जालसे इनको बांधा है, तिसको ये भोजन नहीं करिसकते जैसे पाषाणके कमलको हस्ती भोजन नहीं कर सकता ॥ हे रामजी ! ये भोग आपातरमणीय हैं, अत्यंत विरस हैं, जो पुरुष इनविषे रमण करताहै, सो अंत नरकको प्राप्त होवैगा, जो पुरुष ज्ञानके धनकरि संपन्न है, अरु देहरूपी देशविषे रहता है, सो परमशोभाको पाता है, अरु आनंदवान होता है. काहेते कि, बडे ऐश्व-

येकरि तिसने इंद्रियरूपी शत्रु जीते है ॥ हे रामजी ! स्वर्णके मंदिरविषे रहनेकरि ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा निर्वासनिक ज्ञानवान्‌को होता है, जो अपने शरीरनगरविषे रहता है, जिस पुरुषने इंद्रियां अरु असत्‌रूपी शत्रुको जीता है, सो परमशोभाकरि शोभता है, जैसे हिमऋतुको जीतिके वसंतऋतुविषे मंजरी शोभती है, जिस पुरुषके चित्तका गर्व नष्ट भया है, अरु इंद्रियांरूपी शत्रु जीते हैं, तिसकी भोगवासना नष्ट हो जाती है, जैसे शीतकालविषे पद्मिनियां नष्ट हो जाती हैं ॥ हे रामजी ! वासनारूपी वेतालनिशाचर तबलग विचरते है, जबलग एक तत्त्वका दृढ अभ्यास करिकै मनको नहीं जीता, जब विवेकरूपी सूर्य उदय होता है, तब अंधकार नष्ट हो जाता है, जब विवेककरि मनको वश करता है, तब इंद्रियां भृत्य टहलुए हो जाते है, अरु मनरूपी सब मित्र हो जाते हैं, आप राजा होके राज्यस्वरूपको भुगतता है ॥ हे रामजी ! विवेकीकी इंद्रियां पतिव्रता स्त्रीवत्‌ हो जाती है, अरु मन सीताकी नाई पालना करनेवाला होता है, अरु चित्त सुहृद्‌ हो जाता है, जब निश्चयवान्‌ पुरुष सच्छास्त्रको विचारता है, तब परमसिद्धांतको प्राप्त होता है, अरु मन अपने मननभावको त्यागिके शांतरूप सो पितावत्‌ प्रतिपालक हो जाता है, ताते मनको विवेककरिकै वश करहु, जैसे मणिको घसाय छेद पाडिके धागेकेसाथ परोते हैं, अरु कंठविषे पहनते हैं, तब बडी शोभाको प्राप्त होते हैं, तैसे मनरूपी मणि है, तिसको आत्मविचार शिलाके साथ घसावना, वैराग्य जलकरि उज्वल करना, अभ्यासरूपी छेद पाडिके विवेकरूपी तागेके साथ परोय कंठविषे स्थित करनेमें शोभा होती है, विवेक कैसा है, जो जन्मरूपी वृक्षको कुहाडा जैसा काटि डारता है, अरु मनरूपी शत्रुको मित्र करता है, सदा शुभ कर्मको करता है, अरु विषयके परिणामिक दुःखको निकट आने नहीं देता, ताते मनको वश करना आनंदका कारण है, जो मन वश नहीं होता, तौ दुःख देता है, जब वश होता है तब सुखदायक होता है ॥ हे रामजी ! मनरूपी मणि है, सो भोगकी तृष्णाकरि कलंकित हुई है, जब विवेकरूपी जलकरि इसको शुद्ध करै, तब शोभायमान होवैगी, यह मनार महाभयका देने-

हारा है, अल्पविवेकवान् पुरुष भी मायारूप संसारविषे गिरि पड़े हैं, तू छलकरि इतर जीवकी नाईं इसविषे मत गिर यह संसार मायारूप है, अनेक अर्थकी सांकरसंयुक्त है, महामोहरूपी कुहरकरि जीव अंध हो गये हैं, ताते तू विवेकपदका आश्रय कर, बोधकरि सत्का अवलोकन कर, इंद्रियते वैराग्यरूपी नौकाकरि संसारसमुद्रको तरिजाहु, शरीर भी असत् है, इसविषे सुख अरु दुःख भी असत् है, तुम दामव्यालकटकी नाईं मत होहु भीम भास दटकी स्थितिको ग्रहण करिकै विशोक होहु, अहं मम आदिक जो निश्चय है, सो वृथा है, तिसको त्यागिकै तत्पदका आश्रय करहु, चलते बैठते खाते पीते मनविषे मननका अभाव न होवै ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मनस्विसत्यताप्रतिपादनं नाम चतुर्विंशतितम सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशतितमः सर्गः २५

दामव्यालकटउत्पत्तिवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! संसारपापके दूर करनेहारे यह तुमने क्या कहा ? इसको खोलिकरि कहौ, दाम व्याल कटकी नाईं कैसे अरु भीम भास दटकी स्थिति कैसे है ? जैसे वर्षाकालका मेघ तप्तको दूर करता है, मोरको शब्दकरि जगावता है, तैसे तुम अपनी कृपाकरि जगावहु ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! प्रथम इनकी नाईं स्थित होय श्रवण करु, पाछे जो इष्ट होवै, तिसविषे विचरना, पाताल कुहरविषे शम्बर नाम दैत्यराजा होत भया था, सो मायारूप गणिका समुद्र अरु सर्व आश्चर्यरूप मनके मोहनहारा रमणीय था, सो दैत्य अपनी मायाकरिकै आकाशविषे नगर रचता भया, बाग रचे, दैत्यके मन्दिर रचे, सूर्य अरु चन्द्रमा रचे, अनंत ऐश्वर्यकरि सम्पन्न दैत्य रचे, अरु रत्नकी स्त्रिया रचीं, सो गान करें, तिस गानकरि देवताकी स्त्रियां भी तिनने जीतीं अरु चन्द्रवत् वृक्ष रचे फल लगे, अरु कमलिनी श्वेत पीत रत्नकी रचीं, स्वर्णके हंस रचे के सारस पक्षी रचे जो स्वर्णके कमल अरु स्वर्णके वृक्षकी

पर बैठे हुए, अरु करजुवेके बूटे, तिनमें कमलवृक्षके फूल लगे, रत्नकारि जडे हुए, सुन्दर स्थान, बरफकी नाईं शीतल वगीचे वन स्थान चन्दनके रचे, इंद्रका नन्दनवन तिसते विशेष, सर्व ऋतुके फूल तिनविषे दैत्यनहूकी स्त्रियां क्रीडा करती फिरैं, अरु बड़े ऐश्वर्य रचे, विष्णु अरु सदाशिवके सदृश ऐश्वर्यसंयुक्त अपना नगर किया, रत्नके तारागण रचे, बडे प्रकाशसंयुक्त जब रात्रि पडै तब सो चन्द्रमाके साथ उदय होवैं, अरु पुतलियां गान करैं, अरु मायाके हस्ती ऐसे रचे, जो इंद्रके ऐरावतको जीति लेवें, त्रिलोकीकी विभूतिते उत्कृष्ट विभूति उसने रची, अन्तर्बाहिर सर्व सम्पदाको पूर्ण किया, सब ऐश्वर्यकारि सम्पन्न अरु सब दैत्यमण्डलेश्वर वन्दना करैं, सो आप सर्व दैत्योंका शासन करनेहारा राजा हुआ, सब इसकी आज्ञामें वर्तें, महा वड़ी भुजा तिनके नीचे सब दैत्य विश्राम करैं, इस प्रकार सम्पूर्ण राज्य अरु स्थानके मण्डलेश्वर तिसने रचे, सेना रची, अरु राज्य करत भया, जब शवर दैत्य शयन करै, अथवा देशांतरको जावै, तब अवकाश देखिकै देवताके नायक तिसकी सेनाको मारि जावैं; अरु स्थान लूटि ले जावैं, तब शवरने रक्षा करनेहारे सेनापति रचे, बहुरि समय देखिकै देवता तिनको भी मारिगये, तब शवरने सुनिकै कोप किया कि, इनको मारौं, ऐसे विचारिकै अमरपुरीपर चढिकै गया, देवता भयभीत होके सुमेरु पर्वतमें भवानीशंकरके पास जायके छिपते हुए, अपर नव कुंज अरु समुद्रविषे जाय छिपे, जैसे प्रलयकाल विषे सब दिशा शून्य हो जाती है, तैसे अमरपुर स्वर्ग शून्य हो गया, तब दैत्यराज अमरपुरीको शून्य देखिकै कोपमान हो अग्नि लगादी, लोकपालके पुर सब जलाय दिये, देवतोंको दृढ रहा, परंतु कहूं देखनेविषे न आये, जैसे पापी पुण्यको देखै, अरु कहू दृष्टि न आवै, तैसे देवता कहू न भासे, तब शंवर कोपमान होके बडी बली राक्षससेनाको रक्षाके निमित्त माया करिकै रचत भया, मानो कालकी मूर्तियां हैं, ऐसे होकारि स्थित भये, मानो बड़े आकारवाले पर्वत पवन संयुक्त दिखते हैं, ऐसे शरीर दाम, व्याल, कट यह तीन तिनके नाम हैं अरु हाथविषे बड़े शस्त्र, अरु भुजा कल्पवृक्षकी नाईं, अरु यथाप्राप्त कर्मविषे लगे रहें, यह इनका धर्म अरु इनको

कर्मका अभाव, काहेते जो पूर्व वासना, कर्म उनको न था, निर्विकल्प चिन्मात्र उनका स्वरूप था, अरु अपने स्वभावसत्ताविषे स्थित न थे, अरु अनात्मभावको प्राप्त भये न थे, एक स्पंदमात्र कर्मरूप चेतना उन विषे थी, सो कर्मका बीज चित्तकलना स्पन्दरूप हुई थी, मननात्मक शस्त्रप्रहारको रचे थे, तिसीको पड़े करैं, परन्तु अन्तरविषे स्पष्ट वासना उनको कोऊ न फुरै, आकाशमात्र स्वभावकरि क्रिया उनकी पडी होवै-जैसे अर्ध सुषुप्त बालक अपने अंगको स्वाभाविक हिलाता है, वासनाते रहित तैसे वह वासनाविना चेष्टा करैं, गिरना अरु गिरावना कुछ न जानै अरु न जानैं कि, हम इसको मारते हैं, न यह जानैं हम मरते हैं, न दौडना जानै, न भागना जानैं, न जानैं हम जीते हैं, न जानै हम मरते हैं, जीत अरु हारको कछु न जानैं, केवल शस्त्रका प्रहार करैं, जैसे यन्त्र की पूतली तागेपर पडी चेष्टा करती है, विना संवेदन तैसे दाम, व्याल, कट चेष्टा करै, महाबली जिनके प्रहारकरि पहाड़ भी चूर्ण हो जावैं, तिनको देखिकै शंबर प्रसन्न हुआ कि, ये सैन्यकी रक्षाको बडे बली हैं, इनका नाश भी उनसों न होवैगा, काहेते कि, इनको इष्ट अनिष्ट कछु नहीं, जिनको इष्ट अनिष्टका ज्ञान अरु वासना नहीं, तिनका नाश कैसे होवै, अरु भागे कैसे ? जैसे देवताके हाथी भी बड़े बली है, तौ भी सुमेरुको उखारि नही सकते, दन्तके चूर्ण होजाते हैं, तैसे देवता बड़े बली भी है, परन्तु इनको मार नहीं सकेंगे, यह बड़े बली रक्षक हैं॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकट उत्पत्तिवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशतितमः सर्गः २६

दाम व्याल कट संग्रामवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार निर्णय करिकै शंबरने दाम व्याल कटको स्थापन किये, अरु भूतलविषे देवताका सैन्य भी आया जब शंबर चढ़ता था, तब भाग जाते थे, अरु सैन्यको देखिकै वह भी

निकसे, समुद्र अरु पहाड़से उछलिके एक ओर देवता निकसे, बडी सेनासहित युद्ध करने लगे, जैसे प्रलयकालके समुद्र क्षोभते हैं, अरु सब जलमय हो जाताहै, तैसे देवता अरु दैत्य सर्व ओरते पूर्ण हो गए, वडे वाणकारि युद्ध करने लगे, शंखध्वनिकारि शस्त्र चलैं, तिनते शब्द होवै, अरु अग्नि निकसै, ताराकी नाईं चमत्कार करैं, शरीरके शिर काटे जावें, अरु धड कम्पि कम्प गिर पडैं, परस्पर दोनों ओरते शस्त्र चलैं, दाम, व्याल, कट, भाग नहीं जावै, मारतेही जावैं, जिनके प्रहारसे पहाड़ चूर्ण हो जावैं, सब दिशाविषे शस्त्र पूर्ण हो गए, रुधिरके प्रवाह चलें तिनाविषे देव दैत्य मरे वहते जावैं, महाप्रलयकी नाईं भय उदय हुआ, एक एक अस्त्र ऐसा चले, जिसते शस्त्रकी नदियां चलें, कोऊ अग्निका अस्त्र चलावै, कोऊ मेघका अस्त्र चलावै, कोऊ तम अस्त्र चलावै, दूसरा प्रकाशरूप अस्त्र चलावै, कोऊ निद्रारूप, दूसरा प्रबोधरूप, कोऊ सर्परूप, दूसरा गरुडरूप, इसप्रकार परस्पर युद्ध करें, बहुरि ब्रह्मास्त्र चलावै, शिलाकी वर्षा होवै, तव सब पृथ्वी रक्त अरु मास-करि पूर्ण हो गई, अनेकन जीवनके धड शीश गिरि पडे, जैसे वृक्षते फल गिरते हैं, तैसे देवता दैत्य गिरे, वड़ा युद्ध हुआ, गंधर्व, किन्नर, देवता, बहुत नष्ट भये, दैत्य भी बहुत नष्ट हुए, परंतु कछु उनकी जीत रहै, इस-प्रकार मायावी शंबरकी सैन्य अरु देवतोंका युद्ध हुआ, जैसे वर्षाकालमें आकाशविषे मेघघटा पूर्ण हो जाती है, तैसे देवता अरु दैत्यकी सेना इकट्ठी होगई, दिशा विदिशा सब स्थान पूर्ण होत भए ॥ इति श्रीयोगवा-सिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटसंग्रामवर्णनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमः सर्गः २७.

ब्रह्मवाक्यवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार घोर संग्राम हुआ, देवता अरु दैत्यके शरीर गिरे, जैसे परस्पर टूटेते पर्वत गिरते हैं, रुधिरके प्रवाह चले, वडे शब्द हुये, आकाश, पृथ्वी शब्दकरि पूर्ण हो गए, दामने देव

ताके समूह वेष्टित किये, व्यालने पकड़िके देवतोंको पहाड़विषे पीसि डारे, कटने देवतोंके समूह चूर्ण किये उनके स्थान तोड डारे, बडा क्रूर संग्राम किया, देवतोंका हस्ती जो मदकरि मस्त था, सो ताडनकरि क्षीण होगया, सो वहांते भागा, भयभीत होइकरि देवता भी भागे, तब दैत्यकी सेना वृद्धि होत भई, जैसे मध्यान्हके सूर्यका बड़ा प्रकाश होता है, तैसे दैत्य प्रकाशवान् भए, देवता बहुत मारे गए, जैसे जलका प्रवाह पुल टूटेते तीक्ष्ण वेगकरि चलता है, तैसे देवता तीक्ष्ण वेगकरि भागे, जलके प्रवाहवत् मर्यादा छूटि गई, दाम, व्याल, कटकी सेना जीत पाती भई, देवतोंके पाछे लागे मारते जावें, जैसे काष्ठते रहित अग्नि अंतर्धान हो जाता है, तैसे बलवान् देवता बलसों हीन भए अंतर्धान हो गए, दैत्य ढूंढते फिरैं, परंतु देवता कहूं न पावैं, जैसे जालसों निकसे पक्षी कहु हाथ नहीं आते, तैसे देवता तिनके हाथ नहीं आये, जैसे मृग बंधनसो छूटा निकस जावै, अरु हाथ न आवै, तब दाम, व्याल, कट, तीनो सेनासहित पातालविषे आनि स्थित भए, अपना स्वामी जो शंबर था, तिसके पास प्रसन्नताके लिये आए अरु वहाँ देवतोंने श्रवण किया कि, दैत्य पातालविषे जाय स्थित भए, तब विचार करिके चिंतवते भए कि, किसी प्रकार इनते ईश्वर हमारी रक्षा करे, ऐसी चिंताकरि आतुर भए, तब ब्रह्माजी देवतोंके निकट आनि प्राप्त भए, अमित तेज है जिसका, अरु अमित जिसके रक्तवस्त्र हैं, जैसे संध्याकालमे रक्तवर्ण बादल होते हैं, तिनविषे चंद्रमा शोभता है, ऐसे प्रकाशवान् ब्रह्माजीको देखिके इंद्रादिक देवता प्रणाम करत भये, शंबर दैत्यकी शत्रुताकरिके कहत भये ॥ हे त्रिलोकीके ईश्वर! हम तेरी शरण आए हैं, हमारी रक्षा करो, शंबरदैत्यने हमको बहुत दुःख दिया है, तिसके सेनापति दाम, व्याल, कट हैं, सो बड़े दैत्य हैं, किसी प्रकार हमसों मारे नहीं जाते, अरु हमारी सेना उनने बहुत चूर्ण करी॥ हे रामजी! इसप्रकार संपूर्ण वृत्तांत दाम, व्याल, कटका ब्रह्माजीप्रति कहत भये अरु कहा कि, इनके मारनेका उपाय हमको कहो, जिसप्रकार यह नष्ट होवैं, तब संपूर्ण जगतपर दया करनेहारा ब्रह्माजी वचन कहत भया, कैसे वचन जो शांतिके कारण हैं॥ब्रह्मोवाच ॥

हे अमरेश ! ये दैत्य अब तौ नष्ट नहीं होवैंगे, जब इनको अहंकार उपजैगा, तब यह मरेंगे, तुमही उनको जीतौगे, मै इनकी भविष्यत् देखी है, अरु दाम, व्याल, कट युद्धविषे भागना नहीं जानते, अरु मरने मारनेका ज्ञान भी इनको नहीं, ये शबर दैत्यकी मायाकरि रचे हैं, इनका नाश कैसे होवै, जिसको अहममका अभिमान होवै, तिसका नाश भी होता है, सो अह मम आदिक शत्रुको ये जानते नहीं, इनका नाश कैसे होवै ? इसप्रकार इनका नाश कदाचित् होना नहीं, जब इनको अहंकार उपजैगा, तब इनका नाश होवैगा, सो अहंकार उपजानेका उपाय मै तुमको कहता हौं, तुम उनके साथ युद्ध करते रहौ, और इसप्रकार करौ कि, कभी उनके सन्मुख कभी दाहिने कभी वांये होहु, कभी भागि जाहु, इसप्रकार जब तुम वारंवार करौगे, तब उनके युद्धके अभ्यासवशते अहंकारका अंकुर आनि उपजैगा, जब अहंकारका चमत्कार हृदयविषे उपजा, तब तिसका प्रतिबिंब इदंरूप भी देखेंगे, बहुरि वासना भी फुरि आवैगी कि, हम ये हैं, हमको यह कर्तव्य है, यह ग्रहण करने योग्य है, यह त्यागने योग्य है, इत्यादिक वासनाजाल उनके चित्तविषे फुरि आवैगी, आपको दाम, व्याल, कट जानैगे, तब तुम उनको वश कर लेहुगे, तुम्हारी जय होवैगी, जैसे जालविषे फसा पक्षी वश होता है, तैसे वे अहंकारकरिके वश होवैंगे, अभी वे वश नहीं होते, सुखदुःखते रहित बडे धैर्यवान् हैं, अभी उनको तुह्मारा जीतना कठिन है ॥ हे साधो ! जो पुरुष वासना तंतुसे बांधे हुए हैं, अरु कीटके कार्यके वश हैं, सो इस लोकविषे वश होजाते हैं, अरु जो निर्वासनिक पुरुष बुद्धिवान् हैं, सर्वत्र असंसक्तबुद्धि हैं, किसी विषे बंधवान् नहीं होते, इष्ट अनिष्टविषे समभाव रहते हैं, सो किसीकरि जीते नहीं जाते, ये अजित पुरुष हैं, अरु जिनके अंतर वासना है, इसी जेवरीकेसाथ बांधे हुए हैं, देहविषे अभिमान है, अथवा सर्वको वेत्ता भी है, तौ बालक भी उसको जीति लेते हैं, अहं मम आदिक कल्पनाकरि जो कलंकित है, सो सब आपदाका पात्र है, सब आपदा तिसविषे आनि प्रवेश करती हैं, यह देह मात्र परिच्छिन्नरूप जो पुरुष आपको जानता है, तिसविषे भावना भासती फुरी है;

जो सर्वज्ञ है, तौ भी वह कृपणताको प्राप्त होता है, उसविषे उदारता कहा है, इसका अपना स्वरूप अनंत आत्मा है, अप्रमेय है, तिस स्वरूपका जिसको प्रमाद हुआ है, अरु देहादिकविषे आत्मअभिमान हुआ है, तिसने आपको आपही दीन किया है, जबलग आत्मतत्त्वते इतर इसको त्रिलोकीविषे कछु भी सत् भासता है, तबलग तिसकी उपादेय बुद्धि होती है, भावनाके साथ बांधा रहता है, संसारविषे सत् भावना करनी अनंत दु खका कारण है, अरु संसारविषे असत् बुद्धि सुखका कारणहै, हेसाधो! जबलग दाम,व्याल,कटको जगत्के पदार्थनविषे आस्थाभाव नहीं तबलग तुम इनके जीतनेको समर्थ न होवोगे जैसे मक्खी वायुके जीतनेको समर्थ नहीं होती, जिसको देहविषे अहंभावना होती है, अरु जगत्विषे सत्बुद्धि होती है, सो जीव है, अरु दीनताको प्राप्त होता है भावै कैसा बली होवै, उसको जीतना सुगम है, अरु तुच्छ कृपण है, अरु जिसके अंतर वासना नहीं अरु मक्षिकावत् है, तौ भी सुमेरुकी नाईं गरिष्ठ हो जाता है ॥ हे देवताओं! जो वासनासंयुक्त है, सो परम कृपणताको प्राप्त होता है, सो गुणी गुणोंकरि बांधा जाता है, जैसे मणिकेविषे छिद्र होता है, तब तागेकरि परोया जाता है, अरु छिद्रते रहित है, सो परोया नहीं जाता, तैसे जिसका हृदय वासनाकरि वेधा है, तिसके अंतर गुणावगुण प्रवेश करते हैं, अरु जो निर्वेध है, तिसके अंतर प्रवेश नहीं करते है, ताते जिसप्रकार अहं इदं आदिक वासना दाम,व्याल, कटके अंतर उपजे, सोई उपाय करो, तब तुम्हारी जय होवैगी, जिस जिस इष्ट अनिष्टके भाव अभावको जीव प्राप्त होते है, सो तृष्णारूपी करंजुवेका बूटा है, तिसकरि आपदाको प्राप्त होते हैं, इसते रहित हुएते आपदाका अभाव हो जाता है, जो वासनारूपी तंतुकेसाथ बांधे हुए है, सो अनेक जन्म दुःखको प्राप्त होवैंगे, जो बलवान् है, अरु सर्वज्ञ है, कुलका अधिष्ठाता वड़ा भी है अरु तृष्णासंयुक्त है, तौ बँधा है, जैसे सिंह है, अरु साँकरके पिंजरे [illegible]बांधा है, तब उसका बल अरु बडाई किसी कार्य नहीं आती, तैसे [illegible]तृष्णाकरि बांधा है, सो तुच्छ है, तिसको देहमात्रविषे अहंभाव है, [illegible] तृष्णा बड़ी उत्पन्न होती है, सो पुरुष ऐसा है, जैसा पक्षी तागेमें

वांधा होवै, अरु यम भी तिसको वश करता है, जैसे रज्जुकेसाथ वांधे हुए पक्षीको वालक भी खैंच वश करता है, अरु जो निर्वासनिक पुरुष है, तिसको मारि कोऊ नहीं सकता, जैसे आकाशविषे उड़ते पक्षीको कोऊ पकड नहीं सकता, ताते शस्त्रयुद्धको त्याग, अरु उनको वासना उपजावहु, तव वश होवैंगे ॥ हे इन्द्र ! जिसको अहं मम इदं आदिक वासना नहीं, राग द्वेपकरि अंतःकरण क्षोभवान् नहीं होता, तिसको-शस्त्रकरि अरु अस्त्रकरि कोऊ जीति नहीं सकता, ताते दाम,व्याल,कटके जीतनेको अपर उपायकरि समर्थ न होहुगे, युद्धके अभ्यासकरि जव इनको अहंकार उपजाओगे, तव ये तुम्हारे वश होवैंगे, तुम इनके जीवनेको समर्थ होहुगे ॥ हे साधो ! यह तौ शंवर दैत्यके रचे हुए यन्त्रपुरुष हैं, इनके अंतर वासना कोई नहीं, जैसे उसने रचे हैं, तैसेही निर्वासनिक पुरुष हैं, जव तुम उनको युद्धका अभ्यास करावहुगे, तव इनको अहंकार वासना उपजि आवैगी, ये तुमको वश करनेकी परम युक्ति कही है, जवलग उनके अंतर वासना नहीं फुरती तवलग तुमकरि ये अजीत हैं, ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामोपाख्याने ब्रह्मवाक्यवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः २८.

सुरासुरयुद्धवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिके ब्रह्माजी अंतर्धान होत भया, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिके शब्दकरि लीन होता है, तैसे शब्दकरिके अंतर्धान हो गया, तव देवता वचन सुनिके अपनी वाञ्छित दिशाको गमन करते भये, जैसे कमलकी सुगंधिको पवन ले जाता है, तैसे जायकरि कुछ दिन अपने स्थानविषे रहे, जैसे भँवरे कमलविषे रहते हैं, तैसे रहिकै अपने कल्याणके निमित्त उनके नाश करनेको उठे, अपने स्थानते उठिकै युद्धको चले, प्रथम देवतोंने शंख वजाए, जिनका महा शब्द हुआ, जैसे प्रलयकालविषे मेघ गर्जते हैं, तैसे शब्दकरि सस्थान पूर्ण हो गए, तव पाताल छिद्रते शब्द सुनिकै दैत्य निकसे,

आकाश मार्गते देवता आए, युद्ध होने लगा, तव वरछी, वाण, मुद्गर, मुसल, गदा, चक्र, वज्र, पहाड, वृक्ष, सर्प, अग्नि, आदिक शस्त्र अस्त्र चलने लगे, एक ओर देवता चलावें, एक ओर दैत्य चलावें, शस्त्रअस्त्रके प्रवाह चले, देशप्रदेशविषे पहाड वृक्षकी नदी चलीं; चक्र, मुसल, त्रिशूल, आदिक शस्त्र ऐसे चले, जैसे गंगाका प्रवाह चलता है, तैसे शस्त्रअस्त्रके प्रवाह चले जावें और अग्नि लगाई, देवता अरु दैत्यके समूह नष्ट हो गए, अंग फूटि गए, शीश, भुजा काटे गए, संपूर्ण पृथ्वी रक्तकरि पूर्ण हो गई, जैसे समुद्रके उछलनेकरि पृथ्वी जलसों पूर्ण हो जाती है, तैसे रुधिर करि पूर्ण हो गई, आकाश दिशाविषे अग्निका तेज बढ गया, जैसे प्रलयकालविषे द्वादशसूर्यका तेज होता है, बड़े पहाड़की वर्षा होवे, रुधिरके प्रवाहविषे पहाड़ भ्रमते फिरैं, जैसे समुद्रविषे तरंग घूम २ फिरते हैं ॥ हे रामजी ! ऐसा युद्ध हुआ, क्षणविषे पहाड़के प्रवाह दृष्टि आवें, क्षणविषे शस्त्रके प्रवाह, क्षणविषे सर्पके, क्षणविषे गरुडके, क्षणविषे अप्सरागण अंतरिक्षविषे भासैं, क्षणविषे जलमय हो जावें, क्षणविषे सभास्थान अग्निसों पूर्ण हो जावें, क्षणविषे सूर्यका प्रकाश भासे, क्षणविषे सर्व ओरते अंधकार भासै, महाभयानक युद्ध होने लगा; दैत्य आकाशविषे उड़ें उड़ उड़ युद्ध करैं, देवता वज्र आदिक शस्त्र चलावैं, जैसे पंखते रहित पहाड़ गिरते है, तैसे दैत्य गिर, सो भूमिलोकविषे आय पड़ैं, अनेक देवता दैत्यके समूह गिर पड़े, किसीका शिर किसीकी भुजा काटी गई, चरण हाथ काटे गये, जैसे वृक्ष पहाड़ होते हैं, ऐसे जिनके शरीर है सो गिर गिर पड़ैं, अनेक संकटको देवता अरु दैत्य प्राप्त भये, महादारुण युद्ध होने लगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे सुरासुरयुद्धवर्णनं नाम अष्टाविंशतितम सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशतितमः सर्ग २९.

असुरहननवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब देवता अरु दैत्यनका युद्ध हुआ, बहुरि देवतोंका धैर्य नष्ट हो गया, युद्धते कृपण होके अंतर्धान

भए, बहुरि पैंतीस वर्षते उपरांत युद्ध करने लगे, कभी पांच दिन उपरांत कभी सात अष्ट उपरांत, कभी मासउपरांत, युद्ध करै, बहुरि छुप जावैं, ऐसे विचारकरि छलसों उनकेसाथ युद्ध करै, कबहू दाम, व्याल, कटके निकट जावे, कबहूं दाहिने, कबहूं बांयें, कबहू आगे, कबहु पाछे दौडने लगै, इधर उधर देखिकै मारने लगै, इसप्रकार जब देवतोंने बहुत उपाय किये, तब युद्धके अभ्यासते दाम, व्याल, कटभी देवतोंके पाछे दौडनें लगे, वह भी ये भी इधर उधर देखने लगे देहादिकविषे तिनको अहंकार फुरि आया ॥ हे रामजी ! जैसे निकटताकरिकै दर्पणमें प्रतिबिंब पड़ता है, दूरका नहीं पड़ता, तैसे अतिशय अभ्यासते अहंकार फुरि आता है, अन्यथा नहीं फुरता, जब अहंकार तिनको फुरा, तब पदार्थकी वासना भी फुरि आई, बहुरि यह फुरा, हम दाम, व्याल, कट हैं, किसीप्रकार जीते रहैं, जीनेकी इच्छाकरि दीनभावको प्राप्त भये, अरु भय पाने लगे कि, इसप्रकार हमारा नाश होवैगा, इस प्रकार हमारी रक्षा होवैगी, सो उपाय करें, जिसकरि हम जीवते रहैं, इसप्रकार आशाकी फांसीविषे बांधे हुए, दीनभावको प्राप्त हुए, आपको देहमात्रविषे आस्था करत भए कि, देहरूपी लता हमारी स्थिर रहै, हम सुखी होवें, इस वासनासंयुक्त पूर्वकी धैर्यको त्यागते भये और जानने लगे कि, ये हमारे शत्रु हैं, नाशकर्त्ता हैं, इनते हमारी रक्षा होवै, इत्यादिक कृपणताको प्राप्त हुए धैर्य नष्ट हो गया जैसे जलबिना कमलकी शोभा जाती है, तैसे इनकी शोभा जाती रही, खानपानकी वासना फुरि आई, ससारकी भयानक गतिको प्राप्त भये युद्ध करै तब आश्रय लेकर करैं, ढाल आदिक आगे रक्खें, अहकारकरिकै भयभीत हुए, यह हमको मारते हैं हम इनको मारते हैं, इस चिंताकरिकै इन सबके हृदय फँसि गये, शनैःशनैः युद्ध करने लगे, जब देवता शस्त्र चलावें, तब बच जावें, भयभीत होकरि भागें, अहकार जो आय उदय हुआ, तिसकरि तिनके मस्तकपर आपदाने चरण आन रक्खे, महादीन जैसे होगए, मुखकी शोभा जाती रही; धैर्य बल नष्ट हो गया, ऐसे हो गये, जो कोऊ आगे पडै, तो भी तिसको मारि न सकै, जैसे काष्ठते रहित हुआ अग्नि क्षीरको नहीं भक्षण

निश्चय ऐसा है, अनेक आपदाको प्राप्त करता है, जो अनत दुःखको भुगतता है, कहां शवर दैत्यकी सेनाके साथ अरु देवतोंके नाशकर्त्ता अरु कहां तप्त जलके मच्छ जर्जरीभावको प्राप्त हुए जिनके शरीर, कहां वह धैर्य अरु वल जिसकरि देवतोंको नाश करना, अरु भगावना, अरु आप चलायमान न होना, अरु कहां क्रांत देशके राजाके किंकर धीवर होना, कहा वह निरहंकार चित्त शांत उदारता अरु धैर्य, अरु कहां वासनाकारि मिथ्या अहंकारसों सयुक्त होना ? एते दुःख आपदाको प्राप्त हुए, सो अहंकारकारि हुए हैं, अहकारकरिकै ससाररूपी विषकी मंजरी शाखा प्रतिशाखा वढी हैं, ससाररूपी वृक्षका वीज अहकार है, जवलग अहंकार है, तवलग अनेक दुःख आपदा प्राप्त होतें हैं, ताते तुम अहंकारको यत्नकरिकै मार्जन करहु, मार्जन करना यह है कि, अहंवृत्ति है तिसको असत् जानो कि, मै कछु नहीं, इस मार्जनकारि सुखी होवैगा॥ हे रामजी ! आत्मरूपी अमृतका चद्रमा है, शीतल शांतरूप तिसका अग है,अहकाररूपी मेघ आया है,तिसकारि वह अदृष्ट हुआ भासता नहीं, जव विवेकरूपी पवन चलै, तव अहकार वादल नष्ट होवै, आत्मारूपी चद्रमा प्रत्यक्ष भासै,अहकार पिशाच जव उपजा,तव दाम,व्याल,कट तीनों मायारूप दानव सत् होके अनेक आपदाको भोगते है, अवलग काश्मीरके तालविषे मच्छ हुये पडेहै,सिवारके भोजन करनेको पडे यत्न करतेहैं, जो अहंकार न होता तो एती आपदाको क्यों प्राप्त होते?॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सत्का अभाव नहीं होता, अरु असत्का भाव नहीं होता, असत् दाम,व्याल,कट सत् कैसे भये? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार है, जो सत् नहीं सो किसीको कवहू कछु भान नहीं होता, परतु सत् किसीको असत् प्राप्त हुआ देखता है, अरु असत्को न हुआ देखा है जो स्थित हुआ है, इसी तेरे कहनेसों मैं युक्तिकारि तुझको प्रवोध करौंगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! हम तुम जो ये सव हैं, सो सत्यरूप हैं, अरु दामादिक जो थे, सो मायामात्र असत्रूप थे, सत् कैसे भए सो कहो ?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे दामादिक मायारूप असत्कारि मृगतृष्णाके जलवत् स्थित भये तुम हम देवता दानव संपूर्ण ससार असत्

मायामात्र सत् होके भासता है वस्तुते कछु हुआ नहीं. जैसे स्वप्नविषे अपना मरणा भासता है सो असत्रूप है, तैसा हम तुम आदिक यह जगत् भासता है, सो असत्रूप है जैसे स्वप्न-विषे अपने मरे बांधव आनि मिलते है, और चर्चा करते है अरु प्रत्यक्ष भासते है सो असत्रूप होते हैं, तैसे यह जगत् असत्रूप है ॥ हे रामजी ! यह जो मेरे वचन हैं, सो मूढको विषयभूत नहीं, उनको नहीं शोभते काहेते कि अज्ञानीके हृदयविषे ससारका सद्भाव दृढ हो गयाहै अरु अभ्यासविना इस निश्चयका अभाव नहीं होता जैसा निश्चय किसीके हृदय विषे दृढ हो रहा है, सो दृढ अभ्यासके यत्नविना कदाचित् दूर नहीं होता जिसको यह निश्चय है कि, जगत् सत् है, सो मूर्ख उन्मत्त है, अरु जो ज्ञानवान् है तिसके हृदयविषे जगत्का सद्भाव नहीं होता केवल ब्रह्मसत्ताका भाव होता है, अरु अज्ञानीको जगत् सत् भासता है, अज्ञा-नीके निश्चयको ज्ञानी नहीं जानता, अरु ज्ञानीके निश्चयको अज्ञानी नहीं जानता, जैसे मदकारि मत्त होवै तिसके निश्चयको अमत्त नहीं जानता, अरु अमत्तके निश्चयको मत्त नहीं जानता तैसे ज्ञानी अज्ञानीका निश्चय इकट्ठा नहीं होता जैसे प्रकाश अरु अंधकार इकट्ठा नहीं होता, धूप अरु छाया इकट्ठी नहीं होती, तैसे ज्ञानी अरु अज्ञानीका निश्चय इकट्ठा नहीं होता, जिसके चित्तविषे जो निश्चय है तिसको वही अभ्यास यत्नकारि दूरकरै तब दूर होता है अन्यथा नहीं होता ज्ञानी भी अज्ञानीके निश्चयको दूर नहीं करसकता जैसे मृतककी जीवकलाको मनुष्य ग्रहण नहीं करिसकते कि, उसके निश्चयविषे क्या है जो ज्ञानवान् है तिसके निश्चयविषे सर्व ब्रह्मका भान होता है और जगत् द्वैत कछु नहीं तिसीको मेरे वचन शोभते है आत्मअ-नुभव सर्वदा सवरूप है और सब असत् पदार्थ है यह वचन प्रबुद्धका विषय है तिसको शोभते है अरु अज्ञानीको जगत् सत् भासता है ताते ब्रह्मवाणी तिसको शोभा नहीं देती ज्ञानीको यह निश्चय है कि, जगत् रंचकमात्र भी सत्य नहीं एक ब्रह्मही परमसत्तास्वरूप है और यह अनुभव बोधवान्का है तिसके निश्चयको कोऊ दूर नहीं करि सकता, परमात्माते व्यतिरेक कछु नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषणभाव नहीं

तैसे आत्माविषे सृष्टिभाव नहीं, अरु अज्ञानीको पंचभूतते व्यतिरेक कछु नहीं भासता, जैसे स्वर्णविषे भूषण नाममात्र होता है, तैसे वह आपको नाममात्र जानता है, सम्यक्दर्शीको इसते विपरीत भासता है, अरु जो पुरुष होवै और कहै मैं घट हौं, जैसे यह निश्चय उन्मत्त है, तैसे हम तुम आदिक असत्‌रूप है, सत् वही है जो शुद्ध संवित्‌बोध आकाश निरंजनरूप है, सर्वगत शांतरूप है, उदयअस्तते रहित है, जैसे नेत्र दूषणवालेको आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, तैसे अज्ञानीको जगत् सत्‌रूप भासता है, आत्मसत्ताविषे जैसा जैसा किसीको निश्चय हो गया है, तैसाही तत्काल हो भासता है, वस्तुते जैसे दामादिक अणुहोते थे, तैसे तुम हम आदिक जगत् है, अनंत चेतन आकाश सर्वगत निराकारविषे फुरना होता है, सोई देहाकार हो भासते हैं, जैसे संवित्‌का किंचन दामादिक निश्चयसों आकारवान् हो भासे, तैसे हम तुम भी फुरनेमात्र हैं, संवेदनके फुरनेहीकरि स्थित भए हैं, जैसे स्वप्ननगर भासता है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है,तैसे हम तुम आदिक जगत् आत्मरूप भासता है, प्रबुद्धको सब चिदाकाशही भासता है, अपरको सब मृगतृष्णा अरु स्वप्ननगर भासता है- जो आत्माकी ओर जागे हैं, अरु जगत्‌की ओर सोये हैं, सो मोक्षरूप हैं, अरु जो आत्माकी ओरते सोये हैं जगत्‌की ओर जागे हैं, सो अज्ञानी बंधरूप हैं, अरु वास्तवते न कोऊ सोये हैं, न जागते हैं न बँधे हैं, न मोक्ष है, केवल चिदाकाश है, सोई जगत्‌रूप हो भासता है, निर्वाण सत्ताही जगत्‌लक्ष्मी होइकरि स्थित भई है, अरु जगत् निर्वाणरूप है, दोनों एक वस्तुके पर्याय हैं, जैसे तरु अरु विटप एकही वस्तुके दो नाम हैं, तैसे ब्रह्म अरु जगत् एकही वस्तुके पर्याय हैं, जैसे आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, अरु हैं नहीं, आकाशही है, तैसे अज्ञानीको ब्रह्मविषे जगत् भासता है, सो है नहीं, ब्रह्मही है जैसे किसीको नेत्रविषे तिमिरका रोग होता है, तिसकरि तरुवरे भासते हैं, सो तरुवरे नेत्ररोगते भिन्न नहीं तैसे अज्ञानीको अपना आपही अन्यत्‌रूप हो भासता है, सो चिदाकाश स्थानविषे भासता है, सो चिदाकाश सर्व ओर व्यापकरूप है, तिसते इतर जगत् असत् है, कछु वस्तु नहीं, सत्यरूप एक विस्तृत आकार वही सत्ता

है, महाशिलावत् घन स्वच्छ निस्पद उदयअस्ततें रहित है, सर्व कल्पनाको त्यागिकरि तिसी अपने आपविषे स्थित होहु॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे निर्वाणोपदेशवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्ग ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ३२.

देशाचारवर्णनम्।

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! असत्‌ही सत्‌की नाईं होके स्थित भया है, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे वैताल हो भासता है, सो जैसे हुआ तैसे हुआ है, अब यह कहौ, दाम व्याल कटके दुःखका अत कैसे होवैगा॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब तिसको अग्निविषे यमराजने भस्म कराये तब यमराजसों किंकर पूछते भए कि, हे प्रभो ! इनका उद्धार कब होवैगा तब यमराजने कहा, हे किंकरो ! जब ये तीनों आपसमें बिछुरि जावेंगे, अरु अपनी सपूर्ण कथा श्रवण करेंगे, तब निःसदेह होके मुक्त होवैगे यह नीति है॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह वृत्तांत कहाँ सुनेंगे, अरु कब सुनेंगे, अरु कौन निरूपण करैगा ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! काश्मीरदेशविषे एक बड़ा ताल है, अरु कमलोंकरि पूर्ण है, तिसके निकट एक छोटा ताल है,तिसविषे चिरपर्यंत वारवार मच्छ होवेंगे फिर मच्छका शरीर त्यागिकरि सारस पक्षी होवैंगे, कमलोंके तालऊपर रहेंगे, कमल अरु कमलनियां उत्पल आदिक फूलोंविषे विचरेंगे, सुगधको लेते चिरकाल व्यतीत करेंगे, तब दैवसयोगकरि उनके पाप नष्ट होवेंगे, अरु बुद्धि निर्मल हो आवेगी, तब तीनों आपसमे बिछुरि जावेंगे, अरु मुक्तियुक्तिको प्राप्त होवेंगे; जैसे राजसी तामसी सात्त्विक गुण आपसमें स्वेच्छित बिछुरि जाते हैं; तैसे वे स्वेच्छित बिछुरि जावेंगे, काश्मीर देशविषे एक पहाड़ है, तिसके शिखरपर एक नगर बसैगा,तिसका नाम प्रद्युम्न होवैगा, तिस शिखरपर कमलोंकरि पूर्ण एक ताल होवैगा, तहां एक राजाका स्थान होवैगा. ईशान कोणकी ओर राजाका मंदिर होवैगा, तिस मंदिरके एक छिद्रविषे घास तृणकरि आलय बनाय व्याल-

नाम दैत्य चिडिया होकरि तहां रहैगा कैसा आलय कि, वायुकरि तिसके तृण पड़े हिलैगे, तहां वह शब्द करैगा कैसा कि, तिसका अर्थ कछु समझिये नहीं निरर्थक शब्द होवैगा, तिस कालमें श्रीशकर नाम राजा होवैगा, गुण अरु भूतिकरि संपन्न मानो दूसरा इंद्र है, तिसके मंदिरकी छतकी कडीके छिद्रविपे दामनाम दैत्य मच्छर होकरि रहैगा, भूं भू शब्द करता विचरैगा, अरु कट नाम दैत्य तहां क्रीडाका पक्षी होवैगा, रत्नोंकरि जडे हुए पिंजरेविपे रहैगा, तिस राजाका मन्त्री वडा बुद्धिमान् होवैगा, जैसे हाथविपे आंवला होता है, तैसे उस मन्त्रीको बंध अरु मुक्तिका ज्ञान प्रसिद्ध होवैगा, अरु नरसिंह मन्त्रीका नाम होवेगा,सो मंत्री राजाके आगे दाम व्याल कटकी कथा श्लोक बांधिकरि कहैगा, तब करकर नामा पक्षी हुआ जो कट दैत्य है,सो पिंजरेविपे श्रवण करैगा तिस श्रवण करनेसों उसको अपना वृत्तांत सब स्मरण होवैगा, तिसको विचारैगा, तव मिथ्या अहंकार शांत होवैगा, परम निर्वाण सत्ताको प्राप्त होवैगा, इसीप्रकार राजाके मंदिरविपे चिडिया हुआ व्याल नाम दैत्य भी श्रवण करैगा. वह भी परमनिर्वाण सत्ताको प्राप्त होवैगा, इसप्रकार लकड़ीके छिद्रविपे मच्छर हुआ दाम नाम दैत्य भी श्रवण करिके मोक्ष होवैगा ॥ हे रामजी ! करकर पक्षी अरु चिडिया अरु मच्छर तीनों पहाडके शिखरपर राजमंदिरविपे वसनेहारे मोक्ष होवैगे, यह संपूर्ण क्रम तुझको कहा है, सो संसारभ्रम मायामय है, अत्यंत भास्वर प्रकाशरूप भासता है, तौ भी महाशून्य अविचारते सिद्ध है, विचारकरिके ज्ञान हुएते शांत हो जाता है, जैसे मृगतृष्णाका जल भली प्रकार देखेते शांत हो जाता है, यद्यपि अज्ञानी वडे पदको प्राप्त होता है, तौ भी अधोते अधो मोहते चला जाता है, जैसे दाम व्याल कट महाजालविपे पड़ेथे, कहां वह बल भौंहें टेढी करनेसे सुमेरु मंदराचल जैसे पर्वत पाड़े जावें, अरु कहां राजाके गृहविपे काष्ठके छिद्रसों मच्छर होना ? कहां वह बल जिसके हाथकी चपेटकारि सूर्य अरु चद्रमा गिरि पडें, अरु कहां प्रद्युम्नका . . . छिद्र विपे चिडिया होना ! कहां वह बल जो . . . नाई लीलाकारि उठाय लेना, अरु कहां पहा

होना। एक अज्ञानरूपी अहंकारकरिकै एती लघुताको जीव प्राप्त होते हैं अज्ञानकरिकै रंजित हुए मिथ्या भ्रमको देखते हैं प्रकाशरूप चिदाकाश सत्ताविना इनको भासता है, अपनी वासनाकी कल्पनाकरिकै जगत सत्‌रूप भासता है जैसे मृगतृष्णाका जल भ्रमकरिकै सत् भासता है, तैसे अपनी कल्पनाकरिकै जगत् सत् भासता है, इस संसारसमुद्रके तरणेको वही समर्थ होता है, जो शास्त्रके विचारद्वारा निर्वासनिक पुरुष हुआ है, अरु जो संसारनिरूपणका शास्त्र है, तारक कहनेको बड़ा प्रकाशरूप है शब्द जिसका, तिसका आश्रय करता है, सो संसारके पदार्थको शुभरूप जानता है, तिसकरि अधःको गिरता है, जैसे टोयेको जलरूप जानिकै स्नानके निमित्त जावै, अरु गिर पडे॥ हे रामजी। अपना अनुभवरूपी जो प्रसिद्ध मार्ग है, तिसविषे जो प्राप्त भये है, तिनका नाश नहीं होता, सुखसों स्वच्छंद चले जाते हैं, जैसे पथिक सूधे २ मार्ग चला जाता है, ब्रह्मनिरूपक जो शास्त्र है, सो निर्वेदमार्ग, और संसारनिरूपक शास्त्र दुःखदायक मार्ग है, यह जगत् असत्‌रूप भ्रांतिमात्र है, जिसकी बुद्धि इसविषे है कि, यह पदार्थ यह सुख मुझको प्राप्त होवै, इसप्रकार संसारके विषयकी तृष्णा करते हैं; सो अभागी है अरु जो ज्ञानवान् पुरुष है तिसको जगत् घास तृणकी नाईं तुच्छ भासता है, जिस पुरुषके हृदयविषे परमात्माका चमत्कार भया है, सो इस ब्रह्मांड खंड लोक अरु लोकपालको तृणवत देखता है, जैसे जीव आपदाको त्यागता है, तैसे उसके हृदयविषे ऐश्वर्यभीआपदारूप त्यागने योग्य है,ताते अंतर निश्चयात्मक तत्त्वविषे रहो, अरु बाहिर जैसा अपना आचार है, तैसा करो, आचारका व्यतिक्रम नहीं करना व्यतिक्रम करनेकरि शुभकार्य भी अशुभ हो जाता है, जैसे राहु दैत्यने जो अमृत-पान करनेका यत्न किया तो भी व्यतिक्रमते शरीर कटता भया; ताते शास्त्रा नुसार चेष्टा करनी कल्याणका कारण है, सतजनकी संगत अरु सच्छास्त्र करि बडा प्रकाश प्राप्त होता है, जो पुरुष इनको सेवता है, सो मोह अंध-कूपविषे नहीं गिरता॥ हे रामजी! वैराग्य, धैर्य, संतोष, उदारता आदिक जो गुण हैं, सो जिसके हृदयविषे प्रवेश करते हैं, सो पुरुष परम सुपदावान

होता है, आपदाको नष्ट करता है, जो पुरुष शुभ गुणकरि संतुष्ट है, अरु सच्छास्त्रके श्रवणरागाविषे राग है अरु सत्की वासना है, सो पुरुष है, और सब पशु हैं, जिसमें वैराग्य, संतोष, धैर्य आदि गुणकरि चांदनी पसरती है, अरु हृदयरूपी आकाशविषे विवेकरूपी चंद्रमा प्रकाशता है, सो पुरुष शरीर नहीं मानों क्षीरसमुद्र है, तिसके हृदयविषे विष्णु विराजते है, जो कछु तिन्हे भोगना था सो भोगा है, जो कछु देखना था, सो देखा है, बहुरि भोगने अरु देखनेकी तृष्णा नहीं रहती, जिस पुरुषका यथाक्रम यथाशास्त्र आचार है, अरु निश्चय है, तिसके भोगकी तृष्णा निवृत्त हो जाती है, तिन पुरुषोंके गुण आकाशविषे सिद्ध देवता अप्सरा गायन करते है, सो मृत्युको तरते है, अपर भोगके तृष्णावाले कदाचित् नहीं तरते ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंके गुण चन्द्रमाकी नाई शीतल है, अरु सिद्ध अप्सरा गान करते है, सो पुरुष जीवते है और सब मृतक है, ताते परम पुरुषार्थका आश्रय करहु, तव परम सिद्धताको प्राप्त होवोगे, वह कौन वस्तु है, जो शास्त्र-अनुसार पुरुषार्थ कियेते अनुद्वेग होइकरि प्राप्त न होवे ॥ अवश्यमेव प्राप्त होता है, यथाशास्त्र क्रिया करै, अरु चिरकाल व्यतीत हो जावै, सिद्धता न होवै तौ भी उद्वेग न करै, वह फल परिपक्व होइकरि प्राप्त होवैगा, जैसे वृक्षसों परिपक्व होके फल उतरता है, तब अधिक मिष्ट अरु सुखदायक होता है, यथाशास्त्र व्यवहार करनेहारा तिस पदको प्राप्त होता है, जहां शोक भय यत्न सब नष्ट हो जाते हैं, अरु शांतिमान् होता है ॥ हे रामजी ! मूर्ख जीवकी नाई संसारकूपविषे मत गिरहु, यह संसार मिथ्या है, तुम उदार आत्मा हौ, उठि खडे होहु,अपने पुरुषार्थका आश्रय करहु, अरु इस शास्त्रको विचारहु, जैसे रणविषे प्राण निकसने लगै तौ भागता नहीं, शस्त्रको पकडिके युद्ध करता है, जो अमरपद प्राप्त होवै, तैसे संसाररूपी रणविषे पुरुषार्थ शस्त्र है, यही पुरुषार्थही करौ शास्त्रको विचारौ कि, कर्तव्य क्या है ? जो विचारते रहित है, सो दौर्भाग्य दीनता अशुभको प्राप्त करनेहारा है, [illegible] । है, तिसको त्यागिकरि जागो, पुरुषार्थको अं[illegible] शांतिका

कारण है, और जेते कछु अर्थ हैं, सो सब अनर्थरूप हैं, भोग सब रोगके समान हैं, संपदा सब आपदारूप है, ये सब त्यागने योग्य है, सन्मार्गको अंगीकार करिकै अपने प्रकृत आचारविषे विचारो, शास्त्र अरु लोकमर्यादाअनुसार व्यवहार करो, शास्त्रके अनुसार कर्मका करना सुखदायक होता है, जिस पुरुषका शास्त्रके अनुसार व्यवहार है, ऐसा जो विवेकी पुरुष है, तिसका संसारदुःख नष्ट हो जाता है, आयुर्बल, यश, गुण, और लक्ष्मीकी, वृद्धि होती है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी प्रफुल्लित होती है तैसे वह प्रफुल्लित होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने देशाचारवर्णनं नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३३

पुरुषार्थजयवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व दुःखके देनेहारा, सर्व सुखका फल, सब ठौर सब कालविषे सबको अपने कर्मके अनुसार होता है, एक दिन नंदीगण एक सरोवरपै जायके सदाशिवका आराधन करत भया, तब सदाशिव प्रसन्न भया, तिसकरि उसने मृत्युको जीता, अरु प्रथम नंदी था, सो नंदीगण नाम भया, अरु मित्र बांधव सबको सुख देनेहारा भया, सो क्योंकरि भया, अपने स्वभाव यत्नकरिकै भया, अरु दैत्य शास्त्रके अनुसार यत्न करते हैं, तब क्रमकरिके देवताको मारते हैं, कैसे देवता हैं, जो सबते उत्कृष्ट वर्तते हैं जैसे हस्ती कमलको उखाड़ते हैं, तैसे देवताको दैत्य उखडाते हैं सो अपनाही पुरुषार्थ है, अरु मरुत राजाके यज्ञविषे संवर्तनामक एक महाऋषि आया, तिसने देवता दैत्य मनुष्य आदिक अपनी सृष्टि रच लीनी, मानो दूसरा ब्रह्मा है, सो ऐसी सृष्टि अपने पुरुषार्थकरि रची अरु विश्वामित्रने वारंवार तप किया, तपकी अधिकताकरि राजर्षिते ब्रह्मर्षि हुआ, सो अपनेही शुद्धाचार करि हुआ ॥ हे रामजी ! एक दुर्भाग्य ब्राह्मण था, उपमन्यु तिसका नाम था, तिसको अपने गृहविषे भोजनकी सामग्री प्राप्त न थी तब उसने एक गृहस्थके घर पितासंयुक्त भोजन किया,

होता है, आपदाको नष्ट करता है, जो पुरुष शुभ गुणकरि संतुष्ट है, अरु सच्छास्त्रके श्रवणरागविषे राग है अरु सत्की वासना है, सो पुरुष है, और सब पशु हैं, जिसमें वैराग्य, संतोष, धैर्य आदि गुणकरि चांदनी पसरती है, अरु हृदयरूपी आकाशविषे विवेकरूपी चंद्रमा प्रकाशता है, सो पुरुष शरीर नहीं मानो क्षीरसमुद्र है, तिसके हृदयविषे विष्णु विराजते हैं, जो कछु तिन्हें भोगना था सो भोगा है, जो कछु देखना था, सो देखा है, बहुरि भोगने अरु देखनेकी तृष्णा नहीं रहती, जिस पुरुषका यथाक्रम यथाशास्त्र आचार है, अरु निश्चय है, तिसके भोगकी तृष्णा निवृत्त हो जाती है, तिन पुरुषोंके गुण आकाशविषे सिद्ध देवता अप्सरा गायन करते हैं, सो मृत्युको तरते हैं, अपर भोगके तृष्णावाले कदाचित् नहीं तरते॥ हे रामजी! जिन पुरुषोंके गुण चंद्रमाकी नाईं शीतल हैं, अरु सिद्ध अप्सरा गान करते हैं, सो पुरुष जीवते हैं और सब मृतक हैं, ताते परम पुरुषार्थका आश्रय करहु, तब परम सिद्धताको प्राप्त होवोगे, वह कौन वस्तु है, जो शास्त्र-अनुसार पुरुषार्थ कियेते अनुद्वेग होइकरि प्राप्त न होवै॥ अवश्यमेव प्राप्त होता है, यथाशास्त्र क्रिया करै, अरु चिरकाल व्यतीत हो जावै, सिद्धता न होवै तौ भी उद्वेग न करै, वह फल परिपक्व होइकरि प्राप्त होवैगा, जैसे वृक्षसों परिपक्व होके फल उतरता है, तब अधिक मिष्ट अरु सुखदायक होता है, यथाशास्त्र व्यवहार करनेहारा तिस पदको प्राप्त होता है, जहां शोक भय यत्न सब नष्ट हो जाते हैं, अरु शांतिवान् होता है॥ हे रामजी! मूर्ख जीवकी नाईं संसारकूपविषे मत गिरहु, यह संसार मिथ्या है, तुम उदार आत्मा हौ, उठि खडे होहु, अपने पुरुषार्थका आश्रय करहु, अरु इस शास्त्रको विचारहु, जैसे रणविषे प्राण निकसने लगे तौ भागता नहीं, शस्त्रको पकडिके युद्ध करता है, जो अमरपद प्राप्त होवै, तैसे संसाररूपी रणविषे पुरुषार्थ शस्त्र है, यही पुरुषार्थही करौ शास्त्रको विचारौ कि, कर्तव्य क्या है? जो विचारते रहित है, सो दौर्भाग्य दीनता अशुभको प्राप्त करनेहारा है, महामोहरूपी घन निद्रा है, तिसको त्यागिकरि जागौ, पुरुषार्थको अंगीकार करौ, सो जरामृतके शांतिका

कारण है, और जेते कछु अर्थ हैं, सो सब अनर्थरूप हैं, भोग सब रोगके समान हैं, सपदा सब आपदारूप हैं, ये सब त्यागने योग्य है, सन्मार्गको अंगीकार करिकै अपने प्रकृत आचारविषे विचारो, शास्त्र अरु लोकमर्यादाअनुसार व्यवहार करो, शास्त्रके अनुसार कर्मका करना सुखदायक होता है, जिस पुरुषका शास्त्रके अनुसार व्यवहार है, ऐसा जो विवेकी पुरुष है, तिसका संसारदुःख नष्ट हो जाता है, आयुर्बल, यश, गुण, और लक्ष्मीकी, वृद्धि होती है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी प्रफुल्लित होती है तैसे वह प्रफुल्लित होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने देशाचारवर्णनं नाम द्वात्रिंशत्तम सर्ग· ॥ ३२ ॥

त्रयत्रिंशत्तमः सर्गः ३३.

पुरुषार्थजयवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व दु·खके देनेहारा, सर्व सुखका फल, सब ठौर सब कालविषे सबको अपने कर्मके अनुसार होता है, एक दिन नंदीगण एक सरोवरपै जायके सदाशिवका आराधन करत भया, तब सदाशिव प्रसन्न भया, तिसकरि उसने मृत्युको जीता, अरु प्रथम नदी था, सो नदीगण नाम भया, अरु मित्र बांधव सबको सुख देनेहारा भया, सो क्योंकरि भया, अपने स्वभाव यत्नकरिकै भया, अरु दैत्य शास्त्रके अनुसार यत्न करते है, तब क्रमकरिकै देवताओं मारते हैं, कैसे देवता है, जो सबते उत्कृष्ट वर्तते है जैसे हस्ती कमलको उखाडते हैं, तैसे देवताको दैत्य उखडाते है सो अपनाही पुरुषार्थ है, अरु मरुत् राजाके यज्ञविषे सवृतनामक एक महाऋषि आया, तिसने देवता दैत्य मनुष्य आदिक अपनी सृष्टि रच लीनी, मानो दूसरा ब्रह्मा है, सो ऐसी सृष्टि अपने पुरुषार्थकरि रची अरु विश्वामित्रने वारंवार तप किया, तपकी अधिकताकरि राजर्षिते ब्रह्मर्षि हुआ, सो अपनेही शुद्धाचार करि हुआ ॥ हे रामजी ! एक दुर्भाग्य ब्राह्मण था, उपमन्यु तिसका नाम था, तिसको अपने गृहविषे भोजनकी स... प्राप्त न थी तब उसने एक गृहस्थके घर पितासंयुक्त भोजन ...

दूध चावल खडसहित भोजन करिकै अपने गृहविषे आया, बहुरि पितासे कहने लगा, मुझको वही भोजन देहु, जो खाया था सो, तब पिताने साँवेंके चावल अरु आटेका दूध घोलिकै दिया, उसने भोजन किया तब तैसा स्वाद न लगा, बहुरि पितासे कहा, मुझको वही भोजन देहु जो वहां खाया था, पिताने कहा, हे पुत्र! वह भोजन हमारे पास नही, सदाशिवके पास वह भोजन है, जो वे देवैं तो हम खावैं तब वह ब्राह्मण सदाशिवकी उपासना करने लगा, ऐसा तप किया कि, शरीर अस्थि मात्र हो रहा, अरु रक्त मांस सब सूख गया, तब शिवजीने प्रसन्न होकरि दर्शन दिया अरु कहा, हे ब्राह्मण! जो तुझको इच्छा है सो वर माँग, ब्राह्मणने कहा, दूध अरु चावल देहु, तब सदाशिवने कहा, दूध अरु चावल क्या, कछु और माँग, अरु तुझने कहा है, तौ यही भोजन किया कर, तब उसको वही भोजन प्राप्त हुआ, अरु कहा, जब तू चिंतन करैगा, तब मैं दर्शन देऊँगा ॥ हे रामजी! यह भी तौ अपना पुरुपार्थ हुआ, त्रिलोकीकी पालना करनेवाले विष्णु हैं, तिनको काल तृणकी नाईं मर्दन करता है, तिस कालको श्वेतने जीता है, सो अपना उद्यम हुआ, अरु सावित्रीका भर्त्ता मृतक हुआ था वह पतिव्रता थी, सो स्तुति नमस्कार करिकै यमको प्रसन्न करती भई, भर्त्ताको परलोकसों ले आई, यह भी अपना पुरुपार्थ है, श्वेतनामा एक ऋपीश्वर हुआ है, सो अपने पुरुपार्थकरि कालको जीति, मृत्युंजय नामको पावत भया, ताते ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो यथाशास्त्र उद्यम कियेते प्राप्त न होवै, जो अपने पुरुप प्रयत्नका त्याग नहीं करै, तौ सर्व सुखफलकी प्राप्ति होती है, जो अविनाशी सुखकी इच्छा होवै, तौ आत्मबोधका अभ्यास करै, अपर जेते कछु संसारके सुख हैं, सो दुःखकेसाथ मिलेहुए है, अरु आत्मसुख सब दुःखका नाश करता है, किसी दुःखके साथ मिला नहीं, वास्तव कहिये तौ शम अशम सर्व ब्रह्मही है, [illegible] परम कल्याणका कर्ता है, ताते अ[illegible]
अरु निरंतर बुद्धिकरि [illegible]
परमपदको प्राप्त होवैंगे ॥

समर्थ,तप नहीं, न तीर्थ करनेकरि और समान शास्त्रोंकरिकै तरनेको समर्थ होता है, जैसे संतजनके सेवनसों भवसागरते सुखसों तरना होता है, जिस पुरुषके लोभ, मोह, क्रोध आदिक विकार दिन दिन प्रति क्षीण हो जाते हैं, अरु यथाशास्त्र तिसका कर्म है, ऐसे पुरुषको संतजन कहते हैं, अरु आचार्य कहते हैं, तिनकी संगति संसार पापकर्मते निवृत्त करती है, अरु शुभविषे जोडती है आत्मवेत्ता जो पुरुष है, तिसकी संगति इसकी बुद्धिविषे संसारका अत्यंत अभाव होता है जब दृश्यका अत्यंत अभाव हुआ तब शेष आत्मा रहता है इस क्रमकरिकै जीवका जीवनभाव निवृत्त हो जाता है, शेष बोध तत्त्व रहता है, जगत् न उपजता है, न आगे होवैगा, न वर्तमानविषे है, इसप्रकार मैंने तुझको अनंत युक्तिकरि कहा है अरु कहौंगा, ज्ञानवान्को सर्वदा ऐसेही भान होता है, अचल चिदात्माविषे चंचल चित्त फुरा है, तिसने जगत् आभासको रचे हैं, जैसे जैसे फुरता है, तैसे तैसे जगत् भासता है, अरु वस्तुते अपर कछु हुआ नहीं, आत्मरूपी सूर्य है, जगत् तिसकी किरणेंरूप हैं, जैसे सूर्य अरु किरणोंविषे भेद कछु नहीं, तैसे जगत् अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, अहंरूप आत्मा है तिसविषे आपको न जानना, सो आत्माकाशविषे मेघरूपी मलिनता है, जब परमार्थमें अहंभावको जानैगा, तब अनात्मविषे अहंभाव लीन हो जावैगा तब चिदाकाशके साथ जीवकी अत्यंत एकता होती है, जैसे घटके फूटेते घटाकाशकी महाकाशके साथ एकता होती है, अहं आदिक जो दृश्य है; सो निश्चयकरि जान, जो वास्तवते कछु नहीं, विचार कियेते नहीं रहता, जैसे बालकको परछाईंविषे पिशाच भासता है, सो भ्रांतिमात्र होता है, तैसे यह जगत् भ्रांतिसिद्ध है, अपनी कल्पनाकरि भासता है, अरु दुःखदायक होता है, विचार कियेते नष्ट हो जाता है॥ हे रामजी! आत्मरूपी चंद्रमा सदाप्रकाश है, अरु अहंकाररूपी तिसके आगे मेघ बादल आया है, तिसकरि परमार्थबुद्धिरूपी कमलिनी विकासको नहीं प्राप्त होती, मूँदे मुख हो रही है, ताते विवेकरूपी वायुकरि तिसको नष्ट करो नरक, स्वर्ग, बंध, मोक्ष, तृष्णा, ग्रहण, त्याग आदिक सब अहंकार करि पडे फुरते हैं, हृदयरूपी आकाशविषे अहंकाररूपी मेघ जबलग

गर्जता वर्षा करता है, तबलग तृष्णारूपी कटकमंजरि बढती जाती है, जबलग अहंकाररूपी बादलने आत्मरूपी सूर्यको आक्रमण किया है, तबलग जड़ता अरु अंधकार है, प्रकाश उदय नहीं होता, अहंकार वृक्ष है तिसकी अनत शाखा पसरती हैं, अहं मम आदिक विस्तार अनेक अर्थको प्राप्त करता है, जो कछु संसारविषे सुखदुःख आदिक प्राप्त होता है, सो सब अहंकारकरिकै प्राप्त होता है, ससाररूपी चक्र है, अहंकार तिसकी नाभि है, तिसकरिकै पड़ा भ्रमता है, अरु अह ममरूपी बीज है, तिसते अनेक जन्मरूपी वृक्षकी परपरा उदय होती है; अक्षय हो जाती है, जो नष्ट कबहू नहीं होती ताते यत्नकरिकै इसको नाश करो, जबलग अहकाररूपी अधकार है, तबलग चितारूपी पिशाचिनी विचरती है, अरु अहकाररूपी पिशाचने जिसको ग्रहण किया है, तिस नीच पुरुषको मत्र तत्र भी दीनताते छुडाय नहीं सकते ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! निर्मल जो चिन्मात्र आत्मसत्ता है,सो अपने आपविषे स्थितहै तिसविषे अहंकाररूपी मलिनता कहांते प्रतिबिंबित हुई ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव! अहकारका जो चमत्कार भासता है- सो वास्तव धर्म नहीं, मिथ्या है, वासनाभ्रमकरि हुआ है पुरुष प्रयत्न करिकै नष्ट हो जाता है जो न मैं हौं न मेरा कोई है,अहममर्मे सार कछु नहीं जब यह शांत होवैगा तब दुःख भी कोऊ न रहैगा जब ऐसी भावनाका निश्चय दृढ होवैगा तब अहकार नष्ट हो जावैगा, आत्माविषे अहं कोऊ नहीं, न दृश्यमें सार है, इसप्रकार जब इसका फुरना शांत हुआ, तब अहंकर भी नष्ट हो जावैगा, जब अहंकार नष्ट हुआ तब हेयोपादेयबुद्धि भी शांत हो जावैगी, समता आदिक प्रसन्नता आय उदय होवैगी, अहंकारकी प्रवृत्ति दुःखका कारण है ॥ राम उवाच ॥ हे प्रभो ! अहकारका रूप क्या है ? अरु त्याग कैसे होता है ? अरु शरीरते रहित कब होता है, अरु इसके त्यागेते फल क्या होता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अहंकार तीनप्रकारका है, दो प्रकारका श्रेष्ठ अंगीकार करने योग्य है, अरु तीसरा त्यागने योग्य है सो सुन, इसका त्याग शरीरसहित होता है, यह दृश्य सब मैंही हौं सो मैं परमात्मा अद्वैतरूप हौं, मुझते इतर कछु नहीं, यह निश्चय परमअहंकारका है, मोक्षको देनेहारा

है, बंधनका कारण नहीं, इसविषे जीवन्मुक्त विचरते है, अरु यह अहं-कार भी मैं तुझको उपदेशके निमित्त कल्पिकै कहा है, वास्तवते यह भी नहीं केवल अचेत चिन्मात्र सत्ता है अरु दूसरा अहंकार यह है कि, मै सर्वते व्यतिरेक हौं, अरु वालके अग्रते सौवा भाग सूक्ष्म हौं, ऐसा जो निश्चय है, सो भी जीवन्मुक्तिका है मोक्षदायक बंधनका कारण नहीं, यह अहंकार भी तुझको कल्पिके कहा है, वास्तवते यह कहना भी नहीं, अरु तीसरा अहंकार यह है कि, हाथपादते आदि लेकरि इतना मात्र आपको जानना इसविषे जिसका निश्चय है, सो तुच्छ है, बंधनका कारण है, इसको त्याग करौ यह दुष्टरूप परम शत्रु है इसकरि जो जीव मरे हैं सो परमार्थकी ओर नहीं आते यह अहंकाररूपी जो शत्रु है सो चतुर अरु वडा वली है, नानाप्रकारके जन्म अरु मानसी दुःख काम, क्रोध, राग, द्वेष आदिकका देनेहारा है, सब जीवको नीच करता है, अरु संकटविषे जोडता है इस दुष्ट अहंकारके त्यागेते पाछे जो शेष रहता है, सो आत्मा भगवान् मुक्तिरूप सत्ता है ॥ हे रामजी ! लोकविषे जो अहंकारभावना है, सो वपुकी है, मैं यह हौं, एता मात्र हौं, सो दुःखका कारण है, इसको महा-पुरुषने त्याग किया है, वह जानते है हम देह नहीं, शुद्ध चिदानंदस्वरूप है, प्रथम जो दो अहंकार मैंने तुझको कहे हैं, सो अंगीकार करने योग्य हैं, अरु मोक्षदायक है, अरु तीसरा अहंकार त्यागने योग्य है, काहेते कि दुःखका कारण है, तिसी अहंकारको ग्रहण करिकै दाम, व्याल, कट आपदाको प्राप्त हुए, जो महाभयदायक कहनेविषे नहीं आते, जि-नने भोगे हैं, तिनकी क्या कहनी है, वही जानते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तीसरा अहंकार जो तुमने कहा है, तिसका त्याग कियेते पुरु-षका क्या भाव रहता है, अरु तिसको क्या विशेषता प्राप्त होती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब यह जीव अनात्मा अहंकारको त्याग कर-ता है, तब परमपदको प्राप्त होता है, जेता जेता त्याग करता है तेता तेता दुःखते मुक्त होता है; ताते इसको त्यागकरि आनंदमान होहु, इसको त्यागिकै महापुरुष शोभता है; जब तुम इसको त्यागोगे तब ऊँचे पदको प्राप्त होउगे, सर्वकाल सर्व यत्न करिकै दुष्ट अहंकार जो लोक कहे हैं,

तिसको नष्ट करौ, परमानद बोधके आगे यह आवरण है, इसके त्यागते बोधवान् होता है जब यह अहंकार निवृत्त होता है तब शरीर पुण्यरूपी हो जाता है अरु परमसारके आश्रयको प्राप्त होता है यही परमपद है, जब स्थूल अहकारका त्याग किया, तब सर्व व्यवहार चेष्टाविषे आनदमान होता है, जिस पुरुषका अहकार शांत हुआ है, तिसको भोग अरु योग दोनों स्वाद नहीं देते, जैसे अमृतकरि जो तृप्त भया है, तिसको खट्टा अरु मीठा दोनों स्वाद नहीं देते,अर्थ यह जो रागद्वेषकरि चलायमान नहीं होता, एकरस रहता है, जिसका अनात्माविषे अहंभाव नष्ट हुआ है, तिसको भोगविषे राग नहीं होता, तृष्णा राग दोष नष्ट हो जाता है जैसे सूर्यके उदय हुएते अधकार नष्ट हो जाता है, तैसे अपने दृढ पुरुषार्थ करिकै जिमके हृदयसों अहकारका अनुसंधान नष्ट हो जाता है, सो ससारसमुद्रको तरिजाता है। ताते यही निश्चय धारौ कि, न मैं हौं, न कोई मेरा है, अथवा सर्व मैही हौं, मुझते इतर कछु वस्तु नहीं यह निश्चय जब दृढ होवैगा, तब ससारकी द्वैतवासना मिटि जावैगी, केवल आत्मतत्त्वका सर्वदा भान होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने पुरुषार्थजयवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३४.

दामव्यालकटोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब दाम,व्याल, कट, युद्ध करते भाज गए तब शवरके नगरकी अवस्था हुई सो सुन, कैसा नगर है, जो पहाड़के समान है, तहां शवरकी जेती कछु सेना थी सो सब नष्ट हो गई, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे नष्ट हो गई, तब देवता जीतिकरि अपने स्थानविषे जाय बैठे, अरु शवरभी क्षोभको पायके बैठि रहा, जब केतक वर्ष व्यतीत भए, तब देवतोंके मारणे निमित्त शबर युक्ति चितवता भया कि, जो दामादिक मायाकरिकै रचे थे सो मूर्ख थे बलवान् थे, परंतु मिथ्या अहंकारका बीज अज्ञान उनको था तिसकरि उनको मिथ्या अहंकार आनि फुरा तब नष्ट हुए अरु भागे अब मैं ऐसे योद्धे रचौं,

जो आत्मवेत्ता ज्ञानवान् निरहकार होवै जिनको अहकार कदाचित् उत्पन्न न होवे, तिनको कोऊ जीति न सकेगा, सब देवतोंकी सेना मारेंगे ॥ हे रामजी! इसप्रकार चिंतनकरि शवर मायाकरि दैत्योंको रचता भया, जैसे समुद्र अपने बुद्बुदे रचि लेवै, तैसे शंवरने दैत्योंको रचि लिया सो कैसे रचे, सर्वज्ञ, विद्याके वेत्ता, अरु वीतराग आत्मा अरु यथाप्राप्त कामको करते, आत्मभाव निश्चय, अरु आत्मरूप, ऐसे उत्तम पुरुप उपजे भीम अरु भास अरु दृढ तिनके नाम, सो तीनों इस संपूर्ण जगत्को तृणवत् जानै, परमपवित्र तिनके हृदय, ऐसे पुरुप उपजाये, अरु गर्जत भये, महाबलकरि शब्द करैं तिनके शब्दकरि आकाश पूर्ण हो गया, इंद्रादिक देवता स्वर्गविपे शब्द श्रवण करते भये, सुनिकै बड़ी सेनाको सग लेकरि आये, अरु यह भी बिजलीवत् चमत्कार करते बढचले महावडे योद्धे दोनों ओरते युद्ध करने लगे, शस्त्रकी नदियोंके प्रवाह चले अरु भीम, भास, दृढ, धैर्यसो खडे रहे, कबहू किसी शस्त्रका प्रहार लगे, तब युद्धके अभ्यासकरि देहका मोह आनि फुरे बहुरि विचार विपे सावधान होंवें कि, हम तो अशरीर हैं, चैतन्यमय, निराकार, निर्विकार, अद्वैत, अच्युतरूप हैं हमारे सग शरीर कहां है, जब जब मोह आवै तब तब ऐसे विचार करें जरा मरण उनको कछु न भासे, निर्भय होकरि वर्तमान युद्धकार्य करते भये, वासनाकी जालते मुक्त हो शत्रुको पकड मारें हेयोपादेयते रहित समदृष्टि युद्धकार्यको करते हैं, दृढ युद्ध आनि हुआ, तब देवतोंकी सेना मारीगई जो शेप रहे सो भीम भास दृढके भयते भागे, जैसे जल पर्वतते उतरता है, तीक्ष्ण वेगकरि चलता है, तैसे देवता तीक्ष्ण वेगकरि भागे सो क्षीरसमुद्रविपे विष्णुभगवानकी शरणको प्राप्त भये, जैसे वायुकरि भयवादल चला पर्वतके आश्रय जाय रहता है, तैसे भयकरि भाग गए, तब तिनको देखिकै विष्णु भगवानने कहा, तुम यहां स्थित होहु, मैं इनको युद्धकरि मार आता हौं ऐसे कहकरि सुदर्शन चक्रको लिये विष्णुभगवान् शवरकी ओर आये तब विष्णु भगवान् अरु शंवरका युद्ध होता भया, बडा युद्ध हुआ, मानों अकाल प्रलय आया है, बडे बडे पर्वत

उछले अरु युद्ध होवै, तब शंबर चलि खडा हुआ, महाप्रकाशरूप सुदर्शन चक्रसे विष्णुजीने शंबरको मारि लिया शंबर शरीरको त्यागिके विष्णुपुरीको प्राप्त भया, तब विष्णु भगवान्‌ने भीम भास दटके अतःपुर्यष्टकविषे जाय प्रवेश किया, उनकी चित्तकला जो प्राणके साथ मिश्रित थी, तिसको असत् किया, जैसे पवन दीपकको निर्वाण करता है, तैसे उनकी पुर्यष्टक फुरणेते निर्वाण हुई, आगे जीवन्मुक्त थे, सो विदेहमुक्त भए ॥ हे रामजी ! वे भीम भास दट निर्वासनिक थे, इस कारणते दीपकवत् निर्वाण हो गये, ताते जो वासनासंयुक्त है, सो बंधमान है, जो निर्वासनिक है, सो मुक्तरूप है, तुम भी विवेककरिकै निर्वासनिक होहु. जब यह निश्चय होवै कि, जो सर्व जगत् असत्‌रूप है तब वासनाकी ओर नहीं फुरती, यही यथार्थ देखना है कि, किसी जगत्‌के पदार्थविषे आसक्त बुद्धि न होवै वासना कहिये, चित्त कहिये ये एकही वस्तुके नाम हैं, सर्व पदार्थके शब्द अरु अर्थ चित्तविषे स्थित हैं, जब सत्‌का अवलोकन सम्यक् ज्ञान होवैगा, तब यह लय हो जावैगा; परमपद शेष रहैगा, जो चित्त वासना संयुक्त है, तिसविषे अनेक पदार्थकी तृष्णा होती है, तिसते जो मुक्त कहाते हैं, नानाप्रकारके घट पट आदिक आकार भासते हैं, सो चित्त फुरनेकरि अनेकताको प्राप्त होता है, जैसे परछाईंविषे बैतालभ्रम होता है, तैसे नानात्वभ्रम चित्तविषे भासता है। हे रामजी ! जैसी जैसी वासनाको लेकरि चित्त स्थित होता है, तैसाही आकार निश्चय होइकरि भासता है, दाम व्याल, कटका रूप चित्तके परिणामकरि विपर्यय हो गया; तुमको भीम भास दटका निश्चय होवै, दाम व्याल कटका निश्चय मत होवै ॥ हे रामजी ! यह वृत्तांत मुझको पूर्व ब्रह्माजीने कहाया, सो मैंने अब तुमको कहा है, इस संसारविषे कोऊ विरला सुखी है, दुःखदशा अनेक हैं, जब तुम इस संसारकी भावना त्यागोगे, तब देहादिकविषे बंधमान न होहुगे, व्यवहारविषे भी आसक्तता न होवैगी ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ३५.

उपशमवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अविद्याकरि संसारकी ओर जो मन सन्मुख भया है, तिसको जिस पुरुषने जीता है, वही सुखी है, वही शूरमा है, तिसहीकी जय है, यह संसार सर्व उपद्रवका देनेहारा है, इसका उपाय यही है कि, अपने मनको वश करना यह जो मेरा शास्त्र है, सो सर्व ज्ञानसंयुक्त है, इसको सुनिकै आपको विचारै कि, यह जगत् क्या है ! ऐसे विचारिकै भोगते उपराम होना, अरु सत्स्वरूप आत्माका अभ्यास करना, जेती कछु भोग इच्छा है, सो बंधनका कारण है, इसके त्यागनेका नाम मोक्ष कहते हैं और शास्त्रका सर्व विस्तार है, जो विषयभोग हैं, तिनको विषकी नाईं अरु अग्निकी नाईं जानै, जैसे विष अरु अग्नि नाशका कारण है, तैसे विषयभोग नाशका कारण है,ऐसे जानिकै इनका त्याग करै, वारवार यही विचार करै कि, विषयभोग विषकी नाईं है, ऐसे विचारकरि चित्तसों त्यागैगा, तब सेवते हुए भी दुःखदायक न होवैंगे, जैसे मन्त्रशक्तिसंपन्नको सर्प दुःखदायक नहीं होता, तैसे तिसको भोग दुःखदायक नहीं होते, तातें संसारको सत् जानिकै वासना फुरती है, सो दुःखका कारण है, जैसे पृथ्वीविषे जो बीज बोता है, सो ऊगता है, कटुकते कटुक उपजता है, मिष्टते मिष्ट उपजता है, तैसे जिसकी बुद्धिविषे संसारभोग वासनारूपी बीज है, तिसते दुःखकी परंपरा उत्पन्न होती है, अरु जिस बुद्धिविषे शांतिकी शुभवासना गर्भित होती है तिसते शुभ गुण वैराग्य, धैर्य, उदारता, शांतिरूप उत्पन्न होते हैं, अरु शुभ वासनाका अनुसंधान होवैगा, मन, बुद्धि,निर्मलभावको प्राप्त होवैगे, जब मन निर्मल हुआ, तब शनैःशनै करि अज्ञान नष्ट हो जावैगा, अरु मन्नताकी वृद्धि होवैगी, जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला बढ़ती जाती है, जब इन शुभ गुणनकी परंपरा स्थित होती है, तब विवेक उत्पन्न होता है, तिसके प्रकाशकरि हृदयका मोहरूपी तम नष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते तम नष्ट होजाता है, तब धैर्य, उदारता, वृद्ध होते हैं, जब

रहा है कि, मैं अनंत आत्मा नहीं, मै लघु नीच हौं, जब इस निश्चयका अभाव होवै, अरु आपको अनत आत्मा निश्चयकारि जानै, सो प्रथम इसका अभ्यास करै, तब हृदयविषे स्थित होवै, इस निश्चयकरि उस नीच निश्चयका अभाव होता है, सर्व जगत् स्वच्छ निर्मल आत्मा है तिसविषे जिसको देहादिक भावना हुई है, तिसको लोकविषे बधन होता है, अपने संकल्पकारि आपही शुककी नाई बधनमें आता है, अरु जिसको स्वरूपविषे भावना होती है तिसको मोक्ष भासता है, आत्मसत्ता मोक्ष अरु बध दोनोते रहित है एक अरु द्वैतते रहित अद्वैत ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जब मन निर्मल होता है, तब इसप्रकार भासता है, किसी पदार्थविषे बधमान नही होता, जब मनभावते रहित अमन होता है, तब ब्रह्मसत्ताको देखता है, अन्यथा नहीं देखता, जब वैराग्य अरु अभ्यासरूपी जलकरि मनको निर्मल भाव होता है, तब ब्रह्मज्ञानरूपी रंग चढि जाता है, सर्व आत्माही भासता है, जब सर्वात्म भावना हुई तब ग्रहणत्यागकी वृत्ति नष्ट हो जाती है, बंध मोक्ष भी नहीं रहता, जब मनके कषाय परिपक्व होते है अर्थ यह जो भोगकी सूक्ष्म वासनाते मुक्त होता है, सच्छास्त्रके विचारकरि वैराग्यके क्रमते बुद्धिविषे वैराग्य उपजता है, तब परमबोधको प्राप्त होता है, और कमलकी नाई बुद्धि खिलि आती है मनकरि सर्व पदार्थ रचे हैं, तिनसों मिलिकरि तद्रूप हो जाता है, तिसका नाम असम्यक्ज्ञान है, जब सम्यक् दृष्टि होती है, तब तिसका तत्काल नाश करता है, जब अतरबाहिर दृश्यका त्याग करता है, अरु मन सत्स्थानविषे स्थित होता है, तब परमपदको प्राप्त हुआ कहाता है ॥ हे रामजी ! यह द्रष्टा अरु दृश्य जो स्पष्ट भासते है, सो असत् है, तिस असत्के साथ तन्मय हो जाना, यह मनका रूप है, जो पदार्थ आदि अंतविषे न होवै, अरु मध्यविषे भासै तिसको असतरूप जानिये, सो यह दृश्य [illegible] भी नहीं उपजा, अरु अंतविषे भी नहीं रहता, मध्य[illegible] जो भा[illegible] । असत्रूप है, अज्ञानकरिकै जिनको सत् भा[illegible] [illegible]नको, [illegible] है, आत्म- भावना विना दुःखनिवृत्ति नहीं[illegible] ॥

है, तब दृश्य भी मोक्षदायक हो जाता है, जल और है, तरंग और है, यह अज्ञानीका निश्चय है, जल अरु तरंग एकहीरूप है, यह ज्ञानीका निश्चय है, तैसे नानारूप जगत् अज्ञानीको भासता है, तिसकरि दुःख पाता है, ग्रहण अरु त्यागकी बुद्धिविषे पड़ा भटकता है, अरु ज्ञानीको सर्व आत्मा भासता है, भेदभावनाते रहित अंतर्मुख सुखी होता है ॥ हे रामजी ! नानात्व है, सो मनके फुरणेकरि रचा है, अरु मनका रूप है, अपने संकल्पचलका नाम मन है, सो असतरूप है, जो असत विनाशी रूप है, तिसको सत् माननेकरि क्लेश होता है, जैसे किसीका बांधव परदेशते आता है, अरु उसको पहँचानता नहीं, दृष्टि आता है, अरु तिसविषे राग नहीं होता जब उसविषे अपनेकी भावना करता है, तब राग भी होता है, तैसे जब आत्माविषे अहंप्रतीति होती है, अरु देहादिकविषे नहीं होती, तब देहादिक सुख दुःख स्पर्श नहीं करते, जब देहादिकविषे भावना होती है, तब स्पर्श करते हैं ॥ हे रामजी ! शिवतत्त्वका ज्ञान होवे, तब दुःख कोऊ नहीं रहता, सो कैसा शिव है कि, द्रष्टा अरु दृश्यके मध्यविषे व्यापक है, तिसविषे स्थित हुएते मन शांत हो जाता है, जैसे वायुते रहित धूर उडनेसों रहिजाती है, तैसे मनके शांत हुएते देहरूपी धूर शांत हो जाती है, बहुरि संसाररूपी कुहिड नहीं रहती, वर्षाऋतुरूपी वासना क्षीण हो जाती है तब जाना नहीं जाता कि, जड़तारूपी वल्ली कहां गई, जब अज्ञानरूपी मेघ शांत हुआ, तब तृष्णारूपी वल्ली सूख जाती है, हृदयरूपी पवनसों मोहरूपी कुहिड नष्ट हो जाती है, जैसे प्रातःकाल हुएते रात्रि नष्ट हो जाती है, अज्ञानरूपी मेघके क्षीण हुएते देहअभिमानरूपी जड़ता जानी नहीं जाती कि, कहां गई, जबलग अज्ञानरूपी मेघ गर्जना है तबलग संकल्परूपी मोर नृत्य करते हैं, जब अहंकाररूपी मेघ नष्ट हो जाता है, तब परमनिर्मल चिदाकाश आत्मरूपी सूर्य स्वच्छ प्रकाशता है, जब मोहरूपी वर्षाकालका अभाव भया, तब ज्ञानरूपी शरत्कालविषे दिशा निर्मल हो जाती हैं, आत्मारूपी चंद्रमा शीतल चांदनीसों प्रकाशता है, सो सर्व सुखदाता देनेहारा है, परमानंदकी प्राप्ति करनेहारा है जब प्रथम शुभ गुणकरि

विवेकरूपी बीज संचित होता है, सो शुभ मन सर्व संपदाके देनेहारा परमानद अति सफल भूमिको प्राप्त होता है, तिस विवेकी पुरुषको वन पर्वत चतुर्दश भुवन सर्व आत्माही प्रकाशता है, सो निर्मलते निर्मल शीतलते शीतल भावनाविषे भासता है, हृदयरूपी तालाव अति विस्तारवान् होता है, स्फटिक मणिवत् उज्वल स्वच्छ जलकारि पूर्ण होता है, तिसविषे धैर्य उदारतारूपी कमल विराजते हैं, तिस हृदयरूपी कमलपर अहंकाररूपी भँवरा विचरता है, सो नष्ट हो जाता है, वहुरि नहीं उपजता, जो पुरुष निरपेक्ष सर्वते श्रेष्ठ निर्वासनिक शांतमन अपने देहरूपी नगरविषे विराजमान ईश्वर होता है, जिसको आत्मप्रकाश उदय हुआ है तिस बोधवान्का मन अत्यंत गलि जाता है, भय आदिक विकार नष्ट हो जाते हैं, देहरूपी नगरविषे विगतज्वर होके विराजमान होता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे उपशमरूपवर्णनं
नाम पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ३६

चिदात्मरूपवर्णनम् ।

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! आत्मा चैतन्यरूप है, अरु निश्चत अतीत है, तिस चिदात्माविषे विश्व कैसे उत्पन्न भया, बोधकी वृद्धिके निमित्त वहुरि मुझको कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे सौम्यजलविषे तरंग अव्यक्तरूप होते हैं, परंतु त्रिकालदर्शीको तिनका सद्भाव नहीं भासता, तिनका रूप दृष्टमात्र होता है तैसे आत्माविषे जगत् संकल्पमात्र होता है जैसे आकाश सर्वगत है, परंतु सूक्ष्म भावकरि लखनेविषे नहीं आता है, तैसे आत्मा निरंश, निराकार सर्वगत, सर्वव्यापक है, परंतु लखा नहीं जाता, अव्यक्त अच्युतरूप है, तिस आत्माविषे जगत ऐसे है, जैसे कोऊ स्तंभ मणिरूप होवै, तिसविषे शिल्पी कल्पता है कि, एती पुतलियां इसविषे है, सो क्यों है, शिल्पीके मनविषे अरु दोनों फुरती है, तैसे यह जगत् आत्माविषे मनरूपी शिल्पीने कल्पा है, सो

आत्माके आधार है, आत्माके आश्रय आत्माविषे स्थित है, अरु आत्मा कदाचित् इसके साथ स्पर्श नहीं करता, जैसे मेघ आकाशके आश्रय आकाशविषे स्थित होता है, परंतु आकाश तिसके साथ स्पर्श नहीं करता तैसे आत्मा अस्पर्श है, अरु सर्वत्र पूर्ण है, परंतु पुर्यष्टकरूप हृदयविषे भासता है, जैसे सूर्यका प्रकाश सब ठौर व्यापक है, परंतु जलविषे प्रतिबिंब भासता है, पृथ्वी काष्ठविषे प्रतिबिंब नहीं भासता तैसे आत्माका देह इंद्रियों प्राणविषे प्रतिबिंब नहीं होता, हृदय पुर्यष्टकविषे भासता है, सो आत्मा सर्व संकल्पते रहित है, सर्व संगते रहित स्वरूप तिसको ज्ञानवान पुरुष उपदेशके निमित्त चैतन्य अविनाशी आत्मा ब्रह्मादिक संज्ञाकरि कहते है, सो आकाशते भी सूक्ष्म निर्मल है, आकाश कलंकित है, आत्मा आभासकरिकै जगत्‌रूप हो भासता है, और जगत् कछु वस्तु नहीं जैसे जल द्रवताकरिकै तरंगरूप हो भासता है, परंतु तरंग कछु भिन्न वस्तु नहीं तैसे आत्माते व्यतिरेक जगत् नहीं, चेतन्यसत्ता चैत्यता फुरनेकरि जगत्‌रूप हो भासते है, परंतु जगत् कछु वस्तु नहीं, जो ज्ञानवान् पुरुष है, तिनको तौ एक आत्माही भासता है, अरु अज्ञानीको नानाप्रकार जगत् भासता है, और जगत् कछु वस्तु नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थितहै, अनुभव स्वभावकरिकै प्रकाशता है, सूर्य आदिक सर्वको प्रकाशनेहारा है, सर्व स्वादका स्वाद वही है, सर्व भाव तिसहीकरि सिद्ध होते, सो सत्ता उदय अस्तते रहित है, अरु चलने अचलनेते रहित है, सो न लेत है, न देत है, अपने आपविषे स्थित है, जैसे अग्निका समूह ज्वालारूप हो भासता है, जलका समूह तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मसत्ता जगतरूप हो भासती है, अपने संवेदन फुरनेकरि नाना प्रकारके संकल्पसों विपर्ययरूप देखता है यह पदार्थ है यह मैं हौं, यह अपर है, इत्यादिक भावनाको प्राप्त होता है, जब अपने आपको जानता है, तब अज्ञानभ्रम नष्ट हो जाता है, जैसे वृक्षविषे बीजसत्ता है, सो परिणामकरि आकारके आश्रयसों बढती जाती है, तैसे आत्मसत्ताविषे चित्तसंवेदन फुरता है फुरनारूपी रसविपरिणामके आत्मसत्ताके आश्रय विस्तारको प्राप्त होता है, सो संकल्परूप है, तिसविषे जगतकी रचना है, जैसे संवेदन फुरता

है, तैसे स्थित होता है, तिसविषे नीति हुई है, कि यह पदार्थ इसप्रकार होवै, सो तैसे स्थित है, अन्यथा नहीं होता, वसंतऋतुविषे रस अति विस्तारको पाता है, कार्तिकविषे धान्य उपजते हैं, हिमऋतुविषे जल पाषाणरूप हो जाता है, अग्नि उष्ण है, बर्फ शीतल है, इत्यादिक जेते पदार्थ रचे हैं, तैसेही महाप्रलयपर्यंत स्थित है, अन्यथाभावको नहीं प्राप्त होते जगत्‌विषे चतुर्दश प्रकारके भूतजात हैं, तिनविषे जिनको आत्मज्ञान प्राप्त होता है, सो शांतिरूपआत्माको पायके आनदमान होते हैं, अरु जिनको प्रमाद है, सो पडे भटकते हैं जन्ममरणको प्राप्त होते हैं, जैसे जैसे कर्म करते है, तैसी तैसी गतिको पाते हैं, आवागमनमें भटकते भटकते यमके मुखविषे जाय पडते हैं जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि लय हो जाते हैं, तैसे जन्मि जन्मि मर जाते हैं, उन्मत्तकीनाई प्रमादी पड़े भ्रमते हैं ॥ इति श्रीयोग० स्थितिप्रकरणे चिदात्मरूपवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः॥३६॥

सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ३७

शांत्युपदेशकरणम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जगतकी स्थिति है, सो सर्व चचल आकार विपरिणामरूप है, जैसे समुद्रविषे तरग चंचलरूप होते है, तैसे जगत्‌की गति चचल है, आत्माते जगत उपजता है, सो स्वत होता है, किसी कारणकरि नहीं होता पाछे कारणकार्यभाव हो जाता है, सोई चित्तविषे दृढ हो भासता है, आत्माविषे यह कोऊ नहीं, जैसे स्वाभाविक जलते तरग उठिकरि लय हो जाते है, तैसे आत्माते स्वाभाविक जगत् उपजिके लय होते है, जैसे ग्रीष्मऋतुविषे तप्तकरि मरुस्थल जलकी नाई स्पष्ट भासता है, अरु है कछु नहीं जैसे मदकरि मत्त पुरुष आपको और का और जानता कहता है, तैसे यह पुरुष आत्मरूप है, चित्तकरि आपको देवता मनुष्य आदिक शरीर जानते अरु कहते हैं ॥ हे रामजी ! यह जगत् आत्माविषे न सत् है, न असत् है, जैसे स्वर्णविषे भूषण है, तैसे मूढ जीव आपको आकार मानते हैं, ताते तुम दृश्यको त्यागिके द्रष्टाविषे

स्थित होहु, जिसकरि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, आदिक सर्वको जानता है, तिसको आत्मब्रह्म जान, जो सर्वविषे पूर्ण स्थित है, स्वच्छ निर्मल आत्मसत्ताविषे एक द्वैतकल्पना कछु नहीं जबलग आत्माते इतर कछु वस्तु भासती है, तबलग वासना तिसकी ओर धावती है, हे रामजी! आत्माते व्यतिरेक कछु सिद्ध नहीं होता जब ऐसे भासे तब किसकी वांछा करे, किसका अनुसंधान करे, अरु ग्रहण त्याग किसका करे? आत्माको ईप्सित अनीप्सित इष्ट अनिष्ट आदिक विकार विकल्प कोई स्पर्श नहीं करते, कर्त्ता कारण कर्म तीनोंकी एकता है, न कोऊ आधार है न आधेय है, द्वैतकल्पनाका असंभव है, अहं त्वं आदिक कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, ऐसे जानि सर्वदा निर्द्वंद्व होइकरि सर्व संतापते रहित कार्यविषे प्रवर्तहोहु, पूर्व जो तुमने कछु किया अरु नहीं किया, तिस करने न करनेकरि तुमको क्या सिद्ध हुआ है, अरु क्या पद पाने योग्य पाया है, और भूतकी गिनतीविषे क्या बात है, तुम आपको हृदयविषे अकर्त्ता भावना करहु, अरु बाहिरते इंद्रियोंकरि जगतके कार्य करहु, जब स्थिरतारूप समुद्रविषे तुम्हारी वृत्ति धैर्यवाली होवेगी, तब शांत आत्मा होवोगे, दृश्य जगत्विषे तो दूरते दूर भी गये, परन्तु अंतरते शांति नहीं होती, जहां जावै तहां भावै तैसा पदार्थ पानेका यत्न करे, तिसके पायेते भी शांति प्राप्त न होवेगी, सर्व दृश्य जगत्के पदार्थकरि त्यागकरि जो शेष अपना स्वरूप रहता है, सो चिदात्मा है, तिसविषे स्थित हुएते शांति प्राप्त होवेगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे शांत्युपदेशकरण नाम सप्तत्रिंशत्तम सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ३८

मोक्षोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ज्ञानी पुरुष है, तिनविषे कर्तव्यभाव भी दृष्टि आता है, यज्ञादिक सर्व करता है, हिंसादिक तामसी कर्म भी दृष्ट आते हैं, तो भी स्वरूपके ज्ञानकरि वह अकर्ताही है,

कदाचित् कछु नहीं किया, अरु जो मूढ अज्ञानी हैं, सो जैसा कर्म करते हैं, तैसा फल भोगते हैं, कर्तव्य किसका नाम है, सो श्रवण करहु, मनविषे सत्य जानिके जिस पदार्थके ग्रहणकी इच्छा करता है, सो फुरना वासनारूप होता है, तिस सद्भाव फुरनेका नाम कर्तव्य है, तिस चेष्टाते फलकी प्राप्ति होती है, जिस पदार्थको सत् जानिके वासना फुरती है, तिसका अनुभव होता है, शरीर करै अथवा न करै, जैसी वासना मनविषे दृढ होती है, शुभ अथवा अशुभ, तिसके अनुसार दृश्यको भासि आता है, शुभकरिके स्वर्ग भासता है, अशुभकरिके नरक भासता है, जिस पुरुषको आत्माका ज्ञान है, यद्यपि प्रत्यक्ष अकर्ता है, तौ भी अनेक कर्मके फलको अनुभव करते हैं, अरु जो ज्ञानवान् हैं, तिनके हृदयविषे पदार्थका सद्भाव अरु वासना दोनों नहीं, इसकारणते तिनविषे कर्तव्यका अभाव है यद्यपि करते हैं, तौ भी कर्तव्यके फलको नहीं प्राप्त होते, ससारको असत्य जानते हैं केवल शरीरके स्पंदमात्र उनका कर्म है, हृदयविषे बंधमान नहीं होते, पूर्वके प्रारब्धकरिकै सुख दुःख फल तिनको भी प्राप्त होता है, परंतु आत्माते भिन्न तिसको नहीं जानते, सर्व ब्रह्मही देखते हैं, अरु जो अज्ञानी है सो अवयवके स्पंदविषे आपको कर्त्ता मानता है, तिसके अनुसार सुखदुःख भोगता है, मोहको प्राप्त होता है, जिनका मन अनात्मभावविषे मग्न है,वे अकर्त्ता हुए भी कर्त्ता होते हैं, मनते रहित, केवल शरीरकरि किया है सो किया भी न किया है, ताते मन करता है,शरीर कछु नहीं करता, यह जगत् सब मनते उपजा है, अरु मनरूप है, मनहीकरि स्थित है, जिसका मन अमनभावको प्राप्त भया है, तिसको सर्व शांतिरूप है, जैसे तीक्ष्ण धूपकरि मृगतृष्णाकी नदी भासती है, जब वर्षा होती है, तब शांत हो जाती है, तैसे जब आत्मज्ञान होता है, तब यह जगत सब शांत हो जाता है, संसारके सुख दुःख तिसको स्पर्श नहीं करते, न यह चंचल है, न सत्य है, न असत्य है, सर्व विकारते रहित शांतिरूप है संसारकी वासनाविषे नहीं डूबता, अज्ञानी है सो डूबता है, तिसका मन ससारभ्रमविषे मग्न रहता है, सदा पदा पदार्थकी तृष्णा करता है, ज्ञानी नहीं करता ॥ हे रामजी ! और दृष्टांतकरिकै

श्रवण कर कि, अज्ञानीको अकर्तव्यविषे कर्तव्य है,अरु ज्ञानीको कर्तव्यविषे अकर्तव्य है, जैसे एक पुरुष शय्याके ऊपर शयनकरि रहा है, अरु स्वप्नविषे गिरा दुःख पाता है, सो अकर्तव्यविषे कर्तव्य भया, अरु एक गर्तविषे गिरा है, अरु उसका मन समाधिविषे स्थित है, सो उसको सब शांतरूप है, सो कर्तव्यविषे अकर्तव्य भया, क्योंकि शय्यापर सोया था, तिसका मन चलता था ताते अकर्तव्यविषे उसको कर्तव्य भया,दुःखका अनुभव करने लगा, दूसरेको सुखका अनुभव भया, ताते यह निश्चय हुआ कि, जैसा मन होता है, तैसी सिद्धताको प्राप्त होता है, तुम भी असत्त होइकरि कर्म करो, तब अकर्ताही रहोगे, जेता कछु जगत् भासता है, सो आत्माते व्यतिरेक कछु नहीं, जिसको यह निश्चय होता है, तिस ज्ञानवान्को सुख दुःख स्पर्श नहीं करते, आधार, आधेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, इच्छा आत्माते भिन्न कछु नहीं भासता, जब इसको ऐसे निश्चय होता है, कि मैं देह नहीं, सर्व पदार्थनते व्यतिरेक बालके अग्रते सौवाँ भाग सूक्ष्म हौं, अथवा जो कछु दृश्य जगत् है, सो सर्व मही हौं, सर्वतत्त्वका प्रकाशक हौं, सर्वव्यापी हौं; यह निश्चयकरि तिसको सुखदुःखका क्षोभ नहीं होता, विगतज्वर होइकरि स्थित होता है, यद्यपि दुःख संकट ज्ञानवान्को आय प्राप्त होता है, तौ भी उसको नहीं भासता, परमानंदकरि आनंदवान् लीलामात्र विचरता है, जैसे चंद्रमाकी चांदनी शीतल प्रकाशती है तैसे वह पुरुष शीतल प्रकाशवान् होता है,तिसको न चिंता होती है, न कोऊ दुःख होता है, शांतरूप कर्मको कर्त्ता भी अकर्ता है, मनकरि सदा अलेप रहता है ॥ हे रामजी ! हस्तपादादिक इंद्रियोंकरि कर्त्ताका नाम कर्म नहीं, मनके करनेका नाम कर्म है, मनही सर्व कर्मका कर्त्ता है, अहं त्वं सब भाव, सब लोकका बीज सर्वगत मन है, जब मन नाश होवै तब सब कर्म नष्ट हो जाता है, सब दुःख मिटि जाते हैं, जैसे बालक मनकरि नगर रचै, बहुरि लीनकरि लेवै तिसको उपजाने लीन करनेविषे हर्ष शोक कछु नहीं होता; तैसे परमार्थदर्शीको किसी कर्मका लेप नहीं होता, कर्त्ता हुआ कछु नहीं करता, तिसविषे कर्तव्य भोक्तव्य सुखदुःख अज्ञान मोहकरिकै अध्यारोप करते हैं, अरु कछु नहीं, ज्ञानवान्को

बंध मोक्ष सुखदुःख कछु नहीं भासता, क्योंकि वह असंसक्त मन है, अरु जिसका मन आसक्त है, तिसको नाना दृश्य भासता है, ज्ञानवान्को केवल आत्मसत्ता भासती है, एक द्वैतकलनाते रहित है, जैसे जलते तरंग भिन्न नहीं होता, तैसे आत्माते जगत् भिन्न नहीं, न कोऊ बंध है, न कोऊ मोक्ष है, न कोऊ बँधने योग्य है, अज्ञान दृष्टिकरि दुःख है, बोध करिकै लीन हो जाते हैं, बंध अरु मोक्ष संकल्पकरि कल्पित मिथ्यारूप है, तुम इस मिथ्या कल्पना अनात्म अहंकारको त्याग आत्मविषे निश्चय करहु, धैर्य बुद्धिवान् होकरि प्रकृत आचारको करहु, तब स्पर्श कछु न करेगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मोक्षोपदेशवर्णनं नाम अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ३९.

सर्वकताप्रतिपादनम्।

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सत् चित् आनंद अद्वैत निर्विकार आदिक गुणकरि संपन्न जो ब्रह्मतत्त्व है, तिसविषे जो अविद्यमान जगत् अविद्या विचित्र कहांते आई है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राजपुत्र! यह संपूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्मसत्ता सब शक्ति है, इसकारणते दृश्यरूप होइकरि स्थित भई है, सत्य असत्य एक अद्वैत आदिक विश्वरूप भासता है, सो स्वरूपते ऐसे है, जैसे जलविषे जल उल्लासरूप नानाप्रकारके तरंग बुद्बुदे आवर्त आकार हो भासता है, तौ भी जल एकरूप है, तैसे चिद्घनविषे चिद्घन सब शक्ति सब रूप होकरि फुरता है, कहूं कर्मरूप, कहूं वाणीरूप, कहूं शृंगरूप, कहूं मनरूप, कहूं भरण पोषण नाश कारण होता है, सब पदार्थका बीज उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मसत्ता है, जैसे समुद्रते तरंग उपजिकरि तिसीविषे लय होते हैं, तैसे सब पदार्थ उपजिकरि ब्रह्मविषे लय होते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह तुम्हारे वचनका उचार प्रगट है, तौ भी कठिन अतिगंभीर है, इनका तोल नहीं पाया जाता, ताते अतोल है, इनका यथार्थभाव मैं पाय

नहीं सकता, मनसयुक्त पट् इद्रियोकी वृत्तिते रहित स्वरूप अरु सर्व पदार्थकी रचनाते रहित है, सो कहा अरु जगत् कहा जो पदार्थ जिसते उपजता है, सो वही रूप होता है, जैसे दीपकते उपजा दीपक होता है, मनुष्यते मनुष्य अरु अग्निते अग्नि होता है, इसप्रकार कारणते जो कार्य उपजता है, सो तिसीके सदृश होता है, तैसे जो निर्विकार आत्माते जगत् उपजा है, सो जगत् भी निर्विकार चाहिए, सो तो ऐसे नहीं, आत्मा निर्विकार शांतरूप है, अरु जगत् विकारी दुःखरूप है, तिसते कलकरूप जगत् कैसे उपजा है ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ जब इसप्रकार रामजीने कहा तब ब्रह्मऋषि वसिष्ठजी बोलत भया ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है, नानाप्रकार मलिनरूप ससार भासता है, सो मलिनता नहीं, जैसे तरगके समूह समुद्रविषे फुरते हैं, सो मलिनता धूलि नहीं, वही रूप है, तैसे आत्माविषे जगत् कछु कलक नहीं, वहीरूप है, जैसे अग्निविषे उष्णता अग्निरूप है, तैसे आत्माविषे जगत आत्मरूप है, इतर नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे ब्रह्मन् ! निर्दुःख निर्धर्मते जो जगत् दुःखरूप उपजा, सो यह कलक है, यह जो तुम्हारे वचन हैं, सो आकाशरूप हैं, सो मेरे ताई अस्पष्ट भासते हैं, मैं इनको जानि नहीं सकता ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ हे पुत्र ! जब इसप्रकार रामजीने कहा, तब मुनिशार्दूल वसिष्ठजी विचारते भये कि, अभी इसकी बुद्धि परमप्रकाशको प्राप्त नहीं भई, कछुक निर्मलभावको प्राप्त भई है पदार्थ भूमिकाको जानता भया है अरु परमार्थ वेत्ता नहीं भया, जिसको परमार्थ बोध प्राप्त भया है, अरु मन शात हुआ है, ऐसा जो ज्ञातज्ञेय पुरुष है सो मोक्ष उपायकी वाणीके पारको प्राप्त होता है, संसाररूपी अविद्यामल उसको नहीं भासता, केवल अद्वैतसत्ता भासती है, जबलग और उपदेश रामजीको न करों, तबलग इसको विश्रामही नहीं होवैगा, जो अर्धप्रबुद्ध है, तिसको सब ब्रह्म कहना नहीं शोभता काहेते कि, चित्त उसका भोगते सर्वथा व्यतिरेक नहीं भया, सर्व ब्रह्मके वचन सुनिकै भोगविषे आसक्त होवैगा, सो नाशका कारण है, तिसकरि नाश होवैगा, अरु जिसको परम दृष्टि प्राप्त हुई है, तिसको भोगकी इच्छा नहीं उपजती, ताते सर्व ब्रह्मका कहना रामजीको मि-

द्धांत कालविषे शोभैगा, प्रथम गुरुको शिष्यप्रति सर्व ब्रह्म कहना नहीं बनता, प्रथम शम दम आदिक गुणकरि शिष्यको शुद्ध करै, पाछे सर्व ब्रह्म शुद्ध तू है, ऐसे उपदेश करै, तिसकरि जाग उठता है, अरु जो अज्ञानी अर्धप्रबुद्ध है, तिसको ऐसे कहना कि, जो सर्व ब्रह्म तू है, सो ऐसा उपदेश करनेवाला गुरु उसको महानरकविषे जोडता है जो प्रबुद्ध है, तिसकी भोगकी इच्छा क्षीण होजाती है वह निष्काम पुरुष है, तिसको अविद्यारूपी मल नहीं रहता, तिसको कहना नहीं बनता है, इसप्रकार विचारिकरि अज्ञानरूपी तमके नाशकर्त्ता ज्ञानके सूर्य मुनि वसिष्ठजी भगवान् रामजीके प्रति कहत भये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव ! कलनारूप कलंक ब्रह्मविषे है अरु नहीं, यह मैं तुझको सिद्धांतकालविषे कहौंगा, अथवा तू आपही जानैगा, ब्रह्मसत्ता सब शक्तिरूप सर्वव्यापक सर्वगत है, सब तिसीकरि रचे हैं, जैसे इंद्रजाली विचित्र शक्तिकरि अनेक रूप रचता है, सत्यको असत्य अरु असत्यको सत्य करि दिखावता है, तैसे आत्मा मायावी परमइंद्रजाली अघटनघटना है. अर्थ यह कि, जो न बनै तिसको बनावै, यह तिसकी शक्ति है, जो पहाड़को गढेला करती है, अरु वल्लीविषे पाषाण लगते हैं, पाषाणविषे वल्ली लगती है, वनकी पृथ्वीको आकाश करती है, आकाशको पृथ्वी करती है अरु वृक्षवल्लीमें पाषाण लगते है, अरु आकाशविषे वन लगते हैं, जैसे गंधर्वनगर आकाशमें भासता है, अरु वनको आकाश करती है, जैसे पुरुषकी छाया आकाश हो जाती है, आकाशको पृथ्वीभाव प्राप्त करती है, जैसे रत्नकी कंदरा पृथ्वीपर होवै, तिसविषे आकाशका प्रतिबिंब पड़ता है ॥ हे रामजी ! यह विचित्ररूप दृश्य तुझको कहा है, सो शुद्ध व्यक्त तत्त्व अचैत्य चिन्मात्रविषे जो चेतनताका लक्षण जानना है, तिसकरि रची है, सो कैसी रची है, यही चित्तसंवेदन फुरनेकरि जगद्रूप हो भासता है, ताते सवप्रकार सवरूप नहीं है, जो एकरूप अविद्यमान है, हर्ष, शोक, आश्चर्य किसको नाई विचारा मानिये, यह अन्यथा कोक नहीं, सब एकरूप है, इसी कारणते हमको समताभाव रहता है, हर्ष, शोक, आश्चर्य, मोह हमको नहीं प्राप्त होता, समता अरु

चपलता आदिक विकार कोई नहीं होता, कदाचित् हम जानतेही, नहीं, देश काल वस्तु यह जगत् अवसानको प्राप्त हो भासते हैं, तिनका विपर्यय होना भी भासता है, अरु वह अपने स्वभावविषे स्थित है, काहेते कि यह दृश्य उनको अपने स्वरूपका आभास फुरता भासता है, जेता कछु दृश्य प्रपंच है,सो सत्य चित्तसंवित्‌की स्पंदकलाकरिकै फुरता है, नानाप्रकार देश, काल, क्रिया द्रव्य होकरि भासते हैं, तिसको आत्मसत्ता किसी यत्नकरि नहीं रचती, स्वाभाविक फुरनेकरि पड़े फुरते हैं, जैसे समुद्र तरंगको यत्नकरि नहीं उपजाता, अरु लीन करता, स्वाभाविक चमत्कार फुरता अरु लीन होता है, तैसे आत्माविषे स्वाभाविक सृष्टि फुरती है, अरु लय होती हैं, जैसे समुद्र अरु तरंगविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं वहीरूप है, जैसे दूध घृतरूप है, जैसे घट पृथ्वीरूप है, जैसे पट तंतुरूप होता है, तैसे जगत् आत्मरूप है, जैसे वट धान्य वृक्षरूप हो भासता है, जैसे समुद्र तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मा जगत्‌रूप हो भासता है ॥ हे रामजी ! इस दृष्टांतका एक अंग लेना है, कारणकार्यभावको लेना नहीं, आत्माविषे न कोऊ कर्ता है, न कोऊ भोक्ता है, न कोऊ विनाशको प्राप्त होता है, केवल आत्मतत्त्व साक्षी निरामय अद्भुत अपने आप स्वभावसत्ताविषे स्थित है, यह जगत् आत्माका प्रकाश है, जैसे दीपकका प्रकाश स्वभाव है, सूर्यका प्रकाशस्वभाव है, पुष्पका सुगंध स्वभाव है, तैसे आत्माका स्वभाव जगत् है, किसी कारणकार्यकरि नहीं भया, जगत् आत्माका स्वभाव आभासरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं हुआ, जैसे पवनका स्वभाव स्पंदरूप है, सो जब निस्पंद होता है, तब नहीं भासता,अरु स्पंदकरि भासता है, तैसे आत्माविषे संवेदन फुरता है तब जगत् हो भासता है, जब लय होता है, तब जगत् नहीं भासता, अरु जगत् कछु है नहीं, न सत् है न असत् है, कहूं जगत् प्रगट भासता है, कहूं अप्रगट भासता है, अरु नानाप्रकारका विचित्ररूप भासता है, जैसे वनविषे पुष्पका रस होता है, तिनके उपजने अरु नष्ट होनेकरि न वन उपजता है, न नष्ट हो जाता है तैसे आत्मसत्ता जगतके उपजने अरु नष्ट होनेते रहित है, अरु

वासनाते उपजा कछु नहीं, ताते आत्माही अपने आपविषे स्थित है, असम्यक् ज्ञानकरि जगत् भासता है, अनंत शाखाकरि पसर रहा है, इसको ज्ञानरूपी कुठारसे काटो, तब सुखी होवो, जगत्‌रूपी वृक्ष है, असम्यक् ज्ञान इसका बीज है, शुभ अशुभरूपी फूल हैं, आशारूपी नलीकरि वेष्टित है, दुःखरूपी शाखा है, अरु भोगजगरूपी फल है, तृष्णारूपी लताकरि प्रसर भासते हैं, ऐसा जो संसाररूपी वृक्ष है तिसको आत्मविवेकरूपी कुठारसे यत्नकरिकै काटके मुक्त होहु । जैसे गजपति अपने बलसो बंधन तोड़िकरि सुखचैन विचरता है, तैसे तुम निर्बंध होइकरि विचरो ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे सर्वैकतामतिपादनं नाम एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४०.

ब्रह्मप्रतिपादनम् ।

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह ये जो जीव हैं, सो ब्रह्मते कैसे उत्पन्न हुए हैं, अरु केतेक हुए हैं, सो मुझको विस्तारकरिकै कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहो ! जैसे ये विचित्रताते उपजते हैं, अरु नाश होते हैं, बढ़ते हैं, अरु स्थित होते हैं, सो क्रम सुनो ॥ हे निष्पाप राम ! शुद्ध जो ब्रह्मतत्त्व है, तिसकी जो वृत्ति चेतनशक्ति है, सो निर्मल है, जब वह स्फुरणरूप होती है, तब कलनारूप घनभावको प्राप्त होती है, तब संकल्पकल्पको धारती है, बहुरि तन्मय होइकरि मनरूप होती है, सो मन संकल्पमात्र करिकै जगत्‌को रचता है, विस्तारभावको प्राप्त करता है, जैसे गंधर्वनगर विस्तारको प्राप्त होता है, तैसे मनकरि जगत् विस्तार होता है, अरु ब्रह्मदृष्टिको त्यागिकै रचता है, सो सब आत्मसत्ताका चमत्कार है, बना कछु नहीं, इसको तौ जब आकाशरूप भासता है, इस दृष्टिसे जगत् भासता है, जैसे चित्तसंवित्‌विषे जगत् फुरता है, तैसा रूप होता है, प्रथम ब्रह्माजी संकल्प फुरा है सो चित्तसंवित् आपको ब्रह्मारूप देखता भया, ब्रह्मारूप होइकरि जगत्‌को कल्पता भया, तब

प्रजापति होइकरि चतुर्दश प्रकारके भूतजात उत्पन्न किये, वस्तुते सब ज्ञप्तिरूप है, तिसके फुरनेकरि जगत् भासता है सो चित्तमात्र शून्य आकाशरूप है, और वस्तुते शरीर कछु नहीं, संकल्पमात्र नगरवत् भ्रांतिकरिकै भासते हैं, तिस भ्रांतिरूप जगत्विषे जो जीव भये हैं, कोऊ मोहकरि संयुक्त हैं, कोऊ अज्ञानी हैं, कोऊ मध्यस्थित हैं, कोऊ ज्ञानी उपदेष्टा हैं, जेते कछु भूतजात हैं, सो सब आधि व्याधि दुःखकरि दीन हुए हैं, तिनविषे ज्ञानवान् सात्त्विक सात्त्विकी हैं,अरु राजसी सात्त्विकी हैं जो शांतात्मा पुरुष हैं तिसको संसारके दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करते, वह सदा ब्रह्मविषे स्थित हैं ॥ हे रामजी ! यह मैं तुझको, भूतजात कहे हैं, सो ब्रह्म शांत अमृतरूप सर्वव्यापी, निरामय चैतन्यस्वरूप अनंत आत्मा आधि व्याधि दुःखते रहित निर्भ्रम है, तिसके किसी एकदेशविषे जगत् स्थित है, जैसे अनंत सौम्यजलके किसी स्थानविषे तरंग फुरते हैं, तैसे परब्रह्मसत्ताके किसी स्थानविषे जगत् प्रपंच फुरता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ब्रह्मतत्त्व तौ अनंत निराकार निरवयवरूप है, तिसका एक अंश एक स्थान कैसे हुआ, निरवयवविषे अवयवक्रम कैसे होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिसकरिकै उपजे हैं, अथवा तिसते उपजे हैं, यह जो कारण अरु उपादान है, सो भ्रांतिमात्र है, यह शास्त्ररचना व्यवहारके निमित्त कही है परमार्थते कछु नहीं, अवयवकरि जो देशादिक कल्पना है, सो क्रमते नहीं उपजी, उदय अरु अस्तपर्यंत दृष्टिमात्र भी होती है अरु कल्पनामात्र है, सो कल्पना भी आत्मरूप है, आत्माते रहित कल्पना भी कछु वस्तु नहीं, न हुई है, न कछु होवैगी, तिसविषे जो शब्द अर्थ आदिक युक्ति है, सो व्यवहारके निमित्त है, परमार्थते कछु नहीं शब्द अर्थमात्र जगत्कल्पना है, सो तिसकरि उपजा है, अरु तिसते उपजा है, यह द्वितीयकल्पना भी नहीं, तन्मयरूप है, शांतरूप आत्माही है, और कछु नहीं, जैसे अग्निते अग्निकी ज्वाला फुरती है, सो अग्निरूप है, अरु तिसते उपजी सो तिसकरि उपजी यह कल्पना अग्निविषे कोऊ नहीं, अग्निही अग्नि है, तैसे जन्य अरु जनक जो है, कार्य अरु कारण भेद सो

आत्माविषे कोऊ नहीं, कार्यकारणभाव कल्पनामात्र है, जहां अधिकता अरु ऊनता होती है, तहां कारणकार्यभाव होता है कि, यह अधिक कारण है, ऊन कार्य है, भिन्न भिन्न कारण कार्य शब्द बनता भी है, जहां भेद होता है, तहां भेदकल्पना भी होवै, तहां एक अद्वैतविषे शब्द कैसे होवै, अरु शब्दका अर्थ कैसे होवै, जैसे अग्नि अरु अग्निकी शिखाविषे भेद नहीं, तैसे कारणकार्यभाव आत्माविषे कोऊ नहीं, शब्द अर्थ कल्पनामात्र है, जहां प्रतियोगी व्यवच्छेद संख्या भ्रम होता है, तहां द्वैत नानात्व होता है, अर्थ यह जैसे चेतनका प्रतियोगी जड़ अरु जड़का प्रतियोगी चेतन है, अरु व्यवच्छेद कहिये परिच्छिन्न, जैसे घटविषे आकाश होता है, संख्या कहिये जीव ईश्वर ये शब्द अर्थ द्वैतकल्पनाविषे होते हैं, जहां एक अद्वैत आत्माही है, तहां शब्द अर्थ कोऊ नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे सबही जलते हैं, जलते इतर कछु नहीं तैसे शब्द अरु अर्थकल्पना ब्रह्म है, जो बोधवान् पुरुष है, तिनको मन ब्रह्मही भासता है, चित्त भी ब्रह्म है, मन भी ब्रह्म है, ज्ञान शब्द अर्थ ब्रह्मही है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, तिसविषे जो इतर भासता है, सो मिथ्या ज्ञानका विकल्प है, जैसे अग्नि अरु अग्निकी ज्वालाकी कल्पना भ्रांतिमात्र है, तैसे आत्माविषे जगत्की भिन्न कल्पना असत्‌रूप है, जो ज्ञानते रहित है, तिनको दृष्टिदोषकरि सत्य हो भासता है, ताते सर्व ब्रह्म है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, निश्चयकरि परमार्थ ब्रह्मते सब ब्रह्मही है, सिद्धान्त कालविषे तुझको यही दृष्टि उपजैगी, यह जो सिद्धांतपिंजर मैंने तुझको कहा है, तिसके ऊपर उदाहरण कहौंगा कि यह क्रम अविद्याका कछु भी नहीं, अज्ञानके नाश भएते अत्यंत असत् जानैगा, जैसे नमकालिक जेवरीविषे सर्प भासता है, जब प्रकाश उदय होता है तब ज्योंका त्यों भासता है, सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे अज्ञानदृष्टिकरि जगत् भासता है, जब शुद्ध विचारकरि भ्रांति नष्ट होवैगी, तब निर्मल ब्रह्मसत्ता तुझको भासैगी, इसविषे संशय नहीं, यह निश्चितार्थ है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे ब्रह्मप्रतिपादनं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७ ॥

एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४१.

अविद्याकथनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह जो तुम्हारे वचन है, सो क्षीरसमुद्रके तरंगवत् उज्ज्वल है, तीन तापके नाशकर्ता हृदयके मल दूर करनेको निर्मलरूप हैं, अरु अज्ञानरूपी तमके नाशकर्ता प्रकाशरूप हैं, अरु गभीर है तिनका तोल मै पाय नहीं सकता एक क्षणविषे संशयकरि अंधकारको प्राप्त होता हौं, अरु एक क्षणविषे निःसंशयरूप प्रकाशको प्राप्त होता हौ जैसे चपलरूप मेघकरि सूर्यका प्रकाश कबहू भासता है कबहू आच्छाद्या जाता है ताते मेरा संशय दूर करहु किजो आत्मानदसत्ता अप्रमेयरूप हे और सब वही प्रकाशरूप है असत्यभावते रहित साररूप है, तौ तिस अद्वैत तत्त्वविषे कल्पना कहांते आई ?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु मैंने तुमको कहा है, सो मेरे वचन यथार्थ हैं, जैसे कहा है तैसेही है, अरु असमर्थरूप वचन भी नहीं जिसके हृदयविषे ठहरे तिसको आत्मपदविषे प्राप्त करें अरु विरूप भी नहीं इसका रूप फल प्रगट है, जिनके धारेते सब दुःख ससारके मिटि जाते हैं, अरु पूर्वापर विरोध भी नहीं जो प्रथम कछु और कहा, पाछे और कहा जो कछु कहा है सो यथार्थ कहा है, परतु ज्ञानदृष्टिकरिकै जब तेरा हृदय निर्मल होवैगा, विस्तृत बोधसत्ता हृदयविषे प्रकाशैगी, तब तू मेरे वचनके तात्पर्यको हृदयविषे जानैगा अरु जो तुझको उपदेश करता हौं सो वाच्यवाचक शास्त्रके सबध तेरे जतावनेनिमित्त करता हौं जब इन युक्त वचनकरि तू जागैगा, तब तुझे अद्वैतसत्ता निर्मल भासैगी, और जो कछु वाच्यवाचक शब्द अर्थरचना है, तिसको त्याग करैगा ज्ञानवान्को सदा परमार्थ अद्वैतसत्ता भासती है, इच्छादिक कल्पना कछु आत्माविषे नहीं पाईजाती, आत्मा निर्दुःख निर्द्वंद्व है, सोई जगतरूप होइकरि स्थित भया है, इसप्रकार मै तुझको विचित्रयुक्तिकरि कहौंगा, जबलग सिद्धांत उपदेशका आकाश है तबलग आत्मसत्ता नहीं प्रकाशती जब आत्मबोध होवैगा तब आपही जानैगा अज्ञानरूपी तम है सो वाक्विस्तारविना शात नहीं होता इसप्रकार

मैं तुझको अनेक युक्तिकरि कहूँगा, तबलग सिद्धांत उपदेशका अवकाश है. हे रामजी ! शुद्ध जो आत्मसत्ता है, तिसके आश्रय संवेदनाभास फुरता है, तिसीका नाम अविद्या है, सो दो रूप रखती है, एक उत्तम और एक मलिन है जो स्पंदकला अपने अविद्या नाशनिमित्त प्रवर्तती है, सो उत्तम है, विद्याभी तिसीका नाम है, सब दुःखको नाश करती है, अरु जो संसारकी ओर फुरती है, सो अविद्या है, अर्थ यह जो आत्माकी ओर फुरती है, सो विद्या है, अरु जो दृश्यकी ओर फुरती है सो अविद्या है, सो दोनों स्पंदरूप हैं, ताते अविद्याकरि अविद्याका नाश करो, जैसे ब्रह्मास्त्रकरि ब्रह्मास्त्र शांत करता है, जैसे मैलको कतक मैल दूर करता है, जैसे विषको विष नाश करता है, जैसे शत्रुको शत्रु मारता है, तैसे अविद्याकरि अविद्या नाश होती है, जो ऐसे हुआ तौ तुम इसको नाश करौ, तब सुखदायक होवैगा, विचारकरि इसका नाश होता है, तब जानी नहीं जाती कि, कहां गई, जैसे दीपकने अंधकार देखिये तौ नहीं जानाजाता, कि कहां गया; बड़ा आश्चर्य है, जो जीवका ज्ञान इसने आच्छादि लिया है, सदा अनुभव आत्मसत्ता उदयरूप है, सो जीवको नहीं भा[illegible] लग अविद्याको नहीं जानता, तबलग फुरती है, जब जानगया [illegible] जानता, कि कहां गई; भ्रममात्र सिद्ध है, बड़ा आश्चर्य है, जो मायो संसारको बांधा है, सत्यकी नाईं प्राप्त भई है, अरु असत्य है, बुद्धिमानो भी इसने नाशकरि छोडा है, तौ इतर जीवको क्या कहना है, निरंतर अभेदरूप आत्मा है तिसविषे अविद्याकी भेदकल्पना कोऊ नहीं, जिस पुरुषने संसारमायाको ज्योंका त्यों जाना है, सो पुरुषोत्तम है, जिसको यह भावना हुई है, कि अविद्या परमार्थते कछु नहीं, असत्यरूप है, सो ज्ञानवान् है, जो कछु जानने योग्य है, सो तिसने जाना है, इस-विषे संशय नहीं. जबलग तू स्वरूपविषे जागा नहीं, तबलग मेरे वचन-विषे आस्तिकबुद्धि कर, अरु यह निश्चयको धार, कि अविद्या नाशरूप है, अरु है नहीं, जेता कछु जगत् दृश्य भासता है, सो मनका मन अस-तरूप है. जिसको यह निश्चय हुआ, सो पुरुष मोक्षभागी है, यह जो मनका फुरनारूप जगत् दृश्यभावको प्राप्त हुआ है, सो मन भ्रमरूप है.

जिसके अंतर यह निश्चय स्थित है, सो पुरुष मोक्षभागी है, अरु जिसको चराचर जगत्‌विषे दृढ भावना है, सो बंधभागी है, जैसे पक्षी जालविषे बंधायमान होता है ॥ हे रामजी। संपूर्ण जीव इस संसारकी सत्यदृष्टि-करि बांधे हुए हैं, सब जगत् स्वप्नभ्रांतिरूप है, तिसविषे जिसको असत बुद्धि है, अथवा सत् ब्रह्मबुद्धि है, सो आसक्त होकरि संसारदुःखविषे नहीं डूबता, अरु जिसको अनात्मधर्म देहादिकविषे भावना है, स्वरूपविषे आत्मबोध नहीं, सो हर्ष शोक आपदाको प्राप्त होता है, अरु जिसको स्वरूपविषे स्वरूपबोध है, अरु अनात्मधर्मका त्याग है, तिसको संसार अविद्या नहीं रहती, दुःखविकार स्पर्श नहीं कर सकता, जैसे जलविषे धूप नहीं उड़ती, तैसे तिस महात्मा पुरुषके चित्तविषे दुःख उदय नहीं होते, ज्ञानवान् पुरुषके हृदयविषे जगत्‌के शब्द अर्थका रंग नहीं चढ़ता, जैसे तंतुविना पट नहीं होता, पट तंतुही रूप है, तैसे आत्माविना जगत नहीं होता, जगत् आत्मारूप है, ऐसे जानिकै जो व्यवहारविषे वर्तता है, सो पुरुष मानसिक दुःखको नहीं प्राप्त होता, अरु जो अविद्याकरि संसारविषे पड़ा भटकता है, सो आत्मतत्त्वको पाय नहीं सकता, विद्यमान भी तिसको नहीं भासता, सो आत्मज्ञानकरि अविद्याका नाश होता है, जिसको आत्मज्ञान हुआ, सो अविद्यारूपी नदीको तरजाता है, आत्मसत्ताके प्राप्त हुएते अविद्या क्षीण हो जाती है, जिनको अविद्यारूप संसारके पदार्थकी इच्छा उदय होती है, सो अविद्यारूपी नदीविषे बह जाते हैं ॥ हे रामजी। यह अविद्या बड़े मोहभ्रमको देती है, दृढ़ होयकरि स्थित हुई है, अरु तत्पदको आच्छादि लिया है, ताते तुम यह न विचारो कि अविद्या कहाँते उपजी है, अरु कौन इसका कारण है, इत्यादिक विचारभ्रम मत करहु, यही विचारो कि इस नाश कैसे होती है, इसके क्षयका उद्यम करो, जब नष्ट होवैगी, तब इसकी उत्पत्ति भी जानि लेवैगा, कि इसप्रकार उपजी है, अरु यह स्वरूप इसका है, अरु यह कारण, यह कार्य है ॥ हे रामजी। अविद्या वस्तुते कछु है नहीं, अविचारसिद्ध है, विचारदृष्टिते नष्ट हो जाती है, तब जानी नहीं जाती कि कहा गई, जब स्वरूप विस्मरण होता है, तब उपजकरि दृढ होती है,

बहुरि दुःखको देती है, ताते बलकरि इसका नाश करहु, बड़े बड़े शूरमे भी हुए हैं, तिनको अविद्याने व्याकुल किया है, ऐसा बुद्धिमान् कोऊ नहीं जिसको अविद्याने व्याकुल नहीं किया, अविद्या सर्व रोगका मूल है, यत्नकरिकै इसका औषध करहु, जिसकरि जन्म दुःख कुहिड न प्राप्त होवै, जेती कछु आपदा है, तिनकी यह अधिष्ठाता सखी है, अज्ञानरूपी वृक्षकी वल्ली है, अनर्थरूपी अर्थकी जननी है, ऐसी अविद्यारूपी मलिनताको दूर करहु, मोह भय आपदा दुःखको देनेहारी है, हृदयविषे मोह उपजायकरि जीवको व्याकुल करती है, अज्ञान चेष्टाकरि वृद्ध होती है, जब अविद्यारूपी महासमुद्रते पार होवैगा, तब शांति प्राप्त होवैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अविद्याकथनं नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४२.

जीवतत्त्ववर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अविद्यारूपी रोगको काटिकरि शांतरूप स्थित होते हैं, अरु विचाररूपी नेत्रने देखते हैं, तब यह नष्ट हो जाती है, सो इस विस्तृत व्याधिकी औषध सुन, जीवजालका विस्तार मैं तुझको कहता हौं, सात्त्विक राजस आदिक मनकी वृत्ति विचारने अर्थ मैं प्रकटाया था, सो अब सुन, जो तत्त्व अमृत ब्रह्मस्वरूप है, सो सर्वव्यापी निरामय चैतन्यप्रकाश अनंत है, आदि अंतते रहित निर्भय चेतन प्रकाश तिसका वपु है, जब यह चेतन प्रकाश स्पंदरूप हो फुरता है, तब दीप कणवत् प्रकाश चेतनरूप चित्तकला जगत्को चेतने लगती है, तब जगत् फुरता है, जैसे सोमजल समुद्रविषे द्रवताकरि तरंग फुरता है, सो उसते इतर कछु नहीं, तैसे सर्वात्माते इतर कल्पना रूप कछु नहीं, यह स्पंदरूप भी अभेद है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे चित्तशक्ति है, जैसे नदीविषे वायुके संयोगते तरंग उठते हैं, तैसे आत्माविषे चित्तकला सो रूप जगत् होता है, ऐसे भी नहीं आत्मा अ-

द्वैत है, स्वतः तिसविषे चित्तकला हो आती है, जैसे वायुविषे स्वाभाविक स्पंद होता है, स्पंदनिस्पंद दोनों वायुके रूप हैं, जब स्पंद होता है, तब भासता है, निस्पंद होता है, तब अलक्ष हो जाता है, तैसे जब चित्तकला फुरती है, तब लक्षमें आती है, निस्पंद होतेही अलक्ष होती है, शब्दकी गम नहीं होती, निस्पंदकारिकै जगत्‌भावको प्राप्त होती है, जैसे समुद्रविषे तरंगचक्र फुरते हैं, तैसे चेतनविषे चित्तकला फुरती है, जैसे आकाशविषे मुक्तामाला भासती है, सो है नहीं, तैसे आत्माविषे वस्तुते नहीं है स्पंदभावकारि कछु भूषितदूषित हो भासती है, आत्माते भिन्न कछु नहीं, परंतु भिन्नकी नाई भासती है, जैसे प्रकाशकी लक्ष्मी कोटि रवि जैसी स्थित होती है, तैसे आत्माविषे चित्तशक्ति है, देश, काल, क्रिया द्रव्यको जैसे जैसे चेतती है, तैसे तैसे हो भासती है, आगे नामसंज्ञा होती है, अपने स्वरूपको विस्मरणकरि दृश्यकेसाथ तन्मय होती है, तो भी स्वरूपते व्यतिरेक नहीं होती, परंतु व्यतिरेककी नाई भावना होती है, जैसे समुद्रते तरंग भिन्न नहीं, और सुवर्णते भूषण भिन्न नहीं, तैसे आत्माते चित्तशक्ति भिन्न नहीं, परंतु अपने अनंत स्वभावको विस्मरणकरि देश, काल, क्रिया द्रव्यके भेद मानती है, संकल्पके धारणेकरि कलनाभावको प्राप्त होती है, विकल्पकलनाकरि चित्तशक्ति क्षेत्रज्ञरूप होती है, शरीरका नाम क्षेत्र होता है, शरीरको अंतर्बाहिर जाननेकरि क्षेत्रज्ञ नाम होता है, सो क्षेत्रज्ञ चित्तकला अहंभावकी वासना करती है, तिस अहंकारकरि आत्माते इतर रूप धरती है, बहुरि अहंकारविषे निश्चय कलना होती है, तिसका नाम बुद्धि होता है, अहंभावमो जब निश्चय संकल्पकलना होती है, तिसका नाम मन होता है, वही चित्तकला मनभावको प्राप्त होती है, जब मनविषे घन विकल्प उठते हैं, तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधकी भावनाकरि इंद्रिया फुरि आती हैं, बहुरि हस्त पाद प्राणसंयुक्त देह भासि आता है, इसप्रकार जगतविषे देहको पायकरि जीव जन्ममृत्युको प्राप्त होता है, वासनाविषे बांधा हुआ दुःखके समूहको पाता है, कर्मकरि चित्तविषे दीन रहता है, जैसे कर्म करता है, तैसे आकारको धरता है, जैसे समय पायके फल परिपक्वताको प्राप्त

होता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि जीव दृश्यभावको प्राप्त होता है, आपको कारण कार्य मानिकै अहंभावको प्राप्त होता है, निश्चय वृत्तिकरि बुद्धिभावको प्राप्त होता है, संकल्पसंयुक्त मनभावको प्राप्त होता है, सो मन देह इन्द्रियरूप होइकरि स्थित होता है, अपना अनंतरूप भूलि जाता है, परिच्छिन्नभावको ग्रहण करिकै प्रतियोग व्यवच्छेदभाव भासता है, तब इच्छामोहादिक शक्तिको प्राप्त होता है, जैसे मदकरि माते बैलको गौ आनि मिलती हैं, तैसे सब आपदा दुःख इसको आय प्राप्त होता है, जैसे समुद्रविषे नदियां आय प्रवेश करती हैं, इसीप्रकार अहंकार अपनी रचनाकरि आपही बंधमान होता है, जैसे पुराण अपने स्थानको रचिकरि आपही बंधमान होती है बड़ा खेद है कि, आपही संकल्पकरि दृश्यको रचता है, बहुरि तिसी देहविषे आस्था करता है, ताते आपही दुःखी होता है, अंतरते तपता रहता है, आपको मंदभाग्यमानकरि संसारजंगलविषे अविद्यारूप आकाशको ले फिरता है, अपने संकल्पकलनाकरि तन्मात्रा देह हुई है, तिसविषे अहंप्रतीति होती है, जैसे जलविषे तरंग होते हैं, तैसे देहादिक उदय हुए हैं, तिनकेसाथ बांधा हुआ दुःख पाता है, जैसे सिंह संकल्पकरि बांधा जावै, तैसे बांधा है, एक स्वरूप है, सोई फुरनेके वशते नानाभावको प्राप्त हुआ है, कहूं मन, कहूं बुद्धि, कहूं अहंकार, कहूं ज्ञान, कहूं क्रिया, कहूं पुर्यष्टक, कहूं प्रकृति, कहूं माया, कहूं कर्म, कहूं विद्या, कहूं अविद्या, कहूं इच्छा कहाती है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जीव अपने चित्तकरि भ्रमको प्राप्त हुआ है, तृष्णारूपी शोक रोगकरि दुःख पाता है, तुम यत्नकरिकै इसको तरो, जरामरण आदिक जो विकार हैं, अरु ममतारूपी भावना इसको नष्ट करती है, यह भला है, ग्रहण करिये, यह बुरा त्याग करने योग्य है, जिसकरि महा अविद्यारूपी रंगसाथ रंजित भया है, इच्छा करनेसों इसका रूप मलिन गया है, कर्मरूपी अंकुरनों संसाररूपी वृक्ष बढ़िगया है, अपना शान्त स्वरूप विस्मरण हुआ है, कल्पनाकरि आपको मलिन जानना भया है, अविद्याके संयोगकरि नरकको भोगता है, संसारभावनारूपी पर्वतके नीचे दबिगया है, आत्मपदकी ओर उठनेको समर्थ नहीं होता, संसार

रूपी विपका वृक्ष जरामरणरूपी शाखाकारि बढ़ि गया है, आशारूपी फांसीकेसाथ बांधे हुए जीव पड़े भटकते हैं,तिसकारि चितारूपी अग्निविषे जलते हैं, क्रोधरूपी सर्पने जीवका चर्वण किया है, अपनी वास्तवता इसको विस्मरण हो गई है, जैसे हरिण अपने यूथसमूहते भूला शोककारि दुःखी होता है, जैसे पतग दीपककी शिखामें जल मरता है, जैसे मूलते काटा कमल विरूप होता है, तैसे आशाकारि क्षुद्र हुआ मूर्ख बड़ा दु ख पाता है, जैसे कोऊ मूढ विपको सुखरूप जानिकै भक्षण करे, तब दुःख पाता है, तैसे इसको भोगविषे मित्रबुद्धि हुई है, परतु इसके परमशत्रु हैं, इसको उन्मत्त करिकै मूर्च्छित करते है, वडे दु.खको देते हैं, जैसे बांधा हुआ पक्षी पिंजरेविषे दुःख पाता है, तैसे यह दु ख पाता है, ताते इसको काटहु, यह जगज्जाल असत् है, गधर्वनगरवत् शून्य है, इसकी इच्छा अनर्थका कारण है, इस ससारसमुद्रविषे मत डूवहु, जैसे हस्ती कीचडसों अपने बलकारि निकसता है, तैसे अपना उद्धार करहु, संसाररूपी गढेले-विषे मनरूपी बैल गिरा है, तिसकारि अग जीर्ण हो गये हैं, अभ्यास अरु वैराग्यके बलकारि इसको निकासहु, अपना उद्धार करहु, जिस पुरुषको अपने मनपर भी दया नहीं उपजती, जो संसारदु खते निकसे, सो मनुष्यका आकारहै, परतु राजसहै, ताते तुम उद्धार करिलेहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवततत्त्ववर्णन नाम द्विचत्वारिंशत्तम :सर्ग ४२

त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्ग ४३

जीवबीजसस्थावर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जीव परमात्माते फुरिकरि ससारभावना करते हैं, तिनकी संख्या कछु करी नहीं जाती, कई पूर्व उपजे हैं, कई अपूर्व उपजे हैं, अवलग उपजते हैं, जैसे फुरणेसों जलके कणके प्रगट होते हैं, तैसे ब्रह्मसत्तासों जीव फुरते हैं, अपनी वासनाकारि बांधे हुए भटकते हैं, विगुण दोपकारि नानाप्रकारकी दशाको प्राप्त होते हैं, चिताकारि दीन हो जाते हैं, दशों दिशा जलस्थलविषे पड़े भ्रमते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु नष्ट होते हैं, तैसे जन्म अरु मरण पाते हैं,

कईका प्रथम जन्म हुआ है, कईको सौ जन्म हुए है, कईके असख्य जन्म हुए हैं, कई आगे होवेंगे, कई होयकरि मिटि गए हैं, कई अनेक कल्पपर्यंत अज्ञानकरि पड़े भटकेंगे, अब कई जराविषे स्थित हैं, कई यौवनविषे स्थितहैं, कई मोहकरि नष्ट भएहैं,कई अल्पवय होयकारि स्थित हैं, कई अनत आनदी हुए हैं, कई सूर्यवत् उदितरूप है, कई किन्नर, कई विद्याधर होयकारि स्थित है,कई सूर्य,चंद्रमा, इद्र, वरुण, कुबेर, रुद्र,ब्रह्मा, विष्णु होकरि स्थित भए है, कई यक्ष, वैताल, सर्प, आदिक होकरि स्थित भए है, कई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, गण कहाते है, कई कांत चाडाल आदिक स्थित हैं, कई तृण, औषधी, पत्र, फूल, मूलको प्राप्त भए है, कई लता गुच्छे पाषाण शिखर हुए हैं, कई कदव वृक्ष ताल तमाल हुए हैं, कई मंडलेश्वर चक्रवर्ती हुए भ्रमते है, कई मुनीश्वर मौन पदविषे स्थित हैं, कई कृमि, कीट पिपीलिका आदिकरूप हैं, कई, सिंह, मृग, घोड़े, खचर, गर्दभ, बैल आदिक पशु स्थित है, कई सारस, चक्रवाक, कोकिला, बगलादिक पक्षी होयकरि स्थित हैं, कई कमल कली कुमुद सुगंधादिक स्थित हैं, कई आपदाकारि दु:खी हैं, कई संपदावान् है, कई स्वर्ग, कई नरकविषे स्थित है, कई नक्षत्रचक्र आकाश वायु सूर्यकी किरणोंविषे, कई चद्रमाकी किरणोंविषे स्थित है, रस लेते है, कई जीवन्मुक्त हैं, कई अज्ञानकरि पड़े भ्रमते हैं, कई कल्पाणभागी चिरपर्यंत भोगको पड़े भोगते हैं, कई परमात्माविषे परिणमी गये है, कइ अल्पकाल, कई शीघ्रही आत्मतत्त्वविषे लय भए हैं, कई चिरकालकारि जीवन्मुक्त होवेंगे, कई मूढ दुर्भावना करते हैं अनात्माविषे भ्रमते हैं, कई मृतक होयकारि इस जगत्विषे जन्मते है, कई और जगत्विषे जाय स्थित होते है, कई न यहां न वहां उपजते हैं, आत्मतत्त्वविषे लय होते हैं, कई मदराचल सुमेरु आदि पर्वत होइकरि स्थित होते हैं, कई क्षीरसमुद्र, घृतसमुद्र, इक्षुरस जल आदिक समुद्र हुए हैं, कई नदिया तडाग वापिका आदि भए है, कई स्त्रियां, कई पुरुष, कई नपुंसकरूप हुए हैं, कई मूढ, कई प्रबुद्ध, कई अत्यन्त मूढ हुए हैं, कई ज्ञानी, कई अज्ञानी, कई विषयतत्पर कई समाधिविषे स्थित हैं, इसी-

प्रकार जीव अपनी वासनाकरि बाँधे हुए भ्रमते हैं, संसारभावनाकरि जगत्विषे कबहूं अधःको कबहूं ऊर्ध्वको जाते हैं, कामक्रोधादिक दुःखकी पीड़ाको पाते है, कर्मकरि भ्रमते है, आशारूपी फासींके साथ बांधे हुए हैं, अनेक देहको उठाइ फिरते है, जैसे भारवाही भारको उठावते हैं, तैसे कई मनुष्यशरीरते बहुरि मनुष्यशरीरको धारते है, बहुरि वृक्षते वृक्ष होते है, कई औरते और शरीरको धारते है, इसीप्रकार आत्मरूपको भुलायकरि देहकेसाथ मिले हुए वासनारूप कर्म करते हैं, तिनके अनुसार अध ऊर्ध्व पथविषे भ्रमते हैं, जिनको आत्मबोध हुआ है, सो पुरुष कल्याणरूप है, और सब दुःखी मायारूप ससारविषे मोहित भए हैं, यह ससाररचना इन्द्रजालकी नाईं है, जबलग अपने आनद स्वरूपको नहीं पाया, साक्षात्कार नहीं भया, तबलग संसारभ्रमविषे भ्रमता है, अरु जिस पुरुषने अपने स्वरूपको जाना है, और जीवकी नाईं त्याग नहीं किया, वारवार ससारके पदार्थनते रहित आत्माकी ओर धावता है, सो समय पायकरि आत्मपदको प्राप्त होवैगा, बहुरि जन्म न पावैगा, कई जीव अनेक जन्म भोगिकै ज्ञानकरि अथवा तपकरि ब्रह्माके लोकको प्राप्त होते है, बहुरि परमपद पाते है, कई सहस्र जन्म भोग भोगिकरि बहुरि ससारविषे प्राप्त होते हैं, कई बुद्धिमान् विवेकको भी प्राप्त होते है, बहुरि ससारविषे गिरते है अर्थ यह कि, मोक्षज्ञानको पायके बहुरि ससारी होते है, कई इन्द्रपद पायकरि तुच्छ बुद्धिसों बहुरि तिर्यक् पशुयोनिको पाते है, बहुरि मनुष्याकार धारते है, कई महाबुद्धिवान् ब्रह्मपदते उपजिकरि तिसी जन्मविषे ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं, कई अनेक जन्मकरि, कई थोडे जन्मकरि प्राप्त होते है, कई एक जन्मकरि और ब्रह्मांडको प्राप्त होते हैं, कई इसीविषे देवताते पशुजन्म पाते हैं, कई पशुते देवता हो जाते है, कई नाग हो जाते हैं; जैसी जैसी वासना होती है, तैसाही रूप हो जाता है, जैसे यह जगत् विस्ताररूप है, तैसे अनेक जगत है,कई समानरूप हैं, कई विलक्षण आकार है, कई हुए है, कई होवैंगे, विचित्ररूप सृष्टि उपजती है, अरु मिटती है, कई गंधर्व भावको, कई यक्ष देवता आदिक भावको प्राप्त भए हैं, जैसे जीव इस जगतविषे व्यवहार करते हैं, तैसे और जगत्विषे व्यवहार

करते हैं, आकार विलक्षण है, अपने स्वभावके वश हुएते जन्ममरणको पाते हैं, जैसे समुद्रते तरंग उपजते और मिटते हैं, तैसे सृष्टिकी प्रवृत्ति उत्पत्ति लय होता है, जब संवित स्पंद होते हैं, तब उपजते हैं जब निस्पंद होता है, तब लय होता है, जैसे दीपकका प्रकाश लय होता है, अरु जैसे सूर्यते किरणें निकसती हैं, जैसे तप्त लोहेते चिनगारे निकसते हैं, जैसे अग्नेिते चिनगारे निकसते हैं, जैसे कालते ऋतु निकसती हैं, पुष्पते सुगंधि प्रगट होती है, समुद्रते तरंग उपजते हैं, बहुरि लय होते हैं, तैसे आत्मसत्ताते जीव उपजते हैं, बहुरि लय होते हैं, जेते कछु जीव हैं सो सबही सम्यक्कारिकै अपने पदविषे लय होवैंगे, स्वरूपते इनका उपजना भी मिथ्या है, स्थिति बधन भी मिथ्या है, नष्ट होना मिथ्या है, त्रिलोकीरूप महामायाके मोहकारि उपजते समुद्रके तरंगकी नाईं नाश होते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवबीजसंस्थानवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४४.

संसारप्रतिपादनम् ।

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जीव इस क्रमकारि आत्मस्वरूपविषे स्थित हैं, बहुरि अस्थिमांसकारि पूर्ण देह पिंजर इसको कैसे प्राप्त भया है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मैंने प्रथम तुझको अनेक प्रकार कहा है, तू अबलग जागृत नहीं भया, पूर्वापरके विचार करनेहारी तेरी बुद्धि कहाँ गई है ? जेता कछु शरीरादिक स्थावर जंगम जगत् दृष्टि आता है, सो सब आभासमात्र है, स्वप्नकी नाईं उठा है, दीर्घ स्वप्न है, मिथ्या भ्रमकारि भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रममात्र भासता है, जैसे भ्रमणेकारि पर्वत भ्रमते भासते हैं, तैसे जगत् अज्ञानकारि भासता है, अरु जिन पुरुषकी अज्ञाननिद्रा नष्ट भई अरु निश्चयकारि संसारवासना गलित भई है, सो प्रबुद्धचित्त हैं, संसारको स्वप्नरूप देखते हैं, अरु स्वरूपभावकारि कछु देखते नहीं, अपनेही स्वभावकारि संसार कल्पते हैं, यह जीव संसार मोक्षते प्रथम सर्वदा सगरूप देखते हैं, तिनकी संसारभावना

असत् नहीं होती जगत् आकार सर्वदा अपने अतर कल्पते है, अरु जीवके अनेक आकार चपलरूप क्षणभग होते है, जैसे जलविषे तरंग चचलरूप होते है, जैसे बीजविषे अंकुर रहता है, तिसीके अतर पत्र फूल फल आदिक होते है, तैसे कल्पनारूपी देह मनके फुरनेविषे रहता है॥ हे रामजी! देह न होवै परन्तु जहां मन फुरता है, तहांही देहको रच लेता है, जैसे स्वप्नविषे मनोराज्य देहको रचि लेता है, तैसे यह देह अरु जगत् भी मनकरि रचा हुआ है, जैसे मृत्तिकाका पिंड चक्रकेऊपर चढाया घटरूप हो जाता है, तैसे मनके फुरनेकरि देह बनता है, सब देह मनके फुरनेविषे स्थित है, जेता कछु जगत् भासता है, सो सब सकल्पमात्र है, जैसे मृगतृष्णाका जल असत्‌रूप होता है, तैसे यह जगत् असत्य है, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे वैताल भासता है, तैसे जीवको अपने फुरनेकरि देहादिक भासते है॥ हे रामजी! सृष्टिके आदिविषे जो शरीर उत्पन्न भए हैं, सो आभासमात्र संकल्पकरि उपजे हैं, प्रथम ब्रह्मा पद्मविषे स्थित भया, तिसने संकल्पके क्रमकरि विस्तार किया है, जैसा संकल्पपुर स्थित होवै, तैसे स्थित किया है, सो सब मायामात्र है, मायाकी घनताकरि यह जगत् भासता है, स्वरूपते कछु नहीं॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! आदि जीव जो मनरूप फुरनेको पायकरि ब्रह्मपदको प्राप्त भया है, सो ब्रह्मा जैसे हुआ है, अरु स्थित भया है, सो मुझको क्रमकरि कहो॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे महाबाहो रामजी! प्रथम ब्रह्मशरीरको पायकरि ग्रहण किया है, तिसके श्रवणकरि स्थिति भी जानैगा देश काल आदिकके परिच्छेदते रहित आत्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, सो अपनी लीला शक्तिकरि देश काल क्रिया कल्पितरूप भया है, तिसकरि जीवके एते नाम हुए हैं, वासनाकरि तद्रूप हुई चित्कला चपलरूप मन हुआ है, सो दृश्य कलनाके सन्मुख हुई, प्रथम वही चित्कला मानसी शक्ति होइकरि आकाशकी भावना करत भई, स्वच्छ बीजरूप जो शब्द है, तिसके सन्मुख मध्यविषे उदर धर्म है, जैसे नूतन बालक प्रगट होता है, तैसे आकाश पोलरूप फुरि आया, बहुरि स्पर्श बीजके सन्मुख हुई तब पवन फुरि आया, जब शब्द स्पर्श आकाश पवनका संघर्षण भया, तब मनके तन्मय होनेकरि अग्नि उपजा,

वड़ा प्रकाश हुआ, वहुरि रसतन्मात्राकी भावना करी तव शीतलभावनासों जल फुरि आया, जैसे अति उष्णताते स्वेद निकस आता है, वहुरि गंधतन्मात्राकी भावना करी तिसकरि प्राण इंद्रिय निकसि आई स्थूलकी भावनाकरी जलचक्र पृथिवी होयकरि स्थित भये, आकाशविषे वड़ा प्रकाश हुवा, अहंकारकी कलाकरि युद्ध अरु वुद्धिरूपी वीजकरि समुचितरूप हुई, अष्टम जीवसत्ता हुई इन अष्टका नाम पुर्यष्टक भया, सो देहरूपी कमलका भँवरा हुआ, तिस आत्मसत्ताविषे तीव्र भावनाकरिकै वही चित्सत्ता वडा स्थूल वपु देखती भई, जैसे वीजते वृक्ष फूल होनेकरि रस परिणमता है, तैसे निर्मल आकाशविषे वृत्ति स्पंदअस्पदरूप हुई है, जैसे संचेविषे भूपण निमित्त स्वर्ण आदिक धातु पड़ती हैं, सो भूपणरूप हो जाती हैं, तैसे ब्रह्माजी अपनी चेतन संवेदन मनरूपी सवित्‌विषे तीव्र भावनाकरि तिसकरि स्थूलताको प्राप्त भये स्वत· यह फुरणा दृश्यका रूप क्रमकरि हुआ, जो ऊर्ध्व शीश है, मध्य उदर है, अधः पाद हैं, चारों दिशा हस्त हैं, मध्यविषे उदर धर्म है, जैसे नूतन वालक प्रगट होता है, महा उज्ज्वल प्रकाश ज्वालाकी लाटावत् अग होते हैं, तैसे ब्रह्मका शरीर उत्पन्न भया है, इसप्रकार वासनाकरि कल्पित मनकरि शरीर उत्पन्न करि लिया है, आदि ब्रह्माका प्रकाशही शरीर भया, सव वुद्धिकी समष्टिरूप उसकी वुद्धि अरु वल उत्साहकी समष्टि है, वहुरि कैसा है, सदा ज्ञानरूप है, सपूर्ण ऐश्वर्य, संपूर्ण शक्ति अरु तेज उदारताकरि सपन्न स्थित है, इस प्रकार सव जीवका ब्रह्माजी अधिपति नायक होता भया है, अरु द्रवत् स्वर्णवत कांति ऐसा शरीर परम आकाशते उपजिकरि आकाशरूप स्थित भया है, अपनी लीलाके निमित्त अपने निवासका गृह रचता है ॥ हेरामजी ! कवहू ब्रह्माजी परम आकाशविषे रहता है, कवहू कल्पांतर महाभास्कर अग्निविषे रहता है, कवहू स्वर्णकमल विष्णुजीके नाभिकमलविषे रहता है, इसीभाँति अनेक प्रकारके आसन रचिकरि कवहूं कहा कवहू कहां स्थित होता है लीला करता है, जव परम तत्त्वसों प्रथम इसप्रकार फुरता है, तव अपनेसाथ शरीर देखता है, जैसे वालक निद्राते जागिकरि अपने साथ शरीर देखता है, तैसे ब्रह्माजी अपने संग शरीर देखता भया,

कैसा शरीर प्राणके प्रवाहसंयुक्त प्राण अपान जाते आते हैं, तब पंचतत्त्व जो द्रव्य है, तिनकरि रचना भया, बत्तीस दंत हैं, तीन स्तभ हैं, अरु पंचदेवता शरीरविषे स्थित है, सो कौन है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव पच भाग शरीरके है, नव द्वार हैं, दो जंघास्थल, दो पाद, अरु दो भुजा, वीस अगुली है, हस्तपादके वीस नख है, एक मुख है, दो नेत्र हैं, कबहूं अपनी इच्छासों अनेक भुजा अनेक नेत्रकरि लेता है, मांसकी कदलीकरी है, ऐसा शरीर हुआ सो चित्तरूपी पक्षीका आलणा है, कामदेव भोगनेका स्थान है, वासनारूपी पिशाचिनीका गृह है, जीवरूपी सिंहकी कंदरा है, अभिमानरूपी हस्तीका वन है, इसप्रकार ब्रह्माजी शरीरको देखता भया, बड़ा उत्तम कांतिमान् शरीरको देखिकरि ब्रह्माजी चितवत भया, जो त्रिकालदर्शी है, कि इसके आदि क्या हुआ अरु अब हमको क्या करना है; ऐसे परम आकाशविषे सदा निर्मलदर्शी देखत भया, जो आगे भूतका सर्ग व्यतीत भया है, वेदसयुक्त ऐसे अनेक हुए हैं, तिनके सब धर्म स्मरण करिकै देखत भया, वाग्मय भगवतीका स्मरण किया, वेदका स्मरण सर्व सृष्टिके धर्म गुण विकार उत्पत्ति स्थिति बढना परिणाम क्षाण नाश होता सब धर्मको स्मृतिशक्तिकरि देखता भया, जैसे योगीश्वरने अपना अनुभव किया अरु औरका किया, चित्तशक्तिविषे स्थित होयकरि स्मृतिशक्तिसों देखि लेता है, तैसे ब्रह्माजी अनुभव करता भया, दिव्य नेत्रसों बहुरि इच्छा हुई कि लीलाकरि विचित्ररूप प्रजाको उत्पन्न करों, ऐसे विचारकरि उत्पत्ति करता भया, जैसे गंधर्वनगर तत्काल हो जाता है, तैसे सृष्टि हो गई है, तिसके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पदार्थ तिनके साधन रचे, बहुरि तिनविषे विधिनिषेध रचे कि, यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है, तिनके अनुसार फलकी रचनाकरी, शुभ अशुभ विचित्रता रची ॥ हे रामजी ! इसप्रकार फुरनेकरि सृष्टि हुई है, फुरनेकी दृढताकरि स्थितिको प्राप्त भई है, तिसविषे नीति, काल, क्रिया, द्रव्य, कर्म, धर्म, रचे हैं, जैसे नीति करी है, तैसे स्थित है, जैसे वसंत ऋतुकरि पुष्प उत्पन्न होते हैं, तैसे ब्रह्माके मनकरि सृष्टि रची है, विचित्ररूप रचनाका नि-

लास चित्तरूप कमलज ब्रह्माके चित्तकरि कल्पा है, सो कलनारूप है, कालविषे उत्पन्न हुई है, कालहीकरि स्थित है, स्वरूपते न कछु उपजा है, न कछु नष्ट होता है, जैसे स्वप्नसृष्टि होती है, तैसे यह संसाररचना है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारप्रतिपादनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४५.

यथार्थोपदेशवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जो उपजा है, सो कछु नहीं उपजा, न स्थित है, शून्य आकाशरूप है, मनके फुरणेकरि सृष्टि भासती है, वडे देश काल क्रियासयुक्त जो ब्रह्मांड दृष्टि आता है, सो परमार्थते तिसने कछु भी स्थान रोका नहीं स्वप्नपुरवत् संकल्पमात्र है, आधारविना चित्र है, जैसे मूर्तिका चित्र आधारविना मिथ्या होता है, तैसे यह जगत् वड़ा भासता है, तौ भी मिथ्या है, असत्य तमरूप है, आकाशविषे चित्रकी नाईं है, जैसे स्वप्नविषे भासरूप जगत् भासता है तौ भी असत्रूप है, तैसे यह शरीरादिक जगत् मनके फुरनेकरि भासता है, मनका फुरनाही इसका कारण है, जैसे नेत्रका कारण प्रकाश है, तैसे जगत्का कारण चित्त है, सब जगत् आकाशमात्र है, घट पट तोयादिक क्रमसहित भासते हैं, तौ भी असत्रूप हैं, जैसे जलविषे चक्र आवर्त भासते हैं, सो असत्यरूप हैं, तैसे प्रथम पर्वत आदिक जगत् असत्यरूप हैं, अपने निवासके निमित्त मनने यह शरीर रचा है, जैसे घुराण अपने निवासके निमित्त गृह रचती है, अरु आपही बधनमें आती है, तैसे मन शरीरादिकको रचिकरि आपही दुःखी होता है, ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो संकल्पते रहित सिद्ध होवै, अरु मनके यत्नकरि सिद्ध न होवै, कठिन क्रूर पदार्थ भी मनकरि सिद्ध होता है, परमात्मा जो देव है, सो सब शक्तिमान् है, मन भी तिसकी शक्ति है,वह कौन पदार्थ है,जो मनकरि सिद्ध न होवै, सब कछु बनजाता है,काहेते कि जेते कछु पदार्थ हैं, तिनविषे सत्ता परमा-

त्माकी है, तिसते इतर कछु नहीं, ताते परमात्मा देवविषे सब कछु सम्भवता है, आदि चित्तकला ब्रह्मारूप होयकरि उदय भई है, तिस भावनाके अनुसार आपको ब्रह्माका शरीर देखत भई, तिस कमलज ब्रह्माने कलनारूप जगत् रचा है, देवता, दैत्य, मनुष्य, स्थावर, जंगम रूप जगत् संकल्पविषे स्थित है, जबलग उसका संकल्प है, तबलग तैसेही स्थित है जब संकल्प मिटि जावैगा तब सृष्टि भी नष्ट होजावैगी, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे जगत् भी हो जावैगा, सो आकाशवत् सबही कलनामात्र है, दीर्घस्वप्नवत् स्थित है, वस्तुते न कोऊ उपजा है, न मरता है, परमार्थते तौ ऐसे है, अरु अज्ञानकरि सब पदार्थ विकारसंयुक्त भासते हैं, न कोऊ वृद्ध है, न नष्ट होता है, तिसविषे और विकार कैसे मानिये, जैसे पत्रकी रेखा होवै, तिसके उपजने अरु नाश होनेविषे वनको कछु अधिकता और ऊनता नहीं होती, तैसे शरीरके उपजने अरु नष्ट होनेविषे आत्माको लाभ हानि कछु नहीं सब जगत् दृश्य भ्रांतिकरिकै भासता है, ज्ञानदृष्टिकरि देख, अज्ञानिवत् क्यों मोहित होता है ? जैसे मृगतृष्णाका जल प्रत्यक्ष भासता है, सो मिथ्या भ्रममात्र होता है, तैसे ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सब भ्रांतिमात्र है, जैसे आकाशविषे दूसरा चन्द्रमा भासता है, तैसे मिथ्याज्ञानकरि जगत् भासता है, जैसे नौकापर बैठेको तटके वृक्षस्थान चलते दृष्टि आते हैं, तैसे भ्रमदृष्टिकरि जगत् भासता है, इस जगत्को तू इन्द्रजालवत् जान, मायाकरि रचा जगत् देह पिंजर है, मनके मननकरि असत्यरूपही सत्यकी नाईं स्थित भया है, और जगत् द्वैत कछु हुआ नहीं, ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, और शरीरादिक कैसे किसकी नाईं स्थित कहिये, पर्वत तृण आदिक जो जगत् आडंबर है, सो भ्रांतिमात्र मनकी भावना करि दृढ हो भासता है, असत्यही सत्यरूप हो स्थित भया है ॥ हे रामजी ! यह प्रपंच नानाप्रकारकी रचनासंयुक्त भासता है, तौ भी अंतरते तुच्छ है, इसकी कामना तृष्णा त्यागकरि सुखी होहु, जैसे स्वप्नविषे बड़े आडंबर भासते हैं, सो भ्रांतिमात्र असत्यरूप है, वास्तवते कछु नहीं, तैसे यह जगत् दीर्घ कालका स्वप्न है, चित्तकरि कल्पित है, देखनेविषे बड़ा

विस्ताररूप भासता है, विचार करिकै ग्रहण करिये तौ हाथ कछु नहीं आता है, जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रतविषे कछु नहीं पाईजाती जैसे घुनकीट अपना रचा गृह बंधन करता है, तैसे अपना रचा जगत् मनको दुःखदाई है, ताते इसको त्याग करहु, जिस पुरुषने इसको असत्य जाना है सो जगत्की भावना बहुरि नहीं करता, जैसे मृगतृष्णाके जलको जिसने असत्य जाना है, सो पानके निमित्त धावता नहीं, जैसे अपने मनकी कल्पित स्त्रीसों बुद्धिमान् राग नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् जगत्के पदार्थविषे राग नहीं करता, अरु जो अज्ञानी हैं, सो रागकरि बंधायमान होते हैं, जैसे स्वप्नविषे असत्य स्त्रीसों चेष्टा करते हैं, तैसे अज्ञानी असत्य जगत्को सत्य जानिकै चेष्टा करते हैं, बुद्धिमान् सत्य मानिकरि नहीं करते, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे मनके मोहकरि जगत् भासता है, अरु भयदायक होता है, सर्व जगत भावनामात्र है, जैसे जलविषे चंद्रमाका प्रतिबिंब चंचल भासता है, तिसके ग्रहणकी इच्छा बालक करता है, बुद्धिमान् नहीं करता, तैसे जगत्के पदार्थकी इच्छा अज्ञानी करते हैं, ज्ञानवान् नहीं करते ॥ हे रामजी! यह मैं परमगुणका समूह तुझको उपदेश किया है तिसकी भावना करिकै तू सुखी होवैगा, अरु जो मूर्ख इन वचनोंको त्यागिकै दृश्यकी ओर सुखरूप जानिकै लगते हैं, सो पुरुष ऐसे हैं जैसे कोऊ शीतकरि दुःखी होवै अरु प्रत्यक्ष अग्निको त्यागिकरि जलविषे भासिके प्रतिबिंबका आश्रय करै, तिसकरि शीत निवृत्त करै सो मूर्ख है, तैसे आत्मविचारको त्यागिकै जो जगत्के पदार्थकी सुखके निमित्त इच्छा करते हैं, सो मूढ है, सब जगत् असत्य रूप है, मनके मननकरि रचा है, जैसे स्वप्नविषे चित्तकरि नगर भासता है, अरु स्वप्नविषे नगर जलता भासै, तौ पुरुष कदाचित नहीं जलता, तैसे जगत्के नाश हुएते आत्मनाश नहीं होता, उपजने बढने घटने नाश होनेते आत्मा रहित है, जैसे बालक अपनी क्रीडाके निमित्त हस्ती घोडा नगर रचि लेता है अरु सबको ढाहता है, तौ वह उपजने मिटनेविषे ज्योंका त्यों है, जैसे बाजीगर बाजीको पसारता है, बहुरि लय करता है, सो उत्पत्तिलयविषे बाजीगर ज्योंका त्यों है, तैसे आत्मा, जगत्की उत्पत्ति-

लयविषे ज्योंका त्यों है, तिसीका कछु कदाचित् नष्ट नहीं होता, जो सब सत्य है तौ किसीका कछु नाश नहीं होता, इसकारणते जगत्विषे हर्ष शोक करना योग्य नहीं, अरु जो सब असत् है, तौ भी नाश किसीका न हुआ, अरु दुःख भी किसीको न हुआ, सत्य असत्य दोनों प्रकार हर्ष शोक नहीं होता, स्वरूपते किसीका नाश नहीं, सब जगत् ब्रह्मरूप है, तौ दुःख सुख कहां है, ब्रह्मसत्ताविषे कछु द्वैत जगत् बना नहीं, सब प्रत्यक्ष जो अनन्वय होता है, तौ भी असत्यरूप है, तिस असत्यरूप संसारविषे ज्ञानवान्को ग्रहण करने योग्य पदार्थ कोऊ नहीं, जो जगत् सब भूतविषे ब्रह्मतत्त्व है, इतर कछु नहीं, त्रिलोकीविषे तौ इसी पदार्थके ग्रहणत्यागकी इच्छा करिये, जगत् सत्यरूप होवै, अथवा असत्यरूप होवै, ज्ञानवान्को सुखदुःख कोऊ नहीं, तृतीय भ्रांति दृष्टि अज्ञानीको दुःखदायक होती है, जो वस्तु आदिअंतविषे असत्य है, सो मध्यविषे भी असत्य जानिये, तिसके पाछे जो शेष रहता है, सो सत्यरूप है, जिसकरि असत्य भी सिद्ध होता है, जो मोहकरि आवृत बालबुद्धि है, सो जगत्के पदार्थकी इच्छा करते हैं, बुद्धिवान् नहीं करते, बालकको जगत् विस्ताररूप भासता है, तिसकरि अपना प्रयोजन वांछते हैं, बहुरि सुखदुःख भोगते हैं, तू बालक मत होहु, जगत् अनित्य है, इसकी आस्था त्यागिकरि सत्यात्माविषे स्थित होहु, अरु जो आपसंयुक्त संपूर्ण जगत् असत्रूप जानै, तौ भी विषाद कछु नहीं, जो आपसंयुक्त सब सत्य जानै तौ भी इस दृष्टिकरि हर्ष शोक नहीं, ये दोनों निश्चय सुखदायक हैं, आपसंयुक्त सब असत्यरूप जानैगा तौ दुःख नहीं होता ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ जब इसप्रकार वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त हुआ, सब सभा नमस्कार करिके अपने स्थानको गई, बहुरि सूर्यकी किरणोंसंग अपने आसनपर आय बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे यथार्थोपदेशयोगो नाम पंचचत्वारिंशत्तम सर्गः ॥ ४५ ॥

पट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४६.



यथाभूतार्थबोधयोगवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो धन स्त्री आदि नष्ट हो जावें तो इन्द्रजालकी बाजीवत् देखिये, इसकरि भी शोकका असर नहीं होता, क्षण दृष्टिविषे आये बहुरि नष्ट होगये, तिनका शोक करना व्यर्थ है, गंधर्वनगर जो रत्नमणिकरि भूषित किया होवै, अथवा दुःखकरि दूषित किया होवै, हर्षशोकका स्थान कहां है, तैसे अविद्याकरि रचे पुत्र स्त्रीधनादिक हैं, तिनके सुखदुःखका क्रम कहां है, जो पुत्रधनादिक बढैं तो भी हर्ष करना व्यर्थ है, जैसे मृगतृष्णाका जल बढा तो भी अर्थ सिद्ध नहीं करता, तैसे धन दारा आदिक बढैं तो हर्ष कहां है, शोकवान्ही रहता है वह कौन पुरुष है, जो मोहमायाके बढ़े हुए शांतिवान् होवै, वह दुःखदायक है, जो मूढ हैं, सो भोगको देखिकै हर्षवान् होते हैं अधिकते अधिक चाहता है, अरु बुद्धिमान्को तिन भोगते वैराग्य उपजता है, जिनको आत्माका साक्षात्कार नहीं भया, अरु भोगको अतवत नहीं जाना, तिनके भोगकी तृष्णा बढ़ती है, अरु जो बुद्धिमान् हैं, सो भोगको आदिते अंतवत नहीं जानते हैं, दुःखरूप जानिकरि तिसकी इच्छा नहीं करते, ताते हे राघव ! ज्ञानवान्की नाई व्यवहारविषे विचरो, जो नष्ट होवै सो होवै, जो प्राप्त होवै सो होवै, तिसविषे हर्ष शोक न करहु, तिसको यथाशास्त्र हर्षशोकते रहित भोगहु, अरु जो न प्राप्त होवै, तिसकी इच्छा न करहु, यह पंडितका लक्षण है ॥ हे रामजी ! यह ससार दुःखरूप भोगकरि आया है, इसविषे मोहको प्राप्त नहीं होना, जैसे ज्ञानवान् विचरते हैं, तैसे विचरना, मूढवत् नहीं विचरना, यह ससार आडंबर अज्ञानकरि रचा है, जो इसको ज्योंका त्यों नहीं देखते, सो कुबुद्धि नष्ट होते हैं, जिस जिस संसारके पदार्थकी इच्छा होती है, सो बंधनका कारण है, तिनविषे डूबि जाता है, जो बुद्धिमान् है सो जगत्के पदार्थविषे प्रीति नहीं करते, जिस निश्चयकरि जगत्को असत्यरूप जाना है, सो किसी पदार्थविषे बधमान नहीं होता, अविद्यारूप पदार्थ तिसको

खेद नहीं देते, वस्तु बुद्धिकरि खैंच नहीं सकता, जिसकी बुद्धिविषे यह निश्चय हुआ कि, सर्व मैं हौं, ऐसे जानिकै किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता॥ हे रामजी! शुद्ध तत्त्व जो सत्य असत्य जगत्के मध्यभाव है, तिसका अंतरते आश्रय करहु और जो अंतर बाहिर जगत् दृश्य पदार्थ हैं तिनको मत ग्रहण करहु, इनकी आस्था त्यागिकरि परमपदको प्राप्त होहु, अति विस्तृत स्वच्छरूप आत्माविषे स्थित होहु, रागद्वेषते रहित सब कार्य करहु, जैसे आकाश सब पदार्थमें व्यापक अरु निर्लेप है, तैसे सब कार्य करत निर्लेप होहु; रागद्वेषते रहित होहु, जिस पुरुषको पदार्थविषे न इच्छा है न अनिच्छा है, कर्मविषे स्वाभाविक स्थित है, तिसको कर्मका स्पर्श नहीं होता, कमलवत् सदानिर्लेप रहता है, देखना सुनना आदिक इंद्रियोंकरि व्यवहार होता है, ताते तुम इंद्रियोंकरि व्यवहार करहु, अथवा न करहु, परंतु इनविषे निरिच्छित रहो अभिमानते रहित होइकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, यह मैं हौं, यह मेरा है, इस मिथ्या कल्पनाते रहित सुखी होहु, इंद्रियके अर्थका सार जो अहंकार है, सो जब यह हृदयविषे न फुरैगा, तब तुम जो योग्य पदको प्राप्त होहुगे, रागद्वेषते रहित संसारसमुद्रको तरि जाहुगे, जब इंद्रियोंके रागद्वेषते रहित हौ, तब मुक्तिकी इच्छा न करै, तौ भी मुक्तिरूप है॥ हे रामजी! इस देहते आपको व्यतिरेक जानिकरि जो उत्तम आत्मपद है, तिसविषे स्थित होहु, तब तुम्हारा परमयश होवैगा, जैसे पुष्प सुगंधित प्रगट होता है, यह संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे वासनारूपी जल है, तिसविषे जो आत्मवेत्ता बुद्धिरूपी बेडपर चढते हैं, सो तरिजाते हैं, अरु जो नहीं चढते सो डूबि जाते हैं, यह बोध मैं तुझको क्षुरधारकी नाईं तीक्ष्ण कहा है, सो अविद्याके काटनेहारा है, जिसको विचारकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, जैसे तत्त्ववेत्ता आत्मतत्त्वको जानिकरि व्यवहारविषे विचरते हैं, तैसे तुम भी विचरो, अज्ञानीकी नाईं नहीं विचरना, जैसे जीवन्मुक्त पुरुषको नित्य तृप्तका आचार है, तिसको अंगीकार करना, भोगविषे दीन नहीं होना, मूढके आचारवत् आचार अंगीकार न करना, जो परावर परमात्मवेत्ता पुरुष हैं, सो न कछु ग्रहण करते हैं, न त्याग

करते है, न कीसीकी वांछा करते है, जैसा व्यवहार प्रारब्धवेगकरि प्राप्त होता है, तिसीविषे विचरते है, राग द्वेष किसीविषे नहीं करते, बड़ा ऐश्वर्य होवै, बड़े गुण होवै, लक्ष्मी आदिक बड़ी विभूति होवै, तो भी ज्ञानवान् अज्ञानीवत् अभिमान नहीं करते, अरु महाशून्य वनविषे खेदवान् नहीं होते, देवताका सुंदर वन विद्यमान होवै, तिसकरि हर्षवान् न होवै, न किसीकी इच्छा है, न त्याग है, जैसी अवस्था आनि प्राप्त होवै, रागद्वेषते रहित तिसीविषे विचरते हैं, जैसे सूर्य समभावसों लीन विचरता है, तैसे अभिमानते रहित देहरूपी पृथ्वीविषे विचरते है, अब तू भी विवेकको प्राप्त होहु, बोधके बलकरि इसविषे स्थित होहु और कीसी पदार्थकी ओर दृष्टि नहीं करनी, निर्वैर निर्मल दृष्टिको ले विचरना, समभावविषे सम उत्तम भाव पृथ्वीमें स्थित होना, संसारकी इच्छा दूरते त्यागिकरि यथा व्यवहारविषे विचरना, परम शांतरूप रहना ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ जब इसप्रकार निर्मल वाणीकरि वसिष्ठजीने कहा, तब निर्मल चित्त रामजीका हृदय अमृतकरि शीतल अरु पूर्ण भया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि शीतल पूर्ण होता है, तैसे रामजी शांतिकरि पूर्ण भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे यथाभूतार्थबोधयोगो नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४७.

जगत्सत्यासत्यनिर्णय ।

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्म वेद वेदांतके पारज्ञ, तुम्हारे शुद्ध वचनकरि मैं स्वस्थ भया हौं, कैसे तुम्हारे वचन हैं, उदार विरक्तरूप हैं, कोमल अरु उचित हैं, तिन तुम्हारे वचनरूपी अमृतको पान करि मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ हे भगवन् ! तुम राजस सात्त्विक जगत कहने लगे थे, सो कछु संक्षेपते कहा था, तिनविषे अवकाशको पायकरि तुमने ब्रह्माजीकी उत्पत्ति कही, तिसकरि मुझको यह संदेह उत्पन्न भया, सो हृदयविषे विस्तारको पाता भया है कि, कहूं ब्रह्माकी उत्पत्ति कमलतें कहीं

है, कहूं आआशते, कहू अंडते, कहू जलते कही है, सो विचित्ररूप शास्त्र करि कैसे कहा है, तुम सब संशयके नाशकर्त्ता हौ, कृपाकरि शीघ्र मुझको उत्तर कहौ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! कई लक्ष ब्रह्मा हुए हैं, कई अनेक विष्णु रुद्र होते है, अब भी अनेक ब्रह्मांडविषे अनेक प्रकारके व्यवहार संयुक्त होते है, कई तुल्य होते है, कई बडे छोटे कालके होते हैं, स्वप्नजगत्की नांईं उत्पन्न होते हैं, कई तुल्य हैं, कई आगे होवंगे,तिनविषे तुझने एक ब्रह्माकी उत्पात्ति पूछी है, सो सुन, अरु यह भी अनेक प्रकारके होते है, कबहू सृष्टि सदाशिवते उत्पन्न होती है, कबहूँ ब्रह्माते; कबहूँ विष्णुते, कबहु मुनीश्वर रचि लेते है, कबहूँ ब्रह्मा कमलते उपजतादे, कबहूं जलते, कबहूं पवनते, कबहूं अंडते उपजा है, कबहू किसी ब्रह्मांडविषे इंद्र त्रिनेत्र होता है, कबहूं पुंडरीकाक्ष विष्णु होता है, कबहूँ सदाशिव होता है कबहू सृष्टिविषे पर्वत उपजते हैं, तिनकरि पृथ्वी निरभ्र हो रही है, कबहूं मनुष्यकरि पूर्ण, कबहूं वृक्षकरि पूर्ण होती है, अनेक प्रकार सृष्टिकी उत्पाति होती है, किसी ब्रह्माविषे मृत्युका भय होता है, कबहूँ पाषाणमय होती है, कबहूँ मांसमय होती है, कबहूं स्वर्णमय होती है, इसप्रकार पृथ्वी होती है, कई सृष्टि ऐसी हैं, चतुर्दश लोक हैं, किसी सृष्टिविषे कई लोकभये हैं किसी सृष्टिविषे ब्रह्मा नहीं हुआ,इसीप्रकार अनेक सृष्टि चिदाकाश ब्रह्मतत्त्वते फुरी हैं,बहुरि लय भई हैं,जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि लय होता है, तैसे आत्माविषे अनेक सृष्टि उपजिकरि लय हो जाती हैं,जैसे मरुस्थलविषे मृगतृष्णाकी नदी भासती है,जैसे पुष्पविषे सुगंधि होती है, तैसे परमात्माविषे जगत् है,तैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रसरेणु भासते है,तिनकी संख्या कही नहीं जाती; कोऊ ऐसा समर्थ भी होवै, जो तिनकी संख्या करै परंतु ब्रह्मतत्त्वविषे जो सृष्टि फुरती हैं, तिनकी संख्या करनेको कोउ समर्थ न होवैगा, जैसे वर्षाऋतुविषे ईखके क्षेत्रविषे मच्छर होते अरु नष्ट हो जाते हैं, तैसे आत्माविषे सृष्टि उपजिकरि नष्ट हो जाती है, वह काल जाना नहीं जाता जिस कालविषे सृष्टिका उपजना हुआ है, आत्मतत्त्वविषे नित्यही सृष्टिका उपजना लय होना है, सो अंत कछु नहीं, जैसे समुद्रते तरंग फुरते हैं उनते पूर्व और बहुरि उनते पूर्व और,इसीप्रकार आदि अरु अंत कछु जाना

नहीं जाता, तैसे आत्माविषे सृष्टिका आदि अंत कछु नहीं, देवता दैत्य मनुष्य आदिक कई उपजिकरि लय भये हैं, कई आगे होवेंगे, जैसे यह ब्रह्मांड ब्रह्मा करि रचा है, तैसे अनेक ब्रह्मांड हो गये हैं जैसे अनेक घटिका एक वर्षविषे व्यतीत होती हैं, तैसे बीते है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे ब्रह्मतत्त्वविषे असंख्य जगत् होते है, कई सृष्टि हो बीती हैं, कई अब होती हैं, कई आगे होवैंगी, जैसे मृत्तिकाविषे घट होता है, जैसे वृक्षविषे अनेक पत्र होते है बहुरि मिटि जाते हैं जैसे जबलग समुद्र है, तिसविषे जल है, तबलग ऊर्मी तरग आवर्त निवृत्त नहीं होते कई उपजते है, कई लय होते है, तैसे ब्रह्म चिदाकाश है, तबलग त्रिलोकीजगत् उपजिकरि लय होते हैं, जबलग अपने स्वरूपका प्रमाद है, तबलग विकारसंयुक्त जगत् फुरते हैं वडे विस्तारसयुक्त भासता है, जब आतमस्वरूप दृष्टिकरि देखैगा, तब कोऊ विकार न भासैगा, जबलग आत्मदृष्टिकरि नहीं देखा तबलग आभासगतिविषे उपजते अरु मिटते है, न सत्य कहे जाते हैं, न असत्य कहाते हैं, वास्तवते ब्रह्म अरु जगत् विषे कछु भेद नहीं, समुद्रविषे तरंगकी नांई अभेद है, भिन्न होइकारि जो भासते है, सो अविद्याकरि भासते है, विचार कियेते निवृत्त हो जाते हैं, चरअचररूप जगत् नानाप्रकारकी चेष्टासयुक्त अनंत सर्वेश्वर आत्माविषे फुरते है, सो भिन्न नहीं. जैसे शाखा फूल फल वृक्षते भिन्न नहीं, भिन्न भासते हैं, तौ भी अभिन्न है, तैसे आत्माते जगत् भिन्न भासते हैं, तौ भी भिन्न नहीं, आत्मरूप है ॥ हे रामजी ! मैं जो तुझको चतुर्दश भुवनसयुक्त सृष्टि कही है, कोऊ अल्प कनिष्ठरूप हैं, कोऊ वडे है, सो सब परमात्मा आकाशविषे उपजते हैं अरु वही रूप हैं, कबहूं ब्रह्मतत्त्वसों प्रथम ब्रह्म आकाश उपजता है, सो उपजिकरि प्रतिष्ठाको पाता है, तिसते ब्रह्मा उपजता हैं, तब तिसका नाम आकाशज होता है, कबहू प्रथम पवन उपजता है, प्रतिष्ठित होता है, तिसते ब्रह्मा उपजता है, सो वायुज नाम हुआ, प्रजापतिकरि कबहू होता है, कबहूं प्रथम जल उत्पन्न होता है, जलस्थित भया, तिसते ब्रह्मा उपजिकरि जलज नाम होता है, कबहूं प्रथम पृथ्वी उत्पन्न भई है, सो विस्तारभावको प्राप्त भई है, तिसते ब्रह्मा उपजा है, तब पार्थिवज नाम हुआ है, अग्निते उपज

तब अग्निज नाम पाया है ॥ हे रामजी ! यह पंचभूतते ब्रह्माकी उत्पत्ति भई सो तुमको कही, जब चार तत्त्व पूर्ण होते हैं, पचम तत्त्व सबते बढ़ता है, तब तिसते प्रजापतिउपजकरि अपने जगतको रचता है, कबहूं ब्रह्मतत्त्वते आपही फुरि आता है, जैसे पुष्पते सुगंधि फुरि आती है तैसे ब्रह्माजी उपजिकरि पुरुषभावनाते पुरुषरूप स्थित होता है, तिसका नाम स्वयंभू होता है, कबहूं पुरुष जो विष्णुदेव हैं, तिसकी पीठसों उपजि आता है, कबहू नेत्रते प्रगट होता है, तब प्रजापति नेत्रज होता है, कबहूं नाभिते उत्पन्न होता है, तब पद्मज होता है, वास्तवते सब मायामात्र है, स्वप्नवत् मिथ्यारूपही सत्य हो भासता है, जैसे मनोराज्य सृष्टि भासि आती है, तैसे यह जगत है, जैसे नदीविषे तरंग अभिन्नरूप फुरते हैं, तैसे आत्मामों अभेद जगत् फुरता है, वास्तवते कछु है नहीं, जब शुद्ध सत्ताका आभास संवेदन फुरता है, तब वही जगत्रूप हो भासती है जैसे बालकके मनोराज्यविषे सृष्टि फुरती है, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे यह है, कबहूं शुद्ध आकाशविषे मननकला फुरती है, तिसते स्वर्णका अंड उपजता है, अडते ब्रह्मा उपजि आता है, कबहू पुरुष विष्णुदेव जलविषे वीर्य डारता है, तिसते पद्म उपजता है, तिसी पद्मसों ब्रह्मा प्रगट होता है, कबहू सूर्यसों फुरि आता है, इसीप्रकार विचित्ररूप रचना ब्रह्मपदते उपजती है, बहुरि लय हो जाती है, तेरे दिखानेके निमित्त मैंने अनेक प्रकारकी उत्पत्ति कही है, सो सब मनके फुरणेमात्र है, और हुआ कछु नहीं ॥ हे रामजी ! तेरे प्रबोधके निमित्त मैंने सृष्टिका क्रम कहा है, अरु इनहूका रूप है, सो मनोमात्र है, उपजि उपजिकरि लय हो जाती है, बहुरि दुःख, बहुरि सुख, बहुरि अज्ञान, बहुरि ज्ञान, बहुरि बंध, बहुरि मोक्ष होते हैं, कबहूं मित्र, कबहू शत्रु होते हैं, बहुरि मिटि जाते हैं, जैसे दीपकका प्रकाश उपजिकरि नष्ट हो जाता है, तैसे देह उपजिकरि न हो जाते हैं, कालकी न्यूनता अरु विशेषता यही है कि, कोऊ चिरकालपर्यंत रहता है, कोऊ शीघ्रही नष्ट हो जाता है, परंतु सबकी विनाशरूप है, ब्रह्माते आदि कीटपर्यंत जेते वस्तु आकार भासते हैं, सो कालके भेदको त्यागिकरि देख कि, सब नाशरूप हैं, कबहूं सत्ययुग, कबहू त्रेता-

युग, कबहूं द्वापर, कबहू कलियुग आता है, बहुरि बहुरि वही आते हैं अरु जाते हैं, इसीप्रकार कालका चक्र पड़ा भ्रमता है, बहुरि मन्वंतरका आरंभ होता है,कालकी परंपरा व्यतीत होती है,जैसे प्रात.कालविषे बहुरि प्रातःकाल आता है, तैसे जगत्की वही वही गति है, बहुरि अंधकार, बहुरि प्रकाश होता है,ब्रह्मतत्त्वते स्फुरणरूप होइकरि बहुरि लीन होता है, जैसे तप्त लोहेते चिणगारे उड़ते हैं सो लोहविषे होते हैं,तैसे यहसबभाव चिदाकाशते उपजते हैं,सो चिदाकाशविषे स्थित हैं,कबहूंअव्यक्तरूप होते हैं, कबहूं प्रगट होते हैं, जैसे समुद्रविषे तरग अरु वृक्षविषे पत्र होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे नेत्रदूषणकरि आकाशविषे दो चद्रमा भासते हैं, तैसे चित्तके फुरनेकरि आत्माविषे जगत् भासताहै, तिसीविषे स्थिति अरु लय होते है, जैसे चद्रमाकी किरणें उत्पन्न स्थित होइकरि लय होती है, तैसे आत्माविषे जगत् है, सो स्वरूपते कहू आरभ नहीं हुआ, मनके फुरणे करि भासता है ॥ हे रामजी ! आत्मा सर्वशक्ति है, जो शक्ति तिसते फुरती है, सो तिसीका रूप हो भासता है, जगत् सब असत्यरूप है, जिसके चित्तविषे महाप्रलयकी नाई असत्यका निश्चय है, सो पुरुष बहुरि संसारी नहीं होता, स्वरूपविषे जुडा रहता है, ऐसे महामति ज्ञानवान्की दृष्टिविषे सर्व ब्रह्मका निश्चय होता है, हमको यही निश्चय है कि, संसार नहीं सर्व ब्रह्मतत्त्वही सदा विद्यमान् है, अरु अज्ञानीकी दृष्टिविषे जगत् निरतर सत्यरूप है, संसार उसको विद्यमान् है, सो बहुरि बहुरि उपजिकरि नष्ट होता है, स्वरूपते उपजने विनशनेकरि भी नष्ट नहीं होता, परतु अज्ञानी जगत्को असत्य नहीं जानते, सदा स्थित जानते हैं, तिसकरि सब नष्ट होते है, सब पदार्थ जगत्के विनाशरूप हैं, परंतु दृश्यकरि जगत् असत्य नहीं भासता, जो पदार्थकी सत्यता दृढ हो गई है, सो नाशरूप है, रहना किसीका नही, कोऊ पदार्थ सत्य भासता है, कोऊ असत्य भासता है, इस जगत्विषे ऐसा कौन पदार्थ है, जो कलनारूप करनेकरि विस्ताररूप ब्रह्मविषे न बनै, यह जगत् महाप्रलयविषे नष्ट हो जाता है, बहुरि उत्पन्न हो आता है, बहुरि जन्म अरु मरना होता है, सुख, दुःख, दिशा, आकाश, मेघ, पृथ्वी, पर्वत, सब बहुरि बहुरि उपजि

आते हैं ॥ जैसे सूर्यकी प्रभा उदय अस्तको प्राप्त होती रहती है, तैसे सृष्टि उदय अस्त होती भासती है, बहुरि देवता बहुरि दैत्य लोकांतर क्रम होते हैं, स्वर्ग, मोक्ष, इन्द्र, चन्द्रमा, नारायण, देव, पर्वत, सूर्य, वरुण, अग्नि, आदिक लोकपाल बहुरि बहुरि हो आते हैं, सुमेरु आदिक स्थान फुरि आते हैं, तमरूप जो हस्ती है, तिनके भेदनेको सूर्यरूप केसरी सिंह उपाजि आते हैं, स्वर्ग इन्द्र अप्सरागण अमृतकरि आते हैं. धर्म अर्थ,काम, मोक्ष, क्रिया, कर्म, शुभअशुभरूप हो आते हैं यज्ञ, दान, होम आदिक सर्व क्रियाकरि संयुक्त जीव संसारी होते हैं, शुभकर्म करनेहारे स्वर्गविषे विचरते हैं, सुख भोगते हैं, पुण्यके क्षीण हुएते उनको गिराय देते हैं, व मृत्युलोकविषे आते हैं, इसप्रकार कर्म करते हैं, उपजते अरु नष्ट होते हैं स्वर्गरूपी कमल है, तिसविषे इन्द्ररूपी भँवरा है, तिस स्वर्गकी सुगंधि लेकरि वह इन्द्र चलता रहता है, अपर इन्द्ररूपी भँवरा स्वर्गकमलकी सुगंधिको लेने आता है, जेता पुण्यकर्म किया होता है, तेता काल सुख भोगिकरि फिर नष्ट हो जाता है, अरु सत्ययुग आते हैं, सर्व देश, काल, क्रिया, द्रव्य जीव उपज आते हैं, जैसे कुलालचक्रकरिकै बासन बनता है, तैसे चित्कला फुरणेकरि जगत्के अनेक पदार्थ उत्पन्न करती है, सुंदर स्थान जीवसंयुक्त होते हैं, बहुरि नष्ट हो जाते हैं, असत्यमात्र जगत्काल जीवितते रहित शून्य मशान हो जाते हैं, कुलाचल पर्वतके आकारवत् मेघ जल वर्षा करते हैं, तिसविषे जीव बुद्बुदेरूप होइकरि स्थित होते हैं, द्वादशसूर्याग्नि उदय होते हैं, शेषनागके मुखते अग्नि निकसता है, तिसकरि सब जगत् दग्ध होता है, बहुरि अग्निकी ज्वाला शांत हो जाती है, एक शून्य आकाशही शेष रहता है, रात्रि हो जाती है, जब रात्रिका भोग चुकता है, बहुरि जीव जीर्ण देहकरि संयुक्त मनरूप ब्रह्मा रचि लेता है, इसप्रकार शून्य आकाशविषे मन जगत्को रचता है, जैसे शून्य स्थानविषे गंधर्वमायाकरि नगर रचि लेता है, तैसे जगत्को मन रचि लेता है, बहुरि प्रलय हो जाता है, इसप्रकार जगत्गण उपजिकरि महाप्रलयविषे नष्ट होते हैं, ब्रह्माके दिन क्षय हुएते फिर जब ब्रह्माका दिन होता है, तब बहुरि रचि लेता है; बहुरि महाप्रलयविषे ब्रह्मा-

दिक सब अंतर्धान हो जाते हैं, इसप्रकार प्रलयमहाप्रलय अनेक जगत्‌गण व्यतीत होवे हैं, महादीर्घ मायारूपी कालचक्र पड़ा फिरता है, तिसविषे मै तुझको सत्य क्या कहौं, असत्य क्या कहौं, सर्व भ्रांतिरूप दासुरके आख्यानवत् जगत् है, कल्पनामात्ररचित चक्र है, वस्तुते शून्य आकाशरूप है, वड़े आरंभसंयुक्त विस्ताररूप भासता है, तौ भी असत्य रूप है,जैसे भ्रमकरि दूसरा चद्रमा भासता है,तैसे यह जगत् मूढके हृदयविषे सत्य भासता है, तुम मूढ होना नहीं, ज्ञानवान्‌वत् विचारिकारि जगत्‌को असत्य जानना ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगत्सत्यासत्यनिर्णयो नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्ग ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशत्तम. सर्गः ४८.

दासुरोपाख्यानेवनोपरुदनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी। भोग अरु ऐश्वर्यकरिकै जो चित्त खैंचा है सो नानाप्रकार क्रियाके आरंभ करते है राजस तामस सात्त्विककर्म करते हैं, वह मूढ आत्मा शांतिको नहीं प्राप्त होता, जब भोगकी तृष्णाते रहित होवै, तब आत्माको देखै, जिन पुरुषोंको इंद्रियगण वश नहीं करि सकते; सो आत्माको प्रत्यक्ष हस्तविषे विल्वफलवत देखते हैं, जिन पुरुषोंने विचार करिकै अहंकाररूपी मलिन शरीरका त्याग किया है, तिनका शरीर जगत्‌रूप हो जाता है, जैसे सर्प कंचुकीको त्यागता है, अरु नूतन पाता है, तैसे मिथ्या शरीरको त्यागिकरि आत्मविचारते आत्मशरीरको पाता है, ऐसे जो निरहंकार आत्मदर्शी पुरुष हैं, सो जगत्‌के पदार्थविषे आसक्त भासते हैं, तौ भी जन्ममरणको नहीं पाते, जैसे अग्निकरि भूना बीज क्षेत्रमें नहीं उपजता, तैसे ज्ञानवान् वहुरि जन्म नहीं पाते, अरु जो अज्ञानी भोगविषे आसक्तबुद्धि हैं. सो मन अरु शरीरके दु खकरि दु खी होते हैं, वारवार जन्म अरु मरणको पाते हैं, जैसे दिन होता है, वहुरि रात्रि होती है, तैसे वे जन्ममरण पाते हैं, ताते तुम अज्ञानीकी नाई नहीं होना, व्यवहार चेष्टा जैसे अज्ञानीकी होती है तैसे करो, परंतु

अंतरते भोगादिककी ओर चित्तको न देहु, आत्मपरायण रक्खो ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम जो कहा संसारचक्र दासुरके आख्यानवत् है, कल्पनाकरिकै रचित है, तिसका आकार वस्तुते शून्य है, यह तुमने क्या कहा इसको प्रगट करि कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! वर्णनके निमित्त मैंने जगत् मायारूप तुमसे कहा है, अरु दासुरके प्रसंगसे कछु प्रयोजन न था, परंतु तैंने पूछा है, तौ अब सुन ॥ हे रामजी! इस सृष्टिविषे मगध नाम देश है, सो विचित्र वृक्ष फलकरि पूर्ण है बड़ा कदंब वनस्पति ताल करिके जंगल विचित्ररूप पक्षीसहित है, मनके सोहनेहारा चारों ओरते निरंध्र कमलपुष्पसंयुक्त तडाग बगीचे अति सुदर देश है, तहां एक पर्वतके तटके ऊपर निरंध्ररूप केलिका खंड है अरु और अनेक वृक्ष जो फूल फलकरि पूर्ण जीवके जीवनरूप हैं, कोकिला आदिक पक्षी शब्द करते हैं तहां नगरविषे एक परमधर्मात्मा तापसी होता भया, दासुर तिसका नाम था, महातपकरि संयुक्त कदंबवृक्षपर बैठिकरि वीतराग महाबुद्धिमान् तप करता था ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ऋषीश्वर तापसी वनविषे किसनिमित्त आया था अरु कदंबवृक्षपर किसनिमित्त बैठा सो कारण कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शरलोमानामक ऋषीश्वर तिसका पिता होता भया, मानो दूसरा ब्रह्मा था, सो तिस पर्वतपर रहता था, तिसके गृहविषे दासुर नामक पुत्र होता भया, जैसे बृहस्पतिके गृहविषे कच हुआ, तैसे शरलोमाने पुत्रसंयुक्त वनविषे चिरकाल व्यतीत किया, तहाँ जगके क्षीण भोगकरि देहका त्याग किया अरु स्वर्ग लोकको गमन करत भया, जैसे पक्षी आलयको त्यागिकरि आकाशमें उड़ता है, तिस वनविषे दासुर एकाएकी रहिगया पिताके वियोगकरि रुदन करत भया, जैसे कुंज वियोगकरि कुम्हलाती है, जैसे हिमऋतुविषे कमलकी शोभा नष्ट हो जाती है, तैसे दीन हो गया, तब वहां अदृष्ट शरीर वनदेवी थी, सो दया करि आकाशवाणी करत भई ॥ हे ऋषिपुत्र बुद्धिवान्! अज्ञानीकी नांई क्या रुदन करता है, यह संसार सर्व असत्यरूप है, तू इस संसारको देखना नहीं, यह तो नाशरूप महाचंचल है, सब काल उत्पन्न अरु विनाश होता है, कोऊ पदार्थ स्थित नहीं रहता, ब्रह्माते आदि कीटपर्यंत जेता कछु जगत

तुझको भासता है, सो सब नाशरूप है, इसविषे संदेह कछु नहीं, ताते तू पिताके मरनेका विलाप मत कर, यह बात अवश्य इसीप्रकार है, जो उत्पन्न भया है, सो नष्ट होवैगा, स्थिर कोऊ नहीं रहेगा, जैसे सूर्य उदय होता है, बहुरि अस्त होता है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार अशरीर देवीकी वाणी दासुरने सुनी, तब रक्तनेत्र दासुर धैर्यको प्राप्त भया, जैसे मेघका शब्द सुनकरि मोर प्रसन्न होता है, तैसे शांतिवान् होकारि यथाशास्त्र पिताकी जो क्रीया थी, सो सब करत भया. तिसके अनंतर सिद्धताके निमित्त तत्पदका उद्यम करत भया, ब्राह्मणका जो कर्म है, तप विद्या, सो सब शीख तिसके अध्ययनकरि श्रोत्रिय भया था, परंतु अज्ञान हृदय था, ज्ञानी न था, ऐसा श्रोत्रिय होइकारि तपके निमित्त उठि विचार किया, कि कोऊ पवित्र स्थान होवै, तहां जाय तप करौं देखता देखता पृथ्वीविषे किसी स्थानमें चित्त विश्रांतिवान् न भया, सब पृथ्वी उसको अशुद्ध दृष्टि आई, कहूं कोऊ विघ्न भासै इसप्रकार सब पृथ्वीको अशुद्ध देखिकरि विचारत भया, सो और स्थान तौ सब अशुद्ध हैं; परंतु वृक्षकी शाखापर बैठि तप करौं, ऐसा कोऊ उपाय होवै जो वृक्षकी शाखाके अग्रभागविषे मैं स्थिति पाऊं ऐसे चिंतनकारि अग्नि प्रज्वालितकरि अरु अपने मुखका मांस काटिकरि होमने लगा, तब सब देवतोंका मुख जो अग्नि है, सो विचारत भया कि, ब्राह्मणका मांस मेरे मुखविषे न आवै, तब अग्नि जैसे देह धारिकरि ब्राह्मणके निकट आया, अरु कहत भया, जैसे ब्रह्माको सूर्य कहै, बडे प्रकाश शरीरको धरके अग्नि कहता भया ॥ हे ब्राह्मणकुमार ! जो कछु तुझको वांछित वर है सो माँग जैसे भंडारको खोलिकरि मणि लेता है, तैसे मुझसों वर लेहु जब अग्निने ऐसे कहा, तब दासुरने पुष्प धूप सुगंधि आदिककरि अग्निका पूजन किया अरु प्रसन्न होइकरि कहत भया हे भगवन् ! प्राणाहुतीके पवन शरीरसों मैंने तप करनेके निमित्त उद्यम किया है, सो और शुद्ध स्थान कोऊ नहीं मुझको भासता है, अरु मैं चाहता हौं कि, इस वृक्षकी अग्र शिखाविषे स्थित होनेकी मुझका शक्ति होवै यहां बैठिकरि तप करौं, यह वर देहु, जब इसप्रकार मुनिपुत्रने कहा तब अग्निदेवने कहा, ऐसेही होवै, इसप्रकार कहिकरि अंत

र्धान हो गया, जैसे संध्याकालके मेघ अंतर्धान हो जाते हैं तब वरको पायके ब्राह्मणकुमार प्रसन्न भया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा पूर्ण कलाकरि प्रसन्न होता है, तैसे भया, जैसे चंद्रमाके प्रकाशको पायकरि कमलिनी शोभती है तैसे वरको पायकरि शोभत भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने वनोपरुदनं नाम अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ४९.

दासुरोपाख्यानअवलोकनवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार वरको पायकरि दासुर कदंववृक्षकेऊपर चढनेकी इच्छा करता भया, कैसा है वृक्ष, अद्भुत सुंदर वड़ा विस्तार है जिसका, ऐसे वृक्षको देखिकै बुद्धिवान् दासुर वृक्षके टासके अग्रऊपर जाय वैठा, नूतनकमल पत्र ऊपर खिलते देखने लगा, दिशाका कौतुक चंचलरूप देखा, दृश्यरूप मानों चंचल पुतली है, श्याम आकाश तिसका शीश है, तिसपर श्याम केशही प्रकाशरूप हैं, पाताल तिसके चरण हैं, मेघरूपी वस्त्र हैं, पुष्पवत् गौर अंग है, ऐसी दृश्यरूपी एक स्त्री है, समुद्र कैलास तिसके भूषण हैं, प्राणरूपी फुरणेते जल चलता है, सो मानों उसका झनकार है, मोहरूपी शरीर वनस्पति रोम हैं, सूर्य चंद्रमा जिसके कुंडल हैं, पर्वत वेडे हैं, पवन प्राणवायु है, दिशा हस्त हैं, समुद्र आरसी है, सूर्यादिक उष्णता तिसके पित्त है, चंद्रमा कफ है, ऐसी त्रिलोकीरूप एक पुतली है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थिति प्रकरणे दासुरोपाख्याने अवलोकन नाम एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥४९॥

पंचाशत्तमः सर्गः ५०.

दासुरस्तवोधवर्णनम् ।

॥ वसिष्ट उवाच ॥ हे रामजी ! तिसके ऊपर स्थित होइकरि वह तप करने लगा, तहां तिसका नाम कदंबतपासुर हुआ, एक क्षण दिशाको

देखिकै वहांते वृत्तिको खैंचत भया, पद्मासन बांधिकरि मनको एकाग्र किया, सो दासुर परमार्थपदते अज्ञात था, फलकी कृपणताकरि कर्मातरविषे स्थित था, फलकी ओर मन था, अरु जिस वृक्षका पत्र आकाशको लगता था, उस पत्रकेऊपर स्थित भया, अरु मनकरि यज्ञका आरंभ किया, जेती कछु सामग्री विधि थी, सो सब यथाशास्त्र मनकरि करत भया, दश वर्ष मनविषे व्यतीत किये, सर्व देवतोंका पूजन किया, गोमेध, अश्वमेध, नरमेध सब यथाविधिसंयुक्त मनकरि करत भया, ब्राह्मणोंको वह दक्षिणा दी, इस प्रकारते समय पायकरि उसका अंतःकरण शुद्ध भया, विस्तीर्ण निर्मल चित्तविषे स्थित भया, बलात्कारसों ज्ञान उसके हृदयविषे प्रकाशित भया, आत्माके आगे वासना मलिन आवरण था, सो नष्ट हो गया, जैसे शरत्कालविषे तडाग निर्मल होता है, तैसे मुनीश्वरका चित्त संकल्पते रहित भया, तब वह जो मुनीश्वर वृक्षपरटासके अग्रमें बैठा था, तहां एक वनदेवीको अग्रभागविषे देखत भया, बड़े विशाल नेत्र अरु चपलरूप पुष्पकी नाईं दंत, कामदेवकी नाईं महासुंदर शरीर, अरु कामके मदकरि पूर्ण नील कमलकी नाईं लोचन, मनके हरनेहारी है, तिसको मुनीश्वर कहता भया, अरु वह नम्रभूत होइकरि देखत भई, जैसे कोकिला कुसुमकरि पूर्ण वनलताके आगे नम्र होवै, तैसे उसको कहत भया ॥ हे कमलनयनी ! तू कौन है, कैसी तू शोभितरूप है, अरु इस पुष्पकरि संयुक्त लताविषे किसनिमित्त आय स्थित भई है, जब इसप्रकार मुनीश्वरने कहा, तब कामदेवको मोहनेहारी गौरी बोलत भई, ॥ हे मुनीश्वर ! जो पदार्थ इस पृथ्वीविषे बड़े कष्टकरि प्राप्त होता है, सो महापुरुषकी कृपाकरि सुगम प्राप्त होता है, हम इस वनके देवता हैं, लीला करते फिरते हैं, अरु जिसनिमित्त मैं तुम्हारे आगे आई हौं सो सुनो ॥ हे मुनीश्वर ! पिछले दिनकी जो चैत्रशुद्ध त्रयोदशी थी, तिस दिन इंद्रके नंदनवनमें उत्साह हुआ था, तब सब वनदेवियां एकत्र भई थीं त्रिलोकीमें आगमन किया था, तहां सब देवियां पुत्रसंयुक्त बड़े पुष्पकरि विलासक्रीडा करत भई अरु मैं अपुत्र थी, तिसकारण ते मैं दुःखित भई अरु दुःखके निवारने अर्थ तुम्हारेपास आई हौं, तुम अर्थके सिद्धकर्ता हो

चडे वृक्षपर तुम स्थित हो मै अनाथ पुत्रकी वांछाकरि तुम्हारे निकट आई हो, ताते मुझको पुत्र देहु, अरु जो न देहुगे तो मैं अग्नि प्रज्वालितकरि जालि मरौगी इसप्रकार पुत्रका दुःख दाहकरि निवृत्त करौंगी ॥ हे रामजी। जब इसप्रकार वनदेवीने कहा, तब मुनीश्वरने हँसकरि कहा, अरु दया करिकै हस्तमें पुष्प दिया ॥ हे सुंदरी। तू जा, तुझको एक मास उपरांत पूजनेयोग्य अरु महासुंदर पुत्र होवैगा, परंतु तैने जो इच्छा धारी थी, जो पुत्र न प्राप्त होवै, तौ जालि मरौंगी, तिसकरि अज्ञानी पुत्र होवैगा, यत्नकरि ज्ञान तिसको प्राप्त होवैगा, जब इसप्रकार मुनीश्वरने कहा, तब प्रसन्न होइकरि वनदेवी कहत भई हे मुनीश्वर। मै यहां रहिकरि तुम्हारी टहल करौंगी, परंतु मुनीश्वरने तिसका त्याग किया अरु कहा, हे सुंदरी, तू अपने स्थानविषे जाय रह, तब वह अपनी वनदेवीविषे जाय रही तिसको समय पाय पुत्र उत्पन्न हुआ, जब दश वर्षका बालक भया, तब मुनीश्वरके निकट ले आई, आयकरि पुत्रसंयुक्त दोनोंने प्रणाम किया,अरु पुत्रको मुनीश्वरके आगे स्थापन करि कहत भई ॥ हे भगवन्। यह कल्याणमूर्त्ति बालक है, सो तुम हम दोनोंका पुत्र है इसको मैंने सम्पूर्ण विद्या शिखाई है,अरु परिपक्क किया है सर्वका वेत्ता भयाहै,परतु केवल ज्ञानको प्राप्त नहीं भया, ताते जिसकरि यह संसारयत्रविषे बहुरि दु ख नपावै,सो ज्ञान कृपाकरि तुम इसको उपदेश करौ. हे प्रभो। जो शुभ कुलविषे उपजा होवै, अरु चाहै,मेरा पुत्र मूढ रहै,सो ऐसी बात कौन है। हे रामजी। जब इसप्रकार देवीने कहा, तब मुनीश्वरने कहा,इसको तुम यहां छोडि जाहु, तब वह देवी छोडिकरि गमन करत भई अरु बालक पिताके पास रहा,सो बडे यत्नकरिकै तिसको ज्ञानकी प्राप्ति भई, नानाप्रकारके उक्त आख्यान, इतिहास, अरु अपने दृष्टांत कहिपकरि चिरपर्यंत पुत्रको पढाता भया, वेदवेदांतका निश्चय अनुक्रेग होइकरि उपदेश किया, विस्तारकरिकै कथाके क्रम जो अनुभव बडे गूढ अर्थ है, सो कहे, जो अपने अनुभवशते प्रत्यक्ष है, सो बलकरिकै उपदेश किया शृंगार आदिक जो अष्ट कर्म है, तिनते रहित परमार्थतत्त्वको उपदेश किया, जो अर्थ भये कहना है, सो महात्मा पुरुषने इसको उपदेश किया, तिसकरि

जागा, अरु शांत आत्मा होता भया,जैसे मेघके शब्दकरि मोर प्रसन्न होता है, तैसे वह बालक प्रसन्न भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरसुतबोधनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तमः सर्गः ५१

श्वेतथवैभववर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तब मैं भी कैलासवाहिनी गंगाजीके स्नानको चला जाता था; अदृष्ट शरीरसंयुक्त आकाशकी वीथीमें सप्तर्षिके मंडलते चला था, जिस वृक्षपर वह बैठे थे, तिसके पाछे मैं आया, तब कछुक शब्द श्रवण किया, वनविषे जो वृक्ष है, तिनके ऊपर छिद्रसों शब्द होता है, जैसे मूँदे कमलसों भँवरेका शब्द होता है तैसे वृक्षके अग्रसों शब्द श्रवण किया, जो कहता है, हे पुत्र बुद्धिमान्! तू श्रवण कर, मैं तुझको वस्तुके निरूपणनिमित्त आश्चर्याख्यान कहता हौं॥ एक राजा होता भया, सो महापराक्रमी अरु त्रिलोकीविषे उसका प्रसिद्ध नाम श्वेतथ, बडा लक्ष्मीवान् जगत्की रचना क्रम वह करताहै,अरु सब मुनि जो जगत्विषे बड़े नायक हैं, सो भी उत्तम चूडामणिकरिके तिसको शीशविषे धरते हैं, अरु कर्म जो करताहै, सो सहस्र असंख्यहैं,नानाप्रकारके आश्चर्य व्यवहार करता है, अरु तिस महात्मा पुरुषको त्रिलोकीविषे किसीने वंश नहीं किया, सहसही तिसके आरंभ हैं, सुख अरु दुःखको देनेहारा है, तिसके आरंभकी संख्या कछु कही नहीं जाती, जैसे समुद्रके कल्लोलतरंगकी कछु संख्या कही नहीं जाती, तैसे उसके आरंभ हैं, अरु उसका जो वीर्य पराक्रम है, सो किसी शस्त्र अस्त्र अग्निकरि छेदा नहीं जाता, जैसे आकाशको मुष्टिप्रहारकरि तोडि नहीं सकता, तैसे वह है, बड़ी विस्तृत तिसकी भुजा हैं, अरु लीलाकरि आरंभको रचता है, तिसके आरंभ दूर करनेको कोऊ समर्थ नहीं, इन्द्र विष्णु सदाशिव भी समर्थ नहीं ॥ हे महाबाहो! तीन उसके देह हैं, दिशाको भरि रहे हैं, तीन देहकरि जगत्विषे पसरि रहा है, उत्तम अधम मध्यम करिके अरु बडे विस्ताररूपी आकाशते उत्पन्न भया है, अरु तदाही शरीरविषे स्थित भया है, जैसे आकाशका

पक्षी आकाशविषे रहता है, जैसे पवन आकाशविषे है, तैसे तिस पुरुषने तिस परमआकाशविषे वगीचेसयुक्त एक स्थान अपनी क्रीड़ाका रचा है, पर्वतके शिखरमे मोतीकी वल्लियां रची हैं, सप्त वावडियां करी हैं, तिनकरि स्थान शोभता है, दो दीपक रचे है, जो तेल अरु वातीते रहित प्रकाशते हैं, सो शीत अरु उष्णरूप हैं, कबहू अधको, कबहू ऊर्ध्वको नगरविषे भ्रमते है, मूर्ख वर्गकगण रचे है, कोऊ गण ऊर्ध्व स्थित हैं, कोऊ मध्य, कोऊ अधविषे स्थित है, कई दीर्घकालकरि नष्ट होते हैं, कई शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं, कई वस्त्रकरि आच्छादित है, कई वस्त्ररहित है, नव द्वारकरि स्थान किया है, तिसमें निरंतर वहुत वृक्ष रोपे है, पंच दीप देखनेनिमित्त किये हे, तीन स्तंभ किये है, तिनविषे और छोटे स्तंभ किये है, मूलमेंके तिनऊपर लेपन किया है, पादतलीकारि सकुली किये है, महामायाकरि तिस राजाने वह नगर रचा है, नगरकी रक्षानिमित्त सेना रची है, एक नीति देखनेवाले यक्ष है, विवरक गणकरि वह चलते नानाप्रकारकी क्रीडा करते है, तिन शरीरकरि सब ठौरविषे विचरता है, यक्ष सब ठौरविषे समीप रहता है, लीलाकरि एक स्थानको त्यागिकरि और स्थानविषे जाय चेष्टा करता है, कबहूं इच्छा होती है, तब चचल चित्तसों भविष्यत् पुरको रात्रिकरि तिसविषे स्थित होता है, भयकरि वेष्टित हुआ तहाते उठि आता है, वेगकरिके गंधर्वनगरको रचता फिरता है, जब इच्छा करता है कि, मै उपजो तब उपजि आता है, जब इच्छा करता है कि, मै मरिजाऊ तब मरि जाता है, जैसे समुद्रविषे तरग उपजते है, बहुरि लय हो जाते है, इसप्रकार राजा बडे व्यवहारको करता है, वारवार रचना करिकै कबहू आपही रुदन करने लगता है, मै क्या करों, मै अज्ञानी हों, मै दुःखी हों, चित्तसों आतुर होता है, ऐसे विचार करिकै कबहूं उदय होकरि वड़ा स्थूल हो जाता है, जैसे वर्षाकालकी नदी वढती है, तैसे वढिकरि आपको सुखी मानता है, विस्तारको पायकरि चलता फिरता है वडे प्रकाशकरि प्रकाशता है, तिस महीपतिकी वड़ी महिमा है, उचितरूप होइकरि नगरमें स्थित है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे श्वेतथवैभववर्णन नाम एकपचाशत्तम सर्ग ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्ग ५२.

संसारविचारवर्णनम् ।

हे रामजी ! जब इसप्रकार दासुरने कहा, तब वृक्षके अग्रभाग बैठे पुत्रने प्रश्न किया ॥ पुत्र उवाच ॥ हे भगवन् ! वह श्वेतथ राजा है कौन जगत्विषे जिसकी कीर्त्ति प्रसिद्ध है, अरु कौन नगर तिसने रचा है, जो भविष्यत् नगरविषे रहता है, रहना तो वर्त्तमानविषे होता है, भविष्यत् विषे कैसे रहता है, यह विरुद्ध अर्थ कैसे बनता है ? इस वचनकरि मेरी बुद्धि मोहित भई है ॥ दासुर उवाच ॥ हेपुत्र ! मैं तुझको यथार्थ कहता हौं तू श्रवण करु, जिसके जाननेते संसारचक्रको ज्योंका त्यों देखेगा, कि इस वस्तुते क्या है, यह संसार आरंभ असत्य उठा है, बड़े विस्तारसंयुक्त भासता है, तौभी असत्यरूप है, कछु हुआ नहीं, जैसे यह संसार स्थित है, तैसे मैं तुझको कहता हौं, यह आख्यान मैंने तुझको जगत् निरूपण निमित्त कहा है ॥ हे पुत्र ! जो शुद्ध अचैत्य चिन्मात्र चिदाकाश है, तिसते जो संकल्प उठा है तिस संकल्पका नाम श्वेतथ है, सो आपही उपजता अरु आपही लीन हो जाता है, सब जगत् तिसका रूप है, जो बड़े विस्तारसंयुक्त भासता है, सो तिसके उपजनेकरि जगत् उपजता है, नष्ट होनेकरि नष्ट होता है ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इंद्रादिक सब तिसके अवयव हैं, जैसे वृक्षके अंग टास होते हैं, जैसे पर्वतके अंग शिखर होते हैं, तैसे तिसके अंग हैं, शून्य आकाशविषे तिसने यह जगत्रूपी नगर रचा है, प्रतिभासके अनुसंधानते वही चित्कला विरंचिपदको प्राप्त भई है, अरु चतुर्दश स्थान जो कहे हैं सो विस्तारसंयुक्त चतुर्दश लोक हैं, वन बगीचे उपवनसंयुक्त पर्वत महाचल मंदराचल सुमेरु आदिक क्रीड़ाके स्थान हैं, उष्ण शीत जो दो दीपक तेल बातीविना कहे हैं, सो सूर्य अरु चंद्रमा हैं, जगत्रूपी नगरविषे अध ऊर्ध्वको प्रकाशते हैं, सूर्यकी किरणोंका जो प्रकाश है, मानो मोतीके तरंग फुरते हैं, अरु इस समुद्र आगे क्षीर जल आदिक जो सप्त समुद्र हैं, सो बावड़ियां हैं, जीवरूपी किरायती व्यवहार करते लेने देते अध ऊर्ध्वको जाते हैं, पुण्यकरि स्वर्ग-

लोकमें जाते हैं, पापकरि नरकको चले जाते हैं अरु जगत्विषे संकल्प-करिके जो क्रीडाके निमित्त तिसने विवरण रचे हैं, सो देह है, कोऊ देवता होइकरि ऊर्ध्व स्वर्गविषे रहते है, कोऊ मनुष्य होइकरि मध्यलोकविषे रहते हैं, अरु दैत्य नाग आदिक पातालविषे रहते हैं, पवनरूपी प्रवाह-करि समस्त यंत्र चलते फिरते है,अस्थितरूपी तिनविषे लकडियाँ है,रक्त-मांसकरि लेपन किये है, कई दीर्घकालकरि नष्ट होते है, कई शीघ्रही नष्ट हो जाते है, शीशपर केश है, सो श्याम वस्त्र है, कर्ण, नासिका, नेत्र जिह्वा अरु मूत्रपुरीपके स्थान लिंग इंद्रिय गुदा ये नव द्वार है, तिनसों निरंतर पवन चलता है, शीत उष्ण रूपसों प्रान अपान है, नासिका आदिक तिसके झरोखे हैं, भुजारूप गलियां है, पंच दीपक पंच इंद्रिया हैं॥ हे महाबुद्धिमान्! यह सर्व संकल्परूपी मायाकरि रचे है, अहंकाररूपी तिसविषे यक्ष है, महाभयका स्थान यह अहंकारकरि होता है, देहरूपी विवरण है, सो अहंकाररूपी यक्षसंयुक्त विचरते है, असत्यरूप परन्तु सत्य होइकरि इसकेसाथ पीडा करते हैं,जैसे भांडविषे विलाड बैठे,जैसे भग्नका-विषे सर्प बैठे, जैसे बाँसविषे मोती है, तैसे देहविषे अहंकार है, क्षणविषे उदय होता है, क्षणविषे शांत हो जाता है, दीपकवत् देहरूपी गृहविषे संकल्प उठता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उठते है, अरु भविष्यत नगर जो कहा है सो सुन अपना जो कोऊ स्वार्थ चितवता है, कि यह कार्य इस-प्रकार करूंगा अमुक दिन इस देशको जाऊंगा, जैसे चितवता है, तैसे भासि आता है, तिसविषे जाय प्राप्त होता है, सो अनहोतेको वर्त्तमान करता है, जबलग दुर्वासना है, तबलग अनेक दुःख होते है, अरु यह दुष्ट मन अहंकार स्थूल हो जाता है, अरु संकल्पते रहित हुए शीघ्रही इसका नाश होता है, जब तू संकल्पनाश करैगा, तब शीघ्रही कल्याणको प्राप्त होवेगा, अपना संकल्प उठिकरि आपहीको दुःखदायक होता है, जैसे बालकको अपने परछाईविषे वैतालकल्पना होती है,अरु आपही भय पाता है, तैसे अपना संकल्प अनंत दुःखदायक होता है सुख कोऊ नहीं पाता,संपूर्ण जगतविस्तार संकल्पकरि होता है, आत्माकी सत्ताकरि रहता है, बहुरि नष्ट हो जाता है, विचार किये नहीं रहता जब मनविषे विचार उत्पन्न

होता, तब नष्ट हो जाता है, जैसे सायंकालविषे धूपका अभाव हो जाता है, जैसे प्रकाश उदय हुए तमका अभाव हो जाता है, विचार करिकै संकल्प आपही नष्ट हो जाते हैं, मन आपही क्रिया करता है, अरु आपही दुःख पाता है, बहुरि रुदन करने लगता है, जैसे वानर काष्ठके यंत्रकी कीलीको हिलाइकरि फँसता है, अरु निकस नहीं सकता, दुःख पाता है, तैसे अपनाही संकल्प आपको दुःखदायक होता है, संकल्पकरि जो कल्पित विषयका आनंद है, सो जब जीवको प्राप्त होता है, तब ऊंची ग्रीवा करि हर्षवान् होता है, जैसे अकस्मात् किसी वृक्षके फल ऊटके मुखमे आय लगैं, अरु वह ऊची ग्रीवाकरिकै विचारै, तैसे अज्ञानी जीव विषयकी प्राप्तिविषे ऊची ग्रीवाकरि हर्षवान् होते है, क्षणविषे जीवको विषयकी प्राप्ति उपजती है, विशेषकरिकै इष्टकी प्राप्तिविषे बढ़ते है, जब कोऊ दुःख होता है, तब वह प्रीतिकी प्रसन्नता उठ जाती है, क्षणविषे विकारी होता है, क्षणविषे प्रसन्न हो बैठता है, वस्तु गुणकी प्राप्तिविषे हर्षवान् होता है, शुभसंकल्पकरि शुभको देखता है, अशुभ संकल्पकरि अशुभको देखता है, शुभकरि निर्मल होता है, अशुभकरि मलिन होता है, जैसे आगे तेरी इच्छा होवै तैसे कर, श्वेतथके मैंने जो तुझको यह तीन शरीर कहे थे, उत्तम, मध्यम, अधम, सो सात्त्विक, राजस, तामस यह तीन गुण तीन देह है, यही सबका कारण जगत्विषे स्थित है, जब तामसी संकल्पकेसाथ मिलता है, तब नीचरूप पापचेष्टा कर्म करता है, महाकृपणताको प्राप्त होता है, मृतक होइकरि कृमि कीट जन्मको पाता है, जब राजसी संकल्पकेसाथ मिलता है, तब लोकव्यवहार करता है, स्त्रीपुत्रादिकके रागसो रंजित होता है, पापकर्म नहीं करता, तब मृतक होइकरि संसारविषे मनुष्यशरीर पाता है, जब सात्त्विकी भावविषे स्थित होता है, तब धर्मज्ञानपरायण होता है, मोक्षपदकी तिसको अंतर्भावना होती है, धर्मज्ञान पायकरि चक्रवर्ती राजाकी नाईं स्थित होता है, जब तिन भावोंको त्याग करता है, तब संकल्पभाव नष्ट हो जाता है, अक्षय परमपद शेष रहता है, ताते संसारदृष्टिको त्याग करिकै मनकरि मनको वश करके अंतरबाहिरते जो दृश्यका अर्थ चित्त-

विषे स्थित है, तिस संस्कारअकुरको निवृत्त करके शांतात्मा होवै ॥ हे पुत्र ! इसविना और उपाय नहीं, जो तू सहस्र वर्ष दारुण तप करै, अथवा लीलावत् आपको शिलासम चूर्ण करै, अथवा समुद्रविषे प्रवेश करै, वडवाग्निविषे प्रवेश करै, गर्तविषे गिरै, खड्गधाराके सन्मुख युद्ध करै, अथवा सदाशिव तुझको उपदेश करै, ब्रह्मा, विष्णु, बृहस्पति दया करिकै उपदेश करैं, अथवा पातालविषे जाय स्थित होवै, पृथ्वीविषे स्वर्गविषे जाय स्थित होवै, इत्यादिक अपर स्थानविषे जावै, तौ भी अपर उपाय कल्याणके निमित्त कोई नही, जैसे सकल्पका उपशम करना उपाय है, तैसे जो अनादि अविनाशी अविकारी परमपावन सुख है, सो सकल्पके उपशमते पाता है, ताते यत्नसों सकल्पको उपशम करहु, जेते कछु भाव पदार्थ है, सो सब सकल्परूपी तत्त्वसे परोए हुए है, जब सकल्परूपी ततु टूटि पड़ता है, तब नहीं जानता कि, पदार्थ कहा गए, सत्य असत्य पदार्थ सब सकल्पमात्र हैं, जबलग सकल्प है, तबलग यह भासते है, सकल्पके निवृत्त हुएते असत्य हो जाते है, सकल्पकरिकै जैसी जैसी चितवना करता है, क्षणविषे तैसे हो जाता है, ससारभ्रम सकल्पकरि उदय भया है, सकल्प निवृत्त कियेते चित्त अद्वैतके सन्मुख होता है, सर्व जगत् असत्यरूप है, मायाकरिकै रचा है, जब सकल्पको त्यागिकरि यथाप्राप्तिविषे विचरैगा, तब तुझको खेद कछु न होवैगा, असत्यरूप जगत्के कार्यविषे दुःखित होना व्यर्थ है, आपसयुक्त जगतको असत्य जानैगा, तब दुःख भी न होवैगा, जबलग जगत्का सद्भाव भासता है, तबलग दुःख होता है, जब असत्य जाना, तब दुःख भी नहीं रहता, जो बोधवान् है, तिनको कोई दुःख नहीं भासता, ताते जो नित्य प्राप्त सत्तारूप है, तिसविषे स्थित होहु, विकल्पके जो बड़े समूह है, तिनको त्याग करहु, अरु जो अद्वैत आत्मपद है, तिसविषे विश्रामसुखको प्राप्त होइकरि सुषुप्तिरूप चित्तवृत्तिको धारिकरिकै विचरहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारविचारो नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ५३

जगत्चिकित्सावर्णनम्।

॥ पुत्र उवाच ॥ हे भगवन्! सकल्प कैसा है?, अरु सो उत्पन्न कैसे होता है? अरु वृद्ध कैसे होता है? अरु नाश कैसे होता है?॥ दासुर उवाच ॥ हे पुत्र! अनंत जो आत्मतत्त्व है, सो सत्ता समानरूप है, सो चेतनसत्ता जब द्वैतके सन्मुख होती है तब चेतनताका लक्षण जो ज्ञानरूप है, सो संकल्पका अकुरज्ञान वही वीजरूपी सवित् उल्लासमात्र सत्ताको पायकरि घनभावको प्राप्त होता है, सोई फुरनाकरि आकाशको चेतता है तिसकरि आकाशको पूर्ण करता है, जैसे जलकरि मेघ स्पष्ट होता है, तैसे फुरणेकी दृढताकरि आकाश होता है, अपना स्वरूप इसको आत्मसत्ताते भिन्न भासताहै, यह भावना चित्तविषे भावित हो जाती है, जैसे वीज अकुरभावको प्राप्त होता है, तैसे चित्तसवित् संकल्पभावको प्राप्त होता है, संकल्पहीकरि संकल्प उपजता है, आपहीकरि स्वत वढता है, तिसकरि सुखी दुःखी होता है, जब अचलरूपते चित्तसवेदन दृश्यकी ओर फुरता है, तब तिस फुरणेका नाम सकल्प होता है, स्वरूपते भूलिकरि जब दृश्यकी ओर फुरता है, तब सकल्प वृद्ध होता है, सोई वृद्ध हुआ जगज्जालको रचता है, जेता कछु प्रपच है, सो संकल्पका रचा सकल्प मात्र है, जैसे समुद्र जलमात्र होता है, जलते इतर नहीं, तैसे जगत् भी सकल्पते इतर नहीं, अरु आकाशमात्रते भ्रांतिरूप जगत् फुरि आया है, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, जैसे आकाशविषे द्वितीय चंद्रमा भासता है, तैसे तुम्हारा उपजना अरु वढना भ्रममात्र है, जैसे तमका चमत्कार होता है, तैसे यह जगत मिथ्या सकल्पकरि उदय हुआ तुझको भासता है ॥ हे पुत्र! तेरा उपजना भी असत्य है, अरु वढना भी असत्य है, जब तू इसप्रकार जानैगा, तब इसकी आस्था लीन हो जावैगी यह पुरुष है, वहस्त्री है, मै हौं, तूहै, यह जो भाव दुःखसुखकारि संयुक्त पदार्थ भासते है, सो यह अज्ञानकरिकै व्यर्थ भासते है, इनविषे आस्थाकारिकै अंतरते तपता रहता है. अरु त्व

आदिक दृश्य सब असत्यरूप हैं, जब यह भावना करैगा तब तू पृथ्वीविषे कल्याणरूप होइकरि विचरैगा, बहुरि संसारको प्राप्त न होवेगा. अहं त्वं ते आदि लेकरि जब सब दृश्यकी भावना हृदयते जावै, तब इसका अभाव हो जावैगा॥ हे पुत्र! फलकोतोडिकरि मर्दन करनेविषे भी कछु यत्न होता है, परंतु आपकरि सिद्ध जो भावमात्र संकल्पका त्याग करना तिसाविषे यत्न कछु नहीं, फूलके ग्रहणविषे भी यत्न है, हस्तका स्पंद होता है, तातें जो कछु भावरूप है, सो है नहीं, तो तिसके त्यागनेविषे क्या. यत्न है, तातें कछु है नहीं, यह दृश्य प्रपंच मनका जो होना है तिसका विपर्ययभाव करना कि, न मैं हौं,न जगत् है, जिस पुरुषने इस दृश्य जगत्का सद्भाव संकल्प नाश किया है, सो शांतरूप होता है, यह संकल्प तौ एक निमेषविषे लीलासों जीति लेता है, भानरूप जो आत्मसत्ता है, तिसविषे जब अपना आप उपशम करै, तब स्वस्तिक होता है, अपने मनके संकल्पकरि मन संकल्पको छेदेगा, जो आत्मतत्त्वविषे स्थित होवैगा इसविषे क्या यत्न है, संकल्पके उपशम हुएते जगत् उपशम होता है, अरु सब दुःख संसारके मूलते नाश हो जाते हैं, संकल्प मन बुद्धि जीव अहंकार आदिक सब नाम हैं, सो भेद कहनेमात्र हैं, इनके अर्थरूपविषे भेद कछु नहीं, जेता कछु दृश्य प्रपंचजाल है, सो सब संकल्पमात्र है, संकल्पके अभाव हुएते कछु नहीं रहता, तातें संकल्पको हृदयते काटहु, आकाशकी नाईं जगत् शून्य है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रांतिकरि भासती है, तैसे यह जगत् असत्य विकल्पकरि उठा है, संकल्प अरु जगत् दोनों असत्य हैं, तातें कछु नहीं, सब असत्यरूप हैं, असत्यरूप संकल्पने सिद्ध किया है,तिसकी भावनामें आस्था करनी मिथ्या है, जब ऐसे जाना तब इष्टरूप किसको जानै अरु वासना किसकी करै, अरु अनिष्ट किसको जानै, सब वासना नष्ट हो जाती है, वासनाके नष्ट हुएते सिद्धताकी प्राप्ति होती है॥ हे पुत्र! जो यह सत्य जगत् होता तौ विचार कियेते भी दृष्ट आता, सो तौ विचार कियेते इसका शेष कछु नहीं रहता, जैसे प्रकाशकरि देखेते तम दृष्ट नहीं आता, तैसे विचारकरि देखेते जगत् सत्य नहीं भासता, तातें अविचारते सिद्ध है, सो

असत्यरूप है, बुद्धिकी चपलताकरिकै भासता है, जिस पुरुषकी जगत्-भावना उठि गई है, तिसको जगत्के सुखदुःख स्पर्श नहीं करते, निर्णय करि जो असत्यरूप जाना, तिसविषे बहुरि आस्था नहीं उदय होती, जब आस्था गई, तब भाव अभावबुद्धि भी नहीं रहती, संसारके सुख दुःख सब मिथ्या मनके फुरनेकरि रचे हैं, मनोराज्यके नगरवत् स्थित भए है, भूत भविष्य वर्तमान काल जगत् मनकी वासनाकरि फुरता है, मानसी शक्तिविषे स्थित है, सो मन क्षणविषे बड़ा दीर्घ आकार करता है, क्षणविषे सूक्ष्म आकारको धरता है, ग्रहण करिये तौ ग्रहण किया नहीं जाता, जैसे समुद्रकी लहरीको ग्रहण करिये तो पकड़ी नहीं जाती तैसे मन है, यद्यपि बडे आकारसंयुक्त जगत् भासता है, तौ भी कछु वस्तु नहीं, क्षणभंगुर असार है, वासनाकरि जगत् भासता है, वासनाके क्षय हुएते शांत हो जाता है, जब तुझको वासना फुरै, तब तिसी कालविषे तिसको शीघ्रही त्याग करहु, यह दृश्य प्रपंच कछु है नहीं, असत्यरूप है, ऐसी भावना करिकै वासना नष्ट हो जावेगी, इसविषे संदेह कछु नहीं, जो यह संकल्प-रूप जगत् होवै, तौ इसके त्याग करनेविषे यत्न होवै यह तौ असत्यभूत प्रपंच है, तिसका अनर्थ चिकित्साकरि तुझको खेद कछु न होवैगा, जो हैही नहीं, तिसके त्यागविषे क्या यत्न है, जो यह संसार मूल सत्य होता, तौ इसके नाशनिमित्त कोऊ न प्रवर्तता, जैसे कोयलेको श्वेत करने निमित्त धोनेको कोऊ नहीं प्रवर्तता, तैसे सब जगत् असत्यरूप है, विचार कियेते कछु नहीं पाता, ताते असत्य अहंकाररूप दृश्यको त्यागिकरि सत्य आत्माका अंगीकार करहु, जैसे धान्यसों तुष डारि देते हैं, अरु चावलका अंगीकार करते हैं, तैसे यत्नकरिकै सर्व दृश्यको त्याग आत्मपदविषे प्राप्त होहु यह परमपुरुषार्थ है, और क्रिया किसनिमित्त करता है, मलरूप संसारका नाश करहु, जैसे तंदुलसों तुष दूर करते है तब वास्तव आकार तंदुल भासतेहैं, ताते युक्तिकरिकै जान कि, संसार असत्य कृत्रिमरूप है, तिसके नाशविषे क्या यत्न है, जैसे तांबेसों मल युक्तिकरिकै दूर करतेहैं, तब निर्मल भासताहै, तैसे युक्तिकरि दृश्य मल जब दूर होवै तब बोधस्वरूप प्राप्त होवै, तिस कारणते उद्यमवान् होहु ॥ हे पुत्र! यह संसार

संकल्पविकल्पते उत्पन्न भया है, विचारकरि अल्पयत्नसों निवृत्त हो जाता है. अरु तू देख कि, यह कौन है, जो सदा स्थिर रहता है, सब पदार्थ असत्यरूप हैं, देखते देखते नष्ट हो जाते हैं, जैसे दीपकके प्रकाशकरि अंधकार अभाव हो जाता है, जैसे भ्रांति दृष्टिकरि आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, स्वच्छ दृष्टिकरि दूसरा अभाव हो जाता है, तैसे विचारकरिकै जगद्भ्रम नष्ट होता है, न यह जगत् तेरा है, न तू इसका है, यह भ्रमकरि भासता है भ्रमको त्यागिकरि देख जो असत्यरूप है, अपनी गुरुत्वताका वडा ऐश्वर्य प्रकाशका विलास है, सो तेरे हृदयविषे मत होवे, यह मिथ्या भ्रमरूप है, अतरते उठै तो आपको भी अरु जगत्को भी असत्य जान आत्मतत्त्वते इतर कछु नहीं, जब ऐसे निश्चय करैगा, तव जगद्भावना नष्ट हो जावैगी, सर्वात्मप्रकाश भासैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने जगचिकित्सावर्णनं नाम त्रिपचाशत्तम सर्ग ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ५४.

दासुरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रघुकुलरूपी आकाशके चद्रमा रामजी ! जब इसप्रकार पुत्रको उपदेश किया, तब मैं उसके पीछे आकाशविषे स्थित था, सो कदंबवृक्षके अग्रभागमें जाय स्थित भया, जैसे मेघ वर्षाते रहित तूष्णीं होइकरि पर्वतके शिखरपर जाय स्थित होता है, तैसे मैं जाय स्थित भया, आगे दासुर जो शूरमा अज्ञानरूपी शत्रुका नाश करता है, अरु परम शक्तिकरि प्रकाशवान् है, अरु तपकरि देह ऐसा हो गया है, मानो स्वर्णका चमत्कार है, तिस दासुरने मुझको अपने अग्रमें देखा कि, वसिष्ठमुनी आया है, ऐसे जानिकरि उठ अर्घ्य पाद्यकरि पूजन किया, बहुरि हम दोनों वृक्षके पत्रऊपर बैठ गये बहुरि पूजन किया, जब पूजन करने लगा, तब हम दोनों कथाका प्रसंग चलाने लगे, तिस चर्चाके वचनकरि तिसके पुत्रको जगाते

भय ससारसमुद्रके पार करनेनिमित्त वहुरि मै वृक्षकी ओर देखता था, कैसा वृक्षहै कि, महासुदर फूलफलनकरि शोभायमान है, अरु दासुरकी इच्छाद्वारा मृग अरु पक्षी तिसके आश्रय रहते है, वहुत गुणसयुक्त वृक्ष मै देखता भया, अरु तिसके पुत्रको हम और और कथा कारिकै विद्वान्दृष्टिसों रमणीय दृष्टांत अरु युक्तिसहित उपदेश करत भये नानाप्रकारके विचित्र इतिहासकारि तिस वालकको जगाया, रात्रिको सिद्धांत कथाविषे लागे रहे, हमको एक मुहूर्तवत् रात्रि व्यतीत हुई, जव प्रात काल भया तव मै ऊठि ठाढ़ाभया दासुर अपने पुत्रसयुक्त मेरेसाथ चला, जहांलग कदव-का आकाशतल था, तहालग आये, तिसके अतर मै वहुतकारि तिनको ठहरावता भया, अरु मै गगाजीकी ओर चला, वहुरि स्नान कारिकै सप्त-र्षिके मडलविषे जाय स्थित भया ॥ हे रघुनंदन ! यह दासुरका आख्यान मैने तुझको कहा है, यह जगत् प्रतिविंव आभासके सदृश है, प्रत्यक्ष भा-सता है, तौ भी असत्यरूप है, जगत्के निरूपण निमित्त यह आख्यान श्रवण करायाहै, कि यह जगत् असत्यरूप है, कछु वस्तु नहीं, वुद्धिकारि तुझको राग मत होवै, इस कथाका सिद्धांत हृदयविषे धारिकारि विचरैगा, तव संसाररूपी मल तुझको स्पर्श न करैगा ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थिति-प्रकरणे दासुरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम चतुःपचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तम· सर्गः ५५

कर्तव्यविचारवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह प्रपच है नहीं, ऐसे जानिकै सव पदार्थते निराग होहु, जो वस्तुही न होवै, तिसकी आस्था करनी क्या है, यह प्रपच जो दृष्ट आता है, इसके भासने न भासनेविषे तुमको क्या है, तुम निर्विघ्न होइकारि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, ऐसे जानो, जगत् है भी अरु नहीं भी, इस निश्चयकारि भी तुम असग होहु, इस चल अचल दृष्टि आनेविषे तुमको क्या खेद है? ॥ हे रामजी ! यह जगत् न आदि है, अनादि है, केवल श्वेतथका जो चित्तसंवित् मनरूपहै,

तिसके फुरनेकरिके इसप्रकार भासता है, वास्तवते कछु नहीं, यह जगत् किसी कर्ताने किया नहीं, न किसी अकर्ताने किया है, केवल आभासरूप है, आभासविषे कर्त्ता अकर्त्ता पदको प्राप्त भया है, अकृत्रिमरूप है, किसीका किया तौ नहीं, इसकेसाथ तुझको सबंध मत होवै, यह भावना हृदयविषे धार कि, है कछु नहीं, काहेते जो किसी कर्ताकरि हुआ नहीं, आत्मा सर्व इंद्रियोंते अतीत है, जडकी नाई अकर्तारूप है, तिसको कर्त्ता कैसे कहिये ? यह कहना नहीं बनता, अकस्मात् यह जगज्जाल फुरि आया है, सो आभासरूप है, जो अकस्मात् उपजा तिसविषे आसक्त होना वया है यह असद्भ्रांतिरूप है, इसविषे आस्था मूढ बालक करते हैं, बुद्धिवान् तौ नहीं करते, स्वरूपते जगत् कछु उपजा नहीं, अरु नाश भी कछु नहीं होता, निरंतर दृष्टिमें आता है, अज्ञानकरि वारंवार भावना होती है, तौ भी जगत् कछु है नहीं, असत्‌रूप है, प्रत्यक्ष निरंतर नष्ट होता जाता है, तुम विचार करिके देखो, कि अवस्था स्थान कहा जाते है, अरु कहां गये हैं, ताते तुम सब इंद्रियोंते अतीत जो आत्मतत्त्व अकर्त्तारूप है, तिसविषे स्थित होइकरि निगतज्वर होहु, वास्तवते जगत् कछु बना नहीं, आभाससत्ताविषे बना भासता है, तुम आभाससत्ताविषे नित्य दृढ होहु, जैसे हुआ है, तैसे है, भाव अभाव दुःख दिशा है, आदर्शरूपी आभासविषे दीर्घरूप दृश्य स्थित भया, सो जैसे हुआ है, तैसे है, विपर्यय नहीं होता ॥ हे रामजी ! दृश्य धर्मविषे आपराजित काल है, सो अनंत है, दृश्य पदार्थका कछु अंत नहीं, अरु जो आत्मविचारकरि देखिये तौ स्वप्नवत् है, कछु है नहीं, जो वस्तुते ऐसे होवै, तिसविषे आस्था करिके यत्न करना व्यर्थ है, जगत्‌के पदार्थ नाशरूप हैं, इनविषे आस्था नहीं बनती काहेते कि, आत्मा सत् है, अरु जगत असत् है, अन्योन्य विलक्षण स्वभाव है, जड अरु चेतनका संयोग कछु नहीं बनता, जो जगत्‌के पदार्थ स्थिर मानिये तौ रहते नहीं, इस कारणते आस्था शोभा नहीं पाती, जैसे जलके तरंगका आश्रय लेकरि कोऊ पार हुआ चाहै तौ दुःख पाता है, तैसे जगत्‌के पदार्थका आश्रय कियेते दुःखी होता है, जगत्‌की आस्था

करनीही बंधन है, जगत् नाशरूप है, तुम स्थिररूप हो, ताते आस्था नही सभवती, कहूं जलके तरंगका अरु पर्वतका सवध भया है। जो तुम जगत्को असत्य जाना, अरु आपको सत्य जाना तौ भी जगत्के पदार्थनकी वांछा नहीं वनती, काहेते कि सत्यको असत्यकी वांछा नहीं संभवती, अरु असत्यको असत्यविषे भावना करनी क्या है, अरु जो आपसयुक्त जगत् सत्य जानते हौ, तौ भी वांछा नहीं सभवती काहेते कि, जो सत्य अद्वैत आत्मा है, तिसके समीप कछु द्वैत वस्तु नहीं, तुम तौ एक अद्वैत हौ, वांछा किसकी करते हौ, ताते तुमको किसी पदार्थकी इच्छा अनिच्छा नहीं वनती, हेयोपादेयते रहित केवल स्वस्थ होइकारि अपने आपविषे स्थित होहु, कैसा आत्मतत्त्व है, जो सवका कर्ता है, अरु सर्वदा अकर्ता है, कदाचित् कछु किया नही, उदासीनकी नाई भाव्य है, जैसे दीपक सव पदार्थोंको प्रकाश करता है, अरु किसकी इच्छाद्वारा अर्थकी सिद्धि करनेनिमित्त नहीं प्रवर्तता, स्वाभाविकही प्रकाशरूप है, तैसे आत्मतत्त्व सवका कर्ता है, तिसका कर्ता कोऊ नहीं, जैसे सूर्य सवकी क्रियाको सिद्ध करता है, अरु आप किसी क्रियाके आश्रय नहीं। काहेते जो आपही प्रकाशरूप है, चलता है, अरु कदाचित् चलायमान नहीं भया, अरु जो सूर्यका प्रतिविंव चलता भासता है, सो प्रतिविंवका चलना सूर्यविषे नहीं तैसे तुम्हारा स्वरूप आत्मा सदा अकर्ता अचल है, तिसविषे स्थित होहु, जेता कछु जगत् भासता है, तिसविषे विचरहु, परतु भावनाकारिकै इसविषे वधायमान मत होहु, यह असद्रूप है॥ हे रामजी। यद्यपि प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणकारि जगत् सत् भासता है, तौ भी है नहीं, स्वतः चित्त होइकारि आपको विचार अरु आपविषे स्थित होहु, तव जगत् कछु न भासैगा, जो प्रत्यक्ष वड़े तेज वल अरु वीर्यकारि सपन्न भासता है, अरु अतर्धान होय गया, तौ सत्य कैसे कहिये, इस विचार करिकै भी तुमको जगत्की भावना नहीं वनती, जैसे चक्रपर आरूढ हुएते सव स्थान भ्रमते दृष्टि आते है, अथवा जैसे स्वप्ननगर भ्रमकारिकै भासता है, सो किसी कारणकार्यकरि नही होता, आभासरूप मनके फुरणेकारि उपजि आता है जैसे कोऊ

जीव अकस्मात् आय निकसता है, सो मित्राईका भागी नहीं होता, विचार कियेविना, बुद्धिमान् तिसविषे रुचि नहीं बांधते, वह सुहृदताका पात्र नहीं, तैसे भ्रमकरिकै जो जगत् भासा है, सो आस्थाकरिकै भावना बांधने योग्य नहीं, जैसे चंद्रमाविषे उष्णता, अरु सूर्यविषे शीतलता, मृगतृष्णाकी नदीविषे जल, इनकी भावना करनी अयोग्य है, तैसे जगतविषे सत्यभावना अयोग्य है, यह संकल्पपुर स्वप्ननगर द्वितीय चंद्रमावत् असत्य है, भ्रमकरिकै सत्य भासता है॥ हे रामजी! अंतरते भावपदार्थकी आस्था लक्ष्मीको त्यागकर, अरु बाह्य लीला करते विचरहु, अंतरते अकर्त्ता पदविषे स्थित होहु, अरु सब भावपदार्थविषे स्थित सबते अतीत होहु, आत्मा सब पदार्थविषे सर्वकाल स्थित है, अरु सबते अतीत है, तिसकी सत्ताकरिकै जगत् नीतिविषे स्थित है, जैसे दीपककरि सब पदार्थ प्रकाशवान् होते हैं, अरु दीपक इच्छाते रहित प्रकाशता है, तिस करि सबकी क्रिया सिद्ध होती है, अरु जैसे सूर्य आकाशविषे उदय होता है, अरु तिसके प्रकाशकरि जगत्का व्यवहार होता है, तैसे अनिच्छित आत्माकी प्रकाशसत्ताकरि सब जगत् प्रकाशता है, जैसे इच्छाते रहित रत्नका प्रकाश होता है, अरु स्थानविषे पसर जाता है, तैसे आत्मदेवकी सत्ताकरिकै जगत्गण प्रवर्त्तते हैं, ताते कर्त्ता है, सब इंद्रियके विषयते अतीत है, इस कारणते अकर्त्ता अभोक्ता है, अरु सब इंद्रियोंके अंतर्गत स्थित है, इस कारणते कर्त्ता भोक्ता वही है, इसप्रकार दोनों आत्माविषे बनते हैं, कर्त्ता भोक्ता भी संभवता है, अरु अकर्त्ता अभोक्ता भी संभवता है, जिसविषे तू अपना कल्याण जानै, तिसविषे स्थित होहु॥ हे रामजी! इसप्रकार निश्चय करौ कि, सब मैही हौं, अकर्त्ता अभोक्ता हौं ऐसी दृढ भावना करि जगत्के कार्यको करते भी कछु बंधन न होवैगा, अरु सब आत्मा कर्तव्य भोक्तव्यते रहित है, इसप्रकार निश्चय कियेते भोगकी वासना निवृत्त हो जावैगी, तब चेतन भोगकी ओर बहुरि न आवैगा, जिसको यह निश्चय है कि, मैं कदाचित कछु किया नहीं, सदा अक्रियरूप हौं, सो भोगके समूहकी कामना किसनिमित्त करैगा, अरु त्याग किसका करैगा, ताते तुम यही निश्चय धरहु कि, मैं नित्य अकर्त्तारूप

हौ, जब यह बुद्धि दृढ होवैगी, तब परम अमृतरूप जो समानसत्ता है, सो शेष रहैगी, अथवा यही निश्चय धरहु, कि सबका कर्त्ता मैंही हौ, मै महाकर्त्ता हौ, सबके अंतर स्थित होइकरि सब कार्य मै करता हौ ॥ हे रामजी ! यह दोनों निश्चय तुझको कहे हैं, जिसविषे तेरी इच्छा होवै, तिसविषे स्थित होहु, जहां यह निश्चय होता है, कि सबका कर्त्ता मै हौ, सब जगत् भ्रमभी मैं हौं, तब इन पदार्थनके भावअभावविषे राग दोष न होवैगा, जो सब आपही भया, तौ राग दोष किसका करैगा, उसको यह निश्चय होता है, कि यह शरीर मेरा दग्ध होता है, वह शरीर सुगंधादिककरि लीला करता है, तिसको खेद अरु उल्लास किसका होवै, ताते तुझको जगत्के क्षोभ, उल्लास, उदय, अस्तविषे सुख दुःख मत होवै, सबका कर्त्ता मै हौं तौ खेद उल्लास भी मैं करता हौं, जब आत्मा अरु कर्तव्यकी एकता हुई, तब खेद उल्लास सब आपही लय हो जाता है, सत्ता समान शेष रहता है, सोई सत्ताभाव पदार्थविषे अनुस्यूत होइकरि स्थित है, तिसविषे जब चित्तकी इच्छा स्थित होती है, तब बहुरि दुःखको नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी ! सबका कर्त्ता आपको जान, कि कर्त्ता पुरुष मैं हौं, अथवा अकर्त्ता जान, कि मै कछु नहीं करता, अथवा दोनों निश्चय त्यागिकरि निःसंकल्प निर्मन होहु, तब जो तेरा स्वरूप है, सोई सत्ता शेष रहैगी, अरु यह जगत् है, यह मै हौं, यह मेरा है, इस कुत्सित भावनाको त्याग करहु, इस अभिमानविषे स्थित नहीं होना, इस देहविषे अहंकार कालसूत्र नामकरिकै नरककी प्राप्तिका कारण है, नरकका जाल है, शस्त्रकी वर्षा होती हैं, तिन दुःखनते अधिक दुःखस्थान देह अभिमान है, अर्थ यह कि अंत दुःखदायक है, ताते पुरुष प्रयत्नकरिकै इसका त्याग करो, यह सबके नाशविषे स्थित है, भावी कल्याण जो श्रेष्ठ पुरुष है, सो इसको स्पर्श नही करते, जैसे चंडाली होवै, अरु तिसकी गोदविषे श्वानका मांस होवै, तिससे श्रेष्ठ पुरुष संग नहीं करते, तैसे देहाभिमानके साथ स्पर्श नहीं करना, यह महानीच है, यह अहंकाररूपी बादल नेत्रके आगे पटल आया है, तिसकरि आत्मा नहीं भासता, जब विचारकरि तिस पटलको दूर करगे

तब आत्मसत्ता प्रकाश उदय होवैगा, जैसे मेघघटाके दूर हुएते चंद्रमा प्रकाश आता है, तैसे अहंकारके अभावते आत्मा प्रकाशता है, जब तू इन निश्चयविषे कोई निश्चय धरैगा, तब सब दुःखनते रहित शांतपदको प्राप्त होवैगा, यह निर्णय सबते उत्तम है, इस निश्चयविषे उत्तम पुरुष सदा स्थित है, अब तुम भी विधि अथवा निषेध दोनोंविषे कोई निश्चय धारहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कर्तव्यविचारो नाम पञ्चपचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशत्तमः सर्गः ५६

पूर्णस्वरूपवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! जेते कछु तुमने सुंदर वचन कहे हैं, सो सत्य हैं, अकर्तारूप, आत्मा, कर्ता, अभोक्ता, सबका भोक्ता, भूतको धारनेहारा, सबका आश्रयभूत अरु सर्वगत, व्यापक, चिन्मात्र निर्मलपद अनुभवरूप देव सर्व भूतके अंतर स्थित है ॥ हे प्रभो ! ऐसा जो ब्रह्मतत्त्व है, सो मेरे हृदयविषे रम्य हुआ है, तुम्हारे वचनकरि प्रकाशने लगा है, तुम्हारे वचन शीतल शांतरूप तप्तताको मिटाते हैं, जैसे वर्षाकरि पृथ्वी शीतल होती है, तैसे मेरा हृदय शीतल भया है, आत्मा उदासीनकी नाई अनिच्छित स्थित है, कर्तव्य भोक्तव्यते रहित अरु सब जगत्को प्रकाशता है, सब क्रिया तिसकरि सिद्ध होती है, इस कारणते कर्ता भी वह है, अरु भोक्ता भी वही है, परंतु कछुक संशय मुझको है सो हृदयविषे विस्तारको प्राप्त भया है, तिसको अपनी वाणीकरि छेदहु, जैसे चंद्रमाका प्रकाश तमको नाश करता है, तैसे संशय दूर करहु, कि यह सत्य है, यह असत्य है, यह मैं हौं वह और है, इत्यादिक द्वैतकल्पना एक अद्वैत विस्तृत ज्ञानरूपविषे कहांते स्थित भई है, निर्मलविषे मल कैसे हुआ है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस तेरे प्रश्नका उत्तर मैं सिद्धांत कालविषे कहौंगा, अथवा तू आपही जानि लेवैगा, मोक्षउपाय जो यह शास्त्र है, तिसका सिद्धांत जब भली प्रकार तेरे हृदयविषे स्थित होवैगा तब तू इस प्रश्नका

पात्र होवैगा, अनर्थ योग्य न होवैगा तिस अवस्थाते अन्यथा नही होता॥ हे रामजी ! सुदरस्त्रियोंकी सुंदरवाणीसों गीत होताहै, तिसके अधिकारी कामी जीव यौवनवान् पुरुष होते है, तैसे तू सिद्धांत अवस्थाविषे मेरे वचनका अधिकारी होवैगा, जैसे रागमयी कथा बालकके आगे कहनी व्यर्थ होती है, तैसे बोधसमयविना उदार कथा कहनी व्यर्थ होती है, जैसे शरत्कालविषे पत्रसंयुक्त वृक्ष शोभता है,अरु वसंतऋतुविषे पुष्पकरिशोभता है, तैसेही जैसी अवस्था पुरुषकी होती है, तैसा उपदेश कहना शोभता है, किसी समय कैसा किसी समय कैसा शोभता है, अरु उपदेश भी तब दृढ लगता है, जब बुद्धि शुद्ध होती है, मलीन बुद्धिविषे दृढ नहीं लगता,जैसे निर्मल वस्त्रकेउपर केशरका रग शीघ्रही चढि जाता है मलीन वस्त्रके ऊपर नहीं चढता, तैसे प्राप्तरूप जो आत्मा है, तिसका विज्ञान उपदेश सिद्धांत अवस्थावालेको लगता है, जिसको बोधसत्ता प्राप्त भई है, अरु तेरे प्रश्नका उत्तर मैने संक्षेपमात्र कहा भी है, विस्तार करि नही कहा, जो तू नहीं जानता, तौ भी प्रत्यक्ष है, जब तू आपकरि आपको प्राप्त होवैगा, तब आपही इस प्रश्नके उत्तरको जानि लेवैगा, इसविषे सदेह कछु नही, जब सिद्धांतकालविषे बोधको प्राप्त होइकरि स्थित होवैगा,तब मैं भी इस स्वप्नका उत्तर विस्तारकरि कहूंगा जब आपकरि अपना आप निर्मलकरैगा, तब अपने आपको जानि लेवैगा ॥ हे रामजी ! जो कर्ता अरु कर्मका विचार मैंने तुझको कहा है, तिसको विचारिकरि वासनाका त्याग करहु, जबलग ससारकी वासना इस हृदयविषे होती है, तबलग बंधमान है, जब वासना छेद होती है, तब मुक्ति होती है, ताते तू वासनाका त्याग करहु, अरु मोक्षअर्थ जो वासना है, तिसका भी त्याग करहु, तब सुखी होवैगा, इस क्रम करिकै वासनाको त्याग प्रथम शास्त्रविरुद्ध तामसी वासनाका त्याग करहु, बहुरि विषयकी वासनाका त्याग करहु, अरु मैत्री करुणा मुदिता उपेक्षा इस निर्मल वासनाको अंगीकार करहु, मैत्री अर्थ यह कि सबविषे ब्रह्मभावकरि द्रोह किसीका नहीं करना, लक्ष्मीवान्के साथ मित्रभाव होवै, अरु दु खीपर दया करनी, यह करुणा कहिये, अरु धर्मात्मा पुरुषको देखिकै प्रसन्न होना, इसका नाम

मुदिता है, पापीको देखिके उदासीन रहना, निंदा न करनी, इसका नाम उपेक्षा है, इन चरो प्रकारकी वासनाकरि मपन्न होना, अरु अतरते इनका भी त्याग करना, हृदयविषे इनका अभिमान भी न होवै, अरु बाह्य इनका व्यवहार होवै, बहुरि अंतरते दृश्यमें गुणकी वासना त्यागिकरि चिन्मात्र वासना रखनी, पीछे इनको भी मनबुद्धिके साथ मिश्रित जान त्याग करना, तब जिसकरि वासना त्यागी है, सो शेष रहेगा तिसको भी त्याग करना ॥ हे रामजी! चिन्मात्रतत्त्वते कल्पना करिके देह इंद्रिया प्राण अरु तम प्रकाशवासनादिक भ्रममात्र भासि आये हैं, जब मूलसंयुक्त इनको त्याग करैगा, मूल कहिये अहंकारसंयुक्त, तब आकाशवत् सम स्वच्छ होवैगा, इसप्रकार सबको त्यागिकरि पाछे जो तेरा स्वरूप है, सो तू होहु, जो हृदयसों इसप्रकार त्यागिकरि स्थित होता है, सो पुरुष मुक्तिरूप परमेश्वर होता है, समाधिविषे रहै, अथवा न कर्म करै, अथवा करै जिसके हृदयते सब अर्थकी आस्था नष्ट भई है, सो मुक्त है, अरु उत्तम उदार चित्त है तिस पुरुषको करने न करनेविषे कछु लाभ हानि नहीं होती, न समाधि करनेविषे अर्थ है, न तपकरि अर्थ है, काहेते कि, मन तिसका वासनाते रहित भया है ॥ हे रामजी! मैं चिरकालपर्यंत अनेक शास्त्र विचारे हैं, अरु उत्तम पुरुषोंके साथ चर्चा करी है, परस्पर यह निश्चय किया है कि, भलीप्रकार वासनाका त्याग करना, ताते उत्तम मौन है, इसबिना उत्तमपद पानेयोग्य कोऊ नहीं, जो कछु देखने योग्य है, सो मैंने सब देखा है, अरु दशोंदिशा भ्रमा हौं, तामें कितनेक जन यथार्थदर्शी दृष्टि आए हैं, अरु कितनेक हेयोपादेयसंयुक्त मुझको दृष्टि आए हैं, यही यत्न करते हैं, इनते इतर कछु नहीं करते, किसीको ग्रहणकी, और किसीको त्यागकी इच्छा होती है, नानाप्रकार क्रियाके आरंभसों सब देहके अर्थ करते हैं, आत्माके अर्थ कछु नहीं करते, पाताल स्वर्ग ब्रह्मलोक आदि सब लोक देखे हैं, तिनविषे केतेक संत मुझको दृष्टि आए हैं, जिनने देखने योग्य आत्मतत्त्वपद देख्या है; और ग्रहण त्याग सब असत्य भ्रांतिकरि उठे हैं, यह निश्चय जिनका गलित भया है ऐसे ज्ञानवान् कोई विरले हैं, सब ब्रह्मांडका राज्य करै, अग्निविषे प्रवेश

करै, जलविषे प्रवेश करै, ऐसे ऐश्वर्य शक्तिकरि सपन्न भी होवै ता भी आत्मलाभविना जीवको शांति नहीं प्राप्त होती, वडे बुद्धिवान् सतभी वहाँ है, जिनने अपनी इंद्रियांरूपी शत्रु जीते है, सोई शूरमे है, तिनको जरा जन्म मृत्युका अभाव है, वह पुरुष उपासना करने योग्य है॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्को किसी दृश्य पदार्थविषे प्रीति नहीं होती, काहेते जो पृथ्वी आदिक पंचभूतकी सर्व ठौर पाते है, त्रिलोकविषे इनते इतर और पदार्थ कोऊ नहीं तौ प्रीति किसविध होवै ? युक्तिकारिकै ज्ञानवान् संसारसमुद्रको गोपदवत् कारिकै तरि जाते हैं, अरु जिनने युक्तिका त्याग किया है, तिनको सप्तसमुद्रकी नाई ससार हो जाता है, अरु जो पुरुष उदारचित्त है, तिनको यह संपूर्ण जगत् कदंववृक्षके गोलवत् हो जाता है, तिसविषे वह त्याग किसका करै अरु भोग किसका करै? हेयोपादेयते रहित पुरुषको जगत् तुच्छ जैसा भासता है, इस कारणते जगत्के पदार्थनिमित्त यत्न नहीं करता, अरु जो दुर्बुद्धि जीव होते है, सो तुच्छ ब्रह्मांडरूप पृथ्वीपर युद्ध करते है, अनेक जीवकी घात करते है, ममताविषे बधमान है, अरु यह जगत् कैसा है, संकल्पमात्रविषे नष्ट हो जाता है, अरु क्षणक्षणविषे आस्थाकारि यत्न करना वडी मूढता है, सब जगत् आत्माके एक अशकारि कल्पित है, इसकी उपमा तृणसमान भी नहीं इसप्रकार तुच्छरूप त्रिलोकी जगत्को जानिकरि आत्मवेत्ता किसी पदार्थके हर्षशोकविषे बंधमान नहीं होते, ग्रहण अरु त्यागते रहित है, सदाशिवके लोक आदि पातालपर्यंत जल रस देह जो राजस सात्विक तामसकारि संयुक्त जेते कछु जगत्के पदार्थ है सो ज्ञानवान्को प्रसन्न नहीं कर सकते, उसकी इच्छा किसीविषे नहीं होती, एक अद्वितीयात्मभावको प्राप्त भया है, आकाशवत व्यापकबुद्धि होता है, अपने आपविषे स्थित है, चित्त दृश्यते रहित अचेतन चिन्मात्र है, शरीररूप जाल है, सोई भयानक कुहिड तिसकरि जगत्रूप कोटरधूसर हो रहा है, सो तिस पुरुषका शांत हो जाता है, द्वितीय वस्तुका अभाव भया है, ब्रह्मरूपी वड़ा समुद्र है, तिसविषे झगके वोयेवत् कुलाचलपर्वत है, चेतनरूपी सूर्य है, तिसविषे मृगतृष्णाकी नदीरूप जगत्की

लक्ष्मी है, अरु ब्रह्मरूपी समुद्रविषे जगत्‌रूपी तरंग उठते अरु लय होतेहैं, ऐसे जाननेहारा जो ज्ञानवान् है, तिसको यह जगत् आनददायक कैसे होवे? सूर्य चद्रमा अग्नि जो तुझको प्रकाशरूप भासते है, सो भी घट काष्ठ आदिकवत् जड़रूप है, जिसकरि यह प्रकाशते है, सो सबको सिद्ध करती आत्मसत्ता है, और कोऊ नहीं, देह जो रुधिर मांस अस्थिकरि बनी है, इन्द्रियांसंयुक्त वेष्टित है, तिस देह जगत्‌रूप डब्बेविषे चेतन जीवरूप रत्न है, तिसकरि विराजता है, चेतना जड़ मुग्धरूप है ॥ हे रामजी! यह जो स्त्रीका देह भासता है, सो चर्मकी पुतली बनी है, तिसको देखिकै मूढ बालक प्रसन्न होता है, जो बुद्धिमान् है, सो प्रसन्न नहीं होते, इसप्रकार ज्ञानवान्‌को विषयभोग प्रसन्न नहीं करते, जैसे वायुके चलनेकरि पर्वत चलायमान नहीं होते, तैसे ज्ञानवान् ससारके पदार्थकरि प्रसन्न नहीं होते, ज्ञानवान् तिस उत्तम पदविषे विराजते हैं, जिसकी अपेक्षाकरि चद्रमा सूर्य पातालविषे भासते है अर्थ यह कि, इनका बड़ा प्रकाश भी तुच्छ जैसा भासता है, परम उत्तम पदविषे ज्ञानवान् विराजता है, अरु यह ससार मूढ जीव ससारी समुद्रविषे सर्पकी नाई वहे जाते है, जैसे हमको भासते हैं, तैसे कहते है, इस जगत्‌विषे ऐसा भाव पदार्थ कोऊ नहीं, जो ज्ञानवान्‌को रागकरि रजित करै, जैसे नगरका राजा होवै, तिसके ग्रहविषे महासुदर विचित्ररूप रानियां होवैं, तिसको ग्रामकी मूढ नीच स्त्रियां प्रसन्न नहीं कर सकतीं, तैसे यह जगत्‌के भाव पदार्थ तत्त्ववेत्ताके हृदयविषे प्रवेश नहीं कर सकते, जैसे आकाशविषे मेघ बादर रहते है, परतु आकाशको स्पर्श नहीं कर सकते, जैसे सदाशिव महासुंदर गौरीका नृत्य देखनेहारा है, अरु गौरीसंयुक्त है, तिसको बानरीका नृत्य हर्षदायक नहीं होता तैसे ज्ञानवानको जगत्‌के पदार्थ हर्षदायक नहीं होते, जैसे जलकरि पूर्ण कुंभविषे रत्नका प्रतिबिंब होवै, तिसको देखिकै बुद्धिवानका चित्त ग्रहण नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्‌का चित्त जगतके पदार्थ नहीं चाहता, यह ससारचक्र बडा विस्ताररूप भासता है, सो असत्यरूप है, तिसको देखिकै ज्ञानवान् कैसे इच्छा करै, यह तो चद्रमाके प्रतिबिंबवत है, शरीर भी असत्य है, इसकी इच्छा मूढ

करते है, जैसे सेवालको मच्छर भोजन करते है, राजहंस नहींकरते, तैसे ससारके विपयकी इच्छा अज्ञानी करते है, ज्ञानी नही करते॥ इति श्रीयोगवा०स्थितिप्रकरणे पूर्णस्वरूपवर्णनं नाम पट्पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ५७.

कचगाथावर्णनम्।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह सिद्धांत जो परम उचित वस्तु है, तिसकी गाथा बृहस्पतिका पुत्र जो कच है, तिसने गाई थी, सो परम पावनरूप है ॥ एक कालमें सुमेरु पर्वतके किसी गहन स्थानविपे देवगुरुका पुत्र कच जाय स्थित भया, अभ्यासके वशते कदाचित् उसको आत्मतत्त्वविपे विश्रांति भई, अरु अत करण उसका सम्यक् ज्ञानरूपी अमृतकरि पूर्ण भया, अरु पांचभौतिक जो मलिन दृश्य है, तिसते विरक्त भया, ब्रह्मभावविपे अस्फुर होइकरि रमता भया, निराभास आत्मतत्त्वते इतर कछु नहीं, एक अद्वैत भासै, ऐसे देखता हुआ, गद्गद वाणीसों बोलत भया, मै क्या करौं, अरु कहां जाऊ, क्या ग्रहण करौं, किसका त्याग करौं, सब विश्व एक आत्मपूर्ण हो रहा है, जैसे महाकल्पविपे सब ओरते जल पूर्ण हो रहता है, तैसे दुःख भी आत्मा है, सुख भी आत्मा है, आकाश दशों दिशा अह त्व आदि सब जगत् आत्माही है, बड़ा कष्ट है, जो अपना आपविपे नष्ट हुआ बंधमान था, देहके अंतर भी आत्मा है, बाहर भी आत्मा है, अध ऊर्ध्व इत उत सब आत्मा है, आत्माते इतर कछु नहीं, सब ओरते एक आत्माही स्थित है, अरु सबही आत्माविपे स्थित है, यह सब मै हौं, अपने आपविपे स्थित हौं, अपने आपविपे मैं नहीं समाता अर्थ यह कि, आदि अतते रहित अनंत आत्मा हौं, अग्नि मै हौं, वायु मैं हौं, आकाश जल पृथ्वी मै हौं, जो पदार्थ मैं नहीं सो है नहीं, जो कछु है, सो सब विस्तृतरूप मैही हौं, एक पूर्ण परम आकाश भैरव हौं अर्थ यह कि भर रहा हौं, सब जगत् भी ज्ञानरूप है, समुद्रवत् एक पूर्ण स्थित है, सो कल्याणमूर्ति इसप्रकार भावना

करता हुआ, स्वर्णके पर्वतके कुंजाविषे कच स्थित भया तिसके अनंतर ॐकारका उच्चार वडे स्वरसों करने लगा, अरु ॐकारकी जो अर्धकला है, जिसको अर्धमात्रा कहते हैं, सो फूलते भी कोमल है, बहुरि तिसविषे स्थित होत भया, सो अर्धमात्रा कैसी है, न अंतःस्थित है, न बाह्य है, हृदयविषे भावना करता हुआ तिसविषे स्थित भया, कलनारूपी जो मल था, तिसते रहित निर्मल भया, चित्तकी वृत्ति निरंतर लीन हो गई जैसे मेघके नष्ट भयेते शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे कलंकित कलनाके दूर हुएते निर्मल भया, जैसे पर्वतकी पुतली अचलरूप होती है तैसे कच समाधिविषे स्थित अचल भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थिति-प्रकरणे कचगाथावर्णन नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ५८

कमलजाव्यवहारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अंगनाके शरीरादिक जो भोग पदार्थ हैं, सो इनते इतर तो जगत्विषे सुख कछु नहीं अरु ज्ञानवान्को यह पदार्थ तुच्छ भासते हैं, इनविषे आस्था नहीं करते, बहुरि इच्छा किस पदार्थकी करें, इन भोग ऐश्वर्य पदार्थकारि मूढ असाधु तोष पाते हैं, जो ज्ञानवान् साधु हैं, सो इनविषे प्रीति नहीं करते जो कृपण अज्ञानी हैं, तिनको भोग ही सरस हैं, अरु भोग कैसे हैं, आपातरमणीय आदिअंत मध्यविषे दुःख-रूप हैं, जो पुरुष इनविषे आस्था करते हैं, सो गर्दभ नीच पशु हैं. हे रामजी स्त्री कैसी है, रक्त मांस अरु अस्थि आदिकारि पूर्ण है जो इसको पायकारि तो-षित होते हैं सो गीदड़ हैं मनुष्य नहीं अरु जो ज्ञानवान् हैं सो किसी जगत्के पदार्थविषे प्रीति नहीं करते, पृथ्वी सर्व मृत्तिकारूप है, वृक्ष सर्व काष्ठरूप हैं, देह सर्व मांसरूप है, पर्वत सर्व पाषाणरूप हैं, पाताल अधः है, आकाश ऊर्ध्व है, सो दिशाकारि व्यापा है, सर्व विश्व पांचभौतिकरूप है, इसविषे तौ अपूर्व सुख कोऊ नहीं, जिसविषे ज्ञानवान् प्रीति करते हैं, इंद्रियके जो पंच विषय हैं, सो मोहके देनेहारे हैं, विवेकमार्गके रोकनेहारे हैं, जैसी

कछु जगतज्जालकी सपूर्ण विभूति है, वडे ऐश्वर्य पदार्थ, सो सव दुःखरूप है, प्रथम इनका प्रकाश भासता है, पाछे कलकको प्राप्त करते हैं, जैसे दीपक प्रथम प्रकाशको दिखाता है, वहुरि काजल कलकको देता है, तैसे इद्रियोंके विषय आगमापायी है, इनकरि शांति प्राप्त नही होती, अज्ञानीको स्त्रिया आदिक पदार्थ रमणीय भासते है, ज्ञानवान्‌की वृत्ति इनकी ओर नहीं फुरती, अज्ञानीको स्थिररूप भासता है, अरु स्वाद देते हैं, तुष्ट करते हैं, ज्ञानवान्‌को असत्य अरु चलरूप भासता है, तुष्टताका कारण नहीं होते,विषयभोग कैसे हैं,विषकी नाई है, यह स्मरण मात्रते भी विषवत् मूर्च्छा करते हैं, सत्यविचार भूलि जाता है, ताते इनको त्यागिकरि अपने स्वभावविषे स्थित होहु, अरु ज्ञानवान्‌की नाई विचरहु ॥ हे रामजी! जव इस जीवको अनात्मविषे आत्मअभिमान होता है, तव असगरूप जगज्जाल भी सत्य हो भासता है, ब्रह्माको भी वासनाके वशते कल्पदेहका सयोग होता है, जैसे स्वर्णका प्रतिविंव जल विषे पड़ता है,अरु तिसकी झलक कध ऊपर पडतीहै सो कधसे स्वर्णका संयोग कछु नहीं,तैसे ब्रह्माका सयोग देहकेसाथ वास्तव कछु नहीं,कल्पनामात्र देह है ॥राम उवाच॥ हे महामते! विरचिके पदको प्राप्त होइकरि वहुरि यह सघनरूप जगत् कैसे रचते है, सो क्रमकरिकै कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जव प्रथम कमलज जो ब्रह्मा उत्पन्न भया है, तव जैसे वालक गर्भते उपजता है, तैसे उपाजिकरि वारंवार इस शब्दका उच्चारण किया कि, ब्रह्म ब्रह्म इस कारणते तिसको ब्रह्मा कहते हैं, वहुरि सकल्पजाल है रूप जिसका, ऐसा कल्पित आकार मन हो आया, तिस मनने आगे संकल्प लक्ष्मी पसारी, प्रथम सकल्पते जो माया उपजती है, वह तेज अग्निके चक्रवत् फुरने लगी, तिसते वड़ा आकार हो गया, ज्वालाकी नाई स्वर्णलतारूप वडी जटाकरि सयुक्त प्रकाशको धारे, शरीर मनसंयुक्त सूर्यरूप होइकरि स्थित भया, अपने समान आकार वड़े प्रकाशसंयुक्त कल्पता भया, ज्वालाका मंडल आकाशके मध्य स्थित भया, अग्निरूप अग्निही अग हैं जिसके ॥ हे महाबुद्धिवान् रामजी! इसप्रकार तो ब्रह्मासे सूर्य भयाहे, अरु अपर जो तेजकिरण फुरती हैं, सो

आकाशविषे तारागण बिंबपर आरूढ फिरते हैं, वहुरि ज्यों ज्यों वह सकल्प करता गया, त्यों त्यों तत्काल भी आगे सिद्ध होइकारि भासने लगा, इसी प्रकार आगे जगत्को रचता भया, जिसप्रकार इस सृष्टिविषे ब्रह्मा रचता है, तिसीप्रकार अपर सृष्टिविषे रचते है, प्रथम प्रजापतिको रचता है, वहुरि कालकलना नक्षत्र तारागण रचे, वहुरि देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, गधर्व, यक्ष, नदियां, समुद्र,पर्वत, सर्व इसीप्रकार कल्पता भया, जैसे समुद्रविषे तरग कल्पित होते है, तैसे सिद्ध रचे, तिनके कर्म रचे, सो भी शुभ सकल्परूप जैसा वह संकल्प करे, सोई सिद्ध होकरि भासने लगे, प्रजापतिने संकल्पकरि सिद्ध उत्पन्न किये, तिनते आगे और वहुरि उत्पन्न किये, इसीप्रकार वहुरि भूत तारा गण आगे और उत्पन्न किये, तिनने और उत्पन्न किये, तव ब्रह्माजी वेदको उत्पन्न करता भया, जीवके नाम आचार कर्म वृत्ति पुण्य क्रिया सव जगत्की मर्यादाकरि, नीतिरूप स्त्रीको रचता भया, सो जगतरूपी ग्रहकी मर्यादा है, इसनिमित्त उत्पन्न किया सो इसप्रकार ब्रह्मकी माया ब्रह्मारूपकारि वडे शरीरको धर रही है, आगे सृष्टिका विस्तार है; लोक अरु लोकपालके क्रम किये है, सुमेरु पृथ्वीके मध्य दशों दिशा रचे, सुख मृत्यु राग द्वेष प्रगट किये, इसप्रकार सपूर्ण जगत त्रिगुणरूप ब्रह्माजी रचता भया, जैसे जैसे उसने सव रचे हैं, तैसेही स्थित भये है, अरु है क्या, जो कछु सपूर्ण दृश्य भासता है, सो सव मायामात्र है॥ हे रामजी! इसप्रकार जगत्का क्रम हुआ है, सो सकल्परूप ससार वडा स्थित होइकारि अज्ञानकरि भासता है, यह तो सकल्पकारि रचा है, सकल्पके वशते जगत्की क्रिया पसरता है, अरु सकल्पवशते दैवनीति होइकरि स्थित भया है, सर्व जगत ब्रह्माते संकल्पविषे स्थित है, जव तिसका संकल्प निर्वाण होता है, तव जगत् भी लय हो जाता है, एक समय ब्रह्माजी पद्मासनको धारि बैठे थे, अरु चिंतवत भये कि, यह जगजाल मनके सकल्प फुरणेमात्र है, मनके फुरणेकारि उपजि आता है, वड़ा विस्ताररूप नानाप्रकारके व्यवहार विकारसंयुक्त इन्द्र, उपेंद्र, मनुष्य, दैत्य, समुद्र, पर्वत, पाताल, पृथ्वीते ले-

करि जगज्जाल सर्व मायामात्र है, वडा पसारि रहा है, अव मै इसते नि-वृत्त होऊं ॥ हे रामजी! इसप्रकार चिंतनाकरि ब्रह्माजी संकल्प अनर्थ-रूपते उपरत भया, आदि अंत रहित जो अनादि मत परब्रह्म स्फार आ-त्मारूप है, तिस आत्मा तत्वविषे मनको लय करता भया, आनदरूप आत्मा होकारि अपने आपविषे स्थित भया, निर्मल निरहकार परमतत्व-को प्राप्त भया, जैसे कोऊ व्यवहारते थका हुआ विश्राम करता है, तैसे अपने आपकारि आत्मतत्त्वविषे स्थित भया,जैसे अक्षोभ समुद्र होता है, तैसे अक्षोभ भया, ध्यानविषे जुडि गया, वहुरि ध्यानते जागा, जैसे द्र-वताकारिकै समुद्रते तरंग फुरि आवै, तैसे चित्तके वशते ब्रह्माजी फुरनरूप हो आया, तव जगत्को देखिकै चिंतवत भया, कैसा ससार है, दुःखसु-खकारि संयुक्त अनत फांसीकारि वधमान है, रागद्वेष भयमोहसों दूपित है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जीवको देखिके ब्रह्माजीको दया उपजी दयाकारिकै अध्यात्मज्ञानकरि सपन्न वेद उपनिषद् वेदांतको प्रगट करता भया, वडे अर्थसंयुक्त नानाप्रकारके शास्त्र रचे,वहुरि पुराण रचे, सव जीवके मुक्तिनि मित्त,तिनको रचिकारि परमपद जो आपदाते रहित है, तिसविषे स्थित भया जैसे मदराचल पर्वतके निकसेते क्षीरसमुद्र शांत होता है,तैसे शांतरूप होइ-करि स्थित भया, वहुरि उसी प्रकार जाग जगत्को देखि मर्यादाविषे जोडा, वहुरि कमलपीठविषे स्थित होकारि आत्मतत्वके ध्यान परायण भया इसी-प्रकार जोकछु अपने शरीरकी मर्यादा ब्रह्माजीने करी है,तिसीप्रकार नीतिके संस्कार पर्यंत क्रीड़ा करते है, कुलालके चक्रवत् नीतिके अनुसार विचरता है, जैसे ताडना अरु वासनाते रहित चक्र फिरता है, तैसे जन्म कारणते रहित है, तिसको शरीरके रखने अरु त्यागनेविषे कछु इच्छा नहीं, न कछु जगत्की स्थिति अस्थितिविषे इच्छा है, किसी इस पदार्थके ग्रहण-त्यागकी भावनाविषे आसक्त नहीं, सर्व पदार्थविषे समबुद्धि परिपूर्ण समु-द्रवत् स्थित है, कवहूं सव संकल्पते रहित शांतरूप हो रहता है, कवहूं अपनी इच्छाकरि जगत्को रचता है, परंतु उसको जगत्के रचनेविषे कछु भेद नही, सर्व पदार्थकी अवस्थाविषे तुल्यता है ॥ हे रामजी ! यह मैंने तुझको ब्रह्माकी स्थिति कही है, यह परम दशा अपर भी किसी देव-

ताको उपजै तौ तिसको समता जानिये, वह शुद्ध सात्त्विकरूप है, सृष्टिके आदि जो शुद्ध ब्रह्मतत्त्वविषे चित्तकला फुरी है, सो फुरनारूप मनकला ब्रह्मारूप होइकरि स्थित भई है, जब बहुरि जगत्‌के स्थिति-क्रमविषे कलना उत्पन्न होती है, तब वही ब्रह्मारूप आकाश पवनको आश्रय लेकरि औषधि पत्रविषे आय प्रवेश करता है, कहूं देवताभावको प्राप्त होता है, कहूं मनुष्यभावको प्राप्त होता है, कहूं पशु पक्षी तिर्यक् आदिकको प्राप्त होता है, चंद्रमाकी किरणोंद्वारा अन्नादिक औषधीविषे प्राप्त होता है, जैसे भावको लेकरि चित्तकला फुरती है, तैसा भाव शीघ्रही उत्पन्न हो आता है, कई उपजिकरि ससर्ग ससारके वशते तिसी जन्मके बंधनते मुक्त हो जाते हैं, अपने स्वरूपका चमत्कार होता है, कई अनेक जन्मकरि मुक्त होते हैं, कई थोडे जन्मकरि मुक्त होते हैं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जगत्‌का क्रम है, प्रत्यक्ष संकट कर्म बंधमोक्षरूप उपजते हैं, कई मिटि जाते हैं, इसप्रकार संसार बंधमोक्षकरि पूर्ण है, जब यह कलनामल नष्ट होता है, तब ससारते मुक्त होता है, जबलग कलनामल होता है, तबलग ससार भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कमलजाव्यवहारो नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.

विचारपुरुषनिर्णयः ।

वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे महाबाहो रामजी ! इसप्रकार ब्रह्माजी निर्मल पदविषे स्थित होइकरि सर्ग विस्तारता भया, जो ससाररूपी कूप है, तिसविषे जीव भ्रमते हैं, जीवरूपी टीड तृष्णारूपी जेवरीसाथ बांधे हुए कबहू अधको जाते हैं, कबहूं ऊर्ध्वको जाते हैं; जब वासनारूपी जेवरी टूट पड़ती है, तब ब्रह्मतत्त्वमों उठे सो बहुरि ब्रह्मतत्त्वसाथ एकत्व हो जाते हैं, ब्रह्मसत्ताते जीव उपजते बहुरि ब्रह्मसत्ताविषे लय होते हैं, जैसे समुद्रते मेघजल कणके धूम्रद्वारा उपजते हैं, बहुरि वर्षाकरि तिसीविषे प्रवेश करते हैं, तैसे जब तन्मात्रा मंडलकेसाथ चित्तकला मिलनी

है, तब तिसकेसाथ जीव एकरूप हो जाते है, जैसे मदार वृक्षके पुष्पकी सुगंधि वायुसग मिश्रित एकरूप हो जाती है, तैसे चित्तकला जीव तन्मात्रासों मिलिकरि प्राणनामको पाती है, इसप्रकार प्राणवायुते आदि तन्मात्रा जीवकलाको खैचने लगता है, जैसे वड़े प्रचड दैत्यके समूह देवताको खैचै, तैसे खैचा हुआ जीव तन्मात्रासाथ एकरूप हो जाता है, जैसे गंध अरु वायु तन्मय होता है, वह प्राण तन्मात्रा जीवके शरीरविषे वीर्यस्थानमें जाय प्राप्त होता है, तव जगत्‌विषे उपजिकरि प्राण प्रत्यक्ष होते है, और कई धूम्रमार्गकरि देहवान्‌के शरीरविषे प्रवेश करते हैं, मेघविषे प्रवेश कर वुद मार्गसों ओषधीविषे रसरूप होइकरि जाय स्थित होते है, तिसको भोजन करनेहारेके अतर वीर्यरूप होइकरि स्थित होते हैं, कई और प्राणवायुद्वारा प्रगट होते हैं, वह चर स्थावररूप होते हैं, कई पवनमार्गकरि धान्यक्षेत्रविषे चावलरूप स्थित होते है, तिसको जीव भोजन करते है, तिसकरि वीर्यविषे प्राप्त होते हैं, नानाप्रकारके रगभेदकरि प्राणधर्म उपजते है, कई उपजने मात्रते जीवकी परंपरा तन्मात्राकरि वेष्टित आकाशविषे जाय स्थित होते हैं, जवलग चंद्रमा उदय नहीं भया, जव चद्रमा उदय होता है, तव उसका रस जो किरणै शीतल अरु श्वेत क्षीर समुद्रवत् तिनविषे जाय प्राप्त होते हैं, तिनके अतर्गत होकरि पत्र ओषधिविषे स्थित होते है, जैसे कमलपर भँवरे स्थित आय होते है, तैसे औषधिविषे जायकरि जीव स्थित होते है, फलविषे स्वादरूप होइकरि स्थित होते है, जैसे घुन रसकरि पूर्ण होता है, तैसे जीवकरि ओषधि फल पूर्ण हो जाते है, जैसे दूधकरि स्तन पूर्ण होते है, तैसे जीवकरि फल पूर्ण होते है, तव वह फल परिपक्व होते हैं, तिनको देहधारी भक्षण करते है, तिसविषे जीव वीर्यरूप जडात्मकरूप होइकरि स्थित होते है, सो सुषुप्ति वासनाकरि वेष्टित हुए गर्भ पिंजराविषे जाय पडते है ॥ हे रामजी ! वीर्यविषे सदा जीव रहते है, जैसे मृत्तिकाविषे सदा घटादिक रहते है, काष्ठविषे सदा अग्नि रहता है, दूधविषे घृत रहता है, तैसे वीर्यविषे जीव रहते है, इसप्रकार परमात्मा महेशरूपते जीवकी परपरा उपजती है, वायुमार्गकरि, धूम्रमार्गकरि, मेघमार्गकरि, औषधि

मार्गकरि, प्राणमार्गकरि, चंद्रमाकी किरणोंके मार्गकरि, इत्यादिक अनेक प्रकारकरि जीव उपजते हैं, जो उपजनेकरिकै आत्मसत्तासों अप्रमादी रहते है, अपना स्वरूप विस्मरण नहीं होता, सो शुद्ध सात्त्विकी है, महा उदार व्यवहारवान् होते हैं अरु जिनको उपजनेकरि विस्मरण हो जाता है, बहुरि उसी शरीरविषे आत्माका साक्षात्कार होता है, सो सात्त्विकी-रूप है, अरु जो उपजिकरि नानाप्रकारके व्यवहारको प्राप्त होते हैं, अरु स्वरूप विस्मरण हो जाता है, जन्मकी परपरा पायकरि स्वरूपका साक्षात्कार होता है, सो राजस सात्विकी कहाते हैं, अरु जिनको अंतका जन्म आय रहता है, तिनको जिसप्रकार मोक्ष होना है, सो क्रम अब तुझको कहता हौं,जो सहज सत्ता सात्त्विकभावको प्राप्त होते है,अरु मोक्ष होते है॥ हे रामजी ! उपजनेमात्रते जो अप्रमादी हुए सो शुद्ध सात्त्विकी हैं, वह ब्रह्मादिक हैं, अरु जो प्रथम जन्मकरि बोधवान् हुए सो सात्त्विकी हैं, अरु दुर्लभ है, अरु जो कबहूं किसी जन्मकरि मोक्ष हुए है, सो राजस सात्त्विकी हैं, इनते इतर है, सो नानाप्रकारके मूक जड़ अनेक हैं, तम-सयुक्त स्थावरादिक है, जिनको आत्मपद प्राप्त भया है, तिनको जो मिलते है, तिनको अतका जन्म है, ऐसे पुरुष विचारते है, कि मै कौन हौं, यह जगत् क्या है, इस विचारके क्रमकरि मोक्षभागी होता है, सो राजसते सात्त्विकी होते है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे विचार-पुरुषनिर्णयो नाम एकोनषष्टितम· सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितम· सर्ग· ६०

मोक्षविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! राजसते सात्त्विकी हुए है, सो पृथ्वीपर महागुणकरि शोभायमान होते हैं, सदा उदितरूप रहते है, जैसे आका-शविषे चद्रमा रहता है, तैसे वे पुरुष खेदको नहीं प्राप्त होते हैं, जैसे आका-शको मलिनता स्पर्श नहीं करती, तैसे उनको आपदा स्पर्श नहीं करती, जैसे रात्रिके आयेते स्वर्णके कमल मूँदे नहीं जाते, जो कछु प्रकृत आ-

चार है, तिसके अनुसार चेष्टा करते है, और प्रकार नही करते, जैसे सूर्य अपने आचारविषे विचरता है, और आचार नहीं करता, तैसे वह सत्यमार्गविषे विचरते हैं, अतरते पूर्ण शांतरूप हैं, आपदाकरि भी नहीं त्यागते,जैसे चंद्रमाकी कला क्षीण होती है, तौ भी अपनी शीतलताको नहीं त्यागती, तैसे ज्ञानवान् आपदाके प्राप्त हुएते भी मलिनताको प्राप्त नहीं होते सर्वदा काल मैत्री आदिक गुणकरि सपन्न रहते है, सदा तिनकरि शोभते है, समतारूप जो समरस हैं, तिसकरि पूर्ण शांतरूप हैं, निरंतर स्वशुद्ध समुद्रवत् अपनी मर्यादाविषे स्थित रहते है ॥ हे रामजी ! तुम भी महापुरुषके मार्ग सदा चलहू, जो मार्ग परम पावन आपदाते रहित सात्त्विकी है, तिसके अनुसार चलौ तव आपदाके समुद्रविषे न डूबौगे, जैसे वे खेदते रहित जगत्विषे विचरते हैं, तैसे विचरौ,जिस क्रमकरि राजसते सात्त्विकी मोक्षभागी होता है, सो सुनो, प्रथम आर्जवपदको प्राप्त होना अर्थ यह कि, यथाशास्त्र सत् व्यवहार करना तिसकरि अंतःकरण शुद्ध होता है, तिस आर्जवपदको पायकरि संतसाथ मिलना अरु वारंवार सच्छास्त्रको विचारना, अरु जो ससारके अनित्य पदार्थ है तिनविषे प्रीति न करनी, विरक्तता उपजानी, तिनते निरिच्छ होना अरु जो पदार्थके उपजे विनशने त्रिलोकीविषे सत्यरूप है वारंवार तिसकी भावना करनी, अपर भावना शीघ्रही मिथ्या जानिकरि त्यागनी, जो कछु दृश्य जगत् भासता है, सो असम्यक् दृष्टि है, निष्फल नाशरूप व्यर्थ जानिकरि तिसकी भावना त्यागनी, अरु सम्यक् ज्ञानको स्मरण करना, संतजन अरु सच्छास्त्र जो ज्ञानके सहायक हैं, तिनके सग मिलिके विचार करना कि, मै कवन हौं, जगत् क्या है, भली प्रकार प्रयत्नकरि विवेकसंयुक्त सदा अध्यात्मशास्त्रका विचार करना, सत्य व्यवहार सात्त्विकी कर्म करने, अवज्ञा करिकै मृत्युको विस्मरण न करना, जो मृत्यु विस्मरणकरि संसार कार्यविषे लग जाता है, सो डूबता है, तातें स्मरण करिकै सन्मार्गविषे लगना, जिस पदविषे ज्ञानी पुरुष महाउदार शीतलचित्त स्थित हैं, तिस पदके मार्ग अरु दर्शनविषे सदा इच्छा रखनी, जैसे मोरको मेघकी इच्छा रहती है ॥ हे रामजी ! अहंकार जो देहविषे

स्थित है, यह देह संसारविषे उपजी है,तिनको भली प्रकार विचार करिके नाश करो यह देह संसार रुधिर मांस मज्जा आदिककी बनीहुई है; जेते कछु भूतजाति है, सो सब चेतनरूपी तागेविषे जैसे मोती परोये होवें, तैसे है, तिन भूतको त्यागिकरि चिन्मात्र तत्त्वको देखौ, चेतनसत्ता सत्य है, नित्य विस्तृतरूप है, शुद्ध है, सर्वगत सर्वभाव तिसविषे है, सो त्रिलोकीका भूषण आश्रयभूत है, जो चेतन आकाशमें सूर्यविषे है, सोई चेतन पृथ्वीके छिद्रमें कीट है, तिसविषे है, जैसे घटाकाश अरु महाकाशविषे भेद कछु नहीं, तैसे शरीरमे चेतनविषे भेद कछु नहीं, जैसे बहुत मिरचा है, तिनविषे तीक्ष्णता एकही है, तैसे सर्व भूतविषे चेतनता एक अनुस्यूत है, अनुभवकारि जानता है, तिस एक चिन्मात्रविषे भिन्नता कहाते होवें, एक सत्य सत्ता जो निरंतर चिन्मात्र वस्तुरूप है तिसविषे जन्म मरण आदिक अज्ञानकरि भासता है, वास्तवते न कोऊ उपजा है, न मरता है, एक आत्मतत्त्व सदा ज्योंका त्यों स्थित है, जगत विकार तिसविषे आभासमात्र है, न सत्य है, न असत्य है, चित्तके फुरनेकरि भासता है, चित्तके शांत हुएते शांत हो जाता है, जो जगत्को सत्य मानिये तो अनादि हुआ इसकरि भी शोक किसीका नहीं बनता, अरु जो जगत् असत्य मानिये तो भी शोकका स्थान नहीं बनता, ताते दृढ विचार करिके स्थित होहु, शोकको त्यागो तुमको न जन्म है, न मरण है, आकाशवत् निर्मल शम शांतरूप होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मोक्षविचारो नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१.

मोक्षोपायवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो धैर्यवान् पुरुष बुद्धिमान् है, सो सच्छास्त्रको विचारै अरु संतजनका संग करै, तिनके आचारको ग्रहण करै, जो जो दुःखके नाशकर्त्ता श्रेष्ठ ज्ञानदृष्टि है, तिनको यत्न करिके अंगीकार करै, तब इसको भी सज्जनता आय प्राप्त होवैगी, संतजन जो विरक्त

आत्मा है, तिनसों मिलिकरि सच्छास्त्रको विचारैं, तव परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष सच्छास्त्रके विचारनेहारा है, अरु संतजनका सग वैराग्यअभ्यास आदरसयुक्त करता है, सो तुम्हारी नाईं विज्ञानका पात्र है, तुम तौ उदारआत्मा हौ, धैर्यवान्‌के जो गुण शुभ आचार हैं, तिनके समुद्र हौ, निर्दुःख होइकरि स्थित होहु, अव राजस सात्त्विकी भये हौ, मननशील भये हौ, वहुरि ऐसे दग्धरूप ससारविषे दु:खके पात्र न होवोगे, यह तुम्हारा अंतका जन्म है, जो अपने स्वभावकी ओर धावते हौ, अंतर्मुख यत्न करते हौ, निर्मल दृष्टि तुमको प्रगट भई है, यथाभूत जगत् वस्तुको जानते भये हौ, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि यथार्थ वस्तुका ज्ञान होता है, अव मेरे वचनकी पंक्तिकरि सर्व मल दूर हो जावैगा, जैसे अग्निविषे धातुका मल जलि जाता है, तैसे तुम्हारा मल जलि जावैगा, निर्मलताकरि शोभायमान होवैगा, जैसे मेघके नष्ट भएते शरत्कालका आकाश शोभता है, तैसे ससारकी भावनाते मुक्त होइकरि चिंताते रहित निर्मल भावकरि शोभौगे, अहं मम आदिक कल्पनाते मुक्त भये है, इसविषे सशय कछु नहीं ॥ हे रामजी ! तेरा जो यह अनुभव उत्तम व्यवहार है, तिसके अनुसार विचरैगा तौ तू अशोकपदको प्राप्त होवैगा, अरु अपर कोऊ इस व्यवहारविषे वर्त्तैगा, सो भी ससारसमुद्रको अनुभवरूपी वेड़ेकरि तरि जावैगा, तुम्हारे तुल्य जिसकी मति होवैगी, सो समदर्शी जन ज्ञानदृष्टि योग्य है; जैसे सर्व कांतिमान् सुंदरताका पात्र पूर्णमासीका चंद्रमा होता है, अरु तुम तौ अशोकदशाको प्राप्त भये हौ, यथाप्राप्तविषे वर्त्तते हौ, जवलग रागद्वेषते रहित स्थितबुद्धि रहौ, यथाशास्त्र जो उचित आचार है, सो वाह्यते करौ, अरु अंतरते सर्व कल्पनाते रहित शीतलचित्त होहु, जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा शीतल होता है ॥ हे रामजी ! इन सात्त्विक अरु राजस सात्त्विकते जो इतर जीव हैं तामसी, तिनका विचार यहां नहीं करना, वह मूढ गीदड़ हैं, मद्यादिकके खानेहारे हैं, तिनके विचारके साथ क्या प्रयोजन है, जो मैं तुझको सात्त्विकी जन कहे हैं, तिनके सेवनेकरि बुद्धि अतके जन्मवर्ती होती है, अरु जो तामसी तिनको सेवै तौ उनकी बुद्धि भी उदार हो-

जाती है, अरु जिस जिस जातिविषे जीव उपजता है, तिस जातिके गुण-करि शीघ्रही संयुक्त हो जाता है, पूर्व जो कोऊ भाव होता है, सो जातिके वशते वहां जाता रहता है, अरु जिस जातिविषे वह जन्मता है, तिस जातिके गुणको जीतनेका पुरुषार्थ करता है, तब यत्नकरि पूर्वके स्वभावको जीति लेता है,जैसे धैर्यवान् शूरमा शत्रुको जीति लेता है,जो इसका पूर्व सस्कार मलीन है तौ धैर्यकरिकै मलिन बुद्धिका उद्धार करे, जैसे मुग्ध पशु गर्तविषे फँसि जावे, अरु तिसको काढि लेवै, तैसे बुद्धिको मलिन सस्कारते काढि लेवै ॥ हे रामजी ! जो तामस राजसी जाति है तिनको भी जन्म अरु कर्मके सस्कारवशते सात्त्विक प्राप्त होता है, अरु वे भी अपने विचारद्वारा सात्त्विक जातिको प्राप्त होते हैं, इस पुरुषके अंतर अनुभवरूपी चिंतामणि है, तिसविषे जो कछु निवेदन करता है, सोई रूप इसका हो जाता है, ताते पुरुषार्थ करिकै अपना उद्धार करहु, पुरुष-प्रयत्नकरि यह पुरुष बडे गुणकरि संपन्न होता है, अरु मोक्षको प्राप्त होता है, अंतका जन्म होता है, आगे जन्म नहीं पाता; अशुभ जातिके कर्म निवृत्त हो जाते हैं, ऐसा पदार्थ पृथ्वी आकाश देवलोकविषे कोई नहीं, जो यथाशास्त्र प्रयत्नकरि न पाइये सो अवश्य पाता है ॥ हे रामजी ! तुम तौ बडे गुणकरि सपन्न हौ,धैर्यता अरु उत्तम वैराग्य दृढ बुद्धिसंयुक्त हौ, अरु तिसके पानेको धर्मबुद्धिकरि वीतशोकरूप हौ, तुम्हारे क्रमको जो कोऊ जीव ग्रहण करैगा सो मूढताते रहित होइकरि अशोकपदको प्राप्त होवैगा, अब तुम्हारा अतका जन्म है, बडे विवेककरि संयुक्त हौ, बुद्धिविषे शांतिके गुण आनि पसरे हैं, तिनकरि तुम शोभते हौ, सात्त्विक गुण क्रमकरि सर्वविषे रम रहे हौ, ससारकी बुद्धि मोह चिंता तुमको मिथ्या है, तुम अपने स्वस्थ स्वरूपविषे स्थित होहु ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे चतुर्थ स्थितिप्रकरणे मोक्षोपायवर्णन नाम एकषष्टितम: सर्ग ॥ ६१ ॥

इति
योगवासिष्ठे स्थिति प्रकरणं समाप्तम्





परमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

पञ्चम उपशमप्रकरण प्रारभ्यते ।

तत्र प्रथमः सर्गः १.

पूर्वदिनवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच ॥ हे साधो ! अब स्थितिप्रकरणके अनंतर उपशमप्रकरण कहता हौं, जिसके जाननेते निर्वाणताको प्राप्त होवोगे जब इसप्रकार वसिष्ठजीने वचन कहे, तब सब सभा शोभित भई, जैसे शरत्कालके आकाशमें तारागण शोभते हैं, अरु वसिष्ठजीके वचन कैसे हैं, जो परमानंदके कारण हैं, ऐसे पावन वचन श्रवण करिके अर्थ धरिके मौन हो गये, जैसे कमलकी पंक्ति कमलकी खानिविषे स्थित होवै, तैसे सभाके लोक अरु राजा स्थित भये, अरु स्त्रियां जो झरोखेविषे बैठीथीं, सो तिनके महाविलासकी चंचलता शांत होगई, अरु घटीयन्त्रोंके शब्द जो गृहविषे होते थे, सो भी शांत हो गये, शीशपर चमर करनेवाले भी मूर्तिवत अचल होगये, राजाते आदि लेकरि जो लोग थे, सो कथाके सन्मुख भए कैसी कथा है, विज्ञान वाली है, सबही तिसके विचारविषे मग्न हो गए, रामजी बडे विकासको प्राप्त भए, जैसे प्रातःकालविषे, कमल विकासमान होता है, तैसे तमको त्यागते भये, प्रकाश आनि उदय भया, जैसे सूर्यके उदय हुएते प्रकाश आनि उदय होता है, अरु वसिष्ठजीकी कही जो वाणी थी, तिसकरि राजा दशरथ बहुत प्रसन्नताको प्राप्त भये, जैसे मेघकी वर्षाकरि मोर प्रसन्नताको प्राप्त होता है, तैसे गद्गद होगए, सबके जो मनरूपी चचल वानर थे, सो विष-

यभोगते रहित स्थित भए, मंत्री श्रवण कारिकै स्थित हो रहे, अपने स्वरूपको जानत भए, जैसे चंद्रमाकी कला प्रकाशती है, तैसे आत्मकला प्रकाशती भई, लक्ष्मण अपने लक्ष्यस्वरूपको देखता भया, तीव्र बुद्धिकरिकै वसिष्ठजीके उपदेशको जानता भया, अरु शत्रुघ्न जो शत्रुको दलनहारा था, तिसका चित्त अति आनदकारि पूर्ण भया, जैसे पूर्णमासीका चद्रमा स्थित होता है, तैसे मंत्रियोंके हृदयविषे मित्रता होती भई, मन शीतल हो गया, हृदय प्रफुल्लित होता भया, जैसे सूर्यके उदय हुएते कमल तत्काल विकासमान होता है, अरु और जो मुनि राजा ब्राह्मण स्थित थे, तिनके चित्तरूपी जो रत्न थे, सो स्वच्छ निर्मल हो गए, तव मध्याह्नकालका समय हुआ, तव वाजित्र वजने लगे, वड़े २ शब्द हुए, जैसे प्रलयकालविषे मेघके शब्द होते हैं, तैसे भेरीके शब्द होने लगे, तिनके वड़े शब्दकारि मुनीश्वरोंका शब्द आच्छादित भया, जैसे मेघके शब्दकारि कोकिलाका शब्द छिप जाता है, तव वसिष्ठजी तूष्णीं हो गए, एक मुहूर्त्तपर्यंत शब्द होत रहा, वहुरि तूष्णीं भये, जव घनशब्द शात हुआ, तव मुनीश्वर रामजीप्रति कहत भया ॥ हे रामजी ! जो कछु मुझे आज कहना था, सो कह रहा हौ, वहुरि कल कहौंगा, तव सर्व सभाके लोक अपने स्थानको गए, तव वसिष्ठजीने राजाते लेकरि रामजी आदिको कहा, तुम भी अपने गृहको जावो, तव सर्वने चरणवदना नमस्कार करे, अपर जो नभचारी, वनचारी, जलचारी थे, सो सवको विदा किये, सव अपनेअपने स्थानोंको गये, ब्राह्मणकी सुंदर वाणीको विचारत भए, और अपने अधिकारकी दिनकी क्रियाको करत भए ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठेउपशमप्रकरणे पूर्वदिनवर्णन नाम प्रथम सर्ग ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २

उपदेशानुसारवर्णनम् ।

॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ हे भरद्वाज ! इसप्रकार अपने २ स्थानोंको जायके वड़े २ शूरमे राजपुत्र महासुदर चद्रमाकी नाई जिनकी काति है,

सो अपने २ स्थानोंविषे यथा उचित क्रियाको करत भए, वसिष्ठ, राजा, राघव, मुनि, ब्राह्मण जो थे, सो अपने २ स्थानविषे स्नान आदिक क्रियाको करत भए, तालविषे जो कमल थे, कुमुदिनी उत्पल आदिक थे, तहा स्नान करत भए, गौ, स्वर्ण, अन्न, पृथ्वी, वस्त्र, भोजन, आदिक दानपात्र ब्राह्मणोंको यथायोग्य देते भए, स्वर्णरत्नोंकारि जड़े हुए जो स्थान थे, तिनविषे आइकारि राजा देवताका पूजन करते भए, किसीने विष्णुका, किसीने सदाशिवका, किसीने अग्निका, किसीने सूर्य आदिका पूजन किया, पूजन करिकै पुत्र पौत्र सुहृद् मित्र बांधवसंयुक्त भोजन करते भए, नानाप्रकारके महा उचित भोजन किए, दिनका अर्ध पौर आय रहा, तब अपने सबधियोंसंयुक्त और क्रिया करत भए, जब सांझकालमें सूर्य अस्त भया, तब सायकालकी विधि करत भए, अघमर्षण गायत्री आदिक जाप करत भए, पाठ श्रोत्र अरु पुनरपि मनोहर कथा मुनीश्वरोंकी कहीसुनी। तिसते उपरात रात्रि भई, तब परिचारिका जो स्त्रिया हैं, सो रामजी आदिकोंकी शय्या विछावत भई, तिसकेऊपर विराजत भए, रामजीविना सबोंको रात्रि एक मुहूर्त व्यतीत भई, अरु रामजी स्थित होइकारि वसिष्ठजीके वचनकी जो पंक्ति थी, तिसको विचारत भये, कैसे वचन हैं, जो मधुर अरु उचितरूप हैं, तिनको कैसे चितवत भए, जैसे हस्तीका बालक किसी वनके स्थानमेंते कछु भोजन समेटि लेवै, अरु आयके तिसका स्मरण करै, तैसे विचारत भये, ससार है नाम जिसका, इसविषे भ्रमणेका पात्र कौन है ? अरु नानाप्रकारके जो भूतजात हैं, सो कहाते आते हैं, अरु कहां जाते हैं? अरु मनका स्वरूप क्या है, शांति कैसे होती है, यह माया कहाते उठी है, अरु कैसे निवृत्त होती है, निवृत्त हुए विशेषता क्या होती है, अरु नष्टता किसकी होती हैं, अनंतरूप जो आत्मा विस्तृत है, सो तिसविषे अहंकार होना कैसे है, अरु मनके क्षय होनेविषे मुनीश्वरने क्या कहा है, अरु इंद्रियोंके जीतनेविषे क्या कहा है, आत्माके पानेविषे क्या युक्ति वसिष्ठजीने कही है, जीव, चित्त, अरु माया मनही एकरूप है, विस्ताररूप ससार इननेही रचा है, सो अनतरूप है, तिनहूने संपूर्ण

ससार बांधि छोड़ा है, तिसकारि जीव पड़े दुःख पाते है, जैसे तंदुएने हस्तीको बाधा था, अरु वह कष्ट पाता था, तैसे जीव कष्ट पाते है, तिस दुःखके नाश करनेनिमित्त कौन औषध है, अरु भोगरूपी जो मेघमाला है, तिसविषे मोहित हुई मेरी बुद्धि गलित हो गई है, तिसको मैं किसप्रकार भिन्न करौ ? यह तौ भोगके साथ तन्मय हो गई है, जैसे जल अरु दूधको हंस भिन्न करता है, अरु मुझको भोगोंके त्यागनेकी समर्थता भी नहीं, भोगोंके त्यागनेविना बड़ी आपदा है, अरु तिसके सहारनेको भी समर्थ नहीं, बड़ा आश्चर्य है, हमको बड़ा कष्ट प्राप्त भया है, आत्मपदकी प्राप्ति मनके जीतनेकारि होती है, वेदशास्त्रके कहनेका प्रयोजन भी यही है, अरु गुरुके वचनकारिकै भ्रम नष्ट हो जाता है जैसे बालकको परछाईंविषे वैताल भासता है, तिस भ्रमको जैसे बुद्धिवान् दूर करता है, तैसे मनरूपी भ्रमको गुरु दूर करते हैं, वह कौन समय होवैगा? कि, मैं शांतिको प्राप्त होऊगा, अरु ससारभ्रम नष्ट हो जावैगा, जैसे यौवनवान् स्त्री भर्तारको पायके सुखसों विश्राम करती है, तैसे मेरी बुद्धि आत्माको पायकै कब विश्रामवान् होवैगी, अरु नानाप्रकार संसारके आरभ कब मेरे शांत होवैगे, कब मै आदि अतते रहित पदविषे विश्रांतिवान् होऊंगा, मन मेरा कब पावनरूप होवैगा, मै पूर्णमासीके चद्रमावत् सपूर्ण कलाकारि सम्पन्न कब होऊगा, स्वच्छ शीतल प्रकाशरूप पदविषे कब स्थित होऊगा अरु कब जगत्को देखिकै हँसौगा, कब मलिन कलनाको त्यागिकै आत्मपदविषे स्थित होऊगा, कब मै मनको सकल्पविकल्पते रहित शातरूप देखोगा, जैसे तरगते रहित नदी शांतरूप देखती है, तृष्णारूपी तरगकारि व्याकुल जो ससारसमुद्र है, सो माया जलकारि पूर्ण है, अरु रागदोषरूपी मच्छसयुक्त है, तिसको त्यागिकै मैं वीतज्वर कब होऊंगा, उपशम सिद्ध पदको मै कब पावौगा जो पद बुद्धिवानोंने मूढ़ताको त्यागिकै पाया है, अरु मै कब निर्दोष समदर्शी होऊगा, अज्ञानरूपी ताप मेरा कब नाश होवैगा, जिसकारि सपूर्ण अग मेरे पडे तपते है, सब धातु क्षोभरूप हो गई है, तिसकारि वडा दीर्घ ज्वर हुआ है, ताते कब मेरा चित्त शांतिवान् होवैगा, जैसे वायुविना दी-

पक शांत होता है, वैसा कब भ्रमको त्यागिके प्रकाशवान् होऊगा, अरु मैं कब लीलाकरि इंद्रियोंके दु खको तरि जाऊगा, दुर्गंधरूप देहते मै कब न्यारा होऊगा, अहं त्वं आदिक मिथ्या भ्रम उठा है, तिसको नाशरूप मै कब देखौंगा, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट होता है, अरु जिस पदके आगे इंद्रादिकोंका सुख ऐश्वर्य मदार आदिक वृक्षोंकी सुगंधि अरु नानाप्रकारके भोगजात सो तृणवत् भासते है, सो आत्मसुख हमको कब प्राप्त होवैगा। वीतराग मुनीश्वरने हमको निर्मलदृष्टि ज्ञानकी कही है, तिसको पायके मन विश्रामवान् होता है, अरु यह ससार तौ दुःखरूप है, ॥ हे मन ! तू किस पदको पायके विश्रामवान् भया है, माता पिता पुत्रादिक जो सबंधी है, तिनका पात्र मै बहुरि नहीं होता, इनका पात्र भोगी होता है, हे बुद्धि ! तू मेरी भगिनी है,तौ मेरा शीघ्रही अर्थ भ्रातृवत् पूर्ण कर,जो तुम हम दोनों दु खते मुक्त होवें, मुनीश्वरके वचनोंको विचारिकै हमारी आपदा नाश होवैगी अरु परमपदको प्राप्त होवेंगे तुझको शाति होवैगी ॥ हे मेरी बुद्धि ! तू ज्योंका त्यों स्मरण कर कि वसिष्टजीने क्या कहा है, प्रथम तौ वैराग्य कहा है, तिसके अनतर मोक्षव्यवहार कहा है, बहुरि उत्पत्तिप्रकरण कहा है कि, ससारकी उत्पत्ति इस क्रमकरि हुई है, बहुरि स्थितिप्रकरण कहा है, कि ईश्वरकरि जगत्की स्थिति है, तिसका नानाप्रकारके दृष्टांतोंकरि निरूपण किया है, अरु जेते प्रकरण कहे है; सो ज्ञानविज्ञानसयुक्त है ॥ हे बुद्धि ! जिसप्रकार वसिष्ठजीने कहा है, तैसे तू स्मरण कर कि, अनेकवार विचार कर जो बुद्धिविषे निश्चय न होवै तौ वह किया भी निष्फल होवै जैसे शरत्कालका मेघ वडा घन भी दृष्ट आता है, परतु वर्षाते रहितनिष्फल होता है, तैसे बुद्धिविषे अनुसधानते रहित किया, विचार निष्फल होता है, जो बुद्धिविषे अनुसंधान करिये, सो विचार सफल होता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उपदेशानुसारवर्णनं नाम द्वितीय सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३.

सभास्थानवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच ॥ हे भारद्वाज ! जब इसप्रकार वडे उदार आत्मा रामजी चित्तसयुक्त रात्रिको व्यतीत करत भए, जैसे सूर्यकी कक्षा कमलते रात्रि वितावत है, तैसे रामजी वितावते भए, कछु तमसंयुक्त तारागण आनि रहे, अरु दिशा भासने लगी अरु प्रात•कालके नगारे नोवत बाजने लगे, तव रामजी उठे, जैसे कमलोंकी खानिते कमल उठै, तैसे रामजी उठिकारि भ्रांतिसयुक्त प्रात कालके संध्यादिक कर्म करत भए, वहुरि कछुक मनुष्यसंयुक्त वसिष्ठजीके आश्रममें आये,वसिष्ठजी एकांत समाधिविषे स्थित थे, आत्मपरायण आत्माविषे एकाग्रभूत है चित्त जिनका ऐसे वसिष्ट मुनिको दूरते देखि, रामजी नमस्कारसहित चरणवंदना करत भए प्रणामकारि वसिष्ठजीके सन्मुख हस्त वाधिके ठाड़े भए, जब दिशाका तम नष्ट भया, तव राजा अरु राजपुत्र ऋषि, ब्राह्मण, सब वसिष्ठजीके आश्रमविषे आवत भए, जैसे ब्रह्मलोकविषे देवता आवै तैसे ॥ तव वसिष्ठजीका आश्रम जनोंकारि पूर्ण हो गया, हस्ती घोड़े रथ प्यादा चार प्रकारकी सेना राजा इनकारि स्थान शोभित भया, तव तत्काल वसिष्ठजी समाधिते उतरे, सर्व लोक प्रणाम करत भए, तव तिन सबनको प्रणाम, आचारपूर्वक यथायोग्य ग्रहण करत भये, वहुरि उठे, विश्वामित्रको सग लेकारि सवसों आगे हो चले, वाहर निकसकारि रथपर आरूढ़ भये, जैसे कमलज ब्रह्मा पद्मविषे वैठें, तैसे रथपर वैठिकारि दशरथके गृहको चले, अरु वड़ी सेना संग वेष्टित है, जैसे ब्रह्माजी देवतोंसे वेष्टित इंद्रपुरीको आते हैं, तैसे वसिष्ठजी दशरथके गृह आवत भए, जो विस्तृत रमणीय सभा थी, तिसविषे प्रवेश करत भए, जैसे हंसवेष्टित राजहस कमलोंविषे जाइ प्रवेश करें, तव राजा दशरथ जो वड़े सिंहासनपर वैठे थे, सो तिसते उठिकारि आगे आय, चरणवंदना कारि नम्रभूत होइकारि चरण चूंवे अरु वसिष्ठजी सर्वके अग्र होइकारि शोभते भए, वसिष्ठजीते आदि लेकारि मुनि ऋषि ब्राह्मण आए, अरु दशरथते लेकारि राजा, सर्व मंत्री, वंदीगण, रामजीते

आदि लेकरि राजपुत्र, मंडलेश्वर, जगत्के अधिष्ठाता अरु मालव आदिक सर्व भृत्य टहलुए आए, सब अपने यथायोग्य आसनपर बैठि गए, सबकी दृष्टि वसिष्ठजीके ओर भई, बंदीजन जो भाट है, सो स्तुति करते थे, सर्व लोक शब्द करते थे, सो बोलनेते रहित हो गए, तब सूर्य उदय हुआ, किरणोंने झुककरि झरोखेके मार्गांतर प्रवेश किया, तब कमल खिलि आए, पुष्पकरि स्थान पूर्ण हो गए, तिनकी महासुगंधि पसरी, अरु झरोखेविषे स्त्रियां आय स्थित भई, अरु सो अपनी चंचलताको त्यागिकरि मौन हो बैठीं, चमर करनेहारी मौन होइकरि शीशपर चमर करत भई, अरु वसिष्ठजीकी जो महासुंदर वाणी कोमल मधुर है, तिसको स्मरण करि आपसमें आश्चर्यवान् होवें, तब दिशाते पर आकाशते राजर्षि आए, सिद्ध विद्याधर अरु मुनि आए, वसिष्ठजीको प्रणाम करत भए, अरु गंभीरतासों मुखते बोले नहीं, अरु प्रणाम करिकै यथायोग्य आसनपर बैठगए, पुष्पकी सुगंधि चली, अगरचंदनादिकी धूप जलाईगई, सभाविषे बडी सुगंधि पसर रही, भँवरे शब्द करते फिरें कमलोंको देखि प्रसन्न होवें, रत्नमणि भूषण जो राजाने अरु राजपुत्रोंने पहरे हैं, तिसपर सूर्यकी किरणें पडें, ताते बडा प्रकाश चंदोराविषे करें ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सभास्थानवर्णनं नाम तृतीय सर्ग ॥ ३ ॥

चतुर्थ सर्ग ४

राघवप्रश्नवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच ॥ मेघ जैसे बडे गंभीर वचन बोधसहित सुंदर पद हैं जिनविषे, ऐसे प्रमाणवचन राजा दशरथ मुनिनविषे श्रेष्ठ वसिष्ठजीको कहत भया ॥ दशरथ उवाच ॥ हे भगवन् ! कालका जो दिन व्यतीत भया है, तिसविषे तुमने हमको कहा था, तिसके श्रमते रहित हो क्यों ? तुम्हारा शरीर तप्तताकरि अतिकृश जैसा हो गया है, इसनिमित्त तुमसे कते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! तुम आनंदवचन जो कहे हैं, सो प्रगटरूप है, तु-

म्हारे वचनरूपी अमृतकी वर्षा है, तिसकरि हम आनदवान भए है, तुम्हारे निर्मल वचनकरि हमारे हृदयका तम दूर भया है, शीतलचित्त भये हैं, जैसे चद्रमाकी किरणोंकरि तम अरु तप्तता दोनों निवृत्त होते हैं, तैसे तुम्हारे वचनोंकरि हम अज्ञानरूपी तम अरु तप्ततातें रहित भये हैं, तुम्हारे वचन अमृतवत् अपूर्व रस आनद देते हैं, ज्यों ज्यों ग्रहण करिये, त्यों त्यों विशेष रस आनद आता है, शोकरूपी तप्तताको दूर करनेहारे हैं, अमृतकी वर्षारूप हैं, अरु आत्मारूपी रत्न है, तिसको दिखानेहारे परमार्थरूप दीपक है, ऐसे आनंदको देनेहारे तुम्हारे वचन हैं, सो संतजनरूपी वृक्षकी यह वेलि है, दुरिच्छा अरु दुष्ट आचरण नानाप्रकारके जो नीच है तिसके नाश करनेहारे वचन है, जैसे तुमको दूर करनेको अरु शीतलता करनेको शांतरूप चद्रमा है, तैसे संतजनरूपी चंद्रमा है, तिनके वचनरूपी किरणोंकरि अज्ञानरूपी तप्तता नाश होती है ॥ हे मुनीश्वर! तृष्णा अरु लोभादिक जो विकार हैं, सो तुम्हारी वाणीकरि नष्ट हो गये हैं, जैसे शरत्कालका पवन मेघको नष्ट करता है, तैसे तुम्हारे वचनकरि हम निष्पाप भए, है, आत्मदर्शनके निमित्त प्रवर्त्तते हैं, अरु तुमने हमको परम अंजन दिया है, तिसकरि हम सचक्षु भए है, जैसे जन्मका अंधा सचक्षु होके नेत्रकरिकै पदार्थोंको देखे, तैसे हम सचक्षु हुए हैं, अरु ससाररूपी कुहिड निवृत्त हुई है, जैसे शरत्कालविषे कुहिड नष्ट हो जाती है, अरु जैसे कल्पवृक्षकी लता अरु अमृतका स्नान आनद देता है, तैसे उदारबुद्धिकी वाणी आनददायक होती है ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ ऐसे वसिष्ठजीको कहकरि रामजीकी ओर मुख करते भए, अरु कहा ॥ दशरथ उवाच ॥ हे राघव! जो, जो काल सतोंकी सगतिकरि व्यतीत होता है, सो सो दिन, सो सो काल, सफल होता है अरु जो जो दिन सत्सगबिना व्यतीत होता है, सो वृथा होता है ॥ हे कमलनयन रामजी! बहुरि तुम वसिष्ठजीको जगावहु, अर्थ यह कि कछु पूँछहु जो बहुरि उपदेश करें, यह हमारे कल्याणविषे स्थित हैं, अर्थ यह जो हमारा कल्याण चाहते है ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ जब इसप्रकार राजा दशरथने कहा, तब रामजीकी ओर मुख करिकै उदार आत्मा वसिष्ठजी भगवान् बोलत भये

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव ! अपने कुलरूपी आकाशके चंद्रमा, मैं जो वचन कहे थे, सो तुमको स्मरण आते हैं क्या ? अरु तिन वाक्योंका अर्थ स्मरणविषे है क्या ? पूर्व अरु अपरका विचार कछु किया है क्या ? हे महाबोधवान् महाबाहो ! अज्ञानरूपी शत्रुके नाशकर्त्ता, सात्त्विक राजस तामस गुणोंके भेदकी उत्पत्ति विचित्ररूप है, सो मैंने कही है, सो तुम्हारे चित्तमें है क्यों ? सर्व भी वही है, असर्व भी वही है, सत्य भी वही है, असत्य भी वही है, सदा शांत अद्वैतरूप है, यह परमात्मा देवका विस्तृतरूप स्मरण है क्या ? जिसप्रकार विश्व ईश्वरते उदय हुआ है, सो स्मरण है क्या ? यह जो देववाणी है, तिसका पात्र शुद्ध चित्त है, अशुद्ध नहीं ॥ हे सत्यबुद्धि रामजी ! अविद्या जो विस्तृतरूप भासती है, तिसका रूप स्मरण है क्या ? अर्थते शून्य क्षणभंगुररूप है, सम्यक् दर्शनते रहित निर्जीव है, यह जो लवणके विचारद्वारा मैं प्रतिपादन किया है, सो भलीभांति स्मरण है क्या ? वाक्योंका समूह मैंने तुझको कहा है, तिनोंको रात्रिविषे विचारिकरि हृदयविषे धारे है क्या ? जब वारंवार विचारता है,अरु तात्पर्य हृदयविषे धारता है, तब बड़ा फल प्राप्त होता है अरु जो अवज्ञा करिकै अर्थका विस्मरण करता है, तौ फलको नहीं पाता ॥ हे रामजी ! तुम तौ इन वचनोंके पात्र हौ, यह जो वचन परम उदार हैं, सो तिसके हृदयविषे फलीभूत होता है, जैसे उत्तम बाँसनिषे मोती फलीभूत होते हैं, अपरनिषे नहीं उपजते, तैसे जो विवेकी उदार आत्मचित्त पुरुष है, तिनके हृदयविषे यह वचन फलीभूत होता है ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब कमलासन ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजीने कहा, तब महाओजवान् गंभीर रामजी अवकाश पाइकै बोलत भया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्मोंके वेत्ता,जो तुम परम उदार वचन कहे हैं, तिनकरि मैं बोधवान् भया हौं, अरु जैसे तुम अब कहते हौ, तैसेही सत्य है अन्यथा नहीं ॥ हे भगवन् ! मैं रात्रिको निद्राते रहित भया था, तुम्हारे वाक्यके विचारविषे रात्रि व्यतीत करीहै, तुम तौ हृदयके अज्ञान-रूपी तमको नाशकर्त्ता पूर्वापर सूर्यरूप विचरते हौ ॥ हे भगवन् ! तुम

जो व्यतीत दिनविषे आनंददायक प्रकाशरूपी वचन कहे थे, सो मै सर्व अपने हृदयविषे भली प्रकार धरे हैं, सो तुम्हारे वचन कैसे हैं, रमणीय अरु पवित्र हैं, अरु नानाप्रकारके विचित्र हैं, जैसे समुद्रते नानाप्रकारके रत्न निकसते है, तैसे तुम्हारे वचन कल्याणकर्ता हैं अरु बोधवान्है अर्थ यह कि सर्वके सहायक हैं, अरु हृदयंगम आनंदका कारण है, वह कौन है, जो तुम्हारी आज्ञाको शिरपर न धरै, मुमुक्षु जीव हैं, सब तुम्हारी आज्ञाको शीशपर धरते हैं, अपने कल्याणके निमित्त जानते ह ॥ हे मुनीश्वर ! तुम्हारे वचनकरिकै मेरे सशय निवृत्त भए हैं, जैसे शरत्कालविषे मेघ कुहिड नष्ट हो जाती है, अरु निर्मल आकाश भासता है, तैसे तुम्हारी कृपाकरि मैं सशयते रहित निमलचित्त भया हौं, यह संसार आपातरमणीय होइ भासता है, जबलग पदार्थोंका अभाव नहीं होता, तबलग सुखदायक भासता है, अरु जब विषयपदार्थ इंद्रियोंते दूर होते है, तब दु·खदायक हो जाता है, अरु तुम्हारे वचन कैसे है, जिनके आदि अन्त भी कछु नहीं, सुगम मधुर आरंभ है, अरु मध्यविषे सौभाग्य मधुर वचन हैं, अर्थ यह कि कल्याणकर्ता है, वह पाछेते अनुत्तम पदको प्राप्त करते है, जिसके समान अपर पद कोई नहीं सो अनुत्तम पदको प्राप्त करते है, यह तुम्हारे पुण्यरूप वचनका फल है, अरु तुम्हारे वचनरूपी पुष्प सदा कमलसमान खिले हुहैं निर्मलआनदको देनेहारे हैं, अरु उदित फूल है, तिसका फल हमको प्राप्त होवैगा, सर्व शास्त्रोंविषे जो पुण्यरूपी जल है तिसका यह समुद्र है, अब मै निष्पाप हुआ हौं, मुझको उपदेश करहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राघवप्रश्नवर्णन नाम चतुर्थ सर्ग· ॥ ४ ॥

पचम· सर्गः ५

प्रथमोपदेशवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे सुदरमूर्ति रामजी ! यह उत्तम सिद्धांत जो उपशमप्रकरण है, सो श्रवण कर तेरे कल्याणनिमित्त मैं कहता हौं यह ससार

महादीर्घरूप है,इसको राजसी अरु तामसी जीव धर रहे है, जैसे दृढ़ स्तंभके आश्रय गृह होता है, तैसे राजसी जीवोंका आश्रय संसार मायारूप है, अरु जो तुमसारिखे सात्त्विकविषे स्थित हैं, सोशूरमें हैं वैराग्य विवेक आदिक गुणकरि संपन्न है,सो लीलाकरिकै यत्नविना ससारमायाको त्यागि देते है, जो बुद्धिमान् सात्त्विक जागे हुए पुरुष है, अरु राजस और सात्त्विक हैं, सो भी उत्तम पुरुष है, वह पुरुष जगत्के पूर्व अपूर्वको विचारते है, संतजन अरु सच्छास्त्रोंका सग करते है, तिनके कहे आचारपूर्वक विचरते हैं, तिसकरि ईश्वर जो परमात्मा है, तिसको देखनेकी बुद्धि उपजती है, और दीपकवत् ज्ञानप्रकाश उपजता है ॥ हे रामजी । जबलग अपने विचारकरिकै अपना स्वरूप नहीं पहँचानता, तबलग वह ज्ञान प्राप्त नहीं होता, जो उत्तम कुल निष्पाप सात्त्विक राजसी जीव हैं, तिनको विचार उपजता है, तिस विचारकरि अपने आपसों आपको पाता है, सो दीर्घदर्शी है, ससारके जो नानाप्रकाके आरंभ हैं, तिनको विचारता है, अरु विचारद्वारा आत्मपदको पाता है, परमानद सुखविषे प्राप्त होता है, ताते तुम इसी संसारको विचारहु, कि सत्य क्या है अरु असत्य क्या है, ऐसे विचारकरि असत्का त्याग करहु, अरु सत्यका आश्रय करहु, जो पदार्थ आदिविषे न होवे, अरु अतविषे न रहे, सो मध्यविषे भी असत्य जानिये, जो आदिअंत एक रस है, तिसको सत्य जानिये, तिसते इतर कछु नहीं, जो आदिअतविषे नाशरूप है, तिसविषे जिसको प्रीति है, अरु तिसके रागकरि रंजित है, सो मूढ पशु है, तिसको विवेकका रग नहीं लगता, मनही उपजता है, मनही बढता है, सम्यक् ज्ञानके उदय हुएते मन निर्वाण हो जाता है, मनरूप ससार है, अरु आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण । जो कछु तुम कहते हो, सो मैने जाना है, जो यह संसार सर्वभावनाविषे मनरूप है, जरा मरण आदिक विकारका पात्र भी मनही है, तिसके तरनेका उपाय निश्चयकरि तुम कहो, जिसकरि इसको तरिजाओं हम सब रघुवंशियोंके कुलका अज्ञानरूपी तम हृदयसों दूर करनेको तुम ज्ञानके सूर्य हो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी !

प्रथम तौ इस जीवको यह कर्तव्य है कि जो विचारपूर्वक वैराग्य कहा है, कि सतजनोंका संग अरु सच्छास्त्रोंकरि मनको निर्मल करना सो जब मनको निर्मल करैगा, तब स्वजनता जो आर्जव तिसकरि सपन्न होवैगा, बहुरि इसको वैराग्य आनि उपजैगा, जब वैराग्य प्राप्त हुआ, तब ज्ञानवान् जो गुरु है, तिनके निकट जावैगा, जब वे उपदेश करैगे, तब ध्यान अर्चनादिकके क्रमकरि परमपदको प्राप्त होवैगा, जब इसको निर्मल विचार आनि उपजताहै, तब यह अपने आपको आपकरि देखता है, जैसे पूर्णमासीका चद्रमा अपने विवको आपकरि देखता है, तैसे यह देखता है जबलग विचाररूपी तटका आश्रय नहीं लिया, तबलग संसार विषे तृणवत् भ्रमता है, विचारकरिकै वस्तु ज्योंकी त्यों जानता है, तब सब दुःख मनते नष्ट हो जाते है, जैसे सोमजलके नीचे रेत जाइ रहती है, तैसे आधि (पीडा) उसकी रहिजाती है, बहुरि उत्पन्न नहीं होती जैसे स्वर्ण अरु राख मिली हुई है, तबलग सोनार सशयविषे रहता है, जब स्वर्ण अरु राख भिन्न होवै, तब सशयरहित स्वर्णको प्रत्यक्ष देखता है, तब निःसंशय होता है, तैसे अज्ञानकरिके जीवोंको मोह उत्पन्न भया है, देह इद्रियकेसाथ मिला हुआ सशयविषे रहता है, जब विचारकरि भिन्न भिन्न जानै तब मोह नष्ट हो जावै, और तब सशयते रहित शुद्ध अविनाशीरूप आत्माको देखता है, विचार कियेते मोहका अवसर नहीं रहता। जैसे अज्ञात पुरुष चितामणिकी कीमतको जानि नहीं सकता जब उसको ज्ञान प्राप्त भया, तब ज्योंका त्यों जानता है, तब मोह संशय निवृत्त हो जाता है, तैसे जीव जबलग आत्मतत्त्वको नहीं जानता तबलग दुःखका भोगी होता है, अरु जब ज्योंका त्यों जानता है, तब शुद्ध शांतिको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! देहके सगकरि मिश्रित भासता है, वास्तवते कछु मिश्रित नहीं भया, ताते अपने स्वरूपविषे शीघ्रही स्थित होहु, निर्मलस्वरूप जो आत्मा है, तिसको रचकमात्र भी देहसे संबंध नहीं तैसे स्वर्ण कीचकीविषे मिश्रित भासता है, तौ भी स्वर्णको कीचका लेप कछु नहीं लगता, निर्लेप रहता है, तैसे जीवको देहकेसाथ सवध कछु नहीं, निर्लेपही रहता है, आत्मा भिन्नहै, देह भिन्नहै,

जैसे जल अरु कमल भिन्न रहते हैं, मै ऊँची भुजा कारिकै पुकारता हौं, मेरा कहा कोऊ नहीं मानता, संकल्पते रहित होना परमकल्याण है, यही भावना अंतरमें क्यों नहीं करते ? जबलग जड़धर्म है॥ अर्थ यह कि, विषयभोगोंविषे आस्था करता है, अरु आत्मतत्त्वते शून्य रहता है, तबलग मूढ टोए जैसा रहता है, जबलग स्वरूपका प्रमाद है, तबलग इसके हृदयसों संसारका तम और किसी प्रकार दूर नहीं होता, चंद्रमा उदय होवै अग्निका समूह होवै, द्वादश सूर्य इकट्ठे उदय होवें, तौ भी हृदयका तम रंचक मात्र भी दूर नहीं होता अरु जब स्वरूपको जानिकरि आत्माविषे स्थित होवै, तब हृदयका तम नष्ट हो जावैगा, जैसे सूर्यके उदय हुएते जगत्का अंधकार नष्ट होता है, तैसे जबलग आत्मपदका बोध नहीं, अरु भोगोंविषे तद्रूप मन है, तबलग संसारसमुद्रविषे बहा करैगा, अरु दुःखका अंत न आवैगा। जैसे आकाशविषे धूलि भासती है, परंतु आकाशको धूलिका संबंध कछु नहीं, जैसे जलविषे कमल भासता है, परंतु जलसे स्पर्श नहीं करता, सदा निर्लेप रहता है, तैसे आत्मा देहकेसाथ मिश्रित भासता है, परंतु देहके साथ आत्माका कछु स्पर्श नहीं, सदा विलक्षण रहता है, जैसे स्वर्ण कीचमकते अलेप रहता है, देह जड़ है, आत्मा तिसते भिन्न है, सुखदुःखका अभिमान आत्माविषे भासता है, सो भ्रममात्र असत्यरूप है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा असत्यरूप है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है सो असत्यरूप है, तैसे आत्माविषे सुखदुःखादि असत्यरूप है, सुखदुःख देहको होता है, सर्वते अतीत जो आत्मा है, तिसविषे सुखदुःखका अभाव है, यह अज्ञानकरिकै कल्पित है, अरु देहके नाश हुएते आत्माका नाश नहीं होता, ताते सुखदुःख आत्माविषे कोई नहीं, न किसीको कछु सुख है, न किसीको कछु दुःख है, सर्व आत्ममय शांतरूप है, अरु यह जो विस्तृतरूप जगत् दृष्टि आता है, सो मायामय है, जैसे जलविषे तरंग अरु आकाशविषे तरवर भासते हैं, तैसे आत्माविषे यत्न भासता है, सो आत्माही है, न एक है, न दो है, सर्व आभासमात्र है, मिथ्या दृष्ट आकार भासता है, जैसा मणिका प्रकाश मणिते भिन्न नहीं, अरु अपनी छाया दृष्ट आती है,

तैसे आत्माका प्रकाशरूप जगत् भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, मैं और हौं, यह जगत और है, इस भ्रमको त्याग करहु, विस्तृतरूप जो ब्रह्म घनसत्ता है, तिसाविषे और कल्पना कोई नहीं, जैसे जलविषे तरंग कछु इतर वस्तु नही, जलरूपही हैं, तैसे सर्वरूप आत्माहै, सो एकरूपहै, तिसविषे द्वितीय कल्पना कोई नहीं जैसे अग्निविषे वर्फके कणके नहीं होते, तैसे ब्रह्मविषे दूसरी वस्तु कछु नहीं, ताते अपने आप स्वरूपकी आपही भावना करो कि, मैं चिन्मात्ररूप हौं; जगज्जाल सर्व मेराही स्वरूप है, मैंही विस्तृतरूप हो, जो कछु है,सो देवही है, न शोक है,मोह है न जन्म है, न देह है; ऐसे जानिकै विगतज्वर होहु, अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, तुम्हारी स्थिर बुद्धि है, तुम शांतरूप श्रेष्ठ मणिवत निर्मल होहु, ऐसे जानिकै विगतज्वर होहु ॥ हे राघव । तुम निर्द्वंद्व होहु, नित्य स्वरूपविषे स्थित निर्योगक्षेम आत्मवान् विशोक होइकरि स्थित होहु सत्य संकल्प धैर्यवान् यथाप्राप्तविषे वर्तते विगतज्वर होहु, तुम वीतराग, निर्यंत्र निर्मल वीतकल्मप होहु, न देवोहो, न लेवेहो ग्रहणत्यागते रहित शांतरूप होहु, विश्वते अतीत जो पद है, तिसको प्राप्त होइकरि जो पाने योग्य पद है, तिसको पायकरि परिपूर्ण समुद्रवत् अक्षोभरूप संतापते रहित विचरौ. हे रामजी ! संकल्पजालते मुक्त मायामलते रहित अपने आपकरि तृप्त विगतज्वर होहु, आत्मवेत्ताका शरीर अनत है, आदिअंतते रहित पर्वतके शिखरवत विगतज्वर होहु ॥ हे रामजी ! तुम अपने आपकरि उदार होहु, अरु अपने आपकरि आनंदकारि आनदी होहु, जैसे समुद्र आनंदकरि आनदवान् है, अथवा जैसे पूर्णमासीका चद्रमा अपने अपने आनंदकरि आनंदवान् है, तैसे तुम आनदवान् होहु, यह जो प्रपंचरचना भासती है, सो असत्य है, जो ज्ञानवान् हैं, सो असत्य जानिकरि इसकी ओर नहीं धावते, तुम तौ ज्ञानवान् हौ, असत्य कल्पना त्यागिकरि दुःखते रहित होहु, नित्य उदित शांतरूप शुभ गुणसंयुक्त उपदेशद्वारा चक्रवर्ती होइकरि तुम पृथ्वीका राज्य करो, अरु प्रजाकी पालना करो, समदृष्टिसों विचरो, बाह्य शुभ चेष्टा यथाशास्त्र करो, अरु राज्यकी मर्यादा करनी अंतर निर्लेप रहना, तुमको न त्यागते कछु प्रजोजन है, न ग्रहणते

प्रयोजन है, ग्रहणत्यागविषे समबुद्धि समभावकरि राज्य करहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रथमोपदेशो नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६.

क्रमोपदेशवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व कार्यको करता हुआ हृदयते वासना नष्ट भई है, वह पुरुष कार्यविषे वर्त्तता है तौ भी मुक्त है, हमारे मतविषे इसको बंधनका कारण वासना है, जिसकी वासना क्षय हुई है, सो मुक्तस्वरूप है, अरु जिसकी वासना पदार्थोंविषे सत्य है, सो बंधमें है, कोई पुरुष अपने पुरुषार्थको आश्रयकरि कर्तव्य भी करते हैं प्रीतिकरिकै प्रवर्त्तते हैं, सो अपनी वासनाकरिकै स्वर्गको प्राप्त होते हैं, बहुरि स्वर्गको त्यागिकरि दुःख नरक भुगतते हैं, सो अपनी वासनाकरि बांधे-हुए पशु आदिक स्थावर योनिको प्राप्त होते हैं, अरु कोई आत्मवेत्ता पुण्यपुरुष है, सो मनकी दशाको विचारते हैं, अरु तृष्णारूपी बंधनको काटिकरि निर्मल आत्मपदको प्राप्त होते हैं, अरु कोई पुरुष पूर्व जन्मको भोगिकरि इस जन्मविषे मुक्त हुए हैं, सो राजस सात्त्विकी होते हैं, जिनका यह जन्म अंतका होता है, सो क्रमकरिकै परिपूर्ण पदको प्राप्त होते हैं जैसे शुक्लपक्षका चंद्रमा क्रमकरिकै पूर्णमासीका होता है, अरु सर्वकालकरि पूर्ण होता है, जैसे वर्षाकालविषे कटकवृक्षकी मंजरी बढि जाती है, तैसे सौभाग्यलक्ष्मी तिनकी बढती जाती है ॥ हे रामजी ! जिनका यह जन्म अंतका होता है, तिसविषे निर्मल गुण जो वेदने कहे हैं, सो आय प्रवेश करते हैं, जैसे उत्तम बांसविषे मोती उपजता है, तैसे राजसी सात्त्विकीविषे शुभ गुण उपजते हैं, मैत्री, सौम्यता, मुक्तता, ज्ञातव्यता, आर्यता यह गुण प्रवेश करते हैं, सर्व जीवोंपर दया करनी सो मैत्री, अरु हृदयविषे सदा समताभाव, अंतःकरणविषे क्षोभ कोऊ न उठे, सो मुक्तता, अरु सदा प्रसन्न रहना सो सौम्यता, यथाशास्त्र आचार करना इसका नाम आर्यता है, ज्ञानका नाम ज्ञातव्यता है, जैसे राजाके अंतःपुरविषे श्रेष्ठ अंगना आय प्रवेश करती है, तैसे जिनके अंतका यही जन्म है, सो

राजससात्त्विकी है, तिसके हृदयविषे मैत्री आदिक सर्व गुण आय प्रवेश करते हैं, ऐसा पुरुष सर्व कार्यको करता है, परंतु तिसके हृदयविषे लाभ अलाभका रागदोष नहीं होता, सर्वकाल समभाव रहता है, तोषवान् होता है, न शोकवान् होता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते तम नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मभावकरि रागदोष नष्ट हो जाते हैं, सर्व गुण सिद्धताको प्राप्त होते हैं, जैसे शरत्कालका आकाश शुद्ध होता है, तैसे कोमल सुंदर होता है, अरु मधुर तिसका आचार होता है, सर्व जीव तिसके आचारकी वांछा करते हैं, अरु तिसको देखिकै मोहित हो जाते हैं, जैसे सुंदर बाँसुरीकी ध्वनिकरि मृग मोहित होताहै,तैसे उसको देखिकै विस्मय होतेहैं, जैसे मेघकी ध्वनिकरि बगले आय प्रवेश करते हैं, तैसे उस पुरुषविषे सब गुण प्रवेश करते हैं, गुणोंसे पूर्ण होइकरि गुरुकी शरण जाता है, तब वह विवेकका उपदेश करता है, तिस विवेककरि परमपदविषे स्थित होता है ॥ हे रामजी! जो वैराग्य अरु विचारकरि संपन्नचित्त है, सो आत्मा देवको देखता है, तिसको दुःख स्पर्श नहीं करते यथार्थ एक आत्मरूपको देखता है, तुम विचारका आश्रय करिकै मनको जगाओ, कैसा मन है जिसविषे मनन ही मथन है अर्थ यह कि, जो सदा प्रपंचदृश्यका मननभाव करता है, अरु जो अंतका जन्मवान् पुरुष है, सो मनरूपी मृगको जगावता है, प्रथम तो गुणज्ञानकरि जगावता है,बहुरि बडे गुणनकरि जगावता है, फिर जानिके सेवनेका यत्न करता है, तिसकरि जगावता है, निर्मल बुद्धिसे चित्तरूपी रत्नोको विचार करताहै तिस विचारकरि जगत्को आत्मारूप देखता है, आत्माके प्रकाश विचारसों अविद्यामल नष्ट हो जाता है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे क्रमोपदेशवर्णनं नाम षष्ठ सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमःसर्गः ७.

क्रमसूचनावर्णनम्।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह तुमको क्रम कहा है, सो सब जीवोंको समान है, इसते जो विशेष है, सो तुम श्रवण करहु, इस जग-

त्का जो आरंभ है, तिसविषे जो देहधारी जीव है, तिन जीवोंका दो प्रकारसे मोक्ष होता है,एक उत्तम क्रम है, एक समान है, जो गुरुके निकट जावै, वह इसको उपदेश करै तिस उपदेशके धारणेते शनैःशनै एक जन्मकरि अथवा अनेक जन्मोंकरि सिद्धता प्राप्त होती है। अरु दूसरा क्रम यही है, जो अपने आपकरि वह उत्पन्न होता है, अर्थ यह कि समझ लेता है, जैसे वृक्षते फल गिरै अरु इसको आय प्राप्त होवै, तैसे इसको ज्ञान प्राप्त होता है, इसीपर पूर्वका वृत्तांत मैं तुझको कहता हौं, सो तू श्रवण कर, सो महापुरुषोंका वृत्तांत है, शुभ अशुभ गुणोंके समूह जिनके नष्ट भए हैं, अरु अकस्मात् फल जिनको प्राप्त भया है, तिनका निर्मल क्रम सुन ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे क्रमसूचनावर्णन नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

सिद्धगीतावर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व संपदा जिसकी उदय हुई है, अरु सब आपदा जिसकी नष्ट भई हैं, एक ऐसा उदारबुद्धि विदेह नगरका राजा जनक नाम हुआ, सो बड़ा धैर्यवान् हुआ, जो अर्थी होवैं, तिनका अर्थ कल्पवृक्षकी नाई पूर्ण करै, अरु मित्ररूपी जो कमल हैं, तिनको सूर्यवत् प्रफुल्लित करै, बांधवरूपी पुरुषोंको वसंतऋतु अरु स्त्रियोंको कामदेव, ब्रह्मरूपी जो चंद्रमुखी कमल हैं, तिनको शीतल चंद्रमा, अरु दुष्टरूपी तमका नाशकर्त्ता सूर्य, स्वजनरूपी रत्नोंका समुद्र, पृथ्वीविषे मानो विष्णु सूर्य आय स्थित भये हैं। ऐसा राजा जनक एक समय लीलाकरिकै अपने बागको गमन करता भया, कैसा बाग है, मधुरता-करिकै प्रफुल्लित भए हैं फल जिसके, कोकिला शब्द करती हैं, नानाप्र-कारकी सुंदर वल्ली हैं, तिस सुंदर बागविषे राजा जनक प्रवेश करता भया, जैसे नंदनवनविषे इंद्र प्रवेश करै, सुंदर वन पुष्पकारि सुगंधि पसर रही है, तहां राजाके संग जो अनुचर थे, तिनको दूरते त्यागिकरि आप

राजससात्त्विकी है, तिसके हृदयविषे मैत्री आदिक सर्व गुण आय प्रवेश करते हैं, ऐसा पुरुष सर्व कार्यको करता है, परंतु तिसके हृदयविषे लाभ अलाभका रागदोष नहीं होता, सर्वकाल समभाव रहता है, तोषवान् होता है, न शोकवान् होता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते तम नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मभावकरि रागदोष नष्ट हो जाते हैं, सर्व गुण सिद्धताको प्राप्त होते हैं, जैसे शरत्कालका आकाश शुद्ध होता है, तैसे कोमल सुंदर होता है, अरु मधुर तिसका आचार होता है, सर्व जीव तिसके आचारकी वांछा करते हैं, अरु तिसको देखिकै मोहित हो जाते हैं, जैसे सुंदर बाँसुरीकी ध्वनिकरि मृग मोहित होताहै,तैसे उसको देखिकै विस्मय होतेहैं, जैसे मेघकी ध्वनिकरि बगले आय प्रवेश करते हैं, तैसे उस पुरुषविषे सब गुण प्रवेश करते हैं, गुणोंसे पूर्ण होइकरि गुरुकी शरण जाता है, तब वह विवेकका उपदेश करता है, तिस विवेककरि परमपदविषे स्थित होता है ॥ हे रामजी ! जो वैराग्य अरु विचारकरि संपन्नचित्त है, सो आत्मा देवको देखता है, तिसको दुःख स्पर्श नहीं करते यथार्थ एक आत्मरूपको देखता है; तुम विचारका आश्रय करिकै मनको जगाओ; कैसा मन है जिसविषे मनन ही मथन है अर्थ यह कि, जो सदा प्रपंचदृश्यका मननभाव करता है, अरु जो अंतका जन्मवान् पुरुष है, सो मनरूपी मृगको जगावता है, प्रथम तो गुणज्ञानकरि जगावता है,बहुरि बडे गुणनकरि जगावता है, फिर जानिके सेवनेका यत्न करता है, तिसकरि जगावता है; निर्मल बुद्धिसे चित्तरूपी रत्नोंको विचार करताहै तिस विचारकरि जगतको आत्मारूप देखता है, आत्माके प्रकाश विचारसों अविद्यामल नष्ट हो जाता है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे क्रमोपदेशवर्णन नाम षष्ठ सर्ग ॥ ६ ॥

सप्तम सर्ग ७

क्रमसूचनावर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह तुमको क्रम कहा है, सो सब जीवोंको समान है, इसते जो विशेष है, सो तुम श्रवण करहु, इस जग-

त्का जो आरंभ है, तिसविषे जो देहधारी जीव हैं, तिन जीवोंका दो प्रकारसे मोक्ष होता है,एक उत्तम क्रम है, एक समान है, जो गुरुके निकट जावै, वह इसको उपदेश करै तिस उपदेशके धारणेते शनैःशनैः एक जन्मकरि अथवा अनेक जन्मोंकरि सिद्धता प्राप्त होती है। अरु दूसरा क्रम यही है, जो अपने आपकरि वह उत्पन्न होता है, अर्थ यह कि समझ लेता है, जैसे वृक्षते फल गिरै अरु इसको आय प्राप्त होवै, तैसे इसको ज्ञान प्राप्त होता है, इसीपर पूर्वका वृत्तांत मैं तुझको कहता हौं, सो तू श्रवण कर, सो महापुरुषोंका वृत्तांत है, शुभ अशुभ गुणोंके समूह जिनके नष्ट भए हैं, अरु अकस्मात् फल जिनको प्राप्त भया है, तिनका निर्मल क्रम सुन ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे क्रमसूचनावर्णन नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

सिद्धगीतावर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व संपदा जिसकी उदय हुई है, अरु सब आपदा जिसकी नष्ट भई हैं, एक ऐसा उदारबुद्धि विदेह नगरका राजा जनक नाम हुआ, सो बड़ा धैर्यवान् हुआ, जो अर्थी होवै, तिनका अर्थ कल्पवृक्षकी नाईं पूर्ण करै, अरु मित्ररूपी जो कमल हैं, तिनको सूर्यवत् प्रफुल्लित करै, बांधवरूपी पुरुषोंको वसंतऋतु अरु स्त्रियोंको कामदेव, ब्रह्मरूपी जो चंद्रमुखी कमल हैं, तिनको शीतल चंद्रमा, अरु दुष्टरूपी तमका नाशकर्त्ता सूर्य, स्वजनरूपी रत्नोंका समुद्र, पृथ्वीविषे मानो विष्णु मूर्त आय स्थित भये हैं। ऐसा राजा जनक एक समय लीलाकरिकै अपने बागको गमन करता भया, कैसा बाग है, मधुरताकरिकै प्रफुल्लित भए हैं फल जिनके, कोकिला शब्द करती हैं, नानाप्रकारकी सुंदर वल्ली हैं, तिस सुंदर बागविषे राजा जनक प्रवेश करता भया, जैसे नंदनवनविषे इंद्र प्रवेश करै, सुंदर वन पुष्पकरि सुगंधि पसर रही है, तहां राजाके संग जो अनुचर थे, तिनको दूरते त्यागिकरि आप

एकलाही कुंजोंविषे विचरने लगा, एक शाल्मलीनामक वृक्ष था, तहांते शब्द श्रवण किया, जो अदृष्ट सिद्ध है, सो गीता गाता है, विरक्तचित्त अरु नित्य पर्वतोंविषे विचरनेवाला कमलवत् नेत्र जिसके, सो आत्मगीताको उच्चार करता है, जिसकरि आत्मबोध प्राप्त होता है, तिस गीताको राजा श्रवण करते भए ॥ प्रथमसिद्ध उवाच ॥ यह द्रष्टा जो पुरुष है, अरु दृश्य जो जगत् है, तिस द्रष्टा अरु दृश्यके मिलापविषे जो बुद्धिमें निश्चित आनंद होता है, सो इष्टके संयोगका अरु अनिष्टके वियोगका जो आनंद है, सो चित्तविषे दृढ होता है, सो आनंद आत्मतत्त्वते उदय होता है, स्पदरूप जिस आत्मा आनंदते लव उठता है, तिसकी हम उपासना करते हैं ॥ द्वितीयसिद्ध उवाच ॥ द्रष्टा, दर्शन, अरु दृश्य इनको वासनासहित त्याग कर, जो दर्शनते प्रथम प्रकाशरूप है, जिसके प्रकाशकरि यह तीनों प्रकाशते है, तिस आत्माकी हम उपासना करते हैं ॥ तृतीयसिद्ध उवाच ॥ जो निराभास निर्मलरूप है, अरु आभास अरु मननके भावका अभाव है, जिसविषे द्वितीय कल्पनाका अभाव है, अद्वैतरूप है, तिसकी हम उपासना करते हैं ॥ चतुर्थसिद्ध उवाच ॥ दोनोंकि जो मध्यविषे है, अस्ति नास्ति दोनोंके पक्षोंते रहित प्रकाशरूप सत्ता है, सब सूर्य आदिकको भी प्रकाशता है, तिस आत्माकी हम उपासना करते हे ॥ पचमसिद्ध उवाच ॥ जो ईश्वर सकार हकार भया है, अर्थ यह कि सकार जिसके आदिविषे और हकार है जिसके अंतविषे, ऐसे सोह है, सो अतते रहित आनंद अनत जो शिव परमात्मा है, सो अनंत आत्मा सर्व जीवके हृदयविषे निरतर जो अहंरूप होइकरि उच्चार होता है, तिस आत्माकी हम उपासना करते है ॥ षष्ठसिद्ध उवाच ॥ हृदयविषे स्थित जो ईश्वर है, तिसको त्यागिकरि जो और ठौर देवके पानेका यत्न करते हैं, सो पुरुष हस्तविषे कौस्तुभमणिको त्यागिकरि और रत्नोंकी वांछा करते हैं ॥ सप्तमसिद्ध उवाच ॥ जब सर्व आशाको त्यागता है, तब इसको फल प्राप्त होता है, जो आशारूपी विषकी वल्ली है, सो मूलसयुक्त नष्ट हो जाती है, अर्थ यहकि, जो जन्म अरु मरण आदिक दुःख नष्ट हो जाते हैं,

बहुरि नहीं उपजते, जो पदार्थोंको अत्यंत विरसरूप जानते हैं, अरु बहुरि उसविषे आशा बांधते है, सो दुर्बुद्धि गर्दभ है, मनुष्य नहीं, जहां जहां विषयोंकी ओर दृष्टि उठती है, तिनको विवेककरि नष्ट करहु, जैसे इंद्रने वज्रसे पर्वतोंको नष्ट किया था, तैसे नष्ट करहु, जब इस प्रकार शुद्ध आचरण करेगा, तब समभावको प्राप्त होवैगा, तिसकरि मन आत्मपदरूप उपशमको प्राप्त होवैगा, उपशमको और अक्षय अविनाशी पदको पावैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सिद्धगीतावर्णनं नाम अष्टम सर्गः ॥ ८ ॥

नवमःसर्गः ९

जनकविकारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार सिद्धोंकी गीता महीपति सुनिकरि जैसे संग्रामविषे कायर विषादको प्राप्त होता है, तैसे विषादको प्राप्त भया, बहुरि सेनासयुक्त अपने गृहविषे आया, टहलुए भृत्य सर्व लोक किनारेविषे स्थनोंपर ठाढे हो रहे, तिनको त्यागिकरि ऊपर चौखडी झरोखोंमें जाय स्थित भया, जैसे तटके वृक्षोंको नदीका प्रवाह स्पर्श करता है तैसे तिनके मार्गको स्पर्शकरता ऊपर जाय बैठा एक मंदिरके ऊपर जाय स्थित भया, जैसे सूर्य उदयाचल पर्वतपर चढता है, तैसे चढिकरि संसारकी चंचल गतिको इधर उधर देखने लगा, अरु विलाप करने लगा, बडा कष्ट है, कि मैं भी ससारविषे लोकोंकी जो चंचल दिशा है, तासों आस्था बांध रहा हौं, यह तौ जीव सर्व जडरूप हैं, चेतन कोई नहीं, जैसे अपर जीव पाषाणरूप हैं, तैसे मैं भी तिनविषे पाषाण हो रहा हौं, काल जो है, सो अंततें रहित अनत है, तिसके कछुक अंशविषे मेरा जीना है, तिस जीनेविषे मैं आस्था बांध रहा हौं, सो मुझको धिक्कार है, अरु जो मैं अधम चेतन हौं यह जो केतेक मंत्री मेरे हैं, सो राज्य अरु जीना सर्व क्षणभंगुर है, यह जो सुख है, सो दुःखरूप है, इनतें रहित मैं किसप्रकार स्थित होऊं, जैसे महापुरुष बुद्धिमान

स्थित होते हैं, आदिअंतविषे तुच्छरूप है, अरु मध्यविषे जीवना पेलवरूप है, तिसविषे मैं क्या मिथ्या आस्था बाधी है ? जैसे बालक चित्रके चंद्रमाको देखिकै चंद्रमा मानकरि आस्था बाधै, तैसे यह प्रपंचरचना इंद्रजालकी बाजीवत है, बड़ा कष्ट है कि, तिसविषे मैं क्या मोहित भया हौं, जो वस्तु उचित, रमणीय, उदार अरु अकृत्रिम है, सो इस ससारविषे रंचक भी नहीं, मेरी बुद्धि क्यों नष्ट भई है ? जो पदार्थ दूर होवै, अरु तिसके पानेका मेरे मनविषे यत्न होवै, तौ वह निकटही है, यह निर्णय करौ, अथवा अर्थाकार जो ससारके पदार्थ हैं, तिनकी आस्था मैं त्यागता हौं, यह जो लोक है, सो सब आगमापायी हैं, उदय होते हैं, अरु मिट जाते हैं, जलके तरंगोंवत् सब पदार्थ क्षणभगुर हैं, जेते कछु सुख दृष्टि आते हैं, सो दु खसाथ मिश्रित हैं, तिनविषे मैं क्या आस्था बांधी है, सुख कदाचित् दिन पक्ष मास वर्षादिककरि आते हैं, अरु दु ख बारबार आते हैं, मैं किस सुखकरि जीनेकी आस्था बांधौं, जो बडे बडे हुए हैं, सो नष्ट हो गए हैं, स्थिर किसीका रहना नहीं, बारबार विचार देखता हौं, तिसकरि मैं जाना है कि, इस जगतविषे सत्य पदार्थ कोई नहीं, सब नाशरूप हैं, ऐसा कौन पदार्थ है कि, जिसविषे आस्था बांधौं, जो अब बड़े ऐश्वर्यवान् विराजते हैं, सो केतेक दिन पीछे अधको गिरि पडते हैं ॥ हे चित्त ! बड़ा खेद है, तुझने किस बड़ाईविषे आस्था बाधी है, जो आयुबलकरि मैं बांधा हुआ किसविना कलकित भया हौं, ऊंचे पदविषे स्थित भी मैं, अधको गिरा हौं, बड़ा कष्ट है कि, मैं आत्मा हौं अरु नाशको प्राप्त भया हौं, किस कारणकरि अकस्मात् मुझको मोह आया है, मेरी बुद्धिको इसने उपहत कीनी है, जैसे सूर्य आगे मेघ आता है, अरु सूर्य नहीं भासता, तैसे आत्मा नहीं भासता, भोगोंमे मेरा क्या है, अरु बांधवोंमे मेरा क्या है, इनविषे मैं क्यों मोहित भया हौं ? जैसे बालक परछाईविषे भयको पाता है, तैसे देहअभिमानकरि यह पुरुष आपही कंपायमान होता है, देहविषे अहंकार जरामरणादिक विकारका कारण होता है, ताते इनसे मेरा क्या प्रयोजन है, इन अर्थोंकी बड़ाई राज्यविषे मैं क्यों धैर्य धार बैठा हौं, यह सब पदार्थ क्षोभका का-

रण है, यह ज्योंके त्यों रहते हैं, इनविषे न मुझको ममता है, न संग है, यह सर्व असत्यरूप है, संसारके सुख विषरूप है, इसविषे आस्था करनी मिथ्या है, जो बड़े बड़े ऐश्वर्यवान् हुए हैं, बड़े पराक्रमी गुणवान् हुए हैं, सो सब परिवारसंयुक्त मृत्युको प्राप्त भये हैं, तौ वर्त्तमानविषे क्या धैर्य करना है, कहां वह धन अरु राज्य कहा उस ब्रह्माका जगत कई पुरुषनकी पंक्ति बीत गई हैं, हमको तिनविषे क्या विश्वास है, देवताके नायक अनेक इंद्र नष्ट हो गये हैं, जैसे जलविषे बुद्बुदे उपजिकरि नष्ट हो जाते हैं, तौ मैं क्यों इस संसारविषे आस्था बांधकरि जीवौं? संतजन मुझको हँसैंगे, कई ब्रह्मा हो गए हैं, कई पर्वत हो गए हैं, कई धूलिकी कणिकावत् राजा हो गए हैं, तौ मुझको इस जीवनेविषे क्या धैर्य है, संसाररूपी रात्रि है, तिसविषे देहरूपी शून्यदृष्टि स्वप्न है, तिस भ्रमरूपविषे जो आस्था बांधी है ताते मुझको धिक्कार है, यह सो अरु मैं, इत्यादिक भ्रम आत्माविषे मिथ्या कल्पना उठी है, अज्ञानियोंकी नाईं मैं स्थित भया हौं; अहंकाररूपी पिशाचकरिकै क्षणक्षणविषे आयुबल व्यतीत होता है, देखते हुए भी नहीं दीखता, कालकी सूक्ष्म गति है, कैसा काल है, जो सबको चरणके नीचे धरे है, सदाशिव अरु विष्णुको जिसने खेलनेका गेंद किया है, ऐसा काल जो सबको भोजन करि जाता है, सो मुझको जीनेविषे क्या आस्था बांधनी है, जेते कछु पदार्थ हैं, सो निरंतर नाश होते हैं, कोइ दिन कोई ते पक्ष वर्षकरि नाश हो जाता है अरु जो अविनाशी वस्तु है, सो अबलग नहीं देखी, वर्ष व्यतीत हो गये हैं; जीवोंकी जो चित्तरूपी नदी है, तिसविषे भोगोंके तृष्णारूपी तरंग उछलते हैं, शांत कदाचित् नहीं होते, जैसे वायुकरि नदीविषे तरंग उछलते हैं, सो ममताते रहित हो जाते हैं तैसे जिनको चित्तविषे भोगोंकी अभिलाषा है, तिनको अतुच्छ पद दृष्टि नहीं आते, कष्टते कष्टको प्राप्त होते हैं, दुःखते दुःखांतरको प्राप्त होते हैं, अबलग हैं विरक्तताको प्राप्त नहीं भया; ताते मुझको धिक्कार है, अरु नीच है अंतःकरण जिसका ताते जिस जिस वस्तुविषे कल्याणरूप जानिकै आस्था बांधी है, सो सो नष्ट होती दीखती है, यह क्या उत्तमता है कि, जिसविषे

में अस्था बाधी है, सो यह शरीर कैसा है, अस्थिमांसकरि बना है, आदि अंतसंयुक्त इसका आकार है, मध्याविषे कछुक रमणीय भासता है, परंतु सब अपवित्र पदार्थोंकरि रचा है विनाशरूप है, स्पर्श करनेको भी योग्य नहीं तिसकेसाथ मुझको क्या प्रयोजन है, जिस जिस पदार्थकेसाथ लोक आस्था बांधते हैं, तिसतिसविषे मैं दुःखही देखता हौं, अरु यह जीव ऐसे जडमूढ हैं कि, सदा इसविषे लगे रहते हैं, कल्ह यह पदार्थ मुझको प्राप्त होवैगा, अगले दिन यह प्राप्त होवैगा, दिन दिन पाप करते हैं, दिनदिनविषे खेदको पाते हैं, तौ भी त्याग नहीं करते, ऐसे मूढ हैं, बालक अग्निविषे पूर्ण मूढताकरि विचरते हैं, यौवन अवस्था कामादि विकारकरि मिश्रित है, शेष जो वृद्धावस्था है, तिसविषे चित्तकरि दुःखी होता है, यह जड मूर्ख परमार्थ कार्यको किस कालविषे साधैगा, यह जगत् ये पदार्थ सब आगमापायी विरस हैं, विषम दिशाकरि दूषित हैं अर्थ यह कि, एक भावमें नहीं रहते, सर्वजगत असाररूप है, सत्य बुद्धिते रहित असत्यरूप है, सार पदार्थ इसविषे कोई नहीं, राजसूय अरु अश्वमेध आदि जो यज्ञ करते हैं, तब महाकल्पके किसी अंश कालमें स्वर्गको पाते हैं, अधिक तौ नहीं भोगते, जो अश्वमेध यज्ञ करता है, सो इंद्र होता है, जो एक दिन ब्रह्माका होता है, तिसविषे चतुर्दश इंद्र राज्य भोगिकरि नष्ट हो जाते हैं, जब सहस्र चौकडी युगोंकी व्यतीत होती हैं, तब ब्रह्माका एक दिन होता है, ऐसे तीस दिनोंका एक मास, द्वादश मासका एक वर्ष, ऐसे सौ वर्ष ब्रह्माकी आयुर्बल है, तिस आयुर्बलको भोगिकरि ब्रह्मा अंतर्द्धान हो जाताहै, तिसका नाम महाप्रलय है, तिस महाप्रलयके अंतविषे इसने स्वर्गभोग किया, तौ असार सुखकी क्या आस्था योग्य है, ऐसा सुख ऊर्ध्व स्वर्गमें कोई नहीं, न पृथ्वीविषे है, न पातालविषे है, जो सुख आपदा दुःखके संग मिश्रित न होवै, ऐसा कहा है? सर्व लोक आपदासंयुक्त है, अरु सब दुःखोंका मूल चित्त है, सो शरीररूपी पुरविषे सर्पवत रहता है, आधि व्याधि बडे दुःखरूपी विषको देता है, यह किसी प्रकार निवृत्त होवै, तब सुखी होवै, इनकरि जीव नीच प्राकृत हो रहे हैं, कोऊ विरला साधु है,

जिसके हृदयविषे चित्तरूपी सर्प भोगोंकी तृष्णारूप विषसंयुक्त नहीं होता, सो तौ दुर्लभ है, ये जगत्के पदार्थ कैसे हैं कि, जो सत्यता है, तिसके मस्तकपर असत्यता है, जो रमणीय भासताहै, तिसके मस्तकपर अरमणीयता स्थित है, जो सुखरूप है, तिसके मस्तकपर दुःख स्थित है, किसी एकको मैं आश्रय करौं, तौ दुःखसाथ है, मिश्रित दुःख वो दुःखसाथ मिश्रित क्या कहिये, आपही दुःख है, जो सुख संपदा है, सो दुःख आपदासंघ मिश्रित है, बहुरि मैं किसका आश्रय करौं ? यह जीव जन्मते है, अरु मरते हैं, तिनविषे कोई विरला दुःखते रहित है, जो सुंदर स्त्रियां है, नील कमलवत् जिनके नेत्र हैं, परम हास्य विलास आदिक भूषणों-करिके सयुक्त हैं, तिनको देखिके मुझको हँसी आती है कि, यह तौ अस्थिमांसकी पुतली है, क्षणमात्र इनकी स्थिति है, जिन पुरुषोंके निमेष खोलनेकारि जगत् होता है, अरु उन्मेष मूँदनेकारि जगतका अभाव हो जाता है, निमेष अरु उन्मेष जिनकारि जगत् उत्पन्न प्रलय होता है, इसप्रकार जिनको भासता है, ऐसे भी नष्ट हुए हैं, तौ हमसा-रिखेकी क्या गिनती है ? जो पदार्थ बड़े रमणीय भासते हैं, सो अस्थि-तरूप औ अरमणीय हो जाते हैं, नाश हो जाते हैं, तिन पदार्थोंकी चिंता करनी अरु इच्छा करनी क्या है, नानाप्रकारकी संपदा प्राप्त होती हैं, यह जगत् क्या है, अरु उनविषे जब चित्तको कोऊ आय लगता है, तब सर्व सपदा आपदारूप हो जाती है, अरु जो बड़ी आपदा आय प्राप्त होती है, अरु इनके चित्तविषे क्षोभ नहीं होता, शांतरूप है, तब वह आपदा संपदारूप है,तौ सिद्ध क्या भया ! यही सिद्ध भया कि, सर्व मनके फुरनेमात्र है, मनकी वृत्ति क्षणभगुररूप अकस्मात् जगत्की इनकी स्थित भई है, अज्ञानकरिके अहं सो इद कल्पना करी है, तिस-विषे त्याग अरु ग्रहणकी भावना मिथ्या है, अरु क्षीणरूप जो संसार है तिसमें सुख है, सो आदिअंतसंयुक्त है, तिसविषे सुख तौ कछु नहीं, अरु जो सुख जानकर इनकी ओर धावता है, सो सुख बहुरि नष्ट हो जाता है जैसे पतग दीपकशिखाको सुखरूप जानिकरि इसकी ओर धावता है, तो दग्ध हो जाता है, तैसे संसारके सुख ग्रहण करनेहारे तृष्णाकरि दग्ध

हुए हैं जैसे नरकका अग्नि दग्ध करता है, सो भी श्रेष्ठ है, परंतु क्षणभंगुर जो ससारके सुख हैं, सो नीच है, नष्ट हुए भी दुःख दे जाते हैं, दु खकी सीमा है, अर्थ यह कि, भोगोंकी तृष्णाते अधिक दु.ख अपर कोई नहीं, जो इस ससारसमुद्रविषे गिरते हैं, सो सुखको नहीं पाते, ससारविषे दु ख स्वाभाविक है; अरु सुख दुःखकेसाथ मिश्रित है, मैं भी अज्ञानीकी नाईं काष्ठलोष्ठकी नाईं स्थित हो रहा हौं, बड़ा खेद है, अज्ञानीवत् शमादिक सुखको त्यागिकरि क्षणभंगुर संसारके सुखके निमित्त यत्न करता हौं, जैसे बर्फते अग्नि नहीं उपजता, तैसे संसारते सुख नहीं उपजता, जेते कछु जीव हैं, सो जडधर्मात्मक हैं, ससाररूपी एक वृक्ष है, सहस्र तिसके अंकुर शाखा पत्र फल फूल हैं, तिनकरि पूर्ण है, तिस संसाररूपी वृक्षका मूल मन है, तिसके संकल्परूपी जलकरि विस्तारको प्राप्त भया है, संकल्पके उपशम हुएते नष्ट हो जाता है, ताते जिसप्रकार यह नष्ट होवै, सोई उपाय करौंगा, ससारकेविषे भोग देखनेमात्र सुंदर भासता है, अतरते दुःखरूप है, अरु मन जो है, सो मर्कटवत चचलरूप है; तिसकरि यह रचना रची है, जबलग वस्तुते इसको जाना नहीं,तबलग चचलहै,जब विचार करि जानताहै,तब पदार्थोंकी रमणीयतासहित मनका अभाव हो जाताहै,ताते मैं नाशरूप पदार्थोंविषे नहीं रमता। ससारकी वृत्ति कैसी है, अनेक फासियोंसों मिश्रित है, तिसविषे गिरते हैं, बहुरि उछलते हैं, शांत कदाचित् नहीं होते, ऐसी ससारकी वृत्तिको मैं चिरकालपर्यंत भोगीहै, अब मैं भोगते रहित होइकरि ब्रह्मही होता हौं, इस संसारविषे वारंवार जन्म मरण होता है, शोकही प्राप्त होता है, अब ससारकी वृत्तिते रहितहुआ शोकते रहित होता हौं, अब मैं प्रबुद्ध भया हौं, अरु हर्षवान् भया हौं, मैं अपने चोर आपही देखे हैं, मन है नाम जिसका, इसीको मारौंगा, इस मनने मुझको चिरपर्यंत मारा है, अरु एते कालपर्यंत मेरा मनरूपी जो मोती था, सो अवेध रहा था, अब मैंने इसको वेधा है, अर्थ यह कि, आत्मविचारते रहित था, अब तिसको आत्मविचारविषे जोडा है, आत्मज्ञानके योग्य है, मनरूपी एक बर्फका कण था, सो जडताको प्राप्त भया था, अब विवेकरूपी सूर्यकरि गलि गया है, अब मैं अगाध

शांतिको प्राप्त भया हौं, अनेक प्रकारके वचनोंकरि साधुरूप जो सिद्ध थे तिनने मुझको जगाया है, मैं आत्मपदको प्राप्त भया हौं, परमानंदकरिकै अब मैं चिंतामणि आत्मरूपीको पायकरि एकांत सुखी होऊंगा, अरु स्थित होऊंगा जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे होऊंगा, मनरूपी जो शत्रु है, तिसने मुझको भ्रम दिखाया था, सो अब विवेककरि नाश किया है, उपशमको प्राप्त भया हौं॥ हे विवेक ! तुझको नमस्कार है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जनकविचारो नाम नवमः सर्गः॥ ९॥

दशमः सर्गः १०.

जनकनिश्चयवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिंतवता था, तब दासी राजाके निकट आई, जैसे सूर्यके आगे अरुण आय स्थित होता है, तैसे प्रतीहारी जो दासी है, सो कहत भई॥ हे देव ! अब उठो, ठाढे होहु, दिनका जो उचित विचार है स्नान आदिक सो करो, स्नानशालाविषे पुष्प अरु केसर गंगाजल आदिकी गागर लेकरि स्त्रियां ठाढी हो रही हैं, कमलपुष्प पडे हैं, तिनपर भँवरे फिरते हैं, छत्र चमर पडे हैं, स्नानका समय है॥ हे देव ! पूजनके निमित्त सर्व सामग्री आई है, रत्न औषधि ले आए हैं, हाथोंविषे पवित्री डारकरि ब्राह्मण बैठे हैं, स्नान करिकै अघमर्षण जाप कर रहे हैं, तुम्हारे आगमनकी ओर देखते हैं, हाथोंविषे चमर लेकरि सुंदर कांता तुम्हारे सेवनेनिमित्त खडी हैं, अरु भोजनशालाविषे भोजन सिद्ध होरहा है, ताते शीघ्र उठो, जो कार्य है सो करो, जैसा काल होता है,तिसके अनुसार कर्म बडे पुरुष करते हैं, इनका त्याग नहीं करते, ताते उठो, कालको व्यतीत न करो॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार दासीने कहा, तब राजा चिंतवत भया कि, संसारकी विचित्र जो स्थिति है, सो कितनेक मात्र है, राज्यसुखमे मुझको कछु प्रयोजन नहीं, यह क्षणभंगुर है, इस मिथ्या आडंबर संपूर्णको त्यागिकै मैं एकांत जाय बैठता हौं, जैसे समुद्र तरंगोंते रहित शांतरूप होता है, तैसे शांतरूप होऊंगा,

यह जो नानाप्रकारके राजभोग हैं, अरु क्रिया कर्म हैं, तिनते अब मैं तृप्त भया हौं, सर्व कर्मोंको त्यागिकरि केवल सुखविषे स्थित जो होऊंगा, मेरा चित्त जो भोगोंकरि चंचल था, सो भोग तौ भ्रमरूप हैं, इनविषे शांति नहीं होती, तृष्णा बढ़ती जाती है, जैसे जलकेऊपर सेवाल बढती जाती है, अरु जलको आच्छादि लेती है, तैसे तृष्णा आच्छादि लेती है, अब मैं इसको त्याग करता हौं ॥ हे चित्त ! तू जिस जिस दिशाविषे गिरा है, अरु जो जो भोग भोगे हैं, सो सब मिथ्या हैं, तृप्ति तौ किसीविषे न भई, ताते भ्रमरूप भोगोंते उपरत होऊंगा, तब परम सुखी होऊंगा, बहुत उचित अनुचित भोग बारंबार भोगे हैं, परंतु तृप्ति किसीकरिकै न भई, ताते हे चित्त ! इनको त्यागिकरि परमपदके आश्रय होहु, जैसे बालक एकको त्यागिकरि दूसरेको अंगीकार करता है, तैसे यत्नविना तू भी कर, जब इन तुच्छ भोगोंको त्यागैगा, अरु परमपदको आश्रय करेगा, तब आनंदी तृप्तिको प्राप्त होवैगा, तिसको पायकरि बहुरि संसारी न होवैगा ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिंतन कर जनक तूष्णीं हो रहा, मनकी चपलताको त्यागिकरि सोम आकारकरि स्थित भया, जैसे मूर्ति लिखी होती है, तैसे हो गया, अरु प्रतीहारी भी भयमान हो करि बहुरि कछु न कह सकी कि, कदाचित् राजा अप्रसन्न होवै, तिसके अनंतर मनकी ममतानिमित्त बहुरि राजा चिंतवत भया कि, मुझको ग्रहण अरु त्याग करने योग्य यत्नकरिकै कछु नहीं, किसको मैं साधौं, किस वस्तुविषे मैं धैर्य धारौं, सर्व पदार्थ नाशरूप हैं, मुझको करनेसाथ क्या प्रयोजन है, अरु अकरनेकरि क्या हानि है, ग्रहण त्याग किसका करौं, जो कछु कर्तव्य है, सो शरीर करता है, निर्मल अचलरूप चेतन है, सो न करता है, न भुगतता है ताते मुझको कर्तव्य कछु नहीं ! जो त्याग करौंगा, तो शरीर करणेते रहित होवैगा, अरु जो करौंगा, तौ भी शरीर करेगा, मुझको क्या प्रयोजन है, ताते करने अकरनेविषे मुझको लाभ हानि है, कछु नहीं, ताते जो कछु प्राप्त भया है प्रवाह, तिसविषे विचरता हौं, अप्राप्त प्राप्त मैं वांछा नहीं करता, अरु प्राप्तका मैं त्याग नहीं करता, अप

स्वरूपविषे स्थित होइकरि स्वस्थ होऊंगा, जो कछु प्राप्त कर्म हैं, सोई करता हो, न कछु मुझको करनेविषे अर्थ है, न अकरनेविषे दोष है, जो क्रिया होवै सो होवै, करौ अथवा न करौं, युक्त होवै, अथवा अयुक्त होवै, मुझको ग्रहण त्याग करनेयोग्य कछु नहीं, ताते जो कछु प्राप्त करने योग्य कर्म है, सोई करौ, कर्मका करना शरीर प्रकृतिकरि होता है, आत्माको तौ कर्तव्य कछु नहीं, ताते मैं इनविषे नि संग हो रहौंगा, जो निस्पद चेष्टा होवै, तौ क्या सिद्ध भया, अरु क्या किया, जो मन कामनाते रहित स्थित विगतज्वर भया, अर्थ यह कि, हृदयविषे राग दोष मलिनता न उपजी तौ देहकरि कर्म होवै, तौ भी इष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्तिविषे तुलना रहैगी, जो देहसाथ मिलिकरि मन कर्म करता है, तब कर्ता भोक्ता है, इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे रागदोषवान् होता है, जब मनका मनन उपशम हुआ, तब कर्तव्यविषे भी अकर्तव्य है, जैसा निश्चय अंतर दृढ होता है, सोई रूप पुरुषका होता है, जिसके हृदयविषे अहकृति नहीं, अरु बाह्य कर्म चेष्टा करता है, तौ भी उसने किया कछु नहीं अरु जिसके हृदयविषे अहकृति अभिमान है, सो बाह्य अकर्ता भासता है, तौ भी अनेक कर्म करता है, ताते जैसा निश्चय अंतरमें दृढ होता है, तैसा ही फल पुरुषको प्राप्त होता है, जो बाह्य कर्त्ता भी है, परन्तु अतरकर्तव्यका अभिमान नहीं, तौ वह धैर्यवान् पुरुष अनामयपदको प्राप्त होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जनकनिश्चयवर्णनं नाम दशम सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्ग ११.

चित्तानुशासनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चितवना करिकै यथाप्राप्त जो क्रिया है तिनके करनेको उठि खड़ा हुआ, जो इष्ट अनिष्टकी वासना है, सो चित्तते त्यागन भया, अरु यथाप्राप्तविषे करता हुआ, जाग्रतविषे सुषुप्तिकी नाई जैसे सुषुप्ति पुरुषरूप होता है, तैसे वह जाग्रतविषे हो रहा, अरु दिनको तिनके आचारको करत भया, यथाशास्त्र क्रियाविषे दिनको

विचरै, अरु रात्रिको लीलाकरिकै ध्यानविषे स्थित होवे, मनको समरस करत भया, जब रात्रि क्षीण भई, तब इसप्रकार चित्तको बोध करत भया॥ हे चंचलरूप चित्त! परमानंदस्वरूप जो आत्मा है सो तुझको सुखदायक नहीं भासता। जो यह मिथ्या संसारसुखकी इच्छा करता है। जब तेरी इच्छा शांत हो जावैगी तब तू सारसुख आत्मपदको प्राप्त होवैगा, ज्यों ज्यों तू संकल्प लीलाकरि उठावता है, त्यों त्यों संसार जाल विस्तार हो जाती है, इस दुःखरूप संसारसे तुझको क्या प्रयोजन है॥ हे मूर्ख चित्त! ज्यों ज्यों संकल्प इच्छा करता है, त्यों त्यों संसारका दुःख बढ़ता जाता है, जैसे जल सींचनेकरि वृक्षकी शाखा बढती है, तैसे संसारसुखते अधिक दुःख प्राप्त होता है, ऐसे दुःखरूप भोगोंकी इच्छा क्यों करता है? यह संसार चित्तजालते उपजा है, जब तू इसका त्याग करैगा तब दुःख मिटि जावैगा, फुरणेका नाम दुःख है, इसके मिटेते दुःख भी कोई न रहैगा, यह संसार महाचंचल है, देखने मात्र सुंदर है, वास्तवते कछु नहीं जो कछु तुझको इसते सार प्राप्त होवै तब इस का आश्रय कर सो तौ यह क्षणभंगुर है, अरु दुःखकी खान है, ताते इसकी आस्था त्याग अरु आत्मतत्त्वको आश्रय कर शुद्ध निर्मल होइकरि जगत्‌विषे विचरहु, तब तुझको दुःख स्पर्श न करैगा, जगत स्थित होवै अथवा शांत हो जावै; इसके उदय अस्तकी वासनाकरि इसके गुण अवगुणविषे आसक्त मत होहु, जो अविद्यावान असत्यरूप होवै तिसकी आस्था क्या करणी है, यह असत्यरूप है, अरु तू सत्यरूप है, असत्य अरु सत्यका संबंध कैसे होवै, मृतक अरु जीतेका कभी संबंध हुआ है? जो तू कहै चेतनतत्त्व दृश्यरूप है, तौ दोनो सत्यस्वरूप है, तौ सदा विस्मृतरूप आत्मादी हुआ, हर्ष विषाद किसका करता है, ताते तू मूढ मत होहु समुद्रकी नाई अक्षोभरूप अपने आपविषे स्थित होहु, संसारकी भावना त्यागिकरि मान मोहमलको त्याग करहु, संसारकी इच्छा दुःखका कारण है, इसको त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होवै, तब परिपूर्ण पदको प्राप्त होवैगा; ताते यत्नकरि तिसको आश्रय करिके चंचलताको त्याग॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तानुशासनं नाम एकादशः सर्गः॥११॥

द्वादशः सर्गः १२.



प्राज्ञमहिमावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचार करिकै राजा सब कार्यको करता भया, आनंदवृत्तिविषे मन उसका प्रबोधवान् मोहको न प्राप्त भया, इष्टविषे हर्षवान् न होवे, अनिष्टविषे दोषवान् न होवे, केवल सम स्वच्छ अपने स्वरूपविषे स्थित भया, जगत्विषे विचरै, न कछु त्याग करै, न कछु ग्रहण करै, न कछु अंगीकार करै, केवल वीतशोक होइकरि संतापते रहित वर्तमानविषे कार्य करै, वहुरि उसके हृदयविषे कल्पना कोई स्पर्श न करै, जैसे आकाशको धूलिकी मलिनता स्पर्श नहीं करती, तैसे मलिनताते रहित अपने स्वरूपके अनुसंधानते सम्यक् ज्ञान अनंतप्रकाशविषे मन निश्चयताको प्राप्त किया, मनकी जो कोई संकल्पवृत्ति थी, सो नष्ट हो गई, महाप्रकाशरूप चेतन आत्मा अनामय हृदयविषे प्रकाशित भया, जैसे आकाशविषे सूर्य प्रकाशता है, तैसे अनंत आत्मा प्रगट भया, संपूर्ण पदार्थ तिसविषे प्रतिबिंबित देखता है, जैसे शुद्ध मणिविषे प्रतिबिंब भासता है, तैसे सर्व पदार्थ अपने स्वरूपविषे आत्मभूत देखता भया, इंद्रियोंके इष्ट अनिष्ट विषयोंकी प्राप्तिविषे हर्ष खेद मिटि गया, सर्वदा समान होइकरि प्रकृत व्यवहारको करि जीवन्मुक्त होइकरि इसप्रकार राजा जनक विचरत भया ॥ हे रामजी ! जनकको ज्ञानकी दृढता भई, तिसकरिकै लोकोंके परावरको जानिकरि विदेहनगरका राज्य करता भया, जीवोंकी पालनाविषे राजा जनक हर्षविषादको प्राप्त न भया, संतापते रहित हुआ राज्यका कोई अर्थ उदय होवै, अथवा अस्त हो जावै परन्तु हर्षशोकको कदाचित् प्राप्त न होवै, कार्य करता दृष्ट आवै, परंतु हृदयकरि कछु न करै ॥ हे रामजी ! तैसे तुम भी कार्य सब करो, परंतु निरंतर आत्मस्वरूपविषे स्थित रहो, तुम जीवन्मुक्त वपु हौ, राजा जनककी सब पदार्थभावना अस्त हो गई है, सुषुप्तिवत् वृत्ति भई है भविष्यतकीइच्छा नहीं करता व्यतीतको चिंतवता नहीं, जो वर्तमान कार्य प्राप्त होवै तिसको यथाशास्त्र करता है, अपने विचारके वशते कछु पावने योग्य पद था सो पाया

और इच्छा कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जबलग यह आत्मपदको प्राप्त नहीं होता तबलग इसके हृदयविषे अपना पुरुषार्थरूपी विचार नहीं उपजा, जब अपने आपकरि अपना विचाररूप पुरुषार्थ जागे तब सब दुःख मिटि जावे अरु परम संपदाको प्राप्त होवे, ऐसा पद शास्त्र अर्थ अरु पुण्यक्रिया करि नहीं प्राप्त होता, जैसा पद अपने हृदयविषे विचार कियेते प्राप्त होता है, सो पद निर्मल अरु स्वच्छ है, हृदयकी तपतको निवृत्त करता है, बुद्धिके विचाररूपी प्रकाशकरि हृदयका अज्ञान नष्ट हो जाता है और किसी उपायकरि नष्ट नहीं होता, जो बडा आपदारूप दुःख तरनेको कठिन है, सो अपनी बुद्धिकरि तरना सुगम होता है, जैसे जहाजकरि समुद्रको लंघ जाता है, अरु जो बुद्धिते रहित मूर्ख हैं, तिनको थोडी आपदा भी बडे दुःखको देती है, जैसे थोडा पवन भी तृणको बहुत भ्रमावता है, अरु जो बुद्धिवान् हैं, तिनको बडी आपदा भी दुःख नहीं देती, जैसे बडा वायु भी पर्वतको चलाय नहीं सकता इसी कारणते प्रथम चाहिये कि, यह पुरुष संतोका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार करे अरु बुद्धिको बढावे, जब बुद्धि सत्य मार्गकी ओर बढेगी, तब परम बोध इसको प्राप्त होवेगा, जैसे जलके सींचने अरु रखनेकरि फूलसों फल प्राप्त होता है, तैसे जब बुद्धि सत्य मार्गकी ओर धावती है, तब इसको परमानंद प्राप्त होता है, जैसे शुक्लपक्षका चंद्रमा पूर्णमासीकरि प्रकाशको बहुत प्राप्त होता है, जेते कछु जीव संसारके निमित्त यत्न करते हैं, वही यत्न सत्यमार्गकी ओर करें, तौ दुःखते मुक्त होवे, अरु परमसंपदाके भंडारको पावें, संसाररूपी वृक्ष है, तिसका बीज बुद्धिकी मूढता है, ताते मूढताते रहित होना बडा लाभ है, स्वर्ग पातालका राज्य आदिक जो कछु पदार्थोंकी प्राप्ति होती है, सो अपने बोधरूपी भंडारते प्राप्ति होती है; संसाररूपी समुद्र है, तिसके तरनेका अपनी बुद्धिरूपी जहाज है. और तप तीर्थ आदिक शुभ आचार करिके जहाज बढ जाता है, बोधरूप पुष्पलता है, तिसको बढानेको दैवी संपदा जल है, तिसीके बढनेकरि सुंदर फल प्राप्त होता है, जो बोधते रहित बल ऐश्वर्यकरि बडा भी है, तिसको तुच्छविषे नाश करी डारता है, जैसे यत्नते रहित सिंहको गीदड हरण भी जीति लेते हैं, ताते जो कछु प्राप्त होना

इष्ट आता है सो अपने प्रयत्नकरि आता है, अपनी बोधरूपी चिंतामणि हृदयविषे स्थित है, तिसते विवेकरूपी फल पाता है, जैसे कल्प कल्पलताते जो चितवना करिये सोई पाते है, तैसे सर्व फल बोधते पाता है, जैसे जाननेवाला महासमुद्रते पार करता है, अजान नहीं उतर सकता, तैसे सम्यक्बोध संसारसमुद्रते पार करता है असम्यक् बोध जडताविषे डारता है। जो अल्प भी बुद्धि सत्य मार्गकी ओर होतीहै तब वह वडेसंकटको दूर करती है, जैसे छोटी बेडी भी नदीते उतारि देती है॥ हे रामजी ! जो पुरुष बोधवान् है, तिसको संसारके दुःख वेधि नहीं सकते, जैसे लोह आदिक कवच पहिरा होवै, तिसको बाण वेधि नहीं सकते, बुद्धिकरिकै यह पुरुष सर्वात्मपदको प्राप्त होता है, जिस पदके पानेते हर्ष, विषाद, संपदा, आपदा कोई नहीं रहती, अहंकाररूपी मेघ है, सो आत्मारूपी सूर्यके आगे आया है, माया मलिनता जडरूप है, तिसकरि आत्मरूप सूर्य नहीं भासता, बोधरूपी वायुसो जब यह दूर होवै, तब ज्योंका त्यों भासता है, जैसे कृषिकार प्रथम हल आदिककरि पृथ्वीको शुद्ध करता है पाछे बीज बोता है, तब जलसींचता है, अरु नाश करनहारे पदार्थते रक्षा करता है, तब फलको पाता है, जैसे जब आर्जवादि गुणोंकरि बुद्धि निर्मल होती है, बहुरि शास्त्रका उपदेशरूपी बीज मिलता है, अरु अभ्यास वैराग्यकरिकै करता है, तिसकरि परमपदकी प्राप्ति होती है, सो अतुल पद है तिसके समान और कोई नहीं ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्राज्ञमहिमावर्णनं नाम द्वादश सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

मननिर्वाणवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जनककी नाईं अपने आपकरि आपको विचार कर, पाछे जो विदितवेद पुरुषोंमें किया है, तिसी प्रकार तुम भी निर्विघ्न होहु, जो बुद्धिवान् पुरुष है, जिनका यह अंतका जन्म है, सो राजस सात्त्विकी पुरुष आपही परमपदको प्राप्त होते हैं जबलग

अपने आपकरि आत्मदेव प्रसन्न नहीं होवैगा, तबलग इंद्रियांरूपी शत्रुको जीतनेका यत्न करो, जब आत्मदेवप्रसन्न होवैगा, सर्वगत जो परमात्मा ईश्वरोंका ईश्वर है सो आपही स्वयंप्रकाश दीखता है, अरु सर्व दोषदृष्टि क्षीण हो जाती है, मोहरूपी बीजकी जो मुष्टि भरिभरि बोता था, सो नानाप्रकारकी आपदारूप वर्षाकरि महामोहकी बेली होती हैं, अरु दृष्ट आती हैं, सो सब नष्ट हो जाती हैं जब परमात्माका साक्षात्कार होता है, तब भ्रांति दृष्टि नहीं आती ॥ हे रामजी ! तुम सदा बोधकरि आत्मपदविषे स्थित होहु अरु जनकवत् कार्योंका आरंभ करो, ब्रह्मलक्षवान् होइकरि जगत्‌विषे विचरो तब तुमको खेद कछु न होवैगा, जब नित्य आत्मविचार होता है, तब परमदेव आपही प्रसन्न होता है, तिसके साक्षात्कार हुएते चचलरूप संसारी जनको देखिकरि जनककी नाईं हँसैगा ॥ हे रामजी ! ससारके भयकरि जो जीव भयभीत हुए हैं, तिसते रक्षा करनेको अपनाही पुरुषप्रयत्न है, और दैवकरिकै अथवा कर्मकरिकै धन बांधवकरिकै रक्षा नहीं होती, जो पुरुष दैवको निश्चय करिकै रहे हैं, अरु शास्त्रविरुद्ध आप कर्म करते हैं, संकल्पविकल्पविषे तत्पर होते हैं, सो मध्यबुद्धि हैं, तिसके मार्गकी ओर तुम नहीं गमन करना, उसकी ओर बुद्धि नाश होतीहै, तुम परम विवेकको आश्रय करो, अरु अपने आपको आपकरि देखो, वैराग्यवान् शुद्धबुद्धिकरिकै ससारसमुद्रको तरि जाता है, यह मैंने तुझको जनकका वृत्तांत कहा है, जैसे आकाशते फल गिर पडै तैसे उसको सिद्धोंके विचारकरि ज्ञानकी प्राप्ति भई, यह विचार ज्ञानरूपी वृक्षकी मंजरी है, जैसे अपने विचार करिकै राजा जनकको आत्मबोध हुआ है, तैसे तुमको भी प्राप्त होवैगा, जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यको देखिकरि प्रसन्न होता है, तैसे इस विचारकरि हृदय प्रफुल्लित हो आवैगा, मनका जो मननभाव है, सो शांत हो जावैगा, जैसे बर्फका कणका सूर्यकरि तप्त हो गलि जाता है, अरु अहत्व आदिक रात्रि विचाररूपी सूर्यकरिकै क्षीण हो जावैगी, तब परमात्माका प्रकाश साक्षात् होवैगा, अरु भेदकल्पना नष्ट हो जावैगी, अनंत ब्रह्मांडविषे जो व्यापक आत्मतत्त्व है, सो प्रकाशि आवैगा, जैसे अपने

विचारकरि जनकने अहकार वासनाका त्याग किया है, तैसे तुम भी विचार करिकै अहकार वासनाका त्याग करौ, अहंकाररूपी मेघ जब नष्ट होवैगा, अरु चित्ताकाश निर्मल होवैगा, तब आत्मरूपी सूर्य प्रकाशैगा, जबलग अहकाररूपी मेघ आवरणहै, तबलग आत्मरूपी सूर्य नहीं भासता, विचार रूपी वायुकरि जब अहकाररूपी मेघ नाश हो जावै, तब प्रगट भासैगा ॥ हे रामजी ! ऐसे धार जो न मैं हौं, न कोऊ और है, न नास्ति है, न अस्ति है, जब ऐसी भावना दृढ होवैगी, तब मन शात हो जावैगा, हेयोपादेय-बुद्धि जो इष्ट पदार्थोंविषे होती है, तिसविषे न डूबैगा, इष्ट अनिष्टके ग्रह-णत्यागविषे भावना होती है, यह मनका रूप है, अरु यही बधनका कारण है, इसते इतर बधन कोऊ नहीं, ताते तुम इंद्रियोंके इष्टअनिष्ट-विषे हेयोपादेयबुद्धि मत करौ, दोनोंके त्यागेते जो शेष रहै, तिसविषे स्थित होहु, इष्ट अनिष्टकी भावना तिसकी जाती है, जिसको हेयोपादेय-बुद्धि नहीं होती, जबलग हेयोपादेयबुद्धि क्षीण नहीं होती, तबलग समताभाव नहीं उपजता, जैसे मेघके नष्ट हुएविना चद्रमाकी चांदनी नहीं भासती, तैसे जबलग पदार्थोंविषे इष्टअनिष्टबुद्धि है, औ मन लोलुप होता है, तबलग समता उदय नहीं होती; जबलग युक्त अयुक्त लाभ अलाभ इच्छा नहीं मिटती, तबलग शुद्ध समता अरु निर-मता नहीं उपजती, एक जो ब्रह्मतत्त्व निरामयरूप नानात्वते रहित है, तिसविषे युक्त क्या अरु अयुक्त क्या ? जबलग इच्छा अनिच्छा वाछित अवाछित यह दोनों बात स्थित है, अर्थ यह जो फुरते हैं, क्षोभ करते हैं, तबलग सौम्यता अचलभाव नहीं होता, अरु जो हेयोपादेयबुद्धिते रहित ज्ञानवान् है, तिस पुरुषको यह शक्ति आय प्राप्त होती है, जैसे राजाके अत पुरविषे पटरानी स्थित होती है, तैसे सो कौन शक्ति है, एक तौ भोगोंविषे निरसता, देहाभिमानते रहित निर्भयता, नित्यता, समता, सब पूर्ण आत्मदृष्टि, ज्ञाननिष्ठा, सब इच्छाते रहित अरु निरहंकारता, आपको सदा अकर्ता जानना, इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे समचित्तता, निर्विकल्पता, सदा आनदस्वरूप रहना, धैर्यसों सदा एकरस रहना, स्वरूपते इतर वृत्ति न फुरै, अरु सर्व जीवोंसे मैत्रीभाव, अरु सत्यबुद्धि निश्चयात्मकरूपकरि

तुष्टता, अरु मुदिता अरु मृदु भाषणा, इतनी शक्ति हेयोपादेयते रहित आय प्राप्त होती है ॥ हे रामजी ! संसारके पदार्थोंकी ओर जो चित्त धावता है, तिसको वैराग्यकरि उलटाय खेंचना, जैसे पुलकरिके जलके वेगका निवारण होता है, तैसे जगतसों निवारि करि मनको आत्मपद विषे लगावना, तिसकरि आत्मभाव प्रकाशता है, ताते अंतरसों सब वासनाको त्याग करो, अरु बाह्यते सब क्रियाविषे रहो, बैठि चलो, श्वास लेहु, सर्वदा सर्व प्रकार चेष्टा करो, अरु सर्वदा सर्व प्रकारकी वासना त्याग करो, संसाररूपी समुद्र है, जिसविषे वासनारूपी जल है, अरु चितारूपी सूत्र है, तिस जलकरिके तृष्णावान्‌रूपी मत्स्य फँसे है, यह विचार जो तुमको कहा है, तिस विचाररूपी शिलासे बुद्धिको तीक्ष्ण करो अरु इस जालको छेदो तब संसारते मुक्त होहुगे अरु संसाररूपी वृक्ष है तिसका मूल बीज मन है यह वचन जो कहे हैं, तिसको हृदयविषे धरि करि धैर्यवान होहु तब आधि व्याधि दुःखोंते मुक्त होवैगा मनकरिके मनको छेदहु, जो बीती है तिसका स्मरण करो अरु भविष्यतकी चिंता न करो काहेते जो असत्यरूप है अरु वर्तमानको भी असत्य जानिकै तिसविषे विचरो जब मनते संसारका विस्मरण हुआ तब मनविषे बहुरि न फुरैगा, मनविषे असत्यभाव जानिकै चलो, बैठो; श्वास लेहु, निःश्वास करो, उछलो, सोवहु, ऐसी चेष्टा होवे, परंतु अंतर सब असत्यरूप जानहु, तब खेद न होवैगा; अहममरूपी जो मल है, तिसको त्यागिकरि अथवा प्राप्तिविषे विचरो, राज्य आय प्राप्त होवे, तब तिसविषे विचरो, परंतु अन्तरते इसविषे आस्था न होवे, जैसे आकाशका सब पदार्थोंविषे अन्वयहै, परन्तु किसीके साथ स्पर्श नहीं करता, तैसे बाह्य कार्यको करो, परंतु मनकरि किसीकेसाथ चलायमान न होहु. तुम चेतनरूप अजन्मा महेश्वर पुरुषहौ तुमसों भिन्न कछु नहीं, सबविषे व्यापि रहे हो, जिन पुरुषोंको सदा यही निश्चय रहता है, और अपने स्वरूपविषे तिनको संसारपदार्थ चलायमान नहीं कर सकते; तथा जिनकी संसारविषे आसक्त भावना है; अरु स्वरूपते भूले हैं, तयों तिनको संसारके पदार्थोंने विकार उपजना है, हर्ष अरु शोक भय खेंचते हैं, तिसकरि घायि हुए हैं, अरु जो ज्ञानवान् पुरुष राग-

द्वेषते रहित है, तिनको लोह हड्का वटा अरु पाषाण स्वर्ण एक समान है, ससारवासनाका त्याग किया इसीका नाम मुक्ति है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषकी स्वरूपविषे स्थिति भई है, अरु सुखदु खविषे ममता है, सो जो कछु करता है, भोगता है, देता है, लेता है इत्यादिक क्रिया करता है सो करता हुआ भी कछु नहीं करता, यथाप्राप्त कार्यविषे वर्तता है, अत करणविषे इष्टअनिष्टकी भावना नहीं फुरती, कार्यविषे रागद्वेषवान् होइकारि डूबता नहीं, जिसको सदा यह निश्चय रहता है, जो सर्व चिदाकाशरूप है, अरु भोगोंके मननते रहित है, सो समता भावको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! मन जडरूप है, आत्मा चेतनरूप है, तिस चेतनकी सत्ताकरि पदार्थोंको ग्रहण करता है, इसकेविषे अपनी सत्यता कछु नही, जैसे सिंहकरि मारा जो पशु है, तिसको खानेको बिल्ली भी जाती है, उसको अपना वल कछु नहीं, तैसे चेतनके वलकरि मन दृश्यका आश्रय करता है, मन आप असत्यरूप है, चेतनकी सत्ता पाइकरि जीता है, अरु ससारके चिंतवनको समर्थ होता है, प्रमादकरिकै चितासो तपायमान होता है, यह वार्ता प्रसिद्ध है कि, मन जड है, अरु चेतनरूपी दीपककरि प्रकाशता है, चेतनसत्ताते रहित सव समान है, आत्मसत्ताते रहित उठनेको भी समर्थ नहीं होता, आत्मसत्ताको भुलाइकरि जो कछु करता है, तिस फुरनेको बुद्धिमान् कलना कहते हैं, जब वही कलना शुद्ध चेतनरूप आपको जानती है, तब आत्मभावको प्राप्त होते हैं, प्रमादते रहित आत्मरूप है, चित्तकला जब चैत्य दृश्यते स्फुरण होती है, तिसका नाम तब सनातन ब्रह्म होता है, अरु जब चैत्यके साथ मिलती है, तब तिसका नाम कलना होता है, स्वरूपते इतर कछु नहीं, केवल ब्रह्मतत्त्व स्थित है, तिसविषे भ्रांतिकरिकै मन आदि भासते हैं, जब चेतनसत्ता दृश्यके सन्मुख होती है, तब वही कलनारूप होती है, अपने स्वरूप विस्मरण कियेते सकल्पकी ओर धावनेते कलना कहाती है, सो आपको परिच्छिन्न जानती है, तिसकरि परिच्छिन्न हो जाती है, हेयोपादेयधर्मिणी होती है ॥ हे रामजी ! चित्तसत्ता अपनेही फुरणेकरि जडताको प्राप्त भई है, जबलग विचारकरिकै जगावै नहीं, तबलग

स्वरूपविषे जागती नहीं, इसी कारणते सत्यत्व शास्त्रोंके विचार अरु वैराग्यकरि इंद्रियोंका निग्रह करि अपनी कलनाको आप जगाओ, सब जीवकी जो कलना है, सो विज्ञान अरु शमकरिके जगावनेते ब्रह्मतत्त्वको प्राप्त होती है, इसते इतर मार्गकरि भ्रमता रहता है, मोहरूपी जो मदिरा है, तिसकरि जो पुरुष उन्मत्त हुआ है, सो विषयरूपी गर्त्तमें गिरता है,अरु आत्मबोधते सोई हुई कलनाको जगाता नहीं, अप्रबोधही रहता है, सो चित्तकलना जड़ रहती है, जो भासती है, तौ भी असत्यरूप है ऐसा पदार्थ जगत्विषे कोई नहीं, जो संकल्पकरि कल्पित न होवै, ताते तू अजडधर्मा होउ कलना जड उपलब्धरूपिणी है, परमार्थसत्ताकरि विकासमान होती है, जैसे सूर्यकरि कमल विकासमान होता है तैसे जैसे पाषाणकी मूर्तिको कहिये तू नृत्य कर तब वह नहीं करती काहेते कि, जडरूप है, तैसे देहविषे जो कलना है, सो चेतन कार्य करनेको समर्थ नही होती जैसे मूर्तिका लिखा हुआ राजा गुरगुर शब्दकरि युद्ध करनेको समर्थ नहीं होता, अरु मूर्तिका चंद्रमा औषधीको पुष्ट करनहीं सकता तैसे कलना जडरूप है, कार्य करनेको समर्थ नहीं होती जैसे निरवयव अंगनासे आलिंगन नहीं होता जैसे संकल्पके रचे आकाशके वनकी छायातले कोऊ नहीं बैठता, मृगतृष्णाके जलसे कोऊ तृप्त नहीं होता तैसे जडरूप मन क्रिया करनेको समर्थ नहीं होता, जैसे सूर्यके धूपकरि मृगतृष्णाकी नदी भासती है तैसे चित्तकलनाके फुरनेकरि जगत् भासता है शरीरविषे जो स्पंदशक्ति भासती है सो प्राणशक्ति है प्राणोंकरि बोलता चलता बैठता है ज्ञानरूप संवित् जो आत्मतत्त्व है तिसते इतर कछु नहीं, जब संकल्पकला फुरती है तब अहं त्वं इत्यादिक कलनाकरि वहीरूप हो जाता है जब आत्मा अरु प्राणका फुरना इकट्ठा आता है अर्थ यह कि, प्राणोंके साथ चेतनसंवित् मिलता है तब तिसका नाम जीव होता है बुद्धि चित्त मन सब तिसके नाम हैं, सब संज्ञा अज्ञानकरि कल्पित होती हैं, अज्ञानीको जैसे भासा है तिसको है अरु परमार्थते कछु हुआ नहीं, न मन है, न बुद्धि है, न शरीर है केवल, आत्मा मात्र अपने आपविषे स्थित है, अपर द्वैत कछु हुआ नहीं मन जगत्

आत्मरूप है, कालक्रिया सब आत्मरूप है, आकाशते भी निर्मल है, अस्ति नास्ति सर्व वही रूप है, द्वितीय फुरणेते रहित है, इस कारणते है, अरु नहीं, ऐसा स्थित है, अरु सर्व रूपते सत्य है, आत्मा सब पदोंते रहित है, इस कारणते असत्यकी नाई है, अनुभवरूप है, ताते सत्य है, सर्व कलनाते रहित केवल अनुभवरूप है, ऐसे अनुभवका जहां ज्ञान होता है, तहां मन क्षीण हो जाता है, जैसे जहां सूर्यका प्रकाश होता है, तहां अंधकार क्षीण हो जाता है, अरु जब आत्मासत्ताविषे संवित्करिकै इच्छा फुरती है, सो संकल्पके सन्मुख हुई थोडी भी बडे विस्तारको पाती है, तब चित्तकलाको आत्मस्वरूप विस्मरण हो जाता है, जन्मोंकी चेष्टाकरि जगत्स्मरण हो आता है, परम पुरुषको संकल्पकेसाथ तन्मय होनेकरिकै चित्त नाम कहाता है, अरु जब चित्तकला संकल्पते रहित होती है, तब मोक्षरूप होती है, चित्तकला फुरनेका नाम चित्त अरु मन कहते हैं, अरु दूसरी वस्तु कोऊ नहीं, एकतामात्रही चित्तका रूप है, संपूर्ण संसारका बीज मन है, संकल्पके सन्मुख होकरिकै चेतनसंवित्का नाम मन होता है, निर्विकल्प जो चित्तसत्ता है, सो जब संकल्पकरिकै मलीन होती है, तब तिसको कलना कहते हैं, वही मन घटादिककी नाई परिच्छिन्न भेदको प्राप्त होता है, तब क्रियाशक्ति जो प्राण तिसकेसाथ अरु ज्ञानशक्तिकेसाथ मिलती है, तब तिस संयोगका नाम संकल्प विकल्पका कर्ता मन होता है सोई जगतका बीज है तिसके लीन करनेके दो उपाय हैं एक तत्त्वका ज्ञान, दूसरा प्राणोंका रोकना जब, प्राणशक्तिको निरोध करता है, तब मन भी लीन हो जाता है, अरु सत्य शास्त्रोंद्वारा ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान होता है, तो भी लीन हो जाता है, प्राण किसका नाम है, अरु मन किसका नाम है, सो श्रवण कर, हृदयकोशते निकसता है, अरु बाह्य जाता है, अरु बहुरि बाह्यसों अंतर आता है, सो प्राण है, शरीर बैठा है, अरु वासनाकरि देशदेशांतरको भ्रमता है, तिसका नाम मन होता है, तिसको वैराग्य अरु योगाभ्यासकरि वासनाते रहित करना, अरु प्राणवायुको स्थित करना, यह दोनों उपाय हैं॥ हे रामजी! जब तत्त्वज्ञान होता है, तब मन स्थिर हो जाता है, काहेते जो प्राण अरु

चित्तकलाका आपसमे वियोग होता है, अरु जब प्राण स्थित होता है, तब मन स्थित हो जाता है, काहेते कि, प्राण स्थित हुए चेतनकलाकेसाथ नहीं मिलते, तब मन भी स्थित हो जाता है, सो नहीं रहता, मनका रूप चेतनकला अरु प्राण फुरणविना नहीं रहता, ऐसा भी होवै, जो पाषाणको स्वाद लेनेकी शक्ति हो आवै, सो पाषाणको अपनी सत्ताशक्ति कछु नहीं, तैसे मनको भी अपनी सत्ताशक्ति कछु नहीं, चेतनसत्ता अरु प्राणोंविना कछु होवै स्पंदरूप जो शक्ति है, सो प्राणोंकी है, सो चलरूप जडात्मक है, आत्मसत्ता चेतनरूप है, सो अपने आपविषे स्थित है, चेतनशक्ति अरु स्पंदशक्तिके सबंध होनेकरिकै मन उपजा है, सो मनका उपजना भी मिथ्या है, इसीका नाम मिथ्याज्ञान है ॥ हे रामजी ! मैंने तुझको अविद्या परम अज्ञानरूप संसाररूपी विषको देनेहारी कही है, चित्तशक्ति अरु स्पंदशक्तिका संबंध सकल्पकरिकै कल्पित है, जो तू सकल्प न उठावै, तो मनसज्ञा न रहैगी, क्षीण हो जावैगी, ताते ससारभ्रमसों भयमान मत होहु, अरु जब स्पंदरूप प्राणको चित्तसत्ता चेतती है, तब चेतनेकरि मन चित्तरूपको प्राप्त होता है, अपने फुरणेकरि दुःखको प्राप्त होता है, जैसे बालक अपने परछाईविषे वैताल कल्पिकरि भयवान् होता है, तैसा अखड मडलाकार जो चेतनसत्ता है, सो सर्वगत है, तिसका सबंध किसकेसाथ होवै, अखडशक्ति उन्निद्ररूप आत्माके इकट्ठे करनेको कोई समर्थ नहीं, इसी कारणते सबधका अभाव है, जो सबधही नहीं तौ मिलना किससे होवे, मिलाप न हुआ तौ मनकी सिद्धता क्या कहिये। चित्त अरु स्पंदकी एकताको मन कहते है, और मन वस्तु नहीं, जैसे रथ, घोडा, हस्ती, प्यादा इनविना सेनाका रूप और कछु नहीं निकसता, तैसे चित्तस्पंदविना मनका रूप और कछु नहीं, तिस कारणते दुष्टरूप जो मन है, सो तीनों लोकोंविषे इसके समान कोऊ नहीं, जब सम्यक्ज्ञान होवै, तब मृतरूप मन नष्ट हो जाता है, ताते मिथ्या अनर्थका कारण जो चित्त है, तिसको मत धरौ अर्थ यह कि, सकल्पका त्याग करौ ॥ हे रामजी ! मनका उपजना मिथ्या है, परमार्थते नहीं, सकल्पका नाम मन है, इस कारणते कछु है नहीं, जैसे मृग-

तृष्णाकी नदी मिथ्या भासती है, तैसे मन मिथ्या है, हृदयरूपी मरुस्थल है, अरु चेतनरूप सूर्य है, तहां मनरूपी मृगतृष्णा है, तिसका जल भासता है, जब सम्यग्ज्ञान होता है, तब इसका अभाव हो जाता है, मन जडताते निःस्वरूप है, सर्वदा मृतकरूप है, तिस मृतकने सर्व लोकोंको मृतक किये हैं, यह बड़ा आश्चर्य है, जो अंग भी कछु नहीं, देह भी नहीं, न आधार है, न आधेय है, सो जगत्का भक्षण करता है, अनहोते जालसो लोकोंको फँसाये हैं, जो सामग्रीते रहित बल तेज विभूति हस्ती पदाति रहित लोकोंको मारता है, मानो कमलके मारनेकरि मस्तक फटि जाता है, जो जड़ मूक अधम हैं, सो पुरुष ऐसे मानते हैं, कि हम बाधे हैं, मानो पूर्णमासीके चद्रमाकी किरणोंकरि चलते हैं, जो शूरमे होते हैं, सो तिसको हनन करते हैं, जो अविद्यमान मन है, तिनने मिथ्याही जगत्को हत किया है, संकल्पकरि उदय अरु स्थित हुआ है, ऐसा दुष्ट है कि, किसीने उसको देखा नहीं, मैंने तुझको तिसकी शक्ति कही है, सो तो बडा आश्चर्यरूप विस्तृतरूप है, चंचल असत्रूप चित्तकरि मैं विस्मित हुआ हौं, जो मूर्ख है, सो सर्व आपदाका पात्र है, जो मन नहीं है, तिसकरि एते दु खको प्राप्त भया है, बडा कष्ट है, जो सृष्टि मूर्खताकरिकै चली जाती है, सर्व मनकरि तपते हैं, यह मैं मानता हौं कि, सर्व जगत् मूढरूप है, तरगरूपी शस्त्रकरिकै कण कण होगए हैं, पेलवरूप हैं, जो कमलकरि विदारण हुये हैं, चद्रमाकी किरणोंकरि दग्ध होगए हैं, दृष्टिरूपी शस्त्रकरि वह पुरुष वेधे हैं, सकल्परूपी मनकरि मृतक हो गए हैं, वास्तवते कछु है नहीं, मिथ्या कल्पनाते नीच कृपण करिकै लोकोंको हनन किया है ताते मूर्ख हैं, मूर्ख हमारे उपदेशयोग्य नहीं, उपदेशका अधिकारी जिज्ञासी है, जिसको स्वरूपका साक्षात्कार नहीं भया, अरु ससारते उपरांत हुआ है, अरु मोक्षकी इच्छा रखता है, अरु पदार्थका ज्ञाता है, सो उपदेश करनेयोग्य है, अरु ज्ञानवान् जो पूर्ण है तिसको उपदेश नहीं बनता है, अरु अज्ञानी मूर्खको भी नहीं बनता, मुर्ख कैसा है, वीणाकी ध्वनि सुनकरि भयवान होता है, अरु बांधव निद्रामें सोया पड़ा है, तिसको मृतक जानिकै भयवान् होता है, अरु स्वप्नविषे हस्तीको देखिकरि भय पावता है,

भागता है, तिस मनने अज्ञानियोंको वश किया है, भोगोंका जो लव तुच्छ सुख है, तिसके निमित्त जीव अनेक यत्न करते है, अरु दु ख पाते हैं हृदयविषे स्थित जो अपना स्वरूप है, तिसको नही देखि सकते, प्रमादकरि अनेक कष्ट पाते हैं, अज्ञानी जीव मिथ्याही मोहित होते है ॥ इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणे मनानिर्वाणवर्णन नाम त्रयोदश' सर्ग ॥ १३॥

चतुर्दशःसर्गः १४.

चित्तचैतन्यरूपवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ससाररूपी समुद्र है, तिसविषे रागदोषरूपी वडे कल्लोल उठते हैं, तिसविषे वह पुरुष वहे हैं, जो मनको मूढ जडरूप नहीं जानते तिनको उदार जो आत्मफल है, सो प्राप्त नहीं होता, यह विचार विवेककी वाणी मैने तुझको कही है, सो तुमसारिखेको योग्य है, अरु जिन मूढ जडोंको मनके जीतनेविषे समर्थता नहीं तिनको नहीं शोभती, जो इन वचनोंको नहीं ग्रहण कर सकते तिनको कहनेकारि क्या प्रयोजन जैसे जन्म अधको सुदर मजरी वन दिखाइये तव वह निष्फल होता है, काहेते कि वह देखि नहीं सकता तैसे विवेक वाणीका उपदेश करना उनको निष्फल होता है, जो मनको जीत नहीं सकते, इद्रियोंकारि लोलुप पुरुष है, तिनको आत्मबोधका उपदेश करना कछु कार्य नहीं करता जैसे कुष्टकारि जिसका शरीर गलि गया है, तिसको नानाप्रकारकी सुगंधिका उपचार सुखदायक नहीं होता, तैसे मूढको आत्मउपदेशका बोध सुखदायक नहीं होता, जिसकी इद्रियां व्याकुल विपर्यय हैं, अरु मदिराकारि उन्मत्त हैं, तिसको धर्मके निर्णयविषे साक्षी करना कोऊ प्रमाण नहीं करता, ऐसा कुबुद्धि कौन है, जो श्मशानविषे शमकी मूर्तिको पायकारि तिसते चर्चाविचार करै,अरु तिससों प्रश्नोत्तर करै, अपने हृदयरूपी कूडविषे मनरूप मूक जड सर्पवत स्थित है जो तिसको निकास डारै, सो पुरुष है, अरु जो तिसको नहीं जीति सकता तिस दुर्बुद्धिको उपदेश करना व्यर्थ है ॥ हे रामजी ! मन महातुच्छ

है, जो वस्तु कछु न होवै, तिसके जीतनेविषे कठिनता होवै जैसे स्वप्ननगर निकट होता है अरु चिरपर्यंत भी स्थित है अरु जागिकरि देखिये तौ कछु नही पाता, तैसे मनको जो विचारकरि देखिये तौ कछु नहीं पाता जिस पुरुषने अपने मनको नहीं जीता सो दुर्बुद्धि है वह अमृतको त्यागिकरि विषको पान करता है सो विषकी मूर्च्छाकरि मारि जाता है अरु जो ज्ञानी है सो सदा आत्माही देखता है, इंद्रिया अपने अपने धर्मविषे विचरती है प्राणकी स्पंदशक्ति है, अरु ज्ञानशक्ति परमात्मकी है, इंद्रियोंको अपनी शक्ति है, जीव किसकरि बधायमान होता है, वास्तवते सर्वशक्ति सर्वात्मा है तिसते भिन्न कछु नहीं यह मन कहा है जिसने सब जगत्को नीच किया है॥ हे रामजी! मूढोंको देखिकरि मैं दया करता हौं अरु तपता हौं की, मूढ क्यों खेद पाते हैं, दु खदायक कौन है जिसकारि तपते हैं, जैसे उष्ट्र कंटकके वृक्षोंकी परंपराको प्राप्त होता है, तैसे मूढ प्रमादकरिकै दु खोंकी परंपराको पाते है, वे दुर्बुद्धि देहको पाइकरि मर जाते हैं, जैसे समुद्रविषे बुद्बुदे उपजिकरि मिटि जाते है तैसे ससारसमुद्रविषे उपजिकरि नष्ट हो जाते है, तिनका शोक करना क्या है, वे तौ तुच्छ पशुते नीच हैं तू देख जो दशों दिशाविषे पशु आदिक होते है, अरु मरते है, तिनका शोक कौन करता है मच्छरादिक जीव नष्ट हो जाते है, कई जलचर जलविषे भक्षण करते है तिनका विलाप कौन करता है, छोटे जीवोंको वडे जलविषे मच्छ भक्षण करते है आकाशविषे कई पक्षी मृत्यु होते है, तिनका कौन शोक करता है अनेक जीव नाश होते हैं तिनका विलाप कछु नहीं होता तैसे अबके जो है, तिनका विलाप करना नहीं, काहेते कि, थिर रहना किसीको नहीं, सर्व नाशरूप है अरु तुच्छ है निरंतर नष्ट होते है, सर्वका प्रतियोगी काल है, अनेक जीवोंको भोजन करता है, जूं आदिकको माक्षिका अरु मच्छर आदिक खाते है, माक्षिका अरु मच्छरादिको दादुर खाते है, दादुरको सर्प, सर्पोंको नौले,नौलेको बिल्ले, बिल्लेको कूकर,कूकरोंको बघाड, बघाडको सिंह, सिंहको शरभ, शरभको मेघकी गर्जना नष्ट करती है, मेघको वायु वायुको पर्वत पर्वतको इंद्रका वज्र इंद्रके वज्रको सुदर्शन चक्र जीति लेता है, सो चक्र विष्णुजीका होता है, सो

विष्णु भी अवतारोंको धरता है, सुखदु:ख जरामरणसंयुक्त होता है, जीवोंकरि वडी देहको धरता है, विद्यारूप है तौ भी जुँआ लीखै आदिक शरीरमें लगती हैं, वह रुधिरपान करती है, इसप्रकार निरंतर भूतजातिको काल जीर्ण करता है, अरु परस्पर जीव जीवोंको खाते हैं, अरु निरंतर नानाप्रकारके भूतजात दशों दिशाविषे उपजते हैं जैसे जलविषे मच्छ कच्छ आदिक उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीविषे कीट आदि उपजते हैं, अंतरिक्षविषे पक्षीआदिक,वनवीथीविषे सिंहादिक मृग उपजते हैं,स्थावरविषे पिपीलिका दर्दुर कीटादि उपजते हैं, विष्ठाविषे कृमि उपजते हैं, नानाप्रकारके जीवगण इसप्रकार निरंतर उपजते हैं अरु मिटि जाते हैं, कोऊ हर्षवान कोऊ शोकवान् होतेहैं, कोऊ रुदन करतेहैं, सुख अरु दु:ख मानते हैं, पापी पापके दु:खकरि निरंतर मरतेहैं अरु सृष्टिविषे उपजते नाश होते हैं जैसे वृक्षसों पत्त उपजतेहैं, तैसे भूत उपजिकरि नाश हो जाते हैं तिनकी गिनती कछु नहीं जो बोधवान् पुरुष है,सो अपने आप करिकै अपने आप ऊपर दया करिकै आपको संसारसमुद्रको पार करते हैं हे रामजी! अपर जेते कछु जीव हैं सो पशुवत् हैं, मूढों अरु पशुविषे भेद कछु नहीं तिनको हमारी कथाकाउपदेश नहीं वह पशुधर्मा इस वाणीको योग्य नहीं देखनेमात्र मनुष्य है परंतु मनुष्यका अर्थ तिनते सिद्ध कछु नहीं होता, जैसे उजाड़ वनविषे ठूठ वृक्ष होता है, सो छाया फलते रहित किसीको विश्रामदायक नहीं होता, तैसे मूढ जीवोंते कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, जैसे जेवरी गलेविषे डारिकरि पशुको जहां खैंचता है, तहां चले जाते हैं, तैसे मूढ चित्तकरि खैंचते हैं, जहां चित्त खैंचता है, तहा चले जाते हैं, मूढचित्त पशु विषयरूपी कीचडविषे फँसे हैं, तिसकरि वडी आपदाको प्राप्त होते हैं, तिन मूढोंको आपदाविषे देखिकै पाषाण भी रुदन करते हैं, जिन मूर्खोंने अपने चित्तको नहीं जीता तिनको दु:खोंके समूह प्राप्त होते हैं, अरु जिनने चित्तको बंधनते निकामा है, सो संपदावान् हैं, तिनके दु:ख मन मिट जाते हैं, संसारविषे बहुरि नहीं उपजते, ताते अपने चित्तके जीतेविना दु:ख नष्ट नहीं होता, अरु जो चित्त जीतना न होता, तौ परमसुख प्राप्त नहीं होता, अरु तब चित्त जीतनेको बुद्धिवान् न प्रवर्तते, सो बुद्धि-

वान् प्रवर्त्तते, हे, ताते जानिये कि, चित्त भी वश होता है,मनरूपी भ्रमके नष्ट हुएते आत्मसुख प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! मन भी कछु है नहीं, मिथ्या भ्रमकरि कल्पते हैं, जैसे बालकको अपने परछाईविषे वैताल-बुद्धि होती है, तिसकरि भयमान होता है, तैसे भ्रमरूप मनकरि नाश मानते हैं, जबलग आत्मसत्ताका विस्मरण होता है, तबलग मूढता है, अरु हृदयविषे मनरूप सर्प विराजता है, जब अपना विवे-करूपी गरुड़ उदय होवै, तब वह नष्ट हो जाता है, अब तुम जागे हौ, ज्योंका त्यों जानते हो ॥ हे शत्रुनाशक रामजी ! अपने संकल्पकरि चित्त बढ़ता है, तिस संकल्पका शीघ्रही त्याग करो, तब चित्त शांत होवैगा, जो तुम दृश्यको आश्रय करोगे, तो बंधन होवैगा, अरु अहंकार आदिक दृश्यको त्याग करोगे, तौ अचित्त मोक्षवान् हो-हुगे, यह गुणोंका संबंध मैंने तुझको कहा है कि, दृश्यका आश्रय करना बंधन है, इसते रहित होना मोक्ष है, आगे जैसी इच्छा होवै, तैसा करहु, इसप्रकार ध्यान करहु, कि न मैं हौं, न यह जगत् है, केवल अचलरूप हौं, ऐसे निःसंकल्प हुएते आनंद चिदाकाश हृदयविषे आय प्रकाशैगा; आत्मा अरु जगत्विषे जो विभागकलना आय उदय हुई है, सो मल है, इस द्वैतभावका त्याग कियेते जो पाछे शेष रहैगा, तिसविषे स्थित होहु, आत्मा अरु जगत्का अंतर क्या है, द्रष्टा अरु दृश्यका अंतर जो दर्शन है, अनुभवसत्ता है, सर्वदा तिसीकी भावना करौ, स्वाद अरु अस्वाद लेनेवालेका त्याग करौ, तिनके मध्य जो स्वादरूप है, तिसविषे स्थित होहु, सो आत्मतत्त्व है, तिसविषे तन्मय होहु, अनुभव जो द्रष्टा है, अरु दृश्य है, तिसके मध्यविषे जो निरालंब साक्षीरूप आत्मा है, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! भव जो है संसार, सो भावअभाव-रूप है, तिसकी भावनाका त्याग करि, भावरूप आत्माकी भावना करौ, सो अपना स्वरूप है प्रपंच दृश्यका त्याग कियेते जो वस्तु अपना स्व-रूप है, सोई होवैगा; जो परमानंदस्वरूप है, अरु चित्तभावको प्राप्त होना अनंत दुःख है, चित्तरूपी संकल्प बंधन है; तिस बंधनको अपने स्वरूप-के ज्ञानयुक्त बलकरि छेदहु, तब मुक्ति होवैगी, अरु जब आत्माका त्याग

कर जगत्विषे गिरता है, तब नानाप्रकार संकल्प विकल्प दुखोंविषे प्राप्त होता है, जब तू आत्माको व्यतिरेक शब्द करैगा, तब मन दुःखके समूहसंयुक्त प्रगट होवैगा, अरु व्यतिरेकभावना त्यागेते सब मनके दुःख नष्ट हो जावैगे, यह सर्व आत्मा है, आत्माते इतर कछु नहीं, जब यह ज्ञान उदय हुआ, तब चैत्य चित्त चेतना तीनोंका अभाव हो जावैगा, मैं आत्मा नहीं, जीव हौं, इसका नाम चित्त है, तिसकरि अनेक दुःखको प्राप्त होता है, अरु जब यह निश्चय हुआ कि, मैं आत्मा हौं, जीव नहीं, सो सत्य है, इतर कछु नहीं, इसीका नाम चित्तउपशम कहाता है जब यह निश्चय भया कि, सब आत्मतत्त्व है, आत्माते इतर कछु नहीं, तब चित्त शांत हो जाता है, इसविषे संशय कछु नहीं, इसप्रकार आत्मबोधकरिकै मन नष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते तम नष्ट हो जाता है, सो मन सब शरीरोंके अंतर स्थित है, जबलग होता है, तबलग बड़ा जीवको भय होता है, यह जो परमार्थयोग मैंने तुझको कहा है, तिसकरि मनको काटि डारहु जब मनका त्याग किया तब भय भी न रहैगा, यह चित्त भ्रममात्र उदय हुआ है, चित्तरूपी वैताल है, सम्यक्ज्ञानरूप मंत्रकरि अभाव हो जाता है ॥ हे बलवानोंविषे श्रेष्ठ निष्पाप रामजी ! तेरे हृदयरूपी गृहमेंते चित्तरूपी वैताल निकसि जावैगा, तब तू दुःखोंते रहित स्थित होवैगा भय उद्वेग कछु न व्यापैगा, अब तू मेरे वचनोंकरि वैरागी भया है, मनरूपी जो मन है, तिसको जीता है, इस विचार विवेकसों चित्त नष्ट शांत हो जाता है, निर्दुःख आत्मपदको प्राप्त होता है, सब इंपणाको त्यागिकरि शांतरूप स्थितहोहु॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तचैतन्यस्वरूपवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः १५.



तृष्णावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार तू देख कि, चित्त आप विचित्ररूप है, संसाररूपी बीजकी कणिका है, अरु जीवरूपी पक्षीको

बंधनका जाल है, जब चित्तसंवित् आत्मसत्ताको त्यागता है, तब दृश्यभावको प्राप्त होता है, तब चित्त उपजता है, कलनारूप मलको धारता है, सो चित्त बढिकरि मोह उपजता है, तिसकरि संसारका कारण होता है, तब तृष्णारूपी जो विषकी वेलि है, सो प्रफुल्लित होती है, तिसकरि मूर्च्छित हो जाता है, आत्मपदकी ओर सावधान नहीं होता, ज्यों ज्यों उदय होती है, त्यों त्यों मोहको बढावती है, तृष्णारूप श्याम रात्रि है, अनंत अंधकारको देती है, परमार्थसत्ताका आवरण करती है, प्रलयकालकी अग्निवत् जलाती है, तिसको समर्थ कोऊ नहीं होता, सर्वको व्याकुल करती है, तृष्णारूपी तीक्ष्ण खड्गकी धारा है, दृष्टिमात्र कोमल शीतल सुंदर है, स्पर्श कियेते नाश कर डारती है, अनेक संकटको देती है, जो बडे असाध्य दुःख हैं, जिनकी प्राप्ति बडे पापोंकरि होती है, सो तृष्णारूपी फूलका फल है, तृष्णारूपी कूकरि है, सो दुर्गंधादिकरि चित्तशरीररूपी गृहविषे रहती है, क्षणविषे बडे हुलासको प्राप्त होती है, क्षणविषे शून्यरूप हो जाती है, जो पुरुष बडे ऐश्वर्यसंयुक्त है, सो जब तृष्णा उपजी तब दीन हो जाता है, अरु जो देखनेकरि निर्धन, कृपण भासता है, अरु अंतर तृष्णाते रहित है, तब वह बडा ऐश्वर्यवान् होता है, जिसके हृदयरूपी छिद्रविषे तृष्णारूपी सर्पिणी नहीं बैठी, तिसके प्राण अरु शरीर स्थित हैं, उसका हृदय शांतरूप होता है, निश्चयकरि जान कि, जहां तृष्णारूपी काल रात्रिका अभाव हुआ है, तहां पुण्य आय बढते हैं, जैसे शुक्लपक्षका चंद्रमा बढता है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषरूपी वृक्षका तृष्णारूपी घुनने भोजन किया है, तिसकी पुण्यरूपी हरियावल नहीं रहती, प्रफुल्लित नहीं होती, तृष्णारूपी नदी है, अनंत कल्लोल आवर्त्त तिसविषे उठते हैं, तृणवत् बहती है, अरु जीवरूपी खेलनेकी पुतली है, तृष्णारूपी यंत्री तिनको भ्रमाती है, सब शरीरोंके अंतर तृष्णारूपी तागा है, तिसकरि परोये हैं तृष्णाकरिकै मोहित हुए कष्ट पाते हैं, अरु समझते नहीं, जैसे हरे तृण कर आच्छादित गर्त होता है, तिसको देखिकरि हरिणका बालक ग्रहण करता है, अरु गर्तविषे गिर पडता है ॥ हे रामजी ! ऐसा कोऊ और इनके कलेजेको काटि नहीं सकता, जैसे

तृष्णारूपी डाकिनी इसका उत्साह बलरूपी कलेजा निकास लेती है, तिसकरि दीन जैसा हो जाता है, तृष्णारूप अमगल इन जीवोंके हृदयविषे स्थित होइकरि नीचताको प्राप्त करती है, तृष्णाकरिकै विष्णु भगवान् है सो भगवान्की नाईं स्थित भया है, अर्थ यह जो त्रिलोकीनाथ विष्णुजी इद्रके हेतकरि जब अर्थ हृदयविषे धरा, तब अल्प जैसी मूर्तिको धारिकरि बलिके द्वार गए, तहां तृष्णाकरिके जीव भ्रमते हैं, जैसे सूर्य नीतिको धरिकरि आकाशविषे भ्रमता है, तैसे तृष्णारूपी तागेकरि बाधे जीव भ्रमते हैं,तृष्णारूपी सर्पिणी महाविषकरि पूर्ण होती है, सर्वको दु'खदायक है, ताते इसको दूरते त्याग करौ, पवन जो चलता है, सो तृष्णाकरि चलता है, पर्वत तृष्णाकरि स्थिर है, पृथ्वी तृष्णाकरि जगतको धरती है, तृष्णाकरि त्रिलोकी वेष्टित करी है ॥ सब लोक तृष्णाकरि बांधे हुए है, जेवरीकरि बांधा हुआ छूटता है, परतु तृष्णाकरि बाधा छूटता नहीं । तृष्णावान् मुक्त कदाचित् नहीं होता, तृष्णाते रहित मुक्त होता है, तिस कारणते हे राघव ! तुम तृष्णाका त्याग करहु, सब जगत् मनके सकल्पविषे है तिस संकल्पते रहित होहु, मन भी कछु अपर वस्तु नहीं, युक्तिसों निर्णयकरि देखौ, संकल्पप्रमादका नाम मन है, जब इसका नाश होवै, तब तृष्णा सब नाश हो जावै, अह त्वं इदं इत्यादिक चितवना मत करहु, यह महामोहमय दृष्टि है, इसको त्यागिकरिके एक अद्वैत आत्माकी भावना करौ, अनात्माविषे जो आत्मभाव है, सो दु खोंका कारण है इसके त्यागेते ज्ञानवानोंविषे प्रसिद्ध होहुगे, अहभावरूप अपवित्र भावना है, तिसको अपने स्वरूप शलाकाकी भावनारूपकरि काटि डारहु; यह भावना पचमभूमिका है, तहां संसारका अभाव है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णावर्णन नाम पचदश' सर्ग' ॥ १५ ॥

षोडशःसर्ग' १६

तृष्णाचिकित्सोपदेशवर्णन ।

राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह तुम्हारे वचन गभीर तोलते गदित है, तुम कहते हो, अहकार तृष्णाको मत करहु; जो अहकारको त्यागेगा तो

यह चेष्टा कैसे होवैगी, देहका भी त्याग हो जावैगा, जैसे वृक्ष स्तम्भके आश्रय होते हैं स्तभहीनें वृक्षको धरा है, स्तभके नाश हुएते वृक्ष नहीं रहता, तैसे देहको अहकार धारि रहा है, तिसते रहित देह भी गिर जावैगा, ताते मैं अहंकारको त्यागिकरि कैसे जीता रहौंगा, यह अर्थ मुझको निश्चय करि कहो, तुम कहनेहारोंविषे श्रेष्ठ हौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे कमलनयन रामजी ! सर्व ज्ञानवानोंने वासनाका त्याग किया है, सो दो प्रकारका है, एकका नाम ध्येयत्याग, दूसरेका नाम नेयत्याग है, मैं यह हौ, पदार्थरूप मैं इनकरि जीता हौं, इनविना मैं कछु जीता नहीं, अरु मोंविना यह भी कछु नहीं, यह जो अतर निश्चय है, तिसको त्यागिकरि विचारत भया हौं, न मैं पदार्थ हौं, न मेरे पदार्थ है, ऐसी भावना करनेहारे जो पुरुष है, तिनका अंत करण आत्मप्रकाशकरि शीत ल हो जाता है जो कछु क्रिया करते है, सो लीलामात्र हैं, जिस पुरुषने निश्चयकरि वासनाका त्याग किया है, सो पुरुष सर्व क्रियाविषे सर्व आत्मा जानता है, उसको बधनका कारण नहीं होता तिसके अतर सर्व वासनाका त्याग है, अरु वाह्य इद्रियोंकरिकै चेष्टा करता है, जो पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है, तिसने वासनाका त्याग किया है; तिसवासनाका त्याग नाम ध्येय वासनाका त्याग अरु जिस पुरुषने मनसयुक्त देहवासनाका त्याग किया है, अरु तिसवासनाका भी त्याग किया है, सो नेयवासनाका त्याग है, नेयवासनाके त्यागते विदेहमुक्त कहाता है, जिस पुरुषने अहंकार देह अभिमानका त्याग किया है ससारकी वासना लीलासों त्याग करी है, स्वरूपविषे स्थितहोइकरि क्रिया भी करता है, सो जीवन्मुक्त कहाता है जिसकी सब वासना नाश भई है, अतर बाहिरकी चेष्टाते रहित भया है, अर्थ यह कि जिसने अंतर सकल्प बाहिरकी क्रिया त्यागी है, तिसका नाम नेयत्याग विदेहमुक्त जान जिसने ध्येयवासनाका त्याग किया है, लीला करिके कर्ता हुआ स्थित है, सो जीवन्मुक्त महात्मा पुरुष जनकवत् है, अरु जिसने नेयवासनाको त्यागा है, और उपशमरूप होगया है, सो विदेहमुक्त होइकरि परमतत्त्वविषे स्थित है, परात्पर जिसको कहते हैं, सोई होता है ॥ हे राघव ! यह

दोनों त्यागी शमपदविषे स्थित हुए ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं, विगतसताप उत्तम पुरुष दोनों मुक्तस्वरूप हैं, निर्मल पदविषे स्थित होते हैं, एककी देह स्फुरणरूप होता है, दूसरेका अस्फुर होता है, देह युक्तरूप देहविषे स्थित होता है, क्रियाको करता सतापते रहित जीवन्मुक्त सो ज्ञानको धरता है, दूसरे देहको त्यागिके विदेहपदविषे स्थित होता है, उसके साथ वासना अरु देह दोनों नहीं भासते, ताते विदेहमुक्त कहाता है, जीवन्मुक्तके अंतरवासनाका त्याग है, बाह्य क्रिया करता है, जैसे समयकरि सुख दु ख आय प्राप्त होते हैं, तैसे निरतर रागदोपते रहित प्रवर्तता है, सुखविषे हर्ष नहीं, दु खविषे शोक नहीं, सो जीवन्मुक्त कहाता है, जिस पुरुषने संसारके इष्ट अनिष्ट पदार्थोंकी इच्छा त्यागी है, सो सब कार्यविषे सुषुप्तिकी नाईं अचल वृत्ति है सो जीवन्मुक्त कहता है, हेयोपादेय मै अरु मेरा सब कलना जिसके अतर क्षीण हो गई है, सो जीवन्मुक्त कहाता है, तिसकी वृत्ति सपूर्ण पदार्थनते सुषुप्तिकी नाईं हो गई है, अरु सदा जागृत् चित्त जिसका है, कलना क्रिया सयुक्त भी दृष्ट आता है, परंतु अंतरते आकाशवत् निर्मल है, सो जीवन्मुक्त पूजने योग्य है ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य भगवान् अस्त भया, सब सभाके लोक स्नानके निमित्त परस्पर नमस्कारकरिके उठे, रात्रिको व्यतीत करिके सूर्यकी किरणोंसाथ परस्पर नमस्कार करिके यथायोग्य अपने अपने आसनपर आय बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सोपदेशो नाम षोडश सर्गः॥१६॥

सप्तदश सर्ग १७.

तृष्णोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो पुरुष विदेहमुक्त है, सो हमारी वाणीका विषय नहीं, ताते तू जीवन्मुक्तका लक्षण सुन, जो कछु प्रकृत कर्म है, तिसको करता है, परतु तृष्णा अरु अहकारते रहित है, निरहंकार होइकरि विचरता है, सो जीवन्मुक्त है, बाहर जो दृष्ट पदार्थ है, तिनविषे जिसकी दृढ भावना है, तृष्णाकरिके सदा इच्छता रहता है, ससारके

दृढ बंधनकरि सो बंध कहाता है, अरु जिसने निश्चयकरिकै अंतरते संकल्पका त्याग किया है, अरु बाह्यते सब व्यवहार करता है, सो पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है, जो बाह्य जगत्विषे बड़े आरंभ करता है, इच्छासंयुक्त दृष्ट आता है, अरु हृदयाविषे सब अर्थोंकी वासना तृष्णाते रहित है, सो मुक्त कहाता है, जिस पुरुषको भोगोंकी तृष्णा मिटिगई है, वर्त्तमानविषे निरंतर विचरता है, सो निर्दुःख निष्कलंक कहाता है॥ हे महाबुद्धिवान्! जिसके अंतर इदं अहंका निश्चय है, तिसको धारिकारि संसारकी भावना करता है, तिसको तृष्णारूप सांकलकारि बांधा, अरु कल-नाकरि कलंकित जान, ताते तू मैं अरु मेरा सत्य अरु असत्यबुद्धि संसारके पदार्थोंका त्याग कर, जो परम उदार पद है, सर्वदा काल तिसविषे स्थित होहु, बंधमुक्त सत्य असत्यकी कल्पनाको त्यागिकरि समुद्रवत् अक्षोभचित स्थित होहु, न तुम पदार्थजाल हौ, न यह तुम्हारे हैं, सब असत्यरूप जानिकै इनका विकल्प त्याग, यह जगत् भ्रांतिमात्र है, इसकी तृष्णा भी भ्रांतिमात्र है, इनते रहित आकाशकी नाई सन्मात्र तू सत्यस्वरूप है, अरु तृष्णा मिथ्यारूप है, तेरा अरु इसका क्या संग है॥ हे रामजी! चार प्रकारका निश्चय जीवको होता है, सो बडे विस्तार आकारको प्राप्त होता है, चरणोंते लेकरि मस्तकपर्यंत शरीरविषे आत्म-बुद्धि है, अरु मातापिताकरि उत्पन्न भया है, यह निश्चय बंधनरूप है, असम्यक्दर्शन भ्रांतिकरि होता है, अरु द्वितीय निश्चय यह है कि, सब भावपदार्थोंते अतीत हौं, बालके अग्रते भी सूक्ष्म हौं, साक्षीभूत सूक्ष्मते अति सूक्ष्म हौं, यह निश्चय भी शांतिरूप मोक्षको उपजाता है, अरु जेता कछु जगजाल है, सो सब पदार्थोंमेंही हौं, आत्मारूप मैं अविनाशी हौं, यह तीसरा निश्चय है, सो भी मोक्षदायक है, अरु चौथा निश्चय यह है कि, मैं भी असत्य अरु जगत् भी असत्य है, इनते रहित आकाशकी नाई सन्मात्र है, यह भी मोक्षका कारण है॥ हे रामजी! यह चार प्रकारका निश्चय मैंने तुझको कहा है, तिनविषे प्रथम निश्चय बंधनका कारण है, और तीनों मोक्षका कारण हैं, सो शुद्ध भाव-नाकरि उपजे हैं, जो प्रथम निश्चयवान् है सो तृष्णारूप सुगंधिकरिकै

संसारविषे भ्रमता है, अरु तीन भावना शुद्ध जीवन्मुक्त विलासी पुरुषकी है जिसको यह निश्चय है कि, सर्व जगत् मैं आत्मस्वरूप हौं तृष्णा अरु राग द्वेष तिसको बहुरि दुःख नहीं देता, अध ऊर्ध्व मध्य मैं आत्माही व्यापा हौं,सब मैंही हौं,मुझते इतर कछु नहीं जिसके अंतर यह निश्चय है, सो संसारके पदार्थोंमें बंधायमान नहीं होता, शून्य प्रकृति माया, ब्रह्मा, शिव, पुरुष, ईश्वर सब तिसके नाम हैं, सो विज्ञानस्वरूप एक आत्मा है सदासर्वदा एक अद्वैत मैं आत्मा हौं, अपर द्वैत भ्रम चित्तमें नहीं सदा विद्यमान सत्ता व्यापकरूप हौं, ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत जेता कछु जगज्जाल है,सो सर्व परिपूर्ण आत्मतत्त्व भरि रहा हौं,जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे सर्व जलरूप हैं तैसे सर्व जगज्जाल आत्मस्वरूपही है, सत्यस्वरूप आत्मते इतर द्वैत कछु वस्तु नहीं, जैसे समुद्रते इतर बुद्बुदे तरंग कछु नहीं, जैसे स्वर्णते इतर कछु भूषण नहीं, तैसे आत्मसत्ताते कोऊ पदार्थ भिन्न नहीं, द्वैत अरु अद्वैत जो जगत्रचनाविषे भेद है, सो परमात्मा पुरुषकी फुरनाशक्ति है, सोई द्वैत अरु अद्वैतरूप होइकरि भासता है, यह अपना है, यह अपरका है, यह भेद सर्वदा सबविषे रहता है, अरु पदार्थोंके उपजने मिटनेविषे सुखदुःख भासता है, तिनको मत ग्रहण करौ, भावरूप जो अद्वैत आत्मसत्ता है, तिसीका आश्रय करौ, भ्रमद्वैतको त्यागिकरि अद्वैत पूर्णसत्ता होहु, संसारके जो कछु भेद भासते हैं, तिनका मत ग्रहण करो, यह भूमिकाकी भावना जो भेदरूप है, सो दुःखदायी जानो, जैसे अंध हस्ती नदीविषे गिरता है। बहुरि उच्छलता है, तैसे तुम पदार्थोंविषे मत गिरो, तुम पूर्णस्वरूप हौ, महात्मा पुरुषको रागदोषका कछु संभव नहीं होता, सर्वगत आत्मा एक अद्वैत निरंतर उदयरूप सर्वव्यापक है, एक अरु द्वैतते रहित भी है, अरु सर्वरूप भी वही है, निष्किंचनरूप भी वही है, न मैं हौं, न यह जगत् है, सब अविद्यारूप है, ऐसे चिंतहु, अरु इसका त्याग करहु, अथवा ऐसे चिंतहु कि ज्ञानस्वरूप सत्य असत्य सब मैंही हौं, तुम्हारा जो स्वरूप है, सो आनंदरूप सर्वका प्रकाशक अजर अमर निर्विकार निष्क्रिय निराकार परम अमृतरूप है, बहुरि कैसा है, जो निष्कलंक जीवशक्तिका जी-

वनरूप है, सर्व कलनाते रहित कारणका कारण है, निरंतर उद्योत ईश्वर विस्तृतरूप है, अनुभवस्वरूप सब अनुभवका बीज है, अपना आप आत्मपद उचितस्वरूप ब्रह्म मैं अरु मेरा भावते रहित है, ताते अहं अरु इदं कलनाको त्यागिकरि अपने अंतर यह निश्चय धरहु, अरु यथाप्राप्त क्रियाको करहु, तुम अहंकारते रहित शांतरूप होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णोपदेशो नाम सप्तदश॰ सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८

जीवन्मुक्तवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिनका हृदय मुक्तस्वरूप है, ऐसे जो महात्मा पुरुष हैं, तिनका यह स्वभाव है कि, असम्यक् दृष्टि देहाभिमानकरि नहीं रहते, लीलाकरि जगत् कार्यविषे विचरते हैं, अरु जीवन्मुक्त शांतस्वरूप हैं, जगत्की गति जो है, सो आदि अंत मध्यविषे विरसरूप है, अरु नाशरूप है, तिसते शांतरूप है, सब प्रकार जो अपना कार्य है, सो करता है, सो सब वृत्तिविषे स्थित हुए हृदयमों ध्येयवासना त्यागी है, निरालंबतत्त्वका आश्रय किया है, सबविषे उद्वेगते रहित सर्व अर्थविषे संतुष्टरूप है, विवेकरूपी जो वन है, तिसविषे सदा विचरते हैं, बोधरूपी बगीचेविषे स्थित है, सबते अतीत पदका अवलंबन किया है, पूर्णमासीके चंद्रमावत् अंतःकरण शीतल भया है, संसारके पदार्थकरि कदाचित् उद्वेगवान् नहीं होता, उद्वेग अरु असंतुष्टत्व दोनोंते रहित है, सो संसारविषे दुःखी कदाचित् नहीं होता सब शत्रुओंके मध्य स्थित होइकरि युद्ध करे, अथवा दया करता दृष्ट आवै, बड़े भयानक कर्म करता दृष्ट आवै, तौ भी वह जीवन्मुक्त है, संसारविषे दुःखी नहीं होता, सदा सुखी रहता है, न किसी पदार्थविषे आनंदमान् होता है, न किसीविषे कष्टमान् होता है, न किसी पदार्थकी इच्छा करता है, न शोक करता है, मौनविषे स्थित यथाप्राप्त कार्य करता है, संसारविषे दुःखते रहित सुखी होता है, जो कोई पूछता है, तो

यथाक्रम ज्योंका त्यों कहता है, अरु पूछेविना मूक जड़ वृक्षवत् हो रहता है इच्छा अनिच्छाते मुक्त ससारविषे दु खी नहीं होता सबको हितकरि बोलता है, कोमल अरु उचित वाणीकरि कहता है, यज्ञादिक कर्म भी करता परतु ससारकार्य्यविषे डूबता नहीं हे रामजी! जीवन्मुक्त पुरुष युक्त अयुक्त नाना प्रकारकी उग्र दिशासंयुक्त जगत्‌की वृत्तिको जानता है जैसे हाथविषे बेलफल होवै तैसे प्रकट जानताहै परंतु परमपदाविषे आरूढ हो- इकरि जगत्‌की गतिको देखता रहता है अपना अत करण शीतल अरु और जीवोंका तप्त देखता है, स्वरूपते कछु द्वैत नहीं देखता है, परतु व्यवहारकी अपेक्षाकरि उसकी महिमा कहा है॥ हे राघव! जिन्होंने चित्त जीता है, अरु परमात्मा देखा है, तिन महात्मा पुरुषोंकी स्वभाववृत्ति मैंने तुझको कही है, अरु जो मूढ है, जिनने अपना चित्त नहीं जीता, भोगोंरूपी कीचड़विषे मग्न हैं, ऐसे गर्दभोंके जो लक्षण हैं, सो हमारे कहनेविषे नहीं आते, तिनको उन्मत्त कहिये, उन्मत्त इसप्रकार है, महा नरककी ज्वाला स्त्री है अरु वह उष्ण नरक अग्निके इंधन हैं, तिसकरि जलते है नानाप्रकारक अर्थोनिमित्त अनर्थ उत्पन्न करते हैं, भोगोंकी दीनता अनर्थरूप है, तिसकरि उनके चित्त हत भए हैं, ससारके आरभ करि दु खी होते हैं, जो नानाप्रकारके कर्म करते हैं, तिनके फल हृदयविषे धारते हैं, तिन कर्मके अनुसार सुखदु ख भोगते हैं, ऐसे जो भोगलंपट हैं, तिनके लक्षण हम कहनेको समर्थ नहीं ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानवान् पुरु- षकी पूर्वदृष्टि कही है,तिसीका तुम आश्रय करो,हृदयसों ध्येय वासनाको त्यागहु, जीवन्मुक्त होइकरि जगत्‌विषे विचरोअन्तरते संपूर्ण इच्छाको त्यागिकरि वीतराग निर्वासनिक होहु, बाह्य सब आचारवान होइकरि लोकोंविषे विचरहु,सर्व दिशा अवस्थाका भलीप्रकार विचारकरि तिनविषे अतुच्छ पद होय, तिसको आश्रय [illegible] विचरो, अंतर सर्व पदार्थोंते निरस अरु बाह्य इच्छा [illegible] रहहु, बाह्य तपायमान होहु ऐसे होइकरि [illegible] आरंभ करो, अरु हृदयकरि म [illegible] कर्ता अरु अंतरते सदा अ [illegible] ।

अब तू ज्ञानवान् हुआ है, सब पदार्थोंकी भावनाका अभाव भया है, जैसे इच्छा होवे, तैसे विचरहु, जो इंद्रियोंका इष्ट पदार्थ हो आवै, तब कृत्रिम हर्षवान् होना, अरु दुःख आय प्राप्त होवै, तब शोक करना, कृत्रिम क्रियाका आरंभ करना, अरु हृदयविषे सारभूत रहना, बाह्य अरु कृत्रिमका अर्थ एक है, अंतरत्यागी बाह्य कर्त्ता ऐसे होइकरि जगतविषे विचरौ, बाह्य क्रिया करहु, अंतर अहंकारते रहित आकाशवत् निर्मल रहौ, कार्य कलनाते रहित होइकरि जगतविषे विचरहु, आशारूप फाँसीते मुक्त होइकरि इष्ट अनिष्टविषे हृदयमें सम रहना अरु बाह्य कार्य करते लोकों-विषे विचरौ, इस चेतन पुरुषको न वास्तवते बंध है, न मोक्ष है, मिथ्या इंद्रजालवत बंध मोक्ष संसारका वर्त्तना है, सब जगत भ्रांतिमात्र है, प्रमा-दकरिकै जगत् भासता है, जैसे तीक्ष्ण धूपकरिकै मरुस्थलविषे जल भासता है, तैसे अज्ञानकरिकै जगत भासता है, आत्मा अबंध सर्व व्यापकरूप है तिस सर्वात्माको बंध कैसे होवै, जो बंध नहीं, तौ मुक्त कैसे कहिये, आत्मत-त्त्वके अज्ञानकरि जगत् भासता है, तत्त्वज्ञानकरि लीन हो जाता है, जैसे जेवरीके अज्ञानकरिकै सर्प भासता है, जेवरीके जाननेते सर्प लीन हो जाता है॥ हे रामजी! तू तो ज्ञानवान् हुआ है, अपनी सूक्ष्म बुद्धि करिकै निरहंकार भया है अब आकाशकी नाईं निर्मल स्थित होहु, तू असत्यरूप है, तौ संपूर्ण मित्र भ्रात तैसेही हैं, तिनकी ममताको त्यागकरि जो आप कछु न हुआ, तौ भावना किसकी करैगा, अरु जो तू सत्यस्व-रूप है, तौ अत्यंत सत्य आत्माकी भावनाकरि दृश्य जगत्की भावनाते रहित होहु यह जो जगतविषे अहं मम भोगवासना है, सो प्रमाद-करिकै भासती है, अहं मम बांधवोंका कर्म शुभ आदिक जो जगजाल भासता है, सो आत्माका संयोग इनसाथ कछु नहीं, इनकरि तू काहेको शोकवान् होता है तू आत्मतत्त्वकी ऐसी भावना कर तेरा संबंध किसीके साथ नहीं यह प्रपंच भ्रममात्र है जो निराकार अजन्मा पुरुष होवै तिसको बांधव पुत्र दुःख सुखका कम कैसे होवै स्वतः अजन्मा निराकार निर्विकार है तेरा संबंध किसीसे नहीं इनका शोक तू काहेको करता है, शोक करनेका स्थान तब होता है, जो नाशरूप होवै सो न कोऊ जन्मता है, न मरता है,

जो जन्म मरण भी मानिये तौ आत्मा तिसको सत्ता देनेहारा है,इस शरीरके आगे भी अरु शरीरके पाछे भी होवैगा, आगे जो तुम्हारे बांधव बडे बुद्धिवान् सात्त्विक गुणवान् अनेक व्यतीत भये हैं, तिनका शोक, काहेको नहीं करता ? जैसे वे थे, तैसे ये भी हैं, जो प्रथम थे, सो अब भी हैं, तू शांतरूप है, ताते मोहको प्राप्त क्यों होता है, जो सत्यस्वरूप है तिसका न कोऊ शत्रु है, न नाश होता है, ताते तू शोक करनेको योग्य नहीं जो तू ऐसे मानता है, अब मैं हौं, आगे न होऊँगा, तौ भी वृथा शोक क्यों करता है ? तेरा संशय नष्ट भया है, कष्टसंयुक्त काहेको बनता अपनी प्रकृतिविषे हर्षशोकते रहित होइकरि विचरहु, संसारके सुख दुःखविषे समभाव रहहु,सर्वत्र परमात्मा व्यापकरूप स्थित है,तिसते इतर कछु नहीं,तू आत्मा आनंद स्वच्छ आकाशवत् विस्तृतरूप है, अरु नित्य शुद्ध प्रकाशरूप है, जगत्के पदार्थोंनिमित्त क्यों शरीरको सुखाता है, सर्व पदार्थजातविषे एक आत्मा व्यापक होता है जैसे मोतीकी मालाविषे एक सूत्र तागा व्यापक होता है, तैसे आत्मा अनुस्यूत है, ज्ञानवानोंको सदा ऐसेही भासता है, अरु अज्ञानीको ऐसे नहीं भासता, ताते ज्ञानवान् होइकरि सुखी होहु, अरु यह जो संसरणरूप संसार भासता है, सो प्रमादकरि सारभूत होगया है, अरु तू ज्ञानवान् शांतबुद्धि है, दृश्य भ्रममात्र संसारका क्या रूप है, भ्रम अरु स्वप्नमानते इतर कछु नहीं, स्वप्नविषे क्या क्रम अरु क्या वस्तु है ? सब मिथ्याही है,तैसे यह संसार है सर्वशक्ति जो सर्वात्मा है, तिसविषे जो भ्रममात्र शक्ति, है तिसकरि यह संसार माया रची है, सो न सत्य है, वास्तवते पूछे तौ केवल ज्ञानस्वरूप एक आत्मसत्ताही स्थित है, जैसे सूर्य प्रकाशता है, तिसको न किसीको द्वेष है, न किसीकेसाथ स्नेह है, सर्वरूप सर्वत्र सर्वदा सर्वका ईश्वर है, तिस सत्ताका आभास संवेदन स्फूर्त्ति है तिसकरि नानारूप जगत भासता है, कई भिन्नभिन्नरूप निरंतरही उत्पन्न होते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तैसे देहधारी जैसी वासना करता है, तिसके अनुसार जगतविषे विचरते हैं, उपजते हैं, अरु चक्रकी नाईं भ्रमते हैं, स्वर्गविषे जो स्थित जीव है, सो नरकको जाते हैं, अरु जो

नरकविषे स्थित है, सो स्वर्गको जाते हैं, योनिते योन्यतर अरु द्वीपते द्वीपांतरको जाय प्राप्त होते हैं, अज्ञानकरिकै धैर्यवान् कृपणताको प्राप्त होता है, अरु कृपण धैर्यको प्राप्त होता है, इसप्रकार भूत उछलते हैं, अरु गिरते हैं, अज्ञानकरिके अनेक भ्रमको प्राप्त होते हैं, आत्मसत्ता एकरूप स्थित है, स्थिर स्वच्छ अपने आपविषे अचल है, दुःखभ्रम तिसविषे कोऊ नहीं पाता, जैसे अग्निविषे वर्फका कणका नहीं पाता, तैसे जो आत्मसत्ताविषे स्थित है, तिनको दुःखक्लेश कोऊ नहीं होता, उनका हृदय शीतल रहता है, सो आत्मसत्ताकी वड़ाई है, संसारविषे यही अवस्था है, जो वडे वडे ऐश्वर्यकरि संपन्न भाग्यवान् दृष्ट आते थे, सो कितनेक दिन पीछे नष्ट होते देखे हैं, तू अरु मैं इत्यादिक भावना आत्माविषे मिथ्या भ्रमकरिकै भासती है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे यह बांधव हैं, यह अन्य है, यह मैं हौं, इत्यादिक मिथ्या दृष्टि है, सो तेरी अब नष्ट भई है, संसारकी जो विचारदृष्टि है, जिसकरि जीव नष्ट होते हैं, तिसको मूलते काटिकरि तुम जगत्‌विषे क्रिया करो, जैसे ज्ञानवान् जीवन्मुक्त संसारविषे विचरते हैं तैसे विचरो भारवाहककी नाईं भ्रमविषे नहीं वर्तना जहां नाश करनेहारी वासना उठे, तहां यह विचार करहु कि, यह पदार्थ मिथ्या है, तब वासना शांत हो जावैगी, यह बंध है, यह मोक्ष है यह पदार्थ नित्य है, इत्यादिक गिनती लघुचित्तविषे उठती है, उदारचित्तविषे नहीं उठती, उदारचित्त जो ज्ञानवान् पुरुष है, तिनके आचरणको विचारता हुआ देहदृष्टि नष्ट हो जावैगी, ऐसे विचार कि, जहां मैं नहीं सो पदार्थ कोऊ नहीं, सब मैही हौं, ऐसा पदार्थ कोई नहीं, जो मेरा नहीं, सब मेराही है, ऐसे विचारकरि देहदृष्टि तेरी नष्ट हो जावैगी, ऐसा जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो किसी संसारके पदार्थकरि उद्वेगको प्राप्त नहीं होता, अरु किसी पदार्थके अभाव हुएते आतुर भी नहीं होता, वह चिदाकाशरूप सबको सत्य स्थितरूप देखता है, आकाशकी नाईं आत्माको व्यापक देखता है, भाई बांधव भूतजातको अत्यंत असत्यरूप देखता है, नानाप्रकारके

अनेक जन्मनिपे भ्रमकरिके अनेक वांधव हो गए हैं, वास्तवते त्रिलोक अरु बांधवविषे भी बांधव वही है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णन नाम अष्टादश सर्ग ॥ १८ ॥

एकोनविंशति मतः सर्गः १९

पावनबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रसंगऊपर एक पुरातन भाईयोंका इतिहास है, वडे भाईने छोटे भाईसे कहा है एक मुनीश्वरके दो पुत्र थे, यह बांधव है, यह अन्य है, इसी प्रसंगकेऊपर एक कथा है, सो बांधव अरु मोक्ष आदिक जो नानाप्रकारकी कलना है, तिसको दूर करनेहारी है, पवित्र अरु आश्चर्यरूप कथा है, सो तुम श्रवण करो ॥ हे रामजी ! इसी जम्बुद्वीपविषे किसी स्थानविषे महेंद्रनामा एक पर्वत है, तहां कल्पवृक्ष हैं, तिनकी छायाके नीचे देवता किन्नर आय विश्राम करते हैं तिस पर्वतके वडे शिखर ऊर्ध्वको गए हैं, ब्रह्मलोकपर्यंत प्राप्त भए हैं तिसके ऊपर देवता सामवेदकी ध्वनि करते हैं अरु गायन करते हैं, किसी ओरते जलकरि पूर्ण वडे मेघ विचरते हैं, कहूं पुष्पकरि पूर्ण लता है, कहूं जलके झरने वहते हैं, कंदरोंकेमाय उछलते हैं, मानों समुद्रके तरंग जाते हैं, कहूं पक्षी शब्द करतेहैं, कहूं कंदराविषे सिंह गर्जते हैं, कहूं कल्पवृक्ष कदंबवृक्ष हैं, कहूं अप्सरागण विचरते हैं, गंगाका प्रवाह चला जाता है, किसी स्थानविषे महासुंदर रत्नमणि रमणीय विराजते हैं, तहां गंगाके तटपर स्नाननिमित्त मुनीश्वर विश्राम करता भया; सो कैसा तट है, सुंदर वृक्ष अरु स्वर्णके कमलकरि शोभता है, तहां महातपस्वी ज्ञानवान् उदारबुद्धि मुनि दीर्घतपा भया है, तपकी मानों मूर्त्ति स्थित है, मुनि स्त्रीसंयुक्त गंगाके तटपर शोभता भया, तिसके दो पुत्र थे, महासुंदर चंद्रमाकी नाईं तिनका मुख था, पुण्य अरु पावन जिनका नाम तिन संयुक्त तटपर रहने लगा, जब केताक काल व्यतीत भया, तब पुण्य नामक जो पुत्र था, सो ज्ञानवान

होता भया, अरु पावन अर्धप्रबुद्ध भया, जैसे सन्ध्याकी पूर्व अवस्थामें कमल अर्धोन्मीलित होता है, तैसे सो पुण्यगुणोंकरि पावनसों अधिक होता भया, अरु पावन लोलुप अवस्थाविषे रहा, पुण्य ज्ञानवान् भया, जब काल चक्रके फिरते हुए केतेक वर्षगण व्यतीत भए,तब दीर्घतपाका शरीर जर्जरीभूत हो गया, शरीरकी क्षणभगुर अवस्था देखिकरि वृत्ति देहते विरक्त करता भया, अर्थ यह कि, विदेह होनेकी इच्छा करता भया, तब दीर्घतपाको पुर्यष्टका कलनारूप शरीरको त्यागत भई, जैसे सर्प कचुकीको त्याग देवै, तैसे पर्वतकी कदराविषे जो आश्रम था, तिसविषे शरीरको उतारि दिया, तव कलनाते रहित अचैत्य चिन्मात्र सत्तास्वरूपविषे स्थित भया, रागद्वेषते रहित जो पद है, तिसविषे शरीरको त्यागिकरि प्राप्त भया, जैसे धूम्र आकाशविषे जाय स्थित होवै, तैसे चिदाकाशविषे स्थित भया, तब मुनीश्वरकी स्त्री भर्त्ताका शरीर प्राणोंते रहित देखत भई, जैसे दडते कमल काटा होवै, तैसे चित्तविना शरीरको देखत भई, चिरपर्यंत योगकर्म किया था, तिसकरि अपने शरीरको त्यागने लगी, तब प्राण अरु पवनको वश करिकै शरीरको त्यागत भई, जैसे भँवरा कमलिनीको त्यागै तैसे त्यागिकरि भर्त्ताके पदको प्राप्त भई, जैसे आकाशविषे चद्रमा अस्त होता है, अरु तिसकी प्रभा तिसके पाछे अदृष्ट होवै, तैसे दीर्घतपाकी स्त्री दीर्घतपाके पाछे अदृष्ट भई, जब दोनों विदेहमुक्त भए, तब पुण्य जो बड़ा पुत्र था, तिसके देहिक कर्मविषे सावधान होइकरि कर्म करने लगा, अरु पावन मातापिताते रहित दुःखको प्राप्त भया, शोककरिकै चित्त उपहत व्याकुल होगया, वनकुंजोंविषे भ्रमने लगा, जब पुण्य माता पिताकी देहादिक क्रिया कर रहा, तब जहां पावन शोककरि विलाप करता था तहां आया, अरु शोकसयुक्त भाईको देखिकरि कहत भया ॥ पुण्य उवाच ॥ हे भाई ! शोकगणको क्यों प्राप्त भया है, जो वर्षाकालके मेघवत आसुओंका प्रवाह चला जाता है, ऐसा रुदन तू करता है ॥ हे बुद्धिमान ! तू किसका शोक करता है, तेरे पिता अरु माता तो आत्मपदको प्राप्त भये हैं, जो मोक्षपद है, सोई सर्व जीवोंका स्थान है, अरु ज्ञानवान्का स्वरूप है, यद्यपि

सबका अपना आप स्वरूप एकही है, तौ भी ज्ञानवान्को इसप्रकार भासता है, अरु अज्ञानीको ऐसे नहीं भासता, सो तौ वह ज्ञानवान् थे, अपने स्वरूपको प्राप्त भये हैं, तिनका शोक तू किसनिमित्त करता है, यह क्या भावना तुझने बांधी है, मोक्षदायक जो संसारविषे शोक है, सो तू करता नहीं अरु जो शोक करने योग्य नहीं सो करता है, न वह तेरी माता थी, न वह तेरा पिता था, न तू उनका पुत्र था अरु कई तेरे माता पिता हो गए हैं, अरु कई पुत्र हो गए है, असंख्यवार तू इनका पुत्र हुआ है, अरु असंख्य पुत्र उनने उत्पन्न किये है, जैसे नदी अनेक तरंगोंको उत्पन्न करती है, तैसे अनेक तेरे पिता माता हुए है, अरु तू उनका पुत्र होइकरि मरगया है, जैसे पत्र फूल फल लता वृक्षमें लगते हैं, अरु नष्ट हो जाते है, ऐसे पुत्र मित्र बांधवके समूह तेरे जन्मजन्मके बीति गए है, जैसे ऋतुऋतुविषे बड़े वृक्षोंकी शाखामें फल होते है, अरु नष्ट हो जाते हैं, तैसे जन्म होते है, अरु नष्ट होते है, तू काहेको मातापिताके स्नेहकरि शोक करता है, अपर जो तेरे सहस्रों माता पिता होइकरि बीति गए है, तिनका शोक काहेको नहीं करता जो तू इस जन्मके बांधवोंका शोक करता है, तौ उनका भी शोक कर ॥ हे महाभाग! जो प्रपंच तुझको दृष्ट आता है सो जाग्रत् भ्रम है, परमार्थते न कोऊ जगत है, न कोऊ मित्र है, न कोऊ बांधव है जैसे मरुस्थलविषे बड़ी नदी भासती है, परंतु तिसविषे जलका एक बूंद भी नहीं पाता तैसे वास्तवते जगत् कछु नहीं पाता, जो बड़े लक्ष्मीवान् तुझको भासते हैं छत्र चामरों संपन्न शोभते हैं सो यह लक्ष्मी चंचलस्वरूप है केते दिनोंते अभाव हो जाते है ॥ हे पुत्र! तू परमार्थदृष्टिकरिके विचारि देख न तू है, न जगत् है, यह दृश्य भ्रांतिरूप है, इसको अतरते त्याग इस मायादृष्टिकरि वारंवार उपजता है अरु विनशता है यह जगत अपने संकल्पते उपजा है इसविषे सत् पदार्थ कोऊ नहीं अज्ञानरूप मरुस्थल है तिसविषे जगत्रूपी नदी है, तिसते शुभ अशुभरूपी तरंग उपजते हैं, बहुरि नष्ट हो जाते है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे पावनबोधवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०.

पावनबोधवर्णनम् ।

पुण्य उवाच ॥ हे भाई ! कई माता, कई पिता हो होकरि मिटि गए है जैसे वायुसो धूलिके कण उड़ते है तैसे बांधव है न कोऊ मित्र है न कोऊ शत्रु है, संपूर्ण जगत् भ्रांतिरूप है, तिसविषे जैसी भावना फुरती है, तैसेही हो भासती है, बांधव मित्र पुत्र आदिकोंविषे स्नेह होता सो मोहकरि कल्पित है, अपने मनकरि मातापितादिक संज्ञा कल्पी है, प्रपंचविषे जैसी संज्ञा कल्पता है, तैसी हो भासती है जहां बांधवकी भावना होती है, तहां बांधव भासता है, जहां औरकी भावना होती है, तहां और हो भासता है, अरु जो अमृतविषे विषकी भावना होती है, तौ अमृत भी विष हो जाता है, कछु अमृतविषे विष नहीं, भावनारूप भासताहै तैसे न कोऊ बांधवहै न कोऊ शत्रु है, विद्यमान सर्वकाल एक सर्वगत सर्वात्मा पुरुष स्थित है तिसविषे अपनी अरु औरकी कल्पना कोऊ नहीं अरु जेते कछु देहादि है सो रक्तमांसादिक समूह करि रचे है तिनविषे अहं सत्ता सो कौन है ? अहंकार अरु चित्त बुद्धि मन कौन है, परमार्थदृष्टिकरि यह तौ कछु नहीं विचार कियेते न तू है न मैं हौं पुण्य अरु पावन दोनों मिथ्या ज्ञानकरि भासते है एक अनंत चिदाकाश आत्मसत्ता सर्वदा है, तिसविषे तेरी माता कौन है, अरु पिता कौनहै, सर्व मिथ्या भ्रमकरिकै भासता है, वास्तवते कछु नहीं, शरीरकरि देखिये, तौ जेते कछु शरीर हैं, सो पंचतत्त्वोंकरि रचे जडरूप हैं, तिनविषे जो चेतन है, सो तौ एकरूप है, तिसविषे अपना अरु पराया कौन है, इस भ्रमदृष्टिको त्यागिकरि तत्त्वका विचार कर, मिथ्या भावनाकरिकै मातापिताके निमित्त क्यों शोकवान् हुआ है, जो सम्यक् दृष्टिको आश्रय करिकै तिस देहका शोक कर्ता है, तौ और जन्मोंके तेरे बांधव मित्र हैं, तिनका शोक क्यों नहीं करता, अनेक पुष्पलताविषे तू मृगपुत्र हुआ था, तिस जन्मके तेरे अनेक मित्र बांधव थे, तिनका शोक क्यों नहीं करता

अनेक कमलोंसयुक्त तालावमें हस्ती आय विचरे थे, तहां तू हस्तीका पुत्र था, तिन हस्ती बांधवोंका शोक क्यों नहीं करता, बड़े वनविषे वृक्ष हुए थे, तेरे साथ फल पत्र हुए थे,अनेक वृक्ष तेरे बांधव थे,तिनका शोक क्यों नहीं करता, बहुरि नदी तलावविषे मत्स्य हुए थे, तिन मत्स्य जातिके बांधव थे, तिनका शोक क्यों नहीं करता, बहुरि दशार्ण देशविषे काक वानर हुआ,तुषार्ण देशविषे तू राजपुत्र हुआ बहुरि वनकाक हुआ, वंगदेशविषे तू हाथी भया, विराज देशविषे तू गर्दभ हुआ, सावल देशविषे सर्प भया, अरु वृक्ष हुआ, वग देशविषे गृध्र हुआ, मालव देशविषे पर्वतविषे पुष्पलता हुआ, मंदराचल पर्वतविषे गीदड़ हुआ, कोशल देशविषे तू ब्राह्मण भया। वग देशविषे तीतर हुआ, तुषार देशविषे घोड़ा भया, बहुरि कीट अवस्थाविषे अनेक वार भया, बहुरि एक नीचग्रामविषे बछरा हुआ, पंचदश मास तहां रहा, बहुरि एक वनविषे तडाग था, तहां कमल पुष्प विषे भ्रमर भया, सो तू मेरा भाई है, इत्यादिक अनेक जन्म तू पायेहैं, जम्बूद्वीपविषे तू अनेकवार उत्पन्न भया है॥ हे भाई। इसप्रकार वासनापूर्वक वृत्तांत मैंने कहाहै,जैसी वासना हुईहै तैसे जन्म तू पायाहै,सो सूक्ष्म निर्मल बुद्धिकरि देखता हौं कि, ज्ञानविना तू अनेक जन्म पाया है,तिन जन्मोंको जानिकै किस किस बांधवका शोक करेगा, अरु किसका खेद करेगा, जैसे वह बांधव थे, तैसे यह भी जानि ले, अरु मेरे भी अनेक बांधव हुए हैं जिनजिनविषे जन्म पाया है, अरु बीति गए हैं, तैसे सर्व मेरे स्मरणविषे आते हैं, अरु अब मुझको अद्वैत ज्ञान भया है॥ हे भाई। त्रिगर्तदेशविषे मैं तोता भया, तड़ागके तटपर हंस भया हौं, पंखीविषे काक हुआ हौं, बहुरि वेलि हुआ हौं, वंगदेशविषे वृक्ष हुआ, इस वन पर्वतविषे बड़ा उष्ट्र होइकरि विचरा हौं, पांडुदेशविषे राजा हुआ हौं मलयाचल पर्वतकी कंदराविषे गीदड हुआ हौं, सो तू वहां बड़ा भाई भया, तहां मैं मृग होइकरि दश वर्ष रहा, बहुरि पंचमास मृग रहा, सो तेरा भ्राता होइकरि रहा, सो तेरा बड़ा भ्राता हौं, इसप्रकार ज्ञानते रहित वासना कर्मके अनुसार जन्मविषे भ्रमते फिरे हैं, मैं तुझको सर्व कहा है, सब मुझको स्मरणविषे आता है, इसप्रकार जगजालकी स्थिति मैं तुझ-

को कही है, तेरे मेरे अनेक जन्मके माता पिता भाई मित्र भए हैं, तिनका शोक तू क्यों नहीं करता ? यह संसार दुःखसुखरूप अप्रमाण भ्रमरूप है, इस कारणते सबको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, सब प्रपंच भ्रांतिरूप है, इसकी वासना त्याग, जब अहंकार वासनाको त्याग करै, तब तिस पदको प्राप्त होवैगा, जहाँ ज्ञानवान् प्राप्त होते हैं, ताते हे भाई ! यह जो जीवभाव है, जन्ममरण ऊर्ध्व जाना बहुरि गिरना यह जो व्यवहार है, तिसविषे बुद्धिवान् शोकवान् नहीं होता, दुःखके निवृत्ति अर्थ अपने स्वरूपका स्मरण करते हैं, सो स्वरूप भावअभावते रहित जरामरणते रहित नित्य शुद्ध परमानंद है, तू तिसका स्मरण कर, मूढ मत होहु, तुझको न सुख है, न दुःख है, न जन्म है, न मरण है, न माता है, न पिता है, तू एक अद्वैतरूप आत्मा है, और किसीका साथ संबंध नहीं, कादेते कि, इतर कछु नहीं ॥ हे साधु ! यह जो नानाप्रकारका संसारविषयसंयुक्त यंत्र है, अज्ञानरूप नटुआ इसको ग्रहण करता है, इष्ट अनिष्टकरि बधायमान् होता है, जो आत्मदर्शी पुरुष है, तिनको कछु क्रिया स्पर्श नहीं करती, केवल सुखरूप है, अरु जो अज्ञानी है, सो देह इंद्रियोंके गुणोंविषे तद्रूप हो जाता है, इष्ट अनिष्टकरि सुखदुःखका भोक्ता होता है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो देखनेहारे साक्षीभूत होते हैं, कर्ता हुआ भी अकर्तारूप है, जैसे दीपक प्रकाशरूप होइकरि रात्रिको सब जगत्‌के अर्थ सिद्ध करता है, अरु अपनी इच्छाते रहित है, ताते अकर्ता है, तैसे ज्ञानवान् देह, इंद्रियोंके कर्म करता भी अकर्ता है, इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे रागद्वेषते रहित है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब आइ पड़ता है, परंतु दर्पण भले बुरे रंगकरि रंजित नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् रागद्वेषकारिकै रंजित नहीं होता, सब इच्छाते अरु भयकलनाते रहित स्वच्छ आत्मसत्ता सदा प्रफुल्लितरूप है, पुत्र कलत्र बांधवोंके स्नेहते जिसका हृदयकमल रहित है, सर्व इच्छा अहं ममते रहित अपने स्वरूपविषे संतुष्टवान् होता है, ताते मिथ्या देहादिकोंकी भावनाको त्यागिकरि अपने नित्य शुद्ध शांत परमानंदस्वरूपविषे तू भी स्थित होहु, तू परब्रह्मरूप है, अरु अति निर्मलरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे पावनबोधो नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशतितमः सर्गः २१.

तृष्णाचिकित्सोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब इसप्रकार पुण्यने पावनको बोध उपदेश किया, तब पावन बोधको प्राप्त भया, जैसे प्रात कालविषे पृथ्वी प्रकाशवान् होती है, अरु तम नष्ट हो जाता है, तैसे पावनको बोध प्राप्त भया, तब दोनों ज्ञानवान्के पारगामी होइकरि वनविषे विचरने लगे, निरिच्छित आनंदित पुरुष चिरकालपर्यंत विचरत भये, बहुरि दोनों विदेहमुक्त निर्वाणपदको प्राप्त हुए, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे प्रारब्ध कर्मके क्षीण हुएते दोनों विदेहमुक्त भए॥ हे रामजी! इसप्रकार तू भी जान, जैसे वह मित्र बांधव धनादिकके स्नेहते रहित होइकरि विचरे, तैसे तुम भी स्नेहते रहित होइकरि विचरो, जैसे उन्होंने विचार किया, तैसे तू भी कर इस मिथ्यारूप संसारविषे किसकी इच्छा करे, और किसका त्याग करे, ऐसे विचारकरि अनंत इच्छा अरु तृष्णाका त्याग करना यह औषध है, इच्छा तृष्णाकी पालना औषध नहीं काहेते जो पालनेकरि पूर्ण कदाचित् नहीं होती, जेता कछु जगत् है, सो चित्तते उत्पन्न भया है, चित्तके नष्ट हुएते संसारदुःख नष्ट हो जाता है, जैसे काष्ठके पावनेकरि अग्नि बढता जाता है, अरु काष्ठोंते रहित शांत हो जाता है, तैसे चित्तकी चितवनाकरिके जगत् विस्तारको पाता है, चितवनाते रहित शांत हो जाता है॥ हे रामजी! ध्येय वासनावान् त्यागरूप स्थपर आरूढ होइकरि होहु, अरु करुणा दया उदारतासंयुक्त होइकरि लोकोंविषे विचरहु इष्ट अनिष्टविषे रागद्वेषते रहित होहु, यह ब्रह्मस्थिति तुमको कही, निष्काम निर्दोष स्वस्थरूपको पायकरि बहुरि मोहको प्राप्त नहीं होता, इसका परम आकाशही हृदय मान विवेक है, बुद्धि इसकी सखी है, जिसके निकट विवेक अरु बुद्धि है, सो परम व्यवहार करते भी संकटको प्राप्त नहीं होते, ताते तू परम विवेक अरु बुद्धिको संग लेकरि जगतविषे विचरेगा, तब संकट दुःखकरि मोहित न होवेगा, नानाप्रकारके दुःख संकट खेद आदिक विकाररूप समुद्र है, जिसके तरनेनि-

मित्त एक अपना धैर्यरूपी बेड़ा है और कोऊ उपाय नहीं सो धैर्य क्या है दृश्य जगत्सों वैराग्य अरु सच्छास्त्रका विचार अरु श्रेष्ठ गुण अभ्यास संयुक्त आत्मपदकी प्राप्ति होती है, सो आत्मपद त्रिलोकीके ऐश्वर्यरूपी रत्नोंका भांडार है,जो त्रिलोकीके ऐश्वर्यकरि भी नहीं पाता, सो वैराग्यविचार अभ्यास बड़े गुणोंकरि चित्तके धारणेसों पाता है, तबलग यह पुरुष जगत्कोशविषे उपजता है,जबलग मन तृष्णारूपी तापते रहित नहीं होता तबलग कष्ट है, जब आत्मविवेकसों मन पूर्ण होता है, तब सर्व जगत् अमृतरूप भासता है, जैसे जूतीके पहिरनेकरि पृथ्वी सर्व चर्मसों वेष्टित होजाती है, तैसे पूर्णपद इच्छा तृष्णाके त्यागनेकरि पाता है, जैसे शरत्कालका आकाश मेघते रहित निर्मल होता है, तैसे इच्छाते रहित पुरुष निर्मल होता है, जिन पुरुषोंके हृदयविषे आशा फुरती है तिसके वश हुए शून्यचित्त हो जाता है, जैसे अगस्त्य मुनीनि समुद्रको पान किया तब समुद्र जलते रहित शून्य हो गया, तैसे आत्मजलके रहित समुद्रवत चित्त शून्य हो जाता है, जिस पुरुषके चित्तरूपी वृक्षविषे तृष्णारूपी चचल मर्कटी रहती है, तिसको स्थिर होने नहीं देती, क्षोभायमान सदा होती है, अरु जिसका चित्त तृष्णाते रहित है, तिस पुरुषको तीनों जगत् कमलकी डोडीवत् हो जाते हैं, योजनोंके समूह गोपदवत् सुगम हो जाते हैं अरु महाकल्प अर्धनिमेषवत् हो जाता है ॥ हे रामजी ! ऐसा शीतल चद्रमा अरु हिमालय पर्वत भी नहीं, ऐसा शीतल केलेका वृक्ष अरु चदन भी नहीं, जैसा शीतल चित्त तृष्णाते रहित होता है, पूर्णमासीका चद्रमा अरु क्षीरसमुद्र भी ऐसा सुदर नहीं होता, अरु लक्ष्मीका मुख भी ऐसा नहीं होता, जैसा इच्छाते रहित मन शोभायमान होता है, जैसे चद्रमाकी प्रभाको मेघ आच्छादि लेता है,अरु जैसे शुद्ध स्थानोंको अपवित्र लेपन मलिन करता है, तैसे आशारूप पिशाचिनी पुरुषोंको मलिन करती है, चित्तरूपी जो वृक्ष है, तिसके बड़े टास दिशा विदिशा पसर रहे हैं, सो आशारूप हैं, जब विवेकरूपी कुहाडेसे तिसको काटे तब अचित्त पदकी प्राप्ति होवै, अरु जिसकी अनेक शाखा हैं, तिसको जब काटे तब एक स्थानरूपी चित्त रहै अविवेक अधैर्य शाखा तृष्णासंयुक्त

है, सो अनेक शाखा बहुरि होवैगी, तब आत्मधैर्यको धरहु, जो चित्त वृद्धताको न प्राप्त होवै, उत्तम धैर्यकरिकै चित्त जब नष्ट हो जावैगा, तब अविनाशी पदको प्राप्त होवैगा। हे रामजी ! उत्तम हृदयरूपी क्षेत्र है, तिसविषे जब चित्तकी स्थिति होती है, तब आशारूपी दृश्यको नहीं उपजने देती, ब्रह्मरूप शेष रहता है, जब तुम्हारा चित्तवृत्तिते रहित अचित्तरूप होवैगा, तब मोक्षरूप जो विस्तृत पद है, सो प्राप्त होता है, अरु चित्तरूपी उलूक पक्षी है, तिसकी तृष्णारूपी स्त्री है, ऐसा पक्षी जहां विचरता है, तहाँ अमंगलको विस्तारता है, जहा उलूकपक्षी विचरते हैं, तहाँ उजाड़ होती है, विवेकादि जन ताते रहित हो गये है, ताते तू चित्त-की वृत्तिते रहित होइ, ऐसे होइकरि विचरैगा, तब अचिंत्य पदको प्राप्त होवैगा, जैसी २ वृत्ति फुरती है, तैसा तैसा रूप जीनको हो जाता है, इस कारणते चित्त उपशमके निमित्त तुम यही वृत्ति धरो, जिसकरि आत्म-पदकी प्राप्ति होवै ॥ हे महात्मा पुरुष ! जिसको संसारके पदार्थोंकी इच्छा ईषणा उपशम हुई है, अरु भावअभावते मुक्त भया है चित्त जिसका, सो उत्त म पदको पाता है, अरु जिसका चित्त आशारूपी फाँसीसे बांधा है, सो मुक्त कैसे होवै, आशासयुक्त कदाचित मुक्त नहीं होता, अरु सदा बधायमान् रहता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सोपदेशो नाम एकविंशतितम सर्ग ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितम· सर्ग· २२

विरोचनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो मैंने तुमको उपदेश किया है, तिसको विचारो, हे रघुकुलआकाशके चन्द्रमा ! बलवंत बुद्धिसों मेरे वच-नोंको विचारिकरि निर्मल ज्ञानको प्राप्त होहु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्मोंके वेत्ता ! तुम्हारे प्रसादते जो कछु जानने योग्य था, सो जाना है, अरु पाने योग्य पद पाया है, निर्मल पदविषे विश्राम किया है, भ्रि-भ्रमरूपी मेघते रहित शरत्कालके आकाशवत् निर्मलचित्त भया हौं,

मोहरूपी अहंकार नष्ट हो गया है, अमृतकरिके हृदय पूर्णमासीके चंद्रमावत् शीतल भया है, संशयरूपी मेघ नष्ट हो गया है, परंतु तुम्हारे वचनोंरूपी अमृतको पान करता तृप्त नहीं होता, अरु जिसप्रकार बलिको विज्ञानबुद्धि भेद प्राप्त भया है, सो बोधकी वृद्धिके निमित्त मुझको ज्योंका त्यों कहो, नम्रीभूत शिष्यप्रति कहते हुए बड़े खेद नहीं मानते, ताते प्रगट कर कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव! बलिका जो उत्तम वृत्तांत है सो मैं कहता हौं, सो तू श्रवण कर, तिसकरि निरंतर बोधको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! इस जगतकी किसी एक दिशाविषे जिसका पाताल नाम प्रसिद्ध है, सो इस लोकके अध॰ पृथ्वीविषे स्थित है, तिस पातालविषे बलिराजा रहता था, महाक्षीरसमुद्रकी नाईं सुंदर उज्ज्वल स्थान है, कहूं महासुंदर नागकन्या विराजती हैं, कहूं विषधर सर्प विराजते हैं, सहस्र शीश जिनके, कहूं दैत्यपुत्र विराजते हैं, कहूं कट कट शब्द होते हैं, कहूं सुंदर सुखके स्थान हैं, कहूं जीवोंके परंपरासमूह नरकोंविषे जलते हैं, कहूं दुर्गंधके स्थान हैं, सप्त पाताल हैं, सर्वविषे जीव स्थित हैं कहूं रत्नकरि खचित स्थान है, कहूं देवता अरु दैत्य जिसके चरणोंको शीशपर धरते हैं ऐसे भगवान् कपिलदेव बैठे हैं, कहूं सुगंधित रत्नका बाग है, ऐसे पातालविषे दो भुजाकरि पालित करी है पृथ्वी जिसने, ऐसा दानवोंविषे श्रेष्ठ विरोचनका पुत्र राजा बलि होता भया, सर्व देवता विद्याधर अरु किन्नर जिसने लीलाकरिके जीते हैं, अरु त्रिलोकी अपने वश कर छोड़ी है, सब टहलुएवत् हो रहे हैं, सर्व देवतोंका राजा जो इंद्र है, सो तिसके चरणसेवनकी वांछा करता है, अरु त्रिलोकीविषे जो जाति जातिके रत्न हैं, सो सब तिसके विद्यमान् रहते हैं, सब शरीरोंकी रक्षा करनेहारा, अरु भावनाके धर्मोंको धरनेहारा, विष्णुदेव जिसका द्वारपाल है, अरु ऐरावत हस्ती, जिसके गंडस्थलसे मद झरता है, सो इंद्रका हस्ती तिसकी वाणी सुनि भयमान होता है, जैसे मोरकी वाणी सुनिकरि सर्प भयमान होता है ऐसा तिसका तेज, जैसे सप्त समुद्रोंका जल बुदिड श्रीर शोष लेती है, जैसे प्रलयकालके द्वादश सूर्यकरि समुद्र सूखने लगता है, अरु ऐसे यज्ञ करे जिसके

क्षीर घृतकी आहुतीका धुँवा मेघवादल होइकरि पर्वतोंपर विराजे, अरु जिसकी दृढ दृष्टिसों देखनेकरि कुलाचलपर्वत भी नम्रीभूत हो जावें, जैसे फलोंकरि पूर्ण लता नमती है, तैसे अरु लीला करिके भुवनको निस्तारसहित जीता है त्रिलोकीको जीतिकरि दशकोटि वर्षपर्यंत राजा बलि राज्य करता भया, तब एक दिन राजा बलि सुमेरुके शिखर जैसे ऊंचे झरोखेविषे जाय स्थित भया, सो राजा बलिने युगोंके समूह व्यतीत हुए देखे हैं, देवता दैत्य उपजते अरु मिटते जिसने अनेक बार देखे हैं, त्रिलोकीके भोग भोगे हैं, सो भोगोंते उद्वेग पाया, तब ऊंचे झरोखेमें एकलाही बैठिकरि संसारकी स्थितिको चिंतवत भया, सो इस बड़े राज्य चक्रवर्तीकरि मुझको क्या प्रयोजन है यद्यपि त्रिलोकीका राज्य बड़ा है, तो भी क्या आश्चर्य है, इसविषे मैं चिरकाल भोग भोगता रहा हौं, परंतु शांति प्राप्त न भई, अरु यह भोग आपातरमणीय हैं, उपजिकरि बहुरि नष्ट हो जाते हैं, भोगोंकरि शांति-सुख प्राप्त नहीं भया, अरु बारबार मैं वही कर्मव्यवहार करता हौं, बहुरि दिन, रात्रि, बहुरि वही क्रिया करनी, तिसविषे लज्जा भी नहीं आती, अरु वही स्त्री आलिंगन करनी, बहुरि भोजन करना, पुष्पोंकी शय्यापर शयन करना, क्रिया करनी यह कर्म बड़ेको लज्जाका कारण है, तिस तिस में निरस व्यवहार करना, जो एकवार निरस हुआ अरु उस कालमें तृप्त हुआ, बहुरि बारंबार दिनदिनविषे करते हैं, यह मैं मानता हौं, और बुद्धिमानोंको हरने योग्य लज्जाका कारण है, जीवोंके चित्तविषे वृथा संकल्प विकल्प उठते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, अरु मिटते हैं, तैसे संकल्प इच्छाजाल उठते हैं, अरु मिटते हैं, सो उन्मत्तकी नाईं जीवोंकी चेष्टा है, यह तो हांसी करने योग्य बालकोंकी लीला है, मूर्खता-करि अनर्थोंको पसारती है, इसविषे जो कछु बडा उदार फल होवे सो मैं नहीं देखता, इसविषे भोगोंते इतर कार्य कछु नहीं पाता, जो कछु हमने रमणीय अरु अविनाशी होवे, तिसको शीघ्रही चिंतन करौं, ऐसे विचारिकरि कहने लगा, बलि जो है दैत्योंका राजा, सो अपने मनविषे जगतको नाशवान् जानिकरि निमिष क्षणमें स्मरण करने लगा कि, मैंने

जो प्रथम भगवान् विरोचनसों पूछा था, मेरा पिता विरोचन आत्मतत्त्वका ज्ञाता था, जिसते लोकोंका आदि अंत न था अर्थ यह कि, सर्व लोकोंविषे गमन किया था, तिससों मैंने प्रश्न किया था ॥ हे भगवन् महात्मा! जहां सर्व दुःखोंका अरु सर्व सुखोंका अंत हो जाता है, अरु सर्व भ्रम शांत हो जाता है, सो कौन स्थान है सो मुझको कहौ, जहां मनका मोह नाश हो जाता है, अरु सर्व इच्छाते मुक्त होता है, रागद्वेषते रहित जिसविषे सर्वदा विश्रामवान् होता है, बहुरि क्षोभ नहीं रहता, अरु हे तात! वह कौन पद है, जिसके पायेते और पावना कछु नहीं रहता, अरु जिसका दर्शन देखेते और देखना कछु नहीं रहता, यद्यपि अत्यंत जगत्के भोगपदार्थ है, तौ भी सुखदायक नहीं भासते हैं, काहेते कि क्षोभ करते हैं, अरु योगीश्वरोंके मन भी मोहिकरि गिर पडते हैं ॥ हे तात! जो सुख सुंदर विस्तीर्ण आनंद है, सो तैसा मुझको कहौ, तिसविषे स्थित हुआ मैं सदा विश्राम पाऊंगा॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे विरोचनवर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३

बलिवृत्तान्तविरोचनगाथावर्णनम् ।

विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र! एक अतिविस्तीर्ण विपुल देश है, तिसविषे अनेक सहस्र त्रिलोकिया भासती हैं, अरु जहां न समुद्र है, न जलधारा है, न पर्वत है, न वन है, न तीर्थ है, न नदियां है, न तलाव है, न पृथ्वी है, न आकाश है, न नंदनवन है न पवन है, न अग्नि है, न चंद्रमा है, न सूर्य है, न लोक है, न देश, न देवता, न दैत्य, न यक्ष, न राक्षस है, न वन है, न कमलोंकी शोभा है, न काष्ठ तृणभूत है, न चर, न अचर, न जल, न अग्नि, न दिशा है, न ऊर्ध्व, न अध, न मध्य है, न प्रकाश है, न तम है, अहं नहीं, न विष्णु इंद्र रुद्रादिक हैं, सो एकही है, अरु सदा नाना प्रकार प्रकाशको धरनेहारा है, अरु सर्वका कर्त्ता सर्वव्यापक है, अरु सर्वरूप है, सो तूष्णीभावसों स्थित है, जिसने सर्व

मंत्रियोंसहित एक मंत्री संकल्प किया, सो मंत्री जो न बनै तिसको शीघ्रही बनाय लेता है, जो बनै तिसको न बनानेको भी समर्थ है, आपते कछु नहीं भोगता, अरु जाननेको समर्थ है, केवल राजाके अर्थ सर्व कार्यका कर्त्ता है, यद्यपि आप जड़ अज्ञ है, तौ भी राजाके बलकरिकै तनुतासों ज्ञाता अरु कार्य करता है, यही सब कार्योंको करता है, तिसका महीपति जो राजा है, सो एकताविषे केवल अपने आपविषे स्थित है॥ बलिरुवाच॥ हे प्रभु! आधिव्याधि दुःखते रहित जो प्रकाशवान् है, सो देश कौन है? अरु प्राप्ति किस साधनसों है? अरु आगे किसने पाया है? अरु ऐसा मंत्री कौन है? अरु महाबलिराजा कौन है? जो जगत्-जालसंयुक्त हमनें भी नहीं जीता, हे देव! यह जो अपूर्व आख्यान तुमनें कहा, सो आगे श्रवण भी नहीं किया था, मेरे हृदय आकाशविषे संशयरूपी बादर उदय भया है, सो वचनरूपी पवनकरिकै निवृत्त करहु॥ विरोचन उवाच॥ हे पुत्र! तिस देशविषे मंत्री भगवान् अनेक कल्प देवता अरु असुरगण होइकरि एक क्षणभी वश नहीं होता, सहस्रनेत्र जो इन्द्र है, तिसके वश नहीं होता, यम कुबेर नहीं वश कर सकते, देवता असुरोंकरि भी जीता नहीं जाता, मुसल, वज्र, चक्र, गदादिक खड्ग तिसकरि चलाये कुंठित हो जाते हैं, जैसे पाषाणपर चलाये कमल कुंठित होजाते हैं, सो मंत्री अस्त्र अरु शस्त्रकरि वश नहीं होता, बड़े युद्ध कर्मोंकरि नहीं पाता, देवता दैत्य सर्वको तिसने वश किया है, विष्णुपर्यंत देवता हिरण्यकशिपु आदिक असुर डारि दिये हैं, जैसे प्रलयकालका पवन सुमेरुके कल्प वृक्षको गिराइ देता है, नारायणने लेकरि देवता भी वश किये हैं, जैसे आकाशका घटलोहविषे निवास हो जाता है, तिसके प्रसादकरि इस त्रिलोकीको वश कर चक्रवर्ती राजावत् स्थित है, सुरअसुरोंके समूह तिसकरि भासते हैं, यद्यपि गुप्त है, गुणहीन है, दुर्मति अरु दुष्ट अहंकार क्रोध है, सो तिसकरि उदय होता है, देवता अरु दैत्यके समूह बहुरि बहुरि उपजते हैं, सो इसकी क्रीडा है, ऐसा मंत्रोंसंयुक्त मंत्री है॥ हे पुत्र! जब तिसके राजाको वश करिये तब तिसके [illegible] वश करना सुगम होता है, राजाको वश करियेगा [illegible] वश [illegible] करना अरु करना

है, कबहूँ बाह्य जाता है, जिस कालमें राजाकी इच्छा होती है कि, मंत्री अपनेको जीते तब यत्नविना जीति लेता है, ऐसा बलि महा है, जिसकरि त्रय जगत् उल्लासको प्राप्त भए हैं, कैसा मंत्री मानो सूर्य है तिसके उदय भयेते त्रिलोकीरूपी कमलोंकी खानि विकासको प्राप्त होती है, अरु तिसके लय हुएते जगत्‌रूपी कमल लय हो जाता है ॥ हे पुत्र ! जब जीतनेकी तुझको शक्ति है, तब तू पराक्रमवान् है, जब मोहते रहित एकत्र बुद्धि होवै, तब तिसकरि एकके जीतनेको समर्थ होवैगा, तब धैर्यवान् है, अरु सुंदर वृत्ति तेरी है, काहेते कि तिसके जीतनेते जो नहीं जीता, तिसपरि जीत पाता है, अरु जो तिसको नहीं जीता, अरु अपर लोक सब जीते हैं, तौ भी जीते अजित हो जावैगा, तिस कारणते जो तू अनत सुख चाहता है, जो नित्य अविनाशी है तो उसके जीतनेनिमित्त यत्नसों स्थित होउ, अरु बड़े कष्ट चेष्टाकरिकै भी तिसको वश कर, सुर जो हैं देवता, असुर जो हैं दैत्य, अरु यक्ष मनुष्य अरु महासर्प किन्नरोंसंयुक्त अति बली हैं, तौ भी वश सर्व ओरते यत्न विना वश होते हैं, ताते उसको वश कर ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिवृत्तांतविरोचनगाथानाम त्रयोविंशतितम सर्गः ॥२३॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४

वल्युपाख्यानेचित्तचिकित्सोपदेशवर्णनम् ।

बलिरुवाच ॥ हे भगवन् ! किस उपायकरि तिसको जीतिये ? अरु ऐसा महावीर्यवान मंत्री कौन है, अरु राजा कौन है, यह वृत्तांत सब मुझको शीघ्र कहो, जो उपाय करौं ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र ! स्थितहुएको भी त्यागने योग्य है, ऐसा मंत्री जिस उपायकरि जीतिये, सो भली प्रकार कहता हौं, तू श्रवण कर, तिस युक्ति ग्रहण कियेते शीघ्रही वश होता है, युक्तिविना वश नहीं होता, जैसे वायुको युक्तिकरि वश करता है तैसे जो पुरुष युक्तिकरि मंत्रीको वश करता है, तिनको राजाका दर्शन होता है, तिसकरि परमपदको पाता है, जब

मंत्रियोंसहित एक मंत्री संकल्प किया, सो मंत्री जो न बनै तिसको शीघ्रही बनाय लेता है, जो बनै तिसको न बनानेको भी समर्थ है, आपते कछु नहीं भोगता, अरु जाननेको समर्थ है, केवल राजाके अर्थ सर्व कार्यका कर्त्ता है, यद्यपि आप जड़ अज्ञ है, तौ भी राजाके बलकरिकै तनुतासों ज्ञाता अरु कार्य करता है, यही सब कार्योंको करता है, तिसका महीपति जो राजा है, सो एकताविषे केवल अपने आपविषे स्थित है ॥ बलिरुवाच ॥ हे प्रभु! आधिव्याधि दुःखते रहित जो प्रकाशवान है, सो देश कौन है? अरु प्राप्ति किस साधनसों है? अरु आगे किसने पाया है? अरु ऐसा मंत्री कौन है? अरु महाबलिराजा कौन है? जो जगत-जालसंयुक्त हमनें भी नहीं जीता, हे देव! यह जो अपूर्व आख्यान तुमनें कहा, सो आगे श्रवण भी नहीं किया था, मेरे हृदय आकाशविषे संश-यरूपी बादर उदय भया है, सो वचनरूपी पवनकरिकै निवृत्त करहु ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र! तिस देशविषे मंत्री भगवान् अनेक कल्प देवता अरु असुरगण होइकरि एक क्षणभी वश नहीं होता, सहस्रनेत्र जो इन्द्र है, तिसके वश नहीं होता, यम कुबेर नहीं वश कर सकते, देवता असुरोंकरि भी जीता नहीं जाता, मुसल, वज्र, चक्र, गदादिक खड्ग तिसकरि चलाये कुंठित हो जाते हैं, जैसे पाषाणपर चलाये कमल कुंठित होजाते हैं, सो मंत्री अस्त्र अरु शस्त्रकरि वश नहीं होता, बड़े युद्ध कर्मोंकरि नहीं पाता, देवता दैत्य सर्वको तिसने वश किया है, विष्णुपर्यंत देवता हिरण्यकशिपु आदिक असुर डारि दिये हैं, जैसे प्रलयकालका पवन सुमेरुके कल्प-वृक्षको गिराइ देता है, नारायणते लेकरि देवता भी वश किये हैं, जैसे आकाशका बटलोईविषे निवास हो जाता है, तिसने प्रमादकरि इन त्रि-लोकीको वश कर चक्रवर्ती राजावत् स्थित है, सुरअसुरोंके समूह तिस-करि भासते हैं, यद्यपि गुप्त है, गुणहीन है, दुर्मति अरु दुष्ट अहंकार क्रोध है, सो तिसकरि उदय होता है, देवता अरु दैत्यके समूह बहुरि बहुरि उपजते हैं, सो इसकी क्रीडा है, ऐसा मनोसंयुक्त मंत्री है ॥ हे पुत्र! जब तिसके राजाको वश करिये तब तिसके मंत्रीको वश करना सुगम होता है, राजाके वश किये बिना मंत्री वश नहीं होता, कदाचित् अंतर रहा

है, कबहूँ बाह्य जाता है, जिस कालमें राजाकी इच्छा होती है कि, मन्त्री अपनेको जीतै तब यत्नविना जीति लेता है, ऐसा बलि मह्ल है, जिसकरि त्रय जगत् उल्लासको प्राप्त भए हैं, कैसा मन्त्री मानो सूर्य है तिसके उदय भयेते त्रिलोकीरूपी कमलोंकी खानि विकासको प्राप्त होती है, अरु तिसके लय हुएते जगतूरूपी कमल लय हो जाता है ॥ हे पुत्र ! जब जीतनेकी तुझको शक्ति है, तब तू पराक्रमवान् है, जब मोहते रहित एकत्र बुद्धि होवै, तब तिसकरि एकके जीतनेको समर्थ होवैगा, तब धैर्यवान् है, अरु सुंदर वृत्ति तेरी है, काहेते कि तिसके जीतनेते जो नही जीता, तिसपरि जात पाता है, अरु जो तिसको नही जीता, अरु अपर लोक सब जीते है, तो भी जीते अजित हो जावैगा, तिस कारणते जो तू अनंत सुख चाहता है, जो नित्य अविनाशी है तौ उसके जीतनेनिमित्त यत्नसों स्थित होहु, अरु बड़े कष्ट चेष्टाकरिके भी तिसको वश कर, सुर जो हैं देवता, असुर जो हैं दैत्य, अरु यक्ष मनुष्य अरु महासर्प किन्नरोंसंयुक्त अति बली है, तौ भी वश सर्व ओरते यत्न विना वश होते है, ताते उसको वश कर ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिवृत्तांतविरोचनगाथानाम त्रयोविंशतितम सर्ग. ॥२३॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४.

वल्युपाख्यानेचित्तचिकित्सोपदेशवर्णनम् ।

वलिरुवाच ॥ हे भगवन् ! किस उपायकरि तिसको जीतिये ? अरु ऐसा महा[illegible]वान् मन्त्री कौन है, अरु राजा कौन है, यह वृत्तांत सब [illegible] कहौ, जो उपाय करौं ॥ विरोचन उवाच ॥ हे [illegible] हुएको भी त्यागने योग्य है, ऐसा मंत्री जिस उपायकरि [illegible] भली प्रकार कहता हौं, तू श्रवण कर, तिस युक्ति ग्रहण [illegible] नही वश होता है, युक्तिविना वश नहीं होता, जैसे बालको युक्ति- [illegible] करता है तैसे जो पुरुष युक्तिकरि मंत्री[illegible] करता है, तिनको राजाका दर्शन होता है, तिसकरि परमपद[illegible]

तबलग परम सुखके देनेहारी मोक्षपदवी संसारभयका नाशकर्त्ता नहीं प्राप्त होती, जबलग विषयोंविषे मोहकारण प्रीति है, तबलग संसारदशा डोलायमान करती है, दुःखदायक होती है, सर्पकी नाईं विषको पसारती है, सो अभ्यास कियेबिना निवृत्त नहीं होती ॥ बलिरुवाच ॥ हे सर्व असुरोंके ईश्वर! भोगोंते विरक्तता चित्तविषे कैसे स्थित होती है, जीवोंको दीर्घ जीनेका कारण है॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र ! जैसे शरत्कालमें महालतामें फूलसों फल परिपक्व होता है तैसे आत्मावलोकनहारे पुरुषको भोगोंते विरक्तता प्रगट होती है आत्माके देखनेकरि विषयोंकी प्रीति निवृत्त हो जाती है हृदयविषे स्थित प्राप्त होती है जैसे कमलोंके उदरविषे सुंदर शोभा स्थित होती है तैसे बीज लक्ष्मी स्थित होती है, ताते सूक्ष्म बुद्धि विचारवेत्ताने आत्मदेवको देखिकरि विषयोंकी प्रीति करी है सो सब ओरते निवारहु प्रथम दो भाग दिनके भोग कर्मदेहके कार्य करहु, एक भाग शास्त्रोंका श्रवण विचार करहु, एक भाग गुरुकी सेवा टहल करहु; जब कछु विचार संयुक्त मन होवै तब दो भाग वैराग्यसंयुक्त शास्त्रोंको विचारहु अरु दो भाग ध्यान अरु गुरुके पूजनविषे रहो इस क्रमकरि जीव ज्ञानकथाके योग्य होता है, क्रमकरि निर्मलभावको ग्रहण करता है, शनैःशनैः उत्तम पदकी भावना होती है, शास्त्रोंके अर्थविचारविषे चित्तरूपी बालकको परचावहु, जब परमात्माविषे ज्ञान प्राप्त होता है, तब कर्म फांसीते छूटि जाता है, जैसे चंद्रमाके उदय हुएते चंद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे शीतल हो विराजता है, बुद्धिके विचारसों सर्वदा शम आत्मदृष्टि देखनी अरु तृष्णाका यथमान त्यागना यह परस्पर कारण है परमात्माके देखनेकरि तृष्णा दूर हो जाती है अरु तृष्णाके त्यागकरि आत्माका दर्शन होता है, जैसे नौकाको मल्लाह ले जाता है अरु नौका मल्लाहको ले जाती है तैसे परमात्माका दर्शन होता है अरु भोगोंका त्याग होता है, इसकरि परब्रह्मविषे अनंत विश्रांति नित्य उदय होती है सो मोक्षरूप आनंद उदय होता है जिसका अभाव कदाचित् नहीं होता, सो आनंद जीवोंको आत्मविश्रांतिबिना नहीं [illegible] न तपोंकरि, न दानों करि, न तीर्थोंकरि होता है, [illegible] दर्शन होता है,

तब भोगोंते विरक्तता उपजती है, सो आत्मस्वभावका दर्शन अपने प्रयत्नविना और किसी युक्तिकारि नहीं प्राप्त होता है॥ हे पुत्र! भोगोंका त्याग करना, अरु परमार्थदर्शनका यत्न करै, तब ब्रह्मपदविषे विश्रांत परमानद मोक्षको प्राप्त होता है, ब्रह्माते आदि काष्टपर्यंत इस जगत्विषे ऐसा आनद कोई नही पाता, जैसा परमात्माविषे स्थित भयेते पाता है, ताते पुरुपप्रयत्नका आश्रय करौ, दैवको दूरते त्यागौ, इस मार्गको रोकनेहारे भोग हैं तिनकी निंदा बुद्धिवान् करते है, जब भोगोंकी निंदा दृढ भई, तब विचार उपजा है, जैसे वर्षाकाल गएते सर्व दिशा शरत्कालकी निर्मल हो जाती हैं, भोगोंकी निंदाते विचार अरु विचारते भोगोंकी निंदा, यह परस्पर होते है, जैसे समुद्रकी अग्निसे धूम उदय होता है, सो वादलरूप होइकरि वर्षणेसों समुद्रको पूर्ण करता है, अरु जैसे मित्र आपसों परस्पर कार्य सिद्धकरि देता है, ताते प्रथम तौ दैवका अनादर करौ, पुरुपप्रयत्नकारि दंतोंसों दंत मरोड भोगोंकी प्रीति त्यागौ, पुरुपार्थकारि प्रथम अविरोध उपजावहु, सो गुणवान् अपने जन्म अरु कल्याणमूर्त्तिको अर्पण करहु, भोगोंते असग होइकरि निंदा करहु, तब विचार उपजैगा, शास्त्रज्ञानको वहुरि सग्रह करौ, तब परमपदकी प्राप्ति हो जावैगी॥ हे दैत्यराज! समय पाइकरि जब तू विषयोंते विरक्तचित्त होवैगा, तब विचारके वशते परमपदको पावैगा; अपने आपविषे जो पावन पदहै, तिसविषे भलीप्रकार अत्यत विश्राम पावैगा, वहुरि कल्पना दु खविषे न गिरैगा, अग देशाचारके कर्मकारि अल्पधन उपजावना, वहुरि निंदाकारि साधुसग लगावना, तिनके सगकारि वैराग्य अरु विचारसयुक्त हुएते तुझको आत्मलाभ होवैगा॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वलुपाख्याने चित्तचिकित्सोपदेशो नाम चतुर्विंशतितम सर्ग ॥ २४ ॥

पंचविंशतितम· सर्ग २५.

वलिचिन्तासिद्धांतोपदेशवर्णनम्।

वलिरुवाच ॥ इसप्रकार मुझको पूर्व पिताने कहा था, अब मैं स्मृति दृष्टिकारि प्रसन्नताको प्राप्त भया हौं अरु भोगोंते, विरक्तता उपजी

करेगा, तिसकारि अनंत विभव अपने आपविषे आपकारि स्थित होवेगा निष्काम पुरुषोंका उपदेश मेरे हृदयविषे फलेगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वलिचितासिद्धांतोपदेशो नाम पंच-
[illegible] विंतम. सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशतितमः सर्ग २६.

वल्युपदेशवर्णनम् ।

। इसप्रकार चिंतनाकारि वलि नेत्रोंको मूँदत
किया, कैसा शुक्र है, आकाशविषे मंदिर
तत्त्व है, सदा तिसके ध्यानविषे
-प ध्यान करत भया, तब शुक्रजी
वलिने हमारा चिंतन किया, तब
को तहा ले आवत भए, जहां रवके
लि उज्ज्वल प्रभारूप गुरुको देखिकरि
जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यको देखिकरि
द्य पुष्पोंकरि चरणवंदना करत भया,
सनपर बैठाइकरि कहत भया ॥
पाते मेरे हृदयते जो प्रतिभा उठती है
जोडती है । जैसे सूर्यकी प्रतिभा
अब मैं भोगोंते विरक्त भया हौं,
ारे है, अरु तत्त्वज्ञानकी इच्छा
हो जाता है, इस ब्रह्मांडविषे स्थिर
न क्या है, अरु अह क्या है,
है ? इन प्रश्नोंका उत्तर
त पढनेकारि क्या है, मैं
ार संक्षेपते मैं तुझको
नतरूप है, इवं मह

है, जो शांत अरु शम निर्मल अमृतरूपी शीतल सुखविषे स्थित होऊं, धन एकत्र करता है, तो नाश हो जाता है, बहुरि आशा उपजती है, बहुरि धनकरि पूर्ण होता है, बहुरि स्त्रियोंकी वांछा उपजती है, बहुरि अंगीकार करते हैं, अब मैं विभूतिकी स्थितिकरि खेदवान् भया हौं, अहो आश्चर्य है, इस रमणीय पृथ्वीते समशीतल चित्त होता हौं, दुःख सुखकी दशाते रहित सर्व शांतिको प्राप्त होता हौं जैसे चन्द्रमाके मंडलविषे स्थित हुआ शमशीतल होता है, तैसे अंतरते हर्षवान् शीतल होता हौं, दुःखरूपी विभूति ऐश्वर्यते रहित हुआ अक्षोभ होवैगा, यह मन मनरूपी बालककी दिन दिन प्रति कला है, अंगोंसों अंग मांससों मांस, प्रथम मैं स्त्रीसों चढ़ता था मोहकरि मेरी प्रीति बढ़ि गई थी जो कछु दृष्ट देखनेयोग्य था सो मैंने देखा है सो यह शोक है, जो कछु भोगने योग्य था सो चिरकालपर्यंत अखंड भोगा है, सर्व भूतजातको वश कर रहा है तासों क्या भोगनीक हुआ बहुरि २ तिनविषे वही चेष्टाकरि और और देखे, इसकरि चित्त अपूर्व पदार्थको नहीं देखता वही वही जगतके पदार्थ हैं ताते अपनी बुद्धिकरि सर्वसों निश्चय त्यागकरि पूर्ण समुद्रवत अपने आपकरि आपविषे स्वच्छ स्वस्थ स्थित होऊं, पाताल पृथ्वीविषे स्वर्गविषे स्त्रियां अरु रत्नपन्नगादिक सार हैं सो भी तुच्छ हैं, समय पाइकरि काल ग्रास लेता है एते कालपर्यंत बालक था जो तुच्छ पदार्थ मनके रचे हुए हैं तिनकी इच्छासों दुःखकरि देवनोंकेसाथ दोष करता था तिनके दुःखोंके त्यागनेकरि क्या महात्माका अनर्थ होवेगा बडा कष्ट है कि, मैंने चिरकाल अनर्थविषे अर्थबुद्धि करी थी अज्ञानरूपी मदकरि मत्तता था जैसे बालक कूकरोंको सेवता है चंचल तृष्णाकरिके इस जगतविषे क्या नहीं किया जो कार्य पाछे तापको बढ़ावने हैं सो मैंने किये हैं, अब पूर्व तुच्छ चिंताकरि क्या शुद्ध है वर्तमान [illegible]करि सफल होवेगा जैसे समुद्र मथनेकरि अमृत प्रगट भया आत्माकी भावनाकरि अब सर्व कोनते सुखी हो[illegible] आत्माका दर्शन मुक्ति गुरुने पढ़ाया अज्ञानके नाश[illegible] चिंतन करो जो प्रसन्न होइकरि उपदेश

नही रहता, पर्वतविषे पर्वतता भी चेतनविना नहीं, यह जगतविषे जगत्भाव आकाशविषे आकाशता शरीर लक्षण कोऊ चेतनविना न पाइये इंद्रियां भी चेतन है, मन भी चेतन है, अंतर बाह्य चेतन है, चिदात्माही अह त्व भावरूप होइकारि स्थित है, मैं चेतन हौं, सब इंद्रिया सयुक्त विपयोंका स्पर्श मै करता हौं, अरु कदाचित् कछु किया नहीं, अरु काष्ठ लोष्ट तुल्य शरीरसाथ मेरा क्या है, सपूर्ण जगत् म आत्मा चेतन हौ, आकाशविषे एक मै आत्मा हौं, सूर्यविषे भी मै हौं, और भूतपिंजरविषे भी चैतन्य आत्मा हौं देवता दैत्यविषे भी मैं चैतन्य आत्मा हौं। स्थावरजगमका चेतन आत्मा मैं हौं, आत्मा एक अद्वैत चेतन है, और द्वैतकलना नहीं पाती, जो इस लोकविषे द्वैतका असंभव है, तौ शत्रुकौन है, अरु मित्र किसको कहिये, वलि है, नाम जिसका ऐसा जो शरीर है तिसकाशीश काटा तौ आत्माका क्या काटा जो सर्व लोकोंविषे आत्मा पूर्ण है जब चित्त दु खको चेतता है, तब दु खी होता है चेतनते रहित दु खकी नहीं पाता तिस कारणते जो दु खदायक भाव अभाव पदार्थ भासते है, सो सर्व चेतन आत्मरूप है, चेतनत्त्वते भिन्न कछु नहीं है सब ओरते आत्मा पूर्ण है, आत्माते इतर जगत्का कछु व्यवहार नहीं, न कोउ दु ख है न कोऊ रोग है न मन है, न मनकी वृत्ति है, एक शुद्ध चेतनमात्र आत्मा तत्त्व है, और विकल्पकलना कोई नहीं सब ओरते चेतनस्वरूप व्यापक है, नित्य आनद अद्वैतरूप विकल्पलना कोई नही, सर्वते अतीत हौं, अशाशीभावते रहित, चेतनसत्ता हौं, अरु चेतन आदिक नामते भी रहित हौं, चेतन आदिक नाम भी मेरे व्यवहार के निमित्त कल्पे हैं, जो चेतन आत्माकी स्फुरणशक्ति है, सोई निम्ता रकारि जगतरूप होइकारि भासती है, द्रष्टादर्शनते मुक्त केवल अद्वैतरूप है प्रकाशप्रकाशकभावते रहित निराभास हौं, द्रष्टा परमेश्वररूप हौं, न मैं कर्ता हौं, न भोक्ता हौं, मैं केवल द्रष्टा निरामयरूप हौं कलनाकलकते रहित हौं, इनते पर हौं अरु यह स्वरूप भी मै हौं, यह मेरेविषे आभास मात्र है, मै रहित नित्यरूप हौं, आभासते भी रहित मै एक प्रकाशरूप हौं, स्वरूपकरिके मेरा जो चित्त है सो दृश्यके रागते रहित मुक्तरूप है,

सर्व चेतनमात्र है, अरु चेतनही प्रमाण है, तू भी चेतनस्वरूप है, मै भी चेतन हौं, यह लोक भी चेतनरूप है, यह सबका सार है, इस निश्चयको अंतर दृढ कर धरैगा, तब निर्मल निश्चयात्मक बुद्धिकरि अपनेको आपकरि देखैगा, अरु तिसते विश्रांतिवान् होवैगा॥ हे रामजी ! जब तू कल्याणमूर्ति है, तब इसी कहनेकरि सब सिद्धांतको प्राप्त होवैगा, सबका सार चिदात्मा है, तिसको पावैगा, अरु जो कल्याणमूर्ति नहीं, तौ बहुरि कहना भी निरर्थक होता है, भस्मविषे आहुतिकी नाई होता है, चेतनको जो चैत्यकलाका संबंध है, सोई बंधन है, तिसते जो मुक्त है सोई मुक्त है अरु आत्मतत्त्व चेतनस्वरूप चैत्यकलनाते रहित है, यह सब सिद्धांतका संग्रह है॥ हे राजन् ! इस निश्चयको धारि निर्मल बुद्धिसों अपने आपकरि आपको देखो, यह आत्मपदकी प्राप्ति है; अब मै आकाशको जाता हौं; सप्त ऋषिसाथ कोऊ देवताका कार्य है, तिसनिमित्त जाता हौं, जबलग यह देह है, तबलग मुक्त बुद्धिको यथाप्राप्त कार्य त्यागने योग्य नहीं ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकरि बड़े वेगसाथ आकाशको शुक्र चला, जैसे समुद्रते तरंग उठिकरि लीन हो जावै तैसे शुक्रजी अंतर्धान हो गए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपदेशो नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥२६॥

सप्तविंशतितमः सर्गः २७

बलिविश्रांतिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देवता अरु दैत्यकरि पूजने योग्य भृगुपुत्र शुक्र है, तिसके गमन कियेते बलवानोंविषे श्रेष्ठ जो है बलि, सो मनविषे चितवता भया कि, भगवान शुक्रजी क्या कह गए ! त्रिलोकी चिन्मात्ररूप है, मै भी चेतन हौं, दिशा भी चेतनरूप है, परमार्थते आदि जो चेतन तत्त्वरूप है, तिसते भिन्न कछु नहीं, यह जो सूर्य है, तिसको चेतन होवै नहीं तौ सूर्यका सूर्यत्वभाव भासै नहीं, अरु यह जो भूमि है, तिसको चेतन चेतै नहीं तौ भूमिविषे भूमित्वभाव कोऊ नहीं पाता, यह जो दश दिशा है, इनको चेतन चेतै नहीं तौ दिशाविषे दिशात्वभाव कोई

नहीं रहता, पर्वतविषे पर्वतता भी चेतनविना नहीं, यह जगतविषे जगत्भाव आकाशविषे आकाशता शरीर लक्षण कोऊ चेतनविना न पाइये इंद्रियां भी चेतन है, मन भी चेतन है, अंतर बाह्य चेतन है, चिदात्माही अहं त्वं भावरूप होइकारि स्थित है, मैं चेतन हौं, सब इंद्रियां संयुक्त विषयोंका स्पर्श मैं करता हौं, अरु कदाचित् कछु किया नहीं, अरु काष्ठ लोष्ट तुल्य शरीरसाथ मेरा क्या है, संपूर्ण जगत् मैं आत्मा चेतन हौं, आकाशविषे एक मैं आत्मा हौं,सूर्यविषे भी मैं हौं,और भूतपिंजरविषे भी चैतन्य आत्मा हौं देवता दैत्यविषे भी मैं चैतन्य आत्मा हौं स्थावरजंगमका चेतन आत्मा मैं हौं, आत्मा एक अद्वैत चेतन है, और द्वैतकलना नहीं पाती, जो इस लोकविषे द्वैतका असंभव है, तौ शत्रुकौन है, अरु मित्र किसको कहिये, वलि है, नाम जिसका ऐसा जो शरीर है तिसकाशीश काटा तौ आत्माका क्या काटा जो सर्व लोकोंविषे आत्मा पूर्ण है जब चित्त दुःखको चेतता है, तब दुःखी होता है चेतनते रहित दुःखकौ नहीं पाता तिस कारणते जो दुःखदायक भाव अभाव पदार्थ भासते है, सो सर्व चेतन आत्मरूप है, चेतनत्त्वते भिन्न कछु नहीं है सब ओरते आत्मा पूर्ण है, आत्माते इतर जगत्का कछु व्यवहार नहीं, न कोउ दुःख है न कोऊ रोग है न मन है, न मनकी वृत्ति है, एक शुद्ध चेतनमात्र आत्मा तत्त्व है, और विकल्पकलना कोई नहीं सब ओरते चेतनस्वरूप व्यापक है, नित्य आनंद अद्वैतरूप विकल्पलना कोई नहीं, सर्वते अतीत हौं, अंशांशीभानते रहित, चेतनसत्ता हौं, अरु चेतन आदिक नामते भी रहित हौं, चेतन आदिक नाम भी मेरे व्यवहार के निमित्त कल्पे हैं, जो चेतन आत्माकी स्फुरणशक्ति है, सोई विस्ताररकारि जगतरूप होइकारि भासती है, द्रष्टादर्शनते मुक्त केवल अद्वैतरूप है प्रकाशप्रकाशकभावते रहित निराभास हौं, द्रष्टा परमेश्वररूप हौं, न मैं कर्ता हौं, न भोक्ता हौं,मैं केवल द्रष्टा निरामयरूप हौं कलनाकलंकते रहित हौं, इनते पर हौं अरु यह स्वरूप भी मैं हौं, यह मेरेविषे आभास मात्र है, मैं उदित नित्यरूप हौं, आभासते भी रहित मैं एक प्रकाशरूप हौं, स्वरूपकरिकै मेरा जो चित्त है सो दुःखके रागते रहित मुक्तरूप है,

जो प्रत्यक्ष चेतन मेरा स्वरूप है, तिसको नमस्कार है, चित्त जो है दृश्य तिसते रहित है, युक्ति अयुक्ति सबका प्रकाश स्वरूप मैं हौं मुझको नमस्कार है, चित्तते रहित मैं चेतन हौं, मन ओरते शान्तरूप हौं फुरणेते रहित भलीप्रकार शान्त जो मैं संवित् मात्र निस्ताररूप हौं, आकाशकी नाई मैं अनन्त सूक्ष्मते सूक्ष्म हौं, दुःखसुखते मुक्त हौं, संवेदनते रहित असंवेदनरूप हौं, चैत्यते रहित चेतन हौं, जगतके भाव अभाव पदार्थ मुझको छेदि नहीं सकते, अथवा यह जगतके पदार्थ छेदते हैं सो भी मुझते भिन्न नहीं, छेद मैं हौं, छेदन हारा भी मैं हौं जो स्वभावभूत वस्तुकरि वस्तु ग्रहण होतीहै, अथवा नहीं होती, तौ भी किस करि किसका नाश होवै ? मैं सर्वदा सर्व प्रकार सर्वशक्तिरूप हौं, संकल्पविकल्पकरि अब क्या है, मैं एकही चेतन अजडरूप होइकरि प्रकाशता हौं, जैसे कछु जगतजाल है, सो सब मैंही हौं, मुझते इतर कछु नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार चिंतवता हुआ राजा बलि तत्त्वका वेत्ता, तब ॐकारकी धर्ममात्रा तुरीयापदकी भावनाकों ध्यानविषे स्थित भया, भलीप्रकार संकल्प जिसके शांत हो गए हैं, मन कलना चित्त चैत्यते रहित निःसंग होइकरि स्थित भया, बहुरि कैसा भया जो ध्याता है अहंकार, अरु जो ध्यान है मनकी वृत्ति, अरु जो ध्येय है, जिसको ध्याता था सो तिनोंते रहित हुआ, मनते सर्व वासना नष्ट हो गई, जैसे वायुते रहित अचलरूप दीपक प्रकाशता है, तैसे बलि शांतरूप पदको प्राप्त भया, मन शांत हो गया, रत्नोंके झरोखे विषे बैठ दीर्घकाल वीत गया, जैसे स्वर्भविषे पुतली होवे, तैसे सर्व इच्छाते रहित समाधि स्थित रहा, मन क्षोभ दुःख तिनते रहित निर्मल चित्त शरत्कालके आकाशवत् हो रहा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिविश्रांतिवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः २८.

वलिविज्ञानप्राप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार दैत्यराजा समाधिविषे स्थित भया, अरु केताक काल व्यतीत भया, तब बांधव मित्र टहलुए मन्त्री थे सो रत्नोंके झरोखेविषे देखने चले, कि, राजा वलिको, क्या भया ऐसे विचारिकरि किवाडोंको खोलि ऊपर जाय चढे, कुकह अरु देवादि मन्त्री, अरु मंडलेश्वर राजा, अरु यह श्रीवादिक बांधव सुहृद् वालक ये सो ऊपर चले गए, यक्ष,विद्याधर,अरु नाग एक ओर हो खडे हैं, रंभा अरु तिलोत्तमादिक अप्सरागण हाथोंविषे चमर ले खडी हैं, नदियां समुद्र पर्वत आदिक मूर्ति धारिकारि स्थित भए हैं, रत्न आदिक भेट लेइकरि सर्व प्रणाम निमित्त खडे भए, त्रिलोकीके उदरवर्ती जो कछु थे, सो आय स्थित भये, अरु राजा वलि ध्यानविषे स्थित था, मानो चित्रकी मूर्ति लिखछोडी है, पर्वतवत् स्थित है, तिसको देखिकारि दैत्य प्रणाम करत भए, केई देखिकारि शोकको प्राप्त भये, केई आश्चर्यवान् भए, केई आनंदवान् भए, केई भयको प्राप्त भए, तब देखिकारि मन्त्री विचारत भए कि, राजाको क्या दशा प्राप्त भई है, तब राजाके निमित्त भार्गव शुक्रजीका चिंतवन करत भया जो गुरु है, सर्वका वेत्ता है, तब चिंतवन कियेते भार्गव जिसका बडा प्रकाश है, सो झरोखेविषे आय प्राप्त भया- जैसे गंधर्वनगर देखनेविषे आते हैं, तैसे आए, तिसको देखिकरि सब दैत्यगण पूजन करत भए, अरु बडे सिंहासनपर गुरुको आरूढ किया, अरु वलिको ध्यान स्थित देखिकर शुक्रजी अतिप्रसन्न भए जो पद मैंने उपदेश किया था, तिसविषे विश्राम पाया, देखा बडा आनंद है,जो विचार करिकै वलिने परमपद पाया है, भ्रम इसका अब नष्ट भया है, क्षीरसमुद्रवत् इसका प्रकाश है, ऐसे देखिकारि शुक्रजी कहत भए ॥ ॥ शुक्र उवाच ॥ बडा आश्चर्य है, जो दैत्यराज अपने विचारकरि निर्मल आत्मप्रकाशको पाया है अरु भगवान् सिद्ध भया है, अपने स्वरूपविषे विश्रांतिको पाया है, जो सब दुःखोंते रहित पद है, तिसविषे

स्थित भया, चिंता भ्रम इसका क्षीण भया है, मोहरूपी कुहिड नष्ट भई अब इसको मत जगाउ. यह आत्मज्ञानको प्राप्त भया है यत्र क्लेश इसका दूर हो गया है, जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है, अब मैं इसको जगावता नहीं, सो आपही चिरकालते जागेगा, काहेते जो प्रारब्ध अंकुर इसका रहता है, यह उठिकरि अपना राज्यकार्य करेगा, दिव्य सहस्र वर्षते यह जागेगा, अब तुम इसको मत जगावो, अपने राज्यकार्यविषे जाय वर्तो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार शुक्रजीने कहा, तब सुनकरि सूखे वृक्षकी मंजरी जैसे हो गया तब शुक्रजी अंतर्धान हो गया, अरु दैत्य अपने राजा वैरोचनकी सभाविषे जाइकरि अपने अपने व्यवहारविषे जाय वर्ते, और खेचर भूचर पातालवासी थे सो अपने अपने स्थानको गए, देवता, दिशा, पर्वत समुद्र, नाग किन्नर, गंधर्व सब अपने व्यवहारविषे जाय वर्ते ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिविज्ञानप्राप्तिर्नाम अष्टाविंशतितम सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशतितमः सर्गः २९.

बल्युपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब दिव्य सहस्र वर्ष [illegible] भये तब
दैत्यराजा समाधिते उतरा, नौबत [illegible] दैत्य [illegible]
जयजय शब्द करने लगे, नगरके [illegible]
ताको प्राप्त भए, जैसे सूर्यके [illegible]
निकसि आए, जबलग दैत्य न आ[illegible]
आश्चर्य है, जो परमपदकी ऐसे [illegible]
तिसविषे स्थित होकरि मैं [illegible]
पदका आश्रय करो, तिसविषे
प्रयोजन है, ऐसा आनंद [illegible]
जैसा अनुभवविषे स्थित हुए [illegible]
नाहीं [illegible] समाधि करने लगा
[illegible] वसिष्ठ

तैसे घेर करके दैत्य प्रणाम करने लगे, बड़े पर्वतोंकी नाईं अचल आकार जो है बलिराजा, सो मनविषे विचरता भया, सो कैसा राजा है कि, क्षीण भए हैं संकल्प जिसके सो विचारता भया कि, मुझको त्यागनेयोग्य क्या है, अरु ग्रहण करने योग्य क्या है, त्याग तिसका करता है, जो अनिष्ट दुःखदायक होवै अरु ग्रहण तिसका करता है, जो आगे न होवे, सो आत्माते व्यतिरेक कछु नहीं, तिसविषे ग्रहण त्याग किसका करौं, अरु मोक्षकी इच्छा भी मैं किसकारणते करौं, काहेते जो बंध होता है, तौ, तिसते मोक्षकी इच्छा करता है, सो बंध नहीं तौ मोक्षकी इच्छा कैसे होवे ? यह बंध अरु मोक्ष बालकको क्रीड़ा कही है, न बंध है, न मोक्ष है, यह कल्पना भी मूढताविषे है सो मूढता मेरी नष्ट भई है, अब मुझको ध्यान विलाससे क्या प्रयोजन है, अरु ध्यानकरि क्या है, अब मुझको न परमतत्त्वकी इच्छा है, न कछु ध्यानसे प्रयोजन है, अर्थ यह कि न विदेहमुक्तिकी इच्छा है, न जगत्विषे स्थित रहनेकी इच्छा है, न मैं मरता हौं न जीता हौं, न सत्य हौं न असत्य हौं, न सम हौं न विषम हौं, न कोऊ मेरा है, न कोऊ अपर है, अद्वैतरूप मैं एक आत्मा हौं, सो मुझको नमस्कार है, इस राजक्रियाविषे मैं स्थित हौं, तौ भी मैं आत्मपदविषे स्थित हौं, सदा शीतल हौं, ध्यान दिशाकरि मुझको सिद्धता नहीं, न राजकार्य विभूतिकरि कछु सिद्ध होता है, जय अजय सो न मैं यह कछु हौं, न मेरा कछु है, ताते राजकार्य करि मेरा कछु प्रयोजन नहीं, मैं आकाशवत् होइ रहता हौं, जो मैं न कछु इच्छा करौंगा, न राज्य करौंगा, तौ भी मेरा कार्य कछु सिद्ध नहीं होता, ताते जो कछु प्रकृत आचार है, तिसीको मैं करौं, बंधनका कारण अज्ञान है, सो मेरा अज्ञान नष्ट भया है, कोऊ क्रिया मुझको बंधनरूप नहीं, ताते जो कछु प्रकृत आचार है, तिसको करौं ॥ हे रामजी ! इसीप्रकार निर्णय करिके बलि दैत्योंकी ओर देखता भया, तब देवता अरु दैत्य सब शीशकरि प्रणाम करत भए, तब दृष्टि करिके तिनकी प्रणाम वंदना अंगीकार करत भए, जैसे पवन पुष्पोंकी सुगंधि लेता है, तब राजा बलिने ध्येय वासनाको मनते त्याग कीनी अरु राज्यके कार्य करता भया. ब्राह्मण, देवता, गुरुका पूजन करता

स्थित भया, चिंता भ्रम इसका क्षीण भया है, मोहरूपी कुहिड नष्ट भई अब इसको मत जगाइ. यह आत्मज्ञानको प्राप्त भया है यत्न क्लेश इसका दूर हो गया है, जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है, अब मैं इसको जगावता नहीं, सो आपही चिरकालते जागेगा, काहेते जो प्रारब्ध अंकुर इसका रहता है, यह उठिकरि अपना राज्यकार्य करेगा, दिव्य सहस्र वर्षते यह जागेगा, अब तुम इसको मत जगावौ, अपने राज्यकार्यविषे जाय वर्तौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार शुक्रजीने कहा, तब सुनकार सूखे वृक्षकी मंजरी जैसे हो गया तब शुक्रजी अंतर्धान हो गया, अरु दैत्य अपने राजा वैरोचनकी सभाविषे जाइकरि अपने अपने व्यवहारविषे जाय वर्तें, और खेचर भूचर पातालवासी थे सो अपने अपने स्थानको गए,देवता,दिशा, पर्वत समुद्र, नाग किन्नर,गंधर्व सब अपने व्यवहारविषे जाय वर्तें ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वलिविज्ञानप्राप्तिर्नाम अष्टाविंशतितम सर्ग. ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशतितमः सर्गः २९.

वल्युपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब दिव्य सहस्र वर्ष व्यतीत भये तब दैत्यराजा समाधिते उतरा, नौबत नगारे बाजने लगे, देवता दैत्य बडे जयजय शब्द करने लगे, नगरवासी प्रवृद्ध भए देखिकरि बडी प्रसन्नताको प्राप्त भए, जैसे सूर्यके उदय हुएते कमल खिलि आते हैं, तैसे खिलि आए, जबलग दैत्य न आये, तबलग राजा चितवता भया, बडा आश्चर्य है, जो परमपदकी ऐसी रमणीय पदवी शांतरूप शीतल है, तिसविषे स्थित होइकरि मैं परमविश्राम पाया है, ताते बहुरि उसी पदका आश्रय करौं, तिसीविषे स्थित होऊं, राज्यविभूतिसे मेरा क्या प्रयोजन है, ऐसा आनंद शीतल चंद्रमाके मंडलविषे भी नहीं पावा, जैसा अनुभवविषे स्थित हुएते पाता है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चितवनाकरि बहुरि समाधि करने लगा, जो गलित मन होवै, तब दैत्यसेना मन्त्री भृत्य बांधव आय वेष्टित भए, जैसे चंद्रमाको मेघ घेरि लेता है,

सर्व पदार्थ विभूतिके उदय अस्तविषे अमर होवेगा, आकाशकी नाईं दोनोंविषे रागद्वेषते रहित अचल रहेगा, यह बलिके विज्ञान प्राप्तिका क्रम वृत्तांत कहा है, इसी दृष्टिको आश्रय करि तुम भी स्थित होहु, बलिकी नाईं अपने विवेककरि नित्यतृप्त आत्मनिश्चयको धारो कि, सर्व मैं हौं, इस निश्चयकरि निर्द्वंद्वपदको प्राप्त होवेगा, अपने पुरुषार्थकरि बलिकी नाईं निश्चयको धारिकारि परमपदको प्राप्त होवेगा ॥ हे रामजी! दशकरोड वर्ष तीन लोकका राज्य बलि भोगता भया, अंतमें विरक्तताको प्राप्त भया, तैसे तू भी भोगोंते विरक्त होहु, यह भोग तुच्छ हैं, इनको त्यागिकारि परमपदविषे प्राप्त होहु, यह जो दृश्य प्रपंच नानाप्रकारके विकारसंयुक्त भासता है, सो न कोऊ तेरा है, न तू किसीका है, जैसे पर्वत अरु शिलाविषे बड़ा भेद है, तैसे जिस पुरुषका मन संसारकी ओर धावता है, सो मनकी वृत्तिविषे डूबता है, जब तू मनको हृदयकोटरविषे धरैगा, तब सब जगत्का प्रकाश होवैगा, तू आत्मस्वरूप है, तौ अपना क्या अरु पराया क्या, यह सब मिथ्या कल्पना है, तू सबका आदि पुरुषोत्तम है, तूही साकाररूप पदार्थ हैं, तूही सब ओर पूर्ण है, सब जगत्विषे चेतनरूप है, स्थावर जंगम जगत् सब तुझकरि परोया है, जैसे सूतकरि मणिके परोये हैं, नित्य शुद्ध उदित बोधस्वरूप है, भ्रांतिते रहित है, जन्म आदिक सर्व रोगके नाशनिमित्त आत्मविचारकरि बलात्कारसों भोगोंका त्यागकारि सर्वका भोक्ता होहु। तू केवल स्वरूप जगत्का नाथ है, चैतन्य सूर्य प्रकाशरूप सर्वदा स्थित है, सर्व जगत् तेरे प्रकाशकरि प्रकाशता है, सुखदुःखकी कल्पना तेरेविषे कोई नहीं, तू शुद्ध सर्वात्मा सर्वप्रकाशक है, इष्टअनिष्टको त्यागिकरि केवल अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, इष्टअनिष्टके त्यागते निरंतर सत्यता उदय होती है, तिस सत्यताको हृदयविषे धारिकरि फिर जन्ममरण भी नहीं आना, जिस जिस पदार्थविषे मन लगै, तिसते निकासिकरि आत्मतत्त्वविषे जोड़हु, जब इस प्रकार तू दृढ अभ्यास करेगा, तब मन जो उन्मत्त हस्ती है, सो

भया, जिस जिसप्रकार सो जिस जिसका पूजन करता था सो यथायोग्य किया और जो कोऊ अर्थी थे मित्र बांधव टहलुए, तिनका अर्थ पूर्ण करता भया, अरु ललना जो स्त्रियां थीं, तिनको नानाप्रकारके वस्त्र भूषण देता भया, जो शासना दंड देनेयोग्य दुष्ट थे, तिनको दंड करता भया, बहुरि यज्ञका आरंभ किया, तिस यज्ञविषे स्वरगणोंको पूजता भया. शुक्रजीते आदि ले जो बड़े मुख्य देवता यज्ञ करानेनिमित्त बैठे थे, सो शुक्र कैसा था, जिसने भोगविलासको क्षणभंगुर जाना है सो अरु सबको वांछित सिद्धताके निमित्त प्राप्त किया है, अपना शरीर ऐसा जो है हरि विष्णु, भोगोंते अचाह है चित्त जिसका, तिसने इंद्रके अर्थ सिद्ध करनेनिमित्त, कैसे हैं इंद्र; जिसके वह क्रमकरि बड़ा भया है, तिस विष्णु भगवान्‌ने कर्ममात्र छलको धारा, तिसकरि बलिराजाको वंचित कर लिया, तब बांधिकरि पातालविषे स्थित किया, जैसे वानरको बांधते हैं तैसे बांधा, अबलग पातालविषे स्थित है, बहुरि इंद्र होवैगा, अब जीवन्मुक्त स्वस्थ वपु सदा ध्यानस्थित ईषणाते रहित पुरुष पातालविषे है॥ हे रामजी! जीवन्मुक्त पुरुष जो बलि है, सो संपदा आपदाविषे समचित्त विचरता है, संपदाविषे हर्ष नहीं, आपदाविषे शोक नहीं, दुःखसुखविषे समचित्त है जिसका, जैसे मूर्तिका लिखा सूर्य उदय अस्तते रहित होता है, अनेक जीवोंका उपजना अरु लय होना बलि देखता भया, अरु दश करोड वर्षपर्यंत तीनों लोकोंका कार्य करता भया, बड़े विषयभोग भोगे, अंत भोगोंको निरस जानिकरि तिसका मन निरस हुआ, विचारकरि तृष्णा नष्ट हो गई, मन उपशम हुआ है, हेयोपादेयकी चेष्टा नानाप्रकार बलिने देखी, पदार्थोंके भाव अभावविषे मन शांतिको न प्राप्त भया, अब भोगोंकी अभिलाषा त्यागिकरि आत्मारामी भया, नित्य स्वरूपविषे स्थित पाताल कोटरमें विराजता है॥ हे रामजी! इस बलिको बहुरि इस जगत्‌का इंद्र होना है, संपूर्ण जगतका कार्य करना है, अनेक वर्ष आज्ञा चलावैगा, परंतु इंद्रपदको पाइकरि हुष्टवान् न होवैगा, अपने ऐश्वर्यपदके गिरनेकरि खेदवान् भी न होवैगा,

सर्व पदार्थ विभूतिके उदय अस्तविषे अमर होवैगा, आकाशकी नाई दोनोंविषे रागद्वेषते रहित अचल रहैगा, यह बलिके विज्ञान प्राप्तिका क्रम वृत्तांत कहा है, इसी दृष्टिको आश्रय करि तुम भी स्थित होहु, बलिकी नाई अपने विवेककरि नित्यतृप्त आत्मनिश्चयको धारौ कि, सर्व मैं हौं, इस निश्चयकरि निर्द्वंद्वपदको प्राप्त होवैगा, अपने पुरुषार्थकरि बलिकी नाई निश्चयको धारिकरि परमपदको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! दशकरोड वर्ष तीन लोकका राज्य बलि भोगता भया, अंतमें विरक्तताको प्राप्त भया, तैसे तू भी भोगोंते विरक्त होहु, यह भोग तुच्छ हैं, इनको त्यागिकरि परमपदविषे प्राप्त होहु, यह जो दृश्य प्रपंच नानाप्रकारके विकारसंयुक्त भासता है, सो न कोऊ तेरा है, न तू किसीका है, जैसे पर्वत अरु शिलाविषे बड़ा भेद है, तैसे जिस पुरुषका मन संसारकी ओर धावता है, सो मनकी वृत्तिविषे डूबता है, जब तू मनको हृदयकोटरविषे धरैगा, तब सब जगत्का प्रकाश होवैगा, तू आत्मस्वरूप है, तो अपना क्या अरु पराया क्या, यह सब मिथ्या कल्पना है, तू सबका आदि पुरुषोत्तम है, तूही साकाररूप पदार्थ है, तूही सब ओर पूर्ण है, सब जगत्विषे चेतनरूप है, स्थावर जंगम जगत् सब तुझकरि परोया है, जैसे सूतकरि मणिके परोये हैं, नित्य शुद्ध उदित बोधस्वरूप है, भ्रांतिते रहित है, जन्म आदिक सर्व रोगके नाशनिमित्त आत्मविचारकरि बलात्कारसों भोगोंका त्यागकरि सर्वका भोक्ता होहु। तू केवल स्वरूप जगत्का नाथ है, चैतन्य सूर्य प्रकाशरूप सर्वदा स्थित है, सर्व जगत तेरे प्रकाशकरि प्रकाशता है, सुखदुःखकी कल्पना तेरेविषे कोई नहीं, तू शुद्ध सर्वात्मा सर्वप्रकाशक है, इष्टअनिष्टको त्यागिकरि केवल अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, इष्टअनिष्टके त्यागते निरंतर सत्यता उदय होती है, तिस सत्यताको हृदयविषे धारिकरि फिर जन्ममरण भी नहीं आता, जिस जिस पदार्थविषे मन लगै, तिसते निकासिकरि आत्मतत्त्वविषे जोड़हु, जब इस प्रकार तू दृढ अभ्यास करैगा, तब मन जो उन्मत्त हस्ती है, सो

बाधा जावेगी, तब सर्व सिद्धांतके परमसारको तू प्राप्त होवेगा॥ हे रामजी! तू मूढोंकी नाईं मत होहु, मूढ जीव सब चेष्टा मिथ्या-ही करता है, मिथ्या चेष्टाकरि जिनकी बुद्धि नष्ट भई है अरु अविद्यारू-पी धूर्तते बिके हैं, तिनके तुल्य न होहु, यह जगत् अणुमात्र भी कछु है नहीं, बड़ा विस्ताररूप जो दृष्ट आता है, सो निर्णयकरि देखा है, जो मूढ़-ताकरिके भासा है, मूढ़ता परम दुःखरूप है, इसते अधिक दुःख कोऊ नहीं आत्मारूपी सूर्यके आगे आवरणकर्त्ता अज्ञानरूपी मेघहै, तिसको विवेक-रूपी पवनकरि नाशकरै, तब आत्माका साक्षात्कार होवैगा, वैराग्य अरु अभ्यासकरि साक्षात्कार होवैगा, आत्मविचारके अभ्यास अरु विषयोंते वैराग्यविना आत्माका साक्षात्कार नहीं होता, वेदरूप वेदांतशास्त्रहै, अरु जो द्रष्टा तर्कयुक्त है, तिनकरि भी अपने विचारविना साक्षात्कार नहीं होता, आत्मविचारकरि पुरुषार्थकरि आत्माकी प्रसन्नता होती है, अरु बुद्धिकी निर्मलतासों बोधकरि प्राप्ति होती है, ता[illegible] रहित होइकरि चेतनतत्त्वविषे [illegible] हु, विस्तृत [illegible] जो आ-त्मतत्त्व है, तिसकी स्थिति मेरे [illegible] सं०९५ लीन हो गए हैं, संवेदनरूपी [illegible] पा है, [illegible] दिढ़ तेरी नष्ट हो गई है॥ [illegible] ख्यानसमाप्तिवर्णन नाम [illegible] सर्ग

[illegible]

[illegible]९५

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी [illegible] सुन, जैसे दैत्य असुर प्रह्लादको [illegible]

[illegible]

भुवन

[illegible]

भया, समय पाइकरि पुत्रोंको उत्पन्न किया, जैसे वसंतऋतु अंकुरको उत्पन्न करती है बड़ा ऐश्वर्यवान् होइकरि वृद्ध भया, सर्व दिशाविषे सूर्यकी नाईं प्रकाश किया, आकाशको ग्रहण करि चिरकालपर्यंत प्रकाश आच्छादि लिया, तिसके पुत्रविषे बड़ा पुत्र प्रह्लाद होता भया, सो प्रह्लाद सबसों अधिक प्रकाशवान् भया, तिस पुत्रकरि हिरण्यकशिपु शोभता भया, जैसे सर्व सुंदर लताकरि वसंतऋतु शोभती है, तैसे अपने बल अरु पुत्रोंकी सुंदरता अरु ईश्वर भंडार तिनोंकरि हिरण्यकशिपु शोभता भया, इन लोकोंको अपने वश किया, जैसे प्रलयकालविषे सूर्य सब लोकोंको तपाता है, तैसे तपाने लगा, दुष्ट क्रीड़ाकरि देवतोंको दैत्य दुःख देवैं, तब सब देवता मिलिकरि विष्णुकी शरण गए, अरु विनती करी कि, यह हिरण्यकशिपु महादुष्ट है, तिसका नाश करो, अरु हमारी रक्षा करो, वारवार दुखावनेकरि महापुरुष भी क्रोधवान हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार देवतोंने प्रार्थना करी, तब विष्णुदेवने कहा, अब तुम जाओ, मैं तिसको पुत्रके हेतुकरि मारौंगा, ऐसे कहिकरि अंतर्धान हो गया, अरु हिरण्यकशिपु अपने ऐश्वर्यकी शिक्षा प्रह्लादको देवै, परंतु वह ग्रहण न करै, बहुतप्रकार करि उसको ताडना भी देवै, तौ भी उसकी शिक्षाका प्रह्लाद अंगीकार न करै, वह ईश्वर विष्णुजीकी आराधनाविषे रहै, इसकारणतें ताडनाका दुःख प्रह्लादको कछु न होवै, तब दैत्य अपने हाथमें खड्ग लेकरि कहने लगा ॥ हे दुष्ट ! तेरा ईश्वर कहां है, जिसका तू आराधन करता है, अब मुझबिना ईश्वर अपर कौन है, तब प्रह्लादने कहा, मेरा ईश्वर सर्वव्यापक है, तब हिरण्यकशिपुने कहा, इस स्तंभविषे कहां है, जो है तो दिखाय दे, न दिखावैगा तौ तुझको मारौंगा; तब सर्वव्यापक जो विष्णु सो स्तंभमों भासने लगे, बड़े शब्द होने लगे, तिस स्तंभको फोडिकरि भुजा अरु वज्रको तोडनेहारे बड़े नखों संयुक्त विष्णु प्रगट भये, महाभयानकरूप, बड़े हस्तीके समान दंत, ऐसे स्थित जैसे बिजलीका प्रकाश होवै, अरु अग्निकी नाईं कुंडल प्रकाश, अरु दो भुजा मानो ब्रह्मांड खपरके तोडनेहारी हैं, मुखते श्वास जो निकसता है, सो पर्वतोंका चूर्ण करनेहारा है, अरु कोपरूपी अग्नि प्रलयकालकी अग्नि

बाधा जावैगा, तब सर्व सिद्धांतके परमसारको तू प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी! तू मूढोंकी नाईं मत होहु, मूढ जीव सब चेष्टा मिथ्या-ही करता है, मिथ्या चेष्टाकरि जिनकी बुद्धि नष्ट भई है अरु अविद्यारूपी धूर्तते बिके हैं, तिनके तुल्य न होहु, यह जगत् अणुमात्र भी कछु है नहीं, बड़ा विस्ताररूप जो दृष्ट आता है, सो निर्णयकरि देखा है, जो मूढ़ताकरिके भासा है, मूढ़ता परम दुःखरूप है, इसते अधिक दुःख कोऊ नहीं आत्मारूपी सूर्यके आगे आवरणकर्त्ता अज्ञानरूपी मेघहै, तिसको विवेकरूपी पवनकरि नाशकरौ, तब आत्माका साक्षात्कार होवैगा, वैराग्य अरु अभ्यासकरि साक्षात्कार होवैगा, आत्मविचारके अभ्यास अरु विषयोंते वैराग्यविना आत्माका साक्षात्कार नहीं होता, वेदरूप वेदांतशास्त्रहै, अरु जो द्रष्टा तर्कयुक्त है, तिनकरि भी अपने विचारविना साक्षात्कार नहीं होता, आत्मविचारकरि पुरुषार्थकरि आत्माकी प्रसन्नता होती है, अरु बुद्धिकी निर्मलतासों बोधकरि प्राप्ति होती है, ताते संकल्पविकल्पते रहित होइकरि चेतनतत्त्वविषे स्थित होहु, विस्तृत व्यापकरूप जो आत्मतत्त्व है, तिसकी स्थिति मेरे वचनोंकरि ग्रहणकरि सर्व संकल्प तेरे लीन हो गए हैं, संवेदनरूपी भ्रम शांत भया है, संसार कौतुकरूपी कुहिड़ तेरी नष्ट हो गई है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम एकोनत्रिंशतितमः सर्गः॥ २९॥

त्रिंशतितमः सर्गः ३०

हिरण्यकशिपुवधवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! अब तू विज्ञानप्राप्तिके कारण और क्रम सुन, जैसे दैत्य असुर प्रह्लादको आत्माकी सिद्धता भई तैसे तू भी होहु, पातालकोटरविषे एक हिरण्यकशिपु दैत्य होता भया, सो कैसा था, जिसने देवतोंके इन्द्र भगाए हैं, विष्णुजीके समान जिसका पराक्रम, अरु संपूर्ण भुवन भोग जिसने वशकरि छोड़े थे, सर्व देवता दैत्यको वश करिके जगत्का कार्य करता भया, दैत्योंका ईश्वर अरु तीनों भुवनोंका ईश्वर

भया, समय पाइकरि पुत्रोंको उत्पन्न किया, जैसे वसंतऋतु अंकुरको उत्पन्न करती है वड़ा ऐश्वर्यवान् होइकरि वृद्ध भया, सर्व दिशाविषे सूर्यकी नाई प्रकाश किया, आकाशको ग्रहण करि चिरकालपर्यंत प्रकाश आच्छादि लिया, तिसके पुत्रविषे वड़ा पुत्र प्रह्लाद होता भया, सो प्रह्लाद सवसों अधिक प्रकाशवान् भया, तिस पुत्रकरि हिरण्यकशिपु शोभता भया, जैसे सर्व सुंदर लताकरि वसतऋतु शोभती है, तैसे अपने वल अरु पुत्रोंकी सुदरता अरु ईश्वर भंडार तिनोंकरि हिरण्यकशिपु शोभता भया, इन लोकोंको अपने वश किया, जैसे प्रलयकालविषे सूर्य सव लोकोंको तपाता है, तैसे तपाने लगा, दुष्ट क्रीड़ाकरि देवतोंको दैत्य दुःख देवें, तव सव देवता मिलिकरि विष्णुकी शरण गए, अरु विनती करी कि, यह हिरण्यकशिपु महादुष्ट है, तिसका नाश करौ, अरु हमारी रक्षा करौ, वारंवार दुखावनेकरि महापुरुष भी क्रोधवान हो जाता है ॥ हे रामजी ! जव इसप्रकार देवतोंने प्रार्थना करी, तव विष्णुदेवने कहा, अव तुम जाओ, मैं तिसको पुत्रके हेतुकरि मारौंगा, ऐसे कहिकरि अतर्धान हो गया, अरु हिरण्यकशिपु अपने ऐश्वर्यकी शिक्षा प्रल्हादको देवे, परंतु वह ग्रहण न करे, वहुतप्रकार करि उसको ताडना भी देवे, तौ भी उसकी शिक्षाका प्रल्हाद अगीकार न करे, वह ईश्वर विष्णुजीकी आराधनाविषे रहै, इसकारणते ताडनाका दुःख प्रल्हादको कछु न होवै, तव दैत्य अपने हाथमें खड्ग लेकरि कहने लगा ॥ हे दुष्ट ! तेरा ईश्वर कहां है, जिसका तू आराधन करता है, अव मुझविना ईश्वर अपर कौन है, तव प्रल्हादने कहा, मेरा ईश्वर सर्वव्यापक है, तव हिरण्यकशिपुने कहा, इस स्तभविषे कहा है, जो है तौ दिखाय दे, न दिखावैगा तौ तुझको मारौंगा, तव सर्वव्यापक जो विष्णु सो स्तभमों भासने लगे, वड़े शब्द होने लगे, तिस स्तभको फोडिकरि भुजा अरु वज्रको तोडनेहारे वड़े नखों सयुक्त विष्णु प्रगट भये, महाभयानकरूप, वड़े हस्तीके समान दत, ऐसे स्थित जैसे विजलीका प्रकाश होवै, अरु अग्निकी नाई कुडल प्रकाश, अरु दो भुजा मानो ब्रह्मांड खपरके तोडनेहारी हैं, मुखते श्वास जो निकसता है, सो पर्वतोंका चूर्ण करनेहारा है, अरु कोपरूपी अग्नि प्रलयकालकी अग्नि

ते भी अधिक है, अरु बड़े सूर्यवत् प्रकाश करै, ऐसे महाभयानक नरसिंहरूप विष्णुदेवने करिके हिरण्यकशिपुको नखोंसे विदारण किया; अरु ऐसा कोपवान् रूप धरा, जिसकरि दैत्योंके स्थान जलने लगे, अरु दृष्टिकरि मानो, पर्वत चूर्ण होते हैं, अरु नरसिंहरूप वायुके चलनेकरि दैत्य उडते हैं, अरु दैत्यके समूह कई मारे, कई भाग गए, दिशा विदिशा को दौडि गए, जैसे वायुके मारे मच्छर उड जाते हैं, पाताल छिद्रमें कछु नाश हो गये, प्रलयकालवत स्थान शून्य हो गए, मानो अकाल प्रलय आया है, दैत्य नाश हो गए, दैत्योंका नाश कर बहुरि विष्णुदेव अंतर्धान होगए, कछुक दैत्य बांधव टहलुए रहे थे, सो प्रल्हादके निकट आए, मुख कुंभलाय गए, जैसे जलते रहित कमल होता है, भाई बांधव मिलिकर प्रल्हादको समुझावने लगे, प्रल्हादने मिलिकारि पिताकी परिदेवना करी, बहुरि उठिकारि सब कर्म किये, संशयकारि दैत्य भी बैठे, अरु विचारकारि शोकवान् हो, सब दैत्य सूखकर चित्रकी पुतली हो गए, जैसे दग्ध वृक्ष सूखि जाता है, अरु रसते रहित हो जाता है, तैसे हिरण्यकशिपुविना दैत्य शोकवान् महादुःखी भए॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे हिरण्यकशिपुवधवर्णनं नाम त्रिंशत्तितमः सर्गः॥ ३०॥

एकत्रिंशत्तमः सर्गः ३१.

प्रह्लादविज्ञानवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब हिरण्यकशिपुके मारणेकरि दैत्य बहुत दुःखी भए, तब प्रह्लाद मौनवान् होइकरि चिंतवता भया, पाताल कोटरविषे सब दैत्य मिलिकरि चितासयुक्त बैठे तिनसे प्रह्लाद कहत भया कि, अब अपनी रक्षाके निमित्त कौन उपाय करिये, हमारे दैत्यके नाश करनेहारा विष्णु तौ बड़ा बली है, जिसके नख तीक्ष्ण खड्गकी धारावत है, जैसे सिंह मृगोंको मारता है, तैसे हमको मारता है, पाताल कोटरविषे दैत्य शांतिवान् कदाचित नहीं होते हैं, जब दैत्य वर्धमान होते हैं, तब विष्णु आय नाश करता है, जैसे कमलोंपर पर्वत आय पडै, तैसे चूर्ण करता है, बडे आकारा गौरव शब्द करनेहारे दैत्य उपजि उपजि नष्ट हो

जाते हैं, जैसे जलविषे तरंग उपजि उपजि नष्ट हो जाते हैं, तैसे अंतर वाहिर हमको कष्ट देता है, हमारा शत्रु बड़ा दृढ है, बड़ा अपूर्वतम आय वढा है, हमारा हृदय तमकारि पूर्ण हो गया है, संपदा नष्ट हो गई है, जो हमारे पिताकारि देवता चूर्ण भए थे, तिनका वल हमते अधिक हो गया है हमारी स्त्रियोंको वश कारि ले गए हैं, जैसे मृगको व्याध ले जाता है, अरु धन लक्ष्मी हमारा सब ले गए हैं, हम दीन हो रहे हैं, जैसे जलविना कमल कुँभलाइ जाता है, तैसे हम बांधवविना भए हैं, हमारे घरोंविषे धूलि उड़ती है, जो वड़े स्थान मिलिकारि खचित किए थे, सो शून्य हो गए, जो हमारे स्थान वड़े कल्पवृक्ष थे, सो उखाडिकारि नंदनवनविषे जाय लगाये हैं, नरसिंहजीकी सहायताकारि ऐसा वल देवता पाये है, हमारे वृक्ष स्थान नरसिंहजीने जलाय दिए है, जो देवतोंकी स्त्रियोंके मुख दैत्य देखते थे, सो अव दैत्योंकी स्त्रियोंके मुख देवता देखते हैं, कल्प मदार वृक्षोंके समूह दैत्योंके स्थानविषे थे, अरु सुमेरु पर्वतविषे विराजे थे, सो स्थान अव शून्य हो गए, धूलि उड़ती है, सुमेरु दुर्लभ हो गए हैं, जो दैत्योंकी स्त्रियां अपने स्थानविषे वैठी थीं, सो अव देवांगनोंके शिरपर चमर करती हैं, अरु वह हास्यविलास करती हैं, यह वड़ा कष्ट है, हमको आपदाने दीन किये हैं, हे दैत्यो ! हमको और उपाय कोई दृष्ट नहीं आता, जव उसही विष्णुकी शरणको जावैं, तव सुखी होवैं, वह कैसा, पुरुष है, जिसके दो भुजारूपी वृक्षकी छायाविषे देवता विश्राम करते हैं, विष्णुके प्रतापकारि तपायमान भी नहीं होता, जैसे हिमालय पर्वत कदाचित् तपायमान नहीं होता, तैसे जो पुरुष विष्णुकी शरण जाता है, सो तपायमान नहीं होता, ताते हम भी उसीकी शरणको प्राप्त होवें, तुम देखते हो कि, जो देवांगना असुरोंकी स्त्रियोंका पूजन करती थीं, सो अव अपनेको पूजावने लगी हैं, हम दैत्योंकी स्त्रियोंके मुख कुँभलाय गये हैं, जैसे वर्फकी वर्षाकारि कमल सूखि जाता है, तैसे हमारे मंडप टूटि गए हैं, नील मणिनके स्तंभ थे, सो गिर पडे हैं, दैत्यसेना जो आपदाके समुद्रविषे डूवतीथी, तिसके रक्षा करने को वडा समर्थ था, डूवने न देता था, जैसे क्षीरसमुद्रविषे मंदराचलको

कच्छपरूपने डूबने न दिया, तैसे हमारे पितादि जो बडे बडे बली रक्षा करनेहारेथे, तिनको विष्णुजीने मारि चूर्ण किये, जैसे प्रलयकालका पवन पर्वतोंको चूर्ण करता है, उनका मित्र सुहृद् होता है, ऐसे मधुसूदनकी गति अति विषम है, दैत्योंकी भुजारूपी दृड है, तिनके काटनेहारा कुठार है, तिनकी साह्यताकरि इंद्रादिक देवता दैत्यसेनाको जीतने मारने लगे हैं जैसे बालकको वानर मारै, यह पुंडरीकाक्ष विष्णुको जीतना कठिनहै, जो यह शस्त्रोंविना होवै, तौ भी हमारे शस्त्र इनको छेदि नहीं सकते, वज्र भी छेदि नहीं सकता, महापराक्रमी है, युद्धका इसने बड़ा अभ्यास किया है, यह पर्वतोंसे युद्ध करता रहताहै जो हमारा पिता बड़ा बली था, जिसने त्रिलोकीके राज्य अरु सब देवता वश किए थे तिसको इसने मार डारा तौ हमको मारनेविषे क्या यत्न है? यह महाबली है, इसको जीतना नहीं होता, ताते एक उपाय मैं तुमको कहता हौं, तिसकरि विष्णु प्रगट वश आवैगा, सो यह उपाय है, जो विष्णु सर्वात्मा है, सर्वका प्रकाशक है अरु सबका कारण है, तिसकी हम शरणहैं और हमारी गति आश्रय कोऊ नहीं॥ हे दैत्यो! उसते अधिक इस त्रिलोकीविषे कोऊ नहीं, जगत्का उत्पत्ति,स्थिति,प्रलयकर्ता वही देवताहै,उसके ध्यानविषे लागो, एक निमेष भी तिसके ध्यानते उतरो नहीं, मैं भी उसके ध्यानविषे लगता हौं, सो नारायण अजन्मा पुरुष है, मैं सदा तिसके परायण हौं, सबप्रकार नारायण मैं हौं, 'ॐनमोनारायणाय' यह मंत्र सब अर्थोंका सिद्धकर्ता है, इस मंत्रके ध्यान जाप करते हुए हमारे हृदयविषे आय स्फुरणरूप होवैगा सो कैसा हरि है, सबका आत्मा हरि है, पृथ्वी भी हरि है, यह सब जगत् हरि है, मैं भी हरि हौं, आकाश भी हरि है, सबका आत्मा भी हरि है, अ विष्णु जो होइकरि विष्णुका पूजन करते हैं, सो पूजनेका फल नहीं पावे अरु जो विष्णु होइकरि विष्णुका पूजन करते है, सो परम उत्तम फलको पाते हैं ताते मैं विष्णुरूप होइकरि स्थित होता हौं।
आकाश हौं, गरुड़पर आरूढ हौं अरु स्वर्णके भू
रूप वृक्षकरि जीवरूप सब पक्षी विश्राम पातेहैं
विष बहुरि पटेहैं है,जब मैंने क्षीरसमुद्र मथन॰

घसाए है, अरु यह मेरे पार्षद स्थित हैं, सुंदर चमर हस्तविषे हैं, इसको क्षीरसमुद्रते उपजाये हैं, अरु त्रिलोकीरूपी वृक्षकी यह सुंदर मजरी है, महाधवल मनको हरणहारी है, यह मेरे पार्षदविषे माया है, जिसने अनंत जगज्जाल निरंतर उत्पत्ति प्रलय कीनी है, अरु इंद्रजालकी विलासनी है, यह मेरे पार्षदविषे जो शक्ति है जिसने लीला करिके त्रिलोकी खड वश किया है, जैसे कल्पवृक्षलता फुलती है, तैसे मेरे पार्षदविषे फुलती है शीत उष्ण यह दो मेरे नेत्र हैं, सपूर्ण जगत्को प्रकाशते हैं चंद्रमा अरु सूर्य तिनके नाम है, यह मेरा नील कमलवत् देह है, महासुदर श्याम मेघवत् है महाप्रकाशरूप है, यह मेरे हस्तविषे पांचजन्य शख है, जिसकी फुरणरूप ध्वनी है, सो क्षीरसमुद्रते निकसा है, यह नाभिकमल है, जिसते ब्रह्मा उत्पन्न भया है, अरु इसविषे निवास करता है, जैसे भ्रमर कमलविषे निवास करता है, तैसे यह मेरे हस्तविषे कुमोदकी गदा है, सुमेरुके शिखरवत् रत्नोंकी वनी हुई है, दैत्य दानवोंके नाश करनेहारी है, ज्वालाके पुंजवत् जिसका तेज है, यह मेरे हाथोंविषे महाप्रकाशरूप सुदर्शनचक्र साधुओंको सुख देनेहारा है, यह मेरे हाथोंविषे अग्निके समूहवाला कुठार है, सो दैत्यरूपी वृक्षोंको काटनेहारा है, अरु साधुओंको आनंददायक है, यह मेरे हाथविषे सारग धनुष्य है, महाप्रकाशवत् जिसकी ध्वनि है, यह मेरे पीतवर्ण वस्त्र हैं, यह वैजयंती माला है, कौस्तुभ मणि मेरे कंठविषे है, ऐसा मैं विष्णु देव हौं, अनत जगत्की उत्पत्ति लय हो गई है, सर्वोंके धारनहारा मैं हौं, कई बीत गये हैं, कई होवेंगे, यह पृथ्वी मेरे चरण हैं, आकाश मेरा शीश है, तीनों लोक मेरा वपु है, दशों दिशा मेरे वक्षस्थल है, मैं साक्षात् विष्णु हौं, नील मेघवत् मेरी काति है, गरुडपर आरूढ शंख, चक्र, गदा, पद्मके धारनेहारा मैं हौं, दुष्ट है चित्त जिनका, सो हमको देखिकरि भाग जाते है, यह सुदर शीतल चंद्रमावत् मेरी कांति है, पीतवस्त्र श्यामवदन गदाधारी है, लक्ष्मी मेरे वक्षस्थलविषे है, अच्युतरूपी विष्णु मैं हौं, वह कौन है जो मेरेसे विरोध करनेको समर्थ होवे ? मैं त्रिलोकीको जलावनेको समर्थ हौं, जो मेरेसाथ युद्ध करनेको सन्मुख होवे, तिसको अपने नाशका कारण है, जैसे अग्निविषे

पतंग जलि मरते हैं, तैसे मेरा एसा तेज है, जिसकी दृष्टि संहारनेको कोऊ समर्थ नहीं है, मैं विष्णु ईश्वर हौं, ब्रह्मा, इन्द्र, यमादिक नित्य मेरी स्तुति करते हैं, अरु तृण, काष्ठ, स्थावर, जंगम जेता कछु जाल है, तिस सबके अंतर व्यापकरूप हौं त्रिलोकीविषे मैं प्रकाशरूप हौं, अजन्मा हौं, भयको नाशकर्ता हौं, ऐसा मेरा स्वरूप है, तिसको मेरा नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादविज्ञान वर्णनं नाम एकत्रिंशत्तम सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ३२.

विविधव्यतिरेकवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार प्रह्लाद नारायणस्वरूप अपना करिके चितवता भया, बहुरि पूजनके निमित्त वैष्णवनको चितवता भया, मनविषे दूसरी मूर्ति विष्णुकी करी प्राण पवननकरि संपन्न अरु गरुडपर आरूढ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार शक्तिकरि संपन्न, अरु शंख चक्र गदा पद्म हस्तविषे, श्याम अंग चतुर्भुजा चंद्रमा अरु सूर्य जिसके नेत्र ऐसा लक्ष्मीधर महासुंदर आनंदके देनहारे विशाल नेत्र हैं जिसके, शार्ङ्ग धनुष्य हस्तविषे बडा प्रकाशरूप है, ऐसी मूर्ति विष्णुकी पूजताभया परिवारसयुक्त भलीप्रकार पूजन किया, बडे स्तोत्रयुक्त प्रह्लादमन करि पूजता भया माधव कमलाधरको रत्नोंका अर्घ्य दिया अरु चंदनका लेपन धूप दीप विचित्र नानाप्रकारके भूषणोंकरि अरु मंदार कल्पवृक्षोंके कमलोंकरि रत्नमणिके गुच्छे नानाप्रकारके पुष्पोंकरि, अरु पिस्ता खजूरी बदाम आदिक मेवाकरि, भक्ष्य भोज्य चोष्य लेह्य चार प्रकारके भोजन, नानाप्रकारके स्वाद अरु वस्त्र भूषणकरि [illegible] अपना आप विष्णुको अर्पण किया, परमभक्तिकरि [illegible] मनकरि पूजन किया, तिसी प्रकार [illegible] पूजत भया, इसप्रकार दिन दि[illegible] प्रह्लाद मनकी [illegible] पूजा करते भये, [illegible] हौ

रहे, कल्याणमूर्ति विष्णुभक्त हो गये, जैसा राजा होता है, तैसी तिसकी प्रजा होती है, इसविषे कछु आश्चर्य नहीं, तब यह वार्ता देवलोकविषे प्रगट भई कि, दैत्योंने विष्णुका दोष त्याग किया है, अरु भक्त हुए है, तब देवता आश्चर्यको प्राप्त भये, इंद्रादिक अमरगण चितवत भये कि,यह क्या हुआ ? दैत्योंने विष्णुभक्ति ग्रहण करी है, इनको प्राप्ति कैसे भई है, ऐसे आश्चर्यवान् होइकरि विष्णुके निकट दैत्योंकी वार्ता कहनेनिमित्त क्षीरसमुद्रको गये। यह तौ अपूर्व वार्ता हुई है, दैत्य कहां अरु विष्णुकी भक्ति कहां, विष्णुके निकट जाय कहते भये॥ देवा ऊचु ॥ हे भगवन्! यह तुमने क्या माया पसारी है, जो दत्य सर्वदा विरोध करते थे, सो तुम्हारे साथ तन्मयरूप हो रहे है, कहां वह दुर्वृत्ति पर्वतको चूर्ण करनेहारे दैत्य, अरु कहां तुम्हारी भक्ति, जो अनेक जन्मोंकरि भी दुर्लभ है ॥ हे जर्नादन! तेरी भक्ति कहां अरु उनकी वृत्ति कहां, यह तो अपूर्व वार्ता भई है, जैसे समयविना पुष्पोंकी माला नहींशोभती, तैसे पात्रविना तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती यह हमको सुखदायक नहीं भासती, जैसा जैसा कोऊ होता है, तैसे तैसे स्थानविषे शोभता है, जैसे काचविषे महामणि नहीं शोभती, तैसे दैत्योंविषे तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती जैसा गुण किसीविषे होता है, सो तैसी पंक्तिविषे शोभता है, अपरविषे स्थित हुआ नहीं शोभता है, जो सदेश नहीं होता, तौ दुःखदायक होता है जैसे अगोंविषे वस्त्र दुःखदायक होता है, तैसे पदार्थ क्रमकरि प्राप्त होता है, सो जैसा गुणवान् होवै तैसा प्राप्त होता है, वह शोभा पाता है, विपर्यय होवै तब शोभा नहीं पाता, जैसे कमलिनी जलविषे शोभती है, मरुस्थलविषे नहीं शोभती तैसे कहां वह अधम नीचजन भयानक कर्म करनेहारे अरु कहां तेरी आश्चर्यभक्ति, जैसे कमलिनी पृथ्वीपर नहीं शोभती, तैसी तेरी भक्ति दैत्योंविषे नहीं शोभती, तैसे भक्ति हमको उनविषे सुखदायक नहीं भासती ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे विविधव्यतिरेकोनाम द्वात्रिंशत्तम सर्ग ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशतितमः सर्गः ३३.

प्रह्लादाष्टकानंतर नारायणागमनवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार शब्दकरि देवता कहने लगे, तब माधव आयकरि बोले, जैसे मेघ मोरको कहै, तैसे गंभीरवाणी करि बोलत भये ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे देवगण ! तुम शोक मत करो, प्रह्लाद मेरा भक्त है, शत्रुको नाश कर्ता यह प्रह्लादका अंतका जन्म है, अब मोक्षको प्राप्त होइकरि बहुरि जन्म न पावैगा, जैसे भूना बीज बहुरि अंकुर नहीं लेता तैसे इसको बहुरि जन्म नहीं होवैगा ॥ हे देवगण ! जो गुणवान् होवै, अरु गुणोंको त्यागिकरि दोष ग्रहण करै, तब यह कर्म अनर्थरूप होताहै, अरु जो प्रथम गुणोंते रहित निर्गुण होवै बहुरि तिनको त्यागिकरी गुण ग्रहण करै, शास्त्रमार्गनिषे विचरै तो यह सुखदायक होता है प्रह्लादकी विचित्र चेष्टा तुमको सुखदायक होवैगी, अबतुम अपने स्थानोंको जाओ, प्रह्लाद मेरा भक्त है ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकरि भगवान् क्षीरसमुद्रविषे अन्तर्धान हो गये, देवता नमस्कार करिकै अपने स्थानको गए, अरु प्रह्लादकेसाथ दोषभावनाका त्याग करत भये, अरु बडेके चित्तसों दोष त्यागनेते औरोंके मन भी विश्रामको पावै है. प्रह्लाद दिनदिनविषे अपने वपुप्रति जनार्दनकी मनसा वाचा कर्मणा भक्ति करत भया, समय आइकरि दैत्यविषे भक्ति बडी हो गई, परम विवेकको प्राप्त भये, अरु विषयभोगते वैराग्यवान् भये, देखिकरि आनंदी न होवै, जैसे सूखे वृक्षविषे टास होता है, तिसविषे पक्षी प्रीति नहीं करते, तैसे वे विषयोंसाथ प्रीति नहीं करै, सुंदर स्त्रियोंसे न रमै जैसे मृगतृष्णाकी नदीको जाननेहारे मृग रमणीय देखिकरि प्रसन्न नहीं होते, तैसे भाग्यार्थ कंपनविना और इच्छानीविषे तिनको प्रीति न उपजै यह भोग रोगरूप है, तिनविषे उनका चित्त विश्रामवान न होय, राग न करै, परंतु सुखकर्ता जो आत्मबोध है, सो प्राप्त नहीं भया, मुक्तिफलको तुल्य आप स्थित भये हैं भोगोंकी अभिलाषको त्यागिकरि निर्मल हो गये हैं, परम समाधिको नहीं प्राप्त भये, चित्त मध्य अवस्थाविषे डोलायमान भै

भोगोंते वैराग्य अरु ईश्वरकी भक्तिविषे स्थित भये, तब श्याममूर्ति जो विष्णुदेव हैं, सो प्रह्लादकी वृत्तिको विचारिकरि पातालविषे प्रह्लादके गृहपूजास्थानविषे महाप्रकाश सुंदररूप प्रगटे, तिसको देखिकरि प्रह्लाद विशेष पूजाको करता भया, प्रल्हाद प्रेमकरि गद्गद हो गया, चरण वंदनाकरि पूजन बहुत किया बहुरि ऐसे कहते भये ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ हे ईश्वर! त्रिलोकीविषे सुंदर मूर्ति सबके धारनेहारे अरु सब कलंक हरनेहारे प्रकाशस्वरूप अशरणोंके शरण अजन्मा अच्युत मैं तेरे शरण हौं ॥ हे नीलोत्पल कमलोंके पर्वत शरत्कालके निरुपमश्यामरूप असंग चित्त करिकै धरनेहारे मैं तेरी शरण हौं ॥ हे निर्मलरूप! केलेवत् कोमल अंग, श्वेत कमलकी नाईं श्वेत शंख हस्तविषे है, अरु नाभिकमलविषे भँवरा रूप ब्रह्मा स्थित है, वेदका उच्चाररूपी गुरगुर शब्द कर्ता है, अरु हृदय-कमलविषे विराजनेहारे जलके ईश्वररूप मैं तेरी शरण हौं, श्वेत नख तारागणवत् प्रकाशरूप हैं, हँसता मुख चंद्रमाके मंडलवत् है, हृदयरूपी मणि सबका प्रकाशक है, शरत्कालके आकाशवत् निर्मल विस्तृतरूप मैं तेरी शरण हौं ॥ हे त्रिभुवनरूपी! कमलनियोंके प्रकाशनेहारा चंद्रमा मोहरूपी अंधकारके नाशकर्ता सूर्य है, अजड चिदात्मा संपूर्ण जगत्के कष्ट हरनेहारे मैं तेरी शरण हौं ॥ हे नूतन विकासितरूप कमलपुष्पोंकरि भूषित अंग अरु स्वर्णवत पीतांबरधारी, महासुंदर स्वरूप मैं तेरी शरण हौं ॥ हे ईश्वर! लीला करिकै सृष्टिके उत्पत्ति स्थिति नाश करनेहारे पर-मशक्ति शंकर योगिवत दृढ देह मैं तेरी शरण हौं अरु दामनीवत प्रकाश-रूप सबको संहार कर जलविषे बालकरूपधारी वटके नीचे शयन करने-हारे मैं तेरी शरण हौं, देवतारूप कमलोंके प्रकाश करनेहारे, सूर्यमंडल दैत्यपुत्ररूपी कमलिनियोंके तुषाररूपी बर्फ जलावनेहारे, अरु हृदयरूप कमलोंके आश्रयभूत मैं तेरी शरण हौं ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इस-प्रकार अनेक गुणोंकरि अष्ट श्लोक प्रह्लादने कहे, तब नीलोत्पल कमल-वत् देह जिसका है, ऐसा परमात्मा पुरुष प्रसन्न होइकरि प्रह्लादको कहता भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादाष्टकानंतरं नारायणाग-मन वर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तितम सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशतितमः सर्गः ३४.

प्रह्लादोपदेशवर्णनम्।

श्रीभगवानुवाच ॥ हे गुणनिधि दैत्यकुलके शिरोमणि! जो तुझको वांछित फल है सो माँग, बहुरि जन्मदुःखके शांतिनिमित्त जिसकरि तुझको जन्मदुःख न होवे सो माँग॥ प्रह्लाद उवाच॥ हे सर्वसंकल्पके फलदायक सर्व लोकोंविषे व्यापकरूप! जो वस्तु दुर्लभतर है सो शीघ्रही मुझको कहो अरु देहु॥ श्रीभगवानुवाच॥ हे पुत्र! सब भ्रमका नाश करनेहारा अरु परम फलरूप ब्रह्मते विश्रांति होती है सो आत्मविवेककी समताकरि प्राप्त होती सो आत्मविवेक तुझको होवैगा॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इसप्रकार दैत्येंद्रको कहिकारि विष्णु अंतर्धान हो गए, तब समुद्रते गुरगुर शब्द करिके उठे, अरु गुप्त हो जावे, तैसे विष्णुजीको देखकरि प्रह्लादने पुष्पांजलि दीनी, पूजा करिके श्रेष्ठ आसन बिछाया, तिसपर आप पद्मासन धरि बैठे, उत्तम शास्त्रोंका पाठ विधिसंयुक्त करने लगे, पाठकरि चिंतनाकरी कि, विष्णुने मुझसे क्या कहा है, यह कहा था, कि तुझको विवेक होवैगा सो संसारके समुद्र तरनेनिमित्त शीघ्रही विचार करो इस संसार आडंबरविषे मैं कौन हौं जो बोलता हौं स्थित हौं यह जंतु तौ मैं नहीं, यह असत्य उपजा है जडरूप पवनकरि स्फुरणरूप होता है सो मैं कैसे होउं? यह देह भी नहीं, क्षणक्षणविषे कालकरि लीन होता है, यह जडरूप है सो मैं नहीं यह श्रवणरूपी जड है सो मैं नहीं, अरु शब्द सुनते हैं सो शब्द शून्यते उपजा है, सो भी मैं नहीं अरु त्वचा इंद्रिय भी मैं नहीं इसका क्षणक्षणविषे विनाशस्वभाव है प्राप्त हुआ न हुआ, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह आप जड़ [illegible]
चेतनतत्त्व है चेतनके प्रमादकरि यह विषय उप[illegible]
मैं त्वचा इंद्रिय हौं, न स्पर्श [illegible]
जो चपलरूपी जिह्वा इंद्रिय [illegible]
अग्रविषे स्थित है सो रसको [illegible]
लब्धरूप होता है आप जड है त[illegible]
अरु यह जो दृश्यके दर्शनविषे [illegible]

न मैं इनका विषयरूप हौं यह जड है अरु यह जो नासिका पृथ्वीका अंश हैं सो केवल आत्माके आधारहे अरु आप जड है इसके जानने हारा चेतन है सो न मैं नासिका हौं, न गंध हौं, मैं अहममते रहित हौं मनके मननते रहित शांतरूप हौं,अरु यह पंच इंद्रिया मेरे विषे नहीं,मैं शुद्ध चेतनरूप हौं कलनाकलंकते रहित हौं मैं चित्तते रहित चिन्मात्र हौं, सर्वका प्रकाशक सबके अंतर बाहिर व्यापकरूप हौं निःसंकल्प निर्मल शांतरूप हौं, आश्चर्य है, अब मुझको अपना स्वरूप स्मरण आता है, प्रकाशरूप चेतन अनुभव अद्वैत अपने अनुभव चेतन करिकै स्थित हौं सूर्य घटपटादिक सब पदार्थोंमें प्रकाशता है, जैसे उत्तम तेज दीपककरि भासे, तैसे चेतन अनुभवकरि इंद्रियोंकी वृत्ति स्फुरणरूप होती है, जैसे तेजकरि चिनगारे स्फुरणरूप होते है, तैसे सर्वज्ञ अनुभव सत्ताकरिकै मनकी मननरूप शक्ति फुरती है, जैसे सूर्यके तेजकरि मरुस्थलविषे मृगतृष्णाकी नदी फुरती है, तैसे अनुभवसत्ता करिकै पदार्थ भासते है, जैसे दीपकमें शुक्लादि रंग भासते है, तैसे यह पदार्थोंविषे अहं आदिक पदार्थ भासते है, जाग्रतवत् सब पदार्थोंका प्रकाशक है सबको अनुभव करिकै भासता है, सबके अंतर आत्मभावकरिकै स्थित है, जैसे बीजविषे अंकुर स्थित होता है, तैसे चेतनरूप दीपकके प्रकाशकरि विकल्परूपी पदार्थोंकी शक्ति भासती है, उष्णरूप सूर्य है, अरु शीतलरूप चंद्रमा है, घनरूप पर्वत है, द्रवतारूप जल है, इसप्रकार अनुभवसत्ताते पदार्थ प्रगट होते है, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि घटपटादिक होते है, ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र इन सर्वके कारणरूप जगतविषे स्थित है, अरु इनका कारण अनुभवतत्त्व है। आदिअंतते रहित है, अरु सब कारणोंको कारण है जैसे बर्फते शीतलता उपजती है, तैसे अनुभवते जगत उदय होता है, चित्त चैत्य दृश्य दर्शन कलनाते रहित सत्ता प्रकाशरूप आत्मा मेरा मुझको नमस्कार है, इसविषे सर्व भूतोंकी उत्पत्ति स्थिति होइकरि बहुरि लय होते है, सो निर्विकल्प चेतन सर्वका आश्रयरूप आत्मा है जो इस चित्तकरि अंतर कल्पितरूप हो जाता है सोई होता है, आत्माते रहित सत्य भी असत्य हो जाता है, जो चेतन संवित

विषे कल्पितरूप होता है, सो पदार्थ अपने स्वरूपको पाता है कि, यह ऐसे है, अरु जो चित्तसंवितविषे कल्पितरूप नहीं होता, सो सत्य भी असत्यरूप हो जाता है, यह घटपटादि पदार्थका समूह भासता है, सो विस्तृतरूप चिदाकाश दर्पणविषे प्रतिबिंबित होता है; सो अनुभवसत्ता सर्व भूतोंका आदर्शरूप है, जिनका चित्त नष्ट हो जाता है, तिन संत पुरुषोंको ऐसे दृढ भान प्राप्त है, परम आकाशरूप आत्माविषे अभ्यास करि तन्मय हो जाता है, सो अनुभवसत्ता पदार्थोंके वृद्ध होनेकरि वृद्ध नहीं होती, अरु नष्ट होनेकरि नष्ट नहीं होती, पदार्थोंके भाव अभावविषे सत्ता सामान्य ज्योंकी त्यों है, जैसे सूर्यके प्रतिबिंबविषे घट सत्य होवै, अथवा असत्य होवै, सूर्य ज्योंका त्यों है संसाररूप नानाप्रकारकी विचित्ररचना है, सो ऐसे आत्माविषे स्थित है, जैसे विचित्र गुच्छेनै युक्त वृक्षोंकी पंक्तिकी विचित्र रचना पर्वत ऊपर स्थित होती है, तैसे संसाररूप दृश्य नानाप्रकारकी मंजरीको धरनेहारा आत्मसत्ता वृक्ष है, जेते कछु भूतगण त्रिलोकीके उदरविषे [illegible], सो आत्मामात्र अभिन्नरूप हैं ब्रह्माते आदि [illegible] पर्यंत सर्व [illegible] आत्मा है, सो अनुभवसत्ता आदि अ[illegible] आ[illegible] स्थावर जंगम सर्व जगद्भूतजात [illegible] सो [illegible] आत्मा मैं हौं, इस [illegible] नेत्र सहस्र-हस्त मेरे हैं [illegible] रता हौं, [illegible] अरु मैं विष्णु [illegible] देखनेहारा हौं [illegible] हौं। हते उत्पन्न हुआ [illegible] मेरी अरु मन प्रतिरूप [illegible] अपने [illegible] है, स [illegible] है, इंद्र- [illegible] सोऽपि [illegible] लोक म [illegible] स्थित हौं॥

मैंही उत्पत्ति कर्त्ता हौं, मैंही चेतनरूप हौ जगत् आडंबर लीलाके निमित्त विस्ताररूप मैनेही किया है, जैसे मृत्तिकाके खिलौने बालक रचि लेता है तैसे, अरु मेरेविषे सर्व कर्म अर्पण कर सर्व शांतिको प्राप्त होता है, मुझते रहित कछु वस्तु नहीं, सत्तास्वरूप मैं आदर्श हौं, सब पदार्थ मेरेविषे प्रतिबिंबित होते हैं, तब यह असत्यरूप भी सत्यताको प्राप्त होता है, ताते मुझते भिन्न कछु नहीं, पुष्पोंविषे सुगंधि मैं हौं, पत्रोंविषे सुंदरता छवि मैं हौं, पुरुषविषे अनुभव मैं हौ, स्थावर जंगमरूप जो जगत दृष्ट आता है, सो सब मैं हौ सब संकल्पते रहित परम चैतन्य हौं, अहं त्वं आदिकते पर हौं, जलविषे रसशक्ति मैं हौं, अग्निविषे उष्णता, बर्फविषे शीतलता मैं हौं, जैसे काष्ठविषे अग्नि, तैसे सर्वविषे स्थित हौं, सब पदार्थोंविषे मैं परमात्मा व्यापक हौं, सबको अपनी इच्छाकरि उपजाता हौं, जैसे दूधविषे घृतशक्ति, जलविषे रसशक्ति, सूर्यविषे प्रकाशशक्ति है, तैसे चेतनस्वरूप मैं सब पदार्थोंविषे स्थित हौं, त्रिकालका जगत् सब मेरेविषे स्थित है, सो मैं चित्तके उपचार फुरनेते रहित शुद्धस्वरूप हौं, सर्वको भरणपोषणहारा हौं, मैंही वैराट राजा होइकरि स्थित भया हौं, त्रिलोकीका राज्य मुझको अपूर्व प्राप्त भया है, कैसा राज्य है, शस्त्रोंविना देवके दल विना निश्चित विस्तृत राज्यप्राप्ति है, बडा आश्चर्य है, मैं बड़ा विस्तृतरूप हौं, मैं अपने आपविषे सामता नहीं, जैसे कल्पांतरके वायुकरि उछला समुद्र आपविषे नहीं समाता, तैसे मैं अनंतरूप आत्मा अपनी इच्छाकरि आप प्रकाशता हौं, जैसे क्षीरसमुद्र अपनी उज्ज्वलताकरि शोभता है; तैसे मैं अपने आपकरि शोभता हौं, यह जगत्रूपी मटकी महा अल्परूप है, जैसे बिलविषे हस्ती नहीं समाता, तैसे मैं अपने आपविषे विस्तृतरूपकरि जगविषे नहीं समाता, कोटि ब्रह्मांडविषे व्यापक हौं, ब्रह्मलोकते परे जो तत्त्वोंका अंत आता है, तिसते भी परे मैं अनंतरूप हौं, यह मैं हौं, यह मैं नहीं, यह मेरेविषे निर्बलता थी, सो तुच्छरूप है, मैं तौ आदि अंतते रहित चेतन आकाश हौं, मेरेविषे परिच्छिन्नता मिथ्या भासती थी, मैं तू यह वह आदिक मिथ्या भ्रम है, देह क्या, अरु पर क्या, आप क्या, मैं तौ सर्वव्यापक चेतन हौं, तत्त्व हौं, मेरे पितामह भटे तीन बुद्धिहीन थे, जो

विषे कल्पितरूप होता है, सो पदार्थ अपने स्वरूपको पाता है कि यह ऐसे है, अरु जो चित्तसंवित्‌विषे कल्पितरूप नहीं होता, सो सत्य भी असत्यरूप हो जाता है, यह घटपटादि पदार्थका समूह भासता है, सो निस्तृतरूप चिदाकाश दर्पणविषे प्रतिबिंबित होता है, सो अनुभवसत्ता सर्व भूतोंका आदर्शरूप है, जिनका चित्त नष्ट हो जाता है, तिन सत पुरुषोंको ऐसे दृढ भाव प्राप्त है, परम आकाशरूप आत्माविषे अभ्यास करि तन्मय हो जाता है; सो अनुभवसत्ता पदार्थोंके वृद्ध होनेकरि वृद्ध नहीं होती, अरु नष्ट होनेकरि नष्ट नहीं होती, पदार्थोंके भाव अभावविषे सत्ता सामान्य ज्योंकी त्यों है, जैसे सूर्यके प्रतिबिंबविषे घट सत्य होवे, अथवा असत्य होवे, सूर्य ज्योंका त्यों है संसाररूप नानाप्रकारकी विचित्ररचना है, सो ऐसे आत्माविषे स्थित है, जैसे विचित्र गुच्छेसे युक्त वृक्षोंकी पंक्तिकी विचित्र रचना पर्वत ऊपर स्थित होती है, तैसे संसाररूप दृश्य नानाप्रकारकी मजरीको धरनेहारा आत्मसत्ता वृक्ष है, जैसे कछु भूतगण त्रिलोकीके उदरविषे वर्तते हैं, सो आत्मासाथ अभिन्नरूप है ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सर्वका प्रकाशक आत्मा है, सो अनुभवसत्ता आदि अंतते रहित है, सर्वरूप जिसका आकार है, स्थावर जंगम सर्व जगद्वस्तुजात अंतर अनुभवरूप स्थित है, सो एक अनुभव आत्मा मैं हौं, ... दृश्य सर्वरूप आत्मा मैं हौं, सहस्र नेत्र सहस्र- ... चिदाकाशरूप हौं, सूर्य देहकरि आकाशविषे विच... मैं चंद्रमा हौं वायु वाहनपर आरूढ हौं, ... धारा हौं, सर्व सामान्य ... मैं नदी हौं, मैं नाभिकम- ... स्थितरूप ब्रह्मा हौं ... लिया है, गौरी मेरी ... जैसे मोक्ष अपने ... मरी है इंद्र- ... जैसा मोक्ष ... धारि लिया हौं।

मैंही उत्पत्ति कर्त्ता हौं, मैंही चेतनरूप हौ जगत् आ
विस्ताररूप मैनेही किया है, जैसे मृत्तिकाके खिल अरु कहां जले हुए
है तैसे, अरु मेरेविषे सर्व कर्म अर्पण कर सर्व शांतिरूप अरु कहां भोगों-
मुझते रहित कछु वस्तु नहीं, सत्तास्वरूप मै अ कोई नहीं, जिसकी मैं
विषे प्रतिबिंबित होते है, तब यह असत्यरूप चेतनतत्त्व स्वच्छ समभाव
ताते मुझते भिन्न कछु नहीं, पुष्पोंविषे सुगंधि है, जैसे है तैसा पाया जाता
मैं हौं, पुरुषविषे अनुभव मैं हौ, स्थावर जंग शक्ति है, चंद्रमाविषे अमृत
सो सब मै हौं सब संकल्पते रहित परम इंद्रविषे त्रिलोकपालनकी शक्ति
हौं, जलविषे रसशक्ति मै हौं, अग्निवि लोकी है, शीघ्र मनकर्त्ता शक्ति
हौं, जैसे काष्ठविषे अग्नि, तैसे सर्वा दिकशक्ति अग्निविषे है, जलविषे रसश-
अजन्मा व्यापक हौं, सबको अपन पकी सिद्धताशक्ति, अरु विद्याशक्ति
केतेक शक्ति, जल विमानोंपारि आरूढ होइकरि आकाशमार्ग
शांतिसुखदार्थों शक्ति है, पर्वतोंविषे स्थिरताशक्ति, वसंतऋतुविषे पुष्प
; परंतु के उप कालविषे मेघोंकी शांतशक्ति, यक्षोंविषे ममत्वशक्ति, आका-
मतारूप वैराट मताशक्ति, वर्फविषे शीतलताशक्ति, ज्येष्ठ आषाढविषे तप्तश-
ा यत्न होवै, इत्यादिक देश, काल, क्रियारूप नानाप्रकारके आकार विकार
इंद्रियोंके सु उदरविषे स्थित है, सो सर्वशक्ति स्वच्छ निर्विकार चेतनकी
को कछु ऐश्व रूप कलंकते रहित है, सो इसप्रकार हो भासता है, सोई
भया, अरु स सम पदार्थ जातिविषे व्यापक भया है, जैसे सूर्यका प्रकाश
यह परम अमृतव समान उदय होता है, तैसे सर्व देश पदार्थोंका भंडार सर्व-
को प्राप्त भया त है, त्रिकाल तिसविषे कल्पितरूप होते है, जैसा अनुभव
रि परिच्छिन्नतावी, तैसा तत्काल हो भासता है, जैसे जैसे चेतनतत्त्वविषे
। परिच्छिन्नतावि या द्रव्यका फुरना होताहै तैसा तैसा भासता है, अरु आ-
रि, कटकोंके पास लोंकी सम प्रतिभा फुरी है, तिसविषे बहुरि अनंतकालकी
नी है, जो आत्म शुद्ध चेतनतत्त्वविषे सर्व ओरते पूर्ण है, त्रिकालके स्म-
मृतको त्यागिकरि युक्त भासता है, सो चेतनतत्त्व शेष रहता है, अरु इसको
सब मूढ भए, ज्ञान होता है, मधुर कटुक आदिक भिन्नभिन्नमों एकसमता
तिवान् भए है, जैसे मधुरता पान करनेहारे जो जीव है, तिनको मधुरता
अपरको नहीं भासती, तैसे सर्व जो स्वरूपनादे, सबको भोग-

ताहै, सूक्ष्म चेतनहै, सत्तास्वरूप सर्व पदार्थोंका अधिष्ठानहै, तिसकेसाथ अनागत होइकरि द्वैत जगत् भासता है, नानाप्रकारकी जो पदार्थ लक्ष्मी है, अत्यंत दुःखको प्राप्त करती है, जब त्रिकालका अनुभव होता है, तब तबही सम भासता है, भाव पदार्थोंविषे जो पदार्थ हैं, सो ईश्वरके हैं, तिन भाव पदार्थोंको त्यागिकरि अभावकी भावना करनी तिसकरि दुःख सब नष्ट हो जाते हैं, संतुष्टता प्राप्त होती है, ताते त्रि-कालको मत देखहु, यह वचनरूप है, त्रिकालते रहित जो चेतनतत्त्व है, तिसको देखनेकरि विभाग कल्पना कालका अभाव हो जाता है, एक शम आत्मा शेष रहता है, तिसको वाणी वश नहीं कर सकती, अक्षतकी नाई जो निरंतर स्थित है, तिसकी प्राप्ति होती है, अनामय सिद्धांत है, जो शून्यवादीकी नाई स्थित होता है, निष्किंचन आत्मा ब्रह्म होता है, अथवा मनरूप परम उपशमविषे लीन होता है, अरु जिनका अंतःकरण मलिन है, संकल्पकरिके असम्यक्दर्शी है, तिनको ज्योंका त्यों नहीं भासता जगत् भासता है, अरु जिनकी इच्छा नष्ट भई है, प-रमपदका अभ्यास करते हैं, तिनको आत्मतत्त्व भासता है, अरु जो किसी जगत्के पदार्थकी वांछा करते हैं, किसीका त्याग किया चाहते हैं हेयोपादेय फांसीसे बांधे हैं, सो परमपद उपायके पानेको समर्थ नहीं होते, जैसे पेटकरि बांधा पक्षी आकाशमार्गविषे उड़नेको समर्थ नहीं होता, तैसे जे पुरुष संकल्प कलनासंयुक्त हैं, ते मोहरूपी जालविषे गिर पड़ते हैं जैसे नेत्रोंबिना गिर पड़ता है, तैसे संकल्प कलना जालकरि जिनका चित्त वेष्टित है, सो विषयरूपी गर्त्तविषे गिरा है अद्भुत पदवीको प्राप्त नहीं होता, अरु मेरे पितामह अनेक दिन पृथ्वीविषे क्रीडाकरि लीन हो गए हैं, सो बालक नीच थे, जैसे गर्त्तविषे मच्छर लीन हो जाते हैं, तैसे अज्ञानकरि परमतत्त्वको न जानते भये, भोगोंकी वांछा जो दुःखरूप है, सो अवश्य करते हैं, तिसते भावअभावरूप गर्त्त अंधकूपविषे नष्ट होते हैं, राजा अरु दीपकारि जो उठा है, सो रागद्वेषकरि खेदमान भए हैं, जैसे पृथ्वीविषे कीट मग्न होते हैं, यह जीव तिनके तुल्य हैं, अरु मृग-तृष्णारूप जगत्के पदार्थोंविषे सत्यत्वकरि बुद्धि जिनकी आगे भई

है, सो पुरुष जीते हैं, अपर सब नीच मृतकरूप हैं, निर्मल अविच्छिन्नरूप चैतन्य चंद्रमावत् शीतलता कहां, अरु उष्णकाल कलंकसंयुक्त चित्तकी अवस्था कहा ? अब मेरे आत्माको नमस्कार है, कैसा आत्मा है, जो अविच्छिन्न प्रकाश है, प्रकाश अरु तम दोनोंका प्रकाशरूप है ॥ हे चिदात्मा देव ! मुझको तू चिरकालकरि प्राप्त भया है, परमानंद भया जो विकल्परूपी समुद्रते मेरा उद्धार किया है, जो तू है, सो मैं हौं, और मैं हौं सो तू है, तुझको नमस्कार है, अनत शिव आत्मतत्त्वका चद्रमा संकल्पविकल्प कलोंके नष्ट हुएते सो निर्मल सदा उदितरूप है ॥ इति श्रीयो० उपशमप्रकरणे प्रल्हादोपदेशो नाम चतुस्त्रिंशततिम· सर्ग ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशततिमः सर्गः ३५.

आत्मलाभचिंतनवर्णनम् ।

प्रह्लाद उवाच ॥ ॐजिसका नाम है सो ब्रह्म मैं हौं, विकारते रहित हौं, जो कछु जगत् है, सो सब आत्मस्वरूप है, सत्य असत्यते अतीत है, चेतनस्वरूप है, सब जीवोंके अतर है, सूर्यादिक प्रकाश दीपक है, अग्नि आदिकको उष्णकर्ता यही है, अरु चंद्रमाविषे शीतकर्त्ता अमृतका स्रवणा आत्मातेही है, इन्द्रियोंके भोगोंका भोक्ता अनुभवरूप यही है राजाकी नाई ठाढा हौं, तौ मैं कबहूं, नहीं ठाढा, बैठा हौं, तौ मैं कबहू नहीं, बैठा चलता हौं तौ कबहूं नहीं चलता, व्यवहार करता हौं, सदा शांतरूप हौं, कर्ता हौं तौ किसीकरि लेपायमान नहीं होता, त्रिकालोंविषे समरूप हौं, सर्वदा सर्वअवस्थाविषे पदार्थोंके उपजनेविषे अरु मिटनेविषे सदा ज्योंका त्यों हौं, ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सब जगत् आवृत आत्मतत्त्व स्थित है, पवन जो स्पंदरूप है तिसते भी मैं अति सूक्ष्म स्पदरूप हौं, पर्वत जो स्थान हैं, अचल पदार्थ तिनते भी मैं अचल हौं, आकाशते भी अति निर्लेप हौं, अरु मनको भी आत्मा चलाता है, जैसे पत्रोंको पवन चलाता है, इन्द्रियोंको आत्मा फेरता है, जैसे घोडेको सवार चलाता है, अरु समर्थ चक्रवर्ती राजाकी नाई भोग भोगता हौं, अरु अपने ऐश्वर्यकरि आप शोभता हौं,

संसारसमुद्रविषे जरामरणरूपी जल है, तिसके पार करनेहारा आत्मा है
सो सबको सुलभ है, अपने आपकरि जानाजाता है, बांधवकी नाईं प्राप्त
होता है, शरीररूपी कमलोंके छिद्र हैं, तिन सबोंका भँवरा है, खैंचे बुला-
एबिना सुलभ प्राप्त होता है, अल्प भी इसको बुलाता है, तब तिसी
क्षणविषे सन्मुख होता है, इसविषे कोई संशय विकल्प नहीं, निष्कलंक
परम महद्दानान् है, सदा स्वस्थरूप है, रसदायक पदार्थोंविषे जैसे रस
स्वाद है, जैसे पुष्पविषे सुगंधि है, जैसे तिलोंविषे तेल है, तैसे देव परमा-
त्मा देहोंविषे स्थित है, तो भी अविचारके वशते जाना नहीं
जाता, जैसे चिरकालकरि आया बांधव अपने अग्र आनि स्थित
होता है, तिसको नहीं पिछान सकता॥ तैसे जब विचार उदय होता
है, तब ऐसे आत्मा परमेश्वरको जानि लेना है, जैसे किसी प्रीतम
बांधवके पाएते आनंद उदय होता है, तैसे आत्मा देवके साक्षात्कार
हुएते परम आनंद उदय होता है, सब बंधन नष्ट हो जाते हैं, जेती कछु
दुष्ट चेष्टा हैं, सो अभाव हो जाती हैं, सब ओरते बंधन फांसी टूटि जाती
हैं, सब शत्रु क्षय हो जाते हैं, आशा बहुरि नहीं फुरती, जैसे पर्वतको
गदा तोडि नहीं सकता तैसे, ऐसे देवके देखते सब कछु देखा होता
है, अरु सुनेते सब कछु सुना होता है, तिसके स्पर्श कियेते सब जग-
तका स्पर्श होता है, इसकी स्थितिकरि सर्व जगत् स्थित भासता है यह
जाग्रत् है, सो तत्त्वज्ञकी ओरते स्वप्न है, तिसी जाग्रतकरि अज्ञान नष्ट
हो जाता है, जेती कछु आपदा है, तिसका कष्ट दूर होता है, आत्माके
प्राप्त हुएते आत्मामय हो जाता है, सो विस्तृतरूप आत्मा दीपकवत्
साक्षीभूत होता है, जगत्की स्थितिविषे भोगोंते राग उठा है, सब ओरते
आत्मतत्त्व अपना प्रकाश भासता है, अंतर शांतरूप सबको अनुभव
करनेहारा सब देहोंविषे मैं स्थित हौं, जैसे मिरचोंविषे तीक्ष्णता स्थित
है, तैसे सब जगत्के अंतर बाहर व्याप रहा हौं, जेते कछु जगत्के पदार्थ
भासते हैं, सो सर्वविषे ईश्वररूप सत्ता सामान्य स्थित है, आकाशविषे
शून्यतारूप, वायुविषे स्पर्शरूप, तेजविषे प्रकाश, जलविषे रस, पृथ्वी-

विषे कठोरता, चंद्रमाविषे शीतलता है, तैसे सब जगत् अनुस्यूत एक आत्मतत्त्वही व्याप रहा है, जैसे वर्फविषे श्वेतता पुष्पोंविषे गंध होती है, तैसे सब देहोंविषे आत्मा व्यापक है, जैसे सर्वगत काल है, सर्वव्यापक आकाश है, तैसे सब जगत् आत्मा व्यापक है, जैसे राजाकी प्रभुता सबविषे होती है, मुझते भिन्न और कलना कोऊ नहीं, जैसे धूलिके कणके आकाशको स्पर्श नहीं करि सकते, अरु कमलोंको जल स्पर्श नहीं करता, जैसे पाषाणको स्फुरणभ्रम स्पर्श नहीं करता, तैसे मेरेसाथ किसीका संबंध नहीं स्पर्श करता, सुखदुःखका संबंध देहको होता है, जो देह चिरकाल रहै, अथवा अबहीं नष्ट होवै, तौ मुझको लाभ हानि कछु नहीं, जैसे दीपककी प्रभा लोकविषे रज्जुसाथ बांधी नहीं जाती, तैसे आत्मा किसीसे आच्छाद्या नहीं जाता, सब पदार्थोंके ग्रहणविषे अबध रूप है, जैसे आकाश किसीकरि बांधा नहीं जाता, अरु मन किसीकरि रोका नहीं जाता, तैसे परमात्माको देह इंद्रियका संबंध वास्तवते नहीं होता, जो शरीरसों टुकड़े हो जावैं, तौ भी आत्माका नाश नहीं होता, जैसे घट फूटेते दूध आदिक पदार्थ नहीं रहता, परंतु आकाश कहीं नहीं जाता, ज्योंका त्यों रहता है, तैसे देहके नाश भएते प्राणकला निकसी जाती है, आत्माका कछु नहीं होता, अरु पिशाचकी नाई उदय होइकरि भासता है, मन है नाम जिसका, तिस मनते जगत भासा है, तिसविषे जड़ शरीरके नाशका निश्चय भया है, हमारा क्या नाश होता है, दुःखसुखते वासना जिसके मनते नाश होती है, सो भोगोंते निवृत्ति सुखसंपन्न होता है, ग्रहणकर्ते भोगते इंद्रियके अज्ञानकरि मूढ दुःख पाते हैं, तिस-करि दुःखसंकट पाते हैं, यह बड़ा आश्चर्य है, आत्माके अज्ञानकरि मूढ दुःख पाते हैं, अब मैं आत्मतत्त्वको देखा है, तिसकरि मेरा भ्रम शांत हो गया है; कछु भी किसीकरि मुझको क्षोभ नहीं, न कछु भोगोंके ग्रहण करनेकी इच्छा है, न त्यागकी वांछा है, जो जावै सो जावै, जो प्राप्त होवै सो होवै, न मुझको देहादिक सुखकी अपेक्षा है, न दुःखकी निवृत्तिकी अपेक्षा है, सुखदुःख आवै अरु जावै, मैं एकरस चिदानंदस्वरूप हौं, देहविषे वासना करनेते नानाप्रकारकी वासना उपजती है, सो देहभ्रम

संसारसमुद्रविषे जरामरणरूपी जल है, तिसके पार करनेहारा आत्मा है, सो सबते सुलभ है, अपने आपकरि जानाजाता है, बांधवकी नाईं प्राप्त होता है, शरीररूपी कमलोंके छिद्र हैं, तिन सबोंका भँवरा है, खँचे कुछ एनिना सुलभ प्राप्त होता है, अल्प भी इसको बुलाता है, तब तिसी क्षणविषे सन्मुख होता है, इसविषे कोई संशय विकल्प नहीं, निष्कलंक परम मपदावान् है, सदा स्वस्थरूप है, रसदायक पदार्थोंविषे जैसे रस स्वाद है, जैसे पुष्पनिषे सुगंधि है, जैसे तिलोंविषे तेल है, तैसे देव परमात्मा देहोंविषे स्थित है, तो भी अविचारके वशते जाना नहीं जाता, जैसे चिरकालकरि आया बांधव अपने अग्र आनि स्थित होता है, तिसको नहीं पिछान सकता॥ तैसे जब विचार उदय होता है, तब ऐसे आत्मा परमेश्वरको जानि लेता है, जैसे किसी प्रीतम बांधवके पाएते आनंद उदय होता है, तैसे आत्मा देवके साक्षात्कार हुएते परम आनंद उदय होता है, सब बंधन नष्ट हो जाते हैं, जेती कछु दुष्ट चेष्टा है, सो अभाव हो जाती है, सब ओरते बंधन फांसी टूटि जाती है, सब शत्रु नाश हो जाते हैं, आशा बहुरि नहीं फुरती, जैसे पर्वतको गदा तोडि नहीं सकता तैसे, ऐसे देवके देखते सब कछु देखा होता है, अरु सुनते सब कछु सुना होता है, तिसके स्पर्श कियेते सब जगत्‌का स्पर्श होता है, इसकी स्थितिकरि सब जगत् स्थित भासता है यह जाग्रत है, सो संसारकी ओरते स्वप्न है, तिसी जागृतकरि अज्ञान नष्ट हो जाता है, जेती कछु आपदा है, तिनका कष्ट दूर होता है, आत्माके प्राप्त हुएते आत्मामय हो जाता है, सो चित्स्वरूप आत्मा दीपकवत् साक्षीभूत होता है, जगत्‌की स्थितिविषे भोगोंते नग्न रहता है, सब ओरते आत्मतत्त्व अपना प्रकाश भावता है, अनंत शांतरूप सबको अनुभव करनेहारा सब देहोंविषे मैं स्थित हौं, जैसे मिर्चोंविषे तीक्ष्णता स्थित है, तैसे सब जगत्‌के अनंत बाहर व्याप रहा हौं, जेते कछु जगत्‌के पदार्थ भासते हैं, सो सबविषे ईश्वररूप सत्ता सामान्य स्थित है, आकाशविषे शून्यतारूप, वायुविषे स्पंदरूप, तेजविषे प्रकाश, जलविषे रस, पृथ्वी-

विषे कठोरता, चद्रमाविषे शीतलता है, तैसे सब जगत् अनुस्यूत एक आत्मतत्त्वही व्याप रहा है, जैसे वर्फविषे श्वेतता पुष्पोंविषे गध होती है, तैसे सब देहोंविषे आत्मा व्यापक है, जैसे सर्वगत काल है, सर्वव्यापक आकाश है, तैसे सब जगत् आत्मा व्यापक है, जैसे राजाकी प्रभुता सबविषे होती है, मुझते भिन्न और कलना कोऊ नहीं, जैसे धूलिके कणके आकाशको स्पर्श नहीं करि सकते, अरु कमलोंको जल स्पर्श नहीं करता; जैसे पाषाणको स्फुरणभ्रम स्पर्श नहीं करता, तैसे मेरेसाथ किसीका सबध नहीं स्पर्श करता, सुखदु खका सबंध देहको होता है, जो देह चिरकाल रहै, अथवा अबहीं नष्ट होवै, तौ मुझको लाभ हानि कछु नहीं, जैसे दीपककी प्रभा लोकविषे रज्जुसाथ बाधी नहीं जाती, तैसे आत्मा किसीसे आच्छाद्या नही जाता, सब पदार्थोंके ग्रहणविषे अबध रूप है, जैसे आकाश किसीकरि बांधा नहीं जाता, अरु मन किसीकरि रोका नहीं जाता, तैसे परमात्माको देह इद्रियका सबध वास्तवते नहीं होता, जो शरीरसों टुकड़े हो जावें, तौ भी आत्माका नाश नहीं होता, जैसे घट फूटेते दूध आदिक पदार्थ नहीं रहता, परतु आकाश कहीं नहीं जाता, ज्योंका त्यों रहता है, तैसे देहके नाश भएते प्राणकला निकसी जाती है, आत्माका कछु नहीं होता, अरु पिशाचकी नाई उदय होइकरि भासता है, मन है नाम जिसका, तिस मनते जगत भासा है, तिसविषे जड़ शरीरके नाशका निश्चय भया है, हमारा क्या नाश होता है, दु खसुखते वासना जिसके मनते नाश होती है, सो भोगोंते निवृत्ति सुखसंपन्न होता है, ग्रहणकर्ते भोगते इद्रियके अज्ञानकरि मूढ दुःख पाते है, तिस- करि दु खसकट पाते है, यह बड़ा आश्चर्य है, आत्माके अज्ञानकरि मूढ दुःख पाते हैं, अब मै आत्मतत्वको देखा है, तिसकरि मेरा भ्रम शात हो गया है; कछु भी किसीकरि मुझको क्षोभ नहीं, न कछु भोगोंके ग्रहण करनेकी इच्छा है, न त्यागकी वाछा है, जो जावै सो जावै, जो प्राप्त होवै सो होवै, न मुझको देहादिक सुखकी अपेक्षाहै, न दुःखकी निवृत्तिकी अपेक्षाहै, सुखदु:ख आवै अरु जावै, मैं एकरस चिदानंदस्वरूप हौं, देहविषे वासना करनेते नानाप्रकारकी वासना उपजती है, सो देहभ्रम

मेरा नष्ट हो गया है, यह वासना नहीं फुरती, एते कालपर्यंत मुझको अज्ञानरूपी शत्रुने नाश किया था, अब मैं आपको जाना है, अब इसको मैं स्पर्श करता हौं, इस शरीररूपी वृक्षविषे अहंकाररूपी पिशाच था, सो मैंने परम बोधरूपी मंत्रकरि दूर किया है, इस शरीररूपी वृक्षसों अज्ञानरूपी पिशाच नष्ट भया है, ताते पवित्र हुआ हौं, प्रफुल्लित वृक्षवत् शोभता हौं, मोहरूपी दृष्टि मेरी शांत भई है, दुःख सब नष्ट भए हैं, विवेकरूपी धन मुझको प्राप्त भया है, अब मैं परम ईश्वररूप होइकरि स्थित भया हौं, जो वस्तु जानने योग्य था, सो जाना है, अरु जो वस्तु देखने योग्य था, सो देखा है, मैं तिस पदको प्राप्त भया हौं, जिसके पायेते कछु पाने योग्य नहीं रहे आत्मतत्त्वको देखा है, अनेक रस विषयरूपी सर्प मुझको त्यागि गये हैं, मोहरूपी कुहिड नष्ट हो गई है, इच्छारूपी मृगतृष्णा शांत हो गई है, रागद्वेषरूपी धूलि रहित सब ओरते निर्मल भया हौं, उपशमरूपी वृष्टिकरि शीतल भया हौं, सब ओरते विस्तृतरूपको प्राप्त भया हौं, मनते अतीत परमात्म देव परमार्थको वस्तुते करिके परिणामकरिके ज्ञान विचार करिके पाया हौं, अब प्रगट देखा है, अधोगतिका कारण जो अहंकार तिसको दूरते त्यागा है, अपना स्वभावरूप जो है आत्मा भगवान् सनातन ब्रह्म, सो अहंकारके वशते विस्मरण भया था, अब निश्चय करिके देखा है, इंद्रियांरूपी गर्तविषे मैं गिरा था, रागद्वेषरूपी सर्प डसकरि दुःख पाया था, अरु मृत्युको प्राप्त भया था, मृत्युकी भ्रमिका होयविषे तृष्णारूपी रज्जुकरि कुंभोंविषे पड़ा, पापरूपी कोयलके जहां शब्द होते थे, जन्मरूपी कूपविषे दुःख पाता था, धूमको पानेकी दिशाविषे डूबा, वासनारूपी जालविषे फँसा दुःखरूपी शाखाविषे जला, आशारूपी फाँसीसे बाँधा हुआ अहंकार जन्ममरणको प्राप्त भया था, अहंकारके वश हुएते जन्ममृत्युको प्राप्त होता है, जैसे रात्रिविषे पिशाच दिखाई देवे, अरु अर्धरात्रिको प्राप्त करे, तैसे मुझको अहंकारने किया था, सो अब है, परमात्मरूप मुझको तुमने दृष्टांतकरि आगेको युक्ति विचित्र पदार्थको विवेक उपदेश किया है, अरु जगाया है ॥ हे देव ईश्वर ! तुम्हारे बोधकरि अहंकाररूपी शत्रु

नष्ट भया है ॥ हे विभु ! तिसको मैं नहीं देखता, जैसे दीपकरि तम नहीं भासता तैसे ॥ अहंकाररूपी यक्ष था, अरु मनविषे वासना थी, सो सब नष्ट भए हैं, अब मैं जानता नहीं कि, कहां गये, जैसे दीपक निर्वाण होता है, तब नहीं जानता कि, प्रकाश कहां गया। हे ईश्वर ! तुम्हारे दर्शनकरि मेरा अहंभाव नष्ट भया है, जैसे सूर्यके उदय हुएते चोरभय मिट जाता है तैसे देहरूपी रात्रिविषे अहंकाररूपी पिशाच उठा था, सो अब नष्ट भया है, अब मैं परम स्वस्थ भया हौं, जैसे वानरोंते रहित वृक्ष स्वस्थ होता है, तैसे मैं परम निर्वाणको प्राप्त भया हौं, शम शांत बोधविषे मैं जागा हौं, चिरपर्यंत चोरोंते अब छूटा हौं, अंतर मेरा शीतल भया है, आशारूपी मृगतृष्णा शांत हो गई है, जैसे जलते पर्वतकी तप्तता मिटे, अरु वर्षाकरि शीतलताको प्राप्त होवै तैसे विवेकरूपी विचारकरि अहंकाररूपी तप्तता दूर हो गई है, अब मोह कहां अरु दुःख कहां, आशारूपी स्वर्ग कहां, अरु नरक कहां ? बंध अरु मुक्त कहां, अहंकारके होनेकरि पदार्थ भासते हैं, अहंकारके गयेते इसका अभाव हो जाता है, जैसे कंध ऊपर मूर्ति लिखी जाती है, आकाश ऊपर नहीं लिखी जाती, तैसे अहंकारसंयुक्त जो चेतन है, सो नहीं शोभता सुखदुःखादिकका पात्र होती है, जैसे मलीन वस्त्रपर केसरका रंग नहीं शोभता तैसे उसविषे ज्ञान नहीं शोभता जब अहंकाररूपी मेघका अभाव होवै, तब तृष्णारूपी कुहिड भी नहीं रहती, शरत्कालके आकाशवत् स्वच्छ चित्त रहता है, निरहंकाररूपी जल है जिसविषे, ऐसा जो मैं आनंदमय सरोवर हौं, सो प्रसन्नतारूपी कमलोंकरि शोभता हौं ॥ हे आत्मा, तुझको नमस्कार है, इंद्रियारूपी जिसविषे तडुए अरु चित्तरूपी वड़वाग्नि है, दोनों जिसते नष्ट भये हैं ऐसा आत्मारूपी समुद्र है, तिस शुद्ध आत्माको नमस्कार है, जिसते दूर भया है अरु अहंकार मेघ शांत भई है, दावाग्नि ऐसा जो आत्मानंदरूपी पर्वत है, तिस आनंदके आश्रय मैं विश्राम पाया हौं ॥ हे देव ! तुझको नमस्कार है, प्रफुलित है आनंदरूपी कमल जिसविषे, अरु शांत भये हैं चित्तरूपी तरंग जिसते ऐसा मानस सरोवर मैं आत्मा हौं, तिसको नमस्कार है, आत्मारूपी हंस संवित्‌रूपी पंख जिसके अरु हृदयरूपी

इष्टा भी अनेक देखे हैं परंतु किसीकरि तृप्त न भया जगतको जिस ओर देखा तिसी ओरते काष्ठ पाषाण जल मृत्तिका आकाश दृष्ट आता था, अब तुझबिना वस्तु और दृष्ट नहीं आता, वांछा किसकी करों अब तुझको देखा है उपलब्ध स्वरूपको प्राप्त भया हौं, तुझको नमस्कार है, नेत्रोंकी श्यामताविषे जो पुतलियांरूप स्थित है अरु रूपको देखता है साक्षीभूत सो अंतर कैसे नहीं देखता जो त्वचाविषे स्पर्श करता है, शीत उष्णादिकको जानता है, ऐसा सर्व अंगोंविषे व्यापक अनुभव करता है, जैसे तिलोंविषे तेल व्यापक होता है, तिसको अनुभव कोऊ नहीं करता, जो शब्द श्रवण इंद्रियके अंतर ग्रहण करता है, तिस शब्दशक्तिको जो जाननेहारी सत्ता है, जिसविषे शब्दशक्तिका विचार होता है, जिसकरि रोम खडे होइ आते हैं, सो सत्ता दूर कैसे होवे, जो जिह्वाके अग्रविषे रस-स्वादको ग्रहण करता है, तिस रसका अनुभव करनेहारी जो सत्ता है, सो दूर कैसे होवे, नासाविषे जो ग्रहणशक्ति है, जिसते गंध आती है तिसको अनुभव करनेहारी अलेप सत्ता है, सो सन्मुख कैसे न होवे। वेद, वेदांत सब सिद्धांत पुराण गीताकरि जो जाननेयोग्य ज्ञेय आत्मा है, तिसको जब जाना तब विश्राम कैसे न होवै, परावर परमात्मा पुरुष है जिन भोगोंकी मैं तृष्णा करता था, सो भोग स्मरणीय विद्यमान आनि होते हैं, तो भी तेरे दर्शनकरि स्वाद नहीं देते ॥ हे स्वच्छरूप निर्मलप्रकाश ! तू सूर्यमात्र होइकरि प्रकट भया है, अरु तेरी सत्ताकरि चंद्रमा शीतल भया है, तेरी सत्ताकरि पृथ्वी स्थित है, तेरी सत्ताकरि देवता आकाशमार्गमें विचरते हैं, तेरी सत्ताकरि आकाशविषे अवकाशमात्र है, तेरी आज्ञा सेवनविषे नारदादि प्राप्त भए हैं, तेरे अरु मेरेमें भेद कछु नहीं तेरेको मेरेको नमस्कार है। मैं सम, स्वच्छ, साक्षीरूप निर्विकार देशकालपदार्थ छेदते रहित हौं, मन जब क्षोभको प्राप्त होता है, सब इंद्रियोंकी वृत्ति स्फुरणरूप होती है, प्राण अपानशक्ति जब उल्लासको प्राप्त होती है, सब देहरूपी यंत्र चलता है, ऐसा मैंने देखा है, सर्व अस्थि आदिक निमित्तमात्र हाड़ियां अरु नसें हैं, इन्द्रियांरूपी घोड़े हैं मनरूपी सारथि चलावनेहारा है, तिस देहरूपी रथविषे मैं [illegible]

स्थित हौं, परंतु मै किसीविषे आस्था नहीं करता, देह रहै, अथवा गिरै, मुझको इच्छा कछु नहीं, मैं अब आत्मलाभको प्राप्त भया हौं, चिरकालते उपशमको प्राप्त भया हौ, जैसे कल्पके अंतविषे जगत् शातिको प्राप्त होता है, तैसे दीर्घ संसारमार्गविषे चिरकाल भ्रमता भ्रमता अब विश्राम पाया हौं, जैसे कल्पके अतविषे वायु चलता चलता रह जाता है ॥ हे सवरूप आत्मा ! तुझको नमस्कार है, जो तुझको अरु मुझको इसप्रकार जानते हैं ॥ हे देव ! संपूर्ण जगज्जाल जो विस्तृतरूप है, तिसको तुम कदाचित् स्पर्श नहीं किया, तुम्हारी जय है, जैसे पुष्पोंविषे गध होती है, तिलोंविषे तेल रहता है, तैसे तुम सब देहोंविषे रहते हौ, तू सर्व जगत्का प्रकाशक दीप है, उत्पत्तिप्रलयकर्त्ता अरु सदा अकर्त्तारूप तेरी जय है, तेरे परमाणु चिद्अणु है, तिनविषे यह विस्ताररूप जगत् स्थित है, सो जैसे वटबीजविषे वृक्ष होता है, बहुरि अपरविषे अपर होता है, तैसे चिद्अणुविषे जगत् है, जैसे आकाशविषे एक बादरके अनेक आकार दृष्ट आते हैं, तैसे चित्तकला फुरनेकरि अनेक पदार्थ भ्रमरूप भासते हैं, इस ससारके जो क्षणभगुररूप पदार्थ हैं, तिनकी अभावना कियेते अब भावअभावते रहित भावको देखता हौ, यह निश्चय भया है, मान मद क्रोध अरु कलुपता कठोरता आदिक विकारोंविषे महापुरुप नहीं डूबते, अरु प्रकृति नीचजन इन दोपोंगुणोंविषे डूबते हैं, पूर्व जो मेरी महादुरात्मा नीच अवस्था थी, तिसका स्मरण करिकै हँसता हौ कि, मै कौन था, अरु क्या जानता था ॥ हे मेरे आत्मा ! मैं तिस पदको प्राप्त भया था जहां चितारूपी अग्निकी ज्वाला थी जहां दग्ध हुए जीर्ण ससारके आरभ थे, अब देहरूपी नगरविषे स्फाररूप मनोरथकी जय है, अब दु ख ग्रहण नहीं करि सक्ते जहा दुष्ट इन्द्रियांरूपी घोडे जाते थे अरु मनरूपी हस्ती जाता था, सो अब भोगरूपी शत्रुको चारों ओरते भक्षण किया है अरु निष्कटक राजा चक्रवर्ती भया हौ तू परम सूर्य है, परम आकाशविषे तेरा मार्ग है, उदयअस्तते रहित तू नित्यप्रकाशरूप है, सबके अतर बाहिर तू प्रकाशता है, अब भोगोंको लीलारूप देखता हौं जैसे अकामी कामिनीको देखै, परतु इच्छाते रहित होवै है तैसे तू ग्रहण

करता है, नेत्ररूपी झरोखेविषे बैठिकारि तू रूपविषयको ग्रहण करता है, अपनी शक्तिकरि इसीप्रकार सब इंद्रियोंविषे वहीरूप धारिकारि तू शब्द स्पर्श रूप रस गंधविषयको ग्रहण करता है, अक्षकोटरविषे जो देश है, तिनाविषे प्राण अपान शक्तिकरि तूही विचरता है आता है, जाता है, अक्षरोंविषे जाता है, श्वासविषे बहुरि आता है, सब जगत् देहोंविषे तू विचरता है, देहरूपी पुष्पोंविषे तू सुगंधि है, देहरूपी चंद्रमाविषे तू अमृत है, देहरूपी वृक्षविषे तू रस है देहरूपी बर्फविषे तू शीतलता है, निश्चयस्वरूप है, दूधविषे तू घृत है, काष्ठविषे तू अग्नि है, उत्तम स्वादोंविषे तू स्वाद है, तेजविषे तू प्रकाश है, सर्व अन्तर्अर्थ कर्त्ता पूर्ण तूही है, सर्व जगत्‌का प्रकाशक तूही है, वायुविषे स्पंद तूही है, मनविषे गुदित तूही है, बुद्धिरूप अग्निविषे तेज सिद्धता तूही है, प्रकाशविषे तू प्रकाश है, सब पदार्थोंको सिद्धकर्त्ता तू दीपक है, लीन भएते जाना नहीं जाता कि, कहां गए, कहूं और ठौर जाय प्रकाशते हैं, जैसे वस्तु समाप्के विषे पदार्थ अरु अहं त्वं आदिक शब्द है, सो ऐसे हैं, जैसे सुवर्णविषे भूषण होते हैं, सो अपनी लीलाके निमित्त किए हैं, आपही तू आप प्रसन्न होता है, जैसे गंधर्वपुरकरि खंड खंड गुणते बादलके हस्ती आदिक आकार हो भासते हैं, तैसे तू भौतिक दृष्टिकरिके भिन्न भिन्नरूप भासता है॥ हे देव! ब्रह्मांडरूपी मोती हैं, तिनाविषे तू निरिच्छित व्यापक है, अरु भूतोंरूपी जो अन्न है, तिनका तू खेत है, चेतनरूपी रसकरि पदार्थदाता है, अरु तू अलशी नाई स्थित है, अरु यह इंद्रियोंके विषयते रहित अव्यक्तरूप है, अरु सब पदार्थोंका प्रकाशक है, जो पदार्थ शोभासंयुक्त विद्यमान होते हैं, अरु तेरी अवस्था उनविषे नहीं होवै, तब वह अस्त होता है, जैसे सुंदर स्त्री भूषणोंसहित अंधेके आगे स्थित होवै तौ वह अस्तभूत होती है, तैसे विद्यमान पदार्थ होवै, अरु तू न फुरै तौ अस्त हो जाता है, जैसे वसंतविषे फूलका प्रगटित होता है, तिसी इसीप्रकार अपनी शुद्धताविना समग्र कोई नहीं होता॥ हे आत्मा! तेरे संकल्पविना देह शुष्क हो जाता है, काष्ठ लोष्टवत् होता है, तब शुभइच्छा शरीरते अलग होती है, तब पुष्पादिक आदिक सब नष्ट हो जाता है, जिसका आप

नहीं होता, जैसे तमविषे कोऊ पदार्थ दृष्ट नहीं आता, तेरे देखनेकरि सुखदुःख आदिक स्थित होते हैं, जैसे सूर्यकी दृष्टिकरि प्रात काल शुक्लवर्णकरि प्रकाश आता है, जब अपने स्वरूपको प्राप्त होता है, तब अज्ञानरूप सब विकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे प्रकाश-करि अधकार नष्ट होता है, तब पदार्थ ज्योंका त्यों भासता है, तैसे अज्ञानके नष्ट भयेते आत्मा ज्योका त्यों भासता है, यह जो मनरूप तू है तेरे उपजनेकरि सुखदु खकी लक्ष्मी उपजि आती है, तेरे अभाव हुएते सर्व नष्ट हो जाता है, स्वरूपते तू अनामयरूप है, क्षणभगुर देहविषे जो मनने आस्था करी है, सो महासूक्ष्म अणु निमिषके लक्षभाग जैसा सूक्ष्म है, सुखदु खादिककी भावनाकरिकै अनीश्वरताको प्राप्त भया है, तेरे प्रमादकरि स्फुरणरूप होता है, अरु तेरे देखनेकरि सर्व लीन हो जाता है, यह जो पुर्यष्टका तेरा रूप है तिसके देखनेकरि क्षणविषे पदार्थजात भासि आते हैं, जैसे नेत्रोंके खोलनेकरि रूप भास आता है, अरु अतर्धान मनके मरनेकरि सर्व नष्ट हो जाता है, बहुरि किसीकरि ग्रहण नहीं होता, जो वस्तु क्षणभगुर है, तिसते कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, जैसे बिजलीके प्रकाशकरि कोऊ कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे अतर्धान होनेकरि देहते कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, जो उपाजिकरि तत्काल नष्ट हो जाता है, तिसते कार्य क्या सिद्ध होवै, देहादिक जड नाशवत हैं, अरु जो सबको प्रकाशता है, सदा निर्विकार सच्चिदानंदरूप है, सुखदु ख आदिक अज्ञानीके चित्तको स्पर्श करता है, अरु जिसका शमचित्त है, तिसको स्पर्श नहीं करते ॥ हे देव ! यह जो सुखदु ख आदिक विवेकके आश्रय हैं, सो अविवेक नष्ट हो गया है तू निरीह निरंश निराकार है, सत् असत्यते परमेश्वररूप परमात्मा तेरी सदा जय है, तू सर्व शास्त्रोंका आसिपद है, तू जातअजातरूप सदा जय है, तेरे नाशरूपकी तेरे अविनाशरूपकी जय है, तेरे भावरूपकी तेरे अभावरूपकी जय है, जीतने योग्य तेरी अजीतनेयोग्य तेरी जय है, माया हुलासको प्राप्त हुआ है, अरु उपशातिनको प्राप्त हुआ है, तुमको नमस्कार है ॥ हे निर्दोष ! तेरेविषे स्थित होनेकरि मेरे राग द्वेष मिटि

करता है, नेत्ररूपी झरोखेविषे बैठिकारि तू रूपविषयको ग्रहण करता है, अपनी शक्तिकारि इसीप्रकार सब इंद्रियोंविषे वहीरूप धारिकारि तू शब्द स्पर्श रूप रस गंधविषयको ग्रहण करता है, ब्रह्मकोटरविषे जो देश है, तिनाविषे प्राण अपान शक्तिकारि तूही विचरता है आता है, जाता है, ब्रह्मपुरीविषे जाता है, क्षणविषे बहुरि आता है, सब जगत् देहोंविषे तू विचरता है, देहरूपी पुष्पोंविषे तू सुगंधि है, देहरूपी चंद्रमाविषे तू अमृत है, देहरूपी वृक्षविषे तू रस है देहरूपी बर्फविषे तू शीतलता है, चिन्मयस्वरूप है, दूधविषे तू घृत है, काष्ठविषे तू अग्नि है, उत्तम स्वादोंविषे तू स्वाद है, तेजविषे तू प्रकाश है, सर्व असर्व अर्थ कर्त्ता पूर्ण तूही है, सर्व जगत्का प्रकाशक तूही है, वायुविषे स्पंद तूही है, मनविषे मुदित तूही है, बुद्धिरूप अग्निविषे तेज सिद्धता तूही है, प्रकाशविषे तू प्रकाश है, सब पदार्थोंको सिद्धकर्ता तू दीपक है, लीन भएते जाना नहीं जाता कि, कहां गए, कई और ठौर जाय प्रकाशते हैं, जेते कछु संसारके विषे पदार्थ अरु अहं त्वं आदिक शब्द है, सो ऐसे हैं, जैसे सुवर्णविषे भूषण होते हैं, सो अपनी लीलाके निमित्त किए है, आपही तू आप प्रसन्न होता है, जैसे मदवायुकरि खंड खंड हुएते बादरके हस्ती आदिक आकार हो भासते हैं, तैसे तू भौतिक दृष्टिकारिके भिन्न भिन्नरूप भासता है ॥ हे देव ! ब्रह्मांडरूपी मोती हैं, तिनाविषे तू निरिच्छित व्यापक है, अरु भूतोंरूपी जो अन्न है, तिनका तू खेत है, चेतनरूपी रसकरि बढानेहारा है, अरु तू अस्तकी नाईं स्थित है, अर्थ यह इंद्रियोंके विषयते रहित अव्यक्तरूप है, अरु सब पदार्थोंका प्रकाशक है, जो पदार्थ शोभासयुक्त विद्यमान होते हैं, अरु तेरी अवस्था उसविषे नहीं होती, तब वह अस्त होता है, जैसे सुंदर स्त्री भूषणोंसहित अंधेके आगे स्थित होवै तौ वह अस्तभूत होती है, तैसे विद्यमान पदार्थ होवै, अरु तू न कल्पै तौ अस्त हो जाता है, जैसे दर्पणविषे मुखका प्रतिबिंब होता है, तिसको देखिकारि अपनी सुंदरताविना प्रसन्न कोई नहीं होता ॥ हे आत्मा ! तेरे संकल्पविना देह त्रुटित हो जाता है, काष्ठ लोष्टवत् होता है, जब पुर्यष्टका शरीरते अदृष्ट होती है, तब सुखदुःख आदिक क्रम नष्ट हो जाता है, किसीका ज्ञान

नहीं होता, जैसे तमविषे कोऊ पदार्थ दृष्ट नहीं आता, तेरे देखनेकरि सुखदु:ख आदिक स्थित होते हैं, जैसे सूर्यकी दृष्टिकरि प्रातःकाल शुक्लवर्णकरि प्रकाश आता है, जब अपने स्वरूपको प्राप्त होता है, तब अज्ञानरूप सब विकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे प्रकाशकरि अंधकार नष्ट होता है, तब पदार्थ ज्योंका त्यों भासता है, तैसे अज्ञानके नष्ट भयेते आत्मा ज्योंका त्यों भासता है, यह जो मनरूप तू है तेरे उपजनेकरि सुखदु:खकी लक्ष्मी उपजि आती है, तेरे अभाव हुएते सर्व नष्ट हो जाता है, स्वरूपते तू अनामयरूप है, क्षणभंगुर देहविषे जो मनने आस्था करी है, सो महासूक्ष्म अणु निमेषके लक्षभाग जैसा सूक्ष्म है, सुखदु:खादिककी भावनाकरिकै अनीश्वरताको प्राप्त भया है, तेरे प्रमादकरि स्फुरणरूप होता है, अरु तेरे देखनेकरि सर्व लीन हो जाता है, यह जो पुर्यष्टका तेरा रूप है तिसके देखनेकरि क्षणविषे पदार्थजात भासि आते हैं, जैसे नेत्रोंके खोलनेकरि रूप भास आता है, अरु अतर्धान मनके मरनेकरि सर्व नष्ट हो जाता है, बहुरि किसीकरि ग्रहण नहीं होता, जो वस्तु क्षणभंगुर है, तिसते कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, जैसे बिजलीके प्रकाशकरि कोऊ कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे अतर्धान होनेकरि देहते कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, जो उपाजिकरि तत्काल नष्ट हो जाता है, तिसते कार्य क्या सिद्ध होवै, देहादिक जड़ नाशवत है, अरु जो सबको प्रकाशता है, सदा निर्विकार सच्चिदानंदरूप है, सुखदु:ख आदिक अज्ञानीके चित्तको स्पर्श करता है, अरु जिसका शमचित्त है, तिसको स्पर्श नहीं करते ॥ हे देव ! यह जो सुखदु:ख आदिक विवेकके आश्रय हैं, सो अविवेक नष्ट हो गया है तू निर्गंद निरंश निराकार है, सब अजत्यते परमेश्वररूप परमात्मा तेरी सदा जय है, तू सर्व शास्त्रोंका आसिपद है, तू जातअजातरूप सदा जय है, तेरे नाशरूपकी तेरे अविनाशरूपकी जय है, तेरे भावरूपकी तेरे अभावरूपकी जय है, जीतने योग्य तेरी अजीतनेयोग्य तेरी जय है, माया हुलासको प्राप्त हुआ है, अरु उपशांतिको प्राप्त हुआ है, तुझको नमस्कार है ॥ हे निर्दोष ! तेरेविषे स्थित होनेकरि मेरे राग द्वेष मिटि

गए हैं, अब बंध कहा अरु मोक्ष कहां, अरु आपदा कहां, संपदा कहां, भाव अभाव कहां, सर्व विकार शांत भए हैं, शम समाधिविषे स्थित भया हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादोपाख्याने सत्त्ववर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ३७.

दैत्यपुरीप्रभंजनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिंतनाकरि महाधैर्यवान् प्रह्लाद निर्विकार निरानंद समाधिविषे स्थित भया, जैसे मूर्तिका पर्वत होवै, तैसे अपने पदविषे स्थित भया, जब बहुत काल अपने गृहरूपी भुवनविषे सुमेरुवत् ऐसी समाधिविषे स्थित भया, तब दैत्य ईश्वर तिसको जगाने लगे, परंतु प्रह्लाद न जागा, जैसे समयविना बीज अंकुर नहीं लेता, तैसे पंचसहस्र वर्ष समाधिविषे व्यतीत भए ॥ अरु शरीर उसी प्रकार पुष्ट रहा, दैत्योंके नगरविषे शांति हो गई, परमानंद आत्माको प्राप्त भया निरानंद जो प्रकाश है सो प्रकाशमात्र रहागया और कलना सब मिटि गई, एता काल जब व्यतीत भया, तब रसातल मंडलविषे राजभय दूर हो गया, छोटेको वडा भक्षणकरि लेवै, हिरण्यकशिपु मृत्यु भया, तिसका पुत्र समाधिविषे स्थित भया, अपर कोऊ राजा न हुआ, दैत्यमंडलकी विपर्ययदशा भई, निर्बलको बलवान् मारि लूटि लेवै, तब अनेक मल्ल मिलिकरि प्रह्लादको जगाय रहे, तौ भी न जागा, जैसे सूर्यमुखी कमलको रात्रिविषे भँवरे गुंजारव करैं, तौ भी प्रफुल्लित नहीं होता, मूँदा रहता है, तैसे प्रह्लाद न जागा, संवित्कला जो चित्त धातु है, सो तिसके अंतरफूर्ति न भासे, जैसे मूर्तिका लिखा सूर्य प्रकाशते रहित होता है तैसे देखिकरि दैत्य उद्वेगवान् भए, जहां किसीको सुखदायक देशस्थान भासा, तहां जाय रहे, पाताल मंडलको राजाते हीन देखते भए, मर्यादा सब दूर हो गई; मत्सर आय प्रवर्त्ता, जो बलवान होवै, सो निर्बलको ग्रासि लेवै, मर्यादाका क्रम नष्ट हो गया, अपने २

वांछित देशको चले जावैं, पुरुष स्त्रियां रुदन करैं शोकवान् होवैं कई मारे जावैं, कई लूटे जावैं, व्यर्थ अनर्थ कदर्थ करनेवाले हो गए. दैत्यता परायण हुई, बांधव नष्ट हो गए, उपद्रव उत्पन्न होने लगे, दिशाके मुख अग्निरूप हो गए, देवता आनि दिखाई देवैं, निर्बल दैत्यको बांधि ले जावैं, दैत्य मूल भूमिते रहित निर्लक्ष्मी उजाड़ जैसे हो गए, दैत्यपुरविषे अनीति अकांड उपद्रव आनि हुआ, जैसे कल्पके अंतविषे जीव दु.ख पाते है, तैसे दैत्य दु ख पाने लगे ॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे दैत्यपुरीप्रभंजनवर्णन नाम सप्तत्रिंशत्तम· सर्ग ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ३८

भगवानचित्ताविवेकवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब दैत्यपुरीकी दशा भई, तब सपूर्ण जगत्जालका क्रम पालनेहारा जो विष्णु देव है, क्षीरसमुद्रविषे शेपनागकी शय्यापर शयन करनेहारा, सो चतुर्मास वर्षाकालकी निद्राते जागा, बुद्धिके नेत्रोंकरि जगत्की मर्यादाको विचारत भया, तब देखा कि, पातालविषे प्रह्लाद दैत्य समाधिविषे पद्मासन बांधकरि स्थित भया है, तब शख चक्र गदा पद्म हस्तविषे धरनेहारा, अरु सर्व देहोंविषे व्यापक है, ऐसा विष्णु देव पद्मासन बांधिकरि विचार करता भया कि, प्रह्लाद आत्मपदविषे स्थित हुआ पुतलीवत् हो गया है, बडा कष्ट है, जो सृष्टि दैत्यते रहित भई, तब देवता जीतनेकी इच्छाते रहित होइकरि आत्मपदविषे स्थित हो जावैंगे, जब देवता, दैत्योंका विरोध रहता है, तब जीतनेके निमित्त याचना करते हैं कि, दैत्य नष्ट होवैं, तब सब देवता निर्द्वंद्वरूप होइकरि परमपदको प्राप्त होवैंगे, जैसे रसते रहित वल्ली सूख जाती है, तैसे अभिमान इच्छाते रहित देवता जगत्की ओरते सुखकरि आत्मपदको प्राप्त होवैंगे, जब देवताके समूह शांतिको प्राप्त भये, तब पृथ्वीविषे यज्ञ तप आदिक जो उत्तम क्रिया है, सो सब निष्फल हो जावैगी, न कोऊ करैगा, न किसीको प्राप्त होवैगा, जब पृथ्वी लोकने

शुभ क्रिया नष्ट भई, तब लोक भी नष्ट हो जावेंगे अकांड प्रलय प्रसंग होवेगा, सब मर्याद क्रम जगत्का नष्ट हो जावेगा, जैसे धूपकरि वर्फ नष्ट होता है, तैसे जगत्क्रम सब नष्ट होवेगा, इसको नष्ट हुएते भी मुझको कछु नहीं परंतु मैंने अपनी लीला रची है, सो सब नष्ट हो जावेगी तब मैं भी इस शरीरका त्यागिकरि परमपदविषे स्थित होऊंगा, अकांडही जगत् उपशमको प्राप्त होवेगा ताते इसविषे कल्याण नहीं देखता जो दैत्योंके उद्वेगते रहित देवता भी शांत हो जावेंगे तप क्रिया नष्ट हो जावेंगी जीव दुःखी होइकरि नष्ट हो जावेंगे ताते मैं जगत्कर्मको स्थापन करों, जो परमेश्वरकी नीति इसीप्रकार है अब रसातलको जाऊं अरु जगत्की मर्यादा ज्योंकी त्यों स्थापन करों, जो प्रह्लादते इतर पातालका भ राजा करों, तौ वह देवतोंका शत्रु होवेगा, ताते ऐसे न करों, प्रह्लादकी जो देह है, सो अंतका जन्म है, परम पावन देह है अरु कल्पपर्यंत रहेगी यह ईश्वरकी नीति है सो ज्योंकी त्यों है ताते मैं जाइकरि दैत्येन्द्र प्रह्लादको जगाऊं जो जागिकरि जीवन्मुक्त हुआ दैत्योंका राज्य करै जैसे मणि मलते रहित प्रतिबिंबको ग्रहण करती है तैसे प्रह्लाद भी इच्छाते रहित होइकरि प्रवर्त्तै इसप्रकार सृष्टि देवता दैत्योंसंयुक्त रहेगी अरु परस्पर इनका द्वेष न होवेगा मेरी क्रीड़ा-लीला इच्छा होवेगी यद्यपि सृष्टिका होना न होना मुझको तुल्य है तौ भी जो कछु नीति है सो जैसे स्थितहै तैसेही रहै,जो वस्तु भावविषे तुल्य होवै नाशविषे अरु स्थितिविषे तिसका प्रयत्न करना कुबुद्धि है सो जैसे आकाशके हननका यत्न करिये तैसे है ताते मैं पातालको जाऊं अरु प्रह्लादको जगाऊं जगत्की मर्यादा स्थापन करों, जो नीति है, तिसको अपनी लीलाकरि प्रतिपादन करों, दैत्यपुरीविषे प्राप्त होइकरि तिसको जगाऊं अरु उसीको अपने प्रकृति आचारविषे जोड़ि आवों ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे भगवान् चिंतविनेको नाम अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशतितमः सर्गः ३९.

नारायणवचोपन्यासयोगवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिंतनाकरि सर्वात्मा जो विष्णु देव है, अपने परिवारसहित क्षीरसमुद्रते चले जैसे मेघघटा एकत्र होइकरि चलै तैसे आइकरि प्रह्लादके नगरको प्राप्त भए, कैसा नगर है, मानो दूसरा इन्द्रलोक है, मंदिरविषे प्रह्लादको विष्णुजी देखते भए, अरु जो निकट दैत्य थे सो विष्णुजीको दूरते देखिकरि भाजि गए जैसे सूर्यते उलूकादिक भाजि जावें तब जो मुख्य दैत्य थे तिनकेसाथ दैत्यपुरीविषे विष्णुजी प्रवेश करते भये जैसे तारासंयुक्त चंद्रमा आकाशविषे प्रवेश करता है, तैसे विष्णुजी गरुडपर आरूढ हुआ लक्ष्मी साथ चमर करती और ऋषि देव अनेक आते भये विष्णुजी प्रह्लादके गृह आते भये, अरु आतेही विष्णुजी कहते भये ॥ हे महात्मा पुरुष ! जाग जाग, ऐसे कहकरि पांचजन्य शंखको बजावत भये महाशब्द भया, बहुरि प्रह्लादके श्रवणोंसाथ लगाया कैसा शब्द है जो विष्णुजीके प्राणोंते जिसका फुरणा है जैसे प्रलयकालविषे मेघका शब्द होवे,तैसे बड़े शब्दको सुनिकरि दैत्य भयभीत होइकरि पृथ्वीपर गिरगिर पडे अरु शनै शनै दैत्येंद्रको जगाया जैसे कटकमंजरी मेघकरि प्रफुल्लित होती है तैसे विष्णुजीने जगाया प्राण शक्ति जो ब्रह्मरंध्रविषे थी, तहांते विष्णुजीने उठाई तब शरीर विषे प्रवेश कर गई जैसे सूर्यके उदय हुएते सूर्यकी प्रभा वनविषे प्रवेश कर जाती है, तैसे नव द्वारोंविषे प्रवेश करत भई तब प्राणरूपी दर्पणविषे चित्तसंवित प्रतिबिंबित होइकरि चैतन्यमुखत्व हुई, अरु मनभावको प्राप्त भई, जैसे प्रातःकालविषे कमल खिल आते हैं, तैसे नेत्र प्रफुल्लित हो आए, प्राण अरु अपान नाडीविषे छिद्रोंके मार्ग विचरने लगे, जैसे वायुकरि कमल स्फुरने लगते हैं तैसे मन अरु प्राणशक्तिकरिके अंग फुरने लगे; अरु जाग जाग शब्द जो भगवान् कहते थे, तब जागा अरु जानत भया कि, मुझको विष्णु भगवान्ने जगाया है, जैसे मेघका शब्द सुनिकरि मोर प्रसन्न होता है, तैसे प्रसन्न भया मनविषे दृढ स्मृति

हो आई, तब त्रिलोकीका ईश्वर विष्णुदेव कहता भया, जैसे पूर्व कमलोद्भव ब्रह्माको कहा था, तैसे प्रह्लादको कहता भया ॥ हे साधो ! तू अपनी महालक्ष्मीका स्मरण कर कि, तू कौन है, समयविना देहके त्यागनेकी इच्छा काहेको करी थी, ग्रहणत्यागके संकल्पते रहित पुरुष हैं तिनको भाव अभावके होनेविषे क्या प्रयोजन है, उठिकरि अपने आचारविषे सावधान होहु, यह तेरा शरीर कल्पपर्यंत रहैगा नष्ट नहीं होवैगा, यह नीतिको ज्योंकी त्यों जानते हैं, हे आनंदित ! तू जीवन्मुक्त हुआ राज्यविषे स्थित होहु, क्षीणमन गत उद्वेग कल्पपर्यंत तेरा देह रहैगा, बहुरि कल्पके अंतविषे तू शरीर त्यागैगा, त्यागिकरि अपनी महिमाविषे स्थित होवैगा, जैसे घटके फूटेते घटाकाश महाकाशको प्राप्त होता है, अब तू निर्मल दृष्टिको प्राप्त भया है, अरु लोकोंका तुझने परावर देखा है, अब तू जीवन्मुख विलासी भया है ॥ हे साधो ! द्वादश सूर्य तौ उदय नहीं भए हैं, जो प्रलयकालविषे तपते हैं, अब तू क्यों शरीर त्यागता है ! उन्मत्त पवन तौ चला नहीं, जो त्रिलोकीकी भस्मको उड़ावनेहारा है, अरु देवतोंके विमान तिसकरि गिरे नहीं, तू क्यों व्यर्थ शरीर त्यागता है सब लोकोंके शरीर सूखे वृक्षकी मजरीवत् अभी नहीं सूखे पुष्कर मेघ अरु वह बिजली जगत्विषे नहीं फुरी तू क्यों व्यर्थ शरीर त्यागता है। पर्वत तौ युद्धकरि परस्पर टहकने लगे नहीं अबलग मैं भूतोंको खैंचने लगा नहीं, अब लोकोंविषे विचरता हौं, यह अर्थ है, यह मैं हौं, यह पर्वत है, यह भूत प्राणी है, यह जगत् है, यह आकाश है तू देहको मत त्याग, देहको धारे रहो ॥ हे साधो ! जो जीव अज्ञानयोगकरि शिथिल भया है, अर्थ यह जो देहविषे आत्मअभिमान है, जो मैं अरु मम तिसकरि व्याकुल रहता है, दुःखोंकरि जीर्ण होता है, तिसको मरणा शोभता है कि, मैं कृश हौं, दुःखी हौं मूढ, हौं, अनात्मा अभिमानका दृढ निश्चय है, यह भावना जिसके अंतर है, तिसको मरण श्रेष्ठ है, जिसको तृष्णा जलाती है, हृदयविषे समारंभानना जीर्ण करती, है, जैसे पुरातन गृहको जरा जीर्ण करता है, जिसके मनरूपी वनविषे चित्तरूपी लता जो दुःखसुखरूपी पुष्पोंकरि प्रफुल्लित है, अरु उदय होती है, तिसको मरण श्रेष्ठ है, जो पुरुष अपने देहविषे आत्म

व्याधि दुःखोंकरि जलता है, अरु कामक्रोधरूपी सर्प जिसके अंतर फुरते हैं, देहरूपी सूखा वृक्ष निष्फल है, अरु चित्त चंचल है इस देह त्यागनेको लोकविषे मरना कहते हैं, स्वरूपकरि नाश किसीका नहीं होता, क्या ज्ञानीका क्या अज्ञानीका हे साधो! जिसकी बुद्धि आत्मतत्त्वके अवलोकनते उपरांत नहीं होती, ऐसा जो यथार्थदर्शी ज्ञानवान् है, जिसका अंतर शीतल रागद्वेषते रहित हुआ है, अरु दृश्यवर्गको साक्षीभूत होइकरि देखता है, तिसका जीना श्रेष्ठ है जो पुरुष सम्यक् ज्ञानकरि हेयोपादेयते रहित है, चेतनतत्त्वविषे तद्रूप चित्त भया है अरु संकल्पमलते रहित चित्तको आत्मपदविषे जोडा है, जिस पुरुषको जगत्के पदार्थ इष्ट अनिष्ट समान भासते हैं, शांत चित्त हुआ लीलावत जगत्के कार्यको करता है, ऐसा जो वासनाते रहित पुरुष है, अरु इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे राग द्वेष नहीं करता, अरु ग्रहण त्यागकी बुद्धि उदय नहीं होती अरु जिसके श्रवण कियेते अरु दर्शन कियेते औरोंको आनंद उपजता है, तिसका जीना शोभता है, जिसके उदय हुएते जीवोंके हृदयकमल प्रफुल्लित होते हैं, तिसका चिर जीवना प्रकाशवान् शोभता है, वह पूर्णमासीके चंद्रमावत् सफल प्रकाशता है, और नीच नहीं शोभते ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादोपाख्याने नारायणवचोपन्यासयोगो नाम एकोनचत्वारिंशत्तितम सर्ग ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४०

प्रह्लादबोधवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच ॥ हे साधो! यह जो देह संग दृष्ट आती है, तिसका नाम जीना कहते हैं अरु इस देहका त्याग करि अपर देहविषे प्राप्त होना तिसका नाम मरना कहते हैं ॥ हे बुद्धिमान्! इन दोनों पक्षोंते अब तू मुक्त है, तुझको क्या मरना अरु क्या जीना दोनों भ्रममात्र हैं, इस अर्थके दिखावनेनिमित्त मैं तुझको मरना अरु जीना कहा है, काहेते कि, गुणवानोंका जीना श्रेष्ठ है, अरु मूढोंका मरना श्रेष्ठ है, अरु तू न जीता है, न मरेगा, देहके होते भी तू विदेह है, आकाशकी नाईं असंग है, जैसे

आकाशविषे वायु नित्य चलता है, परंतु आकाश तिसते निर्लेप रहता है, तैसे तू देहविषे निर्लेप रहैगा, देह, इंद्रिया, मन आदिककी क्रिया सब तुझकरि होती है, सबका कर्त्ता सत्ता देनेहारा तूही है, अरु स्वरूपकरि सदा अकर्त्ता है, जैसे वृक्षकी उँचाईका कारण आकाश है, तैसे तेरेविषे कर्तव्य है, तू अब जागा है, वस्तुको ज्योंकी त्यों जानी है, तू अस्ति नास्ति सर्वका आत्मा है, यह परिच्छिन्नरूप जो देह है, सो अज्ञानीका निश्चय है, यह केवल दुःखोंका कारण है, अरु तू सर्व प्रकार सर्वात्मा चेतन प्रकाश है, तेरी बुद्धि आत्मपरायण है, तुझको देह अदेह क्या, ग्रहण क्या, अरु त्याग क्या ? तत्त्वदर्शी जो पुरुष हैं, तिनका भाव पदार्थ उदय होवै, अथवा लीन होवै, प्रलयकालका पवन चले, तौ भी चलाय नहीं सकता, भाव अभावते तिसका मन रहित है जैसे पर्वतऊपर पर्वत पड़ें, अरु चूर्ण होवै, अरु कल्पके अग्निविषे जलने लगे, तौ भी ज्ञानवान् अपने आपविषे स्थित है, चलायमान नहीं होता, सब भूत स्थित होवैं, अथवा इकट्ठे नष्ट हो जावैं, अथवा वृद्ध होवैं, वह सदा अपने आपविषे स्थित है, अरु इस देहके नष्ट भएते नाश नहीं होता, विरोधी हुएते नहीं प्राप्त होता, इस देहविषे जो स्थित परमेश्वर आत्मा है, सो मैं हौं, अरु अनात्मा भ्रम नष्ट हो गया है, ग्रहण त्याग यह मिथ्या कल्पना उदय नहीं होती, जो विवेकी तत्त्ववेत्ता है, तिसका संकल्पभ्रम नष्ट हो जाता है कि, यह मैं हौं यह करौंगा, यह त्याग किया है, यह ग्रहण किया है, इत्यादिक भ्रम नष्ट हो जाते हैं, जो प्रबुद्ध पुरुष हैं, सो सब क्रिया कर्त्ता भी अकर्त्तापदको प्राप्त होता है, सर्व अर्थोंविषे अकर्त्ता अभोक्ता रहता है, किसी जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता, जब कर्तृत्व भोक्तृत्व शांत भया, तब आत्मपद शेष रहता है, इस निश्चय करी हुई दृढताको बुद्धिमान् मुक्त कहते हैं, जो प्रबुद्ध पुरुष है, सो चिन्मात्र स्वरूप है, मनको अपने वश करिके स्थित है, ग्रहण किसका करै, अरु त्याग किसका करै, ग्राह्य अरु ग्राहक शब्दभाव अविद्या है, देह इंद्रियोंकरि होता है, सो ग्रहण करना क्या, अरु त्याग करना क्या? जब आत्मपदकमार हद-

यते दूर हुआ, इसीका नाम मुक्त है, तिसको ऐसी स्थिति आनि उदय होती है, जो परमार्थसत्ताविषे सदा स्थित रहता है, सो पुरुषोंविषे पुरुषोत्तम सुषुप्तिकी नाईं स्थित है, उसके अंगोंकी चेष्टा करता बोधको प्राप्त भई है, परमविश्रांतिवान् निर्वासनिक पुरुषोंकी वासना भी जगत्विषे स्थित दृष्टि आती है, अर्ध सुषुप्तिकी नाईं चेष्टा करता है, सब जगत्विषे आत्मा देखता है, आत्मविषयिणी बुद्धिकरि सुखविषे हर्षवान् नहीं होता, दुःखविषे शोकवान् नहीं होता एकरस आत्मपदविषे स्थित रहता है, नित्य प्रबुद्ध पुरुष कार्यभावको ग्रहण करता है, जैसे इच्छाते रहित दर्पण प्रतिबिंबको ग्रहण करता है, तैसे भली बुरी भावना तिसको स्पर्श नहीं करती, तिनको आत्मपदविषे जाग्रत् है, अरु संसारकी ओरते सोए हैं, सो पुरुष सुषुप्तिरूप हैं, जैसे बालक पालनेविषे सोया हुआ स्वाभाविक अंगको हिलाता है, तैसे उनका हृदय सुषुप्तिरूप है, अरु व्यवहार करते हैं ॥ हे पुत्र ! तू अजात परमपदको प्राप्त भया है, गुणवान् हुआ, तू एक दिन ब्रह्माका इस देहको भोगैगा, इस राज्यलक्ष्मीको भोगिकरि बहुरि अच्युत परमपदको प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादबोधो नाम चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४१.

प्रह्लादाभिषेकवर्णनम् ।

वासिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जगत्रूपी रत्नोंका डब्बा, अद्भुत दर्शन है, जिसका सो विष्णु देवने शीतल वाणीकरि जब इसप्रकार कहा, तब प्रह्लाद नेत्र खोलकर धैर्यसहित कोमल वचन मननभावको ग्रहण करि देखा है, अरु चर्मदृष्टिकरि बाह्य देखा है, बडा कल्याण हुआ है, परमेश्वर अपना आप स्वरूप अनंत आत्मा है, सर्व संकल्पते रहित आकाशवत् निर्मल है, अब मुझको न शोक है, न मोह है, न वैराग्यकरि देहत्यागकी चिंता है, जो कछु कार्य भयदायक होता है, सो एक आत्माके विद्यमान शोक कहां, अरु नाश कहां, देहरूप संसार कहां, अरु संसारकी स्थिति

कहां भय कहां, अरु अभयता कहा ? मैं यथा इच्छित अपने आपकरि आपविषे स्थित हौं, इसप्रकार मैं निर्मल सब विस्तृतरूप केवल पावनविषे स्थित हौं, संसारबंधनको त्यागिकरि विरक्त भया हौं, जो अप्रबुद्ध मूढ हैं तिनकी बुद्धिविषे हर्ष शोक चिंता विकार सदा रहतेहैं, अरु देहके भावविषे सुख मानतेहैं, अभावविषे दुःखी होते हैं, यह चितारूपी विषकी पंक्ति मूढोंको लेपायमान होती है, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह ग्रहण करने योग्य है, यह त्यागने योग्य है, इसप्रकार मूर्खोंके चित्तकी अवस्था डोलायमान होती है, पंडितोंकी नहीं होती, मैं भिन्न हौं, वह भिन्न है, यह अज्ञानकरिकै अववासना है, शुद्ध बुद्धिके विद्यमान् नहीं रहती, जैसे सूर्यके किरणोंते रात्रि दूर रहती है, तैसे यह वासना दूर रहती है, यह त्याग करिये, यह ग्रहण करिये, सो मिथ्या चित्तका भ्रम है, सो उन्मत्त अज्ञानीके अंतर होता है, ज्ञानवान्के अंतर यह भ्रम उदय नहीं होता ॥ हे कमलनयन ! जो सर्व तूही है, विस्तृत आत्मारूप है, हेयोपादेय द्वैतभावकल्पना कहा है, यह संपूर्ण जगत् विज्ञानरूप सत्ताका आभास है, सत्य असत्यरूप जगत्विषे ग्रहणत्याग किसका करिये, केवल अपने स्वभावकरि द्रष्टा अरु दृश्यका विचार किया है, तिसविषे मैं प्रथम क्षीण विश्रांतिमान् हुआ था, अब [illegible] पदार्थोंते मुक्त भया हौं, हेयोपादेयते रहित आत्[illegible], समभावको प्राप्त भया हौं, [illegible] संश[illegible] करता हौं, सो आत्माका [illegible] हौं, [illegible] योग्य है, जबलग च[illegible] नहीं भ[illegible] [illegible]
तुम ग्रहण [illegible] कह
करि [illegible] प्रजत
भया, बहुरि [illegible] भया,
बहुरि [illegible] करी,
इसप्रकार [illegible]
अरु बाहिर [illegible] भया॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे दैत्येश्वर ! तू उठकर सिंहासनपर बैठ मैं तुझको अपने हस्तसों अभिषेक करता हौं, पांचजन्य शंख बजाता हौं, तिसका शब्द सुनकर सब सिद्ध देवता आयकरि तेरा मंगल करेंगे ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहकर विष्णुजीने दैत्यको सिंहासनपर बैठाया, जैसे सुमेरुपर मेघ आय बैठे तैसे बैठाइकरि क्षीरसमुद्रादिकका अरु गंगादिक तीर्थोंका जल मँगाया, तब पांचजन्य शंख बजाया, तिसके शब्दकरि सब सिद्धगण ऋषि ब्राह्मण विद्याधर देवता मुनिके समूह आये, सर्वात्मा पुरुष दैत्यराजके निमित्त सबको खैंचि ले आये, पवनगण देवगण सब स्तुति करत भए, प्रह्लादको इसप्रकार अभिषेक देइकरि मधुसूदन कहत भये ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे निष्पाप ! जबलग सुमेरुके धरनेहारी पृथ्वी है, अरु सूर्यचंद्रमाका मंडल है, तबलग तू अखंडित गुणवान् राज्य करि इष्टअनिष्टविषे समबुद्धि वीतराग क्रोधते रहित होइकरि भोग अरु राज्यकी पालना करियो, तुझकों पूर्ण भूमिका प्राप्त भई है, तिसविषे स्थित हुए जो राज्यगणोंका प्रवाह जैसे प्राप्त होवै तैसे हर्षशोकते रहित होइकरि विचरो, स्वर्ग प्राप्त होवै, अथवा नरक प्राप्त होवै, तू उद्वेगते रहित होइकरि भोगहु, देश काल क्रिया कार्य जैसे प्राप्त होवै, तैसे होवै, तसेही स्थित होहु, हेयोपादेयते रहित हुआ बंधमान न होवैगा, संसारकी स्थिति तुझने सब देखी है, अरु सबको जानता है, और मैं तुझको क्या उपदेश करौं, तू रागद्वेषते रहित होइकरि राज्य भोग, अब दैत्योंका रुधिर धरणीपर न पडैगा, अर्थ यह कि, देवतोंसे विरोध न होवैगा, आजते देवता अरु दैत्योंका संग्राम बंद हुआ जैसे मंदराचलते रहित क्षीरसमुद्र शांतिमान् भया, तैसे सब जगत् स्वस्थ रहैगा, मोहरूपी जो तम है, सो तेरे हृदयते दूरि भया है, सदा प्रकाश स्वरूपकी लक्ष्मी हुई है, अनंत विलासको राज्यलक्ष्मीकरि भोगता आत्मपदविषे स्थित रहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादाभिषेको नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥

कहा भय कहां, अरु अभयता कहां ? मैं यथा इच्छित अपने आपकरि आपविषे स्थित हौं, इसप्रकार मैं निर्मल सब विस्तृतरूप केवल पावनविषे स्थित हौं, संसारबंधनको त्यागिकरि विरक्त भया हौं, जो अप्रबुद्ध मूढ हैं तिनकी बुद्धिविषे हर्ष शोक चिंता विकार सदा रहतेहैं, अरु देहके भावविषे सुख मानतेहैं, अभावविषे दुःखी होते हैं, यह चितारूपी विषकी पंक्ति मूढोंको लेपायमान होती है, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह ग्रहण करने योग्य है, यह त्यागने योग्य है, इसप्रकार मूर्खोंके चित्तकी अवस्था डोलायमान होती है, पंडितोंकी नहीं होती, मैं भिन्न हौं, वह भिन्न है, यह अज्ञानकरिकै अधवासना है, शुद्ध बुद्धिके विद्यमान् नहीं रहती, जैसे सूर्यके किरणोंते रात्रि दूर रहती है, तैसे यह वासना दूर रहती है, यह त्याग करिये, यह ग्रहण करिये, सो मिथ्या चित्तका भ्रम है, सो उन्मत्त अज्ञानीके अंतर होता है, ज्ञान्वान्के अंतर यह भ्रम उदय नहीं होता ॥ हे कमलनयन ! जो सर्व तूही है, विस्तृत आत्मारूप है, हेयोपादेय द्वैतभावकल्पना कहां है, यह संपूर्ण जगत् विज्ञानरूप सत्ताका आभास है, सत्य असत्यरूप जगत्विषे ग्रहणत्याग किसका करिये, केवल अपने स्वभावकरि द्रष्टा अरु दृश्यका विचार किया है, तिसविषे मैं प्रथम क्षीण विश्रांतिमान् हुआ था, अब भाव अभाव जगत्के पदार्थोंते मुक्त भया हौं, हेयोपादेयते रहित आत्मतत्त्व मुझको भासता है, समभावको प्राप्त भया हौं, अब मुझको संशय कछु नहीं रहा जो कछु करता हौं, सो आत्माकरि करता हौं, त्रिलोकीविषे तबलग तू पूजने योग्य है, जबलग यह उन्मत्त नहीं भया, ताते पूजन करता हौं, आदरसंयुक्त तुम ग्रहण करौ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! इसप्रकार दैत्यराज कहकरि क्षीरसमुद्रविषे शयन करनेहारे विष्णुको श्रेष्ठ सुमेरुकी मणिसों पूजत भया, बहुरि शंख चक्र गदा पद्म आदिक शस्त्रका पूजन करत भया, बहुरि गरुडकी पूजा करत भया, बहुरि देवता विद्याधरकी पूजा करी, इसप्रकार भगवान्को परिवारसंयुक्त पूजत भया, अंतर आत्मस्वरूपकी अरु बाहिर विष्णु देवकी मूर्तिका पूजन किया, तब लक्ष्मीपति कहत भए॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे दैत्येश्वर ! तू उठकर सिंहासनपर बैठ, मैं तुझको अपने हस्तसों अभिषेक करता हौं, पांचजन्य शंख बजाता हौं, तिसका शब्द सुनकर सब सिद्ध देवता आयकरि तेरा मंगल करेंगे ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहकर विष्णुजीने दैत्यको सिंहासनपर बैठाया, जैसे सुमेरुपर मेघ आय बैठे तैसे बैठाइकरि क्षीरसमुद्रादिकका अरु गंगादिक तीर्थोंका जल मँगाया, तब पांचजन्य शंख बजाया, तिसके शब्दकरि सब सिद्धगण ऋषि ब्राह्मण विद्याधर देवता मुनिके समूह आएं, सर्वात्मा पुरुष दैत्यराजके निमित्त सबको खैंचि ले आये, पवनगण देवगण सब स्तुति करत भए, प्रह्लादको इसप्रकार अभिषेक देइकरि मधुसूदन कहत भये ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे निष्पाप ! जबलग सुमेरुके धरनेहारी पृथ्वी है, अरु सूर्यचंद्रमाका मंडल है, तबलग तू अखंडित गुणवान् राज्य करि इष्टअनिष्टविषे समबुद्धि वीतराग क्रोधते रहित होइकरि भोग अरु राज्यकी पालना करियो, तुझको पूर्ण भूमिका प्राप्त भई है, तिसविषे स्थित हुए जो राज्यगणोंका प्रवाह जैसे प्राप्त होवै तैसे हर्षशोकते रहित होइकरि विचरौ, स्वर्ग प्राप्त होवै, अथवा नरक प्राप्त होवै, तू उद्वेगते रहित होइकरि भोगहु, देश काल क्रिया कार्य जैसे प्राप्त होवैं, तैसे होवैं, तैसेही स्थित होहु, हेयोपादेयते रहित हुआ बंधमान न होवैगा, संसारकी स्थिति तुझने सब देखी है, अरु सबको जानता है, और मैं तुझको क्या उपदेश करौं, तू रागद्वेषते रहित होइकरि राज्य भोग, अब दैत्योंका रुधिर धरणीपर न पडैगा, अर्थ यह कि, देवतोंसे विरोध न होवैगा, आजते देवता अरु दैत्योंका संग्राम बंद हुआ जैसे मंदराचलते रहित क्षीरसमुद्र शांतिमान् भया, तैसे सब जगत् स्वस्थ रहैगा, मोहरूपी जो तम है, सो तेरे हृदयते दूरि भया है, सदा प्रकाश स्वरूपकी लक्ष्मी हुई है, अनंत विलासको राज्यलक्ष्मीकरि भोगता आत्मपदविषे स्थित रहै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादाभिषेको नाम पञ्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४२.

प्रह्लादव्यवस्थावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहकरि पुंडरीकाक्ष विष्णु परिवारसंयुक्त चले मानो दूसरी संसारकी रचना दैत्यमंदिरते चली है, ता पाछे प्रह्लादने पुष्पांजलि दीनी, क्रमकरिकै क्षीरसमुद्रको प्राप्त भए, देवतोंको विदा करिकै आप शेषनागके आसनपर स्थित भए, जैसे श्वेत कमलपर भँवरा बैठे, तैसे बैठिकरि इंद्रको सब देवतासंयुक्त स्वर्गविषे स्थित किए, अरु पाताललोकविषे दैत्येश्वरको बैठाया, तब आप विगतज्वर हुआ, सृष्टिकी स्थितिविषे जो चिंतना थी, सो दूर हो गई, देवता अरु दैत्यका विरोध रहता था सो नष्ट भया, सब शांतिको प्राप्त भये ॥ हे रामजी ! यह दृष्टि संपूर्ण मल अज्ञानके नाश करनेहारी है, जो प्रह्लादके बोधकी प्राप्तिकी अवस्था मैंने तुझको कही है, सो कैसी अवस्था है, चंद्रमाके मंडलवत् शीतल है, जो मनुष्यलोकविषे बड़ा पापी होवै, अरु इसको विचारै, तब वह भी शीघ्रही परमपदको प्राप्त होवै अपर जो पापोंते रहित हैं, तिसकी क्या वार्ता कहिये, सम्यक् विचार करिकै पाप नष्ट हो जाता है, जो इन वाक्योंको विचार करै सो कौन है, जो परमपदको प्राप्त न होवै ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूप जो पाप है सो इसके विचारनेकरि नष्ट हो जाता है, पापोंका कारण जो अज्ञान है, तिसका नाश करनेहारा यह विचार है, ताते विचारका त्याग कदाचित् न करो, यह जो प्रह्लादकी सिद्धता कही है, इसको जो मनुष्य विचारै तिसके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जावैं, इसविषे संशय कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! प्रह्लादका मन तौ परमपदविषे प्रणमी गया था पांचजन्य शंख करिकै तिसको कैसे जगाया ?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे निष्पाप रामजी ! लोकविषे मुक्ति दो प्रकारकी हैं एक सदेह अरु एक विदेह, तिनका भिन्न भिन्न विभाग सुन, जिस पुरुषकी बुद्धि देहादिकोंते असंसक्त है ग्रहणत्यागकी जिसकेविषे इषणा नहीं, निरहंकार हुआ चेष्टा करता है, अरु सो सदेहमुक्ति जान, अरु देहादिक सब नष्ट हो जावैं बहुरि जन्म-

को धरै नहीं, तिसको विदेहमुक्ति जान, तिस पदको प्राप्त होता है, जो अदृश्यरूप है, अरु अज्ञानीकी वासना कच्चे बीजकी नाईं है, जन्म रूपी अङ्कुरको प्राप्त करती है, अरु ज्ञानवान् मुक्तकी वासना भूने बीजकी नाईं जन्मरूपी अंकुरते रहित होती है, अरु विदेहमुक्तकी वासनाका अंकुर दृष्ट नहीं आता, जीवन्मुक्त पुरुषके हृदयविषे शुद्ध वासना होती है, पावनरूप परम उदारता सत्तामात्र नित्य आत्मध्यानमें है, अरु संसारकी ओरते सुषुप्तिकी नाईं शांतरूप है सहस्र वर्षका अंत हो जावे अरु शुद्ध वासनाका बीज हृदयविषे होवे, तौ वह पुरुष समाधिते जागैगा, सो जीवन्मुक्त है, ताते प्रह्लादके अतर शुद्ध वासना थी, तिसकरि पाचजन्य शंखके शब्दसों जागि आया, अरु विष्णु सब भूतोंका आत्मा है, जैसे जिसकी इच्छा फुरती है, तैसेही तत्काल होता है, सर्वज्ञ सबका कारण है, जब विष्णु चितना करै तब प्रह्लाद जागा, आप अकारण है, कोऊ इसका कारण नहीं, यह सब भूतोंका कारण है, सृष्टिकी स्थिति निमित्त आत्मा पुरुषने यह विष्णुवपु धारा है, आत्माके देखनेकरि माधव विष्णुका दर्शन होता है,अरु विष्णुकी आराधनाकरि शीघ्रही आत्माका दर्शन होता है, आत्माके देखनेनिमित्त तुम भी इसी दृष्टिको आश्रय करो, तू विराट्रूप है, इसी दृष्टिकरि शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी, जो निरंतर आत्मपद है, यह वर्षाकालकी नदीवत् ससार असार वादर है, सो विचाररूपी सूर्यके देखेविना जडताको दिखावता है, विष्णुरूप जो आत्मा है, तिसकी प्रसन्नताते बुद्धिमान्को यह भास्वररूप माया नहीं वेधती, जैसे यक्षमाया यक्षमंत्रवालेको नहीं वेध सकती, तैसे आत्माकी इच्छाते यह संसारमाया घनताको प्राप्त होती है, अरु आत्माकी इच्छाकरि निवृत्त होती है, यह संसारमाया ईश्वरकी इच्छासे वृद्ध होती है जैसे अग्निकी ज्वाला वायुकरि वृद्ध होती है, अरु वायुहीकरि नष्ट होती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादव्यवस्थावर्णन नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४३.

प्रह्लादविश्रांतिवर्णनम्।

राम उवाच ॥ हे भगवन् सब धर्मोके वेत्ता ! तुम्हारे वचन परम शुद्ध कल्याण स्वरूप है, तिनको श्रवणकरि मैं आनंदमान भया हौं, जैसे चंद्रमाकी किरणोंकरि औषधीपुष्ट होती हैं तुम्हारे वचनके श्रवणकी जिसको वांछा है, सो पुरुष जैसा पुष्पोंकी मालाकरि सुंदर छाती शोभती है तैसे शोभता है कैसे वचन हैं, परम पावन अरु कोमल हैं॥ हे गुरु ! तुम कहते हौ, सब कार्य अपने पुरुषप्रयत्नकरि सिद्ध होता है, जो ऐसे है तौ प्रह्लाद माधवके वर विना क्यों जागता भया, जब विष्णुने वर दिया, तब ज्ञान जानता भया॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव ! जो कछु प्रह्लादको प्राप्त भया है, सो महात्मा पुरुषोंको अपने अपने पुरुषार्थकरि प्राप्त भया है, पुरुषार्थविना कछु नहीं प्राप्त होता, काहेते कि, जैसे तिलों अरु तेलविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु विष्णुविषे, भेद कछु नहीं, जो विष्णु है, सो आत्मा है, अरु आत्मा है, सो विष्णु है, विष्णु अरु आत्मा दोनों एक वस्तुके नाम हैं जैसे विटप अरु पादप दोनों एक वृक्षके नाम हैं तैसे प्रह्लादने प्रथम अपने आपकरि अपनी प्रेमशक्तिको विष्णुभक्तिविषे जोडा, सो आत्मशक्तिकरि जोडीहुई आत्माते आपही वर पाता भया, अरु आपही विचारकरि अपने मनको जीता, यह कदाचित् आत्माविषे आपही अपनी शक्तिकरि जागता है अथवा विष्णुभक्तिकरि जागता है॥ हे रामजी ! चिरपर्यंत आराधना करता प्रतापवान् हुआ, ताते विचारते रहितको विष्णु भी ज्ञान देनेको समर्थ न भया, आत्माके साक्षात्कारविषे मुख्य कारण अपने पुरुषार्थते उपजा विचार है अरु गौण कारण वर आदिक हैं, ताते तूं मुख्य कारणको आश्रय कर, प्रथम पांच इंद्रियोंको वश कर, चित्तको आत्मविचारविषे जोड, यह अभ्यास कर, प्रथम पांच इंद्रियोंको वश कर जो कछु किसीको कदाचित प्राप्त होना है, सो अपने पुरुषार्थकरि होता है, पुरुषार्थविना नहीं होता, अपने पुरुषार्थप्रयत्नकरि इंद्रियांरूपी जो पर्वत हैं, तिनने उल्लंघन

होवै,बहुरि संसारसमुद्रको तरि जावै,तब परमपदकी प्राप्ति होवै, जो पुरुष प्रयत्नविना जनार्दन दीखता होवै, तौ मृग पक्षीगणोंको क्यों दर्शन देइकरि उद्धार नहीं कर जाता, जो गुरु अपने पुरुषार्थविना उद्धार करते होव, तौ अज्ञानी अविचारी ऊट बैल आदिक पशुको क्यों नहीं कर जाते, ताते विष्णुकरि, न गुरुकरि, न किसी अपरकरि, पानेकी इच्छा बुद्धिमान् करते है, अपने मनके स्वस्थ कियेविना परम सिद्धताकी प्राप्ति महात्मा पुरुष नहीं जानते, वैराग्य अरु अभ्यासकरि जिनने इंद्रियारूपी शत्रु वश किये हैं, सो अपने आपकरि तिसको पाते हैं,अपर किसीकरि नहीं पाते॥ हे रामजी! आपकरि अपनी आराधना करहु, आपकरि अपनी अर्चना करहु आपकरि आपको देखहु,आपकरि आपविषे स्थित होहु,शास्त्रविचारते रहित मूढ अपर जो हैं, तिनके निमित्त वैष्णवभक्ति कल्पी है, सो प्रवृत्तिकी स्थिति निमित्त प्रथम मुख जो अभ्यास यत्नका कहा है, तिसते जो रहित पुरुष है, तिनको गौण पूजाका क्रम कहा है, काहेते कि, इंद्रियोंको वश नहीं किया, अरु जिनने इंद्रियोंको वश किया, तिनको भेद पूजासाथ क्या प्रयोजन है, विचार उपशमविना विष्णुभक्ति सिद्ध नहीं होती, अरु जब विचार उपशमसंयुक्त भया, तब कमल पाषाणसाथ क्या प्रयोजन है ताते विचारसंयुक्त होइकरि आत्माका आराधन करहु, तिसकी सिद्धताते तू सिद्ध होवेगा, तिसको सिद्ध नहीं किया, तौ वनका गर्दभ है, जो प्राणी विष्णुके आगे प्रार्थना करते हैं सो अपने चित्तके आगे क्यों नहीं करते, सब जीवोंके अंतर विष्णुजी स्थित है, तिसको त्यागिकरि जो बाह्य विष्णुपरायण हो जाते हैं, सो बुद्धिमान् नहीं हृदयगुफाविषे जो चेतनतत्त्व स्थित है,सो ईश्वरका मुख्य सनातन वपु है,शंख, चक्र,गदा,पद्म जिसके हस्तविषे हैं, सो आत्माका गौण वपु है, जो मुख्यको त्यागिकरि गौणकी ओर धावते हैं, सो विद्यमान् अमृतको त्यागिकरि जो साधनकरि सिद्ध होवै, तिसकी प्राप्तिनिमित्त यत्न करते हैं॥ हे रामजी! मनरूपी हस्तीको जिस पुरुषने आत्मविवेकसाथ वश नहीं किया, तिस अविवेकी चित्तको रागद्वेष ठहरने नहीं देते, शंख, चक्र, गदा, पद्म जिसके हाथविषे है, तिस ईश्वरकी जो अर्चना करते हैं, सो कष्ट

तपस्याकरि पूजन करते हैं, तिनका चित्त समय पाइकरि निर्मल भाव अभ्यास वैराग्यको प्राप्त होता है, अरु नित्य अभ्यासकरि भी चित्त निर्मल होता है तब आत्मफलको प्राप्त होता है, चित्त निर्मल-बिना आत्मफलको प्राप्त नहीं होता, जब चित्त निर्मल हुआ, तब वैराग्य अभ्यासवान् होइकरि आत्मफलका भोगी होता है, जैसे बीज बोया समयकरि फल देता है, तैसे क्रमकरि फल होता है ॥ हे रामजी ! विष्णुपूजाका जो क्रम है, सो भी निमित्तमात्र मधुसूदनने वर कहे हैं, अरु अमित प्रकाश है जिसका तिस आत्मतत्त्वते अभ्यासरूपी शाखा-करि फल प्राप्त होता है, अरु सर्वत उत्तम जो परम संपदाका अर्थ है, सो अपने मनके निग्रहकरि सिद्ध होता है. अपने मनका निग्रह करना बीज है, सो चेतनरूपी क्षेत्रते प्रफुल्लित होइकरि फलदायक होता है, संपूर्ण पृथ्वीकी निधि अरु संपूर्ण शिला बड़ी बड़ी मणिकी होवें, तौ भी मनके निग्रह समान नहीं, जैसा दुःखका नाशकर्त्ता बड़ा पदार्थ मनका निग्रह है, तैसा अपर कोऊ नहीं, तबलग यह जीव अनेक जन्म पाता है, जबलग उपशमको नहीं प्राप्त भया मनरूपी; मत्स्य संसारसमुद्रविषे भ्रमता है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मा विष्णु महेशको चिरकालपर्यंत पूजता रहे, अरु मन उपशम विचारसंयुक्त न भया, तौ जो देवता कृपालु होवें, तौ भी इसको संसारसमुद्रते तराइ नहीं सकते, यह जो भासुर आकार जग-त्के पदार्थ भासते हैं, तिनको इंद्रियोंकरि त्याग करिये तब जन्मके अभा-वका कारण जानिये, विषयोंकी चितवनाते रहित होइकरि निरामय सब दुःखोंते रहित आत्मसुख है, तिसविषे स्थित होहु; जो सत्तामात्र तत्त्व है, अरु सबका साररूप है, तिसका स्वाद लेइकरि मनरूपी नदीके पारको प्राप्त होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादविश्रांतिव-र्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४४.

गाधिनोपाख्यानेचांडालीवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो संसाररूप नामी माया है, सो अनंत है और किसीप्रकार इसका अंत नहीं आता, जब चित्त वश

होवै, तब यह निवृत्त हो जाती है, अन्यथा नहीं निवृत्त होती, जेता कछु जगत् देखने सुननेविषे आता है, सो सब मायामात्र है, सो मायारूप जगत्के भ्रमकरि भासता है, इसपर पूर्व इतिहास हुआ है, सो तू सुन॥ हे रामजी! इस पृथ्वीपर एक कोशल नाम देश है, सो कैसा है, जो रत्नोंकरि पूर्ण है, जैसे सुमेरु पर्वत रत्नोंकरि पूर्ण है, तैसे वह रत्नोंकरि पूर्ण है जातिजातिविषे जो उत्तम पदार्थ है, सो सब तिस देशविषे पाते थे, तहां एक गाधि नाम ब्राह्मण होता भया, सो कैसा था, वेदावेद्विषे प्रवीण मानो वेदकी मूर्त्ति था, अरु बालक अवस्थाते लेइकरि वैराग्य आदिक गुणोंसहित शोभता भया, जैसे प्रकाशकरि भुवन शोभता है, तैसे शोभता भया, एक कालमें कछु कार्य मनविषे धारि तप करनेनिमित्त वनको गया तब एक वनविषे कमलोंकरि पूर्ण ताल देखता भया, तिसविषे कंठपर्यंत जलमें स्थित होइकरि तप करने लगा अपना कार्य मनविषे धारिकरि विष्णुके ध्यानमें खड़ा हो रहा, अष्टमासपर्यंत दिन रात्रि जलमें खड़ा रहा, तिसके दृढ तपको देखिकरि जब विष्णु प्रसन्न हुए, तब जहां ब्राह्मण तप करता था तहां आनि प्राप्त भये, जैसे ज्येष्ठआषाढकी तपी पृथ्वीपर मेघ आता है, तैसे आइकरि विष्णु कहते भये॥ हे ब्राह्मण! जलते बाहर निकसि आवहु, अरु जो कछु वांछित फल है, सो माँग, तब गाधिने कहा॥ हे भगवन्! असत्य जीवोंका हृदयकमल है, तिनके छिद्रविषे तुम भँवरे हौ, अरु त्रिलोकीरूपी कमलोंके तुम तलाव हो, ऐसे ईश्वर जो तुम हौ, सो मेरा तुमको नमस्कार है॥ हे भगवन्! मुझको यह इच्छा है कि, तुम्हारी जो आश्चर्यरूप माया है, जिसकरि यह जगत् रचा है, किसीप्रकार मैं तिसको देखौं॥ हे रामजी! जब इसप्रकार गाधि ब्राह्मणने कहा, तब विष्णुने कहा॥ हे ब्राह्मण! तू मायाको देखैगा, अरु देखिकरि बहुरि त्याग भी देवैगा, ऐसे कहकरि विष्णु अंतर्धान हो गये तब ब्राह्मण वरको पाइकरि आनंदमान् हुआ, अरु जलते निकसा, जैसे निर्धन पुरुष धनको पाइकरि आनंदमान् होता है, तैसे ब्राह्मण वरको पाइकरि आनंदमान् भया, अरु चलते बैठते उसकी सुरत विष्णुके वरकी ओर लगी रहे कि, मैं माया

कब देखेगा, तब एक कालमें तिसी तलावपर स्नान करने लगा, अरु डुबकी दीनी, मनविषे अघमर्षण मन्त्रको जपने लगा, अघमर्षण कहिये पापोंको नाश कर्त्ता, तिस मन्त्रको जपते तिसका चित्त विपर्यय होयकरि निकसिगया, तब उसको कृष्णमन्त्र भूल गया, अरु आपको बहुरि अपने गृहविषे स्थित देखता भया, बहुरि आपको मृतक हुआ देखा कि, मैं मृत्यु पाया हौं, अरु सब कुटुंबके लोक रुदन करते हैं, शरीरकी कांति जाती रही है, जैसे टूटे कमलोंकी शोभा जाती रहती है, तैसे प्राण निकसि गया, जैसे पवनके ठहरेते वृक्ष अचल हो जाता है, तैसे अंग अचल हो गया, अरु होंठ फाटि विरस हो गये, मानों अपने जीवनेको हँसते हैं, माता गाधिको पकड़ि बैठी है, सब परिवार इकट्ठे हुए हैं, जैसे वृक्षपर पक्षी आनि इकट्ठे होते हैं, जैसे पुलके टूटे जल चलता है, तैसे रुदन करते हैं, तब बांधव लोक कहते भये, अब यह अमंगलरूप है, इसको जलाइये, ऐसे कहिकरि जलावनेको ले चले, चितामें डारिके जलाय दिया, बहुरि अपने गृहमें आइकरि क्रिया कर्म करने भये ॥ हे रामजी ! तिसते उपरांत ब्राह्मण एक देशविषे चंडाल भया, उस देशविषे एक चंडालोंका ग्राम था, तहां आपको एक चंडालीके गर्भविषे देखता भया कि, मैं यहां आनि पड़ा हौं, जैसे श्वानकी विष्ठाविषे कृमि होता है, तैसे आपको प्रवेश किया देखता भया, तब समय पाइकरि गर्भते बाहर निकसा, जैसे पका फल वृक्षते गिरता है, तैसे श्याम मूर्त्ति चंडालीते निकसा, अरु बहुत सुंदर बालक जन्मा चंडालीकी उसके साथ प्रीति भई, बढता जावै, जैसे छोटा वृक्ष बढ़ जाता है, तैसे द्वादश वर्षका भया, बहुरि षोडश वर्षका भया, तब श्वानसाथ लेकरि वनमें जावै, मृगोंको मारै, इसप्रकार बहुत स्थानोंमें विचरै, बहुरि विवाह भया, यौवन अवस्थाको यौवनविषे व्यतीत करता भया, बहुत बड़ा कुटुंबी भया, पुत्र कलत्र बहुत भये, बहुरि वृद्ध भया, शरीर जर्जरीभाव हुआ, तृणोंकी कुटी बनायकरि बाहर जाय रहा, जैसे मुनीश्वर रहते हैं, वहां दुर्भिक्ष पड़ा, इसके बांधव क्षुधाकरि मरने लगे, तब वहांते एकलाही निकसा बहुतेरे स्थानोंको लंघता गया, एक कांन देश है, तहां आइ प्राप्त भया, सो सुंदर देशका राजा मृतक

भया, अरु यह राजमार्गको चला जाता था, सो उस राजाका एकवड़ा हस्ती था तिसको मन्त्रियोंने छोड़ा था, जो कोई पुरुष इसके मुखमें लगे, तिसको राजा करिये तब वह हस्ती चला आवे इसने तिसको देखा बहुत सुंदर चरणोंकरि चला आवे, मानों सुमेरु पर्वत चरणोंकरि चला आता है जब निकट आया, तब इसको शीशपर चढ़ाय लिया जैसे सूर्यको सुमेरु शीशपर बैठा लेवे तैसे हस्तीने इस चंडालको बैठाय लिया तब नगारे तुरहियाँ बाजने लगीं अरु बडे शब्द होने लगे मानों प्रलयकालके मेघ गर्जते हैं अरु भाट आदिक आनि स्तुति करने लगे अरु इसके मुखकी शोभा हस्तीपर बैठते और हो गई तब सेनासहित राजा शोभता भया जैसे ताराविषे चंद्रमा शोभता है तैसे शोभता चला अंतःपुरविषे जाय राणियोंमें स्थित भया सब और राणियां सहेलियां इसके निकट आय स्थित भई अरु इसको मिलने लगीं स्नान कराइके नानाप्रकारके हीरे मोती भूषण अरु सुंदर वस्त्र पहिराये तिसकरि शोभायमान् भया राजा होइकरि राज्य करत भया सब स्थान अरु सब देशोंविषे इसकी आज्ञा चलने लगी सब लोक इसते भय पावें बड़े तेज अरु बड़ी लक्ष्मीकरि संपन्न हुआ, अरु तेजवान् होइकरि विचरने लगा जैसे वनविषे सिंह विचरता है इसप्रकार चिरपर्यंत राज्य करता भया हस्तीपर चढ़िकरि शिकार खेलै गवल नाम राजा होइकरि सब देशपर आज्ञा करता भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधोपाख्याने चंडालवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥४४॥

पंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४५

राजप्रध्वसवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी । इसप्रकार लक्ष्मीको पाइकरि आनंदवान् हुआ जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है तैसे शोभता भया अरु आठ वर्षपर्यंत राज्य करता भया तब एक समय भूषण वस्त्रोंको पहिरि बैठा है अरु मनविषे संकल्प आनि फुरा कि मुझको वस्त्र भूषणके पहिरनेकरि

क्या ? अरु इनकी सुंदरता क्या है मैं तो राजाधिराज अपने तेजकरि तेजस्वी शोभायमान् हौं ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारिकरि भूषण वस्त्रउतारि डारे, शुद्ध श्याम मूर्त्ति होइकरि स्थित भया, जैसे प्रात कालविषे तारागणते रहित श्याम आकाश होता है, तैसे होइकरि बहुरि अपनी चंडाल अवस्थाके वस्त्र पहिरे, एकलाही निकसिकरि बाहिर डेवढ़ीविषे जायकरि स्थित भया, जैसे सूर्य आकाशमार्गको एकला चलता है, तैसे एकला होइकरि राजमार्गकी डेवढ़ीविषे जाय खड़ा हुआ, तब उन देशके चंडाल जो दुर्भिक्षकरि यह छोड आया था, तार्गते बड़े चंडाल उस मार्गमें आय निकसे, तिनविषे एक चंडाल तंद्री हाथविषे लेइकरि आता था, तिसने राजाको देखिकरि पहँचाना, तब राजाके सन्मुख आया, मानो श्याम पर्वत चला आता है, अरु कहत भया ॥ हे भाई ! एता काल तू कहां था, हमको छोड़िकरि यहां आइकरि सुख भोगने लगा है ॥ हे भाई ! यहकि राजाने तुझको सुखी किया होवेगा, काहेते कि, तू गाता भला है, राजाको राग प्यारा होता है, अरु तू कोकिलाकी नाई गाता है, इस कारणते प्रसन्न होइकरि बहुरि धन दिया होवेगा, अथवा किसी और धनीने तुझको प्रसन्न होइकरि मंदिर धन दिया होवेगा ॥ हे रामजी ! इस-प्रकार वह चंडाल मुखते कहता अरु भुजा पसारता इसके सन्मुख चला आवै, अरु यह नेत्र हाथोंसे उसको जनावै कि, तूष्णीं होउ, मुखते कछु न कहहु, परंतु वह चंडाल कछु समुझे नहीं, सन्मुख होइकरि चला आवै, ज्यों ज्यों वह चला आवै, त्यों त्यों राजाकी कांति घटती जावै जैसे गंडेकरि मारे हुए कमलोंकी कांति घटि जाती है, अरु ऊपर झरोखेविषे सहेलियां देखत भई इन्होंने देखकर विचार किया, कि, राजा चंडाल है, ऐसे विचारकरि महाशोकको प्राप्त भई, और कहत भई, कि, हमको बड़ा पाप प्राप्त भया है, जो इसके साथ हमने स्पर्श किया है, अरु भोजन किया है, निरपर्यंत निचरी हैं, ऐसे शोकवान् होइकरि सबकी कांति नष्ट हो गई जैसे बर्फ पडनेकरि कमलपंक्तिकी कांति जाती रहती है, जैसे वनमें अग्नि लगनेकरि वृक्षोंकी कांति जाती रहती है, तैसे उनकी कांति जाती रही, शोकवान् होइकरि नष्ट

पाती भई, अरु सब नगरवासी भी सुनिकरि शोकवान् भए, अरु हाय हाय शब्द करने लगे, तब वह चंडाल राजा अपने अंतःपुरविषे आया, जेते कछु अंतर लोक थे सो तिसको देखिकरके भागे, निकट कोऊ न आवे, जैसे पर्वतको अग्नि लगै, वहाते मृगपक्षी भाग जावैं, तैसे चंडाल राजाके निकट कोऊ न आवे, मंत्री टहलुए स्त्रियां सब दूरते भाग जावैं तब तिस देशविषे जो पंडित बुद्धिवान् थे, तिन्होंने विचार किया कि, बड़ा अनर्थ भया है, एता काल हम चंडाल राजाकरिकै जीवे हैं, हमको बड़ा पाप लगा है, इस पापका और पुरश्चरण कोई नहीं, हम सब चिता बनाय अग्निविषे प्रवेश कर जलि मरैंगे, तब यह पाप निवृत्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जब यह विचार ब्राह्मण क्षत्रिय लोकोंने किया, तब तिसके अनंतर चिता बनाइकरि जलने लगे, पुत्र कलत्र बांधवोंको छोडिकरि प्रवेश करें जैसे दीपकविषे पतंग प्रवेश करै, तैसे जलैं, अरु जैसे आकाशविषे तारे दृष्ट आवें, तैसे अनेक चिताका चमत्कार दृष्ट आवै, अरु धूम्रकरि अंधकार हो रहा, कई मनुष्य धर्मात्मा अपनी इच्छाकरि न जले जब अपनी इच्छाकरि न जले, तब तिनको अपर ले जलावें, तब चंडाल राजा विचारत भया कि, मेरे एकके निमित्त एते नगरवासी जलते हैं, जीना भी तिसका श्रेष्ठ है, जिसते शोभा उत्पन्न होवै, जिसके जीनेकरि पाप उत्पन्न होवै, तिसको मरना श्रेष्ठ है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारिकरि उस राजाने भी चिता बनाई, अरु जैसे दीपकविषे पतंग प्रवेश करता है, तैसे राजा प्रवेश करता भया, अरु अग्निका तेज शरीरको लगा, तब गाधिका शरीर जो तलावविषे डुबकी लगाया था, सो कंपायमान हुआ, तब जलते बाहर शीश निकासा, परंतु सावधान भया ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त भया, सब सभा परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गये, बहुरि रात्रि नष्ट भएने आनि स्थित भए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राजप्रश्नसवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४५ ॥

अरु वह क्या भ्रम था, जेता कछु जगत् प्रत्यक्ष देखता है; सो भी तेरे मनविषे स्थित है, बाहिर पृथ्वी आदिक तत्त्व कोऊ नहीं, सब तेरे अंतर स्थित हैं, जैसे बीजके अंतर फूल फल पत्र है, तैसे पृथ्वी जल तेज वायु आकाश जेता कछु पांचभौतिक है, सो सब विस्तार चित्तविषे स्थित है जैसे वृक्षका विस्तार बीजविषे दृष्ट नहीं आता जब बोया हुआ उगता है,तब विस्तार दृष्ट आता है, तैसे जब चित्त ज्ञानविषे लीन होता है, तब जगत् नहीं भासता, अरु जब स्पंदरूप होता है, तब बडे विस्तारसंयुक्त जगत भासताहै॥ हे ब्राह्मण! जेता कछु जगत् देखताहै, सो सब चित्तका भ्रम है, जैसे एक कुलाल घटादिक वासना उत्पन्न करता है, तैसे एकही चित्त अनेक भ्रमरूप पदार्थको उत्पन्न करताहै ॥ अरु जो चित्त वासनाते रहित है, तिसते भ्रमरूप पदार्थ कोऊ नहीं उपजता, ताते चित्तको स्थित कर ॥ हे ब्राह्मण! इस चित्तविषे कोटि ब्रह्मांड स्थित हैं, जो तुझको चंडाल अवस्थाका अनुभव हुआ है, तौ इसविषे क्या आश्चर्य हुआ? अरु तू कहता है? कि, मैं बडी आश्चर्यरूप माया देखी है, सो उसकोही माया कहता है, अब जो तुझको विद्यमान् भासता है, सो सबही माया है, जो तुझको अपने गृहविषे अनुभव भया था, अरु चंडालके गृहविषे जन्म लिया, कुटुंबी हुआ, अरु राज्य किया, बहुरि चिताविषे जला, बहुरि अतिथि ब्राह्मणको मिला, बहुरि जाइकरि सब-ही स्थान देखे, सो भी माया थी, जैसे एता भ्रम तुझने मायाकरि देखा, तैसे यह पसारा भी सब माया है॥ हे साधो! जैसे स्वप्नविषे नाना-प्रकारके पदार्थ भासते हैं, अरु जैसे मदिरापान करनेवालेको सब पदार्थ भ्रमते हैं, तैसे यह जगत् भी भ्रमते भासता है, अरु जैसे नौकापर बैठेको तटके वृक्ष भ्रमते भासते हैं, तैसे यह जगत् भी भ्रममान भासता है, अरु चित्तके स्थित कियेते जगत्भ्रम नष्ट हो जावैगा, अन्यथा भ्रम निवृत्त न होवैगा, जैसे पत्र, फूल, फल, टास काटनेकरि वृक्ष नाश नहीं होता, जब मूलते काटिये तब वृक्ष नाश हो जाता है, तैसे जब जगत् भ्रमका मूल चित्तही नष्ट हो जावैगा, तब संपूर्ण भ्रम निवृत्त हो जावैगा सो चित्तका नाश होना यह है, जो चित्तकी चैत्यता दृश्यकी ओर

धावती है, सोई जगत्का वीज है, जब यही चैत्यता दृश्यकी ओर फुरनेते रहित होवै, तव जगत्भ्रम भी मिटि जावै, अरु जगत्की ओर फुरना तव मिटै, जव जगत्को मायामात्र जानै॥ हे साधो यह सव जगत् मायामात्र है, कोऊ पदार्थ सत्य नहीं, जैसे वह भ्रम तुझको मायामात्र भासा है, तैसे यह भी सव मायामात्र जान, ताते इस भ्रमको त्यागिकरि अपना जो ब्राह्मणका कम है, तिसविषे जाय स्थित होहु॥ हे रामजी! इसप्रकार कहिकरि विष्णुदेव उठि खड़े हुए, तव गाधि अरु अपर ऋषीश्वर जो वहां थे सो विष्णुकी पूजा करते भए, पूजा लेइकरि विष्णु क्षीरसमुद्रको गमन करते भए, तव वह ब्राह्मण वहुरि उसी भ्रमको देखने चला, कांत देशविषे गया, तिनको देखिकरि आश्चर्यवान् होवै,अरु कैसे विष्णु हैं, मायामय कहाते हैं, यह जो प्रत्यक्ष में देखता हौं,जो कछु भ्रमविषे देखा था, सोई प्रत्यक्ष देखता हौ, ऐसे विचारिकरि वहुरि कहता भया कि, इस संशयको दूर करनेको और कोऊ समर्थ नहीं, ताते वहुरि विष्णुका आराधन करता भया॥ हे रामजी! इसप्रकार विचारिकरि गाधि वहुरि पहाड़की कंदराविषे जाय तप करने लगा, तव थोडे कालमें विष्णु भगवान् प्रसन्न होइकरि आए, जैसे मेघ मोरको कहै,तैसे ब्राह्मणको भगवान् कहते भए॥ हे ब्राह्मण अव क्या चाहता है, तव गाधिने कहा, हे भगवन्, तुम कहते हौ, सव भ्रममात्र है, अरु यह तौ प्रत्यक्ष भासता है, जो भ्रम होता है सो प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता अरु मैने वहुरि वह स्थान देखे हैं, अरु थोड़े कालकरि वहुत काल देखनेका मुझको संशय है, सो दूरि करो॥ हे रामजी! जव इसप्रकार गाधिने कहा, तव भगवान् कहते भए॥ हे ब्राह्मण! जो कछु तुमको यह भासता है, सो सव माया मात्र है, अरु जिस प्रकार तुझको यह भासता है सो सव मायामात्र है, अरु जिस प्रकार तुझको यह अनुभव भया है, सो श्रवण कर॥ हे ब्राह्मण वह कटजल नाम चंडाल एक चंडालके गृहविषे उत्पन्न भया था, वहुरि क्रम करि वडा हुआ था, अरु कुटुंवी हुवा वहुरि वहाँ दुर्भिक्ष पड़ा तव उस देश को त्यागिकरि जाइ कांत देशका राजा हुआ, वहुरि लोकोंने सुना, तव सवही अग्निविषे जले,वहुरि वहां चंडाल आपभी अग्निविषे जला सो कट-

स्थित किया, जब ऐसे परम तप किया तब शुद्ध चिदानंद आत्माका साक्षात्कार बहुरि तिसको भया, बहुरि शांतिवान् होइकरि विचरत भया, जेते कछु राग दोष आदिक विकार हैं, तिनते रहित शांतिको प्राप्त भया॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधप्राप्तिवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ ४६॥

सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४७.

राघवसेवनवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह गाधिका आख्यान तुझको मायाकी विषमता जतावनेनिमित्त कहा है, कि, परमात्माकी ऐसी माया है, सो मोहको देनेहारी है, विस्तृतरूप दुर्गम है, जो आत्मतत्त्वते भूला है, तिसको आश्चर्यरूप भ्रम दिखाती है, तू देख कि दो मुहूर्त्त कहां अरु एता काल कहां अरु जो चंडाल अरु राजभ्रमको वर्षोपर्यंत देखता रहा, बहुरि भ्रमकरि भासना अरु प्रत्यक्ष देखना, यह सब मायाकी विषमता है, सो असत्यरूप भ्रम है, सो दृढ होइकरि प्रसिद्ध भासा ताते आश्चर्यरूप परमात्माकी माया है, जबलग बोध नहीं होता, तबलग अनेक भ्रमको दिखाती है॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! यह माया संसारचक्र है, तिसका बड़ा तीक्ष्ण वेग है, अरु सब अंगोंको छेदनेहारा है, जिसकरि इस चक्रका रोकना होवै, अरु इस भ्रमते छूटिये सो उपाय कहौ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह जो मायामय संसारचक्र है, तिसका नाभिस्थान चित्त है, जब चित्त वश होवै, तब संसारचक्रवेग रोका जावै, और किसी प्रकार रोका नहीं जाता॥ हे रामजी! इस वार्त्ताको तू भली प्रकार जानता है॥ हे निष्पाप! जब चक्रकी नाभि रोकता है, तब चक्र स्थित हो जाता है रोकनेबिना स्थित नहीं होता, संसाररूपी चक्रकी चित्तरूपी नाभिको रोकता है, तब चक्र स्थित हो जाता है, रोकेबिना स्थित नहीं होता, जब चित्तको स्थित करैगा, तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जावैगा, अरु जब चित्त स्थित होता है, तब परब्रह्म प्राप्त होता है, अरु जो कछु करना था, सो किया

होता है, कृतकृत्य होता है, अरु जो कछु प्राप्त होना था, सो प्राप्त होता है, बहुरि पाछे पाना कछु नहीं रहता, ताते जेते कछु तप ध्यान तीर्थ दान आदिक उपाय हैं, तिन सबको त्यागिकरि चित्तके स्थित करनेका उपाय करो, संतोंका संग अरु ब्रह्मविद्या शास्त्रका विचार इस उपायकरि चित्त आत्मपदविषे स्थित होवैगा, जो कछु संता अरु शास्त्रोंने किया है, तिसका वारवार अभ्यास करना, ससार मृगतृष्णाके जल अरु स्वप्नवत जानिकरि इसते वैराग्य करना, इन दोनों उपायोंकरि चित्त स्थित होवैगा, आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, और किसी उपायकरि आत्मपदकी प्राप्ति न होवैगी ॥ हे रामजी। वोलनेचालनेका वर्जन नहीं, वोलिये, दान करिये, अथवा लेइये,परतु अतर चित्तको मत लगावहु,इनका साक्षी जाननेवाला जो अनुभव आकाश है, तिसकी ओर वृत्ति होवै, युद्ध करना होवै, तौ भी करिये, परतु वृत्ति साक्षीकी ओर होवै, तिसको अपना रूप जानिये, अरु स्थित होइये शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध यह जो पांच विषय इंद्रियोंके हैं, इनको अगीकार करिये परतु इनके जानने-वाले साक्षीविषे स्थित होहु, तेरा अपना स्वरूप वही चिदाकाश है, जब तिसका अभ्यास वारंवार करिये तव चित्त स्थित होवै, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी। जवलग चित्त आत्मपदविषे स्थित नहीं होता, जवलग जगत्भ्रम निवृत्त नहीं होता, इस चित्तके संयोगते चेतनका नाम जीव है, जैसे घटके सयोगते आकाशको घटाकाश कहते हैं, जब घट टूटि जावै, तब महाकाशही रहैगा, तैसे जब, चित्तका नाश होवैगा, तब यह जीव चिदाकाशही होवैगा, अरु यह जगत् भी चित्तविषे स्थित है, चित्तके अभाव हुएते जगत्भ्रम शात हो जावैगा, हे रामजी। जवलग चित्त है, तवलग ससार भी है, जैसे जवलग मेघ है, तवलग बूंदां भी है, जब मेघ नष्ट हो जावै, तब बूंदा भी नहीं रहतीं, अरु जैसे जवलग चंद्र-माकी किरणें शीतल हैं, तवलग चंद्रमाके मंडलविषे तुषार है, तैसे जव-लग चित्त है, तवलग ससारभ्रम है, जैसे मांसका स्थान श्मशान होता है, तहां पक्षी भी होते हैं और ठौर इकट्ठे नहीं होते, तैसे जहां चित्त है, तहां राग द्वेष आदिक विकार भी होते हैं, अरु जहां चित्तका अभाव है, तहां

निकारका अभाव है ॥ हे रामजी ! जैसे पिशाच आदिककी चेष्टा रात्रि-विषे होती है, दिनविषे नहीं होती, तैसे राग द्वेष भय इच्छा आदिक विकार चित्तविषे होते हैं, जहां चित्त भी नहीं, तहां विकार भी नहीं, जैसे अग्निबिना उष्णता नहीं होती, अरु बर्फ शीतलताबिना नहीं होता, सूर्यबिना प्रकाश नहीं होता, जलबिना तरंग नहीं होता, तैसे चित्तबिना जगत्भ्रम नहीं होता ॥ हे रामजी ! शांति भी इसीका नाम है, अरु शिवता भी वही है, सर्वज्ञता भी वही है, जो चित्त नष्ट होवै, आत्मा भी वही है, तृप्तता भी वही है, अरु चित्त नष्ट नहीं भया, तहां एते पदोंविषे कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! चित्तते रहित चैतन्य है सो चैतन्य कहाता है, अरु अमनशक्ति है, अरु सब कलनाते रहित है, जबलग इसको बोध नहीं तबलग नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, जब वस्तुका बोध हुआ, तब एक अद्वैत एक आत्मसत्ता भासती है ॥ हे रामजी ! ज्ञानसंवित्की ओर वृत्तिको रखना, जगत्की ओर नहीं रखना, जाग्रत् की ओर नहीं जाना, जाग्रत्के जाननेवालेकी ओर जाना, स्वप्न अरु सुषुप्तिकी ओर नहीं जाना, जो अंतरका जाननेवाला साक्षीसत्ता है, तिसकी ओर वृत्ति रखनी यह चित्तको स्थित करनेका परम उपाय है, जो संतोंका संग अरु शास्त्रोंकरि निर्णय किया अर्थ है, जब इसका अभ्यास होवै, तब चित्त नष्ट होजावै, अरु जो अभ्यास होवै, तौ भी संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका श्रवणकरि बल करिये, तब सहजही चमत्कार हो आवैगा, मनको मनसाथ मथिये, तिसते ज्ञानरूपी अग्नि निकसैगी, सो आशारूपी सब फांसीको जलाइ डारैगी, अरु जब-लग चित्त आत्मपदते विमुख है, तबलग संसारभ्रमको देखता है, जब आत्मपदविषे स्थित होता है, तब सब क्षोभ मिटि जाता है, जब तुझको आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा, तब कालकूट विष भी अमृतसमान हो जावैगा, विषका जो विषभाव मारना है, सो न रहैगा अरु यह जब अपने स्वभावविषे स्थित होता है तब संसारका कारण मोह मिटि जाता है, अरु जब निर्मल निरंश आत्मसंवित्ते [illegible] तब संसारका कारण मोह आनि प्राप्त होता है, अ[illegible] नि[illegible] [illegible]विषे स्थित होता है, तब संसारसमुद्रको [illegible] इसनाम नाकरि चित्त

कठिन हो जाता है,अरु चित्तरूपी विषका वृक्ष है, अरु देहरूपी भूमिपर लगा है, संकल्प विकल्प इसके टास है, दुर्वासनारूपी पत्र हैं, अरु सुख दुःख आधि व्याधि मृत्युरूपी इसके फल हैं, अहंकाररूपी जो कर्म है सो जल है, तिसके सींचनेकरि वढता है, कामभोगरूपी पुष्प हैं, चितारूपी वडी वल्ली है, जब विचार अरु वैराग्यरूपी कुठारकरि इसको काटै तब शांतिको प्राप्त होवै, अन्यथा शांतिको प्राप्त न होवैगा ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी एक हस्ती है, अरु शरीररूपी तलावविषे आनि स्थित भया है-शुभ वासनारूपी जलको मलीन कर डारा है, अरु धर्म संतोष वैराग्य-रूपी कमलको तोरिडारा है, भोगोंकी तृष्णारूपी सूंडकरिकै तिसको तू आत्मविचाररूपी नेत्रोंकरि नखोंकरि छेद ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी कौवा है, जैसे कौवा अपवित्र पदार्थोंको भोजन करता है, अरु सर्वदा काँ काँ करता है तैसे चित्त देहरूपी अपवित्रविषे वैठता है,अरु सर्वदा भोगोंकी ओर धावता है, तिनके रसको ग्रहण करता है, मौन कबहूँ नहीं होता अरु दुर्वासनाकरिकै काककी नाई कृष्णरूप है, जैसे काकका एकही नेत्र होता है, तैसे चित्त एक विषयोंको धावता है, ऐसे अमंगलरूपी कौवाको विचाररूपी धनुषसे मारै, तब सुखी होवैगा, अरु चित्तरूपी इंल पखेरू है, भोगरूपी मासके निमित्त सर्व ओरको भ्रमता है, अरु जहां अमंगल-रूपी इंल आता है, तहांते विभूतिका अभाव हो जाता है, अरु मांसकी ओर ऊचा होइकरि देखता है, नम्रीभाव नहीं होता, तैसे चित्तरूपी इंल शरीररूपी स्थानविषे वैठता है, आत्मज्ञानरूपी विभूतिका अभाव हो जाता है, अरु भोगरूपी मांसको देखिकरि गिरता है, अरु अभिमानरूपी ग्रीवाको ऊँची रखता है, ऐसा जो चित्त अमंगलरूप इंल है, तिसको जब नाश करै, तब शांतिवान् होवैगा, अरु जैसे पिशाच आय जिसको लगता है, सो खेदवान् होता है, अरु शब्द करता है, तैसे चित्तरूपी इसको पिशाच लगा है,अरु तृष्णारूपी पिशाचनीकेसाथ शब्द करता है, तिसको काढहु, आत्माते इतर जो अभिमान करता है, ऐसा चित्तरूपी पिशाच है, तिसको वैराग्यरूपी मंत्रकरि दूर करहु, तब स्वभावसत्ताको प्राप्त होवोगे, अरु यह चित्त[illegible] वानर है, सो महा चंचल है, सदा भट-

विकारका अभाव है ॥ हे रामजी ! जैसे पिशाच आदिककी चेष्टा रात्रिविषे होती है, दिनविषे नहीं होती, तैसे राग द्वेष भय इच्छा आदिक विकार चित्तविषे होते हैं, जहां चित्त भी नहीं, तहां विकार भी नहीं, जैसे अग्निविना उष्णता नहीं होती, अरु बर्फ शीतलताविना नहीं होता, सूर्यविना प्रकाश नहीं होता, जलविना तरंग नहीं होता, तैसे चित्तविना जगत्भ्रम नहीं होता ॥ हे रामजी ! शांति भी इसीका नाम है, अरु शिवता भी वही है, सर्वज्ञता भी वही है, जो चित्त नष्ट होवै, आत्मा भी वही है, तृप्तता भी वही है, अरु चित्त नष्ट नहीं भया, तहां एते पदोंविषे कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! चित्तते रहित चैतन्य है सो चैतन्य कहाता है, अरु अमनशक्ति है, अरु सब कलनाते रहित है, जबलग इसको बोध नहीं तबलग नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, जब वस्तुका बोध हुआ, तब एक अद्वैत एक आत्मसत्ता भासती है ॥ हे रामजी ! ज्ञानसंवित्की ओर वृत्तिको रखना, जगत्की ओर नहीं रखना, जाग्रत् की ओर नहीं जाना, जाग्रत्के जाननेवालेकी ओर जाना, स्वप्न अरु सुषुप्तिकी ओर नहीं जाना, जो अंतरका जाननेवाला साक्षीसत्ता है, तिसकी ओर वृत्ति रखनी यह चित्तको स्थित करनेका परम उपाय है, जो संतोंका संग अरु शास्त्रोंकरि निर्णय किया अर्थ है, जब इसका अभ्यास होवै, तब चित्त नष्ट होजावै, अरु जो अभ्यास होवै, तौ भी संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका श्रवणकरि बल करिये, तब सहजही चमत्कार हो आवैगा, मनको मनसाथ मथिये, तिसते ज्ञानरूपी अग्नि निकसैगी, सो आशारूपी सब फांसीको जलाइ डारैगी, अरु जबलग चित्त आत्मपदते विमुख है, तबलग संसारभ्रमको देखता है, जब आत्मपदविषे स्थित होता है, तब सब क्षोभ मिटि जाता है, जब तुझको आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा, तब कालकूट विष भी अमृतसमान हो जावैगा, विषका जो विषभाव मारना है, सो न रहैगा अरु यह जब अपने स्वभावविषे स्थित होता है तब संसारका कारण मोह मिटि जाता है, अरु जब निर्मल निरंश आत्मसंवित्ते गिरता है, तब संसारका कारण मोह आनि प्राप्त होता है, अरु जब निरंश निर्मल आत्मसंवित्विषे स्थित होता है, तब संसारसमुद्रको तरि मनतारूपी फांसीकरि अरु यह मेरा स्वभाव पाकर [illegible]

कठिन हो जाता है, अरु चित्तरूपी विषका वृक्ष है, अरु देहरूपी भूमिपर लगा है, सकल्प विकल्प इसके टास हैं, दुर्वासनारूपी पत्र है, अरु सुख दुःख आधि व्याधि मृत्युरूपी इसके फल हैं, अहंकाररूपी जो कर्म है सो जल है, तिसके सींचनेकरि वढता है, कामभोगरूपी पुष्प हैं, चितारूपी वडी वल्ली है, जब विचार अरु वैराग्यरूपी कुठारकरि इसको काटे तब शातिको प्राप्त होवै, अन्यथा शांतिको प्राप्त न होवैगा ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी एक हस्ती है, अरु शरीररूपी तलावविषे आनि स्थित भया है-शुभ वासनारूपी जलको मलीन कर डारा है, अरु धर्म सतोप वैराग्य-रूपी कमलको तोरिडारा है, भोगोंकी तृष्णारूपी सूंडकरिके तिसको तू आत्मविचाररूपी नेत्रोंकरि नखोंकरि छेद ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी कौवा है, जैसे कौवा अपवित्र पदार्थोंको भोजन करता है, अरु सर्वदा काँ काँ करता है तैसे चित्त देहरूपी अपवित्रविषे वैठता है, अरु सर्वदा भोगोंकी ओर धावता है, तिनके रसको ग्रहण करता है, मौन कबहूं नहीं होता अरु दुर्वासनाकरिके काककी नाईं कृष्णरूप है, जैसे काकका एकही नेत्र होता है, तैसे चित्त एक विषयोंको धावता है, ऐसे अमंगलरूपी कौवाको विचाररूपी धनुषसे मारै, तब सुखी होवैगा, अरु चित्तरूपी ईल पखेरू है, भोगरूपी मांसके निमित्त सर्व ओरको भ्रमता है, अरु जहां अमंगल-रूपी ईल आता है, तहांते विभूतिका अभाव हो जाता है, अरु मांसकी ओर ऊचा होइकरि देखता है, नम्रीभाव नहीं होता, तैसे चित्तरूपी ईल शरीररूपी स्थानविषे वैठता है, आत्मज्ञानरूपी विभूतिका अभाव हो जाता है, अरु भोगरूपी मासको देखिकरि गिरता है, अरु अभिमानरूपी ग्रीवाको ऊंची रखता है, ऐसा जो चित्त अमंगलरूप ईल है, तिसको जब नाश करै, तब शांतिवान् होवैगा, अरु जैसे पिशाच आय जिसको लगता है, सो खेदवान् होता है, अरु शब्द करता है, तैसे चित्तरूपी इसको पिशाच लगा है, अरु तृष्णारूपी पिशाचनीकेसाथ शब्द करता है, तिसको काढहु, आत्माते इतर जो अभिमान करता है, ऐसा चित्तरूपी पिशाच है, तिसको वैराग्यरूपी मन्त्रकरि दूर करहु, तब स्वभावसत्ताको प्राप्त होवोगे, अरु यह चित्त[illegible] वानर है, सो महा चंचल है, सदा भट-

फना रहता है, स्थिर कबहूं नहीं रहता, कबहूं किसी कबहूं किसी पदार्थविषे धावता है, जैसे वानर जिस वृक्षपर बैठता है, तिसको ठहरने नहीं देता॥ हे रामजी ! चित्तरूपी जेवरी है, तिसकेसाथ संपूर्ण जगत बांधा है, कर्त्ता कर्म कियारूपी गांठि करिके, जैसे एक सांकलीसे अनेक बंधवान् बांधते हैं, अरु एक तागेसे अनेक मणके परोते हैं, तैसे एक चित्तमें सब देहधारी बांधे हैं, तिस जेवरीको असंग शस्त्रकरि काटे, तब सुखी होवै॥ हे रामजी चित्तरूपी अजगर सर्प है; अरु भोगोंकी तृष्णारूपी विषकरि पूर्ण है, तिस सर्पने फूत्कारेसाथ बडे बडे लोक जलाए हैं, शम दम धैर्यरूपी जो कमल हैं, सो सब जलि गए हैं, इस दुष्टके मारनेको और समर्थ कोऊ नहीं, एक विचाररूपी गरुड है, जब विचाररूपी गरुडउपजे, तब इसको जीतता है अरु जेते ईश्वर बलवान् हैं, तिन सबनते तत्त्ववेत्ता उत्तम है, उनके आगे सब लघु हो जाते हैं, तिन पुरुषको किसी संसारके पदार्थकी अपेक्षा नहीं उनका चित्त सत्यपदको प्राप्त हुआ है, तातें चित्तको स्थिर करो, तब वर्त्तमानकालभी भविष्यतकालकी नाईं हो जावैगा, जैसे भविष्यत्कालका राग दोष नहीं स्पर्श करता, तैसे वर्त्तमानकालका राग दोष स्पर्श न करेगा॥ हे रामजी ! आत्मा परम आनंदरूप है, तिसके पायेते अमृत भी विषसमान हो जाता है, अर्थ यह कि, अमृतरूप होइकरि चित्तको रंचता सो नहीं रंचता, जिस पुरुषको आत्मपदविषे स्थिति भई है, सो सबते उत्तम है, जैसे मेरु पर्वतके निकट हस्ती तुच्छ भासता है, तैसे तिसके निकट त्रिलोकीके पदार्थ सब तुच्छ भासते हैं, अरु वह बडे दिव्य तेजको प्राप्त होता है, जिसको सूर्य नहीं प्रकाश कर सकता, परम प्रकाशरूप सब कलनाते रहित अद्वैततत्त्व है॥ हे रामजी ! तिस आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, जो पुरुष ऐसे स्वरूपको पाया है, सो सब कछु पाया है, अरु जो ऐसे स्वरूपको नहीं पाया, सो कछु नहीं पाया, हमको ज्ञानकी वार्त्ता करते ज्ञानवानको देखिकरि लज्जा कछु नहीं आती, अरु जो त्रिशु ज्ञानस्वरूपकी वार्त्ताते विमुख हैं, यद्यपि महाबाहु होवैं, तो भी गर्दभवत् हैं, जो बडे ऐश्वर्यकरि संपन्न हैं, अरु आत्मपदते विमुख हैं, तिनको मृ पिशाच कहिते भी नीच जान, अरु जीवना तिनका श्रेष्ठ है,

जो आत्मपदके निमित्त यत्न करते हैं, अरु जीवना तिनका वृथा है, जो संसारके निमित्त यत्न करते हैं, देखनेमात्र तौ चैतन्य हैं, परंतु शवकी नाईं हैं, अरु जो तत्त्ववेत्ता भए हैं, सो अपने प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, अरु जिनको शरीरविषे अभिमान है सो मृतकसमान है ॥ हे रामजी ! इस जीवको चित्तने दीन किया है, ज्यों ज्यों चित्त बड़ा होता है, त्यों त्यों इसको दुःख होता है, अरु जिसका चित्त क्षीण भया है, तिसको कल्याण हुआ है, जब आत्मभाव अनात्मविषे दृढ़ होता है, अरु भोगोंकी तृष्णा होती है, तब चित्त बड़ा हो जाता है, अरु आत्मपदते दूर पडता है, जैसे बड़े मेघके आवरणकरि सूर्य नहीं भासता तैसे अनात्मा अभिमानकरि आत्मा नहीं भासता, अरु जब भोगोंकी तृष्णा निवृत्त हो जाती है, तब चित्त क्षीण हो जाता है, जैसे वसंतऋतुके गएते पत्र कृश हो जाते हैं, तैसे भोगवासनाके अभावते चित्त कृश हो जाता है ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी सर्प है, दुर्वासनारूपी दुर्गंध अरु भोगरूपी वायुकरि शरीरविषे दृढ आस्थारूपी मृत्तिका स्थानकरि बडा हो जाता है, तिन पदार्थोंकरि जब बडा भया, तब मोहरूपी विषकरि इसको मारता है ॥ हे रामजी ! ऐसे दुष्ट चित्तरूपी सर्पको जब मारे, तब कल्याण होवे, देहविषे जो आत्म अभिमान हो गया है, अरु भोगोंकी तृष्णा फुरती है, अरु मोहरूपी विष चढि गया है, जब विचाररूपी गरुडमन्त्रको चितवता रहे, तब विष उतरि जावे, और उपाय विष उतारनेको कोई नहीं ॥ हे रामजी ! अनात्माविषे आत्माभिमान, अरु पुत्र दारा आदिकविषे ममत्व, इसकरि चित्त बड़ा हो जाता है, अहंकाररूपी विकारकरि नष्ट करु, जब चित्तरूपी सर्प नष्ट हुआ, तब आत्मरूपी निधि प्राप्त होवेगी ॥ हे रामजी ! यह चित्त शास्त्रोंकरि काटा नहीं जाता अरु अग्निकरि जलता नहीं न और किसी उपायकरि नाश होता है, एक साधुसंग अरु सच्छास्त्रोंके विचार अभ्यासकरि नाश हो जाता है, और किसी उपायकरि नष्ट नहीं होता ॥ हे रामजी ! यह चित्तरूपी गडेका मेघ है, सो बड़ा दुःखदायक है, अरु भोगोंकी तृष्णारूपी बिजली इसविषे चमकती है, अरु जदा वर्षा होती है, तदा क्रोधरूपी नेत्र अरु

शमदमरूपी कमल नाश होता है, जब विचाररूपी मित्र होवै, तब शान्त हो जावै॥ हे रामजी! चित्तकी जो चपलता है, तिसको असंकल्प करिके त्यागहु, जैसे ब्रह्मास्त्रकरिके ब्रह्मास्त्रको छेदिता है, तैसे मनसाथ मनको छेदहु, अर्थ यह कि, अंतर्मुखी कर स्थित करहु, जब तेरा चित्तरूपी वानर स्थित होवै तब शरीररूपी वृक्ष क्षोभते रहित होवैगा॥ हे रामजी! शुद्ध बोधकरिके मनको जीतो, यह जगत् तृणाते भी तुच्छ है, तिसके पारको प्राप्त होहु॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राघवसेवनवर्णनं ना[म] सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ ४७॥

अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४८.

उद्दालकविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह जो मनकी वृत्ति है, सो इष्ट अनिष्टको ग्रहण करती है, अरु खड्गकी धारावत् तीक्ष्ण है, इसनिमित्त तू प्रीति मत कर, इसको मिथ्या जानिकरि त्याग कर॥ हे रामजी! बोधरूपी वल्ली शुभ क्षेत्र अरु शुभ कालकरिके प्राप्त भई है, तिसको विवेकरूपी जलकरि सींचिये, तब परमपदकी प्राप्ति होवै॥ हे रामजी! जबलग शरीर मलिनताको प्राप्त नहीं भया है, अरु जबलग पृथ्वीपर नहीं गिरा, तबलग बुद्धिको उदारकरि संसारते मुक्त होउ, मैं तुझको वचन कहे तिनको तैंने जाने है, इनका दृढ अभ्यास करै तब दृश्य भ्रम निवृत्त हो जावैगा॥ हे रामजी! यह पंच भूतका शरीर जो तुझको भासता है, सो तेरा रूप नहीं, तू शुद्ध चेतनरूप है, शुद्ध बोध विचार करिके अनात्मा पंचभूतके अभिमानको त्यागहु॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! किस क्रम अरु किस प्रकार इनका अभिमान त्यागिकरि उद्दालक मुनी भया है?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! पूर्व जैसे उद्दालक भूतोंके समूहका विचारकरिके परमपदको प्राप्त भया है, सो तू श्रवण कर॥ हे रामजी! जगत्‌रूपी जीर्ण घर है, तिसके पार्श्वकोणविषे एक देश है तहां बहुत पर्वत अरु तमालादिक वृक्ष हैं, अरु महामणिनके स्थान हैं, ऐसे गंधमादन पर्वतपर

एक स्थल था, तिस स्थानविषे एक उद्दालक नाम ब्राह्मण था, सो बुद्धिवान् मान करनेयोग्य विद्वान् था, परंतु अर्ध प्रबुद्ध था, काहेते परमपद तिसने पाया न था, ऐसा जो ब्राह्मण सो यौवन अवस्थाके पूर्वही शुभेच्छाकरिकै यम नियम तपको शास्त्रोयुक्त साधतभया, तब तिसके चित्तविषे यह विचार उत्पन्न हुआ कि, जिसके पाएते बहुरि कछु पावने योग्य न रहै, अरु जिस पदविषे विश्राम पाएते बहुरि शोक न होवै, अरु जिसके पाएते बहुरि जन्मसाथ बंधन न होवै ॥ हे देव! ऐसा पद मुझको कब प्राप्त होवैगा, अरु कब मैं मनके मननभावको त्यागिकरि विश्रांतिवान् होऊंगा? जैसे मेघ भ्रमणको त्यागिकरि पहाड़के शिखरमें विश्रांति करता है, अरु चित्तकी दृश्यरूप वासना मेरी कब मिटि जावैगी, जैसे तरंगते रहित समुद्र शांतिवान् होता है तैसे मनके संकल्प विकल्पते रहित शांतिवान् होवैगा, अरु तृष्णारूपी नदी है, सो बोधरूपी बेडी सत्संग अरु सच्छास्त्ररूपी मलाह करिकै कब तरि जाऊंगा, अरु चित्तरूपी हस्ती जो अभिमानरूपी मदकरि उन्मत्त है, तिसको विवेकरूपी सिंहकरि कब मारूंगा? अरु ज्ञानरूपी सूर्यकरि अज्ञानरूपी अंधकारको कब नष्ट करौंगा, जिसकरि चित्तरूपी घूघ जगत्‌ते अंध होवै, हे देव! सब आरंभोंको त्यागिकरि अलेप अकर्ता कब होउंगा, जैसे जलविषे कमल अलेप रहता है, तैसे मुझको कर्म स्पर्श न करै, अरु परमार्थरूपी भासुर वपु मेरा कब उदय होवैगा जिसकरि मैं जगत्‌की गतिको हसौंगा अरु अंतर तोषको पाऊंगा, विराट् आत्मा पूर्ण बोधकी नाईं होऊं वह समय कब होवैगा, कि मैं जन्मोंके अंधको ज्ञानरूपी नेत्र कर प्राप्त होऊंगा, जिसकरि मैं परम बोधपदको देखौंगा, अरु वह समय कब होवैगा, जो मेरा चित्तरूपी मेघ वासनारूपी वायुते रहित आत्मरूपी सुमेरु पर्वतविषे स्थित होइकरि शांतिवान् होउंगा, अज्ञानदशा कब जावैगी, ज्ञानदशा कब प्राप्त होवैगी, अरु वह समय कब होवैगा, जो मन काया प्रकृतियोंको देखिकरि मैं हँसौंगा, अरु वह समय कब होवैगा जो जगत्‌के कर्म बालककी चेष्टावत् मिथ्या जानौंगा, अरु जगत मुझको सुषुप्तिकी नाईं हो जावैगा, अरु वह समय कब होवैगा, जो पत्थरकी शिलावत् मुझको निर्वि-

शमदमरूपी कमल नाश होता है, जब विचाररूपी मंत्र होवै, तब शांत हो जावै ॥ हे रामजी । चित्तकी जो चपलता है, तिसको असंकल्प करिकै त्यागहु, जैसे ब्रह्मास्त्रकरिकै ब्रह्मास्त्रको छेदिता है, तैसे मनसाथ मनको छेदहु, अर्थ यह कि, अंतर्मुखी कर स्थित करहु, जब तेरा चित्तरूपी वानर स्थित होवै तब शरीररूपी वृक्ष क्षोभते रहित होवैगा ॥ हे रामजी ! शुद्ध बोधकरिकै मनको जीतौ, यह जगत् तृणाते भी तुच्छ है, तिसके पारको प्राप्त होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राघवसेवनवर्णनं ना म सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्ग ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४८.

उद्दालकविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी । यह जो मनकी वृत्ति है, सो इष्ट अनिष्टको ग्रहण करती है, अरु खड्गकी धारावत् तीक्ष्ण है, इसविषे तू प्रीति मत कर, इसको मिथ्या जानिकरि त्याग कर ॥ हे रामजी । बोधरूपी वल्ली शुभ क्षेत्र अरु शुभ कालकरिकै प्राप्त भई है, तिसको विवेकरूपी जलकरि सींचिये, तब परमपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी । जबलग शरीर मलिनताको प्राप्त नहीं भया है, अरु जबलग पृथ्वीपर नहीं गिरा, तबलग बुद्धिको उदारकरि संसारते मुक्त होहु, मैं तुझको वचन कहे तिनको तैंने जाने है, इनका दृढ अभ्यास करे तब दृश्य भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ हे रामजी । यह पंच भूतका शरीर जो तुझको भासता है, सो तेरा रूप नहीं, तू शुद्ध चेतनरूप है, शुद्ध बोद्ध विचार करिकै अनात्मा पंचभूतके अभिमानको त्यागहु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! किस क्रम अरु किस प्रकार इनका अभिमान त्यागिकरि उद्दालक सुखी भया है ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी । पूर्व जैसे उद्दालक भूतोंके समूहका विचारकरिकै परमपदको प्राप्त भया है, सो तू श्रवण कर ॥ हे रामजी ! जगतरूपी जीर्ण घर है, तिसके वायव्यकोणविषे एक देश है तहां बहुत पर्वत अरु तमालादिक वृक्ष हैं, अरु महामाणिनके स्थान हैं, ऐसे गंधमादन पर्वतपर

एक स्थल था, तिस स्थानविषे एक उद्दालक नाम ब्राह्मण था, सो बुद्धिवान् मान करनेयोग्य विद्वान् था, परंतु अर्ध प्रबुद्ध था, काहेते परमपद तिसने पाया न था, ऐसा जो ब्राह्मण सो यौवन अवस्थाके पूर्वही शुभेच्छाकरिकै यम नियम तपको शास्त्रोंयुक्त साधतभया, तब तिसके चित्तविषे यह विचार उत्पन्न हुआ कि, जिसके पाएते बहुरि कछु पावने योग्य न रहै, अरु जिस पदविषे विश्राम पाएते बहुरि शोक न होवै, अरु जिसके पाएते बहुरि जन्मसाथ बंधन न होवै ॥ हे देव! ऐसा पद मुझको कब प्राप्त होवैगा, अरु कब मै मनके मननभावको त्यागिकरि विश्रांतिवान् होऊंगा? जैसे मेघ भ्रमणको त्यागिकरि पहाड़के शिखरमें विश्रांति करता है, अरु चित्तकी दृश्यरूप वासना मेरी कब मिटि जावैगी, जैसे तरंगते रहित समुद्र शांतिवान् होता है तैसे मनके संकल्प विकल्पते रहित शांतिवान् होवैगा, अरु तृष्णारूपी नदी है, सो बोधरूपी बेडी सत्संग अरु सच्छास्त्ररूपी मलाह करिकै कब तरि जाऊंगा, अरु चित्तरूपी हस्ती जो अभिमानरूपी मदकरि उन्मत्त है, तिसको विवेकरूपी सिंहकरि कब मारूंगा? अरु ज्ञानरूपी सूर्यकरि अज्ञानरूपी अंधकारको कब नष्ट करौंगा, जिसकरि चित्तरूपी घूक जगत्‌ते अंध होवै, हे देव! सब आरंभोंको त्यागिकरि अलेप अकर्त्ता कब होउंगा, जैसे जलविषे कमल अलेप रहता है, तैसे मुझको कर्म स्पर्श न करै, अरु परमार्थरूपी भासुर वपु मेरा कब उदय होवैगा जिसकरि मैं जगत्‌की गतिको हसौंगा अरु अंतर तोषको पाऊंगा, विराट् आत्मा पूर्ण बोधकी नाईं होऊं वह समय कब होवैगा, कि मैं जन्मोंके अंधको ज्ञानरूपी नेत्र कर प्राप्त होऊंगा, जिसकरि मैं परम बोधपदको देखौंगा, अरु वह समय कब होवैगा, जो मेरा चित्तरूपी मेघ वासनारूपी वायुते रहित आत्मरूपी सुमेरु पर्वतविषे स्थित होइकरि शांतिवान् होवैगा, अज्ञानदशा कब जावैगी, ज्ञानदशा कब प्राप्त होवैगी, अरु वह समय कब होवैगा, जो मन काया प्रकृतियोंको देखिकरि मैं हसौंगा, अरु वह समय कब होवैगा जो जगतके कर्म बालककी चेष्टावत् मिथ्या जानौंगा, अरु जगत् मुझको सुषुप्तिकी नाईं हो जावैगा, अरु वह समय कब होवैगा, जो पत्थरकी शिलावत मुझको निर्वि-

शमदमरूपी कमल नाश होता है, जब विचाररूपी मन्न होवै, तब शांत हो जावै॥ हे रामजी! चित्तकी जो चपलता है, तिसको असकल्प करिकै त्यागहु, जैसे ब्रह्मास्त्रकरिकै ब्रह्मास्त्रको छेदिता है, तैसे मनसाथ मनको छेदहु, अर्थ यह कि, अतर्मुखी कर स्थित करहु, जब तेरा चित्तरूपी वानर स्थित होवै तब शरीररूपी वृक्ष क्षोभते रहित होवैगा॥ हे रामजी! शुद्ध बोधकरिकै मनको जीतौ, यह जगत् तृणाते भी तुच्छ है, तिसके पारको प्राप्त होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राघवसेवनवर्णनं ना म सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्ग ४८.

उद्दालकविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह जो मनकी वृत्ति है, सो इष्ट अनिष्टको ग्रहण करती है, अरु खड्गकी धारावत् तीक्ष्ण है, इसविषे तू प्रीति मत कर, इसको मिथ्या जानिकरि त्याग कर॥ हे रामजी! बोधरूपी वल्ली शुभ क्षेत्र अरु शुभ कालकरिकै प्राप्त भई है, तिसको विवेकरूपी जलकरि सींचिये, तब परमपदकी प्राप्ति होवै॥ हे रामजी! जबलग शरीर मलिनताको प्राप्त नहीं भया है, अरु जबलग पृथ्वीपर नहीं गिरा, तबलग बुद्धिको उदारकरि संसारते मुक्त होहु, मैं तुझको वचन कहे तिनको तैंने जाने है, इनका दृढ अभ्यास करै तब दृश्य भ्रम निवृत्त हो जावैगा॥ हे रामजी! यह पंच भूतका शरीर जो तुझको भासता है, सो तेरा रूप नहीं, तू शुद्ध चेतनरूप है, शुद्ध बोद्ध विचार करिकै अनात्मा पंचभूतके अभिमानको त्यागहु॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! किस क्रम अरु किस प्रकार इनका अभिमान त्यागिकरि उद्दालक सुखी भया है?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! पूर्व जैसे उद्दालक भूतोंके समूहका विचारकरिकै परमपदको प्राप्त भया है, सो तू श्रवण कर॥ हे रामजी! जगतरूपी जीर्ण घर है, तिसके वायव्यकोणविषे एक देश है तहां बहुत पर्वत अरु तमालादिक वृक्ष है, अरु महामणिनके स्थान है, देसे गंधमादन पर्वतपर

एक स्थल था, तिस स्थानविषे एक उद्दालक नाम ब्राह्मण था, सो बुद्धिवान् मान करनेयोग्य विद्वान् था, परंतु अर्ध प्रबुद्ध था, काहेते परमपद तिसने पाया न था, ऐसा जो ब्राह्मण सो यौवन अवस्थाके पूर्वही शुभेच्छाकरिकै यम नियम तपको शास्त्रोंयुक्त साधतभया, तब तिसके चित्तविषे यह विचार उत्पन्न हुआ कि, जिसके पाएते बहुरि कछु पावने योग्य न रहे, अरु जिस पदविषे विश्राम पाएते बहुरि शोक न होवै, अरु जिसके पाएते बहुरि जन्मसाथ बंधन न होवै ॥ हे देव! ऐसा पद मुझको कब प्राप्त होवैगा, अरु कब मैं मनके मननभावको त्यागिकरि विश्रांतिवान् होऊंगा? जैसे मेघ भ्रमणको त्यागिकरि पहाड़के शिखरमें विश्रांति करता है, अरु चित्तकी दृश्यरूप वासना मेरी कब मिटि जावैगी, जैसे तरंगते रहित समुद्र शांतिवान् होता है तैसे मनके संकल्प विकल्पते रहित शांतिवान् होवैगा, अरु तृष्णारूपी नदी है, सो बोधरूपी बेडी सत्संग अरु सच्छास्त्ररूपी मलाह करिकै कब तरि जाऊंगा, अरु चित्तरूपी हस्ती जो अभिमानरूपी मदकरि उन्मत्त है, तिसको विवेकरूपी सिंहकरि कब मारूंगा? अरु ज्ञानरूपी सूर्यकरि अज्ञानरूपी अंधकारको कब नष्ट करौंगा, जिसकरि चित्तरूपी घूघ जगत्‌ते अंध होवै, हे देव! सब आरंभोंको त्यागिकरि अलेप अकर्त्ता कब होऊंगा, जैसे जलविषे कमल अलेप रहता है, तैसे मुझको कर्म स्पर्श न करें, अरु परमार्थरूपी भासुर वपु मेरा कब उदय होवैगा जिसकरि मैं जगत्‌की गतिको हसौंगा अरु अंतर तोषको पाऊंगा, विराट् आत्मा पूर्ण बोधकी नाईं होऊं वह समय कब होवैगा, कि मैं जन्मोंके अंधको ज्ञानरूपी नेत्र कर प्राप्त होऊंगा, जिसकरि मैं परम बोधपदको देखौंगा, अरु वह समय कब होवैगा, जो मेरा चित्तरूपी मेघ वासनारूपी वायुते रहित आत्मरूपी सुमेरु पर्वतविषे स्थित होइकरि शांतिवान् होवैगा, अज्ञानदशा कब जावैगी, ज्ञानदशा कब प्राप्त होवैगी, अरु वह समय कब होवैगा, जो मन काया प्रकृतियोंको देखिकरि मैं हँसौंगा, अरु वह समय कब होवैगा जो जगत्‌के कर्म बालककी चेष्टावत् मिथ्या जानौंगा, अरु जगत मुझको सुषुप्तिकी नाईं हो जावैगा, अरु वह समय कब होवैगा, जो पत्थरकी शिलावत मुझको निर्वि-

कल्प समाधि लगैगी, अरु शरीररूपी वृक्षविषे पक्षी आलय करैंगे,निः संग होइकरि छातीपर आनि बैठेंगे॥ हे देव! वह समय कब होवैगा जो इष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्तिते मेरे चित्तकी वृत्ति चलायमान् न होवैगी, अरु विराट्की नाई सर्वात्मा होऊंगा, अरु वह समय कब आवैगा, जो मेरा सम असम आकार शांत हो जावैगा, सब अर्थोंते निरिच्छितरूप मैं हो जाऊंगा, अरु कब मैं उपशमको प्राप्त होऊंगा, जैसे मंदराचलते रहित क्षीरसमुद्र शांतिवान् होता है कब मै अपना चेतन वपु पाइकरि शरीरको अशरीरवत देखौंगा, अरु कब मेरी पूर्ण चिन्मात्र वृत्ति होवैगी, अरु कब मेरी बाहर अंतर सब कलना शांत हो जावैंगी, अरु संपूर्ण चिन्मात्रही मेरे ताईं भान होवैगा, अरु मै ईहता अरु ग्रहणत्यागते रहित कब संतोषको प्राप्त होऊंगा, अपने स्वप्रकाशविषे स्थित होइकरि संसाररूपी नदीके जरामरणरूपी तरंगोंते रहित कब होऊंगा, अरु अपने स्वभावविषे स्थित कब होऊंगा॥ हे रामजी! ऐसे विचारिकरि उद्दालक चित्तको ध्यानविषे जोड़ने लगा, परंतु चित्तरूपी वानर दृश्यकी ओर निकसि जावै, स्थित न होवै, बहुरि ध्यानविषे जोड़ै, बहुरि भोगोंकी ओर निकसि जावै, जैसे वानर ठहरता नहीं, तैसे चित्त ठहरै नहीं, जो बाहर विषयोंको त्यागिकरि चित्तको अंतर्मुख किया तब अंतर जो दृष्टि आई तौ भी विषयोंको चिंतवने लगा, निर्विकल्प होवै नहीं, जब रोक राखै, तब सुषुप्तिविषे लीन हो जावै, सुषुप्ति अरु लय जो निद्रा है, तिसहीविषे चित्त रहता है, तब वहांते उठिकरि और स्थानको चला, जैसे सूर्य सुमेरुकी प्रदक्षिणाको चलता है, तब गंधमादन पर्वतकी एक कंदराविषे स्थित भया, कैसा पर्वत जो फूलोंसंयुक्त सुंदर अरु पशु पक्षी मृगोंते रहित ऐसा एकांत स्थान है, जो देवतोंको भी देखना कठिन है, अरु तहां अत्यंत प्रकाश भी नहीं, अरु अत्यंत तम भी नहीं, न अत्यंत उष्ण है, न शीत है, जैसे मधुर कार्त्तिक होता है, निर्भय एकांत स्थान जैसे मोक्षपदवी निर्भय एकांतरूप होती है, तैसे तिस पर्वतविषे कुटी बनाई वनदेवका स्थान अथवा सिद्धका भी होवै, परंतु औरको गम नहीं, तिस कुटीविषे तमालपत्र अरु कमलोंका आसन करिकै ऊपर

मृगछाला बिछाइ तिसकेऊपर बैठिकरि सब कामनाका त्याग किया, जैसे ब्रह्माजी जगत्को उपजाइकरि छाड़ बैठे तैसे सब कलनाको त्यागिकरि पद्मासन बाधा, अरु विचार करने लगा, अरे मूर्ख मन ! तू कहां जाता है, यह ससार मायामात्र है, एता काल तू जगत्विषे भटकता रहता है, कहू तुझको शांति प्राप्त न भई, काहेते कि, वृथा धावता है ॥ हे मूर्ख ! मन उपशमको त्यागिकरि भोगोंकी ओर धावता है, सो अमृतको त्यागिकरि विषका बीज बोवता हैं, यह सब तेरी चेष्टा दु खोंके निमित्त है, जैसे घुराण अपना घर बनाइकरि आपहीको बधन करती है, तैसे तू आपको आप सकल्प उठाइकरि बधन करता है, अब तु सकल्पके ससर्गको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, जो तुझको शांति प्राप्त होवै ॥ हे मन ! जिह्वासे मिलिकरि जो तू शब्द करता है, सो दर्दुरके शब्दवत् व्यर्थ है, जब श्रवणोंसे मिलिकरि श्रवण करता है, तब शुभाशुभ वाक्य ग्रहण करिकै मृगकी नाईं तू नष्ट होता है, अरु त्वचासे मिलिकरि जो तू स्पर्शकी इच्छा करता है, सो हस्तीकी नाईं नाश होता है, अरु रसनाके स्वादकी जो इच्छा करता है, सो मच्छीकी नाईं नाश होता है, अरु गध लेनेकी तू इच्छा करता है, सो भँवरेकी नाईं नाश हो जावैगा, जैसे भँवरा सुगधिके निमित्त फूलविषे फँसि मरता है, तैसे तू फँसि मरैगा, अरु सुदर स्त्रियोंकी वाछा करता है, सो पतगकी नाईं जलि मरैगा ॥ हे मूर्ख मन ! जो एक एक इंद्रियका स्वाद लेते है, सो भी नाश पाते हैं, तू तो पंचविषयके सेवनेवाला है, नाश क्यों न होवैगा, ताते तू इनकी इच्छा त्याग, जो तुझको शाति प्राप्त होवै, जो इन भोगोंकी इच्छा न त्यागैगा, तौ मही तुझको त्याग छोडौंगा, तू तौ मिथ्या असत्यरूप है, तुझसे मेरा क्या प्रयोजन है, विचार करि मै तेरा त्याग करता हौं ॥ हे मूर्ख मन ! जो तू देहविषे अह अहं करता है, सो तेरा अह किस पदार्थविषे है, अगुष्टते लेइकरि मस्तकपर्यंत अह वस्तु कछु नहीं, यह शरीर तो अस्थि मांस रक्तका थेला है यह तो अहंरूप है नहीं, अरु श्वास जो है, सो वायुरूप है, अरु पोल आकाशरूप है, यह पंचतत्त्वोंका जो शरीर बना है, तिसविषे अहरूप वस्तु तौ कछु नहीं है।

कल्प समावि लगैगी, अरु शरीररूपी वृक्षविषे पक्षी आलय करैंगे,निसंग होइकरि छातीपर आनि बैठैंगे ॥ हे देव! वह समय कब होवैगा जो इष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्तिते मेरे चित्तकी वृत्ति चलायमान् न होवैगी, अरु विराट्की नाई सर्वात्मा होऊंगा, अरु वह समय कब आवैगा, जो मेरा सम असम आकार शांत हो जावैगा, सब अर्थोंते निरिच्छितरूप मैं हो जाऊंगा, अरु कब मैं उपशमको प्राप्त होऊंगा, जैसे मंदराचलते रहित क्षीरसमुद्र शांतिवान् होता है कब मैं अपना चेतन वपु पाइकरि शरीरको अशरीरवत् देखौंगा, अरु कब मेरी पूर्ण चिन्मात्र वृत्ति होवैगी, अरु कब मेरी बाहर अंतर सब कलना शांत हो जावैगी, अरु संपूर्ण चिन्मात्रही मेरे ताई भान होवैगा, अरु मैं ईहता अरु ग्रहणत्यागते रहित कब संतोषको प्राप्त होऊंगा, अपने स्वप्रकाशविषे स्थित होइकरि संसाररूपी नदीके जरामरणरूपी तरंगोंते रहित कब होऊंगा, अरु अपने स्वभावविषे स्थित कब होऊंगा ॥ हे रामजी! ऐसे विचारिकरि उद्दालक चित्तको ध्यानविषे जोड़ने लगा, परंतु चित्तरूपी वानर दृश्यकी ओर निकसि जावै, स्थित न होवै, बहुरि ध्यानविषे जोड़ै, बहुरि भोगोंकी ओर निकसि जावै, जैसे वानर ठहरता नहीं, तैसे चित्त ठहरै नहीं, जो बाहर विषयोंको त्यागिकरि चित्तको अंतर्मुख किया तब अंतर जो दृष्टि आई तौ भी विषयोंको चिंतवने लगा, निर्विकल्प होवै नहीं, जब रोंक राखै, तब सुषुप्तिविषे लीन हो जावै, सुषुप्ति अरु लय जो निद्रा है, तिसहीविषे चित्त रहता है, तब वहांते उठिकरि और स्थानको चला, जैसे सूर्य सुमेरुकी प्रदक्षिणाको चलता है, तब गंधमादन पर्वतकी एक कंदराविषे स्थित भया, कैसा पर्वत जो फूलोंसंयुक्त सुंदर अरु पशु पक्षी मृगोंते रहित ऐसा एकांत स्थान है, जो देवतोंको भी देखना कठिन है, अरु तहां अत्यंत प्रकाश भी नहीं, अरु अत्यंत तम भी नहीं, न अत्यंत उष्ण है, न शीत है, जैसे मधुर कार्तिक होता है, निर्भय एकांत स्थान जैसे मोक्षपदवी निर्भय एकांतरूप होती है, तैसे तिस पर्वतविषे कुटी बनाई वनदेवका स्थान अथवा सिद्धका भी होवै, परंतु औरकी गम नहीं, तिस कुटीविषे तमालपत्र अरु कमलोंका आसन करिकै ऊपर

मृगछाला बिछाइ तिसकेऊपर बैठिकरि सब कामनाका त्याग किया, जैसे ब्रह्माजी जगतको उपजाइकरि छांड़ बैठे तैसे सब कलनाको त्यागिकरि पद्मासन बांधा, अरु विचार करने लगा, अरे मूर्ख मन ! तू कहां जाता है, यह संसार मायामात्र है, एता काल तू जगतविषे भटकता रहता है, कहू तुझको शांति प्राप्त न भई, काहेते कि, वृथा धावता है ॥ हे मूर्ख ! मन उपशमको त्यागिकरि भोगोंकी ओर धावता है, सो अमृतको त्यागिकरि विषका बीज बोवता है, यह सब तेरी चेष्टा दुःखोंके निमित्त है, जैसे घुराण अपना घर बनाइकरि आपहीको बंधन करती है, तैसे तू आपको आप संकल्प उठाइकरि बंधन करता है, अब तू संकल्पके संसर्गको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, जो तुझको शांति प्राप्त होवै ॥ हे मन ! जिह्वासे मिलिकरि जो तू शब्द करता है, सो दर्दुरके शब्दवत् व्यर्थ है, जब श्रवणोंसे मिलिकरि श्रवण करता है, तब शुभाशुभ वाक्य ग्रहण करिके मृगकी नाईं तू नष्ट होता है, अरु त्वचासे मिलिकरि जो तू स्पर्शकी इच्छा करता है, सो हस्तीकी नाईं नाश होता है, अरु रसनाके स्वादकी जो इच्छा करता है, सो मच्छीकी नाईं नाश होता है, अरु गंध लेनेकी तू इच्छा करता है, सो भँवरेकी नाईं नाश हो जावैगा, जैसे भँवरा सुगंधिके निमित्त फूलविषे फँसि मरता है, तैसे तू फँसि मरैगा, अरु सुंदर स्त्रियोंकी वांछा करता है, सो पतंगकी नाईं जलि मरैगा ॥ हे मूर्ख मन ! जो एक एक इंद्रियका स्वाद लेते हैं, सो भी नाश पाते हैं, तू तौ पंचविषयके सेवनेवाला है, नाश क्यों न होवैगा, ताते तू इनकी इच्छा त्याग, जो तुझको शांति प्राप्त होवै, जो इन भोगोंकी इच्छा न त्यागैगा, तौ मैही तुझको त्याग छोडौंगा, तू तौ मिथ्या असत्यरूप है, तुझसे मेरा क्या प्रयोजन है, विचार करि मैं तेरा त्याग करता हौं ॥ हे मूर्ख मन ! जो तू देहविषे अहं अहं करता है, सो तेरा [illegible] र्थविषे है, अंगुष्ठते लेइकरि मस्तकपर्यंत अहं [illegible] रे तौ अस्थि मांस रक्तका थैला [illegible] त [illegible] है [illegible] है, सो वायुरूप है, अरु पोल [illegible] पंचतत्त्व [illegible] र बना है, तिसविषे अहंरूप

एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ४९.

उद्दालकविश्राति वर्णनम्।

उद्दालक उवाच ॥ आत्मा सूक्ष्मते सूक्ष्म है, अरु स्थूलते स्थूल है, शुद्ध निर्विकार शांतरूप है, सो मैं हौं, अचैत्य चिन्मात्र हौं, मेरेविषे विकार कोई नहीं, जेते कछु जन्म मरण आदिक विकार भासते हैं, सो आत्मविषे चित्तके कल्पे हैं, आत्माको कोई नहीं, जन्म तिसको कहते हैं जो पहिले न होवै, अरु पाछे उपजै, आत्मा तौ आगेही सिद्ध है बहुरि जन्म कैसे कहिये, अरु मृत्यु तिसको कहते हैं जो पाछे न होवै, पहले अभाव हो जावै, आत्मा तौ जगत्‌विषे अंत भी सिद्ध है, ताते सब विकारोंते रहित है, बहुरि मृत्यु प्रध्वंसाभाव कैसे कहिये। देहके आदि मध्य अंत तीनों काल सिद्ध हैं, ताते सब विकारोंते रहित है, सो चित्तके संयोगते विकारोंसहित भासता है ॥ हे चित्त! तेरे संयोगकरि मैं एते भ्रमको प्राप्त भया था, अरु शरीरविषे व्यर्थ अहं अहं होता है, सो जाना नहीं जाता कि, कौन है, शरीर तौ रक्तमांसका पिंड है, इंद्रिया मन आदिक सब जड है, अहं करनेवाला कौन है, जब अहं होता है, तब भाव अभाव पदार्थको ग्रहण करता है, जहां अहंका अभाव है, तहां भाव अभाव कैसे होवै, अहंकार झूठ है, इंद्रियां अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं, अरु मनादिकविषे भी अपने स्वभावविषे स्थित हैं यह अहं करनेवाला नहीं पाते कि, कौन है, अहंका रूप कछु नहीं पाते, ताते, निश्चय भया कि, सब पदार्थ झूठ है, अहंकार पदार्थ ग्रहण करनेवाला भी झूठ है, जेते कछु पदार्थ हैं सो अहंकारकरि होते हैं, मैं क्यों इनके साथ मिलिकरि देह इंद्रियोंके इष्ट अनिष्टविषे राग द्वेष करौं, इसका अरु मेरा संयोग तौ कछु नहीं, मैं तौ आत्मा निर्लेप अद्वैत हौं, संयोग किससे होवै, भावरूप वस्तु ब्रह्म है, सो मैं हौं, मेरा संयोग किससे होवै, यह तौ है नहीं, सब असत्यरूप है, अरु जो कहिये देहादिक है, तौ भी संयोग नहीं बनता, जैसे लोहे अरु वटेका संयोग नहीं होता, यह बड़ा आश्चर्य है कि, सबका अहं करनेवाला कौन था, यह मिथ्या अहंकार

अज्ञानकरिकै दुःखदायक था, जैसे अज्ञान करिकै बालकको वैताल भासिकरि दुःख देता है, तैसे अविचार करिकै दुःख होता है, जैसे पहाड़पर बादल स्थित होता है, सो पहाड़ बादल नहीं होता, अरु बादल पहाड़ नहीं होता तैसे आत्मा अनात्मा नही होता, अरु अनात्मा आत्मा नहीं होता, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासताहै,जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे अहंकार आत्माविषे भासता है, विचार कियेते अहंकार कछु नहीं निकसता जहां अहंकार होता है, तहां दुःख भी आय स्थित होता है, जैसे जहां मेघ होता है, तहां बिजली भी होती है, तैसे जहां अहंकार होता है, तहां शरीररूपी वृक्षकी मंजरी बढ़ती है, जैसे गरुडके विद्यमान् सर्प नहीं रहता, तैसे आत्मविचारके विद्यमान् अहंकार नहीं रहता, ताते चित्तादिक सब झूठ है, अज्ञानकरि भासते है, इनकरि रचा हुआ जगत् सत्य कैसे होवै ? यह जगत् अकारण है, ताते मिथ्या भ्रमकरिकै भासता है, जैसे भ्रांतिकरिकै आकाशविषे दूसरा चन्द्रमा भासता है, जैसे नौकाविषे बैठेते तटवृक्ष चलते है, जैसे गन्धर्वनगर भासता है, जब चित्त नष्ट होवै, तब सब भ्रमका अभाव हो जाता है, देहविषे जो अभिमान है, सो दुःखोंका कारण है, जबलग विचार नहीं उपजता, तबलग भासता है, जैसे बरफकी पुतली तबलग होती है, जबलग सूर्यका तेज नहीं लगा, जब सूर्यका तेज लगा, तब बरफकी पुतली गलि जाती है, जैसे बालकको भ्रमणेकरि पृथ्वी भ्रमती भासती है, तैसे चित्तके भ्रमकरि यह जगत् भासता है, अरु विचारके उपजेते अहंकार गलि जाता है ॥ हे मन ! तेरेसाथ मिलनेकरि बडा दुःख होता है, अरु तुझते रहित मैं आपको देखा है, अब तू सब इंद्रियोंसहित निर्वाण होहु आत्मविचारकरि आत्मअग्निविषे स्थित होहु, जो सब मल तेरा जलै, अरु शुद्धताको प्राप्त होवै, अरु इस देहसाथ तेरा मिलाप है, सो दुःखके निमित्त है, मन अरु देहके अंतरते आपसमें शत्रुभाव है, अरु बाहिरते स्नेह भासता है, अरु परस्पर नाश करनेकी इच्छा करते हैं, जो दुःख होता है, तौ मन इसके नाशकी इच्छा करता है, अरु देह कहती है, मन नाश होवै तौ मेरेविषे दुःख कोई नहीं, इसका मिलनाही दुःखका कारण है ॥ हे मूर्ख मन !

देहको तेरे संगकरि दुःख होता है, आपते इसविषे भी कोऊ नहीं, मनविषे देहका अभिमान न होवै, तौ भी दुःख कोई नहीं, इनके संयोगकरि दुःख होता है, अरु बिछुरनेकरि दुःख कछु नहीं, तैसे मन अरु देहविषे वियोग कछु नहीं, जैसे जहां अंगारेकी वर्षा होती है, तहां बुद्धिवान् नहीं रहते, तैसे इनविषे मिलकर हमको रहना योग्य नहीं ॥ हे मूर्ख मन ! जेता कछु दुःख तुझको होता है, सो देहके मिलापते होता है, इसकेसाथ तू किसनिमित्त मिलता है, अरु आपको सुख जानता है, इसके मिलनेकरि तुझको दुःखही होता है, परंतु ऐसा मूर्ख है, जो बार-बार देहकी ओरही दौडता है, तू सुख जानता है, अरु तेरा नाश होता है, जैसे पतंग दीपको सुखरूप जानिकरि मिलनेकी इच्छा करता है, अरु जल मरते हैं जैसे मच्छी मासकी इच्छा करती है, सो कंडीविषे फँस मरती है, तैसे तू देहकी इच्छा करता है, अरु नाशको प्राप्त होता है, ताते इसका अभिमान त्याग, जो तुझको शांति प्राप्त होवै, अरु देह कछु वस्तु नहीं, मनहीका विकार है, पंचतत्त्वोंकी देह बनी हुई है, सो भी कछु वस्तु नहीं, सब मनके फुरणेकरि रचे हैं, ताते फुरणको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु जो तुझको शांति प्राप्त होवै, अरु मैं तौ सबते अतीत शुद्ध चिदानंद स्वरूप हौं, मेरे पास न कोऊ मन है, न इंद्रियां हैं, मैं अद्वैतरूप हौं, जैसे राजाके समीपमें दोई नहीं होता, तैसे मेरे निकट मन इंद्रियां कोई नहीं, मैं शुद्ध आत्मतत्त्व हौं भोगोंसाथ मेरा क्या प्रयोजन है, जो इससाथ मिलिकरि दीनताको प्राप्त होऊं मुझको इनकेसाथ कछु प्रयोजन नहीं, चिरपर्यंत रहैं, अथवा अबहीं नष्ट हो जावैं, इनके नाश होनेकरि मेरा नाश नहीं होता, अरु रह-नेविषे प्रयोजन नहीं होता, इनते आपको भिन्न जाना है, जैसे तिलोंते तेल निकासि लिया तब बहुरि नहीं मिलता, अरु दूधते माखन निकास लिया तब बहुरि नहीं मिलता, तैसे विचार करिकै अपना आप काढि लिया, तब बहुरि इनके साथ नहीं मिलता, मैं शुद्ध चिदानंद आत्मा हौं, सब जगत् मेरे आश्रय है, सबविषे मैं एकही अनुस्यूत व्यापा हौं, अब तिस स्वरूपविषे स्थित होऊं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारि

करि उद्दालक ब्राह्मणने वृत्तिको विषयोते निवृत्त करिकै पद्मासन धारा, अरु प्रणव अर्धमात्रा अकार उकार मकार क्रमकरिके तिसकी उपासना करने लगा, प्राणायाम करिके मात्राका ध्यान करत भया, अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार शिव, अर्धमात्र तुरीया, इनको क्रमसहित करने लगा ॥ प्रथम रेचक प्राणायाम करने लगा, अकारकी ध्वनिसाथ रेचक करत भया तिसकरि सब प्राणवायु अंतरते निकसे तब अंतर शून्य अरु शुद्ध हुआ, जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रको शून्य किया था,तैसे अरु आकाशकरि ऐसी ध्वनि उचरी जो ब्रह्मा विष्णु रुद्रपर्यंत चली गई, अरु देह अभिमानको त्यागिकरि पुर्यष्टकाको सुषुम्नाके मार्गविषे प्राप्त किया जैसे पक्षी आलयको त्यागिकरि आकाशमार्गको उड़ताहै, तैसे उद्दालकने पुर्यष्टकाको ब्रह्मरंध्रविषे स्थित किया जबलग चित्त सुखेन रहा,तबलग स्थितरहा काहेते कि हठ करनेसो दुःख होता है, इसी कारणते जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थितरहा,जब थका तब पुर्यष्टकका वायु अधते आया,तब उकार विष्णुरूपकी ध्वनि अरु ध्यानसाथ कुंभक किया सब प्राणवायुको आधार चक्रविषे रोका न तलेको गमन करे, न ऊपरको गमन करे, तिसकरि प्राण स्थित सघट भए; तिसते अग्नि निकसी तिस अग्निकरि इसका पापपुण्यरूपी शरीर जलिगया, तिसविषे जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थित भया, काहेते कि, हठयोग दुःखदायक है, इस कारणते जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थित भया, बहुरि मकारकी ध्वनिसों रुद्रका ध्यान करिके पूरकप्राणायाम करत भया, पूरक प्राणायाम करिके सब स्थान वायुसों पूर्ण किये, ऊर्ध्वको चित्तकला प्राप्त भई अरु जिसका स्पर्श महाशीतल है, जैसा चन्द्रमाका मंडल शीतल है, तिसते अमृतकी वर्षा होती है, तिसकरि यह औरको पवित्र करनेहारा हुआ है, जैसे धुआ आकाशको जाता है, अरु जलको पाइकरि औरोंको शीतल करनेहारा होता है, तैसे इसका शरीर औरोंको पवित्र करनेहारा हुआ, जैसे मंदराचलकरिके मथा क्षीरसमुद्र तिसते कल्पवृक्ष निकसा तैसे इसके शरीरविषे प्राणवायु स्थित भया पद्मासन बांधिकरि इंद्रियोंको रोकता भया, जैसे हस्ती बंधनोंसाथ बंधता है; तैसे इंद्रियोंको रोकता भया,

अर्धमात्रा जो तुरीयापद है, तिसके दर्शननिमित्त यत्न करने लगा,नेत्रों-को अर्ध मूँदत भया, अरु बाह्य विषयोंका त्याग किया इंद्रियोंको भी त्यागकरि प्राण अपानको मूलचक्रविषे रोकता भया तिसकरि नवही द्वार रोके गए, जैसे बालकके खेलनेका पाणी चोर होता है. तिसके मुँदनेकरि चलता पाणी सब छिद्रोंते रोका जाता है, तैसे मूलचक्रके रोकनेकरि नव ही द्वार रोके गए इसप्रकार चित्तको रोकता भया जब मनरूपी चंचल मृग दौडे तब वैराग्य अरु अभ्यासके बलकरि बहुरि ले आवै जैसे पुल-करि जलका वेग रुकता है, तैसे चित्तको स्थित किया तब अंत:करणकी जो सात्विकी वृत्ति है, तिसको त्यागिकरि स्थित भया तब मनकी वृत्ति जो है, निद्रारूप जडता तिसविषे मन मूर्च्छित हो गया,जैसे सूर्य बादलों-विषे होवै तैसे निद्राविषे लीन हो गया तब राजस तामसका प्रवाह बहुरि फुरने लगा तिसको आत्मविवेककरि निवृत्त किया जैसे प्रकाशकरि तम-को निवृत्त करता है, तैसे यह विकल्परूपी तमको निवृत्त करता भया, विवेकके बलकरि चित्तकलाविषे लगाया तिसको चित्तकी वृत्तिकेसाथ साक्षात्कार किया, महाप्रकाशवान् अरु शांतिरूप तिसविषे एक क्षण चित्त स्थित रहा, बहुरि बाह्य निकसि गया जैसे पुलको तोडिकरि जल निकसि जाता है, तैसे निकसि गया, बहुरि अभ्यासके बलकरि आत्मकलाविषे लगाया, तब तिस परमपद शांत आत्मपदविषे चित्तकी वृत्ति स्थित भई, तहां परम आनद अमृतविषे मग्न भई, जो अशब्द आनदपरिणामते रहित है, तिसविषे स्थित हुआ, जिस पदविषे देवता ऋषीश्वर स्थित हैं, जिस पदविषे ब्रह्मा विष्णु रुद्र स्थित हैं, तिस पदविषे उद्दालक स्थित भया॥ हे रामजी। जो एक क्षण भी तिसविषे स्थित भया है, अरु जो वर्षपर्यंत स्थित भया है सो दोनों तुल्य हैं, जिसको तिस पदका अनुभव भया है, सो भोगोंकी इच्छा नहीं करता, जैसे जिसने स्वर्गका नंदनवन देखा है, सो करञ्जुएका वन देखनेकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् भोगोंकी वाञ्छा नहीं करता, अरु शोक कदाचित् नहीं उपजता, जैसे जिसको राज्य प्राप्त भया है, सो दीनताको प्राप्त नहीं होता, तैसे जिसने आत्मपदविषे स्थिति पाई है,

तिसको विषयोंकी तृष्णा अरु शोक नहीं उपजता ॥ हे रामजी ! इसप्रकार उद्दालक स्थित था, तब सिद्ध गंधर्व विद्याधरोंके समूह तिसके निकट आय प्राप्त भए, बडे तेजवान् अरु चंद्रमाकी नाईं मुख जिनके, सो आइकारि इसको नमस्कार करत भए, अरु कहा, हे भगवन् ! स्वर्गको चलौ, अरु दिव्य भोग भोगो, तुमने बडी तपस्या करी है, धर्म अर्थ पुण्यका सार काम है, अरु कामका सार जो स्त्रिया है, सो तुम्हारे भोगने निमित्त है, सो कैसी स्त्रियां है, विद्याधरियां महादेवमूर्त्ति स्वर्ग भी इन्होकारि शोभता है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरिया और पुष्पोंकारि पृथ्वी शोभती है, ताते तुम विमानोपर आरूढ होइकारि स्वर्गको चलो, बहुत कालपर्यंत भोग भोगो ॥ हे रामजी ! जब सिद्धोंने इसप्रकार बहुत कहा, तब उद्दालकने तिनको अतिथि जानिकारि निरादर न किया; यथायोग्य पूजा करिकै कहत भया, हे सिद्धो ! तुमको नमस्कार है, तुम जाओ, तिसकी सिद्धताविषे आसक्त न भया, काहेते कि, परमानंदविषे स्थित रहा, विषयोंके सुख तुच्छ जानता भया, जैसे अमृत खाने वाला विषकी इच्छा नहीं करता, तैसे उद्दालक विषयोंके सुखको न चाहता भया, तब कछुक दिन रहि सिद्ध पूजते भये, बहुरि उठि गए, यह परमपदविषे स्थित भया, तिस पदविषे स्थित हो अपने प्रकृत व्यवहारको करता भया, मेरुपर्वत मंदराचल पर्वतविषे विचरा, कंदराविषे ध्यान कर बैठे, कहूं एक दिन बैठा रहे, कहूं वर्षोंके समूह बीति जावें, इसप्रकार समाधि करिकै उतरा, तब समाधि हो गई, हे रामजी ! चित्त तत्त्वज्ञ अभ्यासकारिकै महाचेतन तत्त्वको प्राप्त होता है, अरु दिशाविषे जैसे चित्रका सूर्य होता है, तैसे उदय अस्तते रहित हुआ उपशम परमपदको पाया, अरु चित्त भली प्रकार शांत हो गया, अरु जन्मरूपी फाँसीको तोडत भया, अरु देहरूपी भ्रम क्षीण हो गया, शरत्कालके आकाशवत् निर्मल भया, अरु निरावृत उत्कृष्ट प्रकाशरूप उद्दालकका वपु हो गया, अरु सत्तासामान्यविषे स्थित होइकारि विचरने लगा, परम शांतिको प्राप्त भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकविश्रांतिवर्णनं नाम एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमः सर्गः ५०.

उद्दालकनिर्वाण वर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे आत्मरूप ज्ञानदिनके प्रकाशकर्त्ता सूर्य ! हे संशयरूपी तृणोंके जलावनेहारे अग्नि ! हे अज्ञानरूपी तापोंके शांतकर्त्ता चन्द्रमा हे ईश्वर वसिष्ठजी ! सत्तासामान्यका रूप क्या है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जगत्के अत्यंत अभावकी भावना करिकै जब चित्त क्षीण हो जावै तिसते शेप जो रहै, सो सत्तासामान्य है, जब चित्तते रहित आत्मसत्ता होवै, जिसविषे चित्त लीन हो जावै, तब सत्तासामान्य उदय हो आवै, जो असत्यकी नाई स्थित है, सो सत्तासामान्य है ॥ हे रामजी ! जब सब इन्द्रियां प्रपंच शांत हो जावैं, अरु शुद्ध बोध रहै, अंतर बाहरका व्यवधान मिटि जावै, सब जगत् एकरूप हो जावै, समाधि अरु उत्थान एक जैसा हो जावै, ऐसी दशाकी जो प्राप्ति है सो सत्तासामान्य है, सो देहके होतेही विदेहरूप है, तिसको तुरीयातीतपद कहते हैं, समाधिविषे स्थित होवै, तौ भी केवलरूप है, उत्थान होवै, तौ भी केवलरूप है, अरु अज्ञानी जो है, तिसको समाधि उत्थान तुल्य नहीं होता, काहेते कि, ज्ञानते उपजी समाधि तिसको नहीं प्राप्त भई, जो जीवन्मुक्त पुरुष है, हमते आदि लेकरि जिनको ज्ञानदृष्टि प्राप्त भई है, नारद देवर्षि ब्रह्मा विष्णु रुद्र आदिक और भी ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो सत्तासामान्यविषे स्थित हैं, तिनको समाधि अरु उत्थानविषे तुल्यता है, जैसे आकाशविषे पवनका चलना अरु ठहरना समान है, जैसे पृथ्वीविषे जल स्थित है, अरु अग्निविषे उष्णता स्थित है, तैसे सत्तासामान्यविषे स्थित है, तिस पदविषे स्थित होइकरि उद्दालक विचार करता था, जबलग जगतकोटरविषे विचरनेकी इच्छा थी, तबलग ऐसे विचरता रहा, जब विदेहमुक्त होनेकी इच्छा भई तब पहाड़के कंदराविषे पत्रोंका आसन बनाइकरि पद्मासन बांधा, बाह्य इन्द्रियोंके विषयोंका त्याग किया, दंतोंके साथ दन्तोंको मिलाइकरि सब संकल्पका त्याग किया, प्राणवायुको मूल आधार चक्र करिके नवोंही

द्वार खेचरी मुद्राकरि रोकत भया, न अंतर न बाहिर, न अध, न ऊर्ध्व, सर्व भावअभाव विकल्पको त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे चित्तकी वृत्तिको जोड़ता भया, तब शुद्ध चिन्मात्रविषे चित्तकी वृत्ति जाय प्राप्त भई, रोम खडे हो आए, तिस व्युत्थानको भी त्याग किया, तब सत्तासामान्य विश्वभर पदको प्राप्त भया, परम विश्रांति अनादि आनंद सुंदररूप हैं, तिस पदको प्राप्त हुआ, चिरकालकरिकै क्षीण मन भया, तब पुतलीकी नाईं शरीर हो गया, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल पदको प्राप्त भया, जिसते चित्त उपजा था, तिसविषे जाय लीन भया, जैसे सूर्यकी किरणोंद्वारा वृक्षविषे रस होता है, अरु सूर्यही खैंचि लेता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि तिसहीविषे लीन होते हैं, तैसे चित्त लीन हो गया अरु संकल्प संपूर्ण उपाधिविलासते रहित भया, तिस आनंदपदको प्राप्त भया, जिसविषे इंद्रादिकको आनंद तुच्छ भासता है, ऐसा विश्वभर आनंद जो उत्तम पुरुषोंकरि सेवने योग्य है, तिसको उद्दालक प्राप्त भया अद्वैत अशब्द सत्तासामान्य पदविषे स्थित भया, परम शांतिरूप होता भया, तब केतेक काल पीछे तिसका शरीर गिर पड़ा, जैसे रस सूखेते वृक्ष गिर पडता है, सूर्यकी किरणोंकरि सूखा हुआ शरीर वीणाकी नाईं होत भया, जैसे वीणा वाजती है, अरु तिसका शब्द प्रगट होता है, तैसे जब वायु चले, तब तिस शरीरविषे प्रवेश करि निकसेते शब्द प्रगट होता है, केतेक काल पीछेते देवतोंकी स्त्रिया अरु अश्विनीकुमारकी शक्ति आदिक आईं, महाअग्निकी नाईं जिनका प्रकाश है, अरु देव देवी हैं, सब देवतोंकरि पूज्य सो सखियोंसहित आइकरिकै गलेविषे सुंदर पुष्पोंकी माला पहिराई, अरु मोरके पुच्छवत् सुंदर करिकै तिसके आगे पूजा करि नृत्य करने लगीं, अरु लीलाकरिकै शोभती भईं ॥ हे रामजी ! उद्दालकके चित्तकी वृत्तिमें कलनाते रहित विवेकरूपी वल्ली प्रगट भई, तिसको आत्मानंदरूपी फल भया, और जिसके हृदयविषे ऐसे फूलोंकी सुगंधि स्थित होवै, सो भी सब भ्रमको तरि जावै, जिसको ऐसा विवेक प्राप्त होवै, सो सब भ्रमते मुक्त होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकनिर्वाणवर्णनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तमः सर्गः ५१.

ध्यानविचार वर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार उद्दालक ऋषीश्वर आत्मपदको प्राप्त भया है, तैसे क्रमकरिकै अपने आपको विचारकरिकै तू आत्मपदको प्राप्त होहु ॥ हे कमलनयन ! कर्तव्य यही है कि, गुरु अरु शास्त्रोंके वचनोंको धारिकरि जगत्भ्रमते मुक्त होहु, अरु आत्माभ्यासकरि शांतपदको प्राप्त होओ, प्रथम गुरु अरु शास्त्रोंके वाक्योंको समझिये, तिसकरि जो विषयभूत अर्थ है, तिसके अभ्यासविषे बुद्धिको लगाइये, इसप्रकार जब दृढता होवै, तब परमपदकी प्राप्ति होवै, अथवा एक बुद्धिविषे तीक्ष्ण अभ्यास होवै, कलंक कलनाते रहित ऐसा बोध होवै, अरु साधनादि सामग्रीते सहित होवै, अथवा वैराग्यादिक सामग्रीते रहित होवै तौ भी अविनाशी पदको प्राप्त होवै ॥ राम उवाच ॥ हे भूतभविष्यके ईश्वर ! एक ज्ञानवान् पुरुष समाधिविषे स्थित होता है, बहुरि जगत्व्यवहारविषे विचरता है, अरु एक समाधिविषे स्थित है, जगत्का व्यवहार नहीं करता, तिन दोनोंविषे श्रेष्ठ कौन है ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! प्रथम समाधिका लक्षण सुन कि, समाधि किसको कहते हैं, अरु व्युत्थान किसको कहते हैं सो सुन यह गुणोंका समूह अहंकारते लेकरि तत्त्वगुणात्मक है, जो इनको अनात्मरूप देखता है, अरु आपको केवल इनका साक्षी चेतन जानता है, अरु स्वाभाविक जिसका चित्त शीतल है, तिसको समाधि कहते हैं, जो मैत्री करुणा अमान्यता आदिक गुणकरि स्थित हुआ है, मन आत्मविषयकरि शांतिको प्राप्त होता है, तिसको समाधि कहते हैं ॥ हे रामजी ! जिसको ऐसा निश्चय होता है कि, मैं शुद्ध चिदानंदस्वरूप हौं, अरु दृश्यके संबंधते रहित हौं, ऐसे निश्चयकरि जिसका अंतःकरण शीतल होता है, सो [illegible] वनविषे [illegible] गृहविषे रहै, सो दोनों स्थान उनको तुल्य हैं, [illegible] दोनों [illegible] हैं, जो अंतःकरण शीतल होवै, सो बडे [illegible] फल [illegible] है [illegible] ! जो इंद्रियोंको शमन करिकै [illegible] चितवना करता है,

तिसकी समाधि मिथ्या है, वह उन्मत्तकी नाईं नृत्य करता है, अरु जिसको वासना कोई नहीं, अरु मनविषे व्यवहार करता है, तिसको बुद्धिवान्की समाधिके तुल्य जान, कोऊ ज्ञानी व्यवहार करता है, कोऊ ज्ञानवान् व्यवहारको त्यागिकरि वनविषे समाधिविषे स्थित हो बैठता है, सो दोनों निश्चयकरि परमपदको प्राप्त होते हैं, इसविषे संशय नहीं करना, ज्ञानवान् निर्वाह पुरुपार्थ करता भी दृष्ट आता है, तौ भी अकर्त्ता है, अरु जो अज्ञानी कर्त्ता भी नहीं, परंतु वासनाकरिकै कर्तव्यभावको प्राप्त होता है, जैसे कोऊ पुरुप कथा श्रवण करने बैठा है, अरु मन किसी और ठौर निकस गया है, तौ सुनता बैठा भी नहीं सुनता, तैसे ज्ञानवान्का चित्त आत्मपदकी ओर लगा है, तातें वह कर्त्ता भी नहीं कर्त्ता, उसको कर्तृत्वका अभिमान कछु नहीं होता, अरु घनवासनासहित जो अज्ञानी सब इंद्रियोंको स्थित करिकै सोइ गया है, तिसको स्वप्न आया सो पर्वततें टोएविषे आपको गिरा देखता है, अरु कष्टवान् होता है, तातें जहां वासना है, तहां क्षोभ भी है, जहां वासना कछु नहीं तहां शांति है ॥ हे रामजी ! जिसविषे कर्तृत्वका अभिमान नहीं, अरु निश्चयकरि आपको अकर्त्ता जानता है, तिसको केवलीभावतें समाधिस्थित जान, अरु जिसविषे कर्तृत्व अभिमान है, अरु समाधिकरि बैठा है, तौ भी तिसको व्युत्थान जान ॥ हे रामजी ! चित्तको चलावनेका कारण स्मृति है जो स्मृति जगत्की लेकरि समाधि लगाय बैठता है, तौ भी चित्तवासनाकरिकै विस्तारको पाता है, जैसे बीजमों अंकुर उपजता है, अरु विस्तारको पाता है, तैसे मनविषे जो स्मृति वासनाकी होती है, तिसकरि चित्त विस्तारको पाता है, अरु जो जगत्की वासना मनतें जाती रही, अर्थ यह कि, जब जगत्का सततभाव निवृत्त होता है, तब चित्त अचल हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिस चित्तसों वासना नष्ट होती है, तिसको अचल स्थिति कहते हैं सो ध्यानविषे केवलीभावविषे स्थित होता है, अरु जिसके चित्त विषे सदा वासना फुरती है, तिसको सदा क्षोभ होता है, तातें निर्वासनिक होइकरि परमपदको प्राप्त होहु ॥ हे रामजी ! जिस चित्तविषे वासना, गंध होती है तहां कर्तृत्वका अभिमान स्फुरता है, तिसकरि सदा दुःखी

एकपंचाशत्तमः सर्गः ५१.

ध्यानविचार वर्णनम् ।

वसि[illegible] ॥ हे रामजी ! इसप्रकार उद्दालक ऋपीश्वर आत्मपदको
[illegible]करिके अपने आपको विचारकरिके तू आत्मपदको
[illegible]न ! कर्तव्य यही है कि, गुरु अरु शास्त्रोंके वचनोंको
[illegible]क होहु, अरु आत्माभ्यासकरि शांतपदको प्राप्त
[illegible]स्त्रोंके वाक्योंको समझिये, तिसकरि जो विपयभूत
[illegible] बुद्धिको लगाइये, इसप्रकार जब दृढता होवै,
[illegible]अथवा एक बुद्धिविपे तीक्ष्ण अभ्यास होवै,
[illegible]ध होवै, अरु साधनादि सामग्रीते सहित
[illegible]ति रहित होवै तौ भी अविनाशी पदको
[illegible]भविष्यके ईश्वर ! एक ज्ञानवान् पुरुष
[illegible]तु व्यवहारविपे विचरता है, अरु एक
[illegible] नहीं करता, तिन दोनोंविपे श्रेष्ठ
[illegible]ी ! प्रथम समाधिका लक्षण
[illegible]व्युत्थान किसको कहते हैं सो
[illegible]गुणात्मक है, जो इनको
[illegible]ी चेतन जानता
[illegible] कहते हैं,

तिसव पाताल वायु नदियां आकाश देश काल जेता कछु जगत् है, जिसको चित्त अंतःकरणविषे है, वही बाहर विस्तार होइकरि भासता बुद्धिवान् वटके बीजविषे वटका विस्तार होता है, तैसे चित्तविषे ज्ञानवान् विस्तार होता है, अरु बाहर जो सूर्य आदिक भासता है, सो दोनों। तके अंतर स्थित है, जैसे फूल खिलता है, तिसके अंतरकी करना, ज्ञा र भासती है, अरु वस्तुते न कछु अंतर है, न बाहिर है, जैसा है, अरु जो ा है, तैसाही चैत्यताकरि फुरता है, तैसे वही सत्ता जगत्रूप प्राप्त होता है सती है, जगत् सब आत्मरूप है, और न कोऊ सत्य है न और ठौर नि एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, जो ज्ञानवान पुरुष है, ति- न्का चित्त ऐसेही भासता है ॥ हे रामजी ! जिसके अंतर शांति है, तिसको उसको कर्तृ शांति रूप है, अरु जिसका अंतर देहाभिमानविषे स्थित है, सो अज्ञानी सब ना है, अरु भयको प्राप्त होता है, किसी ओरते शांति उसको सो पर्वतते टो ती, स्वर्ग पृथ्वीलोक, पाताल, वायु, आकाश, पर्वत, नदियां, जहां वासन ल सबको प्रलयकालकी अग्निवत् जलता देखता है, जिसके अंतर है ॥ हे र ता है, तिसको सब जगत तपता भासता है, आत्मज्ञानीको शांत- आपको भासता है, जैसे अंधको सब जगत् तमरूप भासता है, अरु नेत्रवालेको अरु जगत् प्रकाशरूप भासता है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषको आत्मपद तिस पे प्रतीति भई है, अरु इंद्रियोंकेसाथ कर्म भी करता है, परंतु हर्ष शोकके वश नहीं होता, सो समाहितचित्त कहाता है, जो पुरुष मनको आत्मा देखता है, चित्तको चिंतवता नहीं, अरु भविष्यत्की इच्छा नहीं करता, वर्तमान विषे रागद्वेषते रहित होइकरि विचरता है, सो समाहितचित्त कहाता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष जगत्की पूर्वापर गतिको देखिकरि हँसता है अरु शमपदविषे स्थित होता है, किसीविषे ममता नहीं करता, सो समाहितचित्त कहाता है, अरु जो पुरुष अहंकारते रहित है, अरु जगत्की विभागकलनाते रहित है, चेतन [illegible] जिसको नहीं फुरता सो पुरुष सत्य है; अरु आकाशकी न्याईं स्वच्छ निर्मल है, राग द्वेष क्रोध विकारोंते काष्ठ लोष्ट समान रहता है, अरु सब भूतोंको अपनेसमान देखता है, अरु [illegible] को देखि-

करि इष्टि नहीं करता, स्वभावहीकरि नहीं चाहता, कछु ... करि नहीं त्यागता, ऐसे जो देखता है, अरु अहंकारते ... जगत्के न सत्यभावको देखता है, न असत्यभावको ... न ज्ञानको देखता है, न अज्ञानको देखता है, न जड़ है, न चेतन देखता है, केवल अद्वैततत्त्व देखता है, सो शांत पदविषे स्थित है, सो उठि खड़ा होवै अथवा बैठ उदय होवै, अथवा अस्त होवै, बड़े भोगोविषे रहै, ... विषे जाय बैठे, अथवा मद्यपानकरि उन्मत्त होवे अरु ... अरु गयादिक तीर्थोंविषे निवास करे, अथवा कंदराविषे निवास करे, शरीरको अगर चंदनका लेपन करे, अथवा ... इकेसाथ लपेटे अथवा देह अबहीं गिरे, अथवा ... कछु कदाचित् भी तिस पुरुपको कलंक नहीं लगता, स्वर्णको चीकडके मिलापका दोप नहीं लगता, तैसे ज्ञा... कर्तृत्वका दोप नहीं लगता ॥ हे रामजी ! इस संवित्को अहंतादी क है, सो महापुरुप अहंकारते रहित है, ताते स्पर्श नहीं होता, सीपीको रूपेका आभास नहीं स्पर्श करता तैसे ज्ञानवान्को ... नहीं करती ॥ हे रामजी ! अहंताही करिकै यह दीन होता है, अहंता इसको फुरती है, तब अनेक प्रकारके दुःख सुख देखता परंपरा जन्मोंको देखता है, अरु भयको प्राप्त होता है, जैसे किसी जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु भय पाता है, जब भलीप्रकार ... प्रकाशकरि देखता है, तब सर्पभय निवृत्त होता है, तैसे अहंताकरि दुःख पाता है, अहंताके शांत हुएते शांतिवान् होता है ॥ ... ज्ञानवान् जो कछु कर्म करता है, खाता पीता लेता देता हवन करता तिसविषे अहंताका अभिमान नहीं करता, ताते करनेविषे तिसका अर्थ सिद्ध नहीं होता, अरु जो नहीं करता तिसविषे कछु अर्थ ... नहीं, ताते करनेते उसकी हानि कछु नहीं होती, अपने स्वभावविषे स्थिति है, जगत्को द्वैतभावकरि नहीं देखता, सर्व आत्मभावकरि ...ता है, ताते कर्म स्पर्श नहीं करता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे ... प्रकरणे ध्यानविचारोनाम एकपंचाशत्तम सर्ग ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः–५२.

भेदनिरासवर्णनम्।

ता ष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! चित्त आदिक जो जगत् है, सो वा-
प्रथम न आत्माते भिन्न कछु नहीं, आत्मारूपी मिर्च है, तिसविषे
है, त अहतारूपी देश काल तीक्ष्णता भिन्न नहीं, जैसे इक्षुते
अरु रता भिन्न नहीं, तैसे आत्माते जगत् भिन्न नहीं, जैसे पत्थरविषे
दार्ढ़्यरता है, तैसे आत्माविषे जगत है, जैसे पर्वतविषे जडता
प्रथम ती है, तैसे आत्माविषे अहता होती है, जैसे जलविषे द्रवता
प्रथम ी है, तैसे आत्माविषे अहता आदिक होती है, जैसे फूल फल टास
ता, ते भिन्न नहीं होते, तैसे आत्माविषे अहता आदिक अभेद होते
जैसे तीक्ष्णता मिरचते भिन्न नहीं तैसे चित्त अहतारूपी देश काल
त्माते भिन्न नहीं, जैसे अग्नि विषे उष्णता होती है, बरफविषे शीतलता
ती है, सूर्यविषे प्रकाश होता है, गुड़विषे मधुरता है, तैसे आत्माविषे
गत होता है, जैसे अमृतविषे स्वादवेदना होती है, तैसे आत्माविषे देश-
ाल वेदना होती है ॥ हे रामजी ! जैसे मणिविषे प्रकाश होता है, तैसे
आत्माविषे अहंता होती है, जैसे जलते तरंग भिन्न नहीं होता, तैसे आत्माते
अहता भिन्न आदिक नहीं होते, जेता कछु जगत् भासता है सो आ
त्वका प्रकाश है, सो आत्मा अनंत है, सर्वविषे पूर्ण है, एकही
ोप स्थित है, महाघनशिलाकी नाईं स्थित है, तिसते भिन्न
ाकाश अपनेभावविषे स्थित है, तैसे सत्य केवल
अपने आपकरि निर्विद है, अरु वेदना भी सते भिन्न क
तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मा वेदनरूप हो
द्रवता भासती है, अरु पवनविषे चलना भासता
विषे अहंतारूप देश काल जगत् भासता है ॥ हे
ज्ञानकरि होता है, अरु ज्ञानसत्ताकरि जीवना
न्मात्र अरु जीवोंविषे रंचक मात्र भी कछु
जीवविषे भेद नहीं तैसे ज्ञाता अरु

त्ता ज्योंकी त्यों स्थित है॥हे रामजी!सर्व सत्ता एक अज अनादि अरु आदि अंत मध्यते रहित प्रकाशरूप है, चिन्मात्र अद्वैततत्त्व अपने आपविषे स्थित है, अशब्द है, तिसविषे वाणी प्रवेश नहीं कर सकती अरु जेते कछु वाक्य है, सो तिसके जतावनेनिमित्त कहे हैं, वास्तवते द्वैत वस्तु कछु नहीं, एक आत्मतत्त्वको अपने हृदयविषे धारिकरि स्थित होहु ॥

इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणे भेदानिरासवर्णनं नाम द्विपंचाशत्तम सर्ग ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ५३.

सुरघवृत्तान्तमाडव्योपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक आगे पुरातन इतिहास हुआ, तिसको ऋषीश्वर कहते हैं, सो तू सुन ॥ कांत देशका राजा सुरघ होता भया, तिसका एक वृत्तांत है, सो विस्मयका उपजावनेहारा है ॥ हे रामजी ! उत्तर दिशाविषे पृथ्वी है, तहां सुंदर सुगंधता है, मानो कपूरकरि लीपी हुई है, मानो सदाशिवके हंस आय स्थित हुए हैं, हिमालयके शिखरऊपर कैलासपर्वत है, सो सर्व पर्वतोंते उत्तम है, अरु उज्ज्वल श्वेत है, सो रुद्रके रहनेका स्थान है, तहां कल्पवृक्ष अरु गंगाका प्रवाह चलता है, और भी बड़ी नदी चलती है, अरु कमलोंसहित ताल बहुत महासुंदर स्थित है,जिसमें मृग पक्षी बहुत हैं तिस हिमालयके तले स्वर्णवत जटावाले कांत रहते हैं, जैसे वृक्षके मूलविषे पिपीलिका रहती है, तैसे पर्वतके आश्रय कांत देशके जीव रहते हैं, तिस कांत देशका राजा सुरघ होता भया है, कैसा राजा मानो प्रत्यक्ष लक्ष्मीमूर्ति चारी भुजाविषे है, वेगवान ऐसा मानो पवनकी मूर्ति है, अरु वैराग्यवान् ऐसा मानो जनक है, अरु ध[illegible]न ऐसा मानो बृहस्पति, अरु कवि ऐसा मानो शुक्र है अरु राज[illegible] इंद्र अरु धनी ऐसा मानो कुबेर, ऐसा राजा होइकरि [illegible] प्रजाकी पालना करे, जो भले मार्गविषे [illegible] । पापकर्म चोरी आदिक करें, तिनको

दड देवै, जैसा कर्म आनि प्राप्त होवै, तिसविषे रागदोषते रहित होइकारि व्यतीत करै, एक कालमें अपने स्थानविषे बैठा है कि, चित्तविषे विचार आनि उपजा, संशयरूपी वायुकरिकै तिसकी बुद्धिरूपी पक्षिणी डोलायमान भई है, बडा अनर्थ है कि, मैं जीवोंको कष्ट देता हौं, ताते इसको धन देऊं, अरु कष्ट न देऊं जैसे तिलोंको तेली पेरता है, तैसे मैं पापियोंको कष्ट देता हौं, अरु दुष्टोंको कष्ट दियेविना राज्य नहीं चलता जैसे जलविना नदीका प्रवाह नहींचलता, तैसे दुष्टोंको कष्ट दिये विना राज्य नहीं चलता, अरु जब दड देता हौं तब दु ख पाते है, मै क्या करौं दोनों बातोंविषे कष्ट है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारविषे राजा भ्रमता रहै, तब एक दिन तिसके गृहविषे माडव्य मुनि आनि प्राप्त भया, जैसे इन्द्रके गृहविषे नारद आवै तैसे आया, तब राजा भलीप्रकार तिसका पूजन करता भया, अरु संदेहवान होइकरि संशयरूपी कुत्सित वृक्षके नाशकर्त्ता कुहाडे सर्ववेत्ताको पूछता भया, ॥ सुरघ उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्मगत तुम्हारे आवनेकरि मैं बड आनदको प्राप्त भया हौं जैसे वसंतऋतुकरि पृथ्वी प्रफुल्लित होती है तैसे प्रफुल्लित भया हौं, मैं भी अब आपको पुण्यवान् जानत भया हौं कि, मै भी पुण्यवानोंविषे प्रसिद्ध होऊंगा, काहेते जो तुम मेरे गृहविषे आये हौ, जैसे सूर्यके उदय हुएते प्रकाश हो आता है, तैसे मैं तुम्हारे दर्शनकरि प्रसन्न भया हौं ॥ हे भगवन् ! मुझको संशय है, तिसके निवारणेको योग्य हौ, जैसे सूर्यके उदय हुएते अधकार नष्ट हो जाता है, तैसे तुमकरि मेरा संशय निवृत्त हो जावैगा, जो कोऊ महापुरुषोंका संग करता है, तिसका संशय अवश्य निवृत्त हो जाता है, अरु संशय परम दु खोंका कारण है, ताते मेरे संशयको तुम दूर करौ, सो मुझे यह संशय है कि, जो कोऊ दुष्ट कर्म करता है, तिसको मैं दड देता हौं, अरु जब उसको दु ख देखता हौं, तब मुझको दया उपजती है, जैसे सिंहके नख हस्तीको खैंचते है, तैसे यह संशय मुझको खैंचता है, ताते यही उपाय कहौ, जिसकरि मुझको समता प्राप्त होवै, जैसे सूर्यकी किरणें सब ठौरविषे सम होती है, तैसे इष्ट अनिष्टविषे मैं सम होऊं कृपाकारि मुझको कहौ ॥ मांडव्य उवाच ॥ हे

राजन्! यह तो बहुत सुगम है, अरु अपने आधीन है, आपहीकरि सिद्ध होता है, अरु अपनेही गृहविषे है॥ हे राजन्! सब उपाधि मनविषे उठती है, सो मन तुच्छ है, विचार कियेते निवृत्त हो जाता है, जैसे उष्णताकरि बरफ जलमय हो जाता है, तैसे विचार कियेते मनभाव लीन हो जाता है, तब ताप भी निवृत्त हो जाता है, जैसे शरत्कालके आयेते कुहिड नष्ट हो जाती है, तैसे विचार कियेते मनभाव नष्ट हो जाता है, सो विचार इसप्रकार कि, मैं कौन हौं, अरु इंद्रियां क्या हैं, अरु जगत् क्या है, जन्मरण किसको कहते हैं, इस विचारकरि जब तू अपने स्वभावविषे स्थित होवैगा तब तुझको हर्ष शोक अरु क्रोध राग द्वेष चलायमान न कर सकैगा, जैसे वायुकरि पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे तू अचल रहैगा॥ हे राजन्! जब आत्मबोध होवैगा तब मन अपने मनभावको त्यागि देवैगा, तू अचल संतापते रहित अपने स्वरूपको प्राप्त होवैगा, जैसे तरंगभाव मिटनेकरि जल निर्मल हो जाता है, तैसे तू अचल होवैगा, मन धर्मभी रहैगा, परंतु मध्यसों अज्ञान नष्ट हो जावैगा आत्मसत्ता भाव होवैगा, जैसे काल वही रहता है, परंतु ऋतु और हो जाता है तैसे मन वही होवैगा, परंतु स्वभाव और हो जावैगा, अरु तेरे दुष्ट प्रजा भी साधु हो जावैगे, तेरी आज्ञामें वर्त्तेंगे, अरु तुझको देव प्रसन्न हो जावैंगे॥ हे राजन्! जब तू विवेकरूपी दीपकसे आत्मरूपी मणि पावैगा, तब तेरी बडाई सुमेरु अरु समुद्र अरु आकाशते भी अधिक होवैगी, जब तुझको विवेकसों आत्ममहत्तत्त्वताका प्रकाश होवैगा, तब तू संसारकी तुच्छ वृत्तिविषे न डूबैगा, जैसे गोपदके जलविषे हस्ती नहीं डूबता, तैसे तू रागद्वेषविषे न डूबैगा, जिसको देहविषे अभिमान है, अरु चित्तविषे वासना है, सो तुच्छ संसारकी वृत्तिविषे डूबते हैं, ताते जेता कछु अनात्मभाव दृश्य है, तिसका त्याग करि पाछे जो शेष रहै, सो परमतत्त्व आत्मा है॥ हे राजन्! जो कछु सत्य वस्तु है, तिसको हृदयविषे धर, अरु [illegible] है तिसका त्याग कर, जैसे तबलग [illegible]करि सोनार धोता [illegible] स्वर्ण नहीं [illegible]कसता, जब सुवर्ण निकसता है, तब धोनेका [illegible]॥ [illegible] १८ आत्मविचार कर्त्तव्य है, जबलग

आत्माका साक्षात्कार नहीं भया जब आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होता है तब विचारसाथ प्रयोजन नहीं रहता ॥ हे राजन्! सबविषे सब प्रकार सब काल सब आत्माकी भावना कर अथवा जेता कछु दृश्यभाव है, सो सब त्यागिकारि जो शेष रहैगा सो तुझको भासि आवैगा, जबलग सर्व दृश्यका त्याग न करैगा, तबलग आत्मपदका लाभ न होवैगा सर्व दृश्यके त्यागते आत्मपद भासैगा ॥ हे राजन्! किसी वस्तुके पानेका यत्न करता है, तौ औरका त्याग कारि उसका यत्न करिये तौ प्राप्त होता है, तौ आत्मतत्त्व अनन्य होइकारि चित्तविना कैसे प्राप्त होवैगा, जब संपूर्ण अपना यत्न एकही ओर लगता है, तब तिस पदकी प्राप्ति होती है, तातें आत्मपद पावनेनिमित्त सब दृश्यका त्याग कर, सबके त्याग कियेते जो शेष रहै, सो परमपद है ॥ हे राजन्! सबके त्याग कियेते पाछे जो सत्ता अधिष्ठान रहैगा सो तुझको आत्मभावकारि प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तांतमाण्डव्योपदेशो नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ५४

सुरघवृत्तान्त वर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार कहकारि माण्डव्यमुनि अपने स्थानको गया, तब सुरघराजा एकांतमें बैठिकारि विचार करने लगा कि, मैं कौन हौं, न मैं सुमेरु हौं, न मेरा सुमेरु है, न मैं जगत् हौं, न मेरा जगत है, न मैं पृथ्वी हौं, न मेरी पृथ्वी है, न मैं क्रांत मंडल हौं, न मेरा क्रांत मंडल है, काहेते जो अपने भावविषे स्थित है, मेरे भावकारि तौ यह स्थित नहीं जो मैं न होऊं तौ भी यह ज्योंकी त्यों स्थित है, तौ मेरे कैसे होवैं, अरु मैं इनका कैसे होऊं, न मैं नगर हौं, न मेरा नगर है, हस्ती घोडा मंदिर धन स्त्री पुत्रादिक जेते कछु पदार्थ हैं, सो न मेरे हैं, न मैं इनका हौं, इनविषे आसक्त होना वृथा है, इनविषे संबंध मेरा कछु नहीं, जेते कछु भोगोंके समूह हैं, न मैं हौं, न यह मेरे हैं,

राजन्! यह तौ बहुत सुगम है, अरु अपने आधीन है, आपहीकरि सिद्ध होता है, अरु अपनेही गृहविषे है॥ हे राजन्! सब उपाधि मनविषे उठती है, सो मन तुच्छ है, विचार कियेते निवृत्त हो जाता है, जैसे उष्णताकरि बरफ जलमय हो जाता है, तैसे विचार कियेते मनभाव लीन हो जाता है, तब ताप भी निवृत्त हो जाता है, जैसे शरत्कालके आयेन कुहिड नष्ट हो जाती है, तैसे विचार कियेते मनभाव नष्ट हो जाता है, सो विचार इसप्रकार कि, मैं कौन हौं, अरु इन्द्रियां क्या है, अरु जगत् क्या है, जन्मरण किसको कहते हैं, इस विचारकरि जब तू अपने स्वभावविषे स्थित होवैगा तब तुझको हर्ष शोक अरु क्रोध राग द्वेष चलायमान न कर सकैगा, जैसे वायुकरि पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे तू अचल रहैगा॥ हे राजन्! जब आत्मबोध होवैगा तब मन अपने मनभावको त्यागि देवैगा, तू अचल संतापते रहित अपने स्वरूपको प्राप्त होवैगा, जैसे तरंगभाव मिटनेकरि जल निर्मल हो जाता है, तैसे तू अचल होवैगा, मन धर्मभी रहैगा, परंतु मध्यमों अज्ञान नष्ट हो जावैगा आत्मसत्ता भाव होवैगा, जैसे काल वही रहता है, परतु ऋतु और हो जाता है तैसे मन वही होवैगा, परतु स्वभाव और हो जावैगा, अरु तेरे टहलुए प्रजा भी साधु हो जावैगे, तेरी आज्ञामें वर्तेंगे, अरु तुझको देख प्रसन्न हो जावैगे॥ हे राजन्! जब तू विवेकरूपी दीपकसे आत्मरूपी मणि पावैगा, तब तेरी बडाई सुमेरु अरु समुद्र अरु आकाशते भी अधिक होवैगी, जब तुझको विवेकसों आत्ममहत्तत्त्वताका प्रकाश होवैगा, तब तू संसारकी तुच्छ वृत्तिविषे न डूबैगा, जैसे गोपदके जलविषे हस्ती नहीं डूबता, तैसे तू रागद्वेषविषे न डूबैगा, जिसको देहविषे अभिमान है, अरु चित्तविषे वासना है, सो तुच्छ संसारकी वृत्तिविषे डूबते हैं, ताते जेता कछु अनात्मभाव दृश्य है, तिसका त्याग करि पाछे जो शेष रहै, सो परमतत्त्व आत्मा है॥ हे राजन्! जो कछु सत्य वस्तु है, तिसको हृदयविषे धर, अरु जो असत्य है तिसका त्याग कर, जैसे तबलग कलंककरि सोनार धोता है, जबलग स्वर्ण नहीं निकसता, जब सुवर्ण निकसता है, तब धोनेका त्याग करता है, तैसे तबलग आत्मविचार कर्तव्य है, जबलग

वास्तव और वस्तु कछु नहीं, बड़ा कष्ट है, मैं वृथा मग्रह असंग्रहकी चिंता करता था, यह गुणोंका प्रवाह है, इसविषे मैं क्यों शोकवान् होता था, बड़ा आश्चर्य है, जो असत्य भ्रम सत्य हो मुझको दिखता था, अब मैं निश्चयकरिकै सम्यक्‌बोध हुआ हौं, दुर्दृष्टि मेरी दूर भई, दृष्टिकी जो अलख दृष्टि है, सो मैंने देखी है, अरु जो कछु पावने योग्य था, सो मैं पाया हौं, अचैत्य चिन्मात्र तत्त्वको प्राप्त भया हौं, जेता कछु दृश्य है, तिसको मैंने स्वरूपते देखा है, अरु अहं मम दुःख मेरा नष्ट भया है, मैं चिदानदपूर्ण आत्मा हौं, नित्य शुद्ध अनंत आत्मा अपने आपविषे स्थित हौं, अरु ग्रहण क्या अरु त्याग क्या ! यह क्लेश कोऊ नहीं, न कोऊ दुःख है, न सुख है, सर्व ब्रह्म है, और दूसरी वस्तु कछु नहीं राग किसका करौं ! अरु द्वेष किसका करौं ! मैं मिथ्या मूढताको प्राप्त होइकरि दुःखी होता था, अब कल्याण हुआ, मैं अमूढ होइकरि अपने आप स्वभावविषे स्थित भया हौं, ऐसे आत्माके साक्षात्कारविना दुःखी था, इसके देखेते अब किसका शोक करौं अरु कैसे मोहको प्राप्त होहुँ, अब मैं क्या देखौं, अरु क्या करौं, कहां स्थित होऊं यह सब जगत आत्माके प्रकाशकरि है, अरु सब आत्मारूप है ॥ हे अतत्त्वरूप ! अर्थ यह कि जिसविषे तत्त्वोंकी उपाधि कछु नहीं तेरी दृष्टि निष्कलंक है, मैं अब सम्यक् ज्ञानवान् हुआ हौं, मेरा मुझहीको नमस्कार है, मैं अनंत आत्मा हौं, अनुभवरूप हौं, भ्रमते रहित निष्कलंक सब इच्छाते रहित सुषुप्तिकी नाईं शांतरूप हौं, अचैत्य चिन्मात्र हौं, सदा अपने आपविषे स्थित हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तांतवर्णनं नाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ५५.

सुरघवृत्तान्तसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! कान जो स्वर्णरूप देश है, तिसका राजा परमानंदको प्राप्त भया, इसप्रकार विचार अभ्यासकरि ब्रह्मरूप हुआ, जैसे गाधिका पुत्र विश्वामित्र तपस्या करिकै उसी शरीरसाथ ब्रह्म-

दहलुए भृत्य कलत्र सब अपने भावकरि सिद्ध हैं, मेरा इनकेसाथ संबंध कछु नहीं, न मैं राजा हौं, न मेरा राज्य है, मैं एकाएकी शरीरमात्र हौं, इनविषे मैं ममत्व करता हौं, सो वृथा है, अरु शरीरविषे जो मैं अहंकर्त्ता हौं, सो भी व्यर्थ है, काहेते जो हाथ पाँव आदिकका स्वरूप है, सो भिन्न है, न यह मैं हौं, न यह मेरे हैं, इनविषे मेरा शब्द कछु नहीं, रक्त मांस हाड़ आदिकरूप है, सो मैं नहीं, यह जड़ है, मैं चेतन हौं, इनकेसाथ मेरा कैसे संबंध होवै? जैसे जलका स्पर्श कमलको कछु नहीं, तैसे इनका स्पर्श मुझको नहीं न मैं कर्मइंद्रियां हौं, न मेरी कर्मइंद्रियां हैं, यह जड है, मैं चैतन्य हौं, न मैं ज्ञानइंद्रियां हौं, न मेरी ज्ञानइंद्रियां हैं, इनते परे मन है, सो भी मैं नहीं, यह जड है, मन बुद्धि चित्त अहंकार यह सब अनात्मारूप है, मेरा इनकेसाथ अविद्या करि संबंध है, भ्रांतिकरिकै मैं इनको अपना स्वरूप जानता था, यह सब भूतोंका कार्य है, इनके पाछे चेतन जीव है, सो चेतन दृश्यको चेतनेवाला है, सो चेतन चेतना मैं नहीं, इस सबते शेष अचेत्य चिन्मात्र है, सो सत्ता मेरा स्वरूप है, बड़ा कल्याण भया, जो मैं अपना आप पाया हौं, अब मैं जागा हौं, अपना स्वरूप पाया हौं, बड़ा आश्चर्य है, जो मैं वृथा देहादिकको आप जान शोक मोहको प्राप्त होता था, मैं तो एक निर्विकल्प चेतन हौं, अरु अनंत आत्मा हौं, सबविषे व्याप रहा हौं, ब्रह्मरूप आत्मा हौं, इंद्रियोंते आदि जेते भूतगण हैं, सो सबका आत्मा हौं, यह भगवान् आत्मा सबके अंतर व्याप्या है, जैसे सबके अंतर तत्त्व होते हैं, तैसे यह चेतनरूप सर्व भावको भरि रहा है, अरु सर्व भावोंविषे व्यापि रहा है, भेग अरु उदय अस्तभान आदि विकारोंते रहित है, ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सबका आत्मा यही है, सब प्रकाशोंका दीपक प्रकाशनेहारा है, अरु सबारूपी मोतियोंके परोवनेहारा तागा यही है, सबका कारण कार्य यही है, अरु साकारते रहित है, शरीर आदिक सब इसकी सत्ताकरि उपलब्ध होत हैं, शरीररूपी रथ इसीकरि चलता है, अरु वास्तवते शरीरादिक कछु वस्तु नहीं, यह जगत् भित्तरूपी नटकी नृत्यलीलारूप है, भित्तिविषे जगत् फुरता है,

वास्तव और वस्तु कछु नहीं, वड़ा कष्ट है, मै वृथा संग्रह असंग्रहकी चिंता करता था, यह गुणोंका प्रवाह है, इसविषे मैं क्यों शोकवान् होता था, वडा आश्चर्य है, जो असत्य भ्रम सत्य हो मुझको दिखता था, अव मै निश्चयकरिकै समभ्रवोध हुआ हौं, दुर्दृष्टि मेरी दूर भई, दृष्टिकी जो अलख दृष्टि है, सो मैने देखी है, अरु जो कछु पावने योग्य था, सो मै पाया हौं, अचैत्य चिन्मात्र तत्त्वको प्राप्त भया हौं, जेता कछु दृश्य है, तिसको मैने स्वरूपते देखा है, अरु अहं मम दुःख मेरा नष्ट भया है, मैं चिदानंदपूर्ण आत्मा हौं, नित्य शुद्ध अनंत आत्मा अपने आपविषे स्थित हौं, अरु ग्रहण क्या अरु त्याग क्या ! यह क्लेश कोऊ नहीं, न कोऊ दुःख है, न सुख है, सर्व ब्रह्म है, और दूसरी वस्तु कछु नहीं राग किसका करौं ! अरु द्वेष किसका करौं ! मै मिथ्या मूढताको प्राप्त होइकरि दुःखी होता था, अव कल्याण हुआ, मै अमूढ होइकरि अपने आप स्वभावविषे स्थित भया हौं, ऐसे आत्माके साक्षात्कारविना दुःखी था, इसके देखेते अव किसका शोक करौं अरु कैसे मोहको प्राप्त होहुँ, अव मै क्या देखौं, अरु क्या करौं, कहां स्थित होऊं यह सव जगत् आत्माके प्रकाशकरि है, अरु सव आत्मारूप है ॥ हे अतत्त्वरूप ! अर्थ यह कि जिसविषे तत्त्वोंकी उपाधि कछु नहीं तेरी दृष्टि निष्कलंक है, मै अव सम्यक् ज्ञानवान् हुआ हौं, मेरा मुझही-को नमस्कार है, मैं अनंत आत्मा हौं, अनुभवरूप हौं, भ्रमते रहित निष्क-लंक सव इच्छाते रहित सुषुप्तिकी नाईं शांतरूप हौं, अचैत्य चिन्मात्र हौं, सदा अपने आपविषे स्थित हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तांतवर्णनं नाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ५५.

सुरघवृत्तान्तसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! कौन जो स्वर्णरूप देश है, तिसका राजा परमानंदको प्राप्त भया, इसप्रकार विचार अभ्यासकरि ब्रह्मरूप हुआ, जैसे गाधिका पुत्र विश्वामित्र तपस्या करिकै उसी शरीरसाथ क्षत्रि-

यते ब्राह्मण हुआ, तैसे राजा सुरघ अभ्यास करिकै ब्रह्मरूप ब्रह्मबोध हुआ, अनेक राज्यके कार्योंको करत भया, जैसे सूर्य इष्ट अनिष्टविषे सम है, विगतज्वर होइकरि दिनोंको व्यतीत करता है, तैसे रागद्वेषते रहित राज्यका कार्य करत भया, जैसे जल ऊंची नीची ठौरविषे गमन करता है, अपना जल भाव नहीं त्यागता सम रहता है, तैसे राजा हर्षशोकते रहित होइकरि राज्यकार्य करत भया, अरु स्वभावको न त्यागत भया आत्मविचारको धारि सुषुप्तिकी नाई वृत्ति हो गई संसारभावको फुरना कछु न फुरै, जैसे वायुते रहित दीपक प्रकाशता है, तैसे शुद्ध प्रकाशको धारता भया॥ हे रामजी! दया करता भी दृष्ट आवै, परंतु उसकी दृष्टिविषे कछु दया नहीं, अरु दयाते रहित भी औरोंको दृष्ट आवै, परंतु उसकी दृष्टिविषे निर्दयता नहीं, न कछु सुख, न दुःख, न अर्थ, न अनर्थ, सब पदार्थोंविषे सम एक भाव आत्मा देखै अरु अंतरते पूर्णमासीके चंद्रमावत शीतल रहै, अरु आत्माका किंचनरूप जगतको जानत भया, सुखदुःखका भाव शांत हो गया जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे सुखदुःख नष्ट हो गए, अरु शोक विलास कर्त्ता, मत्त होता, स्थित होता, चलता, श्वास लेता, अरु पांचों विषयोंको ग्रहण कर्त्ता रागद्वेषको प्राप्त न भया, जैसे पत्थरविषे फुरना कछु नहीं फुरता, तैसे उसको कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभिमान कछु न फुरा, सब कर्तव्यको कर्त्ता भी निःसंग रहा, जैसे जलविषे कमल अलेप रहता है, तैसे राज्यविषे निर्लेप होइकरि जीवन्मुक्त हुआ बहुत काल बितावता भया, तिसके अनंतर शरीरका त्याग किया जैसे बरफका कणका सूर्यके तेजकरि जलमय हो जाता है, तैसे शरीर अपने भावको त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे लीन हो गया, जैसे नदी समुद्रविषे लीन होती है, बहुरि इतर नहीं भासती, तैसे सुरघ अपने भावको त्यागिकरि उज्ज्वल भावको प्राप्त भया, कलनारूपी मलको त्यागिकरि निर्मल ब्रह्म होता भया, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल चिदानन्द ज्योतिर्भावको प्राप्त भया, जैसे घट फूटेसे घटाकाश महाकाश होजाता है, तैसे पूर्ण ब्रह्म चिदानंद तत्त्व होता भया॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तान्तसमाप्तिर्नाम पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥ ५५॥

षट्पंचाशत्तमः सर्गः ५६.

सुरघपरघसमागमवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तुम भी इसी दृष्टिको आश्रय करिकै विचारौ, तब सब भय मिटि जावैगा, जैसे घोर तमविषे बालक भयको पाता है, सो जब दीपकका प्रकाश होता है, तब निर्भय होता है, तैसे संसाररूपी घोर तमविषे आया पुरुष दुःख पाता है, जब ज्ञानरूपी दीपक उदय होवै, तब निर्भय हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब आत्मविचारविषे कछु भी चित्त विश्राम पाता है, तब तिस विश्रामको आश्रयकरि संसारसमुद्रते निकसि जाता है, जैसे टोएविषे गिरे ताको तृणका बूटा हाथ लगै, तौ भी तिसके आश्रयकरि निकसि आता है ॥ हे राम ! यह पावन दृष्टि मैने तुझको कही है, इसको चित्तविषे विचार, परस्पर मिलिकरि उदाहरणमात्र अभ्यासकरि नित्य एक समाधिविषे स्थित होहु, अरु पृथ्वीका भूषण होइकरि लोकोंविषे विचरो ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! एक समाधि किसको कहिये, अरु कैसे होती है, सो कहौ, जो मेरा चित्त फुरता है, सो स्थित होवै, जैसे वायुकरि मोरका पुच्छ हलता है, तैसे चचलरूप चित्त सदा फुरता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब सुरघ प्रबुद्ध हुआ था, तब तिसका संवाद पर्णाद राजा ऋषिसों हुआ था, महाअद्भुत समाधि है, तिसको सुनिकरि विचार तौ तू एक समाधिवान् होवैगा, जो इनने मिलिकरि परस्पर चर्चा करी है, सो सुन ॥ हे रामजी ! पारस देशका राजा महावीर्यवान् था, अरु परघ तिसका नाम था सो सुरघका मित्र था, जैसे नंदनवनविषे कामदेव अरु वसतऋतुका मित्रभाव होता है, तैसे सुरघ अरु परघका मित्रभाव होत भया, एक कालमें परघके देशविषे प्रलयकालबिना प्रलयकालकी नाई होत भया, तिसकरि सब जीव दुःख पाने लगे प्रजाके जीवोंकी जो पापबुद्धि थी, तिसीका फलआनि लगा, महादुर्भिक्ष पड़ा, कई क्षुधाकरि मृतक भए, कई अग्निकरि जलि मरे, कई झगडा करि मृतक भए, प्रजाके लोक बहुत दुःखको प्राप्त भए, अरु राजाको दुःख कछु न

यते ब्राह्मण हुआ, तैसे राजा सुरघ अभ्यास करिके ब्रह्मरूप ब्रह्मबोध हुआ, अनेक राज्यके कार्योंको करत भया, जैसे सूर्य इष्ट अनिष्टविषे सम है, निरन्तर होइकरि दिनोंको व्यतीत करता है, तैसे रागद्वेषते रहित राज्यका कार्य करत भया, जैसे जल ऊंची नीची ठौरविषे गमन करता है, अपना जल भाव नहीं त्यागता सम रहता है, तैसे राजा हर्षशोकते रहित होइकरि राज्यकार्य करत भया, अरु स्वभावको न त्यागत भया आत्मविचारको धार सुषुप्तिकी नाई वृत्ति हो गई संसारभावको फुरना कछु न फुरै, जैसे वायुते रहित दीपक प्रकाशता है, तैसे शुद्ध प्रकाशको धारता भया॥ हे रामजी! दया करता भी दृष्ट आवै, परन्तु उसकी दृष्टिविषे कछु दया नहीं, अरु दयाते रहित भी औरोंको दृष्ट आवै, परंतु उसकी दृष्टिविषे निर्दयता नहीं, न कछु सुख, न दुःख, न अर्थ, न अनर्थ, सब पदार्थोंविषे सम एक भाव आत्मा देखै अरु अंतरते पूर्णमासीके चन्द्रमावत शीतल रहै, अरु आत्माका किंचनरूप जगतको जानत भया, सुखदुःखका भाव शांत हो गया जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे सुखदुःख नष्ट हो गए, अरु शोक विलास कर्त्ता, मत्त होता, स्थित होता, चलता, श्वास लेता, अरु पांचों विषयोंको ग्रहण कर्त्ता रागद्वेषको प्राप्त न भया, जैसे पत्थरविषे फुरना कछु नहीं फुरता, तैसे उसको कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभिमान कछु न फुरा, सब कर्तव्यको कर्त्ता भी निःसंग रहा, जैसे जलविषे कमल अलेप रहता है, तैसे राज्यविषे निर्लेप होइकरि जीवन्मुक्त हुआ बहुत काल वितावता भया, तिसके अनंतर शरीरका त्याग किया जैसे बरफका कणका सूर्यके तेजकरि जलमय हो जाता है, तैसे शरीर अपने भावको त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे लीन हो गया, जैसे नदी समुद्रविषे लीन होती है, बहुरि इतर नहीं भासती, तैसे सुरघ अपने भावको त्यागिकरि उज्ज्वल भावको प्राप्त भया, कलनारूपी मलको त्यागिकरि निर्मल ब्रह्म होता भया, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल चिदानन्द ज्योतिभावको प्राप्त भया, जैसे घट फूटेते घटाकाश महाकाश होजाता है, तैसे पूर्ण ब्रह्म चिदानन्द सत्ता होता भया॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तान्तसमाप्तिर्नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः॥ ५५॥

तू रागद्वेष मलते क्यों रहित हुआ है जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल क्यों हुआ है ? अरु सब कार्योंको कर्त्ता समभावविषे क्यों रहता है ? अरु आधि व्याधि ताप तेरे क्यों दूर भये हैं ? अरु तेरी प्रजा भी विगतज्वर क्यों भई है ? अरु धन राज्य मालविषे भी कुशल क्यों है ? जैसे चन्द्रमाकी किरणोंकरि शीतलता पसर रहती है, तैसे तेरा यश दशों दिशामें क्यों पसरि रहा है ? अरु तेरा यश ग्रामवासी क्षेत्रोंविषे अरु कुडिया क्यों गावती हैं ? हे राजन् ! प्रजा टहलुए पुत्र कलत्र सब आधिव्याधिते क्यो रहित हुए हैं ? अरु आपातारमणीय जो विषय पदार्थ हैं, तिनविषे अब तेरी प्रीति क्यों नहीं है ? अरु तृष्णारूपी सर्पिणी तुझको अब क्यों नहीं डसती ? हे राजन् ! तुम्हारी हमारी मित्राई हुई थी, सो समय पाइकरि तुम कहा रहे, हम कहाँ रहे अब बहुरि आनि हुए हैं, बडा आश्चर्य है, ईश्वरकी नीति जानी नहीं जाती, सुखते दुःख हो जाता है, अरु दुःख गएते सुख हो जाता है, ससारकी दिशा आगमापायी है, सयोगका वियोग होता है वियोगका सयोग होता है, तैसे तुम्हारा हमारा सयोगका वियोग हो गया था, बहुरि वियोगका संयोग आनि हुआ है, बडा आश्चर्य है, ईश्वरकी नीति अद्भुतरूप है ॥ सुरघ उवाच ॥ हे देव ! परमात्मा देवकी नीतिको जानि नहीं सकते, सो महागभीर विस्मयको देनेहारी अरु दुर्ज्ञात है, तुम्हारा हमारा वियोग हुआ तब दूरते दूर जाय पडे, तुम कहा अरु हम कहां बहुरि आनि इकट्ठे भये हैं, जो देवकी नीति आश्चर्यरूप है, तुम जो मुझको कुशल पूछा, सो तुम्हारा आवनाही जो पुण्य है, तिसकरि मैं परम पावन हुआ हौं तुम्हारे दर्शनकरि पाप सब नष्ट हो जाता है, आज हमारे पुण्यका फल लगा है जो तुम्हारा दर्शन भया है, अरु जेता कछु यश संपदा है, सो सब आज प्राप्त भया है ॥ हे भगवन् ! संतोंका जो आवना है, सो मधुर अमृतकी नाईं है, जैसे अमृत झरनेते निकसता है, तैसे तुम्हारे दर्शनते अरु वचनोंकरि परमार्थरूपी अमृत स्रवता है, जिसको पाइकरि जीव निर्भयताको प्राप्त होते हैं, संतोंका मिलना परमपदके तुल्य है, सो हम परम शुद्धताको प्राप्त भए हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघपरघसमागमवर्णनं नाम षट्पंचाशत्तम सर्ग ॥ ५६ ॥

प्राप्त भया, जब प्रजा बहुत दुःख पाई, तब राजा प्रजाको दुःखी देखत भया, अरु प्रजाके दुःख निवारणेको समर्थ न भया, तिनकरि प्रजा अरु कुटुंबको त्यागि गया, जैसे वनको अग्नि लगेते पक्षी त्यागि जाते हैं, जैसे ग्रामको अग्नि लगे तौ पैंडाई त्यागि जाते हैं, तब एक पहाड़की कंदराविषे तप करने लगा, ऐसा तप करने लगा, जैसा जिनेंद्रने तप किया था, तिस कंदराविषे फल न पावै सूखे पान ले खावै, जैसे अग्नि सूखे पानको भक्षण करती है, तैसे सूखे पान खावै, तिस करि तिसका नाम पर्णाद होत भया, वह तौ एकांत जाइकरि तप करने लगा, परंतु द्वीपविषे तिसका नाम पर्णाद प्रसिद्ध भया, अरु तप यही कि, चित्तकी वृत्तिको आत्मपदविषे जोड़ता भया, सहस्र वर्षपर्यंत तप किया, तब अभ्यासकरि चित्त स्थित भयेते केवल ज्ञान-स्वरूप आत्मतत्त्व हृदयकी निर्मलताकरि प्रकाशि आया, तब सब तप्तता मिटि गई, रागद्वेषते रहित निष्क्रिय आत्मदर्शी जीवन्मुक्त होइकरि विचरने लगा, रागद्वेषते रहित हुआ, त्रिलोकीरूपी मढीविषे विचरै, सिद्धोंके स्थानोंविषे जावै सरोवरोंविषे कमलोंके निकट भँवरा हंसोंसाथ जाय मिलता है, तैसे सिद्धोंसाथ राजा जाय मिलै, ऐसे फिरता फिरता कात देशविषे सुरघके स्थानोंको जाय प्राप्त भया, तब सुरघ पूर्व मित्रको देखिकरि उठि खड़ा भया, परस्पर कंठ लगाइकरि मिले, अरु परस्पर भावकरिके एक आसनपर चंद्रमा अरु सूर्य जैसे बैठ गए, अरु आपसमें कुशल पूछने लगे, प्रथम परघ बोलत भया॥ परघ उवाच ॥ हे मित्र! तेरे दर्शनते परमानंदको प्राप्त भया हौं, जैसे कोई चंद्रमाके मंडलविषे जाय आनंदमान होवै, तैसे आनंदमान हुआ हौं, बहुत कालका जो वियोग होता है, तब बहुत प्रीति बढ़ती है जैसे वृक्षको ऊपरते काटिए तौ फुरि बढ़ता है, तैसे प्रीति बढ़ती है॥ हे साधो! अब मैं भी ज्ञानवान् हुआ अरु तूभी मांडव्य मुनि अरु आत्माके प्रसादकरि ज्ञानको प्राप्त भया है॥ हे राजन्! मेरा अभीष्ट प्रश्न है कि, अब दुःखोंते क्यों मुक्त भया है अरु विश्रामको क्यों प्राप्त भया है अरु आत्मपद पानेकी चढाई मेरु आदिकने भी ऊँची है, तिसको तूं क्यों प्राप्त भया है परम कल्याणवान् आत्मारामी क्यों हुआ है? अरु

पान कियेते अमृतकी तृष्णा वढती जाती है, तैसे एक क्षणकी समाधि वढती जाती है, जैसे सूर्यके उदय हुएते सब किसीको दिन भासताहै, तैसे ज्ञानवान्को सब आत्मतत्त्व भासता है, इतर कदाचित् नहीं भासता है, जैसे नदीका प्रवाह किसीते रोका नहीं जाता,तैसे ज्ञानवान्की आत्मदृष्टि किसीते रोकी नहीं जाती,जैसे कालकी गति कालको एक क्षण भी विस्मरण नहीं होती, तैसे ज्ञानवान्की आत्मदृष्टि विस्मरण नहीं होती जैसे पवन चलते ठहरतेको अपना पवनभाव विस्मरण नहीं होता, तैसे ज्ञानवान्को चिन्मात्रतत्त्वका विस्मरण नहीं होता, जैसे सत् शब्दविना कोऊ पदार्थ सिद्ध नहीं होता, तैसे ज्ञानवान्को आत्माविना कोऊ पदार्थ नहीं भासता जिस ओर ज्ञानवान्की दृष्टि जाती है, तहां अपना आप भासता है, जैसे दर्पणोंके मंदिरविषे सर्व ओर अपना मुख भासता है, तैसे ज्ञानवान्को सर्व ओर अपना आपही भासता है, जैसे उष्णताविना अग्नि नहीं, शीतलता विना वर्फ नहीं, श्यामताविना काजर नहीं पायाजाता तैसे आत्माविना जगत् नहीं पायाजाता ॥ हे साधो ! जिसको आत्माते भिन्न पदार्थ कोई नहीं भासता, तिसको उत्थान कैसे होवै, सर्वदा मैं बोधरूप हौं, अरु सर्वदा निर्मल हौं, सर्वदा सर्वात्मा समाहितचित्त हौं, ताते उत्थान मुझको कदाचित नहीं, आत्माते भिन्न मुझको कोऊ नहीं भासता, सर्व प्रकार आत्मतत्त्व मुझको भासता है ॥ हे साधो ! आत्मतत्त्व सर्वदा जानने योग्य है, सर्वदा और सर्व प्रकार आत्मा स्थित है, बहुरि समाधि अरु उत्थान कैसे होवै ? जिसको कार्यकारणविषे विभागकलना नहीं फुरती, अरु आत्मतत्त्वविषे स्थित है, तिसको समाहित असमाहित क्या कहिये ? समाधि अरु उत्थानका वास्तव कछु भेद नहीं, मिथ्या है, आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, द्वैतभेद कछु नहीं, तो समाहित असमाहित क्या कहिये ॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे समाधिनिश्चयवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशत्तम सर्ग ॥ ५७ ॥

सप्तपंचाशत्तमः सर्ग. ५७.

समाधिनिश्चयवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार पूर्व वृत्तांत कहा तब वहुरि परघ बोलत भया ॥ परघ उवाच ॥ हे राजन् ! जो जो समाहित चित्त इस जगजालविषे कर्म करता है, सो सुखरूप होता है, अरु संकल्पते रहित जो परम विश्राम अरु परम उपशम समाधि है, तिसाविषे क्या स्थित हुआ है ॥ सुरघ उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमही कहौ कि, सब संकल्पते रहित परम उपशम समाधि किसको कहते हैं, अरु जो तुम मुझते पूछौ तौ श्रवण करो, जो ज्ञानवान् महात्मा पुरुष हैं, सो तूष्णीं रहै, अथवा व्यवहार करै, वह असमाहितचित्त कदाचित् नहीं होवै ॥ हे साधो ! नित्य प्रबुद्ध जिनका चित्त है, अरु जगत्के कार्य भी करते हैं, अरु आत्मतत्त्वविषे स्थित हैं, तौ वह सर्वदा समाधिविषे स्थित हैं, अरु पद्मासन वांधिकरि बैठते हैं, ब्रह्मअंजली हाथविषे रखते हैं, अरु चित्त आत्मपदविषे स्थित नहीं होता, अरु विश्रांतिको नहीं पाता, उनको समाधि कहा, वह समाधि नहीं कहाती॥ हे भगवन् ! परमार्थ तत्त्वबोध है, सो सब आशारूपी तृणोंको जलावनेहारी अग्नि है, ऐसी निराशरूप जो समाधि है, सोई समाधि है, तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं ॥ हे साधो ! जिनका चित्त समाहित अरु नित्य तृप्त है, सदा शांतरूप है, अरु यथाभूतार्थ है, अर्थ यह कि, यथार्थ ज्योंका त्यों ज्ञान हुआ है, अरु निर्वाणविषे निश्चय है, सो समाधि कहाती है, तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं जिसके हृदयविषे संसाररूप सत्यताका क्षोभ नहीं, निरहंकार है, अरु अनहंदयही उदय है, सो पुरुष समाधिविषे कहाता है, ऐसा जो बुद्धिमान् है, सो मेरुते भी अधिक स्थित है ॥ हे साधो ! जो पुरुष निश्चित है, ग्रहणत्यागते जिसकी बुद्धि निवृत्त भई है, अरु पूर्ण आत्मतत्त्वही भासता है, अरु व्यवहार भी करता दृष्ट आता है, तौ भी तिसको समाधि रही है, जिसका चित्त एक क्षण भी आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है, तिसकी अनंत समाधि हो जाती है, क्षणक्षण बढती जाती है, निवृत्त नहीं होती, जैसे अमृतके

पान कियेते अमृतकी तृष्णा बढती जाती है, तैसे एक क्षणकी समाधि बढती जाती है, जैसे सूर्यके उदय हुएते सब किसीको दिन भासताहै, तैसे ज्ञानवान्को सब आत्मतत्त्व भासता है, इतर कदाचित् नहीं भासता है, जैसे नदीका प्रवाह किसीते रोका नहीं जाता, तैसे ज्ञानवान्की आत्मदृष्टि किसीते रोकी नहीं जाती, जैसे कालकी गति कालको एक क्षण भी विस्मरण नहीं होती, तैसे ज्ञानवान्की आत्मदृष्टि विस्मरण नहीं होती जैसे पवन चलते ठहरतेको अपना पवनभाव विस्मरण नहीं होता, तैसे ज्ञानवान्को चिन्मात्रतत्त्वका विस्मरण नहीं होता, जैसे सत् शब्दविना कोऊ पदार्थ सिद्ध नहीं होता, तैसे ज्ञानवान्को आत्माविना कोऊ पदार्थ नहीं भासता जिस ओर ज्ञानवान्की दृष्टि जाती है, तहां अपना आप भासता है, जैसे दर्पणोंके मंदिरविषे सर्व ओर अपना मुख भासता है, तैसे ज्ञानवान्को सर्व ओर अपना आपही भासता है, जैसे उष्णताविना अग्नि नहीं, शीतलता विना वर्फ नहीं, श्यामताविना काजर नहीं पायाजाता तैसे आत्माविना जगत् नहीं पायाजाता ॥ हे साधो ! जिसको आत्माते भिन्न पदार्थ कोई नहीं भासता, तिसको उत्थान कैसे होवै, सर्वदा मैं बोधरूप हौं, अरु सर्वदा निर्मल हौं, सर्वदा सर्वात्मा समाहितचित्त हौं, ताते उत्थान मुझको कदाचित् नहीं, आत्माते भिन्न मुझको कोऊ नहीं भासता, सर्व प्रकार आत्मतत्त्व मुझको भासता है ॥ हे साधो ! आत्मतत्त्व सर्वदा जानने योग्य है, सर्वदा और सर्वप्रकार आत्मा स्थित है, बहुरि समाधि अरु उत्थान कैसे होवै ? जिसको कार्यकारणविषे विभागकलना नहीं फुरती, अरु आत्मतत्त्वविषे स्थित है, तिसको समाहित असमाहित क्या कहिये ? समाधि अरु उत्थानका वास्तव कछु भेद नहीं, मिथ्या है, आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, द्वैतभेद कछु नहीं, तो समाहित असमाहित क्या कहिये ॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे समाधिनिश्चयवर्णनं नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपचाशत्तमः सर्ग. ५८.

सुरघपरघनिश्चयवर्णनम् ।

सुरघ उवाच ॥ हे राजन् ! निश्चय करिकै अब तू जागा है अरु परमपदको प्राप्त भया है, अरु पूर्णमासीके चंद्रमावत् शीतल अंतःकरण भया है, अरु परम शोभाकरि मुख शोभित भया है, अरु ब्रह्मलक्ष्मीकरि संपन्न परमानंदसों पूर्ण भया है, शीतल अरु स्निग्ध तेरा हृदयकमल विराजमान् है, निर्मल निस्तृत गंभीरता तेरी मुझको प्रगट भासती है, अरु निर्मल शरत्कालके आकाशवत् तेरा हृदय भासता है, अहंकाररूपी मेघ तेरा नष्ट भया है ॥ हे राजन् ! अब तुझको सर्वत्र स्वस्थ अरु सर्वथा संतुष्टता है, अरु किसीविषे राग नहीं, वीतराग होइकरि विराजता है सार असारको तुझने भली प्रकार जाना है, अरु जानिकरि असार संसाररूपी समुद्रते पारको प्राप्त भया है, अरु महाबोधको ज्योंका त्यों जानिकरि अखंड स्थिति पाई है, भाव अभाव पदार्थ दोनोंको तू जानत भया है, सम असम जो जगतके पदार्थ हैं, तिनते मुक्त भया है, मुदित शांत आशय हुआ है, इष्ट अनिष्ट ग्रहण त्याग तेरा निवृत्त भया है, रागद्वेष तृष्णारूपी मेघ बादलोंते रहित निर्मल आकाशवत तू शोभता है, अरु अपने आपकरि तृप्त भया है, कछु इच्छा तुझको नहीं ॥ सुरघ उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! इस जगत् विषे ग्रहण करने योग्य वस्तु कोई नहीं जेते कछु दृश्य पदार्थ हैं, सो सब आभासरूप हैं, तौ किसको ग्रहण करिये अरु जो कहिये, ग्रहण करने योग्य नहीं तौ त्याग करिये, सो आभासरूप पदार्थोंका त्याग क्या करिये, अरु ग्रहण क्या करिये काहेते जो है नहीं, सब तुच्छ अतुच्छ पदार्थ हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, सो जलभासता कौन अंग ग्रहण करिये, अरु कौन अंग त्याग करिये, तैसे यह जगत् भी है ॥ हे मुनीश्वर ! जगतके तुच्छ पदार्थ हैं, एक अतुच्छ हैं, जो थोडे कालविषे नष्ट हो जाते हैं, सो तुच्छ हैं, अरु चिरकालपर्यंत रहते हैं, सो अतुच्छ हैं, परंतु दोनों भ्रमकरि उपजे हैं, अरु मैं अहंरूप स्वरूपको देखा है, तब दोनों तुच्छ ही

गए हैं, बहुरि इच्छा किसकी करौं, जो है कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जो रमणीय पदार्थ जानते हैं, तिसकी इच्छा करते हैं, सो त्रिलोकीविषे रमणीय पदार्थ कोऊ नहीं, सब तुच्छ नाशरूप हैं, अरु जीवोंको जो बड़े पदार्थ भासते हैं, सो अविचारकरि भासते हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध जेते इंद्रियोंके विषय हैं, सो सब असाररूप हैं, स्त्रीको बड़ा पदार्थ जानते हैं, सो देखने मात्र सुंदर है, अतरते रक्त मास विष्ठा मूत्रका थैला बना हुआ है, इसविषे सार कछु नहीं, अरु पर्वत बड़े पदार्थ हैं, सो पत्थर बटे हैं, अरु समुद्र है सो जल है, वनस्पती काष्ठ पत्र हैं, इनते आदि जो कछु पदार्थ है, सो आपातरमणीय है, सो विचारविना सुंदर भासते हैं, इनकी जो इच्छा करते हैं, सो अपने नाशके निमित्त करते हैं, जैसे पतग दीपककी इच्छा करता है, सो अपने नाशके निमित्त करता है जैसे हरिण नाद श्रवणकी इच्छा करता है, सो नाशको प्राप्त होता है, तैसे जो विषयोंकी तृष्णा करते हैं सो अपने नाशको करते हैं, ताते विचारते रहित जो अज्ञानी है, सो पदार्थको रमणीय जानिकरि अपने नाशके निमित्त इच्छा करता है, अरु जो समदर्शी ज्ञानवान् हैं, सो अरमणीय जानिकरि किसी जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करते, जैसे सूर्य उदय हुएते अधकारका अभाव होता है, ताते जब पदार्थोंका राग उठि गया, तब तृष्णा किसविषे रहै ॥ हे साधो ! राग द्वेष इच्छा ग्रहण त्याग जेते कछु विकार हैं, तिन सबते रहित शुद्ध आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, बहुत कहनेकरि क्या है, जिस पुरुषके मनते वासना नष्ट हो गई है, सो उपशमवान् कल्याणमूर्त्ति परमपदको प्राप्त हुआ है अरु ससारसमुद्रको तरि गया है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे मुग्धपरघनिश्चयवर्णन नाम अष्टपञ्चाशत्तम सर्ग. ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितम सर्ग ५९.

कारणोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार मुग्ध अरु परघ जगत्को भ्रमरूप विचारते भये, विचार करिके परस्पर गुरु जानिकरि पूजते भये, बहुरि

परच चलता रहा ॥ हे रामजी ! इसका परस्पर संवाद तुझको श्रवण कराया है, सो परमबोधका कारण है, इस विचारके क्रमकरि बोधकी प्राप्ति होती है, तीक्ष्ण बोधकरिके जब विचार करेगा, तब अहंकाररूपी बादलका अभाव हो जावैगा, अरु शुद्ध हृदयरूपी आकाशविषे आत्मरूपी सूर्य प्रकाश हो जावैगा, तातें परमपदके लाभके निमित्त अहंकाररूपी बादलके अभावका यत्न करो, सो आत्मा सत्य है, सब आनंदकी संपदा है, चिदाकाश है, तिसविषे स्थिति पावैगा ॥ हे रामजी ! जो पुरुष नित्य अंतर्मुखी अध्यात्ममय है, अरु नित्य चिदानंदविषे चित्तको जोड़ता है, सो सदा सुखी है, तिसको शोक कदाचित् नहीं होता, जो पुरुष आत्मपदविषे स्थित हुआ है, सो बड़े व्यवहार करे, अरु रागद्वेषसहित दृष्ट आवै, तो भी तिसको कछु कलंक प्राप्त नहीं होता, जैसे कमल जलविषे दृष्ट आता है, तो भी ऊंचा रहता है, जल उसको स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवानको व्यवहारका रागद्वेष अंतर स्पर्श नहीं करता ॥ हे रामजी ! जिसका अंतर मन शांत हुआ है, तिसको संसारके इष्ट अनिष्ट पदार्थ चलाय नहीं सक्ते, जैसे सिंहको मृग दुःख दे नहीं सक्ते, तैसे ज्ञानवानको जगत्के पदार्थ दुःख नहीं दे सकते, जिस पुरुषको आत्मानंद प्राप्त भया है, तिसको विषयोंकी तृष्णा नहीं रहती, विषयों निमित्त दीन कदाचित् नहीं होता, जैसे जो पुरुष नंदनवनविषे स्थित भया है, सो फकोंके वृक्षकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता ॥ हे रामजी ! जिस जिस पुरुषने जगत्को अविद्यारूप जानिकरि त्याग किया है, तिसको चित्तरूपी जगत्के पदार्थ दुःख दे नहीं सकते, जैसे विरक्तचित्त पुरुषकी स्त्री मरि जावै, तब उसको दुःख नहीं होता, सो ज्ञानवानके चित्तविषे भोगोंकी दीनता नहीं उपजती, जैसे नंदनवनविषे कंटकका वृक्ष नहीं उपजता जिस पुरुषको आत्मबोध हुआ है, अरु संसारका कारण मोह निवृत्त भया है, सो जगत्के कार्य करता दृष्ट आता है, परंतु उसको स्पर्श नहीं करता, जैसे आकाशविषे अंधकार दृष्ट आता है, परंतु आकाशको स्पर्श नहीं करता ॥ हे रामजी ! अविद्याके निवृत्तिका कारण विचार है, और किसी

उपायते निवृत्त नहीं होती, जैसे प्रकाशविना तम निवृत्त नहीं होता, तैसे विचारविना अविद्या निवृत्ति नहीं होती, अविचारका नाम अविद्या है, अरु विचारका नाम विद्या है, जब अविद्या नष्ट होवैगी, तब विषयभोग स्वाद न देवैगे आत्मानंदकरि संतुष्टमान रहैगा ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्‌को विचारते इंद्रियोंके व्यवहार अंध नहीं कर सकते, जैसे जलविषे मच्छी रहती है, तिसको जल अंध नहीं कर सकता, और आप अंध रहता है, तैसे ज्ञानवान् व्यवहारविषे भी अंध नहीं होता और जीव अंध हो जाते हैं, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त हो जाती है, अरु चित्त परमानंदको प्राप्त होता है, अरु रागद्वेषरूपी निशाचर नष्ट हो जाता है, तब बहुरि मोहको प्राप्त नहीं होता जिसके हृदय आकाशविषे आत्मज्ञानरूपी सूर्य उदय हुआ है, तिसका जन्म अरु कुल सफल होता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अपने अमृतको पाइकरि अपनेविषे शीतल होता है, तैसे जो पुरुष आत्मचिंतनाविषे अभ्यास करता है, सो शांतिको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! बुद्धि भी वही है, श्रेष्ठ दिन भी वही, अरु मृत्युभी वही है, अरु शास्त्रभी वही है, जिसकरि ससारते वैराग्य उपजै अरु आत्मतत्त्वकी चिंतना उपजै, जब आत्मपदको पाता है, तब इसका सब क्लेश मिटि जाता है, अरु जिसको आत्म चिंतनाविषे रुचि नहीं, सो महाअभागी है, चिरपर्यंत कष्ट पावैगा ॥ जन्मरूपी जंगलका वृक्ष होवैगा ॥ हे रामजी ! जीवरूपी बलध है, अरु अनेक आशारूपी फांसियोंकरि बांधा है, अरु जरा अवस्थारूपी पत्थरों के मार्गकरिकै जर्जरीभाव होता है. भोगरूपी तलावडी गर्त्तविषे गिरा है कर्मरूपी भारकोलिये जन्मरूपी जगलविषे भटकता हुआ कर्म चीकडविषे फँसा हुआ रागद्वेषरूपी मच्छरोंकरि दुःखी होता है, देहरूपी रथको पकडि खैंचता है, अरु पुत्र स्त्रियादिककी ममतारूपी चीकडविषे गोते खाता है, अरु मोहससाररूपी मार्गविषे कर्मरूपी रथकेसाथ जोडता है, अरु ऊपरते अज्ञानरूपी तप्तताकरि जलता है, संतजन अरु सच्छास्त्ररूपी वृक्षकी छायाको नहीं पाता ॥ हे रामजी ! जीवरूपी बलध ऐसा है, सो निकसनेका यत्न करै, जब तत्त्वका अवलोकन करै, तब चित्तभ्रम नष्ट हो

परघ चलता रहा ॥ हे रामजी ! इसका परस्पर सवाद तुझको श्रवण कराया है, सो परमबोधका कारण है, इस विचारके क्रमकरि बोधकी प्राप्ति होती है, तीक्ष्ण बोधकरिकै जब विचार करैगा, तब अहंकाररूपी बादलका अभाव हो जावैगा, अरु शुद्ध हृदयरूपी आकाशविषे आत्मरूपी सूर्य प्रकाश हो जावैगा, तातें परमपदके लाभके निमित्त अहकाररूपी बादलके अभावका यत्न करौ, सो आत्मा सत्य है, सब आनंदकी सपदा है, चिदाकाश है, तिसविषे स्थिति पावैगा ॥ हे रामजी ! जो पुरुष नित्य अतर्मुखी अध्यात्ममय है, अरु नित्य चिदानंदविषे चित्तको जोड़ता है, सो सदा सुखी है, तिसको शोक कदाचित् नहीं होता, जो पुरुष आत्मपदविषे स्थित हुआ है, सो वड़े व्यवहार करै, अरु रागद्वेपसहित दृष्ट आवै, तौ भी तिसको कछु कलक प्राप्त नहीं होता, जैसे कमल जलविषे दृष्ट आता है, तौ भी ऊचा रहता है, जल उसको स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्को व्यवहारका रागद्वेष अतर स्पर्श नहीं करता ॥ हे रामजी ! जिसका अंतर मन शांत हुआ है, तिसको ससारके इष्ट अनिष्ट पदार्थ चलाय नहीं सकते, जैसे सिंहको मृग दु:ख दे नहीं सकते, तैसे ज्ञानवान्को जगत्के पदार्थ दुःख नहीं दे सकते, जिस पुरुपको आत्मानद प्राप्त भया है, तिसको विपयोंकी तृष्णा नहीं रहती, विपयों निमित्त दीन कदाचित् नहीं होता, जैसे जो पुरुप नदनवनविषे स्थित भया है, सो ककरेके वृक्षकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता ॥ हे रामजी ! जिस जिस पुरुपने जगत्को अविद्यारूप जानिकरि त्याग किया है, तिसके चित्तको जगत्के पदार्थ दु:ख दे नहीं सकते, जैसे विरक्तचित्त पुरुपकी स्त्री मरि जावै, तब उसको दु:ख नहीं होता, सो ज्ञानवान्के चितविषे भोगोंकी दीनता नहीं उपजती, जैसे नंदनवनविषे कटकका वृक्ष नहीं उपजता जिस पुरुपको आत्मबोध हुआ है, अरु संसारका कारण मोह निवृत्त भया है, सो जगत्के कार्यकर्त्ता दृष्ट आता है, परतु उसको स्पर्श नहीं करता, जैसे आकाशविषे अंधकार दृष्ट आता है, परतु आकाशको स्पर्श नहीं करता ॥ हे रामजी ! अविद्याके निवृत्तिका कारण विद्या है, और किसी

उपायते निवृत्त नहीं होती, जैसे प्रकाशविना तम निवृत्त नहीं होता, तैसे विचारविना अविद्या निवृत्ति नहीं होती, अविचारका नाम अविद्या है, अरु विचारका नाम विद्या है, जब अविद्या नष्ट होवैगी, तब विषयभोग स्वाद न देवैगे आत्मानंदकरि संतुष्टमान रहैगा ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्को विचारते इंद्रियोंके व्यवहार अंध नहीं कर सकते, जैसे जलविषे मच्छी रहती है,तिसको जल अंध नहीं कर सकता, और आप अध रहता है, तैसे ज्ञानवान् व्यवहारविषे भी अंध नहीं होता और जीव अंध हो जाते हैं, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त हो जाती है, अरु चित्त परमानंदको प्राप्त होता है, अरु रागद्वेषरूपी निशाचर नष्ट हो जाता है, तब बहुरि मोहको प्राप्त नहीं होता जिसके हृदय आकाशविषे आत्मज्ञानरूपी सूर्य उदय हुआ है, तिसका जन्म अरु कुल सफल होता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अपने अमृतको पाइकरि अपनेविषे शीतल होता है, तैसे जो पुरुष आत्मचिंतनाविषे अभ्यास करता है, सो शांतिको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! बुद्धि भी वही है, श्रेष्ठ दिन भी वही, अरु मृत्युभी वही है, अरु शास्त्रभी वही है, जिसकरि संसारते वैराग्य उपजै अरु आत्मतत्त्वकी चिंतना उपजै, जब आत्मपदको पाता है, तब इसका सब क्लेश मिटि जाता है, अरु जिसको आत्म चिंतनाविषे रुचि नहीं, सो महाअभागी है, चिरपर्यंत कष्ट पावैगा ॥ जन्मरूपी जंगलका वृक्ष होवैगा ॥ हे रामजी ! जीवरूपी बलध है, अरु अनेक आशारूपी फाँसियोंकरि बांधा है, अरु जरा अवस्थारूपी पत्थरोंके मार्गकरिकै जर्जरीभाव होता है भोगरूपी तलावडी गर्त्तविषे गिरा है कर्मरूपी भारकोलिये जन्मरूपी जंगलविषे भटकता हुआ कर्म चीकडविषे फँसा हुआ रागद्वेषरूपी मच्छरोंकरि दुःखी होता है, स्नेहरूपी रथको पकडि खैंचता है, अरु पुत्र स्त्रियादिककी ममतारूपी चीकडविषे गोते खाता है, अरु मोहससाररूपी मार्गविषे कर्मरूपी रथकेसाथ जोडता है, अरु ऊपरते अज्ञानरूपी तप्तताकरि जलता है, संतजन अरु सच्छास्त्ररूपी वृक्षकी छायाको नहीं पाता ॥ हे रामजी ! जीवरूपी बलध ऐसा है, सो निकसनेका यत्न करै, जब तत्त्वका अवलोकन करै, तब चित्तभ्रम नष्ट हो

जावै ॥ हे रामजी ! संसाररूपी समुद्र है, तिसके तरणेका उपाय सुन, महापुरुष संतजन हैं, सो मलाह है, अरु तिसकी युक्तिरूपी जहाज होवै, तिसकरि ससाररूपी समुद्रको तारि जावेगा, और उपाय कोई नहीं, यह परम उपाय है, जिस देशविषे संतजनरूपी वृक्ष नहीं, जिनकी फलोंसहित शीतल छाया है, नहीं तिस निर्जन देश मरुस्थल, विषे एक दिन भी न रहिए ॥ हे रामजी ! संतजनरूपी कैसे वृक्ष हैं, स्निग्ध अरु शीतल वचनरूपी जिनके पत्र है, अरु उनका प्रसन्न होना सुदर फूल हैं, अरु उनका निश्चय उपदेशरूपी फल है, जब यह पुरुष तिनके निकट जावै, तब महामोहरूपी तप्तताते छूटैगा, अरु शांतिको प्राप्त होवैगा, अरु तिनको पाइकरि तृप्त होवैगा, अरु तिन फलोंको पाइकरि अघावैगा, सब दुःखोते मुक्त होवैगा ॥ हे रामजी ! अपना आपही मित्र है, अरु अपना आपही शत्रु है, अपने आपको जन्मरूपी चीकड़विषे न डारै, जो देहविषे अहभावनाकरि विषयोंकी तृष्णा करता है सो अपना आपही नाश करता है, अरु जो देहभावको त्यागिकरि आत्म अभ्यास करता है, तब अपना आप उद्धार करता है, सो अपना आपही मित्र है, अरु जो आपको संसारसमुद्रविषे डारता है, सो अपना आपही शत्रु है ॥ हे रामजी ! प्रथम विचार यह करि देखै कि, जगत् क्या है, अरु कैसे उत्पन्न भया है, अरु कैसे निवृत्त होवैगा, अरु मै कौन हौं, अरु सत्य क्या है, अरु असत्य क्या है, ऐसे विचारकरि जो सत्य है तिसको अंगीकार करै, अरु जो असत्य है, तिसका त्याग करै ॥ हे रामजी ! न इसका धन कल्याण करता है, न मित्र बांधव न शास्त्र कल्याण करते हैं, अपना उद्धार आपही करता है, ताते अपने मनसाथ मित्राई करै, दृढ वैराग्य अरु अभ्यास करै तब ससार कष्टते छूटै, जब वैराग्य अभ्यासकरि तत्त्वके अवलोकनरूपी बेड़ी करै, तब ससारसमुद्रते तारि जाता है ॥ हे रामजी ! जीवरूपी हस्ती है, अरु जन्मरूपी गर्त्तविषे गिरा हुआ है, अरु तृष्णा अहंकाररूपी जजीरोंसे बाँधा है, अरु कामनारूपी मदकरि उन्मत्त है, जब तिनते छूटै, तब मुक्त होवै ॥ हे रामजी ! हृदयरूपी नेत्रोंविषे अनात्मा अभिमानरूपी मल रक्त हो गया है जब वि-

चाररूपी औषधीकरि तिसको दूर करिए, तब आत्मरूपी सूर्यका दर्शन होवै ॥ हे रामजी ! और उपाय कोई न करै, तो एक उपाय करै जो देहको काष्ठ लोष्टवत् जानिकरि इसका अभिमान त्यागै, जब अह अभिमानरूपी बादल नष्ट होवैगा, तब आपही आत्मारूपी सूर्य प्रकाश आवैगा, जब अहंकाररूपी बादल लय होवैगा, तब आत्मतत्त्वरूपी सूर्य भासैगा, सो परमानंदस्वरूप है, सुषुप्तिते मौन अकुर है, केवल अद्वैत तत्त्व है, वाणी करि कहा नहीं जाता, अनुभवकरिकै आपही जानाजाता है, हे रामजी ! सब जगत् अनंत आत्मा है, जब चित्तका दृढ परिणाम उसविषे होवै, तब स्थावरजंगमरूप जगत्विषे वही दिव्य देव भासैगा, और वासना सब निवृत्त हो जावैगी, केवल परमानंद आत्मतत्त्व अनुभवकरि दिखाई देवैगा, सो स्वरूप पूर्ण अद्वैत है, और सब जगत्का त्यागकरि तिसके पानेका यत्न करौ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे कारणोपदेशवर्णनं नाम एकोनषष्टितम· सर्ग· ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०.

भासविलासवृत्तान्तवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मनकरि मनको छेदो, अरु अह मम भावको त्यागो, जबलग मन नष्ट नहीं होता तबलग जगत्के दु ख निवृत्त नहीं होते जैसे मूर्त्तिका सूर्य मूर्त्तिके नष्ट हुएविना अस्त नहीं होता, जब मूर्त्ति नष्ट होवै तब सूर्यका आकार दूर हो जावै, तैसे जब मन नष्ट होवै, तब ससारके दु ख नष्ट हो जावैगे, अन्यथा नष्ट नहीं होते ॥ हे रामजी ! जैसे प्रलयकालविषे अनत दु ख होता है, तैसे मनके होनेकरि अनत दु ख होते है, जैसे मेघके वर्षणेकरि नदी बढती जाती है, तैसे मनके जागते आपदा बढती जाती हैं, इसही पर पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते है सो परस्पर सुहृदोंका है, तू श्रवण कर ॥ हे रामजी ! सह्याचल पर्वतोंविषे बडा पर्वत है, तिस उपर फूलोंके समूह है अरु नानाप्रकारके वृक्ष हैं अरु जलके झरने चलते हैं, मोतियोंके स्थान अरु स्वर्णके शिखर है कहूं देवताके स्थान हैं पक्षी शब्द

करते हैं, अरु तले क्रांत रहते हैं, ऊपर सिद्ध देवता विद्याधर रहते है पीठविषे मनुष्य रहते हैं, नीचे नाग रहते हैं, मानो संपूर्ण जगत्का गृह यही है, तिसके उत्तर दिशा सुंदर तलाव है, वृक्ष फूलोंकरि पूर्ण है, महासुंदर रचना स्वर्ग जैसी उपमा तिनकी, तहां अत्रि नाम ऋषीश्वर रहताथा, साधुओंके श्रम दूर करनेहारा था, तिसके आश्रमकेपास दो तपस्वी आनि रहे, जैसे आकाशविषे वृहस्पति अरु शुक्र आय हैं, तैसे यह दोनो रहे तिन दोनोंके गृहविषे दो पुत्र महासुंदर उत्पन्न भए, जैसे कमल उत्पन्न होवैं, तैसे उत्पन्न भए एकका नाम भास, एकका नाम विलास भया, दोनों क्रमकरि वड़े हुए जैसे अंगुरीके दोनों पत्र हैं, सो वढते है, तैसे वढ़ते जावैं, अरु परस्पर तिनकी प्रीति वहुत वढ़ी अरु इकट्ठेही रहै, जैसे तिल अरु तेल इकट्ठेही रहते हैं, जैसे फूल अरु सुगंधि इकट्ठे रहते हैं, जैसे स्त्री अरु पुरुपकी प्रीति आपसमें होती है, तैसे उनकी प्रीति वढ़ी अरु देखनेमात्र तो दो मूर्त्ति दृष्ट आवैं, परतु मानो एकही हैं, स्नान आदिक क्रिया भी तिनकी एक समान, मानसी क्रियाभी एक समान, अरु महासुंदर प्रकाशवान्, जैसे चंद्रमा अरु सूर्य हैं, तैसे जव केताक काल व्यातीत भया, तव तिनके माता पिता शरीरको त्यागिकरि स्वर्गको गये, तिनके वियोगते दोनों शोकवान् भए, जैसे कमलकी कांति जलविना जाती रहै, तैसे उनके मुखकी कांति कुम्हलाय गई, फेरि इनके मरनेकी क्रिया सव करते भए, पाछे उनके गुण स्मरण करिकै विलाप कर महाशोकवान् होवैं, महापुरुष भी लोकमर्यादा लंघते नहीं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार शोककरि उनका शरीर कृश हो गया ॥ इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणे भासविलासवृत्तांतवर्णनं नाम पष्टितम• सर्ग• ॥ ६• ॥

एकपष्टितमः सर्गः ६१.

अनित्यताप्रकरणम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे उजाड वनका वृक्ष जलविना सूख जाताहै, तैसे उनका शरीर सूख गया, तव दोनों विगतज्वर होइकरि विचरने लगे, जैसे यूथ समूहसों विछुरा हरिण शोकवान् होताहै, तैसे आपसमें

बिछुरि गए अरु शोकको प्राप्त भए,एकले एकले फिरने लगे, निर्मल ज्ञान तिनको प्राप्त न था, सो जब केताक काल व्यतीत भया तब बहुरि आय मिले अरु विलास कहत भये ॥ हे भाई! मेरे हृदयको आनंद देनेहारे अमृतके समुद्र जीवनेरूपी जो वृक्ष है, तिसका फल सुख है, सो तू एताकाल क्या सुखसों रहा है अरु तेरा मेरा वियोग हो गया,तब तू कैसी क्रिया करत भया, क्या तुझने कछु निर्मल चित्त किया है, क्या तुझने अब आत्मपद पाया है अरु क्या तेरी बुद्धि शोकते रहित है अब तुमको क्या विद्या फली है क्या तू अब कुशलरूप हुआ है ॥ भास उवाच ॥ हे साधो! अब हमको कुशल भया है, जो तेरा दर्शन भया है, अरु जो जगत्‌विषे कहौ तो कुशल कहां है, इस संसारविषे स्थित हुए हमको सुख अरु कुशल कहा है, हे साधो! जबलग ज्ञेय परमात्मतत्त्वको नहीं पाया, अरु जबलग चित्तभूमिका क्षीण नहीं भई, अरु जबलग संसारसमुद्रको नहीं तरै, तबलग कुशल कहां है, जबलग चित्तसों दुःख निवृत्त नहीं होता, तबलग चित्तकी भूमिका नष्ट नहीं होती, जबलग संसारसमुद्रते पारको प्राप्त नहीं भया, तबलग हमको सुख कहाँ है जबलग चित्तरूपी क्षेत्रविषे आशारूपी कंटकोंकी बल्ली बढती जाती है, सो आत्मविचाररूपी रात्रिसाथ नहीं काटी, तबलग हमको कुशल कहां, जबलग आत्मज्ञान उदय नहीं भया, तबलग हमको कुशल कहा है ॥ हे साधो! संसाररूपी विषूचिका रोग है, आत्मरूपी औषधविना दूर नहीं होता, सब जीव नित्य वही क्रिया करते हैं, जिसकरि दुःखकी प्राप्ति होवै है, सुखको नहीं प्राप्त होते, देहरूपी एक वृक्ष है, तिसविषे बाल अवस्थारूपी पत्र हैं, यौवन अवस्थारूपी फूल है, वृद्ध अवस्थारूपी फल हैं, सो मृत्युके मुखमें जाय पडता है, उपजता है, बहुरि नष्ट होता है, यह सुख जो लवाकार है, अरु दुःख जिसका स्थावर दीर्घते दीर्घ है, ऐसे जो शुभ अशुभ आरंभ हैं, तिनविषे इनको दिन रात्रि व्यतीत होते हैं ॥ हे साधो! चित्तरूपी हस्ती है, सो वैराग्यरूपी सांकरविना दूरते दूर तृष्णारूपी हस्तिनीके पाछे चला जाता है, जैसे दृढपक्षी मांसकी ओर चला जाता है, तैसे चित्त विषयोंकी ओर धावता है, आत्मारूपी जो

चिंतामणि है, तिसकी ओर नहीं जाता, अहंकाररूपी जो इछ है सो देहादिकरूपी मांसको धावता है, अरु सुखरूपी जो कमल है, अपमानरूपी धूलकरि धूसर हो जाता है, अरु योगरूपी वर्फकरि नष्ट हो जाता है ॥ हे साधो ! देहरूपी कूपविषे गिरा है, भोगरूपी तिसविषे सर्प है, अरु आशारूपी कटक है, तृष्णारूपी जल है, तिसविषे यह दुःख पाता है ॥ हे साधो ! नानाप्रकारके रंगरंजनारूपी जिसविषे रंग है, अरु जिसविषे तृष्णारूपी चंचलता है ऐसे चैत्य दृश्यविषे मग्न है चित्तरूपी एक ध्वजा है, सो कालरूपी चचलता वायुकरि भासती है, चित्तरूपी समुद्र है, अरु चितारूपी तिसविषे घुमर घेर है, जीवरूपी तृण तिसविषे आय कष्ट पाता है, अरु बुद्धिरूपी पक्षिणी है, वासनारूपी जालविषे कष्ट पाती है, यह मैंने किया है, यह करता हौ, यह करौंगा, इसी वासनारूपी जालविषे बुद्धिरूपी पक्षिणी कष्ट पाती है, एक क्षण भी विश्रामवान् नहीं होती ॥ हे भाई ! यह चित्तरूपी कमल है, इसको रागद्वेषरूपी हस्ती चूर्ण करता है, कि यह मेरा सुहृद् है, यह मेरा शत्रु है, अह मम इसको मारता है, शुद्ध आत्मरूपको त्यागिकरि देहादिक अनात्मारूपविषे अहंभाव करता है, अरु दीनताको प्राप्त होता है, जैसे राज्यते रहित राजा कष्ट पाता है, तैसे आत्मभावते रहित कष्ट पाता है, देहाभिमान करिकै जन्ममरणके दुःखोंको देखता है, जब देहाभिमानका त्याग करै, तब कुशल होवै अन्यथा कुशल नहीं होता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे अनित्यताप्रकरण नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

अन्तरासगविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार उनने परस्पर कुशलका प्रश्न किया, जब केताक काल व्यतीत भया, तब अभ्यासद्वारा उनको निर्मल ज्ञान प्राप्त भया, अरु मोक्षपदको प्राप्त हुये, ताते हे रामजी ! ज्ञानते और मार्ग कल्याणनिमित्त कोऊ नहीं, जिसका चित्त आशारूपी

फासीसे बाँधा हुआ है, सो संसारसमुद्रके पार होनेको समर्थ नहीं होता, ताते जीव संसारसमुद्रविषे गोते खाता है, अरु ज्ञानवान् शीघ्रही तरि जाता हैं, जैसे गोपद लघनेविषे सुगम होता है, अरु जिस पक्षीके पक्ष टूटे हैं, सो समुद्रको नहीं तर सकता, बीचमेंही गिरिकै गोते खाता है, अरु पंखोंसे गरुड शीघ्रही लंघि जाता है, तैसे जिन पुरुषोंके वैराग्य अरु अभ्यास रूपी पंख टूटे हैं, सो संसारसमुद्रते पार नहीं हो सकते अरु जिन पुरुषोंके वैराग्य अभ्यासरूपी पख हैं ऐसे ज्ञानवान् शीघ्रही तरि जाते हैं ॥ हे रामजी ! जो देहते अतीत महात्मा पुरुष चिन्मात्रतत्त्वविषे स्थित हुए हैं, सो ऊंचे होकरि देखते हैं, अरु अपने देहको देखि हँसते हैं जैसे सूर्य जनताको देखि हँसता है, अर्थ यह कि, जगत्की क्रियाते निर्लेप रहता है, जैसे रथके टूटेते रथ वायुको खेद कछु नहीं, तैसे देहके दुःखकरि ज्ञानवान्को खेद कदाचित् नहीं होता, अरु मनके क्षोभकरि भी आत्मतत्त्वविषे कछु क्षोभ नहीं होता, जैसे तरगके ऊपर धूलि परती है, तिसकरि समुद्रको कछु लेप नहीं होता, तैसे मनके दुःखकरि आत्माको क्षोभ नहीं होता ॥ हे रामजी ! देह अरु आत्माका संयोग कछु नहीं, जैसे जल अरु हसका सयोग कछु नहीं, जैसे जल अरु वेडीका सबंध कछु नहीं, तैसे देह अरु आत्माका सबंध कछु नहीं, जैसे पहाड़ समुद्रका सबंध कछु नहीं, जैसे जल अरु पत्थर अरु काष्ठ एक ठौर रहते हैं, परंतु सबंध कछु नहीं, जैसे जल अरु वेडी सघट्ट होता है, तो जलकणके उठते हैं तैसे देह अरु आत्माके सयोगते चित्तवृत्ति फुरती है ॥ हे रामजी ! इसको दुःख जो होता है, सो सगकरि होता है, जहां अहं मम अभिमान होता है, तहां दुःख भी होता है, अरु अहं ममका अभिमान नहीं, तहां दुःख भी कछु नहीं, अरु मच्छीको जलविषे ममत्व होता है, तिसके वियोगकरि कष्ट पाती है, तैसे जिस पुरुषको देहविषे अहं ममभाव है, सो बड़ा कष्ट पाता है, अरु जिसको देहविषे अभिमान नहीं, तिसको दुःख भी कछु नहीं ॥ हे रामजी ! ज्यों ज्यों मनते समगंता निवृत्त होती है, त्यों त्यों भोग प्रवाह कष्ट नहीं देते जैसे जल अरु पत्थरको कष्ट नहीं होता, जैसे दर्पण-विषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है, सो दर्पणको प्रतिबिंबका सग नहीं होता अरु

चिंतामणि है, तिसकी ओर नहीं जाता, अहंकाररूपी जो इछ है सो देहादिकरूपी मांसको धावता है, अरु सुखरूपी जो कमल है, अपमानरूपी धूलकरि धूसर हो जाता है, अरु योगरूपी वर्फकरि नष्ट हो जाता है ॥ हे साधो! देहरूपी कूपविषे गिरा है, भोगरूपी तिसविषे सर्प है, अरु आशारूपी कटक है, तृष्णारूपी जल है, तिसविषे यह दुःख पाता है ॥ हे साधो! नानाप्रकारके रंगरंजनारूपी जिसविषे रंग है, अरु जिसविषे तृष्णारूपी चंचलताहै ऐसे चैत्य दृश्यविषे मग्न है चित्तरूपी एक ध्वजा है, सो कालरूपी चचलता वायुकरि भासती है, चित्तरूपी समुद्र है, अरु चितारूपी तिसविषे घुमर घेर है, जीवरूपी तृण तिसविषे आय कष्ट पाता है, अरु बुद्धिरूपी पक्षिणी है, वासनारूपी जालविषे कष्ट पाती है, यह मैंने किया है, यह करता हौं, यह करौंगा, इसी वासनारूपी जालविषे बुद्धिरूपी पक्षिणी कष्ट पाती है, एक क्षण भी विश्रामवान् नहीं होती ॥ हे भाई! यह चित्तरूपी कमल है, इसको रागद्वेषरूपी हस्ती चूर्ण करता है, कि यह मेरा सुहृद् है, यह मेरा शत्रु है, अह मम इसको मारता है, शुद्ध आत्मरूपको त्यागिकरि देहादिक अनात्मारूपविषे अहंभाव करता है, अरु दीनताको प्राप्त होता है, जैसे राज्यते रहित राजा कष्ट पाता है, तैसे आत्मभावते रहित कष्ट पाता है, देहाभिमान करिकै जन्ममरणके दुःखोंको देखता है, जब देहाभिमानका त्याग करे, तब कुशल होवै अन्यथा कुशल नहीं होता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे अनित्यताप्रकरणं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

अन्तरासंगविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार उनने परस्पर कुशलका प्रश्न किया, जब केताक काल व्यतीत भया, तब अभ्यासद्वारा उनको निर्मल ज्ञान प्राप्त भया, अरु मोक्षपदको प्राप्त हुये, ताते हे रामजी! ज्ञानते और मार्ग कल्याणनिमित्त कोऊ नहीं, जिसका चित्त आशारूपी

जिसका चित्त देहादिकोंविषे बंधमान है, तिसको नानाप्रकारका भ्रमरूप जगत् भासता है, अरु जिसका चित्त देहादिकोंविषे बंधमान नहीं, सो एक आत्मभावको देखता है, जैसे टूटी आरसीविषे अनेक प्रतिबिंब भासते हैं, अरु सारी एकही प्रतिबिंबको ग्रहण करती है, तैसे ससंशयित चित्तविषे नानाप्रकारका जगत् भासता है. अरु शुद्धचित्तविषे एक आत्मा भासता है॥ हे रामजी! जो पुरुष व्यवहार करता, अरु संगते रहित है, ऐसे जो निर्मल पुरुष है, सो संसारते मुक्त है अरु जो सर्व व्यवहारको त्यागि बैठा है अरु तप भी करता है, अरु अंतर चित्त आसक्त है, सो बंधनमें है। अरु जो अंतरसंगते रहित है सो मुक्त है, अरु अंतरचित्त किसी पदार्थविषे बंध है, सो बंध है बन्ध अरु मुक्तका एताही भेद है, अंतर असंग है सो सर्व कार्यकर्त्ता भी अकर्त्ता है, जैसे नट स्वांगको धरता भी अलेप है, तैसे वह पुरुष अलेप है, अरु जो अंतर अभिमानसहित है, सो कछु नहीं करता है, तो भी करता है, जैसे सर्व व्यवहार त्यागिकरि शयन करता है, अरु स्वप्नविषे अनेक सुख दुःख भोगता है तैसे वह सब कछु कर्त्ता है चित्तके करनेकरि कर्त्ता है, चित्तके अकरनेकरि, अकर्त्ता है, शरीरकरि करना सो करना नहीं, अरु शरीरकरि अकरना सो अकरना नहीं जो ब्रह्महत्या करता है, तौ असंसक्त पुरुषको कछु पाप नहीं लगता अरु जो अश्वमेध यज्ञ करे तौ कछु पुण्य नहीं होता, जिसके चित्तते सर्व आसक्तता दूर भई है, सो पुरुष मुक्तस्वरूप है, अरु धन्य धन्य है, अरु जिसका चित्त आसक्त है, सो बंध अरु दुःखी है, जो पुरुष आसक्तताते रहित है, सो आकाशकी नाई निर्मल है, समभाव एक अद्वैत आत्मतत्त्वविषे स्थित है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे अंतरासंगविचारो नाम द्विषष्टितमः सर्गः॥ ६२॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३.

ससक्तविचारवर्णनम्।

राम उवाच॥ हे भगवन्! संग किसको कहते हैं, अरु बंधरूप संग किसको कहते हैं, अरु मोक्षरूप संग किसको कहते हैं, अरु संगबंधनोंते

कष्ट भी नहीं होता, तैसे जब देहविषे ससर्गभाव उठि जावै, तब कष्ट कोई नहीं होता, जैसे दर्पणको कछु नहीं होता, तैसे आत्मा अरु जगत्की क्रिया है॥ हे रामजी! सर्वथा संवित्मात्र आत्मतत्त्व स्थित है, सो शुद्ध है, द्वैत शब्दके फुरणेते रहित है, जो तिसविषे स्थित है, तिसको द्वैत शब्द नहीं फुरता, अरु जो अज्ञानी है, तिसको द्वैतकलना उठती है॥ हे रामजी! यह सब जीव अदुःखरूप हैं, परंतु अज्ञानभ्रमकरि आपको दुःखी जानते हैं, जैसे स्थाणुविषे चोरभावना अविचारकरि होती है, तैसे आत्माविषे दुःखकी भावना अविचारकरि होती है॥ यह पुरुष अशब्द रूप है, परंतु कलनाके वशते आपको संबंधी जानता है, जैसे स्वप्नविषे अगना वधन करती है, जैसे स्थानविषे वेताल भासता है, अरु भयको प्राप्त करता है, तैसे अपनी कल्पनाकरि बंधमान होता है॥ हे रामजी! देह अरु आत्माका सबंध असत्य है, जैसे जल अरु वेडीका संबंध असत्य है, जब जलका अभाव होवै, तब वेडीको चिंता कछु नहीं होती अरु वेड़ीका अभाव हो जावै तौ जलको कछु चिंता नहीं होती ताते असत्य सबंध है, तैसे आत्मा अरु देहका सबध असत्य है, जब ऐसे जानकरि अंतर संगते रहित होवै, तब देहका दुःख कछु नहीं लगता, देहके दुःखविषे आपको दुःखी मानना, देहविषे अहभावनाकरि आत्मा दुःखी होता है, जब देहविषे अभिमानको त्यागि देवै, तब सुखी होवै, ऐसे बुद्धीश्वर कहते हैं, जैसे जल अरु पत्थर इकट्ठे रहते हैं, परंतु अंतरसगका अभाव है, ताते दुःख कछु नहीं लगता, तैसे अतरते सगरहित होवै तब देह इंद्रियोंके होते भी दुःखका स्पर्श कछु न होवै निर्दुःख पदविषे प्राप्त होवै॥ हे रामजी! जिसको देहविषे आत्माभिमान है, तिसको जन्म मरण दुःखरूप ससार है, जैसे बीजते वृक्ष उत्पन्न होता है, तैसे देहाभिमानते सुखदुःखरूप ससार उत्पन्न होता है, अरु संसारसमुद्रविषे डूबता है, अरु जो अतरसंगते रहित होता है, सो ससारसमुद्रके पारको प्राप्त होता है॥ हे रामजी! जिसके अंतर देहाभिमान है, तिसके चित्तरूपी वृक्षविषे अनेक मोहरूपी शाखा उत्पन्न होती हैं, अरु जो अतर संगते रहित है, तिसका मोह लीन हो जाता है, वह चित्त लीन कहाता है,

उगते हैं, अरु दात्रीसाथ काटते हैं, सो अंतर दुःख पाते हैं, बहुरि बोता, बहुरि काटते हैं, सो ससक्तताका फल भोगते हैं, इसप्रकार योनिको पाते हैं, अरु कष्टमान् होते हैं, सो संसक्त हैं, हरे तृणोंको हिरण खाते हैं, अरु वधिक इसको बाणकरि मारता है, अरु कष्टमान् होता है, जो जीव तुझको दृष्ट आते हैं, सो इसप्रकार ससक्ततांकरि बांधे हुये हैं, सो ससक्तता भी दो प्रकारकी है, एक बंध है, एक बंधन करने योग्य है, जो मूढ जीव है, अरु जो तत्त्ववेत्ता है, सो वंदना करने योग्य है ॥ हे रामजी ! आत्मतत्त्वते जो गिरा है, अरु देहादिकविषे अभिमानी हुआ है, सो मूढ है, ससारविषे जन्ममरणको प्राप्त होता है, अरु जिसको आत्मतत्त्वका ज्ञान हुआ है, अरु निष्ठा है, सो वंदना करने योग्य है, तिसको बहुरि जन्म मरण ससार नहीं होता, शंख चक्र गदा पद्म जिसके हाथविषे हैं, अरु आत्मतत्त्वविषे निश्चय है, आत्मतत्त्वविषे ससक्त है, अरु तीन लोककी पालना करता है, सो वंदना करने योग्य है, अरु जो निरालंब सूर्य आकाशविषे विचरता है, अरु सदा स्वरूपनिष्ठा है, सो वंदना करने योग्य है, अरु जो महाप्रलयपर्यंत जगत्को उत्पन्न करता है, अरु सदाशिव स्वरूपविषे ससक्त है, ब्रह्मारूप होकरि विराजता है, सो वंदना करने योग्य है, अरु जो लीलाकरि स्त्रीको अर्धांग रखता है, उसके प्रेमरूपी बंधनसाथ बांधा है, अरु विभूतिको लगाता है, सदा स्वरूपविषे संसक्त है, शंकरवपुको धारिकरि स्थित है, सो वंदना करने योग्य है, इसते आदि लेकरि सिद्ध देवता विद्याधर लोकपाल जिनकी संसक्ति स्वरूपविषे है, सो मुक्तस्वरूप है, अरु वंदना करने योग्य है, अरु जो देहादिकोंविषे ससक्त है, सो बंध है, जन्म जरा मृत्युको पाता है, अरु कष्टमान होता है॥ हे रामजी ! जिनको शरीरविषे अभिमान है, अरु बाहरते उदार भी दृष्ट आता है, परंतु जब भोगोंको देखता है, तब इसप्रकार गिरता है, जैसे मांसको देखिकर आकाशते इल पखेरू गिरते हैं, तैसे ये गिरते हैं, अरु वृथा यत्न करते हैं ॥ हे रामजी ! ससक्त जो जीव है, सो बांधे हुए कहूं देवतारूप धारी स्वर्गविषे रहते हैं, कहूं मनुष्यलोकविषे रहते हैं, कहूं

मुक्त किसको कहते हैं, अरु किस उपायकरि मुक्त होता है, सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देह अरु देहीका जो विभाग है, तिसका त्याग कर, अरु तिससाथ जो मिलिकरि करता है, अरु देहमात्रविषे अपना विश्वास करता है, जो एताही मात्र मैं हौं, इसीको सग अरु बंध कहते है ॥ हे रामजी ! आत्मतत्त्व अनंत है, अरु देहमात्रविषे अहंभावनाकरि आपको एता मान पुरुप जानता है, तिसाविषे अभिमान करता है, अरु सुखकी इच्छा करता है, इसका नाम बंध अरु संग कहते हैं, अरु जिसको यह निश्चय हुआ है, कि सर्व आत्माही है, किसकी इच्छा करौं, अरु किसका त्याग करौं, इस असंगकरि जीवन्मुक्त कहाता है, अथवा न मैं हौं, न यह जगत है, सर्व भाव अभावको त्यागिकरि अद्वैत सत्ताविषे स्थित होता है, इसका नाम जीवन्मुक्त है, न कर्मोंके त्यागकी इच्छा है, न करनेकी इच्छा है अरु अंतरते कर्तृत्वभाव नहीं इस संगका जिसने त्याग किया है, सो असंग कहाता है ॥ हे रामजी ! जिसको आत्मतत्त्वविषे निश्चय है, अरु राग द्वेप हर्प शोकके वश नहीं होता, सो असंसर्ग कहाता है, अरु सर्व कर्मोंका फल जिसने त्याग किया है, कि मैं कछु नही करता, ऐसा जो मनकरि त्यागी है, सो अससर्ग कहाता है, तिसको कोऊ कर्म बधन नही करि सकता, सर्व संपदा तिसको होती हैं, अरु जो ससक्त पुरुप कर्तृत्वभोक्तृत्वके अभिमानसहित है, तिसको अनंत दु ख उत्पन्न होते है, जैसे कोई गर्त्तविपे गिर पड़े, तिसविषे कटकोंके वृक्ष होवैं, तिसकरि कष्ट पाता है, तैसे ससक्त पुरुप कष्ट पाता है ॥ हे रामजी ! सगके वशते विस्तृत दु खकी परपरा उत्पन्न होती हैं, जैसे टोथेके वृक्षसाथ कटक उत्पन्न होवैं ॥ हे रामजी ! जैसे नासिकाविषे रसडी पाइकरि ऊंट, बैल, गंधर्व भार उठाये फिरते है, अरु मार खाते हैं, तैसे ससक्त पुरुप आशारूपी फांसीसाथ बांधे हुये दु ख पाते है, वही ससक्तताका फल ऊंटादिक भोगते हैं, जलविषे रहते है, शीत उष्णकरि कष्टमान होते हैं, अरु कुहाडेसाथ काटते है, इसप्रकार ससक्तताका फल वृक्ष भोगते हैं, पृथ्वीके छिद्रविषे कीट होते है, अरु अंगपीडाकरि कष्ट पाते हैं, सो संसक्तताका फल पाते है, और जो कियादिक अन्नादिक

सुखी होवैगा अरु चंद्रमाकी नाई शीतल मुक्तरूप है, अविद्यारूपी विपूचिका रोग तिसका नष्ट हो जाता है, शांतरूप होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसक्तविचारो नाम त्रिषष्टितम सर्ग. ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४.

शांतसमाचारयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो मैंने तुझको उपदेश किया है, तिसको विचार करि अभ्यास कर, जो सर्वकाल सर्व स्थान सर्व कर्मोंको कर्ता चित्तको देहादिकविषे संसक्ति मत कर, केवल आत्मचेतनविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! न संसक्तविषे, चित्त होवै, न चेष्टाविषे चित्त होवै, न किसी वस्तुविषे सत्य जानि चित्त होवै, न आकाशविषे, न अधविषे न ऊर्ध्व, न दिशाविषे, न बाहर, न अंतर, चित्त होवै, न प्राणोंविषे, न उरविषे, न मूर्धा तालुविषे, न भौंहके मध्यविषे, न नासिकाविषे, न जाग्रद्स्वप्नसुषुप्तिविषे, न तम न प्रकाशविषे, न श्यामवर्ण, न रक्त पीत श्वेतविषे, न स्थिरविषे, न चलविषे, न आदि, न अंतविषे, न मध्यविषे, न दूर न निकटविषे, किसी पदार्थविषे, न चित्तादि अंत करणविषे, न शब्द स्पर्श रूप रस गंधविषे, न कलना अकलनाविषे, चित्तको लगावहु, सर्व ओरते चित्तको वर्जिकारि चेतनतत्त्वविषे विश्राम कर कछुक द्वैतको लेकरि चेतनतत्त्वका आश्रय न कर. हेरामजी ! जब सर्वते निराश हुआ, अरु आत्मतत्त्वविषे स्थित हुआ, तब विगतसंग होवैगा, जीवका जीवतत्त्व चलता रहैगा, केवल चिदात्मा होकरि स्थित होवैगा, सर्व व्यवहार करै, अथवा न करै, करते भी अकर्ता होवैगा, अथवा इसका भी त्यागकरि केवल चिदानंद शांतरूप जो तत्त्व है, तिसविषे स्थित होउ, अद्वैतरूप तत्त्व स्वाभाविक भासैगा, जैसे बादलोंके दूर भये सूर्य स्वाभाविक भासि आवैगा, तैसे फुरणेते रहित चेतनतत्त्व भासि आवैगा ॥ जैसे चिंतामणि प्रकाशरूप स्वाभाविक भासि आती है, तैसे आत्मा प्रकाश स्वाभाविक भासि आवैगा, बहुरि जो कछु क्रिया करैगा, सो

सर्प आदिक पातालविषे रहते हैं, तीनों लोकोंविषे भटकते फिरते हैं, जैसे गूलरविषे मच्छर रहते है, तैसे ब्रह्मांडविषे ससक्त जीव रहते है, अरु मिट जाते है, कालरूपी वालकका जीवरूपी गेंद है, कभी अधको उछालता है, कभी ऊर्ध्वको उछालता है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् है सो सब असत्यरूप है, मनरूपी चितेरेने सगरूपी रगसाथ शून्य आकाशविषे देहादिक जगत् लिखा है, सो सब असत्यरूप है, जैसे समुद्रविषे तरग उपजते अरु मिट जाते है, तैसे जीव ब्रह्मांडविषे उपजते रहते है, जिसका मन देहादिकविषे संसक्त है, सो तृष्णारूपी अग्निकरि तृणोंकी नाईं जलते हैं ॥ हे रामजी ! जो ससक्त पुरुप हैं तिनके शरीर पानेकी कछु सख्या नहीं, मेरुके शिखरते लेकरि चरणों-पर्यंत गंगाका प्रवाह चले, तरंगोंसहित तिसके मोतियोंवत् जो लव-कण-के है, तिनके गिननेकी सख्या होवै, परतु संसक्त जीवके शरीर गिननेकी संख्या नहीं, अरु जेती कछु आपदा है, सो तिनको प्राप्त होती है, जैसे समुद्रविषे सब नदियां आय प्राप्त होती है, तैसे सब आपदा तिसको प्राप्त होती हैं ॥ हे रामजी ! जो देह अभिमानी सदा विषयोंकी सेवना करता है, सो रौरव कालसूत्र आदिक जो नरक है, सो नरक अग्निकी लकडियां होवैगे, जलैगे, कष्ट पावैगे, और जेते कछु दुःखके स्थान है, सो सब ससक्त जीवको प्राप्त होवैंगे, अरु जो असग सगति चित्त हैं, तिन पुरुषोंको सब विभूति पदार्थ प्राप्त होवैंगे, जैसे वर्षाकाल-विषे नदियां जलकरि पूर्ण होती हैं, जैसे मानससरोवरविषे सब हंस आनि स्थित होते हैं, तैसे अससक्तचित्त पुरुषको सब सपदा प्राप्त होती है, अरु जिस पुरुषका देहाभिमान बढ़ि जाता है, सो विषकी नाईं जान अरु जिसका देहाभिमान घटि जाता है, तिसको अमृतरूप जान, विष ज्यों ज्यों बढ़ता है, त्यों त्यों मारता है, अरु अमृत ज्यों ज्यों बढ़ता है, त्यों त्यों अमर करता है, हे रामजी ! जो पुरुष देहा-भिमानका त्यागकरि स्वरूपविषे संसक्त होता है, सो सुखी होता है अरु जिसको अतर दृश्यका संग है, तिसको यह संसक्तरूपी अंगार अंगोंको जलावैगा, अरु जिसके अतर संग नहीं वह असगरूपी अमृतकरि

कहाता है ॥ हे रामजी ! जो आत्मारामी पुरुष है, तिसको आत्मज्ञानके अभ्यासकरि संसक्तता निवृत्त होजाती है, अन्यथा संसक्तभाव निवृत्त नहीं होता, जब चित्त परिणाम आत्माकी ओर होवैगा, जैसे चंद्रमा परिणामके वशते अमावास्याको सूर्यरूप हो जाता है, तैसे चित्त दृढपरिणामके वशतें आत्मरूप हो जाता है, जब चित्त चैत्यभावते हीन होता है, तब क्षीणचित्त कहाता है, अरु शांत कलना कहाता है, तब जाग्रत इसको सुषुप्तिरूप हो जाता है, तिस अवस्थाविषे जो कछु क्रिया करता है, सो फलका आरंभ नहीं होता, काहेते कि, निरहंकार हो जाता है, जैसे यंत्रीकी पुतली अहंकारते रहित चेष्टा करती है, अरु संवेदनते रहित है, तिसको कोऊ दुःख नहीं होता, तैसे निरहंकार निःसंवेदन पुरुष निर्दुःख अरु निर्लेप कहाता है ॥ हे रामजी ! इष्ट अनिष्ट भावअभावरूपी जगत् चित्तविषे होता है, जब चित्त आत्मभावको प्राप्त हुआ, तब किसकरि किसको किसका बंधन होवै, सर्व आत्मतत्त्व होता है, जैसे नट सर्व स्वांगको धारता है, अरु अपना अभिमान किसीविषे नहीं होता, तैसे सुषुप्ति बोध पुरुष जगतकी क्रिया करता है, अरु बंधमान नहीं होता, जीवन्मुक्त होकरि स्थित होता है ॥ हे रामजी ! सुषुप्तिबोधको आश्रय करिकै जगत्की क्रिया करो, क्रिया कर्म कर्ता त्रिपुटीकी भावनाते रहित होहु, तब तुमको दुःख कछु न होवैगा, न आदानविषे न त्यागविषे अभिमान होवैगा, यथाप्राप्तिविषे स्थित होवैगा, सुषुप्ति बोधविषे स्थित है, सो कर्ता हुआ भी कछु नहीं करता, ऐसे निश्चयको धारिकरिकै जैसे इच्छा होवै तैसे करो ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्की चेष्टा बालकवत् होती है, जैसे बालक अभिमानते रहित पिंगुडेविषे अंगोंको हिलाता है, तैसे ज्ञानवान् अभिमानते रहित कर्म करता है, फलका स्पर्श नहीं होता, जब चित्त अचित्तरूप हो जाता है, तब जाग्रत जगत् सुषुप्तिरूप हो जाता है, अरु जो कछु क्रिया करता है, सो स्पर्श नहीं करती ॥ हे रामजी ! इसको जब जगतते सुषुप्तिदशा प्राप्त भई, तब इसका अंतर शीतल हो जाता है, रागद्वेष कछु नहीं फुरते, आत्मानंदकरि पूर्ण होता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे वह शोभता है, जो सुषुप्ति बोधविषे स्थित है,

फलदायक न होवैगी, जैसे कमलको जल नहीं स्पर्श करता तैसे तुझको क्रिया स्पर्श न करैगी, अरु चित्त आत्मगत निर्वाणरूप होवैगा, क्रिया कर्ता भी अकर्ता रहैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे शांतसमाचारयोगोपदेशो नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ६५.

ससक्तचिकित्सावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! असंसक्त पुरुष है सो ध्यान करे, अथवा व्यवहार करै, सदा ध्यानविषे स्थित है, अरु शोकते रहित है, जैसे बाह्य क्षोभमान् दृष्ट आता है, परंतु अंतर सर्व कलनाते रहित है, वह संपूर्ण लक्ष्मीकरि शोभता है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषका चित्त चैत्यते रहित अचलचित्त है, सो विगतज्वर है, तिसको कछु दुःख स्पर्श नहीं करता, जैसे जल कमलोंको स्पर्श नहीं करता, किन्तु वह औरोंको भी निर्मल करता है, जैसे निर्मली मलीन जलको निर्मल करती है, तैसे वह जनताको निर्मल करता है, अरु जो आत्मतत्त्वविषे लीन है, सो क्षोभमान भी दृष्ट आता है, परंतु क्षोभ कदाचित् नहीं, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब क्षोभमान् दृष्ट आता है परंतु सूर्यको क्षोभ कदाचित् नहीं, तैसे ज्ञानवान्का चित्त क्षोभायमान् दृष्ट आता है, तौ भी क्षोभ कदाचित् नहीं॥ हे रामजी! आत्मारामी जो पुरुष है, सो बाह्य मोरके पुच्छवत् चचल भी दृष्ट आता है, परंतु अंतर सुमेरु पर्वतकी नाईं अचल है, जिनका चित्त आत्मपदविषे स्थित भया है, तिनको सुख दुःख अपने वश करि सकते, जैसे फाटकको प्रतिबिंबका रंग नहीं चढता, तैसे ज्ञानवानको सुखदुःखका रंग नहीं चढता, जिस पुरुषको परावर ब्रह्मका साक्षात्कार हुआ है, तिनका चित्त रागद्वेषकरि रंजित नहीं होता, जैसे आकाशविषे बादल दृष्ट आता है, परंतु आकाशको स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्के चित्तको रागद्वेष स्पर्श नहीं करते, जो आत्मध्यानी है, जिसको परम बोधका साक्षात्कार भया है, अरु कलनामलते मुक्त हुआ है, सो पुरुष असंसक्त

षट्षष्टितमः सर्गः ६६.

संसारयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जबलग तुरीयापदविषे स्थित होता है, तबलग केवल जीवन्मुक्त होता है, इसते उपरांत विदेहमुक्त तुरीयातीत है, सो वाणीका विषय नहीं, जैसे आकाशको भुजाकरि कोई पकडि नहीं सकता, तैसे तुरीयातीत वाणीका विषय नहीं, तुरीयातीत पदते विश्रांति भी दूर है, विदेहमुक्त कर पाता है अब तुम कछुक काल ऐसी सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित हो, पाछे परमानदपदविषे स्थित होना ॥ हे रामजी ! तुरीयावस्थाविषे जो स्थित हुआ है, सो निर्द्वंद्वभावको प्राप्त हुआ है, जब तू सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित होवैगा तब जगत्के कार्य भी करता रहैगा सदा पूर्ण रहैगा, उदय अस्तके भावको कदाचित् प्राप्त न होवैगा, जैसे मूर्तिका चंद्रमा लिखा उदय अस्तको नहीं प्राप्त होता है, तैसे तू उदय अस्तभावको प्राप्त न होवैगा ॥ हे रामजी ! इस शरीरको आप जानिकरि रागदोषविषे जलता है, जिस पदार्थका सन्निवेश होता है, तिसके नष्ट हुए नष्ट हो जाता है, जैसे मृत्तिकाका अन्वय घटविषे होता है, घटके नाश हुए मृत्तिकाका नाश न होवै, तैसे भ्रमको मत अंगीकार करहु, तू सदा ज्योंका त्यों है, तेरा सन्निवेश तौ इसविषे कछु न हुआ, ताते ज्ञानवान् देहके नाश हुए शोकवान् नहीं होता, अरु देहके स्थित हुए सुखी भी नहीं होता काहेते कि, देहके साथ सबंध कछु नहीं, जो तत्त्वदर्शी पुरुष है, सो यथाप्राप्तिविषे निर्दोष होकरि विचरता है, अभिमानादिक विकारोंते रहित निर्मल आकाशवत् है, जैसे शरत्कालकी रात्रिविषे चंद्रमाकरि आकाश निर्मल होता है, तैसे मनकी वृत्ति विकारोंते रहितकरि आत्मपदविषे स्थित होता है, संसारकी ओर नहीं गिरता, जैसे योग मंत्र तप सिद्धिकरि संपन्न आकाशविषे उड़ता जाता है, सो पुरुष पृथ्वीपर नहीं गिरता ॥ हे रामजी ! तू भी अपने प्रकृतिभावविषे स्थित होकरि यथाप्राप्त क्रियाको कर्ता निर्द्वंद्व होउ, अरु तू भी अब स्वरूपका ज्ञाता हुआ है, परमपदविषे जागा है, अपने स्वरूपको प्राप्त

सो महातेजवान् महाघूर्म होता है, आत्मानंदकारि पूर्ण चंद्रमाकी नाईं हो जाता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित है, सो किसी ससारके क्षोभकारि चलायमान नहीं होता,जैसे पर्वत सर्व कालविषे क्षोभायमान नहीं होता, जैसे भूकपाविषे सब वृक्षादिक चलायमानहोते हैं, अरु अस्ताचलपर्वत कपायमान नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् नहीं होता, चलायमान जैसे पर्वत सर्व कालविषे सम रहता है, अरु तरु लागिकै गिर पडता है, पर्वत ज्योंका त्यों रहता है, तैसे ज्ञानवान् अनेक प्रकारकी क्रियाविषे सम रहताहै ॥ हे रामजी! ऐसी सुषुप्तिदशा अभ्यासयोगकारि प्राप्त होती है, जब यह दशा प्राप्त होती है, तब इसको तत्त्ववेत्ता तुरीयापद कहते हैं, सो परमानदरूप है, तिसविषे सर्व दुःख नाश हो जाते है, असंसक्त हो जाता है, मनका मननभाव निवृत्त हो जाता है, तब ज्ञानवान्को परम सुख उदय होता है, तिसकरि परमानंद घूर्म हो जाता है, इस संसाररचनाको लीलारूप देखता है, सर्व शोकते रहित निर्भय होता है, ससारभ्रम दूर हो जाता है, जब तुरीया पदविषे प्राप्त हुआ है, तब ससारविषे बहुरि नहीं गिरता, जो यत्नवान् पुरुष परमपावन पदविषे स्थित हुए हैं, सो ससारकी अवस्थाको देखिकारि हँसते हैं जैसे पहाडकेऊपर बैठा पुरुष नगरको जलता देखिकरि हँसता है तैसे ज्ञानवान् आत्मानदको पाइकरि ससारके कार्योंमें दुःख जानिकारि हँसते हैं ॥ हे रामजी ! तुरीयावस्थाविषे स्थित है सो अविनाशी होता है, अरु आनदरूप आनदकलनातेआनंदकलना है,जब ऐसे तुरीयातीत पदको प्राप्त होता है, तब जन्ममरणके बधन ते मुक्त होता है, अभिमान आदिक कलनाते रहित परम ज्योतिविषे लीन होता है,जैसे लूनकी गोली समुद्रविषे जलरूप हो जाती है,तैसे वह आत्मरूप हो जाता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे ससक्तचिकित्सा नाम पचषष्टितम सर्ग ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६.

संसारयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जबलग तुरीयापदविषे स्थित होता है, तबलग केवल जीवन्मुक्त होता है, इसते उपरांत विदेहमुक्त तुरीयातीत है, सो वाणीका विषय नहीं, जैसे आकाशको भुजाकरि कोई पकडि नहीं सकता, तैसे तुरीयातीत वाणीका विषय नहीं, तुरीयातीत पदते विश्रांति भी दूर है, विदेहमुक्त कर पाता है अब तुम कछुक काल ऐसी सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित हो, पाछे परमानदपदविषे स्थित होना ॥ हे रामजी ! तुरीयावस्थाविषे जो स्थित हुआ है, सो निर्द्वंद्वभावको प्राप्त हुआ है, जब तू सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित होवैगा तब जगत्‌के कार्य भी करता रहैगा सदा पूर्ण रहैगा, उदय अस्तके भावको कदाचित् प्राप्त न होवैगा, जैसे मूर्तिका चंद्रमा लिखा उदय अस्तको नहीं प्राप्त होता है, तैसे तू उदय अस्तभावको प्राप्त न होवैगा ॥ हे रामजी ! इस शरीरको आप जानिकरि रागद्वेषविषे जलता है, जिस पदार्थका सन्निवेश होता है, तिसके नष्ट हुए नष्ट हो जाता है, जैसे मृत्तिकाका अन्वय घटविषे होता है, घटके नाश हुए मृत्तिकाका नाश न होवै, तैसे भ्रमको मत अंगीकार करहु, तू सदा ज्योंका त्यों है, तेरा सन्निवेश तौ इसविषे कछु न हुआ, ताते ज्ञानवान् देहके नाश हुए शोकवान् नहीं होता, अरु देहके स्थित हुए सुखी भी नहीं होता काहेते कि, देहके साथ संबंध कछु नहीं, जो तत्त्वदर्शी पुरुष है, सो यथाप्राप्तिविषे निर्दोष होकरि विचरता है, अभिमानादिक विकारोंते रहित निर्मल आकाशवत् है, जैसे शरत्कालकी रात्रिविषे चंद्रमाकरि आकाश निर्मल होता है, तैसे मनकी वृत्ति विकारोंते रहितकरि आत्मपदविषे स्थित होता है, संसारकी ओर नहीं गिरता, जैसे योग मंत्र तप सिद्धिकरि संपन्न आकाशविषे उड़ता जाता है, सो पुरुष पृथ्वीपर नहीं गिरता ॥ हे रामजी ! तू भी अपने प्रकृतिभावविषे स्थित होकरि यथाप्राप्त क्रियाको कर्ता निर्द्वंद्व होउ, अरु तू भी अब स्वरूपका ज्ञाता हुआ है, परमपदविषे जागा है, अपने स्वरूपको प्राप्त

हुआ है, पृथ्वीविषे विशोकवान् हुआ विचरो, इच्छा अनिच्छाको त्यागिकरि शीतल प्रकाश अंधकार तम अरु मेघते रहित शरत्कालके आकाशवत् निर्मल शोभेगा ॥ हे रामजी ! यह जगत् चिदानंदस्वरूप है, अरु आदि अतते रहित है, अह त्व आदिक भ्रमते रहित तिसविषे स्थित होउ आत्मा केवल अव्यक्त चितनाते रहित है,तिसका शरीरसाथ संबध कैसे होवे,आत्मा आदिक नाम भी उपदेश व्यवहारके निमित्त कल्पे हैं, नामरूप भेद भयते रहित अशब्द पद है, सोई जगत्रूप होइकरि स्थित भया है, जगत कछु भिन्न वस्तु नहीं, जैसे जल तरंगरूप हो भासता है, सो जलते कछु भिन्न वस्तु तरंग नहीं, तैसे आत्माते भिन्न जगत् कछु नहीं जैसे समुद्र सब जलरूप है, जलते इतर कछु भिन्न नहीं, तैसे सब जगत् आत्मरूप है, भिन्न कछु नहीं, जैसे जल अरु तरगविषे भेद नहीं, पट अरु ततुविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद नहीं ॥ हे रामजी ! और द्वैत कछु वस्तु है नही, परंतु मैं तेरे उपदेशके निमित्त द्वैतको अंगीकारकरि कहता हौं, यह जो शरीर है, तिसकेसाथ तेरा सबध कछु नहीं, जैसे धूप अरु छायाका संबंध नहीं होता, प्रकाश अरु तम इकट्ठे नहीं होते, तैसे आत्मा अरु देहका संबंध नहीं, देह जड अरु मलिन है, अरु दृश्य असत्य है, आत्मा निर्मल चेतन है, अरु सत्य है, तिसका देहसाथ संबंध कैसे होवे, जैसे शीत अरु उष्णका परस्पर विरोध है, तैसे आत्मा अरु देहका संबंध नहीं जैसे वनको अग्नि लगेते जतु जलते हैं, तैसे भ्रम दृश्यरूप देहविषे अहंभाव करिके जलते हैं ॥ हे रामजी ! जैसे दावाग्निविषे कुबुद्धि जलबुद्धि करे तैसे अज्ञानी देहविषे आत्मबुद्धि करते हैं, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणोंमें जल भासता है, तैसे आत्माविषे देहभाव रखते हैं ॥ हे रामजी ! चिदात्मा निर्मल अरु नित्य स्वयप्रकाश है, अरु देह मलिन है, अस्थि मास रक्तमय है, इसकेसाथ आत्माका संबध कैसे होवे, आत्माविषे देहका अभाव है, केवल एक अद्वैत तत्त्व अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे, द्वैतभ्रम कैसे होवे ॥ हे रामजी ! स्वरूपते न कोऊ बंध है, न कोऊ मुक्त है, सर्व सत्ता एक आत्मतत्त्वस्थित है अंतर बाहर सर्व वही है, मैं सुखी हौं, मैं दुःखी

हौं, मै मूढ हौं, इस मिथ्या दृष्टिको दूरते त्याग, आपको केवल आत्मरूप जानिकारि स्थित होहु, यह जो दृश्य है, सो परम दुःख देनेहारा है, इसकारि दुःख प्राप्त होवैगा, जैसे तृण अरु पहाड़की एकता नहीं होती, पट अरु पत्थरकी एकता नहीं होती, तैसे आत्मा अरु शरीरकी एकता नहीं होती, जैसे तम अरु प्रकाशका सयोग नहीं होता, तैसे देह अरु आत्माका संयोग नहीं होता, अरु दोनों तुल्य भी नहीं होते, जैसे शीत अरु उष्णकी एकता नहीं होती, जैसे जड़ अरु चेतनकी एकता नहीं होती, तैसे शरीर अरु आत्माकी एकता नहीं होती॥ हे रामजी ! शरीर जो बोलता है, सो वायुके बलकारि चलता बोलता है, आठ स्थानोंविषे वायुके बलकारि अक्षरोंका उच्चार होता है, उर, कंठ, शिर, जिह्वामूल, दंत, नासिका, होठ, तालु, यही अष्ट स्थान हैं, क ख ग घ, इन चारोंका उच्चार कंठविषे होता है, च छ ज झ, चारोंका तालुस्थानविषे उच्चार होता है, ट ठ ड ढ, इन वर्गोंका मूर्द्धनी (शिर) विषे उच्चार होता है, त थ द ध, इनका दंतोंविषे उच्चार होता है, प फ ब भ म, इन पांचोंका होठोंविषे उच्चार होता है, ङ ञ ण न, इनका नासिकाविषे उच्चार होता है, जिह्वाविषे जिह्वामूलीयाका उच्चार होता है, जिस पदके आदिक हकार होवै, सो हृदयविषे उच्चार होता है, आठों स्थानोंविषे इन वर्गोंका वायुकारि उच्चार होता है, अरु नव स्वर सूक्ष्मका उच्चार होता है, आत्मा इनते निर्लेप होता है, जैसे बाँसुरी वायुकारि शब्द करती है, तैसे यह पांच तत्त्वोंकारि शब्द होता है, इनविषे आत्माभिमान करना कि मैं कर्त्ता हौं, सो महामूर्खता है, अरु नेत्रादिक भी इंद्रियां वायुकारि चेष्टा करती है, ताते इस भ्रमको त्यागिकारि आत्मपदविषे स्थित होउ, आत्मा आकाशवत सर्वविषे पूर्ण है, जैसे आकाश सब ठौरविषे पूर्ण है परंतु जहां आदर्श होता है, तहां प्रतिबिंब होकारि भासता है, तैसे आत्मा सब ठौरविषे पूर्ण है, परंतु जहां चित्त होता है तहां भासता है॥ हे रामजी ! जहां वासनाकारि चित्तरूपी पक्षी जाता है, तहां आत्माको अनुभव होता भासता है, जो मै यहां हौं, जैसे जहां पुष्प होता है, तहां सुगंधि भी होती है, तैसे जहां चित्त होता है, तहां अ-

हंभाव भी होता है, जैसे आकाश सर्व ठौरविषे है, परतु जहां प्रतिबिंब होता है, तहां भासता है, जैसे जल सर्व पृथ्वीविषे है, परंतु भासता तहां हैं, जहां खोदाजाता है, तैसे आत्मा सब ठौर पूर्ण है, परंतु भासता तहां है जहां चित्त है, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सब ठौर है, परंतु जहां आदर्श अथवा जल है, तहां भासता है, तैसे आत्मा जहां तहां पूर्ण है, परतु चित्तके अहंभावकरि भासता है, आत्माका प्रतिबिंब चित्तहीविषे भासता है, सो चित्त आत्माकी सत्ताकरि जगत्‌रचनाको पसरता है, जैसे सूर्यकी किरणें धूपको पसारती हैं॥ हे रामजी! भूतोंका कारण अंतःकरणही है, अरु आत्मा तत्त्व तो अतीतही है, आदिकारण नहीं है, अरु वास्तवते अकारण है, जगत् जो सत् भासता है, सो अविचारकरि भासता है, तिसके निवृत्तिका उपाय आत्मज्ञान है॥ हे रामजी! ससारका कारण अतःकरण है, असम्यक् ज्ञानकरिकै सत्यरूप भासता है, जैसे मरुस्थलविषे असम्यक् ज्ञानकरिकै जल भासता है, जब यथार्थ ज्ञान होता है, तब जगत्का कारण चित्त नष्ट हो जावै, जैसे दीपकके प्रकाशकरि अधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मज्ञानकरि चित्त नष्ट हो जाता है, संसारका कारण अपना चित्तही है, इसका नाम जीव, अत·करण, चित्त, मन है॥ राम उवाच॥ हे महाआनंदके देनेहारे! एती सज्ञा चित्तकी कैसे हुई है?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! सर्वभावरूप एक परमात्मा तत्त्व है, जैसे समुद्र, नदियां, तरग आदि संज्ञा एक जलही धरता है, तैसे चित्तादिक अनेक सज्ञाको आत्मा धारता है, अरु सदा एकरूप है सवेदन फुरणेकरि अनेकरूप धारता है, जैसे एक जलको अनेक तरंग, कहू बुद्‌बुदे, कहू जल, कहू चक्र, कहू स्थिर, एती सज्ञाको धारता है, परतु सबही जलरूप है, तैसे सर्वशक्ति आत्मा सर्व [illegible] सर्वरूप होता है, जब स्पदकलना दूर होती [illegible] है, अरु जहां अज्ञान ससरणेको अंगीकार [illegible] वही [illegible] जीव कहाता है, जैसे केसरी सिंह [illegible] है, [illegible] है॥ हे रामजी! [illegible] तहां [illegible] है, [illegible]

वृत्तिका [illegible]

है, चिंता करनेते चित्त कहाता है, प्रकृत भावकरि प्रकृति कहाता है॥ हे रामजी! प्रकृतिरूप जो पदार्थ है, सो जड़ कहाता है, अरु चेतन है सो जीव कहाता है, अरु जड़ जो दृश्यभावकरि सवित् भाग है, अजड़ जो जीव अहं सो द्रष्टाभावकरि सिद्ध होता है, इनके जो मध्य है, सो परमात्मा तत्त्व है, सो नानारूप हो भासता है, यह रूप जीवका बृहदारण्यउपनिषद्‌विषे बहुत प्रकार करिकै और वेदांतशास्त्रोंविषे कहा है, इसते इतर संज्ञाशास्त्रकारने कल्पिकरि कही है, सो वृथा कल्पना कही है, जबलग अहंभावकरिकै चित्त संसरता है तबलग जगत्‌भ्रम होता है, जैसे जबलग सूर्य है तबलग प्रकाश होता है, जब सूर्य अस्त होता है, तब प्रकाश जाता रहता है, तैसे जब चित्तका अभाव हुआ, तब जगत्‌भ्रम जाता रहता है, देहविषे आत्माबुद्धि करनी सो महामूर्खता है, काहेते यह अधोर्ध्व संयोग है जो आत्माका, ऐसे संयोग होवै तौ देहके नाश हुए आत्मा भी नाश हो जावै, देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे वृक्षके पात नाश हुए वृक्षका नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे घटके नाश हुए आकाशका नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे पुरातन वस्त्रको त्यागिकरि पुरुष नूतन वस्त्र पहिरता है, तैसे आत्मा पुरातन शरीरको त्यागिकरि नूतन शरीरको अंगीकार करता है इसका नाम मूर्ख मृत्यु कहते हैं, शरीरके नाश हुए आत्माका नाश तौ कछु नहीं होता॥ हे रामजी! जिसका चित्त निर्वासनिक हुआ है, उसका शरीर जब छुटता है, तब उसका चित्त चिदाकाशविषे लीन हो जाता है, अरु जिसका चित्त वासनासहित है, सो एक शरीरको त्यागिकरि और शरीरको पाता है, तौ भी शरीरके नाश हुए, आत्माका नाश नहीं होता, जो देहके नाश हुए आपको नाश मानता है, सो मूर्ख है, जैसे स्थाणुविषे अज्ञानकरिकै वैताल भासता है जैसे माताके स्थानोंविषे मूर्ख बालकको वैताल भासता है, तैसे अज्ञानकरि आत्माविषे मृत्यु भासता है, अरु जो इसका आत्मतत्त्व नाश होवै, अर्थ यह कि चित्तनाश हो जावै, बहुरि फुरै नहीं सो तौ आनंद हुआ, अरु जो शरीरके नाश हुए

हंभाव भी होता है, जैसे आकाश सर्व ठौरविषे है, परंतु जहा प्रतिबिंब होता है, तहां भासता है, जैसे जल सर्व पृथ्वीविषे है, परतु भासता तहां हैं, जहां खोदाजाता है, तैसे आत्मा सब ठौर पूर्ण है, परंतु भासता तहा है जहा चित्त है, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सब ठौर हैं, परंतु जहां आदर्श अथवा जल है, तहा भासता है, तैसे आत्मा जहां तहां पूर्ण है, परंतु चित्तके अहंभावकरि भासता है, आत्माका प्रतिबिंब चित्तहीविषे भासता है, सो चित्त आत्माकी सत्ताकरि जगत्‌रचनाको पसरता है, जैसे सूर्यकी किरणें धूपको पसारती हैं ॥ हे रामजी ! भूतोंका कारण अंत.करणही है, अरु आत्मा तत्त्व तौ अतीतही है, आदिकारण नहीं है, अरु वास्तवते अकारण है, जगत् जो सत् भासता है, सो अविचारकरि भासता है, तिसके निवृत्तिका उपाय आत्मज्ञान है ॥ हे रामजी ! ससारका कारण अंतःकरण है, असम्यक् ज्ञानकरिकै सत्यरूप भासता है, जैसे मरुस्थलविषे असम्यक् ज्ञानकरिकै जल भासता है, जब यथार्थ ज्ञान होता है, तब जगत्‌का कारण चित्त नष्ट हो जावै, जैसे दीपकके प्रकाशकरि अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मज्ञानकरि चित्त नष्ट हो जाता है, ससारका कारण अपना चित्तही है, इसका नाम जीव, अत'करण, चित्त, मन है ॥ राम उवाच ॥ हे महाआनदके देनेहारे ! एती संज्ञा चित्तकी कैसे हुई है?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्वभावरूप एक परमात्मा तत्त्व है, जैसे समुद्र, नदिया, तरग आदि सज्ञा एक जलही धरता है, तैसे चित्तादिक अनेक सज्ञाको आत्मा धारता है, अरु सदा एकरूप है सवेदन फुरणेकरि अनेकरूप धारता है, जैसे एक जलको अनेक तरंग, कहू बुद्‌बुदे, कहू जल, कहू चक्र, कहू स्थिर, एती सज्ञाको धारता है, परंतु सबही जलरूप है, तैसे सर्वशक्ति आत्मा सर्व शरीरोंविषे सर्वरूप होता है, जब स्पदकलना दूर होती है, तब शुद्ध स्वरूप हो भासता है,अरु जहाँ अज्ञान ससरणेको अगीकार करता है, तहां वही अनंत आत्मा जीव कहाता है, जैसे केसरी सिंह पिंजरेविषे फँसता है, तैसे यह जीवरूप होता है ॥ हे रामजी ! जहां अहंभाव फुरता है, तहां जीव कहाता है, अरु जो निश्चय वृत्तिकरि फुरता है, तिसको बुद्धि कहते हैं, सकल्पविकल्पकरि मन कहात

है, चिंता करनेते चित्त कहाता है, प्रकृत भावकरि प्रकृति कहाता है॥ हे रामजी! प्रकृतिरूप जो पदार्थ है, सो जड़ कहाता है, अरु चेतन है सो जीव कहाता है, अरु जड़ जो दृश्यभावकरि सविद् भाग है, अजड़ जो जीव अहं सो द्रष्टाभावकरि सिद्ध होता है, इनके जो मध्य है, सो परमात्मा तत्त्व है, सो नानारूप हो भासता है, यह रूप जीवका बृहदारण्यउपनिषद्विषे बहुत प्रकार करिकै और वेदांतशास्त्रोंविषे कहा है, इसते इतर संज्ञाशास्त्रकारने कल्पिकरि कही है, सो वृथा कल्पना कही है, जबलग अहंभावकरिकै चित्त ससरता है तबलग जगत्भ्रम होता है, जैसे जबलग सूर्य है तबलग प्रकाश होता है, जब सूर्य अस्त होता है, तब प्रकाश जाता रहता है, तैसे जब चित्तका अभाव हुआ, तब जगत्भ्रम जाता रहता है, देहविषे आत्माबुद्धि करनी सो महामूर्खता है, काहेते यह अधोर्ध्व संयोग है जो आत्माका, ऐसे सयोग होवै तौ देहके नाश हुए आत्मा भी नाश हो जावै, देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे वृक्षके पात नाश हुए वृक्षका नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे घटके नाश हुए आकाशका नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे पुरातन वस्त्रको त्यागिकरि पुरुष नूतन वस्त्र पहिरता है, तैसे आत्मा पुरातन शरीरको त्यागिकरि नूतन शरीरको अंगीकार करता है इसका नाम मूर्ख मृत्यु कहते हैं, शरीरके नाश हुए आत्माका नाश तौ कछु नहीं होता॥ हे रामजी! जिसका चित्त निर्वासनिक हुआ है, उसका शरीर जब छुटता है, तब उसका चित्त चिदाकाशविषे लीन हो जाता है, अरु जिसका चित्त वासनासहित है, सो एक शरीरको त्यागिकरि और शरीरको पाता है, तौ भी शरीरके नाश हुए, आत्माका नाश नहीं होता, जो देहके नाश हुए आपको नाश मानता है, सो मूर्ख है, जैसे स्थाणुविषे अज्ञानकरिकै वेताल भासता है. जैसे माताके स्थानोंविषे मूर्ख बालकको वेताल भासता है, तैसे अज्ञानकरि आत्माविषे मृत्यु भासता है, अरु जो इसका आत्मतत्त्व नाश होवै, *अर्थ यह कि* चित्तनाश हो जावै, बहुरि फुरै नहीं सो तौ आनंद हुआ, *अरु जो शरीरके* नाश हुए

आत्माका नाश कहते है, सो मूढ हैं, मिथ्या कहते हैं, जैसे कोऊ देशते देशांतरको जाता है, तौ उसका अभाव नहीं होता, तैसे शरीरको त्यागि करि और शरीरको प्राप्त होता है, आत्माका नाश नहीं होता, जैसे जलविषे तरंग फुरता है, बहुरि लीन होकरि और ठौरविषे जाय फुरता है, तैसे आत्मा एक शरीरको त्यागिकरि औरको धारता है, जैसे पक्षी उड़ता उड़ता दूर जाता है तब दृष्ट नहीं आता, परन्तु नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्मा और ठौर प्रगट होता है, नाश नहीं होता ॥ हे रामजी ! वासनाके वशते यह जीव एक शरीरको त्यागिकरि और शरीरको जाय प्राप्त होता है, इसी प्रकार वासनाके अनुसार जीव फिरता है, वासनारूपी जेवरीसाथ बांधा जीवरूपी वानर शरीररूपी स्थानोंविषे भटकता है ॥ हे रामजी ! जीव वासनारूपी रसडीसाथ बांधा हुआ, कबहूं ऊर्ध्वलोक कबहूं मनुष्यलोकविषे घटीयन्त्रकी नाईं भ्रमता है ॥ हे रामजी ! जीवको हृदयविषे जो वासना होती है, तिसकरि जरा मृत्यु जन्म आदिक दुःखोंको पाता है, अरु कर्मोंरूपी भारको उठाइ फिरता है, कबहूं स्वर्गको जाता है, कबहूं पातालको जाता है, कबहू मध्यस्थानविषे जाता है, शांतिको प्राप्त कदाचित् नहीं होता ॥ ताते हे रामजी ! अविद्यारूपी जो संसार है, इसको भ्रमरूप जानिकरि इसकी वासनाका त्यागकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होउ ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ इस प्रकार जब सब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त हुआ, सब सभा स्नानके निमित्त उठी, परस्पर नमस्कार करिकै अपने अपने स्थानको गए, रात बिताय सूर्यकी किरणोंसाथ आइ बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारयोगोपदेशो नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

मोक्षस्वरूपोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आत्मा देहके उपजेते उपजता नहीं, अरु नाश हुएते नाश नहीं होता, सो तू निष्कलंक आत्मा है, तुझको देहसाथ संबंध कदाचित् नहीं, जैसे कुंजविषे फूल फल होता है, जैसे घटविषे घट

आकाश होता है, सो परस्पर भिन्नरूप होता है, एकके नाश हुए दूसरेका नाश नहीं होता तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता अरु जो देहके नाशविषे अपना नाश मानता है, सो मूर्ख जड है, तिस अर्थ चेतनताको धिक्कार है ॥ हे रामजी ! जैसे रथ अरु रस-डिया अरु घोड़ेका स्नेहते रहित सयोग होता है, तैसे शरीर अरु चित्त अरु इंद्रियाका सयोग है ॥ हे रामजी ! रथ टूटेते रथ वायुकी हानि तौ नहीं होती, तैसे देह इंद्रियोंके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे पृथ्वी पहाडऊपर जलके प्रवाहका सयोग होता है, अरु वियोग भी होता है, सो एकके नाश हुएते दूसरेका नाश नहीं होता है, तैसे देह इंद्रियका सयोग है, इनके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे स्थाणुविषे वेताल भासता है, अरु भयमान होता है, तैसे देहविषे अहंभावकरि राग, द्वेष, सुख, दुःख पावता है, जैसे एक काष्ठकी अनेक पुतलियां होती हैं, सो काष्ठते इतर कछु नहीं, तैसे जेते कछु शरीर हैं, सो पंच भूतोंके हैं, पाच भूतोंते हैं, इतर कछु वस्तु नहीं, वहुरि यह पंच भूतोंका शरीर पच भूतोंविषे लीन होता है, तिसको मृतक हुआ कहते हैं, यह आश्चर्य है, जो प्रत्यक्ष पचभूतोंका शरीर है, तिसविषे आत्मभावना श्वान करते हैं, वहुरि हर्षकरि शोकको प्राप्त होते हैं, इसीते मूर्ख हैं ॥ हे रामजी ! न कोऊ पुरुष है, न कोऊ स्त्री है, अरु इनके निमित्त मूढ रुदन करते हैं जैसे मृत्तिकाके खिलोने हस्ती घोडा आदिक विचित्र रचना होती है, तिसकी प्राप्ति अप्राप्तिविषे अज्ञानी बालक तुष्टिवान् अरु खेदवान् होता है, तैसे अज्ञानी पाचभौतिक रचना देखिकरि प्राप्तिविषे राग द्वेष करता है, ज्ञानवान्को सब भूत भ्रांतिमात्र भासते हैं, जैसे माटीके पुरुष आप-समें मिलै तब उनको राग द्वेष कछु नहीं होता है, तैसे बुद्धि इंद्रिया मन आत्माका मिलाप है, तिसविषे तुझको रागद्वेष कछु नहीं होता, जैसे पाषाणकी पुतलिया मिलती हैं, उनको स्नेहबंधन कछु नहीं होता, तैसे देह इंद्रियां प्राण आत्माका आपसमें स्नेह बुद्धिते रहित है, तातें तू स्नेहते रहित होउ, शोक काहेको करता है, जैसे तृण अरु जलके तरंगका सयोग होता है, तृण इधर उधर जाता, है, जलको कछु हर्ष शोक नहीं

आत्माका नाश कहते है, सो मूढ हैं, मिथ्या कहते हैं, जैसे कोऊ देशते देशांतरको जाता है, तौ उसका अभाव नहीं होता, तैसे शरीरको त्यागि करि और शरीरको प्राप्त होता है, आत्माका नाश नहीं होता, जैसे जलविषे तरंग फुरता है, बहुरि लीन होकरि और ठौरविषे जाय फुरता है, तैसे आत्मा एक शरीरको त्यागिकारि औरको धारता है, जैसे पक्षी उड़ता उड़ता दूर जाता है. तब दृष्ट नहीं आता, परन्तु नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्मा और ठौर प्रगट होता है, नाश नहीं होता॥ हे रामजी! वासनाके वशते यह जीव एक शरीरको त्यागिकारि और शरीरको जाय प्राप्त होता है, इसी प्रकार वासनाके अनुसार जीव फिरता है, वासनारूपी जेवरीसाथ बांधा जीवरूपी वानर शरीररूपी स्थानोंविषे भटकता है॥ हे रामजी! जीव वासनारूपी रसडीसाथ बांधा हुआ, कबहू ऊर्ध्वलोक कबहू मनुष्यलोकविषे घटीयन्त्रकी नाईं भ्रमता है॥ हे रामजी! जीवको हृदयविषे जो वासना होती है, तिसकारि जरा मृत्यु जन्म आदिक दुःखोंको पाता है, अरु कर्मोंरूपी भारको उठाइ फिरता है, कबहू स्वर्गको जाता है, कबहू पातालको जाता है, कबहूं मध्यस्थानविषे जाता है, शांतिको प्राप्त कदाचित् नहीं होता॥ ताते हे रामजी! अविद्यारूपी जो संसार है, इसको भ्रमरूप जानिकारि इसकी वासनाका त्यागकारि अपने स्वरूपविषे स्थित होउ॥ वाल्मीकिरुवाच॥ इस प्रकार जब सब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त हुआ, सब सभा स्नानके निमित्त उठी, परस्पर नमस्कार करिके अपने अपने स्थानको गए, रात विताय सूर्यकी किरणोंसाथ आइ बैठे॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारयोगोपदेशो नाम षट्षष्टितमः सर्गः॥ ६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

मोक्षस्वरूपोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! आत्मा देहके उपजेते उपजता नहीं, अरु नाश हुएते नाश नहीं होता, सो तू निष्कलंक आत्मा है, तुझको देहसाथ संबंध कदाचित् नहीं, जैसे कुंजविषे फूल फल होता है, जैसे घटविषे घट

आकाश होता है, सो परस्पर भिन्नरूप होता है, एकके नाश हुए दूसरेका नाश नहीं होता तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता अरु जो देहके नाशविषे अपना नाश मानता है, सो मूर्ख जड़ है, तिस अर्थ चेतनताको धिक्कार है ॥ हे रामजी ! जैसे रथ अरु रसडिया अरु घोड़ेका स्नेहते रहित सयोग होता है, तैसे शरीर अरु चित्त अरु इंद्रियाका सयोग है ॥ हे रामजी ! रथ टूटेते रथ वायुकी हानि तौ नहीं होती, तैसे देह इन्द्रियोंके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे पृथ्वी पहाड़ऊपर जलके प्रवाहका सयोग होता है, अरु वियोग भी होता है, सो एकके नाश हुएते दूसरेका नाश नहीं होता है, तैसे देह इन्द्रियका सयोग है, इनके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे स्थाणुविषे वेताल भासता है, अरु भयमान होता है, तैसे देहविषे अहंभावकरि राग, द्वेष, सुख, दुःख पावता है, जैसे एक काष्ठकी अनेक पुतलिया होतीं हैं, सो काष्ठते इतर कछु नहीं, तैसे जेते कछु शरीर हैं, सो पंच भूतोंके हैं, पाच भूतोंते हैं, इतर कछु वस्तु नहीं, वहुरि यह पच भूतोंका शरीर पच भूतोंविषे लीन होता है, तिसको मृतक हुआ कहते हैं, यह आश्चर्य है, जो प्रत्यक्ष पचभूतोंका शरीर है, तिसविषे आत्मभावना श्वान करते हैं, वहुरि हर्षकरि शोकको प्राप्त होते हैं, इसीते मूर्ख हैं ॥ हे रामजी ! न कोऊ पुरुष है, न कोऊ स्त्री है, अरु इनके निमित्त मूढ रुदन करते हैं जैसे मृत्तिकाके खिलोने हस्ती घोडा आदिक विचित्र रचना होती है, तिसकी प्राप्ति अप्राप्तिविषे अज्ञानी बालक तुष्टिवान् अरु खेदवान् होता है, तैसे अज्ञानी पांचभौतिक रचना देखिकरि प्राप्तिविषे राग द्वेष करता है, ज्ञानवान्को सव भूत भ्रांतिमात्र भासते हैं, जैसे माटीके पुरुष आपसमें मिलें तव उनको राग द्वेष कछु नहीं होता है, तैसे बुद्धि इंद्रिया मन आत्माका मिलाप है, तिसविषे तुझको रागद्वेष कछु नहीं होता, जैसे पाषाणकी पुतलियां मिलती हैं, उनको स्नेहबधन कछु नहीं होता, तैसे देह इन्द्रियां प्राण आत्माका आपसमें स्नेह बुद्धिते रहित है, ताते तू स्नेहते रहित होव, शोक काहेको करता है, जैसे तृण अरु जलके तरंगका सयोग होता है, तृण इधर उधर जाता, है, जलको कछु हर्ष शोक, नहीं

होता है तैसे देहभूत आत्माका योग है इनको मिलाप अरु विछुरेका दुःख सुख कछु नहीं होता, आत्मा अरु अनात्मा देह इंद्रियां प्राण मन बुद्धि आदिक विलक्षण भाव हैं परस्पर इनके क्षय अरु उदयविषे हर्ष शोक कछु नहीं परंतु चित्तके उदयकरिकै अनात्मा धर्म आत्माविषे प्रतिबिंबित भासता है, ताते तुम तत्त्वबोधका विचार करिकै चित्तको त्यागि अपने स्वरूपविषे स्थित होउ, जैसे जल तरंगभावको त्यागिकरि अपने स्थित स्वभावको प्राप्त होता है, तैसे तू अपने अक्षोभभावको प्राप्त होवैगा, तब भौतिक देहते आपको भिन्न जानैगा, जैसे वायुमंडलको प्राप्त हुआ देहादिक जीव पृथ्वीमंडलको देखता है, तैसे तू आत्मपदको स्थित हुआ देहादिक भूतोंको देखैगा॥ हे रामजी! तू देहादि भूतोंको देख त्यागिकरि अतीत अजन्मा पुरुष होइ रहौ, तब तुम परम प्रकाशको पावैगा जैसे सूर्यकांतमणि सूर्यके उदय हुए परम प्रकाशको प्राप्त होता है, तैसे जब बोधकरिकै द्रष्टा दर्शन दृश्यभाव तेरा जाता रहैगा, तब तू अपने भावको ज्योंका त्यों जानैगा, जैसे मद्यकरि क्षीव हो जाता है, मद्यके उतरेते आपको ज्योंका त्यों जानता है, अरु मद्यभावको स्मरण करता है, तैसे स्मरण करैगा, आत्मतत्त्वका जो स्पंद फुरना हुआ है, तिसका नाम चित्त है, सो अवस्तुरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंगभाव उदय होता है, सो कछु वस्तु नहीं, तैसे चित्तादिक कछु वस्तु नहीं, भ्रांतिरूप है, इसप्रकार जानिकरि महाबुद्धिवान् वीतराग निष्पापरूपी जीवन्मुक्त हुए हैं, महा शीत पदकी प्राप्तिमें विचरते हैं जैसे रत्नमणिकी किंचन नानाप्रकारकी लहरी होती हैं, सो मनन कलनाते रहित चमत्कार है, तैसे मनुष्योंविषे जो ज्ञानवान् उत्तम पुरुष हैं तिनका व्यवहार कलनाते रहित होता है, जैसे कूपविषे प्रतिबिंब पड़ता है, जैसे आकाशविषे धूलि उड़ती भासती है, आकाश मलभावको प्राप्त नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् पुरुष अपने व्यवहारविषे कर्तृत्वके अभिमानको नहीं प्राप्त होता, जैसे मेघके आने जानेकरि समुद्रको राग द्वेष नहीं होता, तैसे आत्मा ज्ञेय पुरुषको भोगोंके आने जानेविषे राग द्वेष नहीं होता॥ हे रामजी! जिस मनविषे जगत्के किसी पदार्थोंकी मननवासना नहीं फुरती, तिस चित्तविषे जो कछु फुरणा भी भासता है सो विलास

स्वरूप जान, उसको बंधनका कारण कछु नहीं होता, अरु जिस चित्तविषे अहं त्वं आदिक जगत्‌की भावना है, परतु अंतरते तिसको सत्यताबुद्धि है, तिसकरि वह दृश्य द्रष्टा अरु दर्शन सबंध तीनों कालोंसयुक्त जगत्‌को विस्तारैगा, जो कछु दृश्य है, सो असत्यरूप है, अरु जो सत्य है, सो एक अव्यक्तरूप है, तिसको आश्रयकरिकै अलेप होहु, तब हर्षशोककी दिशा कहा है, जेता कछु दृश्य जगत् भासता है, सो सब असत्यरूप है, जो सत्य है, सो सदा ज्योंका त्यों है, असत्यरूप दृश्यके निमित्त तू क्यों वृथा मोहको प्राप्त होता है, असम्यक दर्शनको त्यागिकरि सम्यक्‌दर्शी होहु ॥ हे सुलोचन रामजी ! जो सम्यक्‌दर्शी है, सो मोहको नहीं प्राप्त होता, दृश्य जो विषय अरु दर्शन कहिये इंद्रियां, तिनके विषे सबध मिलनेविषे जो आत्मसुख है अनुभवरूप सो परब्रह्म कहाता है, अरु अनुत्तम सुख सो तिस संवित्‌विषे स्थित है, सो ज्ञानवान् है, तिसको मोक्षप्राप्ति है, अरु जो दृश्य दर्शनविषे स्थित होता है, तिस अज्ञानीको वह सवित् संसारभ्रम दिखावती है, अरु दृश्य दर्शनविषे जो अनुभवसत्ता है, सो सुख आत्मारूप है, जो दृश्यसाथ लगा है, सो बंध है, अरु जो दृश्यते मुक्त होई सवित्‌विषे स्थित है, सो मुक्त कहाता है ॥ हे रामजी ! दृश्य दर्शनके संबधविषे मध्य जो सवित् है, सो अनुभवगोचर है, तिस सवित्‌को आश्रय करिकै दृश्य दर्शनते जो मुक्त है, सो ससारसमुद्रको तरैगा, यह सुषुप्तिरूप अवस्था है, इसको प्राप्त हुआ परम प्रकाशको प्राप्त होता है, इसीको मुक्त कहते हैं, जो दृश्य दर्शनते मुक्तबुद्धि है, सो मुक्त कहाता है, अरु जो दृश्य दर्शनसाथ बाधा है, सो बंध है, अन्य सर्वोंका अनुभव करनेहारा आत्मा है, सो न स्थूल है, न अणु है, न प्रत्यक्ष है, न अप्रत्यक्ष है, न चेतन है, न जड़ है, न सत्य है, न असत्य है, न अहं है, न त्वं है, न एक है, न अनेक है, न निकट है न दूर है, न अस्ति है, न नास्ति है, न प्राप्ति है, न अप्राप्ति है, न सर्व है, न असर्व है, न पदार्थ है, न अपदार्थ है, न पांचभौतिक है, न अपांचभौतिक है, जेती कछु दृश्य जाति है, सो मनसहित पट इंद्रियोंकरि भावको प्राप्त होता है, जो इनते अतीत है, सो इनका विषय नहीं, सो विषय कैसे होवै, नि-

ष्किचनरूप है, अरु यह भी सब वही रूप है, ज्योंका त्यों जानेते सब आत्मरूप है, जगत् अनात्मरूप कछु नहीं, सम्यक्ज्ञानकरि ऐसे भासता है, यह जो कठिनरूप पृथ्वी भासती है, द्रवतारूप जल भासता है, स्पंदरूप वायु, उष्णतारूप अग्नि, अवकाशरूप आकाश भासता है, सो सब आत्मरूप है, जो कछु वस्तु अवस्तुरूप जगत् भासता है, सो आत्मसत्ताते इतर कछु नहीं, आत्माते इतर जगत्को मानना उन्मत्तचेष्टा है, मूर्ख मानते हैं, महात्मा पुरुषको काल कलनारूप जगत सब आत्मरूप है, कल्पते आदि लेकरि अतपर्यंत सब आत्माका चमत्कार है, इतर कछु नहीं ऐसे जानिकरि तुम अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु संसारसमुद्र तरि जावहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे मोक्षस्वरूपोपदेशो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८

आत्मविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो मैं तुझको द्वैतके त्यागकी विचार दृष्टि कही है, इस विचार करिकै अपना जो आत्मस्वभाव है, सो प्राप्त है, जैसे बुद्धिवान्को उपासना अभ्यासकरिकै चिंतामणि प्राप्त होता है, अरु इसके उपरांत और भी परम दृष्टि सुन, जिस दृष्टिकरिकै अचल आत्मरूपको देखता है, कि मैंही आकाश हौं, मैंही दिशा हौं, मैंही सूर्य हौं, अध ऊर्ध्व मैंही हौं, देवता दैत्य मैंही हौं, प्रकाश तम अरु सब पर्वत मैंही हौं, पृथ्वी समुद्र पवन धूलि अग्नि आदिक स्थावर जंगम जगत् मैंही हौं ॥ हे रामजी ! सर्व जगत आत्माही है, तौ अह अरु त्वंते भिन्न और अनेक अरु एक कैसे होवे, ऐसा निश्चय जिसके अंतर होता है, तिसको सब जगत् आत्मरूप भासता है, सो पुरुष हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता, जो सब जगत् मनोमात्र है, तौ अपना अरु पराया क्या कहिये ? ज्ञानवान्को आत्माते इतर नहीं भासता, ताते हर्षविषादको नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी ! अहंकार भी तीन प्रकारके हैं, दो प्रकार सा-

त्त्विक निर्मल हैं, तत्त्वज्ञानकरि प्रवर्त्तता है, अरु मोक्षदायक परमार्थरूप है, अरु तीसरा संसारको दिखावता है, एक अह है, जो तुझको कहा है, सर्व मैंही हौं, मुझते अन्य कछु नहीं, अरु दूसरा यह जो परम अणु जो सूक्ष्मते अतिसूक्ष्म है, साक्षिभूत अव्यक्तरूप हौं, यह दोनों मोक्षदायक हैं, अरु तीसरा यह जो आपको नख शीशपर्यंत देहरूप जानना, सो दु:-खदायक ससारका कारण है, शांति सुखका कारण नहीं, अथवा इन तीनोंको त्यागकरि स्थित होउ, यह सर्व सिद्धातका कारण है, जैसे तेरी इच्छा होवै तैसे कर, आत्मा सर्वते अतीत है, अरु सर्वते परे है, तो भी अपनी सत्ताकरिकै जगत् पूर्णकरि रहा है, अरु सर्वका प्रकाशरूप वही है, अपने अनुभवकरि सदा वस्तु उदयरूप है,अरु किसी प्रमाणका विषय नहीं, अनुमान आदिक अरु सत्यवाद इनते परे रहित है, अरु सर्वकाल सर्वको अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है, अरु यह जो दृश्य जगत है, सो सव आत्मा भगवान् है, अरु दृश्य दर्शन सत् असत सूक्ष्म स्थूल सवते आत्मा रहित है, अरु वही सर्वरूप है, सर्वकी वाणी कहनेविषे भी वही आता है, अरु किसीके कहनेविषे भी नहीं आता, जो नानात्व भासता है, सो भी तिसते अन्य कछु नहीं, आत्मा आदिक सज्ञा भी शास्त्रोंने उपदेशके निमित्त कल्पी है, सर्व शक्ति तिसविषे कल्पी है, सर्वत्र तीनों कालोविषे स्थित है, अरु प्रकाशरूप है, सूक्ष्म भावकरि भी नहीं है, स्थूलरूप भावकरि भी वही है, सो सर्व ठौर व्यापक है, अरु अपने फुरणेकरि जीवरूप हो भासता है, जब चित्तसंवित् फुरणेरूप होती है, तव जीव आदिकरूप हो भासता है, फुरणेते रहित द्वैतकलना मिटि जाती है, जैसे आकाशविषे जब पवन फुरता है तव उष्ण शीत हो भासता है, तैसे फुरणेकरि जीवादिक भासता है, अरु आत्मा चेतन सर्वत्र व्यापकरूप है, अरु कवहू किसी भावको प्राप्त नहीं भया, जैसे पदार्थ अपने अपने भावविषे स्थित है, तैसे परम ईश्वर आत्मा अपने स्वभावविषे स्थित है, परतु तिसका भासना पुर्यष्टकाविषे होता है, जैसे वायुविना धूलि उड़ती नहीं, जैसे अंधकारविषे प्रकाशविना पदार्थ भासता नहीं, तैसे पुर्यष्टकाविना आत्मा भासता नहीं, पुर्यष्टकाविषे प्रतिबिंव भासता है,जैसे

ष्किचनरूप है, अरु यह भी सब वही रूप है, ज्योंका त्यों जानेते सब आत्मरूप है, जगत् अनात्मरूप कछु नहीं, सम्यक्ज्ञानकरि ऐसे भासता है, यह जो कठिनरूप पृथ्वी भासती है, द्रवतारूप जल भासता है, स्पंदरूप वायु, उष्णतारूप अग्नि, अवकाशरूप आकाश भासता है, सो सब आत्मरूप है, जो कछु वस्तु अवस्तुरूप जगत् भासता है, सो आत्मसत्ताते इतर कछु नहीं, आत्माते इतर जगत्को मानना उन्मत्तचेष्टा है, मूर्ख मानते हैं, महात्मा पुरुषको काल कलनारूप जगत् सब आत्मरूप है, कल्पते आदि लेकरि अतपर्यंत सब आत्माका चमत्कार है, इतर कछु नहीं ऐसे जानिकरि तुम अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु संसारसमुद्र तरि जावहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे मोक्षस्वरूपोपदेशो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८



आत्मविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो मैं तुझको द्वैतके त्यागकी विचार दृष्टि कही है, इस विचार करिकै अपना जो आत्मस्वभाव है, सो प्राप्त है, जैसे बुद्धिवान्‌को उपासना अभ्यासकरिके चिंतामणि प्राप्त होता है, अरु इसके उपरांत और भी परम दृष्टि सुन, जिस दृष्टिकरिकै अचल आत्मरूपको देखता है, कि मैंही आकाश हौं, मैंही दिशा हौं, मैंही सूर्य हौं, अध ऊर्ध्व मैंही हौं, देवता दैत्य मैंही हौं, प्रकाश तम अरु मेघ पर्वत मैंही हौं, पृथ्वी समुद्र पवन धूलि अग्नि आदिक स्थावर जंगम जगत मैंही हौं ॥ हे रामजी ! सर्व जगत् आत्माही है, तौ अहं अरु त्वंते भिन्न और अनेक अरु एक कैसे होवै, ऐसा निश्चय जिसके अंतर होता है, तिसको सब जगत् आत्मरूप भासता है, सो पुरुष हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता, जो सब जगत् मनोमात्र है, तो अपना अरु पराया क्या कहिये ? ज्ञानवान्‌को आत्माते इतर नहीं भासता, ताते हर्षविषादको नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी ! अहंकार भी तीन प्रकारके हैं, दो प्रकार मा-

त्विक निर्मल है, तत्त्वज्ञानकरि प्रवर्त्तता है, अरु मोक्षदायक परमार्थरूप है, अरु तीसरा संसारको दिखावता है, एक अह है, जो तुझको कहा है, सर्व मैही हौं, मुझते अन्य कछु नहीं, अरु दूसरा यह जो परम अणु जो सूक्ष्मते अतिसूक्ष्म है, साक्षिभूत अव्यक्तरूप हौं, यह दोनों मोक्षदायक हैं, अरु तीसरा यह जो आपको नख शीशपर्यंत देहरूप जानना, सो दुःखदायक संसारका कारण है, शांति सुखका कारण नहीं, अथवा इन तीनोंको त्यागकरि स्थित होउ, यह सर्व सिद्धांतका कारण है, जैसे तेरी इच्छा होवै तैसे कर, आत्मा सर्वते अतीत है, अरु सर्वते परे है, तौ भी अपनी सत्ताकरिकै जगत् पूर्णकरि रहा है, अरु सर्वका प्रकाशरूप वही है, अपने अनुभवकरि सदा वस्तु उदयरूप है,अरु किसी प्रमाणका विषय नहीं, अनुमान आदिक अरु सत्यवाद इनते परे रहित है, अरु सर्वकाल सर्वको अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है, अरु यह जो दृश्य जगत है, सो सब आत्मा भगवान् है, अरु दृश्य दर्शन सत् असत् सूक्ष्म स्थूल सबते आत्मा रहित है, अरु वही सर्वरूप है, सर्वकी वाणी कहनेविषे भी वही आता है, अरु किसीके कहनेविषे भी नहीं आता, जो नानात्व भासता है, सो भी तिसते अन्य कछु नहीं, आत्मा आदिक संज्ञा भी शास्त्रोंने उपदेशके निमित्त कल्पी है, सर्व शक्ति तिसविषे कल्पी है, सर्वत्र तीनों कालोंविषे स्थित है, अरु प्रकाशरूप है, सूक्ष्म भावकरि भी वही है, स्थूलरूप भावकरि भी वही है, सो सर्व ठौर व्यापक है, अरु अपने फुरणेकरि जीवरूप हो भासता है, जब चित्तसंवित फुरणेरूप होती है, तब जीव आदिकरूप हो भासता है, फुरणेते रहित द्वैतकलना मिटि जाती है, जैसे आकाशविषे जब पवन फुरता है तब उष्ण शीत हो भासता है, तैसे फुरणेकरि जीवादिक भासता है, अरु आत्मा चेतन सर्वत्र व्यापकरूप है, अरु कबहूं किसी भावको प्राप्त नहीं भया, जैसे पदार्थ अपने अपने भावविषे स्थित है, तैसे परमेश्वर आत्मा अपने स्वभावविषे स्थित है, परंतु तिसका भासना पुर्यष्टकाविषे होता है, जैसे वायुबिना धूलि उड़ती नहीं, जैसे अंधकारविषे प्रकाशबिना पदार्थ भासता नहीं, तैसे पुर्यष्टकाबिना आत्मा भासता नहीं, पुर्यष्टकाविषे प्रतिबिंब भासता है,जैसे

सूर्यके उदय हुए, सर्व जीवोंका व्यवहार होता है, अरु सूर्यके अस्त हुएते लीन होता है अरु सूर्य दोनोंविषे अलेप है, तैसे आत्मा सर्वका प्रकाशक अरु निर्लेप है, शरीरोंके व्यवहार होनेविषे अरु इष्टताविषे ज्योंका त्यों है न उपजता है न विनशता है, न वांछता है, न त्यागता है, न मुक्त है, न बंध है, सर्वदा सर्व प्रकार आत्मा ज्योंका त्यों एकरूप है। तिसके अज्ञानकरि जीव अनात्मभावको प्राप्त होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु केवल दुःखोंका कारण होता है आत्मा आदि अंतते रहित अज अविनाशी है, अपने आपते इतर कछु नहीं हुआ इसते वाछा त्यागि देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है, ताते बंध नहीं, जो बंध नहीं तौ मुक्ति कैसे होवै, सर्व कलनाते रहित ऐसा आत्मा सर्वका अपना आप है, अविचार करिकै मूढ रुदन करते हैं, ताते मैं जो तुझको उपदेश किया है, तिसको आदिते लेकरि अंतपर्यन्त भली प्रकार विचारि देख, इस युक्तिकरिकै शोकका त्याग कर, मूर्खोंवत् लोकोंविषे शोकको मत प्राप्त होहु ॥ हे सुमते! बंधमोक्षकी कल्पनाका त्याग कर, न बंधके त्यागकी इच्छा कर, न मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छा कर, यंत्रकी पुतलीवत् अभिमानते रहित चेष्टा कर, इसका नाम आत्मा मौन है ॥ हे रामजी! मोक्षका नाम कोऊ पदार्थ आकाशविषे स्थित नहीं, न कोऊ पातालविषे स्थित है, न भूमिलोकविषे स्थित है, चित्तका निर्मल होना मोक्ष है, जो आनात्मासाथ आपको मिलावना, तिसविषे आत्म अभिमान करना, यह मल है इसका त्याग करना, अरु शुद्ध आत्माविषे चित्तको लगावना, इसका नाम मोक्ष है, जब चित्तसों गुणोंमें वृत्तिका त्याग होवै, अरु सम्यक् आत्मज्ञान होवै, तिसको तत्त्वदर्शी मोक्ष कहते हैं ॥ हे रामजी! जबलग आत्मबोध नहीं होता, तबलग यह दीन दुःखी होता है, जब आत्माका निर्मल बोध होता है, तब दुःखोंते मुक्त होता है, ताते और उपायोंको त्यागि भक्ति करिकै मोक्षकी खोज कर, अरु चिरकालकरिकै जब इस बोधको साध्य चित्त निस्तृत पदको प्राप्त हुआ, तब दग मोक्षकी वांछा नहीं करता, एक मोक्ष क्या है॥ रामजी! जीवको और उपाय मोक्षका कोऊ नहीं, आत्मबोधको पाइ करि सुखी होवेगा, जब चित्त अचित्त होता है, तब मन जगद्भ्रम मिटि

जाता है, अरु जगत् कछु दूसरी वस्तु नहीं, अद्वैत आत्मतत्त्व है, जो वही है, तौ बंध किसको कहिये? अरु मोक्ष किसको कहिये? बंधमोक्षकी कल्पना तुच्छ है, तिसका त्यागकरि चक्रवर्ती हो पृथ्वीकी पालना कर, तुझको कर्तृत्वका स्पर्श कछु न होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे आत्मविचारो नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९

निरास्पदमौनविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसके संकल्पते जगत् उपजा है. अज्ञान करिकै आपको शरीर जानता है, अपने संकल्पको उपजाइकै अपना स्वरूप जानता है, जैसे कोऊ सुंदर पुरुष होवै, तिसको देखेविना कुरूप जानै, तैसे आत्माके साक्षात्कारविना देहरूप आत्माको जानता है कि, मैं देह हौं, ज्यों ज्यों आत्माका प्रमाद होता है, त्यों त्यों देहविषे अधिक अभिमान होता है, जैसे ज्यों ज्यों मद्यपान करता है त्यों त्यों उन्मत्त होता है ॥ हे रामजी ! यह जो नानाप्रकारका दृश्य जो भासता है, सो अज्ञानकरि भासता है, जैसे सूर्यकी किरणोंकरिके मरुस्थलविषे जल भासता है, तैसे असम्यक्ज्ञान करिकै आत्माविषे जगत् भासता है, एक कलनाके फुरनेकरि मन बुद्धि चित्त अहंकार इंद्रिया देह भासते हैं, सो एक फुरणेकी एती संज्ञा है, जैसे एक जलकी अनेक संज्ञा होती है, तैसे एक फुरणेकी अनेक संज्ञा हुई हैं जो चित्त है, सो अहंकार है, जो अहंकार है, सोई मन है, जो मन है, सोई बुद्धि है, इनविषे भेद कछु नहीं, जैसे बर्फ अरु शुक्लता अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं तैसे मन बुद्धि आदिकविषे कछु भेद नहीं, एकके नाश हुए दोनोंका नाश होजाता है, ताते मनविषे जो कछु कलना है, तिसको त्यागकरि मोक्षकी इच्छाका भी त्यागकरि बंधन वृत्तिको भी त्याग कर ॥ हे रामजी ! वैराग्य अरु विवेक अभ्यासकरिकै मनको निर्मल करो, जब मन निर्मल हुआ, तब मनका मननभाव नष्ट हो जावैगा,

जब यह फुरणा फुरता है कि, मैं मुक्त होऊं तब भी मन जागि आता है, अरु मनके जागते मनन भी हो आता है, मनन हुआ, तब अपनेसाथ शरीर भी भास आता है, अरु अनेक दुःखभी भास आते हैं॥ हे रामजी! आत्मतत्त्व सबते अतीत है,अरु सर्वरूप भी वही है, तब कौन बंध है अरु कौन मोक्ष है,जब मनका मनन निवृत्त हुआ, तब न कोऊ बंध है, न कोऊ मुक्त है, आत्मा सर्व क्रियाते अतीत है, अरु क्रिया भी इसप्रकार होता है, जैसे वायुके हिलनेकरि वृक्षके पत्र फूल हिलते हैं, तैसे प्राणोंके फुरणे करि हाथ पांव आदिक इंद्रियां चेष्टा करती हैं॥ हे रामजी! चित्तशक्ति है सो सर्वव्यापी सूक्ष्म है अरु अचल है, न आपही चलती है, न और किसीकी प्रेरी हुई चलती है सदा स्थितिरूप है, जैसे मेरु पर्वत न आपही चलता है, न वायुकरि चलाया चलता है, तैसे चित्तशक्ति अचल है॥ हे रामजी! जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो आत्मारूपी दर्पणविषे प्रतिबिंबित भासते हैं, जैसे सर्व पदार्थोंको दीपक प्रकाशता है, तैसे सब पदार्थोंको आत्मा प्रकाश करता है अरु सब पदार्थोंविषे एक आत्मा अनुस्यूत प्रकाशता है, अहं त्वं आदिक कलनाते रहित है, जहां अहं त्वं आदिक कलना नहीं फुरती, तहां सुख दुःख भी नहीं फुरता, जैसे वृक्षों अरु पहाडोंते अहं त्वं शब्द नहीं फुरता, तैसे आत्माविषे नहीं फुरते, ताते ज्ञानवान्‌विषे कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं फुरते॥ हे रामजी! आत्मा निरहंकार अरु निराकार है, तिसविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवै? कर्तृत्व भोक्तृत्व आत्माविषे अज्ञानकरि भासता है, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है॥ हे रामजी! अज्ञानरूपी मदिरापान करिके मनरूपी मृग मत्त हुआ है, तिसकरि सत्‌असत्‌का विचार नहीं करि सकता, जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत्‌ही सत भासती है, मृग तिसको सत जानिकरि पान करनेके निमित्त दौड़ता है, तैसे यह जीव असत्‌संसारको रूप जानिकरि दौड़ता है, जब आत्मसत्ताका सम्यक बोध होता है, तब यह अविद्या नाश हो जाती है, जैसे ब्राह्मणोंके मध्य चंडाली आनि बैठे, जब उन ब्राह्मणोंने उसको पिछानी कि, यह चंडाली है, तब छिप जाती है, तैसे जब अविद्याको जाना कि, यह अविद्या है, तब नष्ट हो जाती है॥ हे रामजी! जब अविद्याको ज्योंकी त्यों जानी तब अविद्यारूप जगत् म-

नको खैच नहीं सकती, जैसे मृगतृष्णाकी नदीको जब जाना, तब तृष्णा होवै तौ भी मनको जल खैच नहीं सकता ॥ हे रामजी ! जब परमार्थसत्ताका बोध हुआ, तब मूलते वासना नष्ट हो जाती है, जैसे दीपके उदयते अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मज्ञानकरि अविद्या वासनासहित नष्ट हो जाती है ॥ हे रामजी ! अविद्या अविचारते सिद्ध है, जब सच्छास्त्रोंकी युक्तिकरि विचार इसको प्राप्त होता है, तब अविद्या नाश हो जाती है, जैसे बर्फका कणका धूपकरि गलि जाता है, अरु जलमय हो जाता है, तैसे विचारकरि अज्ञान नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! देह जड है, आत्मा सदा चेतनरूप है, बहुरि देह जडके निमित्त भोगोंकी वांछा करनी यह बडी मूर्खता है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो इस बंधनको तोडि डारते हैं ॥ हे रामजी ! आशारूपी फांसीको हृदयते काटो, जब आशारूपी आवरण दूर भया, तब पूर्णमासीके चंद्रमावत् अंतर शीतल हो जावैगा, तैसे यह पुरुष भी तीन तापोंते मुक्त शीतल हो जाता है, जैसे पर्वत होकरि अग्नि लगै, तिसके ऊपर जलकी महत् वर्षा होवै, तब तप्तताते मुक्त हुआ शांतिवान् होता है ॥ हे रामजी ! जैसे केसरी सिंह पिंजरेको तोडिकरि निकसता है, तैसे ज्ञानवान् पुरुष भोगवासनाके बंधनको तोरि डारता है ॥ हे रामजी ! आत्माके साक्षात्कार हुए परमानंदको प्राप्त होता है, जैसे रंकको त्रिलोकीके राज्य मिलनेकरि आनंदकी प्राप्ति होवै, तैसे ज्ञानवानको आनंद प्राप्त होता है, परम निर्मल लक्ष्मीकरि शोभता है, जब इसके हृदयसों आकाशरूपी मल जाता है, तब जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल शोभता है, तैसे शोभता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुष अपने आपविषे नहीं समावता है, जैसे महाकल्पका समुद्र नहीं समावता अरु जैसे मेघ जलको त्यागिकरि मौन हो जाता है, तैसे ज्ञानवान् आशाको त्यागिकरि आत्ममौन हो जाता है, जैसे अग्नि लकडीको जलाइकरि धुंवाते रहित अपने आपविषे स्थित हो जाता है, तैसे चित्तकी वृत्तिते रहित हुआ आत्मपदविषे निर्वाण हो जाता है, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे चित्त निर्वाण हुआ परमानंदको प्राप्त होता है, जैसे अमृतको पानकरि पुरुष आनंदवान् होता है, तैसे

परमानंदकरि पूर्ण अपने आपविषे प्रकाशता है, जैसे वायुते रहित दीपक स्थानविषे प्रकाशता है, जैसे शुद्ध मणि अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है, तैसे ज्ञानवान् अपने आपकरि प्रकाशता है, मैं सर्वात्मा हौं, सर्वगत हौं, ईश्वर हौं, सर्वाकार हौं, निराकार हौं, केवल चिदानंद आत्मा हौं, सदा अपने आपविषे स्थित हौं॥ हे रामजी! ऐसे ज्ञानी अपने आपको जानता है, अरु पूर्व दिन व्यतीत हो गया है, तिनको हँसता है, मैं तौ अनंत आत्मा हौं, मायाके भ्रमकरि आपको कर्ता भोक्ता मानता था॥ हे रामजी! ऐसे जानिकरि राग द्वेषते रहित परमशांतिको प्राप्त होता है, उसके ताप सब निवृत्त हो जाते हैं, अरु सदा आत्माविषे प्रीति रहती है, चित्त सर्व ओरते पूर्ण हो जाता है, अरु सबको पवित्र करनेहारा होता है, कामरूपी चक्रते मुक्त होता है, जन्मोंके बंधन काटि डारता है, राग द्वेष आदिक द्वंद्व अरु सर्व भयते मुक्त होता है, अविद्यारूपी संसारसमुद्रको तरि जाता है, उत्तम लक्ष्मीको प्राप्त होता है, अर्थ यह कि, परमपदको प्राप्त होता है, बहुरि संसारके जन्ममरणको नहीं प्राप्त होता, अरु कर्मोंका अंत हो जाता है॥ हे रामजी! ज्ञानवान्की क्रियाको देखिकरि और वांछा सब करते हैं, परंतु औरोंकी क्रियाको देखिकरि ज्ञानवान् किसीकी वांछा नहीं करता, अरु सबको आनंदवान् करता है, अरु आप किसीकरि आनंदवान् नहीं होता, न किसीको देता है, न लेता है, न किसीकी स्तुति न निंदा करता है, न किसी उत्तम पदार्थोंको पाइकरि उदय होता है, न अनिष्टको पाइकरि नष्ट होता है, हर्षशोकते रहित है, अरु सर्व फलका त्याग किया है, सर्व उपाधिते रहित है, कर्तृत्व भोक्तृत्वते आपको न्यारा मानता है, ऐसा जो पुरुष है, सो जीवन्मुक्त है॥ हे रामजी! जब तू सर्व इच्छा त्यागकरि मौन करै है, तब निर्विशेष भावको प्राप्त होवैगा, जैसे मेघ जलका त्यागकरि मौनभावको प्राप्त होता है, तैसे तू मौनभावको प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी! जैसे कामी पुरुष स्त्रीको कंठ लगायकरि आनंदवान् होता है, तिसकों ऐसा आनंद नहीं होता, जैसा आनंद निरासानिष पुरुषको होता है अरु फूलगुच्छेकरि ऐसा पर्वतऋतु नहीं शोभता, जैसे उदारबुद्धि आत्मा मौ-

नवान् शोभता है, अरु हिमालय पर्वतविषे प्राप्त हुआ भी ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा निर्वासनिक पुरुषका मन शीतल होता है, मोतियोंकी मालाकरि अरु केलेके वनको प्राप्त हुआ ऐसे सुखको नहीं पाता, अरु चंदनोंके लेप करनेहारा ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा शीतल निर्वासनिक मन होता है, अरु चंद्रमाको स्पर्शकरि ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा निर्वासनिक पुरुष शीतल होता है, चंद्रमा बाहरकी तप्तता मिटाता है, परंतु अंतर तप्तताको निवृत्त नहीं करता, अरु निराशताकरिकै अंतरकी तप्तता मिट जाती है, परम शांतिको प्राप्त होता है, जैसी शीतलता निर्वासनिक पुरुषके संगकरि होती है, तैसी और किसी उपायते नहीं प्राप्त होती ॥ हे रामजी ! ऐसा सुख स्वर्गविषे नहीं प्राप्त होता, अरु सुंदर स्त्रियोंके स्पर्शकरि भी ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा सुख निर्वासनिकको प्राप्त होता है, निर्वासनिक पुरुष तिस सुखको प्राप्त होता है, जिस सुखविषे त्रिलोकीके सुख तृणवत भासते हैं ॥ हे रामजी ! आशारूपी एक कर्ज्रएका वृक्ष है, तिसके काटनेको उपशमरूपी कुहाड़ा है, जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है, तिसको सब पृथ्वी गोपदके समान तुच्छ भासती है, अरु मेरु पर्वत एक टूटे वृक्षसमान भासता है, अरु दिशा डब्बीके समान भासती हैं काहेते कि, उत्तमपदको प्राप्त हुआ है, त्रिलोकीकी विभूति तृणकी नाई तुच्छ देखता है, जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है, सो जगतको देखिकरि हँसता है, अरु कदाचित् जगतके पदार्थोंकी कल्पना नहीं फुरती, तृणवत जानिकरि जगतको त्याग दिया है, अरु सदा आत्मतत्त्वविषे स्थित है, तिसको उपमा किसकी दीजै, तिस पुरुषकी उदय अस्त अहं त्वं आदिक कलना नष्ट हो गई है, केवल आत्मस्वभावको प्राप्त हुआ है, तिस ईश्वर आत्माको तोलि कौन सकै ? जब दूसरा उसके समान होवै, तब तोलै ॥ हे रामजी ! यह पुरुष सब संकटोंके अंतको प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! यह जगत् मिथ्या भ्रमरूप है; जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, जैसे भ्रमकरि मरुस्थलविषे नदी भासती है, जैसे मद्यपानकरि नगर भ्रमता भासता है, तैसे यह मिथ्या जगत भ्रमकरिकै भासता है, इसकी आशा मत कर, तू

परमानदकरि पूर्ण अपने आपविषे प्रकाशता है, जैसे वायुते रहित दीपक स्थानविषे प्रकाशता है, जैसे शुद्ध मणि अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है, तैसे ज्ञानवान् अपने आपकरि प्रकाशता है, मै सर्वात्मा हौं, सर्वगत हौं, ईश्वर हौं, सर्वाकार हौं, निराकार हौ, केवल चिदानद आत्मा हौं, सदा अपने आपविषे स्थित हौं ॥ हे रामजी ! ऐसे ज्ञानी अपने आपको जानता है, अरु पूर्व दिन व्यतीत हो गया है, तिनको हँसता है, मैं तौ अनंत आत्मा हौं, मायाके भ्रमकरि आपको कर्ता भोक्ता मानता था ॥ हे रामजी ! ऐसे जानिकरि राग द्वेषते रहित परमशांतिको प्राप्त होता है, उसके ताप सब निवृत्त हो जाते है, अरु सदा आत्माविषे प्रीति रहती है, चित्त सर्व ओरते पूर्ण हो जाता है, अरु सबको पवित्र करनेहारा होता है, कामरूपी चक्रते मुक्त होता है, जन्मोंके बधन काटि डारता है, राग द्वेष आदिक द्वद्व अरु सर्व भयते मुक्त होता है, अविद्यारूपी संसारसमुद्रको तरि जाता है, उत्तम लक्ष्मीको प्राप्त होता है- अर्थ यह कि परमपदको प्राप्त होता है, बहुरि ससारके जन्ममरणको नहीं प्राप्त होता, अरु कर्मोंका अंत हो जाता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्‌की क्रियाको देखिकरि और वांछा सब करते हैं, परतु औरोंकी क्रियाको देखिकरि ज्ञानवान् किसीकी वांछा नहीं करता, अरु सबको आनदवान् करता है, अरु आप किसीकरि आनदवान् नहीं होता, न किसीको देता है, न लेता है, न किसीकी स्तुति न निंदा करता है, न किसी उत्तम पदार्थोंको पाइकरि उदय होता है, न अनिष्टको पाइकरि नष्ट होता है, हर्षशोकते रहित है, अरु सर्व फलका त्याग किया है, सर्व उपाधिते रहित है, कर्तृत्व भोक्तृत्वते आपको न्यारा मानता है, ऐसा जो पुरुष है, सो जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी ! जब तू सर्व इच्छा त्यागकरि मौन करै है, तव निर्विशेष भावको प्राप्त होवैगा, जैसे मेघ जलका त्यागकरि मौनभावको प्राप्त होता है, तैसे तू मोक्षभावको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जैसे कामी पुरुष स्त्रीको कठ लगायकरि आनदवान् होता है, तिसको ऐसा आनद नहीं होता, जैसा आनद निर्वासनिक पुरुषको होता है, अरु फूलगुच्छेकरि ऐसा वसंतऋतु नहीं शोभता, जैसे उदारबुद्धि आत्मा मौ-

नवान् शोभता है, अरु हिमालय पर्वतविषे प्राप्त हुआ भी ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा निर्वासनिक पुरुषका मन शीतल होता है, मोतियोंकी मालाकरि अरु केलेके वनको प्राप्त हुआ ऐसे सुखको नहीं पाता, अरु चदनोंके लेप करनेहारा ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा शीतल निर्वासनिक मन होता है, अरु चंद्रमाको स्पर्शकरि ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा निर्वासनिक पुरुष शीतल होता है, चद्रमा बाहरकी तप्तता मिटाता है, परतु अतर तप्तताको निवृत्त नहीं करता, अरु निराशताकरिकै अतरकी तप्तता मिट जाती है, परम शांतिको प्राप्त होता है, जैसी शीतलता निर्वासनिक पुरुषके सगकरि होती है, तैसी और किसी उपायते नही प्राप्त होती ॥ हे रामजी ! ऐसा सुख स्वर्गविषे नहीं प्राप्त होता, अरु सुदर स्त्रियोंके स्पर्शकरि भी एसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा सुख निर्वासनिकको प्राप्त होता है, निर्वासनिक पुरुष तिस सुखको प्राप्त होता है, जिस सुखविषे त्रिलोकीके सुख तृणवत भासते हैं ॥ हे रामजी ! आशारूपी एक कर्जुएका वृक्ष है, तिसके काटनेको उपशमरूपी कुहाड़ा है, जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है, तिसको सब पृथ्वी गोपदके समान तुच्छ भासती है, अरु मेरु पर्वत एक टूटे वृक्षसमान भासता है, अरु दिशा डब्बीके समान भासती है काहेते कि, उत्तमपदको प्राप्त हुआ है, त्रिलोकीकी विभूति तृणकी नाईं तुच्छ देखता है, जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है, सो जगत्को देखिकरि हँसता है, अरु कदाचित् जगतके पदार्थोंकी कल्पना नहीं फुरती, तृणवत जानिकरि जगत्को त्याग दिया है, अरु सदा आत्मतत्त्वविषे स्थित है, तिसको उपमा किसकी दीजे, जिस पुरुषकी उदय अस्त अह त्व आदिक कलना नष्ट हो गई है, केवल आत्मस्वभावको प्राप्त हुआ है, तिस ईश्वर आत्माको तोलि कौन सके ? जब दूसरा उसके समान होवै, तब तोलै ॥ हे रामजी ! वह पुरुष सब सकटोंके अतको प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! यह जगत् मिथ्या भ्रमरूप है, जैसे आकाशविषे दूसरा चद्रमा भ्रमकरि भासता है, जैसे भ्रमकरि मरुस्थलविषे नदी भासती है, जैसे मद्यपानकरि नगर भ्रमता भासता है, तैसे यह मिथ्या जगत भ्रमकरिकै भासता है, इसकी आशा मत कर, तृ

जैसे मूर्तिऊपर रंग नील पीत श्याम लिखे होते हैं, तैसे उसके वस्त्र अरु केश हे हे रामजी ! जिस पुरुषको आत्माका साक्षात्कार होता है, तिसको अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि नहीं होती, अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि तब होती है, जब वस्तुका विस्मरण होता है, सो तौ ज्ञानवान्को सदा स्वरूपका स्मरण है, तिसको अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि कैसे होवै, जिसको आत्मबुद्धि हुई है उसको विस्मरण नहीं होता, जैसे किसी पुरुषने गुड किसी पास रक्खा होवै,अरु वह खाय जावै, तौ उसको दड आदिक कर्मकरि सकैगा, परंतु उसका रस दूर करनेको समर्थ नहीं,तैसे जिसको आत्माका अनुभव हुआ है, तिसको दूर करनेको कोऊ समर्थ नहीं ॥ हे रामजी ! जैसे परव्यसनीनारी होती है,किसी पुरुष साथ उसका चित्त लगता है,तब गृहका कार्य भी करती है, परतु चित्त तिसका सदा उसाविषे रहता है, तैसे ज्ञानवान् क्रिया करता है,परतु तिसका चित्त सदा आत्मपदविषे रहता है,जैसे परव्यसनी नारीको अपना भर्ता दड भी करता है, तौ भी स्पर्शका सुख उसके हृदयते दूर नहीं करि सकता, तैसे जिसको आत्मअनुभव हुआ है, तिसके दूर करनेको कोई समर्थ नहीं, देवता दैत्य दूर नहीं करि सकते तौ औरकी क्या वार्ता है, वडे जो सुख अथवा दु खका अनुभव प्रवाह आनि पडै तौ भी तिसको खडन नहीं करि सकते कर्ता हुआ भी अकर्ता हुआ है, जैसे परव्यसनी नारी परपुरुषके सयोगकरि दुःख पाती है, परतु इसको स्पर्शके सुखका अनुभव हुआ है, तिसके संकल्पकरि अनुभव अखंड करती है, तिसकरि उसको दु ख नहीं भासता, तैसे जिसको आत्मसुख प्राप्त भया है, तिसको दु ख सुख अपर कछु नहीं भासता ॥ हे रामजी ! सम्यक् ज्ञानकरि जिसकी अविद्या नष्ट भई है, सो दु खोंको नहीं देखता, जो उसके अंग काटे, तौ भी दुःख न[illegible]
शरीरके नष्ट हुए नष्ट नहीं होता, सुख [illegible] नष्ट हो गा[illegible]
आत्मपदविषे निश्चय रहता है, संकटवान् भै[illegible] है, न[illegible]
संकट कोऊ नहीं, वनविषे [illegible]
समाधि करै वह सदा ज्योंका[illegible] ६
प्रकार नहीं होता ॥ ॥ इति [illegible] ७
विचारो नाम [illegible] ।।ति। ९

सप्ततितमः सर्गः ७०.

मुक्तामुक्तविचारवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! राजा जनक राज्यव्यवहार करता रहा, परतु आत्मपदविषे स्थित था, तिसकरि उसको कलंक न भया, सदा विगतज्वरही रहा, अरु तेरा प्रपितामह जो राजा दिलीपथा, सो भी सर्व आरंभोंको करता रहा, परंतु अंतर रागद्वेपको न प्राप्त भया, जीवन्मुक्त होके चिरपर्यंत पृथ्वीका राज्य राजा करत भया अरु राजा अज नानाप्रकारके युद्ध राज्यव्यवहारकी पालना करत भया अरु सदा जीवन्मुक्त स्वभावविषे स्थित भया राजा मांधाता नानाप्रकारकी युद्धचेष्टा करता रहा, परतु सदा परमपदविषे निश्चय रहा, कदाचित मोहको प्राप्त न भया अरु राजा वलि पातालविषे स्थित हुआ, महात्यागी राज्यव्यवहारको करता भी दृष्ट आया, परंतु स्वरूपके ज्ञानकरि सदा शांतरूप जीवन्मुक्त होकरि विचरता भया, अरु नभचर दैत्योंका राजा सदा नाना युद्ध आदिक क्रियाविषे रहा, देवतोंकेसाथ सदा विरोध रहा, परंतु हृदयविषे कछु ताप न भया, अरु इंद्रके युद्धविषे वृत्रासुर दैत्य मारा, परतु सदा शीतल कदाचित् क्षोभको प्राप्त न भया, अरु दैत्योंका राजा प्रह्लाद पातालविषे राज्य करता रहा, परतु हृदयविषे कछु क्षोभ न भया ॥ हे रामजी ! शंवर नामक दैत्य अपनी सृष्टिके रचनेको उदय भया, सो तिस रचनेविषे वधमान न भया, सदा शांवरी मायापरायण भया अरु मायासाथ एक मायावीरूप होकरि स्थित हुआ ॥ हे रामजी ! यह संसार जो शांवरीमायारूप है, तिसका शांवरी त्यागकरि अपने स्वरूपविषे स्थित रहे, अरु विष्णु भगवान् सदा दैत्योंको मारता है, युद्ध करता रहता है, अरु हृदयविषे अलेप बुद्धि है, तिसकरि सदा सुखी जीवन्मुक्त है अरु मूसल नाम दैत्य विष्णुसाथ युद्धकरि शरीरको छोड़त भया, परतु अंतर देहसाथ संबंध कछु न था, तिसकरि जीवन्मुक्त सुखी रहा, पिंडको न प्राप्त भया ॥ हे रामजी ! सर्व देवतोंका मुख अग्नि है, सो यज्ञलक्ष्मीको चिरकालपर्यंत भोगता है परतु ज्ञानवान् है, इसकरि

रामजी ! जो असत् है, सो सत्यकी नाईं भासता है, अरु जो सत् है सो असत्की नाईं भासता है, ताते यथार्थ विचारकारि सत्‌रूप आत्मपदविषे स्थित होहु, अरु असत्‌रूप जगत्की आस्थाको त्यागि समताभावको ग्रहण कर, इस लोकविषे जो अविवेकमार्गविषे विचरता है सो मुक्त नहीं होता, इस प्रकार कोटि जीव संसारसमुद्रविषे डूबते हैं, अरु जो विवेकविषे प्रवर्तता है सो मुक्त होता है ॥ हे रामजी ! जिसका मन क्षय हुआ है, तिसको मुक्तरूप जान, अरु जिसका मन क्षय नहीं भया, सो बंधनविषे है, ताते जिसको सर्व दुःखोंते मुक्तिकी इच्छा होवै सो आत्मविचार करै तिसकरि सर्व दुःखनाश हो जावैगे ॥ हे रामजी ! दुःखोंका मूल चित्त है, जबलग चित्त है, तबलग दुःख है जब चित्त नष्ट हो जाता है, तब दुःख सब मिटि जाते हैं ॥ हे रामजी ! जब आत्मज्ञान होता है तब चित्तका अभाव हो जाता है, अरु दुःख सब मिटि जाते हैं, अरु राग इच्छा सब भय मिटि जाते हैं केवल शांतरूप होता है, जनक आदिक जो जीवन्मुक्त हुए हैं, सो निराग निःसंदेह होकरि महाबोधवान् व्यवहार भी करते रहे, परंतु सदा शीतलचित्त रहे हैं, ताते तू भी विवेककरि चित्तको लीन कर, हलोहर बंटा पत्थर अरु स्वर्णसम जीवन्मुक्त होकरि विचर ॥ हे रामजी ! मुक्ति भी दो प्रकारकी है, एक जीवन्मुक्ति है, एक विदेहमुक्ति है, जो पुरुष सर्व पदार्थोंविषे असंसक्त है, अरु मन शांतभावको प्राप्त हुआ है, सो मुक्त कहाता है, अरु जिस पुरुषका सर्व पदार्थोंका ज्ञानकरि स्नेह नष्ट भया है, अरु व्यवहार करता दृष्ट आता है तो भी शीतलचित्त है, सो जीवन्मुक्त कहाता है, जो पुरुष सर्व भाव अभावपदार्थोंको त्यागिकरि केवल अद्वैततत्त्वको प्राप्त हुआ है, अरु शरीर आदिक क्रिया कोऊ दृष्ट नहीं आती सो विदेहमुक्त कहाता है, अरु जो तीसरा है, जिसका स्नेह पदार्थोंते दूर हुआ नहीं सो बंध कहाता है, मुक्तिके अर्थ भी यत्न करता है, जब युक्तिपूर्वक यत्न करता है, तब दुस्तर भी सुगम हो जाता है, अरु जो युक्तिते रहित यत्न करता है, तिसको गोपद भी समुद्र हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिनने आत्मकरि आत्मविचार किया है, तिनको विस्तृत जगत समुद्र गोपद हो जाता है, अरु अज्ञानीको गोपद भी दुस्तर हो गया है, कोऊ

इष्ट अनिष्ट अल्प भी आनि प्राप्त होता है, तिसविषे डूबि जाता है, निकस नहीं सकता, तिसको गोपद भी समुद्र है, अरु ज्ञानीको अत्यंत विभूति ऐश्वर्य आनि प्राप्त होवै, अथवा विपर्यय तिसका अभाव हो जावै, तौ भी तिसविषे रागद्वेषकरि नहीं डूबता ॥ हे रामजी ! जिसको कछु प्राप्ति होवै सो अपने प्रयत्नके बलकरि होती है, जो कोऊ प्रधान हुआ है, सो प्रयत्न-रूपी वृक्षके फलकरि हुआ है, आत्मपदकी प्राप्ति भी प्रयत्नरूपी वृक्षका फल है ताते और उपाय त्यागिकरि आत्मपदकी प्राप्तिका प्रयत्न कर ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे मुक्तामुक्तविचारो नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१.

संसारसागरयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेती कछु जगज्जाल है, सो सब आत्मा ब्रह्मका आभासरूप है, अज्ञानकरि स्थिरताको प्राप्त हुआ है, विवेककरि शांति हो जाती है, ब्रह्मरूपी समुद्रविषे जगत्‌रूपी आवर्त फुरते हैं तिनकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ नहीं, आत्मरूपी सूर्यके जगत्‌रूपी त्रसरेणु हैं ॥ हे रामजी ! असम्यक् दर्शन जगत्‌की स्थितिका कारण है, अरु सम्यक् दर्शनकरि शांत हो जाता है, जैसे मरुस्थलविषे असम्यक् दर्शनकरि जल भासता है, सम्यक् दृष्टिकरि अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! संसाररूपी समुद्र अपार घोररूप है, सो शास्त्र युक्ति अरु आत्मअभ्यासविना तरना कठिन है मोहरूपी जलकरि पूर्ण है अरु मरणरूपी आवर्त है अरु पुण्य-रूपी जल है ॥ अरु वडवाग्नि इसके अंगोंविषे नरक समान है, अरु तृष्णा-रूपी धूमरवेर है, अरु इंद्रियां मनरूपी तंदुए मच्छ है, क्रोधरूपी सर्प है, तिनविषे जीवरूपी नदियां हैं, सो प्रवेश करती हैं, जन्ममरणरूपी वृत्तचक्र हैं, तिनको जो तरि जाता है, सो पुरुष है, अरु स्त्रिया जो सुंदर लगनी हैं, सो महाबलवंत हैं, नेत्र जिनके पहाड़के खंपनेविषे समर्थ हैं कम-

लकी नाई, अरु दंत मोतियोंकी नाई हैं, होठ तरियांवत् हैं, इत्यादिक जो सुंदर अंग हैं, सो महादुःखके देनेहारे हैं, वडवाग्निकी नाई हैं, जो इनको तरि जाता है, सोई पुरुष है ॥ हे रामजी ! जो जहाज अरु मल्लाह होते हैं,तौ भी इनको नहीं तरता, तिसको धिक्कार है, जहाज अरु मल्लाह कौन हैं, सो श्रवण कर, मनुष्यशरीरविषे कछु विचारसहित बुद्धि है, सो जहाज है, अरु संतरूपी मल्लाह हैं, इनको पाइकरि जो संसारसमुद्रको नहीं तरते तिनको धिक्कार है, ऐसे संसारसमुद्रको ग्रहणकरि जो तरिगया है, तिसको पुरुष कहते हैं ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने आत्मविचारविषे बुद्धिको लगाई है, सो तरि जाता है, अन्यथा तरि नहीं सकता, जिसको आत्मअभ्यास दृढ़ भया है, सो तरनेको समर्थ होता है ॥ हे रामजी ! प्रथम आर्जव सो ज्ञानवान् पुरुषोंकेसाथ विचार अरु बुद्धिकरि संसारसमुद्रको देखो, जव तैंने इसको ज्योंका त्यों जाना तव तू विलासक्रीडा करनेयोग्य होवैगा ॥ हे रामजी ! तू तौ भगवान है, परतु बोधके विचारकरि संसारसमुद्रको तरि जाउ, तू तौ जवान है, तेरे पाछे और तेरे स्वभावको विचारकरि संसारसमुद्रको तरि जावैगे, अरु जो इस शुभ मार्गको त्यागिकरि विषयमार्गको धारते हैं, सो संसारसमुद्रविषे डूबे हैं ॥ हे रामजी ! यह जो विषयभोग हैं, सो विषरूप हैं, जो इनको सेवैगा सो नष्ट होवैगा, परंतु जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है तिसको यह जैसे गरुड़मन्त्र पढ़नेवालेको सर्प दुःख नहीं दे सकते, तैसे दुःख दे नहीं सकते, जिसका परिणाम शुद्ध हुआ है, सो विभूतिवान् है, वल वीर्य तेज यह तीनों तत्त्वके साक्षात्कारकरि चढ़ि आते हैं, जैसे वसंतऋतुके आएते रस फूल फल सब सुंदर हो आते हैं ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानकी धर्म लक्ष्मी प्राप्त भई सो पूर्ण अमृततुल्य है, शीतल शुद्ध सम प्रकाशरूप है, लक्ष्मीको पाइकरि विदितवेद स्थित हो रहते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारसागरयोगोपदेशो नाम एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२.



जीवन्मुक्तवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! संक्षेपते तत्त्ववेत्ताके लक्षण बहुरि कहौ, जिनको तत्त्वका चमत्कार हुआ है, तिनकी उदार वाणीकरि वृत्ति कहौ, ऐसे कौन है, जो तुम्हारे वचन सुनते तृप्त होवैं? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जीवन्मुक्तके लक्षण मैं तुझको बहुत प्रकार आगे कहे हैं, बहुरि भी सुन ॥ हे महाबाहो! संसारको ज्ञानवान् सुषुप्तिकी नाईं जानता है, अरु सब ईपणा तिसकी नष्ट हो गई है, अरु सब जगतको आत्मारूप देखता है, केवल भावको प्राप्त होता है, अरु संसार सुषुप्तिरूप हो जाता है, आत्मानंदविषे घूर्म रहता है, देता है, परंतु अपने जाननेकरि किसीको नहीं देता, अरु लोक दृष्टिकरि प्रत्यक्ष हाथोंहाथ ग्रहण करता है, परंतु अपनी दृष्टिकरि कछु नहीं लेता, ऐसा जो आत्मदर्शी ज्ञानवान् उदार आत्मा है, सो यन्त्रकी पुतलीवत् चेष्टा करता है, जैसे यन्त्रकी पुतली अभिमानते रहित चेष्टा करती है, तैसे ज्ञानवान् अभिमानते रहित चेष्टा करता है, देखता है, हँसता है, लेता है, देता है, परंतु अंतरते सदा शीतलबुद्धि रहता है, भविष्यका कछु विचार नहीं करता, अरु भूतका चिंतवन नहीं करता, अरु वर्त्तमानविषे स्थिति नहीं कर्त्ता, सर्व कार्योंविषे अकर्त्ता है, संसारकी ओरते सोई रहा है, आत्माकी ओरते जागृत है, अंतरते सर्वका त्याग किया है, बाह्य सर्व कार्योंको करता है, अंतर किसी पदार्थकी इच्छा नहीं, अरु बाह्य जैसे प्रकृत आचार आनि प्राप्त होता है, अभिमानते रहित तैसे करता है, दोष किसीविषे नहीं करता, सुखदुःखविषे पवनकी नाईं होता है, भ्रमको त्यागिकरि सर्व कार्य कर्मोंको करता है, उदासीकी नाईं, न किसीकी वाञ्छा है, न किसीविषे खेदवान् है, बाह्यते सब कछु कर्त्ता दृष्ट आवै, अंतरते सदा असंग है ॥ हे रामजी! भोक्ताविषे भोक्ता है, अभोक्ताविषे अभोक्ता है, मूर्खोंविषे मूर्खवत स्थित है, बालकोंविषे बालकवत स्थित है, वृद्धविषे वृद्धवत्, धैर्यवान्विषे धैर्यवान् स्थित है, दुःखनिविषे दुःखी है, दुःखविषे धैर्यवान् है,

अरु सदा पुण्यकर्त्ता बुद्धिवान् है, सदा प्रसन्न मधुर वाणीसंयुक्त है, अरु अंतरते सदा तृप्त है, दीनता तिसकी निवृत्त भई है, सर्वथा कोमलभाव है, चंद्रमाकी नाई शीतल है, पूर्ण शुभ कर्म करनेविषे कछु अर्थ नहीं, अशुभविषे कछु पाप नहीं, ग्रहणविषे ग्रहण नहीं, न त्यागविषे त्याग है, न बंध है, न मुक्त है, न आकाशविषे कार्य है, न पातालविषे कार्य है, यथावस्तु यथादृष्ट आत्माको देखता है, द्वैतभाव तिसको कछु नहीं फुरता, अरु बंध मुक्तके निमित्त कछु कर्तव्य नहीं, सर्व संदेह सम्यक्ज्ञानकरि जलि गए, जैसे पेटीते मुक्त हुआ पक्षी आकाशमें उड़ता है, तैसे शंकाते रहित चित्त उनका आत्मआकाशको प्राप्त हुआ है ॥ हे रामजी! जिसका मन संसारभ्रमते मुक्त हुआ है, अरु समरस आत्मभावविषे स्थित भया है, तिसको इष्टअनिष्टविषे कछु राग द्वेष नहीं होता, आकाशकी नाई सबविषे सम रहता है, जैसे पिंगुडेविषे बालक अभिमानते रहित अंगोंको हिलाता है, तैसे ज्ञानीकी चेष्टा अभिमानते रहित होती है, जैसे मद्यपान करनेवाला उन्मत्त हो जाता है, तैसे आत्मानंदविषे ज्ञानी घूर्म हो जाता है, द्वैतकी संभाल तिसको कछु नहीं, हेयोपादेय बुद्धिते रहित होता है ॥ हे रामजी! सर्वको सर्व प्रकार ग्रहण करता है, अरु त्याग भी करता है, परंतु अंतरते ग्रहण त्याग कछु नहीं करता, जैसे बालकोंको ग्रहणत्यागकी बुद्धि नहीं होती, तैसे ज्ञानीको नहीं होती, उसको सर्व कार्यों विषे राग द्वेष नहीं फुरता, जगत्के पदार्थोंको न सत् जानिकरि ग्रहण करता है, न असत् जानिकरि त्याग करता है, सर्वविषे एक अनुस्यूत आत्मतत्त्व देखता है, न इष्टविषे सुखबुद्धि करता है, न अनिष्टविषे दोषबुद्धि करता है ॥ हे रामजी! जो सूर्य शीतल हो जावै, अरु चंद्रमा उष्ण हो जावै, अग्नि अधोको धावै, तौ भी ज्ञानीको कछु आश्चर्य नहीं भासता, वह जानता है, सब चिदात्माकी शक्ति फुरती है, न किसीपर दया करता है, न अदया है, न लज्जा करता है, न अलज्जा करता है, न दीन होता है, न उदार होता है, न सुखी होता है, न दुःखी होता है, न हर्ष है, न उद्वेग है, सर्व विकारोंते रहित शुद्ध अपने आपविषे स्थित है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल

होता है, तैसे निर्मल भावविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे अंकुर नहीं उदय होता, तैसे उसको राग द्वेष नहीं उदय होते॥ हे रामजी! ऐसा पुरुष सुखदुःखको कैसा ग्रहण करै, उसको जगज्जाल ऐसे भासता है, जैसे जलविषे तरंग होता है, ऐसे जानिकरि तू भी अपने स्वभावविषे स्थित होउ॥ हे रामजी! स्वप्नविषे एक निमेषकरि स्वप्नसृष्टि फुरि आती है, अरु क्षणविषे नष्ट हो जाती है, तैसे जाग्रतविषे सृष्टि उपजि आती है अरु लीन हो जाती है, जेती कछु इच्छा अनिच्छा दुःख सुख शोक मोह आदिक विकार हैं, सो सब मनविषे फुरते हैं, जहां मन होता है, तहां विकार भी होता है, जैसे जहां समुद्र होता है, तहां तरंग भी होता है, तैसे जहां मन होता है, तहां विकार भी होता है, जहां चित्तका अभाव है, तहां विकारोंका भी अभाव है, जबलग चित्त फुरता है, तबलग जगद्भ्रम होता है, जब विचाररूपी सूर्यके तेजकरि मनरूपी बर्फका पुतला गलिगया, तब आनंद हुआ, तब सुखदुःखकी दशा शांत हो जाती है जब सुख दुःखका अभाव हुआ, तब ग्रहण त्याग मिटि जाता है, इष्टअनिष्ट वांछित नष्ट हो जाते हैं, जब यह नष्ट हो जाते हैं, तब शुभ अशुभ भी नहीं रहता, जब शुभ न रहे, तब रमणीय अरमणीय भी नष्ट हो जाता है, अरु भोगोंकी इच्छा भी नष्ट हो जाती है, जब भोगोंकी इच्छा नष्ट हो जाती है, तब मन भी निराशपदविषे लीन हो जाता है॥ हे रामजी! जब मूलसहित मन नष्ट भया, तब मनविषे जो संसारके संकल्प सो कहां रहें, जैसे तिलोंके जलेते तेल नहीं रहता, तैसे मनविषे संकल्प विकल्प नहीं रहते; तब केवल शांत आत्मा शेष रहता है, जैसे मंदराचलके क्षोभ मिटेते क्षीरसमुद्र शांतिवान् होता है, तैसे चित्त शांत होता है॥ हे रामजी! ताते भावविषे अभावकी भावना दृढ करहु, अरु स्वरूपका अभ्यास करहु, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे कलनाको त्यागिकरि महात्मा पुरुष निर्मल हो जाता है॥ ॥ इति श्रीयो० उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनं नाम द्विसप्ततितमः सर्गः॥ ७२॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३.

जीवन्मुक्तज्ञानबंधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे जलविषे द्रवताकरिकै चक्र आवृत होते हैं, सो असतही सत् होकरि भासते है, तैसे चित्तके फुरनेकरि असत् जगत् सत् हो भासता है, जैसे नेत्रोंके दूखनेकरि आकाशविषे तरुवरे मोरके पुच्छवत् मुक्तमाला हो भासते है, सो असतही सत् भासते हैं, तैसे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है जैसे बादलोंके चलनेकरि चद्रमा धावता दृष्ट आता है, तैसे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जिसकरि चित्त फुरता है, अरु जिसकरि अफुर होता है सो प्रकार कहौ, जिससे तिसका उपाय करौं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे वर्फविषे शीतलता होती है, अरु तिलोंविषे तेल होता है, अरु फूलोंविषे सुगध होता है, अग्निविषे उष्णता होती है, तैसे चित्तविषे फुरना होता है, चित्त अरु फुरना दोनो एक वस्तु अभेद है, दोनोंविषे जब एक नष्ट होवै, तब दोनों नष्ट हो जावैं, जैसे शीतल अरु श्वेतताके नष्ट हुए वर्फ नष्ट हो जाता है, तैसे एकके नाश हुए दोनों नाश हो जाते हैं, सो चित्तके नाशके दो क्रम हैं, योग अरु ज्ञान, योग कहिए चित्तकी वृत्तिका निरोध करना अरु ज्ञान कहिए सम्यक् विचरना ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वृत्तिका निरोध किस युक्तिकरि होता है, प्राण अपान और पवनका रोकना कैसे होता है, जिसयोगकरि अनंत सुखसपदा प्राप्त होती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस देहविषे जो नाड़ी हैं, तिनविषे प्राणवायु फिरता है, जैसे पृथ्वी ऊपर नदियोंका जल फिरता है, सो प्राणवायु एक है, स्पंदके वशते नानाप्रकारकी विचित्र क्रियाको प्राप्त होता है, तिसकरि अपान आदिक संज्ञाको पाता है, योगीश्वर कल्पते हैं, जैसे पुष्पविषे सुगंधि अभेदरूप है, अरु वर्फविषे श्वेतता अभेद है, आधार आधेय एकरूप है, तैसे प्राण अरु चित्त अभेदरूप है, जब अंतर प्राणवायु फुरता है, तब चित्तकला फुरती है, फुरिकरि संकल्पके सन्मुख होती है, तिसका नाम चित्त कहाता है.

जैसे जल द्रवीभूत होता है, तिसविषे लहरीचक्र फुरि आते हैं, तैसे प्राणों करि चित्त फुरि आता है, चित्तके फुरनेका कारण प्राणवायु है, जब प्राणवायुका निरोध होता है, तब निश्चयकरि मन भी शांत होता है, सो मनके लीन हुए, संसार भी लीन हो जाता है, जैसे सूर्यप्रकाशके अभाव हुए रात्रिविषे मनुष्योंका व्यवहार शांत हो जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह जो दिन अरु रात्रि निरंतर आगमन करते हैं, देहरूपी ग्रहविषे प्राणवायुका रोकना किसप्रकार होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सतजनोंका संग अरु सत् शास्त्रका विचार, अरु विषयते वैराग्य तिसकरि योग्य अभ्यास होता है, प्रथम जगतविषे असतबुद्धि करनी अरु वांछित जो अपना इष्ट देव है, तिसका ध्यान करना, जब चिरकाल ध्यान करता है तब एक तत्त्वका अभ्यास होता है, तिसकरि प्राणोंका स्पंद रोका जाता है, रेचक पूरक कुंभक जो प्राणायाम है, जब अखेदचित्त होकरि अभ्यास दृढ करता है, अरु एकध्यान संयुक्त होता है, तिसकरि भी प्राणोंका स्पंद रोका जाता है; ॐकारका उच्चार करना, ऊर्ध्व तिसकी जो सूक्ष्म ध्वनी होती है, प्रथम शब्द बड़ी ध्वनिसों होता है, सूक्ष्मध्वनि शेष रहती है, तिसविषे चित्तकी वृत्तिको लगावनी, तब सुषुप्तिरूप अवस्थाविषे वृत्ति तद्रूप हो जाती है, तब प्राणस्पंद रोका जाता है, अरु रेचक प्राणायाम जो करता है, तिसके अभ्यासकरि विस्तृत प्राणवायुसों शून्यभाव आकाशविषे जाय लीन होता है, तब प्राणस्पंद रोका जाता है, अरु कुंभककरि जो प्राणवायुको अभ्यासके बल स्थित करना, तब प्राणवायु रोका जाता है, अरु तालुमूलसाथ यत्नसों जिह्वाको ताल घंटासाथ लगानी, इस खेचरी मुद्राकरि वायु ऊर्ध्वरंध्रको जाता है, ऊर्ध्वरंध्रविषे गया भी प्राणवायुका स्पंद रोका जाता है, अरु जो द्वादश अंगुलपर्यंत नासिकाके अग्रविषे अपानरूपी चंद्रमाका निर्मल स्थान आकाशमें है, तिसका देखना ज्योंका त्यों होवे, तौभी प्राणस्पंद रोका जाता है, तालुके द्वादश अंगुल ऊर्ध्व रंध्रका अभ्यास होवे, तिसके अंतविषे जब प्राणोंको लगावै, तब तिस संवितविषे प्राणोंका फुरणा नष्ट हो जाता है, अरु जो भ्रूमध्य त्रिपुटीविषे और प्रकाशको त्यागिकरि तिसविषे चेतनकला रहती है तहां वृत्तिको जोडै वृत्तिके जोडते प्राणकला ऐसी जाती है, अरु

जो सर्व वासनाको त्यागिकरि हृदय आकाशविषे चेतनसंवित्का ध्यान करै, तौ भी चिरकालके अभ्यासकरि ऐसे प्राणस्पंद रोका जाता है॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! जगत्के भूतोंका हृदय किसको कहते हैं, जिस महाआदर्शविषे सर्व पदार्थ प्रतिबिंबत हो जाते है॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जगतके भूतके दो हृदय हैं, एक ग्रहण करने योग्य है, एक त्यागने योग्य है, तिसका भेद सुन, नाभिते जो देहविषे दश अंगुल ऊर्ध्व है सो त्यागने योग्य है परिच्छिन्न भाव करिकै देहके एक स्थानविषे स्थित है, अरु तिसविषे जो संवित्मात्र ज्ञानस्वरूप अनुभवकरि प्रकाशता है, सो मनुष्यको ग्रहण करने योग्य है, जो अंतर बाहिर व्याप रहा है, अरु वास्तव अंतर बाहिरते भी रहित है, सो प्रधान हृदय है, अरु सर्व पदार्थोंका प्रतिबिंब धरनेहारा आदर्श है, सर्व संपदाका भंडार है, सो सर्व जीवोंका संवित् हृदय है, एक अंगका नाम हृदय नहीं, जैसे जलविषे एक पत्थर पुरातन पड़ा होवै, सो जल नहीं हो जाता, तैसे संवित्मात्रके निकट संवित्मात्र तौ नहीं होता, यह जड़रूप है, आत्मा चेतन आकाश है, सो यह प्रधान हृदय है, ताते बलकरिकै संवित्मात्रकी ओर चित्तको लगावहु, तब प्राणस्पंद भी रोका जावैगा॥ हे रामजी! यह प्राणोंका रोकना मैंने तुझको कहा है, और भी शास्त्रोंविषे अनेक प्रकारकरि कहा है जिस जिसप्रकार गुरुके मुखते श्रवण किया है, तिसी प्रकार अभ्यास करै, तब प्राणोंका निरोध होता है, गुरुके उपदेशते अन्यथा सिद्ध नहीं होता जिसको अभ्यासकरिके निरोध सिद्ध भया है, सो कल्याणमूर्ति है, और कल्याणमूर्ति नहीं होता॥ हे रामजी! अभ्यासकरिकै प्राणायाम होता है, अरु वैराग्यकी दृढताकरिकै वासनायाम होता है॥ अर्थ यह कि, वासना रोकी जाती है, जब दृढ अभ्यास करै, तब चित्त अचित्त हो जाता है॥ हे रामजी! भृकुटीके दश अंगुलपर्यंत जो वायु जाता है, तिसका वारंवार जब अभ्यास करता है, तब क्षीण हो जाता है, अरु खेचरी मुद्राते तालुसाथ जिह्वा लगाइकरिकै जो अभ्यास करै तौ भी प्राण रोके जाते हैं, इसके अभ्यासकरि चित्तकी व्याकुलता जाती रहती है, परम उपशमको प्राप्त होता है, यह पुरुष आत्मारामी होता है, सब शोक दूरि

हो जाते हैं, अंतर आनंदकी प्राप्ति होती है, ताते तू भी अभ्यास कर ॥ जब प्राणस्पंद मिट जाता है, तब चित्त भी स्थित हो जाता है, तिसके पाछे जो पद है, सो निर्वाणरूप है ॥ हे रामजी ! जब प्राणस्पद मिटि जाते हैं, तब चित्त भी स्थित हो जाता है, जब चित्त स्थित हुआ, तब वासना नष्ट हो जाती है, जब वासना नष्ट हो जाती है, तब मोक्षकी प्राप्ति होती है, जबलग चित्त वासनाकरि लपेटा है, तब लग जन्ममरणको देखता है, जब मन वासनाते रहित होता है, तब मोक्ष होता है ॥ हे रामजी ! प्राणवायुको रोककरि वासनाते रहित हुआ, जहां तेरी इच्छा होवै, तहां विचर, तुझको बंधन न होवैगा, जब प्राण फुरता है, तब मन उदय होता है, जब मन उदय हुआ, तब संसारभ्रम होता है, जब मन क्षीण होता है, तब ससारभ्रम नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब मनसो संसारकी वासना कलना मिटि जाती है, तब अशब्दपद प्राप्त होता है, तिसते यह सर्व है, अरु जो यह सर्व है, अरु जिसते न सर्व है, अरु जो न सर्व है, अरु जो न सर्वविषे है, जिसविषे न यह सर्व है, ऐसा जो निर्गुण तत्त्व है, सो सर्व कलनाके त्यागते प्राप्त होता है, तिसको उपमा किसकी दीजे ? आत्मा अविनाशी निर्विकल्प निर्गुण है, यह जगत् नाशरूप सकल्पके रचित गुणरूप तिसको किस पदार्थसाथ दृष्टांत दीजे ? अर्थ यह कि, दूसरा कछु नहीं, जेते कछु स्वाद तिनको स्वादकर्ता वही है, अरु जेते प्रकाश हैं, तिनको प्रकाशकर्ता वही है, सर्वकलनाका कलनारूप वही है, जेते कछु पदार्थ हैं, तिन सबनका अधिष्ठानरूप वही है, सो चित्त अरु आवरणके दूर हुए प्राप्त होता है, अरु सर्व पदार्थोंकी सीमा वही है, ऐसा जो आत्मारूप चंद्रमा शीतल है, जब तिसविषे बुद्धिवान् स्थित होता है, तब जीवन्मुक्त कहाता है, अरु सर्व इच्छा आश्चर्य नष्ट हो जाता है, अहं त्व आदिक कल्पना मिटि जाती हैं, सर्व व्यवहार विस्मरण होता है, ऐसा जो मुक्त मन है, सो पुरुषोत्तम होता है॥इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तज्ञानबंधो नाम त्रिसप्ततितम सर्ग ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४.

सम्यग्ज्ञानवर्णनम्।

राम उवाच॥ हे प्रभो! योगीकी युक्ति तुमने कही, जिसकरि चित्त उपशम होता है, अब सम्यक् ज्ञानका लक्षण भी कृपा करि कहौ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह निश्चय है, कि आत्मा आनदरूप, आदिअंतते रहित, प्रकाशरूप सर्व परमात्मा तत्त्व है, इस निश्चयको सम्यक् ज्ञान बुद्धीश्वर कहते है, अरु यह जो घटपटादिक अनेक पदार्थशक्ति हैं, सो सब आत्मा परमानदरूप है, तिसते इतर नहीं, ऐसा जो देखना है सो सम्यक् देखना है, सर्वात्मा है, नित्यशुद्ध है, परमानदस्वरूप है, सदा अपने आपविषे स्थित है,ऐसा निश्चय सम्यक्ज्ञान है,अरु जो इसते इतर होवे, सो असम्यक् ज्ञान है॥ हे रामजी! सम्यक्दर्शीको मोक्ष है, असम्यक्दर्शीको बंधहै, तिसको आत्मा जगत्रूप भासता है, सम्यक्दर्शीको केवल आत्मा भासताहै जैसे जेवरीविषे असम्यक्दर्शीको सर्प भासताहै सम्यक्दर्शीको जेवरी भासतीहै सर्व संवेदन संकल्पते रहित शुद्ध संवित् परमात्मा है तिसको जो जानता है सो परमात्माके जाननेवाला बुद्धीश्वरहै,इसते इतर है सो अविद्या है, हे रामजी! आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैतकलना कोई नहीं, ऐसा जो यथार्थदर्शी है, सोई सम्यक्दर्शी है, सर्व आत्मा पूर्ण है भावअभाव बंधमोक्ष कोई नहीं न एक है, न द्वैत है, ब्रह्मही अपने आपविषे स्थित है, जो सर्व चिदाकाश है, तौ बंध कौनको कहिए अरु मोक्ष कौनको कहिए, ऐसा जिनको ज्ञान है, तिनको काष्ट पाषाण ब्रह्माते चेंटीपर्यंत सब सम भासता है, अल्पमात्र भेद भी नहीं भासता, कल्पनाके सन्मुख कैसे होवे॥ हे रामजी! वस्तुके आदि अंत जो अन्वय व्यतिरेक करिके आत्मा सिद्ध होता है॥ अर्थ यह जो पदार्थ है सो है, तौ भी आत्मसत्ताकरि सिद्ध होता है, अरु जो पदार्थका अभाव हो जाता है, तौभी आत्मसत्ता शेष रहती है तू तिस परायण होउ, जो अविनाशी अनुभव धारि तिसके विषे स्थित होउ वही अनुभवसत्ता जगत्रूप होकरि भासती है, जरामरण आदिक जो नानाप्रकारके विकार

वस्तुरूप भासते है,सो वस्तु अपने आपविषे फुरती है, जैसे जलविषे द्रवता करिकै नानाप्रकारके तरंग बुद्बुदे होते हैं, सो जलरूप है, इतर कछु नहीं तैसे चित्तके फुरनेकरिके नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, सो आत्म रूप है, इतर कछु नहीं, आत्मतत्त्वही अपने आपविषे स्थित है जब तिस विषे स्थित होता है, तब बहुरि दीन नहीं होता, जो पुरुष दृढ विचारवान् है; सो भोगोंकरि चलायमान नहीं होता जैसे मंद पवन करिके मेरु पर्वत चलायमान नहीं होता, अरु जो अज्ञानी हैं विचारते रहित मूढ हैं, तिनको भोग ग्रासि लेते है, जैसे जलते रहित मच्छीको बगला ग्रासि लेता है अरु जिसको सर्व आत्माही भासता है, सो सम्यक्दर्शी पुरुष कहाता है वही मुक्तरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सम्यक्ज्ञानवर्णनं नाम चतु:सप्ततितमः सर्ग. ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ७५

चित्तउपशमयोगवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो विवेकी पुरुष भोगोंके निकट आय प्राप्त होता है, तौभी इच्छा नहीं करता। काहेते कि, अर्थ बुद्धिही तिसविषे कछु नहीं, जैसे सुंदर कमलिनी चित्रकी लिखी हुईके निकट भँवरा आनि प्राप्त होता है, तौ भी इच्छा नहीं करता, तैसे विवेकी भोगोंविषे अर्थबुद्धि नहीं करता ॥ हे रामजी ! सुखदु - खकी प्राप्ति अरु निवृत्तिविषे इच्छा तबलग होती है, जबलग देहाभिमान होता है, जब देहाभिमान निवृत्त हुआ, तब कछु इच्छा नहीं, होती ॥ हे रामजी ! ममता करिकै दुःख होता है, जब रूपको नेत्र देखते हैं, तिनको इष्ट मानिकरि प्रसन्न होते हैं, अरु अनिष्ट मानिकरि द्वेष करते हैं, जैसे बलद भारवाहक चेष्टा करता है, तिसको लाभ टोटा कछु नहीं होता, जिसको तिसविषे ममत्व होता है, वह लाभ टोटेका शोक करता है, तैसे यह ममत्व करि इंद्रियोंके विषयोंमें हर्षशोकवान् होता है, जैसे गर्दभ कीचड़विषे डूबे, अरु राजा

शोक करता है कि, मेरे नगरका गर्दभ डूबा है, तैसे यह ममत्वकरिके इंद्रियोंके विषयोंमे दुःख पाता है, नही तौ गर्दभ कीचड़विषे डूबेते राजाका क्या नष्ट होता है ॥ हे रामजी ! यह इंद्रियां तौ अपने विषयोंको ग्रहण करती है, इसविषे जीव तपायमान होता है, सो आश्चर्य है, अरु इन विषयोंकी यह चेष्टा इच्छा करते हैं, सो क्षणक्षणविषे नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! जो मार्गविषे किसीसाथ स्नेह हो जाता है, तौ ममत्व प्यारकरि दुःख होता है, तब जो देहविषे ममत्व करैगा, तिसको दुःख क्यों नहीं होवैगा, भावे कैसा बुद्धिवान् होवै, शूरमा होवै, तौ भी संगकरि बधमान होता है ॥ अर्थ यह कि, इंद्रियोंके विषयोंका अहंभावकरि ग्रहण करैगा, तौ तिनके नाश होनेकरि यह भी नाश होवैगा, जिन नेत्रोंका विषय रूप है, सो नेत्र साक्षी होकरि रूपको ग्रहण करते हैं; अरु ऐसा मूर्ख है, जो औरोंके धर्म आपविषे मानि लेता है, अरु तिनविषे तपायमान होता है, जैसे भ्रमदृष्टिकरिके आकाशविषे मोरपुच्छवत् तरुवरे भासते हैं; अरु दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे मूर्खता करिकै इंद्रियोंके धर्म अपनेविषे मानि लेता है, जैसे इंद्रिया साक्षी होकरि विषयोंको ग्रहण करती हैं, तैसे चित्त भी अभिमानते रहित साक्षी होकरि ग्रहण करे तौ रागद्वेषकरि तपायमान न होवै, जैसे जलविषे चक्र तरंग फुरते दृष्ट आते हैं, तैसे यह इंद्रियोंके रूप विषय अरु इंद्रिया फुर आती हैं, आधार आधेयकरि इनका संबंध होता है, अरु चित्त इनके साथ मिलि व्याकुल होता है, रूप इंद्रिय अरु मन इनका परस्पर असंगभाव है, जैसे मुख अरु दर्पण अरु प्रतिबिंब भिन्न भिन्न असंग हैं, तैसे यह भिन्न भिन्न असंग हैं, परंतु अज्ञानकरि मिले हुए भासते हैं जैसे लाखकरिके सोने रूपे चीनीका संयोग होता है तैसे अज्ञानकरिके रूप अवलोकन मन संस्कारका संयोग होता है, जब ज्ञान अग्निकरि अज्ञानरूपी लाख जलि जावै, तब परस्पर भिन्न भिन्न हो जाते हैं, बहुरि किसीका दुःख सुख किसीको नहीं लगता, जैसे दो लकडीका संयोग लाखकरि होता है तैसे अज्ञानकरि विषय इंद्रियां मनका संयोग होता है, ज्ञानरूपी अग्निकरि

जब बिछुरि जाते हैं, तब बहुरि नहीं मिलते, जैसे भिन्न भिन्न मणके सूत्रके तागेकरि इकट्ठे होते हैं, तैसे देह इन्द्रियोंविषे अज्ञानकरि इकट्ठे होते जब विचार करिके तागा टूटि पडे, तब भिन्न भिन्न हो जावै, बहुरि मिलै नहीं ॥ हे रामजी! जिन पुरुषोंको आत्मविचार भया है, सो ऐसे विचारते है, कि जो हमको दुःख देनेहारा चित्त था, चित्तके नष्ट हुए आनंद भया है जैसे मंदिरविषे दुःख देनेहारा पिशाच रहता है, तब दुःख होता है, नहीं तो मंदिर दुःख नहीं देता, पिशाच दुःख देता है, तैसे शरीररूपी मंदिरविषे दुःख देनेहारा चित्त है ॥ हे चित्त! तुझने मिथ्या मुझको दुःख दिया था, अब मैं आपको जाना है, तू आदि भी तुच्छ है, अंतभी तुच्छ है वर्तमानमें भी तू मिथ्या जीवको दुःख देता है, जैसे मिथ्या परछाया बालकको वैताल होकरि दुःख देता है बड़ा आश्चर्य है ॥ हे चित्त! तू तबलग दुःख देता है, जबलग आत्मस्वरूपको नहीं जाना जब आत्मस्वरूपका ज्ञान भया, तब तू कहू दृष्ट न आवैगा, तू तो मायामात्र है, अब तू रहु अथवा जाउ, मैं अब तुझसों मोहित नहीं होता, तू तो मूर्ख जड है, अरु मृतक है, तेरा आकार अविचारते सिद्ध है, अब मैं पूर्वका स्वरूप पाया है, तू तत्व नहीं, भ्रांतिमात्र है, जो मूढ है सो तुझकरि मोहित होता है, विचारवान् मोहित नहीं होता, जैसे दीपककरि अंधकार दृष्ट नहीं आता, तैसे ज्ञानकरि तू दृष्ट नहीं आता ॥ हे मूर्ख चित्त! तू बहुत काल इस देहरूपी गृहविषे रहा है, अरु तू वैतालरूप है, जैसे अपवित्र स्थानविषे वैताल रहता है, जहां श्मशान आदिक स्थान होते हैं, तैसे सत्संगते रहित देहरूपी गृह सो श्मशानके समान सदा अपवित्र है, तहां तेरे रहनेका स्थान है, अरु जहां संतोंका निवास होता है, तहां तुझसारिखे ठौर नहीं पाते हैं, सो मेरे देहरूपी गृहविषे सत विचार संतोषादिक सतजन आनि स्थित हुए हैं, तेरे बसनेका ठौर नहीं ॥ हे चित्त पिशाच! तू पूर्वरूपी तृष्णा पिशाचनी अरु कामक्रोधादिक गुह्यक अपने साथ लेकरि चिरपर्यंत विचरा था, अब विवेकरूपी मंत्रकरि मैने तुझको निकाला है, तब कल्याण हुआ ॥ हे चित्त! पिशाचरूप! तू प्रमादरूपी मद्यपानकरि मत्त हुआ था, अरु चिरपर्यंत नृत्य करता था, विवेकरूपी

मन्त्रकरि तुझको काढा, अब देहरूपी कंदरा शुद्ध भई है, अरु शुद्ध भाव पुरुषोंने निवास किया है, जैसे सिंह कंदरासों निकसि जाता है, तब मुनीश्वर आनि निवास करता है, तैसे यहां शुद्धभावहुने प्रवेश किया है ॥ हे चित्त ! मैं तुझको विवेकरूपी मित्र करिकै वश किया है, अब तेरा क्या पराक्रम है, तू तबलग दुःख देता था, जबलग विचाररूपी मित्र पाया न था, अब तेरा बल कछु नहीं चलता, अब मैं महा केवल-भावविषे स्थित हौं, आगे भी मैं तुझको जगाता था, आपते तू सबरूप है, जैसे कचे मन्त्रवाला सिंहको जगाता है, अरु आप कष्ट पाता है, तैसे मैं तुझको जगाइकरि कष्ट पाता था, अब मैं आत्मविचारकरि परिपक्क मन्त्र-करि वश किया है, तब शांतिवान् हुआ हौं, ममता मान मेरे कछु नहीं, मोह अहंकार सब नष्ट हो गया है, इनका कलत्र भी नष्ट हो गया है, मैं निर्मल चेतन आत्मा हौं, मेरा तुझको नमस्कार है, न मेरेविषे कोऊ आशा है, न कर्म है, न संसार है, न कर्तृत्व है, न मन है, न भोक्तृत्व है, न देह है, ऐसा जो निर्गुणरूप आत्मा है, मेरा मुझको नमस्कार है, न कोऊ आत्मा है, न अनात्मा है, न अहं है, न त्वं है, किसी शब्दका प्रवेश नहीं, ऐसा निराश है, न रूप हौं, न प्रकाशरूप हौं, अरु निर्मल आत्मा हौं, अपने आपविषे स्थित हौं, ऐसा जो मैं आत्मा हौं, सो मेरा मुझको नमस्कार है, न विकार हौं, नित्य हौं, निराश हौं, सर्व कार्यों-विषे अनुस्यूत हौं, अशाशीभावते रहित हौं, ऐसा सर्वात्मा जो मैं हौं, सो मेरा मुझको नमस्कार है, सम हौं, सर्वगत हौं, सूक्ष्म हौं, अपने स्वभावविषे स्थित हौं, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, आकाश आदिक जगत् मैं नहीं, अरु मैंही सर्व पदार्थ होइकरि भासता हौं, ऐसा मैं सर्वात्मा हौं, अब मैं सर्व भावको प्राप्त भया हौं, अरु मनभाव मुझते दूर भया है, मेरे प्रकाशकरि विश्व भासता है, अजर अमर अनंत हौं गुणातीत अद्वैत हौं, मनन जिसते दूर भया है, ऐसा जो मैं सुंदररूप हौं, कैसा हौं, जिसविषे विश्व प्रगट है, अरु स्वरूपते अविनाशी हौं, अनंत अजर अमर गुणातीत ईश्वररूपको नमस्कार है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तउपशमयोगवर्णनं नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६.

चित्तशांतिप्रतिपादनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचारकरि तत्त्ववेत्ता आत्माको सम्यक्करि जानते हैं, तू भी आत्मविचारका आश्रय करिके आत्मपदके आश्रय होउ, यह जगत सब आत्मरूप है, ऐसे जानिकरि चित्तसों जगत्की सत्यताको त्यागिकरि जब ऐसे विचार करै, तब चित्त कहां है ? बड़ा आश्चर्य है कि, जो चित्त वस्तुरूप दिखाई देता था, सो चित्त अविदित मायामात्र असत्रूप था, जैसे आकाशके फूल कहनेमात्र है, तैसे चित्त कहनेमात्र है, अविचारकरि दिखाई देता है, विचारवान्को चित्त असत् भासता है, काहेते कि, अविचारते सिद्ध है, जैसे नौकापर बैठे बालकको तटके वृक्ष चलते भासते हैं, बुद्धिवान्को चलनेविषे सद्भाव नहीं होता, तैसे मूर्खको चित्तसत्ता भासती है, अरु विचारवान्का चित्त नष्ट हो जाता है, जब मूर्खतारूप भ्रम शांत हुआ, तब चित्त कछु नहीं पाता जैसे बालक चक्रपर चढ़ा हुआ फिरता है, तौ पर्वत आदिक पदार्थ तिसको भ्रमते हैं, जब चक्र ठहरि जाता है, तब चक्र आदि पदार्थ अचल भासते हैं, तैसे चित्तके ठहरनेते द्वैत कछु नहीं भासता, आगे मुझको द्वैत भासता था, सो चित्तके फुरनेकरि नानाप्रकारकी तृष्णा इच्छा उठती थी, अब चित्तके नष्ट हुए इन पदार्थोंकी भावना नष्ट भई है, संशय शोक सब मेरे नष्ट होगए हैं, अब विगतज्वर स्थित हौं, जैसा मैं स्थित हौं तैसे हौं, ईषणा कोई नहीं, जब चित्तका चैत्यभाव नष्ट हुआ, तब इच्छा आदिक गुण कहां रहैं, जैसे प्रकाश नष्ट हुए वर्णज्ञान कछु नहीं रहता है, तैसे चित्तके नाश हुए इच्छा आदिक नहीं रहते, अब चित्त नष्ट हुआ, तृष्णा नष्ट होगई, मोहका पींजरा टूटि पड़ा, अब मैं निरहंकार हौं, बोधवान् हौं, सब जगत् शांतरूप आत्मा हौं, और नानात्व कछु नहीं, मैं निराभास आदिअंतते रहित आनंदपदको प्राप्त हुआ हौं, सर्वगत सूक्ष्म आत्मतत्त्व अपना आप है, तिसविषे मैं स्थित हौं, निरंतर इन विचारोंसाथ अब क्या प्रयोजन है, जबलग आपको मैं देह जानता था, तबलग

यह विचार मूर्ख अवस्थाविषे थे, अब मैं अमित निराकारको प्राप्त हुआ हौं, केवल परमानद सच्चिदानंदको प्राप्त हुआ, किस पदका विचार करौं, आगे मै चित्तरूपी वेतालको आपही जगावता था, अरु आपही दुःखी होता था, अब विचाररूपी मंत्रकारि मैं इसको नष्ट किया है, अरु निर्णयकारि अपने स्वरूपको प्राप्त भया हौं, शांत आत्मा अपने आपविषे स्थित हौं ॥ हे रामजी ! जिसको यह निश्चय प्राप्त हुआ है, सो निर्द्वंद्व रागद्वेषते रहित होकरि स्थित होता है, प्रकृत कर्म करता है, मानमदते रहित आनंदकारिकै पूर्ण होता है, जैसे शरत्कालकी रात्रिको पूर्णमासीका चद्रमा अमृतकरि पूर्ण होता है, तैसे प्रकृत आचार कार्यकर्त्ता ज्ञानवान्‌को शांत पूर्ण आत्मा है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तशांतिप्रतिपादन वर्णन नाम षट्सप्ततितमः सर्ग ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्ग. ७७.

वीतवोपाख्याने चित्तानुशासनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह विचार वेदविदोंने कहा है, पूर्व मुझको ब्रह्माने विंध्याचल पर्वतविषे कहा था, इस विचार करिकै वह परमपदविषे स्थित हुआ है, इस दृष्टिको आश्रयकारिकै आत्मविचार होकरि तमरूपी ससारसमुद्रको तरिजावहु ॥ हे रामजी ! इसके ऊपर एक और परम दृष्टान्त सुन, सो दृष्टान्त परमपदको प्राप्त करनेहारा है, जिस प्रकार वीतवमुनीश्वर विचारकरिकै नि शक स्थित हुआ है सो सुन, वीतव मुनीश्वर महातेजवान् था, सो ससार आधिव्याधिते वैराग्य करत भया, अरु नागादि होके पर्वतोंकी कंदराविषे विचरने लगा, जैसे सूर्य सुमेरु पर्वतके चौफेर फिरता है तैसे विचरने लगा, अरु ससारकी क्रियोंको दु स दुःखरूप विचारता भया कि, यह बड़े भ्रमके देनेहारी है ऐसे जानिकारि उद्वेगअनित हुआ निर्विकल्प समाधिकी इच्छा करत भया, अपना जो कछु व्य... ा, तिसको त्यागत भया, अरु गौर जो अपनी कुटी थी, तिसको ...रिके और केलेके पत्रोंकी बनाइकारि बैठा, जैसे भँवरा कमलनको

त्यागिकरि नील कमलपर जाय बैठता है तैसे गोरकुटीको त्यागिकरि श्यामकुटीविषे जाय बैठा, नीचे कुश बिछाइ तिसऊपर मृगछाला बिछाइ करि पद्मासन मार बैठे, जैसे मेघ जलको त्यागिकरि शुद्ध मौन स्थित होता है, तैसे और क्रियाको त्यागिकरि शांतिके निमित्त शांतरूप स्थित है, हाथोंको तले किया मुखको ऊपर किया, ग्रीवाको सुधाकरिकै स्थित करत भया, इंद्रियोंकी वृत्तिको रोकत भया, बहुरि मनकी वृत्तिको भी रोक दिया जैसे सुमेरुकी कंदराविषे सूर्यका प्रकाश बाह्यते मिट जाता है, तैसे इंद्रियोंकी वृत्ति रोंकि बाहरते मिट जाती है. अरु अंतरते भी विषयोंकी चिंतवनाका त्याग किया, इसप्रकार वह क्रमकरिकै मन स्थित करत भया, जब मन निकरि जावे, तब कहै, बड़ा आश्चर्य है, मन महाचंचल है, जो मैं स्थित करता हौं, तौ बहुरि निकस जाता है, जैसे सुखापात तरंगविषे पड़ा ठैरता नहीं तैसे मन एकक्षण भी ठहरता नहीं, सर्वदा इंद्रियोंकरि विषयोंकी ओर धावता है जैसे गेंदको ज्यों ज्यों ताडना करता है, त्यों त्यों उछलता है, तैसे इस मूर्ख मनको जिस ओरते खैंचता है, तिसी ओर बहुरि धावता है, उन्मत्त हस्तीकी नाईं, जो वटकी ओरते खैंचता है, तौ रसकी ओर निकस जाता है. अरु जो रसकी ओर खैंचता है, तौ गंधकी ओर धावता है, स्थिर कदाचित नहीं होता, जैसे वानर कबहूँ किसी टासपर, कबहूँ किसी टासपर, जाय बैठता है, इसप्रकार मूर्ख मन शब्द स्पर्श गंध रूप रसकी ओर धावता है, स्थिर नहीं होता, इसके ग्रहण करनेको पंच स्थान है, जिस मार्गकरि विषयोंको ग्रहण करता है, सो पंच ज्ञानइंद्रिया है ॥ अरे मूर्ख मन ! तू किस निमित्त विषयोंकी ओर धावता है, यह तौ आप जड असत्रूप भ्रांतिमात्र है, तू इनकरि शांतिको कैसे प्राप्त होवैगा, इनविषे चपलताकरि इच्छा करना अनर्थका कारण है, ज्यों ज्यों इनके अर्थोंको ग्रहण करैगा, त्योंत्यों दुःखके समूहको प्राप्त होवैगा, ये विषय भी जड असत्रूप है, तू भी जड है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत् होती है, तैसे यह असत्रूप है ॥ हे मुने ! यह तौ सब असाररूप है, अरु तू भी इंद्रियांसहित जड़रूप है, तू कर्तृत्वका अभिमान क्यों करता है ? इनका कर्ता चिदानंद आत्मा

भगवान् है, अरु सदा साक्षीभूत है, तैसे आत्मा साक्षीभूत है, तू क्यों वृथा तपायमान होता है, जैसे सूर्य सबकी क्रियाको करावता साक्षीभूतहै, तैसे आत्मा साक्षीभूत है, अरु जगत् सब भ्रांतिमात्र है, जैसे अज्ञान करि जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे अज्ञानकरिकै आत्माविषे जगत भासता है, जैसे आकाश अरु पातालका संबंध कछु नहीं होता जैसे ब्राह्मण अरु चंडालका संयोग नहीं होता जैसे सूर्य अरु तमका संबंध नहीं होता, तैसे आत्मा अरु चित्त इंद्रियोंका संबंध कछु नही होता आत्मा सत्तामात्र है, यह जड असत्‌रूप है, इनका संबंध कैसे होवै, आत्मा न्यारा साक्षीभूत है, जैसे सूर्य सब जनोंते न्यारा रहता है, तैसे आत्मा न्यारा साक्षीभूत है ॥ हे चित्त । तू तौ मूर्ख है, विषयरूपी चवेणेविषे तू रहै औरको भक्षण कर्ता तू तृप्त कदाचित् नहीं होता, अरु विचार मिथ्या कूकरकी नाई चेष्टा करता है, तेरेसाथ हमको कछु प्रयोजन नहीं ॥ हे मूर्ख ! तू तौ मिथ्या अहं अहं करता है, अरु तेरी वासना अत्यंत असत्‌रूप है, अरु जिस पदार्थोंकी तू वासना करता है, सो भी असत्‌रूप है, तेरा अरु आत्माका संबंध कैसे होवै, आत्मा चेतनरूप है, अरु तू मिथ्या जडरूप है, अरु यह मैं जाना है कि, जन्ममरण आदिक विकार अरु जीवत्वभावको तुझने मुझको प्राप्त किया था, मैं तौ केवल चेतन परब्रह्म हौं मिथ्या अहंकारकरिकै जीवत्वभावको प्राप्त किया था, अरु देहमात्र आपको जानता था, मैं तौ संवित्‌मात्र नित्य शुद्ध हौं आदि अंतते रहित परमानंद चिदाकाश अनंत आत्मा हौं अब मैं स्वरूपविषे आप जागा हौं, और सत्भाव मुझको कछु नहीं दृष्ट आता ॥ हे मूर्ख मन ! जिन भोगोंको तू सुखरूप जानिकरि धावता है सो अविचारकरिकै प्रथम तौ अमृतकी नाई भासता हैं अरु पाछे विषकी नाई हो जाते हैं, वियोगकरिकै जलावते हैं, अरु आपको तू कर्ता भोक्ता भी मिथ्या मानता है, तू भी कर्ता भोक्ता नहीं, अरु इंद्रियां भी कर्ता भोक्ता नहीं. काहेते कि, जड है, जो तुम जड हुए तौ तुम्हारेसाथ मित्रभाव कैसे होवै, अरु जो तू जड असत्‌रूप है तौ कर्ता भोक्ता कैसे होवै, अरु जो चेतन सत्‌रूप है, तौ भी तेरेविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं संभवता, तू मिथ्या है, मैं प्रत्यक्ष चेतन

हौं तू कर्तृत्व भोक्तृत्व मिथ्या अपनेविषे स्थापन करता है, तू मिथ्या है, जब मैं तुझको सिद्ध करता हौं, तब तू होता है, तू निश्चयकरि जड़ है, तुझको कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवै, जैसे पत्थरकी शिला नृत्य करनेको समर्थ नहीं होती, तैसे तुझको कर्तृत्वकी समर्थता नहीं, तेरेविषे कर्तृत्व जो है, सो मेरी शक्ति है, जैसे दात्री घास तृण आदिकको काटती है, सो केवल आपते नहीं काटती पुरुषकी शक्तिते काटती है, अरु खड्गकरि जो हननक्रिया होती, है, सो भी आपते नहीं होती, पुरुषकी शक्ति है, तैसे तुम्हारेविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्तिकरि होती है, जैसे पात्र करि जलपान करता है, सो पात्र नहीं करता, पान पुरुष करता है पात्र करिकै पान करता है तैसे तुम्हारेविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्तिकरती है, मेरी सत्ता पाइकरि तुम अपनी चेष्टाविषे विचरते हौ, जैसे सूर्यका प्रकाश पाइकरि लोक अपनी अपनी चेष्टा करता है, तैसे मेरी शक्ति पाइकरि तुम्हारी चेष्टा होती है, अज्ञानकरिकै तुम जड़ जीवते रहते हौ, ज्ञानकरिकै लीन हो जाते हौ, जैसे सूर्यके तेजकरि बर्फका पुतला गलि जाता है, ताते हे चित्त ! अब मैं निश्चय किया है कि, तू मृतकरूप मूढ है, परमार्थते न तू है, न इन्द्रियां हैं, जैसे इंद्रजालके बाजीके पदार्थ भासते हैं, सो सब मिथ्या हैं, केवल विज्ञानरूप मैं अपने आपविषे स्थित निरामय अजर अमर नित्य शुद्ध बोध परमानदरूप हौं, अरु मैंही नानारूप होकरि भासता हौं, परन्तु कदाचित् द्वैतभावको प्राप्त न हुआ, सदा अपने आपविषे स्थित हौं, जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे दृष्ट आते हैं, सो जलरूप है, तैसे सर्व पदार्थ मेरेविषे भासते हैं, सो इतर कछु नहीं॥ हे चित्त! तू भी चिन्मात्रभावको प्राप्त हुआ, जब तू चिन्मात्रभावको प्राप्त होवैगा, तब तेरा भिन्न भाव कछु न रहैगा, अरु शोकते रहित होवैगा, आत्मतत्त्व सर्व भावविषे स्थित सर्वरूप है, जब तिसको तू प्राप्त होवैगा, तब सब कछु तुझको प्राप्त होवैगा, न कोऊ देह है, न जगत् है, सर्व ब्रह्मही है, ब्रह्मही ऐसे भासता है, वास्तव अहं त्वं कल्पना कोऊ नहीं॥ हे चित्त! जो आत्मा चेतनरूप है, सो सर्वगत आत्मा है, आत्माते

इतर कछु नहीं, तौ भी तुझको संताप नहीं, अरु जो अनात्मा जड़ असत्रूप है, तौ भी तू न रहा, जो कछु परिच्छिन्न जैसा तू वनता है, सो मिथ्या भ्रम है, आत्मतत्त्व सर्वव्यापकरूप है, द्वैत कछु नहीं, सर्व वही है, तौ भिन्न अह त्व की कल्पना कैसे होवै, अरु असत् सो कार्यकी सिद्धता कछु नहीं शशेके सींग जैसे असत् हैं, तिनमो कछु मारनेका कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे तुम असत् हौ, तुमसों कर्तृत्व भोक्तृत्व कार्य कैसे होवै ? अरु जो तू कहै, मै सत् असत् चेतन जडके मध्यभाव हौं, जैसे तम अरु प्रकाशका मध्यभाव छाया है, तैसे सूर्यरूप परमात्मा निरजनके विद्यमान मदभावी छाया कैसे रहती है, तातें कर्तृत्व भोक्तृत्व तुझको नहीं होता. काहेते कि, तू जड है, जैसे दात्री पड़ी होवे, तिसको घास काटनेका कार्य आपते नहीं होता, जब पुरुषके हाथ शक्ति होती है, तब कार्य होता है, तैसे तुमसों कार्य कछु नहीं होता, जब आत्मसत्ता तुमसों मिलती है, तब तुमसों कार्य होता है, तुम क्यों अहकारकरिकै वृथा तपायमान होते हौ, अरु हे चित्त ! जो तू कहै कि, ईश्वरका उपकार है तौ ईश्वर जो परमात्मा है, तिसको करने अकरनेविषे कछु प्रयोजन नहीं, अरु सबका कर्ता भी वही है, अरु अकर्ता है, जैसे आकाश पोल करिकै सबको वृद्धता देनेहारा है, परतु स्पर्श किसीसाथ नहीं करता, तैसे परमात्मा सबको सत्ता देनेहारा है, अरु अलेप है ॥ हे मूर्ख मन ! तू क्यों भोगोंकी वाछा करता है; तू तौ जड असत्रूप है अरु देह भी जड असत्रूप है, भोग कैसे भोगैगे, अरु जो परमात्माके निमित्त इच्छा करता है, तौ परमात्मा सदा तृप्त है, अरु इच्छाते रहित है सर्वविषे वही पूर्ण है, दूसरेते रहित एक अद्वैत प्रकाशरूप अपने आपविषे स्थित है, तुझको किसकी चिंता है,तातें वृथा कल्पनाको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होउ, जहां सर्व क्लेश शांत हो जाते हैं, अरु जो तू कहै कि, परमात्मासाथ मेरा कर्तृत्व भोक्तृत्वका सबंध है, तौ नहीं बनता, जैसे फूल अरु पत्थरका संबध नहीं होता, तैसे परमात्मासाथ तेरा संबध नहीं होता, समान अधिकरण द्रव्यका सबध होता है, जैसे जलमृत्तिकाका सबध होता है, जैसे आपैधिविषे चद्रमाकी सत्ता प्राप्त होती है, जैसे सूर्यकी तप्तताकरि शिला

तप जाती है, जैसे वीज अंकुरका सवंध होता है, जैसे पिता अरु पुत्रका सवंध होता है, सो द्रव्य अरु गुणका संबंध होता है, जो आकारसहित वस्तु है, तिसका कैसेहू सवंध वनाता है, अरु जो निराकार निर्गुण वस्तु है तिसका कैसे सवंध होवै, समानकरि सवंध नहीं, जो परमात्मा चेतन है, तू जड है, वह प्रकाशरूप है, तू तमरूप है, वह सत्‌रूप है तू असत्‌रूप है, संबंध तौ किसीसाथ नहीं वनता, तू क्यों वृथा जलता है, तू मननरूप है, परमात्मा सर्व कलनाते रहित है, तेजकी एकता तेजकरि होती है, अरु जलकी एकता जलसाथ होती है, तू कलकरूप है, परमात्मा निष्कलकरूप है, तेरी एकता तिससाथ कैसे होवै, जिसका अंग कछु होता है, तिसका संबंध भी होता है, सो संबंध तीन प्रकारका है, सम, अर्धसम, अरु विलक्षण, इनका सवंध होता है, जैसे जलसाथ जलकी एकता होती है, तेजसाथ तेजकी एकता होती है, यह सम है जो तेरा आत्मसाथ सम सवंध नहीं, एक अर्धसम है, जैसे स्त्री अरु पुरुषके अंग समान होते हैं, परंतु विलक्षणरूप है सो अर्धसम भी तेरा अरु आत्माका संबंध नहीं, अरु कछुक अन्यकी नाई भी तेरा संवध नहीं, जैसे जल अरु दूधका सवंध होता है, तैसे तेरा भी नहीं, अरु अत्यंत जो विलक्षण है, तिनकी नाई भी तेरा नहीं, जैसे काष्ठ अरु लाखका अरु पुरुष अरु हाथी घोड़ा आदिकका सवंध नहीं, अरु आधार आधेयवत् भी तेरा संवध नहीं जैसे वीज अंकुर पिता पुत्र आदिक जो संवध हैं, तैसे भी तेरा अरु आत्माका सवंध कोई नहीं, काहेते जो सवंध तिसका होता है, तिससाथ कछु भी अंग मिलता है, जिसका अंग कोऊ नहीं मिलता, परस्पर विरोध होवै, तिसका सवंध कैसे कहिए, जैसे कहिए शशेके सींग ऊपर अमृतका चंद्रमा बैठा है, तम अरु प्रकाश इकट्ठे हैं, जैसे यह नहीं वनता, तैसे आत्मसाथ देह मन इंद्रियोंका सवंध नहीं वनता काहेते कि, आत्मा सर्व कलनाते अतीत नित्य शुद्ध अद्वैत प्रकाशरूप है, अरु मनआदिक जड असत् मिथ्या तमरूप है, इनका सवंध नहीं जो परस्पर विरोध होवै, तिनका सवंध कैसे होवै, तुम तौ परमात्माके अज्ञानकरि मन इंद्रिया देहादिक उदय हुए

हो, आत्माके ज्ञानकरि अभाव हो जाते हैं बहुरि सबध कैसे होवै ॥ हे मन ! जेते कछु जगत् है, सो सब ब्रह्मस्वरूप है, तिसते इतर द्वैत कछु नहीं, अहं त्वंकी कल्पना कोई नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, सब कलना तेरेविषे थी, अरु तू तबलग था, जबलग स्वरूप का अज्ञान था, जब स्वरूपका ज्ञान भया, अरु अज्ञान नष्ट भया, तब तू कहां है, जैसे रात्रिके अभावते निशाचरोंका अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानके नाश हुए तेरा अभाव हो जाता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने चित्तानुशासनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८.

वीतवोपाख्यानेअनुशासनायोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार वीतव मुनीश्वर विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे विचार करत भया, तीक्ष्ण बुद्धिसाथ और भी जो कछु कहा है सो सुन–अनात्मा जो देह इंद्रियां मनआदिक हैं सो संकल्पते उपजे हैं, जब ज्ञान उदय हुआ, तब इनका अभाव हो जाता है ॥ हे मन ! जैसे सूर्यके उदय हुए, तम नष्ट हो जाता है, तैसे नित्य उदितरूप परमात्मा अनुभव स्वरूपके उदय हुए तुम्हारा अभाव हो जाता है, वासनाकरिके तिसका आवरण था, जब वासनाका अभाव हो जाता है, तब आवरणका भी अभाव हो जाता है, जैसे मेघके नष्ट हुए सूर्य प्रकाशता है, तैसे वासनाके अभाव हुए आत्मतत्त्व प्रकाशता है, वासनाका मूल अज्ञान है, जब अज्ञानसहित वासना नष्ट भई, तब चिदानंद ब्रह्म प्रकाशता है, वासनाहीका नाम बंध है, वासनाके निवृत्तिका नाम मोक्ष है, जब वासनारूपी जेवरी काटैगा तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा, जैसे प्रकाशविना अंधकारका नाश नहीं होता, तैसे मन इंद्रियां देहादिकका आत्मविचारविना नाश नहीं होता, जब विचारकरिके आत्मपद प्राप्त होवे, तब मनसहित षट इंद्रियोंका अभाव हो जाता है ॥ अर्थ यह कि,

इनका अभिमान नष्ट होताहै, इनके धर्म अपनेविषे नहीं भासते, जबलग देह इंद्रियोंकेसाथ मिला है, तबलग आत्मपदको पाइ नहीं सकता, ताते आत्मपद पानेका कल्याणके निमित्त अभ्यास कर जबलग मन इंद्रियोंके गुणोंसाथ आपको मिला जानता है, तबलग इसको अपने स्वरूपकी विभुता अरु सिद्धता नहीं भासती, जब आत्माका साक्षात्कार हो जावै, तब रागद्वेषादिक विकार नष्ट होजावैंगे, जैसे सूर्यके उदय हुए निशाचरोंका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए विकारोंका अभाव हो जाता है, जिसके देखेते इनका अभाव होजाता है, तिनका आत्मासाथ संबंध कैसे होवै, जैसे प्रकाश अरु तमका संबंध नहीं होता, तैसे सत् असत्का संबंध नहीं होता, जैसे जीवते अरु मृतकका संबंध नहीं होता, तैसे आत्मा अनात्माका संबंध नहीं होता, आत्मा सर्व कल्पनाते रहित है, मन आदिक सर्व कल्पनारूप हैं, कहां यह मूक जड अनात्मारूप, अरु कहां नित्य चेतन प्रकाश निराकार आत्मरूप, इनका परस्पर विरोधरूप है, संबंध कैसे कहिये, यह तो निश्चयकरि अनर्थका कारण है, जबलग इनका अभिमान है, तबलग जगत् दुःखरूप है, जब इनका वियोग होवै, तब जगत परमात्मारूप होता है, जबलग इसको आत्माका अज्ञान है, तबलग आपको इनमें मिला देखता है, दुःख पाता है, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब अपनेसाथ इनका संयोग नहीं देखता है, अरु यह मैं निश्चयकरि जाना है कि, इंद्रियां अरु मनके संयोगते जगत भासता है, जब इंद्रियोंका ग्राम नष्ट होजाता है, तब जगत परमात्मारूप होजाता है, अरु मैं जो आत्मा अरु मन इंद्रियोंको इकट्ठा जानता था, सो प्रमादरूपी मद्यके पानकरि मत्त हुआ, मनकरि जानता था, अब आत्मविचारकरिकै मन नष्ट भया, तब सुखी भया, जो विषको पानकरि मूर्च्छित होवै, सो तो बनता है, परन्तु पान कियेविना मूर्च्छित होवै, सो आश्चर्य है, ताते जब अनात्माका इससाथ संयोग होता, तब सुखदुःख करिकै रागद्वेषवान् होना भी बनता है, आत्मा तो सुखदुःखका साक्षीभूत है, सुखदुःखका संयोगही जिससाथ नहीं, अरु रागद्वेषकरि जलता है, तौ महामूर्खता है, आत्मा तो सुखदुःखका साक्षीभूत है, जैसा निर्मल आगे

अभ्यास होता है, तैसाही भासता है, कदाचित् विपर्यय भावको प्राप्त नहीं होता, सुखदुःखविषे मूर्ख मनआदिक रागद्वेषवान् होता है, आत्मा तो सदा साक्षीभूत क्षीणवृत्ति है, तिससाथ इंद्रियोंका संयोग कैसे होवै,जो संयोगका अभाव सिद्ध हुआ, तौ आत्माविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे कहिये जहां चित्तकलना होती है, तहाँ कर्तृत्व भोक्तृत्व होता है, जहां चित्तकलनाका अभाव है, तहां कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभाव है, ऐसा निष्कलंक आत्मा तत्त्व मैं हौं, जो न कर्ता हौं, न भोक्ता हौं, न मेरेविषे बंध है, न मोक्ष है, न अहंता है, मैं सर्वात्मा अलेपरूप हौं ॥ हे मन ! तू भी मैं हौं, अरु पृथ्वी आप तेज वायु आकाश पांचों तत्त्व मैं हौं, इसप्रकार निर्णय करि जिसने धारा है, सो मोहको प्राप्त नहीं होता, जो अहं अभिमान करनेवाला आत्माते भिन्न आपको जानता है, तब दुःखी होता है, जब अपने स्वभावविषे स्थित होता है, तब परमसुखी होता है, ताते जिसको कल्याणकी इच्छा होवै, तिसको एक आत्मपरमात्मपरायण होना योग्य है, जब स्वरूपका त्यागकरि संकल्पके ओर धावता है, तब दुःखोंके समूहको प्राप्त होता है ॥ हे चित्त ! जो तू अपनेविषे कर्तृत्व देखता था सो तू इन्द्रियासहित जडरूप पत्थरके समान है, जैसे आकाशविषे पवन नहीं लगता, तैसे तुमसों कर्तृत्व नहीं होता, जब इसको स्वरूपका प्रमाद होता है, तब चित्त आदिकेसाथ आपको मिला जानता है अरु चित्तादिक आत्माकी सत्ता पाइकरि चेतन होता है, जैसे अग्निकी सत्ता पाइकरि लोह जलावनेको समर्थ होता है, तैसे तुम आत्माकी सत्ता पाइकरि कर्तृत्व भोक्तृत्वविषे समर्थ होते हौ, जब आत्मविचार करिकै स्वरूपका साक्षात्कार होता है, अरु अज्ञानवृत्ति निवृत्त हो जाती है, मनआदिकका वियोग होता है, सर्व कलनाते रहित हुआ, तब केवल मोक्षरूप आत्मा होता है, कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभाव हो जाता है, जैसे आकाशविषे लालीका अभाव है, तैसे आत्माविषे कर्तृत्वका अभाव है, सब जगत् आत्मस्वरूप भासता है, जैसे समुद्र तरंग आदिक नानाप्रकार होता है, सो सब जलरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे सर्व जगत् आत्मरूप है, आत्माते इतर कछु

नहीं, सो सच्चिदानद आत्मा मैं सदा अपने आपविषे स्थित हौं, और द्वैतकलना मेरेविषे कोई नहीं जैसे समुद्र उष्णताते रहित है, तैसे परमात्मा सर्व कलनाते रहित है, जैसे आकाशविषे वन नहीं होता, तैसे परमात्माविषे कलना नहीं होती, सवेदनते रहित सवित्मात्र सर्वात्मा है, जब तिसका साक्षात्कार होता है, तब अहं त्वं आदिक कलनाका अभाव हो जाता है, सो अनादि अरूप सर्वगत है, सदा अपने आपविषे स्थित है, ऐसा जो अद्वैत तत्त्व है, तिसको द्वैतकलना आरोपनेको कौन समर्थ है, सो ऐसा कौन है, जो आकाशविषे ऋग्वेदको लिखे, नित्य उद्योत सर्वका सार अद्वैत आत्मा है, तिसविषे द्वैतकलनाका अभाव है, सर्वविषे पूर्ण निर्मल नित्य आनंदरूप है, ऐसे आत्माको अब मैं प्राप्त हुआ हौं, जगत्का सुखदु ख अब नष्ट भया है, सम शांतरूप हुआ हौं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने अनुशासनायोगोपदेशो नाम अष्टसप्ततितम सर्ग॰ ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितम॰ सर्ग ७९.

वीतवोपाख्याने चित्तोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार वीतवमुनिश्रेष्ठ विचार करता भया, बहुरि जो कछु निर्मल बुद्धिसाथ विचारने लगा सो सुन ॥ हे इंद्रियरूपमन ! तुम क्यों अपने अर्थोंकी ओर धावते हो, तुमको विषयोंकरि शांति प्राप्त नहीं होती, जैसे मृग मरुस्थलकी नदी देखिकरि दौडता है, अरु शांतिवान् नहीं होता, ताते तुम विषयोंकी ओर तृष्णाकरि शांतिवान न होहुगे, इनकी इच्छा त्यागिकरि जो सत्य है, परमात्मतत्त्व अविनाशी सर्व अवस्थाविषे एकरस है, तिसको ग्रहण करो, तब सर्व दुःख तुम्हारे मिटि जावेंगे, तुम्हारेसाथ मैं मिला था, तब मैं भी दु ख पाया था, तुम अज्ञानकरिकै उत्पत्ति भये हो, जो तुम्हारेसाथ मिलता है, तिसको भी दु ख प्राप्त होता है, जैसे तपी हुई लाख जिसके शरीरसाथ स्पर्श करती है, तिसको जलावती है तैसे जिसको तुम्हारा सग भया है, सो दुःखको प्राप्त होता है ॥ हे मन ! यह जीव जो मरता है सो कालके मुखमें जाय

प्रवेश करता है, सो तुम्हारे संगकरि जाय पड़ता है, जैसे नदी जल सहित होती है, तब समुद्रकी ओर चली जाती है, जलते रहित होवै तो क्यों जावै, तैसे तुम्हारे संगकरि कालके मुखमें जाय पड़ता है तुम्हारा संग न होवै तौ काहेको पड़ै जैसे मेघ कुहिडकरि सूर्यको आच्छादि लेता है, तैसे मनरूपी मेघ तू इच्छारूपी कुहिडकरि आत्मारूपी सूर्यको आच्छादि लेता है, अरु परंपरा दुःखोंकी वर्षा करनेहारा है ॥ हे मन! तेरेविषे चिंता उठती है, सो तू मर्कटकी नाई है, जैसे मर्कट वृक्षको ठहरने नहीं देता, पड़ा हिलावता है, तैसे चित्त देहको ठहरने नहीं देता, अरु चित्तरूपी पखेरू है, लोभ लज्जा तिसके दो पंख हैं, अरु रागद्वेषरूपी चंचु है, तिसकरि शरीररूपी वृक्षपर बैठ, शुभ गुणोंको काटि काटि खाता है, अरु चित्तरूपी कूकर महानीच है, भोगभावनारूपी जो महा अपवित्र पदार्थ है, तिनको हृदयरूपी स्थानविषे इकट्ठा करता है, ऐसी चेष्टाते कदाचित् रहित नहीं होता, अरु चित्तरूपी उलूक है, अज्ञानरूपी रात्रिविषे आइ विचरता है, चेष्टाकरि प्रसन्न होता है, अरु शब्द करता है, जैसे श्मशानविषे वेताल शब्द करता है, जब अज्ञानरूपी रात्रि नष्ट होवै, तब चित्तरूपी उलूकका अभाव होवै, अरु संपदा आनि प्रवेश करै, जैसे सूर्यके उदय हुए, सूर्यमुखी कमल उदय होता है तैसे संपदा प्रफुल्लित होती है, जहां मोहरूपी कुहिड अरु इच्छारूपी धूलि हृदयरूपी आकाशसों निवृत्त होती है, तब निर्मल आकाश प्रगट होता है ॥ हे चित्त! जबलग तू नष्ट नहीं होता, तबलग शांति नहीं होती, अरु जैसे अकस्मात् मेघ आवै, अरु गडेकी वर्षा करै, तिसकरि मार्ग चलनेवाले दो कष्ट पाते हैं, तैसे स्वस्थ बैठे हुए, जो चिंता आनि प्राप्त होती है, सो तेरे संयोगकरि होती है, संकल्पविकल्परूपी गडेकी वर्षाकरि सत्मार्ग चलनेवाला दुःख पाता है, अरु जदा चित्त नष्ट होता है, तदा सर्व आनंद होता है, शीतलता अरु मित्रताकरि पावन होता है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, मेघके नष्ट हुए सूर्य प्रकाशता है, तैसे अज्ञानके नष्ट हुए आत्मा प्रकाशता है, तब प्रसन्नता गंभीरता महत्त्वता, अरु समता होती है, जैसे वायु अरु मंदराचल पर्वतते रहित क्षीरसमुद्र शांतिवान् भया,

अरु जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे अज्ञानके नाश हुए आत्मानंद पाइकरि यह शोभता है ॥ हे चित्त ! यह स्थावर जंगम जगत् सवित्रूप आकाशविषे है, तिस महत् ब्रह्मको तू भी प्राप्त होउ, जो पुरुष आशारूपी फाँसीको तोड़िकरि आत्मपदविषे प्राप्त हुआ, है, अरु संसारका सद्भाव निवृत्त किया है, सो जन्ममरणके बंधनमें नहीं पड़ता, जैसे जला पत्र बहुरि हरा नहीं होता, तैसे नष्ट हुआ चित्त जन्ममरणको नहीं पाता ॥ हे चित्त ! सर्वको भक्षण करनेहारा जो तू ससारको सत् मानकर तिसकी ओर धावैगा, तब तेरा कल्याण न होवैगा, अरु जो आत्माकी ओर आवैगा, तब तेरा परम कल्याण होवैगा, जब तू अपना अभाव करि आत्मपदविषे स्थित होवैगा, तब कल्याणरूप होवैगा, अरु जब तू अपना सद्भाव करैगा, जो आकारको न त्यागैगा, तब दुःखी होवैगा, जो तेरा जीवना है सो मृत्युसमान है, अरु जो मृत्यु है, सो जीवनेसमान है, दोनों पक्षविषे जो तेरी इच्छा है, सो अगीकार कर, जो तू अबहीं आपको आत्मपदविषे निर्वाण करैगा, तब परमपदको प्राप्त होवैगा, अरु परमसुखी होवैगा, अरु जो न करैगा, तो परमदुःखी होवैगा, जो आत्मपदका त्याग करैगा, सो मूढ है, तेरा निर्वाण होना आत्मपदविषे जीवनेनिमित्त है, अरु आत्माते इतर जो तू जीनेकी इच्छा करता है, सो तेरा जीना मिथ्या है, अर्थ यह जो तू आदि भी मिथ्या है, अब भी विचारविना भ्रममात्र है, विचार कियेते नाश हो जावैगा, जैसे सूर्यके प्रकाशविना अधकार होता है, प्रकाशकरि नाश हो जाता है, तैसे विचारविना चित्त है, विचारकरि नाश हो जाता है, एता काल मैं अविवेककरि नाश हो जाता था, जैसे बालकोंको अपने परछाईंविषे वेतालकल्पना होती है, विचारविना भयको पाता है, विचार कियेते निर्भय होता है, तैसे अब मैं तेरे सगते छूटा, अपने पूर्व स्वरूपको प्राप्त हुआ हौं, विवेककरि तेरा अभाव हुआ है, ताते विवेकको नमस्कार है ॥ हे चित्त ! अविवेककरि तू मेरा मित्र था, अब बोधकरिकै तेरा चित्तभाव नष्ट हो गया, तू परमेश्वर रूप है, अब वासना नष्ट भई है, आगे तेरेविषे नानाप्रकारकी वासना थी; तिसकरि तू मलिन दुःखरूप था, अब वासना

मैत्री समता सत्य मुदिता आदिक गुणोंकरि संपन्न भया, ब्रह्म लक्ष्मीकरि शोभत भया, अरु सबके संगते रहित भया, जो इन गुणोंको भी स्वरूपविषे स्पर्श न करै, आपको शुद्ध स्वरूप जानै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवसमाधियोगोपदेशो नाम एकाशीतितमः सर्गः ॥८१॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ८२.

वीतवोपाख्याने इंद्रियनिर्वाणवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब केतेक दिन व्यतीत भये, तब समाधिके निमित्त मुनीश्वरका मन उदय हुआ, तब जाइकरि विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे स्थित भया, पूर्व जो विचार अभ्यास किया था अरु परावर परमात्मा दृष्टि भई थी, तिसकरि बहुरि चित्तको कहत भया ॥ हे चित्त ! इंद्रियों में तुम्हारा पूर्वही प्रहारकर छोडा है, अब तुम्हारे अचित्तविषे अनर्थ अर्थ कोई नहीं, काहेते जो अस्ति नास्ति कलना मेरी नष्ट भई है, अस्ति नास्तिके पीछे जो शेष रहता है, तिसविषे स्थित हौं जैसे पहाडका सिंह अचल होता है, तैसे अचल हौं अरु सदा उदयरूप असतकी नाई स्थित हौं, उदय स्वरूप इसकरि जो सदा ज्ञानस्वरूप प्रकाशवान् हौं अरु असत्की नाई इसप्रकार जो सदा अक्रियरूप हौं, अरु असत् रूप उदयकी नाई स्थित हौं, असत इस कारणते कि, मन इंद्रियोंका विषय नहीं, अरु उदयकी नाई इस कारणते कि, सबका साक्षीभूत हौं, अरु सदा समरस प्रकाशरूप अपने आपविषे स्थित हौं, बहुरि कैसा हौं प्रबुद्ध हौं; अरु सुषुप्तिविषे स्थित हौं, प्रबुद्ध इस कारणते जो इंद्रियोंको विषयकी उपलब्धि करता हौं, अरु सुषुप्त इस कारणते कि हर्ष शोक इष्ट अनिष्टसों रहित हौं अरु जगतकी ओरते सुषुप्ति समाधिविषे हौं, तहां जाग्रत् हुआ, तुरीयापद आत्मतत्त्वविषे स्थित हौं, जैसे स्थाणु स्तंभ स्थित होता है, तैसे स्थितरूप हौं नित्य शुद्ध समानसत्ता आत्मपद तहां मैं निरामय स्थित हौं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिंतवना हुआ मुनीश्वर ध्यानविषे छहा पट दिनपर्यंत ध्यानविषे

रहा, उपरांत जागा तब एक क्षणके समान जानत भया, जैसे सोया हुआ क्षणविषे जागे, इसीप्रकार वीतव शुद्ध पदको प्राप्त भया जीवन्मुक्त होइकरि चिरकालपर्यंत विचरत भया, न कोऊ वस्तु हर्ष देवै, न शोक देवै, चलता हुआ भी स्थिर रहै, इंद्रियोंका व्यवहार करता इष्ट अनिष्ट प्राप्तिविषे सम रहै, कदाचित् किसीविषे चलायमान न होवै, चलता बैठता मन इंद्रियोंको कहै ॥ रे इंद्रियो ! मरहु, हे मन ! तू शमवान् अब हुआ है, आत्माको पाइकरि अब देख, तुझको क्या सुख है, जिस सुखके पाएते और पाने योग्य कछु न रहता निराग सुख है, ऐसा जो परम शांतरूप अचल सुख है, तिसको आश्रय करिकै चचलताको त्याग अरु हे इंद्रियो, तुम्हारा वास्तवते स्वरूप कछु नहीं अरु आत्मपदविषे तुम दृष्ट नहीं आती, अपने स्वरूपके जानेविना तुम मुझको दुःख देती थीं, अब मैं अपने स्वरूपको प्राप्त भया हौं, मेरेको वश करनेकी समर्थता तुमको नहीं. काहेते कि तुम अवस्तुरूप हौ, आत्माके प्रमादकरि तुम्हारा भान होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है तैसे आत्माविषे अनात्मभावना अरु अनात्माविषे आत्मभावना होती है, सो अविचारकरि होती है, अरु विचार करिकै नहीं होती, अब विचार करिकै यह भ्रम निवृत्त भया है, तुम इंद्रियागण और हौ, अहंकार और है, ब्रह्म और है, कर्तृत्व और है, भोक्तृत्व और है, औरका दुःख आपविषे मानना यही मूर्खता है, जैसे वनकी लकडी और है, वांस और है, चर्म और है, जिस करिकै रथ बनता है, अरु लोहा और पीतल और बढे और जिसकरि रथ जडा है, बैल और जो रथको चलावते हैं, तिन सब करिकै रथ बनता है, जैसे गृहका आकार होता है, तैसे रथ है, तिसाविषे बैठनेवाला पुरुष और होता है, रथकी सामग्री परस्पर और होती है, तिन-विषे बैठनेवाले कहै कि, मैं रथ हौं सो नहीं बनता, तैसे शरीररूपी रथ है, अज्ञानकरिकै मिला है, इंद्रियां और हैं, मनादिक और हैं, तिसाविषे पुरुष है, सो जीव है जीव कहै मैं शरीर हौं, बडी मूर्खता है, तिस शरीरके सुख दुःख मूर्खता करिकै आपको मानते हैं, जो विचार करिकै देखै तौ राग-द्वेषके क्षोभते मुक्त होवै, मैं अविचाररूपी विस्मृति स्वरूपको दूरते त्यागा

है, अरु स्वरूपकी स्मृती स्पष्ट करी है, जो आत्मतत्त्व सत् है, तिसको सत जाना है, अरु अनात्मा असत है, तिसको असत् जाना है, जो सत है, सो स्थित है, जो असत् है, सो क्षीण हो जाता है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार वीतव मुनि विचार करिके जीवन्मुक्त हुआ, अपने स्वरूपविषे बहुत वर्षोंको व्यतीत किया, अपना जो निर्भयपद है, जिसविषे चित्तादिक भ्रम सब नष्ट हो जाते है, ऐसे शुद्ध पदको प्राप्त हुआ यथा भूतार्थ आत्मध्यानविषे स्थित भया, ग्रहण अरु त्यागनेकी भावना कछु नहीं रही, परिपूर्ण आत्मपदको प्राप्त भया, अगस्त्यमुनिका पुत्र वीतव मुनि, तिस पदको पाइकरि निर्वासनिक हुआ, बहुरि जिस कालविषे जिस प्रकार विदेहमुक्त हुआ है सो सुन वीस हजार अरु सातसौ वर्ष जीवन्मुक्त हो करि रहा, बहुरि विदेहमुक्त भया, जो इच्छा अनिच्छाते रहित पद है, जन्ममरणका जिसविषे अंत है, रागद्वेषते रहित पदको प्राप्त हुआ है ॥ हे रामजी ! हिमालयपर्वतकी कदरा थी, तिसविषे प्रवेश किया, पद्मासन धारि करि हाथ जोडकर कहत भया ॥ हे राग ! तू निरागताको प्राप्त होउ, अरु तू निर्दोषताको प्राप्त होउ, तुम्हारे साथ मैं चिरपर्यंत क्रीडा करी है, परंतु विवेकते रहित करी है, तुम अब जाओ, मेरा तुमको नमस्कार है, अरु हे भोग ! तुम्हारी लालसा करि मुझको परमपदका विस्मरण होगया था, जैसे माता सुखके निमित्त पुत्रकी लालसा करती है, तैसे मैं सुख जानिकरि तुम्हारी लालसा करता था, अब जाओ, तुमको मेरा नमस्कार है, अब निर्वाण पदको प्राप्त होता हौं ॥ हे दुःख ! तुझको भी नमस्कार है, तेरे उपदेशकरि मैं आत्मपदको प्राप्त हुआ हौं, काहेते कि, मैं सदा भोग सुखको चाहता था, जब सुख प्राप्त होता था, तब तुझको भी साथ ले आता था, सुखते तेरी उत्पत्ति होती है, सुखकी लालसाविषे तौ मैं अनेक जन्म पाता रहा, अरु जब सुख आवै तब तुझको भी साथ ले आवै, तुझको देखिकरि मुझको आत्मपदकी इच्छा उपजी, तेरे प्रसादकरि मैं परम शीतल पदवीको प्राप्त हुआ हौं ॥ हे दुःख ! तू तो दुःख था, परंतु मुझको सुख प्राप्त किया, ताते तेरा कल्याण होवै, तू अब जाउ ॥ हे मित्र ! संसारविषे जीवना असार है, जिसका संयोग

होता है, तिसका वियोग भी होता है, अरु तुझने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है, जो अपना नाश किया है, अरु मुझको सुख प्राप्त किया है, जो तू मुझको प्राप्त न था, तो मैं आत्मपदके निमित्त कब यत्न करता तुझने अपना नाश करना माना, परतु मुझको सुख प्राप्त किया ॥ हे मित्र ! तू बांधवोंकी नाई चिरकालपर्यंत मेरे साथ रहा, तू कदाचित् मुझते दूर न भया, मै तेरा नाश नहीं किया, तुझने अपना नाश आपही किया है, तू मुझको जब प्राप्त हुआ था, तब मुझको विवेकउत्पत्ति भयी, तिस विवेकने तेरा नाश किया है, ताते तुझको मेरा नमस्कार है ॥ अरु हे माता तृष्णा ! तुझको नमस्कार है, तू सदा मेरे साथ होइ रही है, कदाचित् त्याग नहीं किया, जैसे अयाने वालकका त्याग माता नहीं करती, तैसे तुझने मेरा त्याग नहीं किया, अब तू जा ॥ हे कामदेव ! तुझने आपही विपर्यय होकरि अपना नाश किया है, जब तू बहिर्मुख था, तब जीवता था, जब अतर्मुख,हुआ, तब तू मिट गया, तुझको नमस्कार है अरु हे सुकृतो ! तुमको नमस्कार है, तुमने भी बड़ा उपकार किया था, जो नरकोंसे निकास करि स्वर्गोंविषे प्राप्त किया था परंतु अत सबका वियोग होना है, ताते तुम भी जाउ हे दुष्कृतो ! तुम भी जाउ, विकर्मरूपी तमारा क्षेत्र है, अरु युवा अवस्था बीज है, तिसते नरक दुःख फल होता है, सो तुम्हारे साथ भी सयोग हुआ था, ताते तुमको भी नमस्कार है, तुम भी जाउ ॥ हे मोह ! तुमको भी नमस्कार है, तुझकरि चिरकाल मैं बाधा था, अरु नाना प्रकारके स्थानको प्राप्त होता था, अरु तू भय दिखाता था, तिसकरि मैं भयको प्राप्त होता था, ताते तुझको नमस्कार है, अब तू जाउ ॥ हे गिरिकंदरा ! तुझको भी नमस्कार है, तुझविषे मैं चिरकाल तप किया है ॥ हे बुद्धि ! हे विवेक ! तुमको भी नमस्कार है, तुमने मेरे साथ उपकार किया है, जो संसार बंधनते मुक्त किया है, तुम भी जाओ हे दंड ! अरु तुंबा ! तुमको भी नमस्कार है, तुम भी जाओ, बहुत काल तुम भी मेरे सबधी रहे हो ॥ हे देह ! रक्त मांसका पिंजर होइकरि तू मेरे साथ बहुत काल रहा है, अरु तुझने उपकार किया है कि, विवेक उपजानेका स्थान तूही है, तेरे सयोगकरि मैं परमपद पाया है, तू भी

है, अरु स्वरूपकी स्मृती स्पष्ट करी है, जो आत्मतत्त्व सत् है, तिसको सत् जाना है, अरु अनात्मा असत् है, तिसको असत् जाना है, जो सत है, सो स्थित है, जो असत् है, सो क्षीण हो जाता है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार वीतव मुनि विचार करिकै जीवन्मुक्त हुआ, अपने स्वरूपविषे वहुत वर्षोंको व्यतीत किया, अपना जो निर्भयपद है, जिसविषे चित्तादिक भ्रम सब नष्ट हो जाते है, ऐसे शुद्ध पदको प्राप्त हुआ यथा भूतार्थ आत्मध्यानविषे स्थित भया, ग्रहण अरु त्यागनेकी भावना कछु नहीं रही, परिपूर्ण आत्मपदको प्राप्त भया, अगस्त्यमुनिका पुत्र वीतव मुनि, तिस पदको पाइकरि निर्वासनिक हुआ, वहुरि जिस कालविषे जिस प्रकार विदेहमुक्त हुआ है सो सुन वीस हजार अरु सातसौ वर्ष जीवन्मुक्त हो करि रहा, वहुरि विदेहमुक्त भया, जो इच्छा अनिच्छाते रहित पद है, जन्ममरणका जिसविषे अंत है, रागद्वेषते रहित पदको प्राप्त हुआ है ॥ हे रामजी ! हिमालयपर्वतकी कंदरा थी, तिसविषे प्रवेश किया, पद्मासन धारि करि हाथ जोडकर कहत भया ॥ हे राग ! तू निरागताको प्राप्त होउ, अरु तू निर्दोषताको प्राप्त होउ, तुम्हारे साथ मैं चिरपर्यंत क्रीडा करी है, परंतु विवेकते रहित करी है, तुम अव जाओ, मेरा तुमको नमस्कार है, अरु हे भोग ! तुम्हारी लालसा करि मुझको परमपदका विस्मरण होगया था, जैसे माता सुखके निमित्त पुत्रकी लालसा करती है, तैसे मै सुख जानिकरि तुम्हारी लालसा करता था, अव जाओ, तुमको मेरा नमस्कार है, अव निर्वाण पदको प्राप्त होता हौ ॥ हे दु ख ! तुझको भी नमस्कार है, तेरे उपदेशकरि मै आत्मपदको प्राप्त हुआ हौं, काहेते कि, मैं सदा भोग सुखको चाहता था, जव सुख प्राप्त होता था, तव तुझको भी साथ ले आता था, सुखते तेरी उत्पत्ति होती है, सुखकी लालसाविषे तो मैं अनेक जन्म पाता रहा, अरु जव सुख आवै तव तुझको भी साथ ले आवै, तुझको देखिकरि मुझको आत्मपदकी इच्छा उपजी, तेरे प्रसादकरि मै परम शीतल पदवीको प्राप्त हुआ हौं ॥ हे दु ख! तू तो दु ख था, परतु मुझको सुख प्राप्त किया, ताते तेरा कल्याण होवै, तू अव जाउ ॥ हे मित्र ! ससारविषे जीवना असार है, जिसका संयोग

होता है, तिसका वियोग भी होता है, अरु तुझने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है, जो अपना नाश किया है, अरु मुझको सुख प्राप्त किया है, जो तू मुझको प्राप्त न था, तौ मैं आत्मपदके निमित्त कव यत्न करता तुझने अपना नाश करना माना, परंतु मुझको सुख प्राप्त किया ॥ हे मित्र ! तू बांधवोंकी नाईं चिरकालपर्यंत मेरे साथ रहा, तू कदाचित् मुझते दूर न भया, मैं तेरा नाश नहीं किया, तुझने अपना नाश आपही किया है, तू मुझको जब प्राप्त हुआ था, तब मुझको विवेकउत्पत्ति भयी, तिस विवेकने तेरा नाश किया है, ताते तुझको मेरा नमस्कार है ॥ अरु हे माता तृष्णा ! तुझको नमस्कार है, तू सदा मेरे साथ होइ रही है, कदाचित् त्याग नहीं किया, जैसे अयाने बालकका त्याग माता नहीं करती, तैसे तुझने मेरा त्याग नहीं किया, अब तू जा ॥ हे कामदेव ! तुझने आपही विपर्यय होकरि अपना नाश किया है, जब तू बहिर्मुख था, तब जीवता था, जब अंतर्मुख हुआ, तब तू मिट गया, तुझको नमस्कार है अरु हे सुकृतो ! तुमको नमस्कार है, तुमनें भी बड़ा उपकार किया था, जो नरकोंसे निकास करि स्वर्गोंविषे प्राप्त किया था परंतु अंत सबका वियोग होना है, ताते तुम भी जाउ. हे दुष्कृतो ! तुम भी जाउ, विकर्मरूपी तमारा क्षेत्र है, अरु युवा अवस्था बीज है, तिसते नरक दुःख फल होता है, सो तुम्हारे साथ भी संयोग हुआ था, ताते तुमको भी नमस्कार है, तुम भी जाउ ॥ हे मोह ! तुमको भी नमस्कार है, तुझकरि चिरकाल मैं बांधा था, अरु नाना प्रकारके स्थानको प्राप्त होता था, अरु तू भय दिखाता था, तिसकरि मैं भयको प्राप्त होता था, ताते तुझको नमस्कार है, अब तू जाउ ॥ हे गिरिकंदरा ! तुझको भी नमस्कार है, तुझविषे मैं चिरकाल तप किया है ॥ हे बुद्धि ! हे विवेक ! तुमको भी नमस्कार है, तुमने मेरे साथ उपकार किया है, जो संसार बंधनते मुक्त किया है, तुम भी जाओ हे दंड ! अरु तुंबा ! तुमको भी नमस्कार है, तुम भी जाओ, बहुत काल तुम भी मेरे संबंधी रहे हो ॥ हे देह ! रक्त मांसका पिंजर होइकरि तू मेरे साथ बहुत काल रहा है, अरु तुझने उपकार किया है कि, विवेक उपजानेका स्थान तूही है, तेरे संयोगकरि मैं परमपद पाया है, तू भी

अव जा, तुझको नमस्कार है ॥ हे ससारके व्यवहारो ! तुमको भी नमस्कार है, तुम्हारेविषे मैं वहुत क्रिया करी हैं, स्थान देश क्रिया कर्म किया है, ऐसा पदार्थ जगत्विषे कोई नहीं जो दिया लिया न होवैगा, अरु ऐसा कर्म कोई नहीं मेरेविषे जो किया न होवैगा, अरु ऐसा देश कोई नहीं, जो देखा न होवैगा, अव सवको नमस्कार है ॥ हे इंद्रियो ! प्राण मन आदिक तुमको नमस्कार है, हमारा चिरकाल संयोग था, अव वियोग हुआ काहेते कि, जिसका संयोग होता है, तिसका वियोग भी होता है, ताते तुम्हारा हमारा भी वियोग होता है, नेत्रोंकी ज्योति सूर्यमंडलविषे जाय लीन होवैगी, प्राणोंकी गध पृथ्वीविषे जाय लीन होवैगी, प्राण त्वचा पवनविषे जाय लीन होवैंगे, श्रवण आकाशविषे लीन होवैंगे, मन चद्रमाविषे लीन होवैगा, जिह्वा रसविषे लीन होवैगी, इसी प्रकार सव अपने अपने अंशविषे जाय लीन होवैंगे, जैसे लकडियोंके जलेते अग्नि शांत हो जाती है, जैसे शरत्कालविषे मेघ शांत हो जाता है, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, जैसे सूर्यके अस्त हुए प्रकाश शांत हो जाता है, तैसे मनआदिक शात हो जावैंगे ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करते करते मन सर्व कार्योंते रहित प्रणवके ध्यानविषे लगा, सर्व दृश्यते शांत होगया, मोहरूपी मलको त्यागिकरि चित्त प्रणवके विचारमे लगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने इंद्रियनिर्वाणवर्णनं नाम द्व्यशीतितम॰ सर्ग॰ ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ८३.

वीतवनिर्वाणयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार शब्द ब्रह्म प्रणवका उच्चार करत भया, पचम भूमिका जो चित्तकी अवस्था है, तिसको प्राप्त भया है, अंतर वाह्यके जो स्थूल सूक्ष्म पदार्थ हैं, अरु त्रिलोकीके संकल्प सर्व त्यागकरि अक्षोभरूप स्थित भया, जैसे चिंतामणि अपने प्रकाश-

विषे स्थित होती है, जैसे पूर्ण कालकरि चंद्रमा अपने आपविषे स्थित भया है, अरु जैसे मंदराचलके निकसे क्षीरसमुद्र स्थित भया है, जैसे मथनेते रहित मंदराचल स्थित भया है, जैसे कुम्भारका चक्र फिरता फिरता ठहर जाता है, जैसे सूर्यके अस्त हुए व्यवहारक्रिया जीवोंकी ठहर जाती है, अरु जैसे मेघते रहित शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, जैसे प्रकाश तमते रहित आकाश होता है, तैसे फुरणते रहित मन शांतिको प्राप्त भया प्रणवके ध्यान करिकै बहुरि तिस वृत्तिके अंतको प्राप्त भया मंत्रकोभी त्यागत भया, जैसे महापुरुष क्रोधको त्यागता है तैसे वृत्तिको त्यागत भया, बहुरि तेज प्रकाश उदय हुआ, तिसको भी निमेषविषे त्यागत भया, आगे न तेज है, न तम है, तिसविषे अभाव वृत्ति रहती है, तिसको भी निमेषविषे त्यागत भया, तब जैसे नूतन बालकी जन्मके समय पदार्थज्ञानते रहित अवस्था होती है, तैसे अवस्था प्राप्त भई, तब जो सत्तामात्र आत्मतत्त्व सुषुप्तपद है, तिसका आश्रय किया, महाअचल जो सुमेरुकी नाईं स्थिर अवस्था है, तिसको प्राप्त हुआ, बहुरि केवल अचेतन चिन्मात्रपद तुरीया निरानंद आनंद है, जिसविषे स्वरूपते इतर और आनंद नहीं ऐसे आनंदको प्राप्त हुआ जो असत सत्स्वरूप है सर्वक्रियाते अतीत है, इस कारणते असत् है, अनुभवरूप है, इस कारणते सत्यस्वरूप है, ऐसे अशब्द पदको प्राप्त हुआ, जो परम शुद्ध पावन पद है, अरु सर्व भावके अंतर प्राप्त है, अरु सर्व भाव शब्दते रहित है, जिसको शून्यवादी शून्य कहते हैं, ब्रह्मवादी ब्रह्म कहते हैं, विज्ञानवादी जिसको विज्ञान कहते हैं, सांख्यमतवाले जिसको पुरुष कहते हैं, योगवाले जिसको ईश्वर कहते हैं, शैवी जिसको शिव कहते हैं, वैष्णव जिसको विष्णु कहते हैं, शाक्त जिसको परमशक्ति कहते हैं, कालवादी जिसको काल कहते हैं, आत्मवादी जिसको आत्मा कहते हैं, अरु माध्यमिक जिसको मध्यम कहते हैं, इत्यादिक जो शास्त्रोंवाले कहते हैं, सो एक परब्रह्म कहते हैं, काहेते जो सर्वदा सर्वकाल सर्वप्रकार सर्वविषे सर्वरूप वही है, ऐसे सर्वात्माको वीतव मुनीश्वर प्राप्त भया, जिस आनंदसमुद्रके बलकरि सर्वको आनंद होता है, ऐसे आत्मतत्त्व अनुभवरूप अपने आनंदको प्राप्त हुआ ॥

रूप होत भया, जो अन्य है, निरन्य है, निरंजन है, सर्व है, असर्व है, अजर है, अमर है, सबकी आदि है, सकलक है, अरु निष्कलंक है, ऐसा जो आकाशते निर्मल पद है, तिसको वीतव मुनीश्वर प्राप्त हुआ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवनिर्वाणयोगोपदेशो नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ८४.

वीतवविश्रांतिसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दुःखरूप संसारसमुद्रके पार वीतव मुनीश्वर परमपदको प्राप्त हुआ, जिस पदके प्राप्त हुए जन्ममरणको बहुरि नहीं पाता, जिस पदविषे स्थित हुआ परमशांत उपशम आनंदको प्राप्त भया, जैसे समुद्रविषे बुंद पड़ी हुई समुद्र हो जाती है, तैसे ब्रह्मसमुद्रविषे ब्रह्म होत भया, अरु शरीर जो वीतवका था, सो विरस होकरि गिर पड़ा, जैसे शीतकालविषे वृक्षोंके सूखे पत्र गिर पड़ते हैं, तैसे शरीर गिर पड़ा, शरीररूपी वृक्ष था, तिसविषे हृदयरूपी आलय था, तिसविषे प्राणरूपी पक्षी रहता था, सो चिदाकाशविषे प्राप्त हुआ, जैसे खभाणीकरि पत्थर धावता है, तैसे जाय प्राप्त भया, अपने स्वरूपविषे स्थित हुआ ॥ हे रामजी ! यह मैं वीतवकी कथा तुझको सुनाई है, सो अनंत विचारकरि युक्त है, इस प्रकार विचारकरि वीतव विश्रामवान् हुआ है, तुम भी उसको विचारकरि सिद्धता सारको प्राप्त होउ, और दृश्यकी चिंतवनाको त्यागि सावधान होउ ॥ हे रामजी ! जो कछु मैं तुझको पूर्व कहा है, सो तिस पदविषे प्राप्त हुआ बहुरि पाने योग्य कछु नहीं रहता, अरु अब जो कछु कहता हौं, अरु जो कछु पाछे कहौगा, तिसको विचार कि, मुक्ति ज्ञानहीकरि होती है, अरु ज्ञानहीकरि सब दुःख नाश होते हैं, ज्ञानहीकरि अज्ञान निवृत्त होता है, अरु ज्ञानहीकरि परम सिद्धताको प्राप्त होता है, पाने योग्य यही वस्तु है, दुःखोंके नाश करनेको और कोई समर्थ नहीं यह निश्चय है कि, ज्ञानकरि सब फांस काटे जाते है, ज्ञानहीकरि वीतवने मनको चूर्ण किया॥

हे रामजी ! वीतवकी संवित् जगत्के अतीत होत भई, जेता कछु दुःख है, सो मनकरि होता है, मनके उपशम हुए सब जगत अनुभवरूप हो जाता है, वीतव भी मनोमात्र था, मैं भी मनोमात्र हौं, तू भी मनोमात्र है, पृथ्वी आदि जगत् सर्व मनोमात्र है, मनते इतर कछु नहीं, जहां मन होता है, तहां जगत् होता है, मनही जगत्रूप है, अरु जगत्ही मनरूप है, जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो मनकी दिशाको त्यागिकरिके केवल चिदानंद आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है, रागद्वेष विकार आदि तिनके मिट जाते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवविश्रांतिसमाप्तिर्नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पंचाशीतितमः सर्गः ८५.

सिद्धिलाभविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वीतवकी नाईं विदितवेद्य होकरि रागद्वेषते रहित स्थित होउ, जैसे सहस्र वर्ष वीतव वीतशोक जीवन्मुक्त होकरि विचरा है, तैसे तू भी विचर, और भी बोधवान् राजा अरु मुनीश्वर हुए हैं, जैसे प्राप्त हुए राज्यादिक व्यवहारविषे रहे हैं, तैसे तू भी जीवन्मुक्त होकरि रहहु ॥ हे रामजी ! सुख दुःख कर्म आत्माको स्पर्श नहीं करते, आत्मा सर्वज्ञ है, तू किस निमित्त शोक करता है, बहुत विदितवेद्य पृथ्वीविषे विचरते हैं, परन्तु शोकको कदाचित् नहीं प्राप्त होते, जैसे तुम अब शोक नहीं करते ॥ हे रामजी ! तू अब स्वस्थ है, उदार है सम सर्वज्ञ है, आत्मा है, तुझको बहुरि जन्म नहीं, जीवन्मुक्त पुरुष जो अपने स्वरूपविषे स्थित है, सो हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता है जैसे सिंह वानर गीदड आदिकके वश नहीं होता तैसे जीवन्मुक्त विकारोंते रहित होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! इस प्रसंगविषे मुझको संदेह हुआ है, तिसको निवृत्त करौ, जैसे शरत्कालकरि मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे नाश करौ ॥ हे तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ ! जीवन्मुक्तके शरीरविषे शक्ति क्यों नहीं दृष्ट आती जो आकाशविषे उड़ता फिरै, अरु सूक्ष्मरूपकरि और शरीरविषे

प्रवेशकरि जावे, इत्यादिक शरीरविषे नहीं देखते॥वसिष्ठ उवाच॥हे रामजी! आकाशगमनादि जो सिद्धि है, सो तपादिक कर्मोंकी शक्ति है, जेते कछु जगत् विचित्र हैं, देखाईदेना बहुरि गुप्त हो जाना इत्यादिक वस्तु द्रव्यके स्वभाव हैं, आत्माके ज्ञानके नहीं ॥ हे रामजी! कोऊ द्रव्य क्रिया कालको यथाक्रम साधता है, तिसको शक्ति प्राप्त होती है, ज्ञानी साधै अथवा अज्ञानी साधै शक्ति प्राप्त होती है, परंतु शक्ति आत्मज्ञानका फल नहीं, आत्मज्ञानीको आत्मज्ञानकी सिद्धता होती है, वह आत्मकार आपविषे तृप्त होता है, सिद्ध जो अविद्यारूप है, तिसकी ओर नहीं धावता, जेता कछु जगत् है, सो तिसने अविद्यारूप जाना है, ऐसे जानकरि पदार्थोंविषे नहीं डूबता, जो अज्ञानी है, सो सिद्धताके निमित्त इन पदार्थोंको साधता है, अरु जो ज्ञानवान् है, सो इन पदार्थोंकेवास्ते यत्न नहीं करता, अरु जो यत्न करै तौ ज्ञानी होवै, अथवा अज्ञानी होवै, इंद्रादिकोंके ऐश्वर्यको पाता है, अरु ज्ञानकी शक्ति नहीं, द्रव्यकी शक्ति है सो अविद्यारूप है, अज्ञानी इनकी ओर धावते हैं, ज्ञानवान् नहीं धावते, वे सर्वते अतीत है, सर्व इच्छाका जिसने त्याग किया है, अरु आत्मपदविषे संतोष पाया है, वे इनकी इच्छा नहीं करते, इनकी इच्छा भोगों अथवा बड़ाईके निमित्त होती है, अथवा मान अरु जीवनेके निमित्त तथा सिद्धके निमित्त इच्छा होती है, आत्मज्ञानीको न भोगोंकी इच्छा होती है, न सिद्धता न मानकी इच्छा होती है, काहेते जो सब अनात्मा धर्म है, वह नित्य तृप्त परम शांतरूप है, वीतराग निर्वासनिक पुरुष है, अरु आकाशकी नाईं सदा अपने आपविषे स्थित है, जैसे सुख स्वाभाविक आता है, तैसे दुःख स्वाभाविक आता है, शरीरके सुखदुःखकी अवस्थाविषे चलायमान नहीं होता, नित्य तृप्त असग होता है, जीवन मरणकी वृत्ति उसको नहीं फुरती, सर्वविषे सम रहता है, समुद्रविषे नदियां प्रवेश करती हैं, अरु समुद्र अपनी मर्यादाविषे स्थित है, तैसे ज्ञानवान्को क्षोभ नहीं प्राप्त होता॥ हे रामजी! जो कछु ज्ञानवान्को प्राप्त होता है, सो आत्माविषे अर्चन करते हैं, तिसको करनेविषे कछु अर्थ नहीं, अकरनेविषे कछु प्रत्यवाय नहीं होता, अरु तिसको कि-

सीका आश्रय नहीं, सदा अपने स्वरूपविषे स्थित है, अरु यह जो सिद्धि है, सो मंत्र काल कर्मकरि होती हैं, एक योगक्रिया ऐसी होती है; तिसके साधनेकरि उडनेकी शक्ति हो आती है, एक मन्त्रोंकरि शक्ति होती है, एक गुटका मुखमें रखनेकरि उड़नेकी शक्ति होती है, इत्यादिक शक्तिकी प्रथमही नीति हो रहती है, तिसते अन्यथा नहीं होती ॥ हे रामजी ! जैसी शक्ति जिस साधनकरि नीति हुई है, तिसके अन्यथा करनेको सदाशिव भी समर्थ नहीं । काहेते जो स्वाभाविक स्वत सिद्ध है, जैसे चंद्रमाविषे आदि शीतलता है, अरु अग्निविषे उष्णता है, इत्यादिक पदार्थोंविषे आदि नीतिकरि जो स्वयंभाव हुआ है, तिसके दूर करनेको समर्थ कोऊ नहीं, सर्वज्ञ जो विष्णु भगवान् है, सो भी अन्यथा करनेको समर्थ नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिस द्रव्यविषे मारनेकी सत्ता है, सो मारता है, मद्यविषे मत्त करनेकी शक्ति है, तैसे द्रव्य योग काल आदिकविषे सिद्धता शक्ति नीति हुई है, जैसे एक औषधमें क्लेश करनेकी शक्ति है, तिसके पायेते क्लेश होता है, जैसे इनविषे अपनी अपनी शक्ति है, जो इनको साधता है, तिसको वह प्राप्त होती है, जो आत्मज्ञानी इनका साधन करे, वह कर्तेविषे भी अकर्त्ता है, अरु आत्मज्ञानके पानेविषे सिद्धि कछु उपकार नहीं कर सकती, परंतु जो इनकी वांछा करै तो यत्न करिकै पाता, यत्न विना नहीं पाता आत्मज्ञानीको इच्छा भी नहीं होती, आत्मपरायणही होता,है आत्मलाभकरि सर्व इच्छा तिसकी शांत हो जाती है ॥ हे रामजी ! जेते लाभ है, तिनते परम आत्मलाभ है, आत्माको पाइकरि बहुरि इच्छा किसीकी नहीं होती, जैसे अमृतके पान किये और जलकी इच्छा नहीं करता, तैसे आत्माके लाभकरि और इच्छा नहीं होती, ऐसे आत्मलाभ जिनने पाया है, तिनको इनकी इच्छा कैसे होवै, जैसी जैसी किसीको इच्छा होती है, तिसको तैसाही प्राप्त होता है, ज्ञानी होवे अथवा ज्ञानते रहित होवे, इच्छा प्रयत्नके अनुसार प्राप्त होती है, यह जो चीनर था, तिसको इच्छा कछु न रही थी, अरु प्रथम जो सूर्यपास गमनकी शक्ति इसविषे दृष्ट आई थी, सो क्रियाके साधन करिकै थी, पीछे जब ज्ञान उपजा तब इच्छा

कछु न रही ॥ हे रामजी ! जो कछु किसीको फल प्राप्त होता है, सो अपने प्रयत्नकरि होता है, जो ज्ञानवान् है, सो सदा तृप्त रहता है, तिसको इष्ट अनिष्टकी इच्छा कछु नहीं फुरती ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! एता काल जो बीतव तीन सौ वर्ष समाधिविषे रहा, तब तिसका शरीर पृथ्वीसाथ पृथ्वी क्यों न हो गया, अरु सिंह बघाडादिक उसको क्यों भोजन न करि गए ? अरु पाछे विदेहमुक्त हुआ, प्रथम क्यों न हुआ ? जो पृथ्वीविषे दबे हुएको निकासने निमित्त बड़ा यत्न किया, इस संशयको निवारण करौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो संवित् वासनासाथ बांधी हुई है, सो सुखदुःखको भोगती है अरु मलिन भावकरि आवरी हुई है, अरु जो वासनाते रहित है, सो शुद्ध समतारूप है, सुखदुःखके भोगते रहित है, किसी कारणकरि छेदी नहीं जाती ॥ हे रामजी ! जिस जिस पदार्थविषे चित्त लगता है, सोई सोई पदार्थ स्वरूपविषे भासता है, यह पदार्थकी शक्ति है, जैसी पदार्थोंविषे शक्ति होती है, तैसी भासती है, इस कारणते बहुत वर्ष व्यतीत होते है, तौ भी समाधिके बलकरि तिसका शरीर ज्योंका त्यों रहता है- काहेते कि, चित्त जिस पदार्थविषे लगता है, तिसका रूप हो जाता है, जैसे मित्रको मित्रभावकरि देखता है, स्वाभाविकही प्रसन्न होता है, अरु शत्रुको देखिकरि चित्तविषे स्वाभाविकही अप्रसन्नता फुरि आती है, मिष्ट वस्तुको देखिकरि चित्त स्वाभाविक लोलुप हो जाता है, कटुकविषे विरसताको प्राप्त होता है, जैसे मार्ग चलनेवालेका चित्त मार्गके पर्वत वृक्षोंके रागकरि बधायमान नहीं होता, अरु जैसे चंद्रमाके निकट गएते शीतलता होती है, सूर्यके निकट उष्णता प्राप्त होती है, सो पदार्थकी शक्ति है, जिस पदार्थसाथ वृत्तिका स्पर्श होता है, तिसका स्वाभाविक आरंभ विफल प्राप्त होता है, तैसे जब योगी देह इंद्रियोंकी वासना ममत्वभावको त्याग कर समभावविषे प्राप्त होता है, तब तिसको समभावका अनुभव होता है अर्थ यह कि, सर्वविषे एकही भासता है, इस कारणते शरीरको सिंहादि कछु कोऊ छेदि सकते नहीं, जो जीव उसके घात करनेको आते हैं, सो हिंसाभावको त्यागि देते

है, अहिंसक हो जाते है,इस कारणते निकट आय शांत हो जाते है,वीतवका शरीर छेदनको न प्राप्त भया, न पृथ्वीविषे पृथ्वी हो गया, सर्वत्र समता आकाश एकही स्थित है, काष्ठ लोष्ठ पत्थर ब्रह्मादि तृणपर्यंत सर्वविषे एक अनुस्यूत है, अरु जहां पुर्यष्टका होती है, तहां भासता है, जहां पुर्यष्टका नहीं होती, तहां नहीं भासता, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सब ठौरविषे पूर्ण है, परंतु जहां स्वच्छ ठौर दर्पण जलते आदि लेकरि होते है, सो भासते है, जहा उज्ज्वल ठौर नहीं होता, तहा प्रतिबिंब नहीं भासता तैसे जहा पुर्यष्टका है, तहा संवित् भासती है, अन्यथा नहीं भासती, इस कारणते जो वीतवकी संवित् समभावविषे स्थित है, उसको किसी तत्त्वका अरु जीवका क्षोभ नहीं होता, अरु पंच तत्त्वोंका क्षोभ तब होता है, जब प्राण फुरते हैं, जब प्राण फुरणेते रहित होता है, तब तत्त्वोंका क्षोभ नहीं होता, सो वीतवकी बाह्य अरु अंतर स्पंदकला प्राणोंकी शांति हो गई थी, प्राण अरु चित्तकला दोनों फुरणेते रहित थीं, इसका हृदय भी क्षोभित न भया ॥ हे रामजी ! देहरूपी गृहविषे चित्त अरु वायुका स्पंद शांत हो जाता है, जब इनका फुरना शांत होता है, तब शरीर नाश हो जाता है, तब सब सुमेरुकी नाईं स्थित हो जाते हैं किसीकी समर्थता नहीं, जो तिसको क्षोभ करै, अरु नाश करै; योगीश्वरका चित्त अरु प्राण निस्पंद हो जाता है, सो इनको वश करिकै जुड़ता है, तब उसको न तत्त्वोंका क्षोभ होता है, न वात पित्त कफका क्षोभ होता है, न और कछु क्षोभ होता है, इसकरिकै योगीका शरीर सहस्र वर्षपर्यंत भी ज्योंका त्यों रहता है, नष्ट नहीं होता है, जैसे वज्रको कोऊ चूर्ण नहीं कर सकता, तैसे तिसके शरीरको कोऊ नाश नहीं कर सकता, सबकी शक्ति तिसकेऊपर कुंठित हो जाती है, इस कारणते वीतवका शरीर ज्योंका त्यों रहा, अरु तब क्यों न विदेहमुक्त हुआ सो सुन ॥ हे रामजी ! तत्त्वज्ञ विदितवेद वीतराग महाबुद्धि है जिनकी, अभिमानरूपी गांठ टूट पडी है, सो पुरुष स्वतंत्र स्थित होता है, तिनको न कोऊ प्रारब्ध कर्म है न संचित कर्म है, न वर्तमानका कर्म है, सबते मुक्त तत्त्ववेत्ता स्वतंत्र स्थित होते है, अरु स्वेच्छ विचरते हैं, जैसी इच्छा करै. तैसी

शीघ्र होती है ॥ हे रामजी ! वीतवको आकाशमात्रते जीवनेका स्पंद फुर आया, तब केताक काल जीवता रहा, जब उसकी संवित्‌विषे विदेह मुक्त होनेका स्पंद फुरा, तब विदेहमुक्त हो गया, उनकी स्थिति स्वाभाविक स्वतंत्र होती है, जिसकी वाछा करता है सो तत्काल हो जाता है, मन आत्मपदविषे स्थित होता है, उनको कछु कृत्य कर्तव्य नहीं ॥ इति श्रीयोगवा० उपशमप्र० सिद्धिलाभविचारो नाम पंचाशीतितम सर्गः ८५

षड्शीतितमः सर्गः ८६

दानविचारवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जब विचारकारि वीतवका चित्त शांत हो गया, तब उसको मैत्री करुणा आदिक गुण आन प्राप्त हुये, यह तुमने कहा, परंतु जब विवेक करिके चित्त उसका नष्ट हो गया, बहुरि मैत्री आदिक गुण कहां आनि प्राप्त भए ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! चित्तका नाश दो प्रकारका है, जीवन्मुक्तका चित्त अचित्तरूप हो जाता है, अरु विदेह मुक्तका चित्त स्वरूपते नष्ट हो जाता है, जैसे भूना दाना होता है, तैसे जीवन्मुक्तका चित्त देखनेकरि चित्तरूप है, सो वीचते शब्दभाव नहीं, अरु जैसे दाना नष्ट हो जावै तैसे विदेहमुक्तका चित्त है सो देखनेमात्र भी नहीं रहता ॥ हे रामजी ! जो चित्तकी सत्यता है, सो दुःखोंका कारण है, अरु चित्तकी असत्यता सो सुखोंका कारण है, चित्तविषे विषयोंकी वासना फुरती है, सो चित्त जन्मोंके देनेहारा है, अरु दुःखोंका कारण है, गुणोंके संगकरि अहं ममभावविषे रहता अरु चित्तकी सत्यताकरि जीव कहाता है ॥ हे रामजी ! जबलग चित्त विद्यमान है, तबलग अनत दुःख होता है, दुःखरूपी वृक्षका बीज चित्त है, जब चित्त नष्ट हुआ तब कल्याण हुआ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! मन किसका नाम हुआ, तिसकरि नष्ट होता है, अरु अस्त कैसे होता है, सो कहो ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे प्रश्नवेत्ताविषे श्रेष्ठ ! चित्तसत्ताका लक्षण मैं तेरे कहा है, अब जो जीव उसके लक्षण सब सुन, सुख अरु दुःखकी दिशा जिसके धैर्य भासता है,

स्वरूपको चलाय नहीं सकती, जैसे सुमेरुको पवन चलाय नहीं सकता तैसे जिसके चित्तको दुःख चलाय नहीं सकता, तिसका मृत्यु जान अर्थ यह कि, वह चित्त सत्पदको प्राप्त भया है, उस चित्तते चिंता नाश होगई है, जैसे भूने दानेते अंकुर नाश हो जाता है; तैसे उसका चित्त नाश हो जाता है, आत्माते इतर जिसको कछु नहीं फुरता सो चित्त मृतक हुआ है ॥ हे रामजी ! अह इच्छा द्वेषादिक विकार जिसके चित्तको तुच्छकारि सकै नहीं, तिसका चित्त मृतक जान अरु जिसको इंद्रियोंके विषय इष्ट अनिष्ट प्राप्त होवैं, अरु राग द्वेषकरि ग्रहण त्यागकी द्वैतभावना न उपजे, ज्यों का त्यों रहै, तिस पुरुपका चित्त मृतक जान, जिसका चित्त नाश हुआ है, सो जीवन्मुक्त जान, अरु जिसको ससारके इष्ट पदार्थोंविषे राग होता है, तिसकरि ग्रहणकी इच्छा करता है, अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे दोष कारिकै त्यागनेकी इच्छा करता है, अह ममभाव सयुक्त देहविषे अभिमान है, तिस कारि आपको सुखी दु खी मानता है, अपनेविषे अनुभव होता है, सो चित्त जीवता है, यह चित्त सत्यता है, अरु जब चित्त ससारते विरक्त होवै, अरु जब चित्त सत्सग करै, सच्छास्त्रोंका श्रवण मनन करै, अरु स्वरूपका अभ्यास करै, तब चित्त अचित्त हो जाता है, अरु परमानदकी प्राप्ति होती है, तब जीवन्मुक्त होकारि विचरता है, अरु मैत्री आदिक गुण जिस प्रकार जीवन्मुक्तविषे होते हैं, सो सुन ॥ हे रामजी ! चित्तविषे जो ससारकी सत्यतारूपी मैल है, यही चित्तभाव है, सो आत्मज्ञानकारि नष्ट हो जाता है, तब मैत्री आदिक गुण आनि प्राप्त होते हैं, जैसे सूर्यके उदय हुए तम नष्ट हो जाता है, अरु प्रकाश उदय होता है, अरु जैसे भूने दानेका अंकुर जलि जाता है, तैसे ज्ञानकारि चित्तका चित्तस्वभाव नष्ट हो जाता है अरु मैत्री आदिक गुण उदय होते हैं, देखनेमात्र चित्त देखता है, अज्ञानीकी नाईं यत्न करता भासता है, परंतु अज्ञानीका चित्त जन्मका कारण है, ज्ञानीका चित्त जन्मका कारण नहीं, जैसे कच्चा दाना उगता है, भूना नहीं उगता, तैसे अज्ञानी जन्मता है, ज्ञानी नहीं जन्मता, जैसे चंद्रमा राहुते छूटता है, तब चित्तविषे मैत्री करुणा आदिक गुण आनि उदय होते है, जैसे

शीघ्र होती है ॥ हे रामजी ! वीतवको आकाशमात्रते जीवनेका स्पंद फुर आया, तव केताक काल जीवता रहा, जब उसकी सवित्‌विषे विदेह मुक्त होनेका स्पंद फुरा, तव विदेहमुक्त हो गया, उनकी स्थिति स्वाभाविक स्वतंत्र होती है, जिसकी वांछा करता है सो तत्काल हो जाता है, मन आत्मपदविषे स्थित होता है, उनको कछु कृत्य कर्तव्य नहीं ॥ इति श्रीयोगवा० उपशमप्र० सिद्धिलाभविचारो नाम पंचाशीतितमः सर्ग• ८५

षडशीतितमः सर्गः ८६

दानविचारवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जब विचारकरि वीतवका चित्त शांत हो गया, तव उसको मैत्री करुणा आदिक गुण आन प्राप्त हुये, यह तुमने कहा, परतु जब विवेक करिकै चित्त उसका नष्ट हो गया, वहुरि मैत्री आदिक गुण कहां आनि प्राप्त भए ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! चित्तका नाश दो प्रकारका है, जीवन्मुक्तका चित्त अचित्तरूप हो जाता है, अरु विदेह मुक्तका चित्त स्वरूपते नष्ट हो जाता है, जैसे भूना दाना होता है, तैसे जीवन्मुक्तका चित्त देखनेकरि चित्तरूप है, सो वीचते शब्दभाव नहीं, अरु जैसे दाना नष्ट हो जावे तैसे विदेहमुक्तका चित्त है सो देखनेमात्र भी नहीं रहता ॥ हे रामजी ! जो चित्तकी सत्यता है, सो दु खोंका कारण है, अरु चित्तकी असत्यता सो सुखोंका कारण है, चित्तविषे विषयोंकी वासना फुरती है, सो चित्त जन्मोंके देनेहारा है, अरु दु'खोंका कारण है, गुणोंके संगकरि अह ममभावविषे रहता अरु चित्तकी सत्यताकरि जीव कहाता है ॥ हे रामजी ! जवलग चित्त विद्यमान है, तवलग अनंत दु ख होता है, दु-खरूपी वृक्षका वीज चित्त है, जब चित्त नष्ट हुआ तव क्ल्या ण हुआ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! मन किसका नाम हुआ, तिसको नष्ट होता है, अरु अस्त कैसे होता है, सो कहो ? ॥ वसिष्ठ भासता है, प्रश्नवेत्ताविषे श्रेष्ठ ! चित्तसत्ताका लक्षण मैं तेरे कहा है, अब जो जीव उसके लक्षण सव सुन, सुख अरु दु खकी दिशा जिसके धैर्य

स्वरूपको चलाय नहीं सकती, जैसे सुमेरुको पवन चलाय नहीं सकता तैसे जिसके चित्तको दुःख चलाय नहीं सकता, तिसका मृत्यु जान. अर्थ यह कि, वह चित्त सत्पदको प्राप्त भया है, उस चित्तते चिंता नाश होगई है, जैसे भूने दानेते अंकुर नाश हो जाता है, तैसे उसका चित्त नाश हो जाता है, आत्माते इतर जिसको कछु नहीं फुरता सो चित्त मृतक हुआ है ॥ हे रामजी ! अह इच्छा द्वेषादिक विकार जिसके चित्तको तुच्छकारि सकैं नहीं, तिसका चित्त मृतक जान अरु जिसको इंद्रियोंके विषय इष्ट अनिष्ट प्राप्त होवैं, अरु राग द्वेषकरि ग्रहण त्यागकी द्वैतभावना न उपजै, ज्यों का त्यों रहै, तिस पुरुषका चित्त मृतक जान, जिसका चित्त नाश हुआ है, सो जीवन्मुक्त जान, अरु जिसको संसारके इष्ट पदार्थोंविषे राग होता है, तिसकरि ग्रहणकी इच्छा करता है, अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे दोष कारकै त्यागनेकी इच्छा करता है, अह ममभाव संयुक्त देहविषे अभिमान है, तिस करि आपको सुखी दुःखी मानता है, अपनेविषे अनुभव होता है, सो चित्त जीवता है, यह चित्त सत्यता है,अरु जब चित्त संसारते विरक्त होवै,अरु जब चित्त सत्संग करै, सच्छास्त्रोंका श्रवण मनन करै, अरु स्वरूपका अभ्यास करै, तब चित्त अचित्त हो जाता है, अरु परमानंदकी प्राप्ति होती है, तब जीवन्मुक्त होकरि विचरता है,अरु मैत्री आदिक गुण जिस प्रकार जीवन्मुक्तविषे होते हैं, सो सुन ॥ हे रामजी ! चित्तविषे जो संसारकी सत्यतारूपी मैल है, यही चित्तभाव है, सो आत्मज्ञानकरि नष्ट हो जाता है, तब मैत्री आदिक गुण आनि प्राप्त होत हैं, जैसे सूर्यके उदय हुए तम नष्ट हो जाता है, अरु प्रकाश उदय होता है, अरु जैसे भूने दानेका अंकुर जलि जाता है, तैसे ज्ञानकरि चित्तका चित्तत्त्वभाव नष्ट हो जाता है अरु मैत्री आदिक गुण उदय होते हैं, देखनेमात्र चित्त देखता है, अज्ञानीकी नाईं यत्न करता भासता है, परंतु अज्ञानीका चित्त जन्मका कारण है, ज्ञानीका चित्त जन्मका कारण नहीं, जैसे कच्चा दाना उगता है, भूना नहीं उगता, तैसे अज्ञानी जन्मता है, ज्ञानी नहीं जन्मता, जैसे चंद्रमा राहुते छूटता है, तब चित्तविषे मैत्री करुणा आदिक गुण आनि उदय होते हैं, जैसे

वसतऋतुके आए वल्लियां सब प्रफुल्लित हो आती हैं, तैसे चित्तभाव मिटेते मैत्री आदिक गुण स्वाभाविक आनि फुरते है, अरु जो विदेहमुक्त होता है, तिसका चित्त स्वरूपते भी नष्ट हो जाता है, वहां गुण कोई नहीं रहता, वह अवस्था और कोई नहीं जानता,विदेहमुक्त जानता है, तिस विषे द्वैतकल्पना कछु नहीं फुरती, निर्मल पावन पद है ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तका चित्त स्वरूपविषे अचित्त होकरि रहता है, अरु विदेहमुक्त विषे चित्त स्वरूपते नष्ट हो जाता है, इसकारणते जीवन्मुक्तविषे मैत्री आदिक गुण पाते हैं, विदेहमुक्तविषे आत्मा निर्मल निष्कलक है, सो चित्तके नष्ट हुए विदेहमुक्तविषे रहता है, गुणोंकी कल्पना तिसविषे कोई नही फुरती, परम पावन निर्मल पदविषे स्थित होता है, अरु शांति आदिक गुण भी नष्ट हो जाते है, काहेते कि,चित्त स्वरूपते नष्ट हो जाता है, चित्तके नष्ट हुए चित्तकी अवस्था कहां रहै, न कोऊ गुण रहता है, न अवगुण रहता है, न वह गुणोंते उत्पन्न भया सार कहाता है, न अवगुणोंते उत्पन्न भया असार कहाता है, न लोलुप है, न लक्ष्मी है, न अलक्ष्मी है, न उदय है, न अस्त है, न हर्ष है, न शोक है, न तेज है, न तम है, न दिन है, न रात्रि है, न संध्या है, न दिशा है, न आकाश है, न अर्थ है, न अनर्थ है, न वासना है, न अवासना है, न अजन है, न निरजन है, न सत्य है, न असत्य है, न चद्रमा है, न तारे है, न सूर्य है, ऐसा जो सर्व कलनाते रहित पद है, शरत्कालके आकाशकी नाई निर्मल है, अरु बुद्धिते परे पद है, तिसविषे औरकी गम नहीं, जैसे आकाशके स्थानको पवन जानता है, तैसे उसकी अवस्थाको वही जाने, तहा स्थित हुए सर्व दु ख शात हो जाते हैं, ब्रह्मानंदविषे लीन हो जाता है, ज्ञानवान् आकाशकी नाई निर्मल पदको प्राप्त होता है, जिसके पाएते और पाना कछु नहीं रहता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे ज्ञानविचारोनाम पडशीतितम. सर्ग ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७.

स्मृतिवीजविचारवर्णनम्।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! परमाकाशके कोशाविषे एक पहाड है, तिसकेऊपर एक जगत्रूपी वृक्ष है,तारे तिसके फूल हे,अरु मेंदु पत्र हैं,सूर्य चंद्रमा स्कंध हैं, देवता दैत्य मनुष्यादिक जीव सब तिस ऊपर पखेरू रहते हैं, सप्त समुद्र तिसकेपास बावडिया है, अनंत नदिया तिसविषे प्रवेश करती हैं, चतुर्दश प्रकारके भूतजात उत्पन्न होते है, सुखदुःखरूपी फलोंकरि पूर्ण है, मोहरूपी जलकरि सींचता है, सो दृढ होकरि स्थित हुआ है, तिसका वीज कौन है, यह ज्ञानरूपी सार बोधकी वृद्धिके निमित्त मुझको सक्षेपते कहो? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस ससारका बीज बडा शरीर है, जिसके अतर आरभकी घनता है, जब शुभ अशुभका आरभ शरीरका अकुर होता है, तब शुभ अशुभ करता है, ताते संसारका बीज शरीर है, तिस शरीरका बीज चित्त है, राजस सात्त्विक तामस वृत्ति जिसके दास है, अरु जन्ममरणका भंडार है, अरु सुखदुःखरूपी रत्नका डब्बा है, ऐसा जो चित्त है, सो इस शरीरका कारण है ॥ हे रामजी! जेता कछु जगज्जाल दृष्ट आता है, सो सब असत्रूप है चित्तके फुरणेकरि नानाप्रकारके आडवर भासते हैं, जैसे गधर्वनगर नानाप्रकारके आरभसहित भ्रम करिके भासते है, जैसे सकल्पपुर भासता है सो असत् है, तैसे यह जगत् असत है, जैसे मृत्तिकाविषे घटभाव होता है, तैसे चित्तविषे जगत्का सद्भाव होता है, चित्तरूपी अकुरके वृत्तिरूपी दो टास होते है, एक प्राणोंका फुरणा, दूसरा दृढभावना, जब प्राणस्पद होती है, हृदय गात्र जो है, इकहत्तर सौ नाडी है, जब तिनकी ओर सवेदनरूप चित्त उदय होता है, तब प्राणस्पद तिनकी ओर नहीं फुरता, जब प्राण फुरता है, तब शुद्ध सात्त्विक चित्त आनि उपजता है, तिसविषे जगत् भासता है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे प्राणविषे नीलता भासती है, जब प्राणस्पंद होता है, तब चित्त सवित् उछलती है, जैसे हाथ करि ताडना किया गेंद उछलता है, जैसे प्राणस्पंदविषे सवं-

गत संवित् उपलब्धरूप होती है, तहां प्रतिबिंबितरूप होकरि सात्त्विक भागविषे स्थित होती है, महासूक्ष्मते सूक्ष्म है, जैसे वायुविषे गंध रहती है, सोई संविद्रूपको त्यागिकरि बहिर्मुख धावती है, तिसकरि नानाप्रकारका जगत भासता है, अरु नानाप्रकारकी वासना उठती है, तिस करिके अनेक दुःखोंको प्राप्त होता है॥ ताते हे रामजी! संवित्को अंतर्मुख रोकना कल्याणका कारण है, जब संवित् स्वरूपविषे स्थित होती है, तब क्षोभ मिट जाता है, जब शुद्ध संवित्विषे अहं उल्लेख फुरता है, तब वेदनरूप होती है, सो चित्त है, चित्तकरि अनेक दुःख होते है, चित्तका होना अनर्थका कारण है जब चित्त न उपजै, तब शांति हो जाती है, अरु चित्त तब निवृत्त होता है, जब प्राणस्पंद रोकिये अथवा वासना नष्ट होवै, सो ध्यान अरु प्राणायामकरि योगीश्वर प्राणोंको रोकता है, तब चित्त स्थित हो जाता है, यह योगकरि अनुभव करता है, अरु ज्ञानकरि भी अनुभव सुन॥ हे रामजी! चित्त वासनाकरिकै उत्पन्न होता है, सो वासना विचारते रहित फुरती है, जैसे बालकोंको जन्मतेही स्तनोंते दूध चूसनेकी वृत्ति फुरती है, तैसे अकस्मात्ते भावनाकी दृढतासों वासना फुरि आती है॥ हे रामजी! जिसविषे पुरुषकी तीव्र भावना होती है, सोईरूप पुरुषका होता है, स्वरूपके प्रमाद करिकै भासा है, तिसविषे दृढ प्रतीति हो गई है, तिसकी भावना करता है, जगत्की वासनाकरि मोहको प्राप्त भया है, जो स्वतःसिद्ध अनुभवरूप आत्मा है तिसको जानि नहीं सकता, अरु वासनाकी प्रबलताकरि स्वरूपका त्याग किया है, अरु भ्रांतिरूप जगत्को सत्य देखता है, जैसे मद्यकरि मत्तको पदार्थ विपर्यय हुये औरके और भासते है, तैसे मूर्खोंको वासनाके बलकरि जगत्के पदार्थ सत्य भासते हैं॥ हे रामजी! असम्यक् ज्ञानकरि जीव दुःखी होता है, शांतिको नहीं प्राप्त होता, मनकी चिंताकरि जलते है, मन किसका नाम है सो श्रवण कर, जो असम्यक् ज्ञानकरि अनात्माविषे आत्मभावना होवै, अरु वस्तु आत्माविषे अवस्तु अनात्मभावना होवै, तिसका नाम मन है, सो मन कैसे उत्पन्न होता है, चेतन संवित्विषे जो पदार्थोंकी चितवना होती है, बहुरि तीव्र पदार्थकी दृढ भावना होती है, तब वही चेतन संवित् चित्तरूप हो जाती है,

तिस चित्तविषे बहुरि जन्म मरण आदिक विकार उपजते है,बहुरि किसीका ग्रहण किसीका त्याग करता है, जब ग्रहण अरु त्यागका संकल्प अंतरते निवृत्त होवै, तब चित्त भी मृतक हो जावै, जब वासना नष्ट हो जाती है, तब मन अमन पदको प्राप्त होता है, मनका अमन होना परम उपशमका कारण है ॥ हे रामजी ! जेते कछु जगत्के पदार्थ हैं, तिनकी अभावना करिये अरु सब जगत् अवस्तु भूतकरि त्यागिये, तब हृदय-आकाशविषे चित्त शांत हो जावै ॥ हे रामजी ! चित्तका स्वरूप एता मात्र है, जब पदार्थोंते रस उठि जावै, तब चित्त बहुरि नहीं उपजता, जबलग पदार्थोंका रस फुरता है, तबलग स्थूल हो जाता है, असम्यक् ज्ञानकरि जो अनात्माविषे आत्मभावना है, ज्यों ज्यों यह दृढ होती है, त्यों त्यों चित्तरूपी वृक्ष अनर्थके निमित्त बढ़ता जाता है, अरु ज्यों ज्यों अनात्मासो आत्मबुद्धि निवृत हो जाती है जो अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि न होवै, त्यो त्यों चित्तरूपी वृक्ष क्षीण हो जाता है, सो कल्याणके निमित्त है, जब चित्त यथाभूत यथार्थको देखता है, तब चित्त अचित्त हो जाता है, अरु सर्व आशा निवृत्त हो जाती है, परम शांति शीतलता हृदयविषे स्थित होती है, तब पदार्थोंको ग्रहण भी करता है, परंतु अंतरते रागसंयुक्त वासना निवृत्त भई है, तिसकरि चित्त शांतिको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तविषे भी चेष्टा दृष्ट आती है, परंतु जन्मका कारण नहीं होती काहेते कि मनविषे मनका सद्भाव नहीं, जैसे नटुआ अभिमानते रहित अनेक प्रकारके स्वांग धारता है तैसे वह अभिमानते रहित चेष्टा करता है, जैसे कुम्भारका चक्र भ्रमता ताडनाते रहित हुआ शनैः शनैः स्थिर हो जाता है, तैसे ज्ञानवान्का चित्त चेष्टा करता दृष्ट भी आता है, परंतु जन्मका कारण नहीं जब प्रारब्ध भोग वेग पूर्ण होवैगा, तब स्वाभाविक ठहरि जाता है, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे रागते रहित ज्ञानीकी चेष्टा है, जन्मका कारण नहीं होता, देखनेमात्र ज्ञानीकी चेष्टा तुल्य होती है, जैसे भूना अरु काचा बीज एक समान भासता है, परंतु काचा उगता है, भूना नहीं उगता, तैसे ज्ञानीकी चेष्टा जन्मका कारण नहीं

गत संवित उपलब्धरूप होती है, तहां प्रतिबिंबितरूप होकरि सात्त्विक भागविषे स्थित होती है, महासूक्ष्मते सूक्ष्म है, जैसे वायुविषे गंध रहती है, सोई संवितरूपको त्यागिकरि बहिर्मुख धावती है, तिसकरि नानाप्रकारका जगत भासता है, अरु नानाप्रकारकी वासना उठती है, तिस करिकै अनेक दुःखोंको प्राप्त होता है॥ ताते हे रामजी! संवित्को अंतर्मुख रोकना कल्याणका कारण है, जब संवित् स्वरूपविषे स्थित होती है,तब क्षोभ मिट जाता है, जब शुद्ध संवित्विषे अहं उल्लेख फुरता है, तब वेदनरूप होती है, सो चित्त है, चित्तकरि अनेक दुःख होते हैं, चित्तका होना अनर्थका कारण है जब चित्त न उपजै, तब शांति हो जाती है, अरु चित्त तब निवृत्त होता है, जब प्राणस्पंद रोकिये अथवा वासना नष्ट होवै, सो ध्यान अरु प्राणायामकारि योगीश्वर प्राणोंको रोकता है, तब चित्त स्थित हो जाता है, यह योगकरि अनुभव करता है, अरु ज्ञानकरि भी अनुभव सुन॥ हे रामजी! चित्त वासनाकरिकै उत्पन्न होता है, सो वासना विचारते रहित फुरती है, जैसे बालकोंको जन्मतेही स्तनोंते दूध चूसनेकी वृत्ति फुरती है, तैसे अकस्मात्‌ते भावनाकी दृढतासों वासना फुरि आती है॥ हे रामजी! जिसविषे पुरुषकी तीव्र भावना होती है, सोईरूप पुरुषका होता है, स्वरूपके प्रमाद करिकै भासा है, तिसविषे दृढ़ प्रतीति हो गई है, तिसकी भावना करता है, जगत्की वासनाकरि मोहको प्राप्त भया है, जो स्वतःसिद्ध अनुभवरूप आत्मा है तिसको जानि नहीं सकता,अरु वासनाकी प्रबलताकारि स्वरूपका त्याग किया है, अरु भ्रांतिरूप जगत्को सत्य देखता है, जैसे मद्यकरि मत्तको पदार्थ विपर्यय हुये औरके और भासते हैं, तैसे मूर्खोंको वासनाके बलकारि जगत्के पदार्थ सत्य भासते हैं॥ हे रामजी! असम्यक् ज्ञानकारि जीव दुःखी होता है, शांतिको नहीं प्राप्त होता, मनकी चिंताकरि जलते हैं, मन किसका नाम है सो श्रवण कर, जो असम्यक् ज्ञानकारि अनात्माविषे आत्मभावना होवै, अरु वस्तु आत्माविषे अवस्तु अनात्मभावना होवै, तिसका नाम मन है, सो मन कैसे उत्पन्न होता है, चेतन संवित्विषे जो पदार्थोंकी चिंतवना होती है, बहुरि तीव्र पदार्थकी दृढ़ भावना होती है, तब वही चेतन संवित् चित्तरूप हो जाती है,

तिस चित्तविषे बहुरि जन्म मरण आदिक विकार उपजते है,बहुरि किसीका ग्रहण किसीका त्याग करता है, जब ग्रहण अरु त्यागका संकल्प अतरते निवृत्त होवै, तब चित्त भी मृतक हो जावै, जब वासना नष्ट हो जाती है, तब मन अमन पदको प्राप्त होता है, मनका अमन होना परम उपशमका कारण है ॥ हे रामजी ! जेते कछु जगत्के पदार्थ हैं, तिनकी अभावना करिये अरु सब जगत् अवस्तु भूतकरि त्यागिये, तब हृदय-आकाशविषे चित्त शांत हो जावै ॥ हे रामजी ! चित्तका स्वरूप एता मात्र है, जब पदार्थोंते रस उठि जावै, तब चित्त बहुरि नहीं उपजता, जबलग पदार्थोंका रस फुरता है, तबलग स्थूल हो जाता है, असम्यक् ज्ञानकरि जो अनात्माविषे आत्मभावना है, ज्यों ज्यों यह दृढ़ होती है, त्यों त्यों चित्तरूपी वृक्ष अनर्थके निमित्त बढ़ता जाता है, अरु ज्यों ज्यों अनात्मासो आत्मबुद्धि निवृत हो जाती है जो अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि न होवै, त्यों त्यों चित्तरूपी वृक्ष क्षीण हो जाता है, सो कल्याणके निमित्त है, जब चित्त यथाभूत यथार्थको देखता है, तब चित्त अचित्त हो जाता है, अरु सर्व आशा निवृत्त हो जाती है, परम शाति शीतलता हृदयविषे स्थित होती है, तब पदार्थोंको ग्रहण भी करता है, परतु अंतरते रागसंयुक्त वासना निवृत्त भई है, तिसकरि चित्त शातिको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तविषे भी चेष्टा दृष्ट आती है, परतु जन्मका कारण नहीं होती काहेते कि मनविषे मनका सद्भाव नहीं, जैसे नटुआ अभिमानते रहित अनेक प्रकारके स्वांग धारता है तैसे वह अभिमानते रहित चेष्टा करता है, जैसे कुभारका चक्र भ्रमता ताडनाते रहित हुआ शनै· शनै स्थिर हो जाता है, तैसे ज्ञानवान्का चित्त चेष्टा करता दृष्ट भी आता है, परतु जन्मका कारण नहीं जब प्रारब्ध भोग वेग पूर्ण होवैगा, तब स्वाभाविक ठहरि जाता है, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे रागते रहित ज्ञानीकी चेष्टा है, जन्मका कारण नहीं होता, देखनेमात्र ज्ञानीकी चेष्टा तुल्य होती है, जैसे भूना अरु काचा बीज एक समान भासता है, परंतु काचा उगता है, भूना नहीं उगता, तैसे ज्ञानीकी चेष्टा जन्मका कारण नहीं

होती काहेते कि चित्त शांत हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिसकी चेष्टा अभिमानते रहित है, सो जीवन्मुक्त कहाता है, तिसका चित्त केवल चिन्मात्रको प्राप्त हुआ है, जब शरीरको त्यागता है, तब अचित्तरूप चिदाकाश होता है ॥ हे रामजी ! चित्तके दो बीज हैं, एक प्राणोंका फुरणा, दूसरा वासनाका फुरणा, दोनोंविषे जब एकका अभाव हो जाता है, तब दोनों नाश हो जाते है, येपरस्पर कारणरूप हैं, जैसे तालते मेघ जलपानकरि जाता है, बहुरि वर्षाकरि ताल पुष्ट होता है, सो परस्पर कारणरूप है, तैसे प्राणस्पंद अरु वासना परस्पर कारणरूप हैं, जैसे बीजते अंकुर होते हैं, अरु अंकुरते बीज होते हैं, तैसे प्राणस्पंदते वासना होती है, अरु वासनाते प्राणस्पद होता है, ये दोनों चित्तका कारण हैं, जैसे फूलविना सुगंधि नहीं होती, सुगंधिविना फूल नहीं होता, तैसे वासनाविना प्राण नहीं होते, प्राणविना वासना नहीं होती ॥ हे रामजी ! जब वासना फुरती है, तब संवित्‌विषे क्षोभ होता है, वह प्राणोंको जगावती है, तिसकरि जगत् उपजता है, जब हृदयविषे प्राण स्पंदके धर्म होते हैं, तब संवित् क्षोभ होता है, अरु चित्तरूपी बालक उपजता है, इसप्रकार वासना अरु प्राण दोनों चित्तका कारण हैं, दोनोंविषे एकका नाश होवै, तब दोनों नाश हो जावैं, अरु चित्तका भी नाश हो जावै ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी एक वृक्ष है, सुखदुःखरूपी तिसके स्कंध हैं, चिंतारूपी फल हैं, कार्यरूपी पत्र हैं, वृत्तिरूपी वल्लीसे वेष्टित हुआ है, अरु रागद्वेषरूपी दोनों बगले ऊपर आनि बैठे हैं, अरु तृष्णारूपी काली सर्पिणीकरि वेष्टित किया है, अरु इंद्रियांरूपी पक्षी तिसपर आनि स्थित होता है, इत्यादि रोगोंकरि पुष्ट होता है, अज्ञान इसका मूल है, अवासनारूपी खड्गकरि शीघ्रही काटा जाता है, संसारकी अभावना अरु स्वरूपकी भावनाकरि शीघ्रही नाश हो जाता है, जैसे तीक्ष्ण पवनकरि पका फल वृक्षसों शीघ्रही गिर पड़ता है, तैसे आत्मभावकरि फल गिर पड़ता है ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी आँधी है, सर्व दिशा तिसने मलिन करी हैं, प्रकाशको आच्छादि लिया है, अरु तृष्णारूपी तृण तिसविषे पड़े उछलते हैं, अरु शरीररूपी स्तंभाकार अज्ञानरूपी कुंडेते उपजा हुआ, वायु निरो-

ला बड़े क्षोभको प्राप्त करता है, जब अंतर प्रकाश होवै, तब तम दूर करै, जब स्पद रोकिए तब धूलि शांत हो जाती है, आत्मविचारते जब वासनाते रहित होवै, तब शरीररूपी धूलि शांत हो जावै ॥ हे रामजी ! प्राणोंके रोकनेकरि शाति होती है, अरु वासनाके अनउदयते चित्त स्थिर हो जाता है, प्राणस्पद अरु वासनाका वीज सवेदन है, जब शुद्ध संवित् मात्रविषे सवेदनका त्याग करै, तब वासना अरु प्राण दोनों न फुरैं, जैसे वृक्षका वीज मूल काटिए तब बहुरि नहीं होता, तैसे इनका मूल सवेदन है, जब सवेदनका अभाव होवै, तब दोनो नहीं बनते, संवेदनका वीज आत्मसत्ता है, सवित् सत्ताते सवेदन प्रगट भया है, तिसते इतर नही जैसे तिलोंविना तेल नहीं पाता, अंतर वाह्य और कछु नही, सब संवितसत्ताविना अतर नहीं पाता, वही संकलपद्वारा सवेदनको देखती है, जैसे स्वप्नविषे अपनी मृत्युको देखता है, देश देशांतरको प्राप्त होता है, तैसे सब सत्ता सवेदनको देखती है, संवित् चिन्मात्रविषे सवेदनका उत्थान होता है, जो अहं अस्मि तब सवेदन जगज्जाल दिखावती है, अपनी सवेदन उठिकरि आपको भ्रम दिखाती है, जैसे वालकको अपने सकलपते उपजा वैताल सत्य भासता है, जैसे स्थाणुविषे पुरुष भासता है, तैसे सवितविषे सवेदन भासती है ॥ हे रामजी ! असम्यक् ज्ञानकरिकै सवेदनरूप हो जाती है तिसविषे आत्मबुद्धि होती है, अरु सम्यक् ज्ञानकरिकै लीन हो जाती है, जैसे जेवरीविषे असम्यक् ज्ञानकरिकै सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे सवेदन भासती है, तैसे जगत ब्रह्म सवितरूप है, सवेदन भी कछु भिन्न नही, यह निश्चय जिसको दृढ होवै, इसको बुद्धीश्वर सम्यक्ज्ञान कहते हैं, जो प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् है तिससों वास्तव बुद्धि त्याग करनी, इसकरि भी ससारके परको प्राप्त होवैगा, अरु जो अवस्तु बुद्धिकरि न त्यागैगा, तौ जगत्के बंधनको पावैगा ॥ हे रामजी ! सवेदनका जो उत्थान होता है सो बडे दुःखको देनेहारा है, अरु सवेदन जो जडवत् अजड है सो [illegible] कारण है, सो आनद उत्थानते रहित आनंदस्वरूप है, तिसको, संवेदन उत्थानते रहित असंवेदन सवित् आत्माकी [illegible] है, सो संसारसमुद्रके

पारको प्राप्त होता है ॥ राम उवाच ॥ हे प्रभो ! जडताते रहित असंवेदन कैसे होता है, अरु असवेदनकरिकै जड़ता कैसे निवृत्त होती है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो सर्व ठौरविषे आसक्त नहीं होता, अरु कहूं चित्तकी वृत्ति नहीं लगती, अरु जीवतत्त्वका ज्ञान कछु न रहे, सो असंवेदन जडताते रहित है, सवेदन जो है, स्पंदरूप जिसकरि दृश्य भासता है, सो दृश्यकी ओरते जड़ है, अरु स्वरूपविषे चेतन है, सो अजड कहाता है ॥ हे रामजी ! हृदयाकाश जो चेतन संवित है, तिससाथ संवेदनका स्पर्श कछु न होवै, ऐसा सवित् अजड़ है देवता भी वही है, नाग, दैत्य, अरु राक्षस, हस्ती, मनुष्य आदिक स्थावर जगमरूप सबवही धारि रहती है ॥ हे रामजी ! अपनी चेष्टाकरिके संवित आपको आपही बँधावती है, जैसे घुराण आपही आपको गृह विषे बँधावती है, तैसे सवित् आपको बँधावता है,जब अपनी ओर आती है, तब आपही आपको प्राप्त होती है ॥ हे रामजी ! जगत् जाग्रत्रूपी समुद्र है, संवित्रूपी तिसविषे जल है, तिसकरि सब स्थान पूर्ण होगये हैं,अतरिक्ष पृथ्वी आकाश पर्वत नदियादिक सब संवित्रूपी जलकी लहर हैं, ताते सर्व जगत् संवित्मात्र है, तिसविषे द्वैत कलनाका अभाव है, यह सम्यक् ज्ञान है, इस संवित्का बीज सन्मात्र है, सन्मात्र सत्ताते सवित्का उदय होना हुआ है, जैसे प्रकाशते ज्योति उदय होती है अरु इस सत्ताके दो रूप हैं, एक रूप नानाप्रकार हो भासता है, द्वितीय एकही रूप है, घट पट तत्त्व आदिक एक सत्ताके नानाप्रकारके विभाग स्थित हैं, अरु विभागते रहित एक सत्ता स्थित है, सो सत्ता सामान्य अद्वैतरूप परमार्थ सत्ता है ॥ हे रामजी ! विषयको त्यागिकरि जो सन्मात्र है सो अलेप एकरूप है, सो महासत्ता है, तिसको ज्ञानवान् परमसत्ता कहते हैं, अरु नाना आकार भी सत्ता कबहूं नहीं धारती, यह सवेदन करिकै हुए हैं, इस कारणते अवस्तुरूप है, एकरूप जो परमसत्ता निर्मल अविनाशी है, न कबहूं नाश होती है, न विस्मरण होती है, काहेते अनुभवरूप है ॥ हे रामजी ! एक कालसत्ता, एक आकाशसत्ता है, सो यह सत्ता अवस्तुरूप है, इस विभागसत्ताको त्यागिकरि सन्मात्रसत्ता जो है; तिसी परायण

होउ, कालसत्ता आकाशसत्ता यद्यपि उत्तम है, परंतु वास्तव नहीं जहां नाना विभाग कलना आकार अरु नाना कारण है, सो पवित्रकर्ता पावन नहीं इसीते कहा है कि, आकाश काल आदिक सत्ता वास्तव नहीं, अरु सत्ता सामान्य जो संवित्मात्र है, सो सर्वका बीज है, तिसते सबकी प्रवृत्ति होती है ॥ हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ हैं, तिनकी जो कलना सत्ता सामान्य पर्यंत है, तिस परमपद अनंत अनादि बीजरूपका बीज और कोई नहीं, जब तिसका भान होवै, तब यह निर्विकार होकरि स्थित होवै, तिसको जीवन्मुक्त कहते है, जब दृश्यकी भावना कछु न फुरै, जैसे बालक मूक गूगा होता है, अभिमानते रहित होता है, तैसे ज्ञानकरिकै यह निर्वासनिक होवै, तब जड़ताते मुक्त होता है, अरु सर्व आत्मभावको प्राप्त होता है, अरु जिस संवित्विषे दृश्यका स्पर्श होता है, सो संवित् जड़ है, काहेते कि, शुद्ध स्वरूपविषे मलिनका स्पर्श होता है, इसीते जड है, अरु जो संवित् द्वैत फुरणेते रहित है, सो शुद्ध है, अरु अजड है, अरु जो द्वैतभावको ग्रहण करती है, सो स्वरूपकी ओरते जड़ है ॥ हे रामजी ! जिसको स्वरूपकी ओर स्थिति भई है, अरु दृश्यभावका लेप नहीं होता सो सर्व वासनाको त्यागिकरि निर्विकल्प समाधिविषे जुड़ता है, जैसे आकाशविषे नीलता स्वाभाविक वर्त्तती है, तैसे योगी आनंदविषे वर्त्तता है, अरु निःसंवेदन संवित्विषे नष्ट होता है वहीरूप हो जाता है मनकी वृत्ति तहां स्थिर हो जाती है, बैठते, चलते, स्पर्श करते, सुगंध लेते, देखते, सुनते, सब इंद्रियोंकी क्रिया करते भी मन स्थिर रहता है, दृश्यका अभिमान नहीं फुरता सो अजड़ कहाता है, संवेदनते रहित सुखी होता है ॥ हे रामजी ! ऐसी दृष्टि प्रथम तो कष्टरूप भासती है, परंतु सब दुःखको नाशकर्त्ता होती है, ताते इसी दृष्टिको आश्रय करके दुःखरूप जो संसारसमुद्र तिसको तरिजाट कैसा संसार है, जैसे वटका बीज सूक्ष्म है, विस्तारको पाइकरि आकाशको स्पर्श करने लगता है, तैसे सूक्ष्म संवेदनते जब संकल्प पसरता है, तब वही बड़े जगत्के विस्तारको धारती है, अरु जन्मके जालको प्राप्त होती है, वाजरूपकरि आपही जन्मोंविषे डारता है, बहुरि बहुरि मोहविषे गिरता है, जब संवित् अपनी ओर होती है, तब मोक्षको प्राप्त होता है, जैसी भावना स्वरूपविषे दृढ होती है, सोई सिद्ध होती है, जैसे नटुआ अनेक

स्वांगको धारता है, तैसे संवित् अनेक आकारोंको धारती है, जब नट भूमिकाको त्यागता है, तब अपने स्वरूपविषे प्राप्त होती है ॥ हे रामजी! संवित्‌रूपी नटिनी है, अरु जगत्‌रूप धारिकरि नृत्य करती है, अरु जो दु खरूप संसारसमुद्रविषे गिरे नहीं, सो सत्ता सब कारणोंका कारण है, तिसका कारण कोई नहीं, अरु सर्व सारोंका सार है, तिसका सार कोई नहीं, तिस चेतनरूपी बडे दर्पणविषे सम सत जगत् भासता है, प्रतिबिंबित होता है, जैसे तालविषे किनारेके वृक्ष प्रतिबिंबित होते है, तैसे सब वस्तु चिद् दर्पणविषे प्रतिबिंबित होती है ॥ हे रामजी! जेते कछु पदार्थ हैं, सो आत्मसत्ताकरि सिद्ध होते है, उसी अनुभवविषे सबका अनुभव होता है, जैसे पट् रसोंका स्वाद जिह्वाकरि सिद्ध होता है, तैसे सब पदार्थ चिदाकाशके आश्रय सिद्ध होते है, सब जगद्‌गण तिसीते उपजे हैं, तिसीविषे वर्तते है, बढते है, तिसीविषे स्थित दीखते हैं, तिसीविषे लीन होते है, सबका अधिष्ठान वही सत्ता है, बहुरि कैसी है, गुरूका गुरु वही है, लघुकी लघुता वही है, स्थूलकी स्थूलता वही है, सूक्ष्मकी सूक्ष्मता वही है, द्रव्योंका द्रव्य वही है, कष्टोंविषे कष्टता वही है, बडेविषे बडाई वही है, तेजोंका तेज वही है, तमका तम वही है, वस्तुकी वस्तु वही है, द्रव्यका द्रव्य वही है, द्रष्टाका द्रष्टा वही है, किंचनविषे किंचन वही है, निष्किंचनविषे निष्किंचन वही है, तत्त्वोंका तत्त्व वही है, असत्यका असत्य वही है, सत्यका सत्य भी वही है, आश्रमविषे आश्रम वही है, अनाश्रमविषे अनाश्रम वही है ॥ हे रामजी! ऐसी जो परम पावन सत्ता है, तिसविषे प्रयत्न करिके स्थित होउ, बहुरि जैसी इच्छा होवै, तैसे करहु, सो आत्मतत्त्व निर्मल है, अजर है, अमर है, शांतरूप है, चित्तके क्षोभते रहित है, भवसंसारते मुक्तिके निमित्त तिसविषे स्थित होउ ॥ इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणे स्मृतिबीजविचारो नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ८८.

संशयनिराकरणोपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे महाआनंदके देनेहारे! यह जो बीजोंका बीज तुमने कहा है, सो किसप्रकार प्राप्त होवै, जिस प्रकार उस पदकी शीघ्र प्राप्ति होवै

सो उपाय कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इन सबके बीजका जो उत्तर दिया है तिस तिस उपायकरि परमपदकी प्राप्ति होती है, अब और भी जो तैने पूछा है, सो सुन, सत्ता सामान्यविषे स्थित होने निमित्त यत्न कर्तव्य है, जेती कछु संसारकी वासना है, बलकरि तिसको त्याग करिये, अरु शुद्ध आत्माविषे तीव्र अभ्यास करिये, तब शीघ्रही अविघ्न आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होवै ॥ हे तत्त्ववेत्ता ! उस पदविषे क्षीण भी स्थित होहुगे, तब अक्षय भावको प्राप्त होहुगे ॥ हे रामजी ! सत्ता सामान्य संवित्मात्र तत्त्व है, तिसविषे स्थित होउ, जो इच्छा होवै सो करौ, तिसबिना कछु अपर सिद्ध न होवैगा, सब वही भासैगा, ऐसा जो अनुभव तत्त्व है, सो तेरा स्वरूप है, तिसके ध्यानविषे स्थित हुए तुझको खेद कछु न होवैगा, ऐसा संवेदनसाथ ध्यान नहीं होता, अरु ऊंचा पद है, पुरुष प्रयत्नकरि तिस पदको प्राप्त होहु ॥ हे रामजी ! केवल संवेदन साथ ध्यान नहीं होता, काहेते जो सर्वत्र संभव संवित् तत्त्व है, संवित् सर्वदा सर्वकाल सहायक होती है, अरु सबसाथ मिली हुई है, जो कछु चितवै, जहां इच्छित होवै, जो कछु करै, सो सब संवित्करि सिद्ध होता है ॥ हे रामजी ! आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष है तिसका भान नहीं होता, और कछु भासता है, यही अविद्या आवरण है, सो इसको दुःख होता है, जो स्वरूपके प्रमादकरि दृश्यकी वासना करता है, तिसकी दृढताकरि अंतःकरण दुःख पाता है, जब यत्न करिकै वासनाका त्याग करिये, तब मन अरु शरीरके दुःख सब नाश हो जावैगे, अरु पूर्व जो इसको मोह दृढ हो रहा है, जैसे मेरुको मूलते उखाड़ना कठिन है, तैसे वासनाका त्याग कठिन हो रहा है, सो वासना मनते होती है, जबलग मन क्षय नहीं होता, तबलग वासनाभी क्षय नहीं होती, अरु तत्त्वज्ञानबिना मन नाश नहीं होता, जब वासना अरु मनका आवरण दूर होता है, यह परस्पर कारणरूप हैं, ताते हे रामजी ! तू पुरुषप्रयत्न करिकै मनके संकल्पविकल्पको निवृत्त करौ, अभ्यास अरु विचार करिकै विवेकको उपाय करि भोगोंकी वासना दूरते त्याग, इसकरि तू शांतिवान् होवैगा, इन तीनोंका सम अभ्यासकरि तत्त्वज्ञान मनोनाश अरु वासनाक्षयका वारंवार अभ्यास कर, जबलग इनको न साधैगा, तबलग अनेक उपायोंकरि शांतिको न

प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जो वासनाका क्षय होवै, अरु मनोनाश तत्व-ज्ञानका अभ्यास न करै, तौ कार्य सिद्ध नही होता, अरु जो मनोनाश करै, अरु तत्वज्ञानकरि वासनाक्षय न करै, तब भी कल्याण न होवैगा, अरु तत्वज्ञानका विचार करै, अरु वासना क्षय न होवै, तौ भी कुशल न होवैगा, जब तीनोंका सम अभ्यास होवै, तब फलकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी ! एकके सेवनेते सिद्धता नही प्राप्त होती, जैसे मन्त्रोंको कोऊ प्रतिबंध लय करै, तब फलदायक नही होता, अर्थ यह कि, मंत्र संपूर्ण हुआ फलदायक होता है, एक एक चरण पढै तौ फलदायक नहीं होता, जबलग सब मन्त्र संध्यादिक एक ठौर नही पढता, तबलग मंत्र नहीं फुरते, तैसे एकला किसीकरि कार्य सिद्ध नहीं होता, जब चिरकाल इनका इकट्ठाही सेवन होवे, तब कार्य होवै. जैसे बडे शत्रु सैन्यसंयुक्त होवै, तिसको मारनेको एक शूरमा जावै, तब शत्रुको मारि न सकै, जब इकट्ठे सेनाके ऊपर जाय पडै, तब इसको जीति लेवै, तैसे संसाररूपी शत्रु है, जब तत्त्वज्ञान मनोनाश और वासनाके क्षयका इकट्ठा अभ्यास होवै, तब संसाररूपी शत्रु नाश होवै ॥ हे रामजी ! जब तीनोंका अभ्यास करैगा, तब हृदयकी अहं मम ग्रंथी त्रुटि पडती है, जैसे अनेक जन्मोंकी संसारसत्यता जो इसके हृदयविषे स्थित हो रही है, सो अभ्यास योग-करि त्रुटि पडैगी, नाश हो जावैगी, तातें चलते, बैठते, खाते, पीते, सूंघते, स्पर्श करते, जागते, इन तीनोंका अभ्यास करो ॥ हे रामजी ! वासनाके त्यागेते प्राणस्पंद रोका जाता है, जब प्राणोंका स्पंद रोका, तब चित्त अचित्त हो जाता है, एक प्राणोंके रोकेते वासना क्षय हो जाती है, तब भी चित्त अचित्त हो जाता है, आत्मयोगकरि अथवा वासना त्याग-करि आत्मतत्त्व प्रकाशैगा, इनविषे जो तेरी इच्छा होवै सोई कर. प्राणोंका रोकना योगकरि भावै, वासनाका त्याग कर, प्राणायाम तब होता है, जब गुरुकी दीनी युक्ति स्थित होती है, आसन अरु आहारके संयम-करि प्राणोंका स्पंद रोका जाता है, अरु सम्यक् ज्ञानकरिकै जगतको अवास्तव जानता है, तब वासना नहीं प्रवर्तती, जो जगतकी आदि भी अरु अंत भी स्थित है, तिसविषे मन जब स्थित होता है, तब वासना नहीं उपजती ॥ हे रामजी ! जब व्यवहारविषे निःसंग हुआ, अरु सम-

रकी भावनाते विवर्जित हुआ, अरु शरीरविषे नाशवंत बुद्धि भई, तब वासना नहीं प्रवर्त्तती, जब विचार करिक वासना क्षय होवै, तब चित्त भी नष्ट हो जावैगा, जैसे वायुके ठहरेते धूलि नहीं उड़ती, तैसे वासनाके क्षय हुए चित्त नहीं उपजता, जो प्राणस्पद है, सोई चित्तस्पद है जब वासना फुरती है, तब जगद्भ्रम उपजता है, जैसे अरुडते धूलि उपजती है, तैसे चित्तते वासना उपजती है, जब प्राणस्पंद ठहरता है, तब चित्त भी ठहर जाता है, ताते यत्नकरि प्राणस्पद अथवा वासनाके जीतनेका अभ्यास करौ, तब शांतिवान् होवोगे, अरु जो यह उपाय न करैगा, अरु औरको चित्त वश करनेका उपाय करैगा, तौ बहुत कालते पावैगा ॥ हे रामजी ! मनके जीतनेका अन्य उपाय इन युक्तिविना और कोई नहीं, जैसे मतवाले हस्तीको अकुशविना वश करनेका उपाय और कोई नहीं, तैसे मन युक्तिविना वश नहीं होता, सो युक्ति कौन है, संतोंकी सगति सच्छास्त्रोका विचार करना, जो इस उपायकरि तत्त्वज्ञान अरु वासनाक्षय, अरु प्राणोंका स्पद रोकना यह चित्त वश करनेको परमयुक्ति है, इसकरि चित्त शीघ्रही जीता जाता है, अरु जो इन उपायोका त्यागकारि हठसों मन वश किया चाहते है, सो क्या करते है, जैसे तमके नाश करनेको दीपक जगावै, तौ नाश हो जाता है, अरु शस्त्रोकरि तमको काटै, तौ तम नाश न होवैगा, तैसे और उपायोंकरि चित्त वश न होवैगा, इसविना और उपाय करते है, सो मूर्ख है, जैसे मतवाला हस्ती भेहकी ततुसे बाधा नहीं जाता,जो कोऊ इसकरि बांधने लगै तौ महामूर्ख है, तैसे मनके जीतनेको और प्रकार जो हठ करते है, सो महामढ है, और उपाय करिकै क्लेश प्राप्त होवैगा, आत्मसुख न प्राप्त होवैगा, जैसे दुर्भागी जीवोंको कहू सुख नहीं होता है, हे रामजी ! तीर्थ, दान, तप, देवताकी पूजा यह चारों साधन जिनने किये हैं, अरु मन जीतनेका उपाय नहीं किया, सो मृगकी नाई हुए भ्रमते फिरते हैं, पहाडोंकी कंदराविषे फल पत्र खाते फिरते है, मनका नाश किया नहीं, ताते आत्मपदको नहीं पाया, सो और पशुओंके समान हैं, जैसे और पशु मृग पहाडोंविषे होते है, तैसे वे भी है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने मनको शव नहीं किया, तिसको शांति प्राप्त नहीं होती, जैसे कोमल अंग मृग

ग्रामविषे गया शांतिको प्राप्त नहीं होता, जैसे जलविषे आया तृण नदीके वेगकरि भटकता फिरता है, कष्टमान होता है, तैसे वह पुरुष कर्म करता है, मनको स्थित किएविना कष्ट पाता है, कबहूं दुःखसाथ जलता है, कबहूं कर्मोंके वशते स्वर्गको प्राप्त होता है, सो भी नाश हो जाते हैं, जैसे जलविषे तरंग उछलता है, कबहूं अधको जाता है, तैसे कर्मोंके वशते जीव स्वर्ग नरकविषे मध्यविषे भ्रमते हैं, ताते ऐसी दृष्टिका त्यागकरि शुद्ध संवित्मात्रको आश्रय कर, अरु वीतराग होकारि स्थित होउ ॥ हे रामजी ! जगत्विषे ज्ञानवान् सुखी है, अरु जीता भी वही है, और सब दुःखी है, अरु मृतक समान है, अरु बली भी ज्ञानवान् है, सो मोहरूपी शत्रुको मारकर संसारसमुद्रके पारको प्राप्त होता है, और सब निर्बल हैं, ताते तुम भी ज्ञानवान् होउ, संवेदन रहित जो संवित्मात्र तत्त्व है, सो एक है अरु सर्वकी आदि है, सबते उत्तम कलनाते रहित सर्वविषे स्थित है, तिसविषे स्थित होहु, तब कर्ता हुआ भी अकर्ता होवैगा, अरु परम ब्रह्म उदय होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संशयनिराकरणोपदेशवर्णनं नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

ऊननवतितमः सर्गः ८९.

मोक्षोपायवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने आत्मविचारकरि अल्प भी अपना चित्त निग्रह किया है, सो संपूर्ण फलको प्राप्त होवैगा, अरु तिसका जन्म सफल हुआ है ॥ हे रामजी ! जिस चित्तविषे विचाररूपी कणका उदय हुआ है, सो अभ्यास करिकै बड़े विस्तारको पावैगा, निरागपूर्वक जिसके हृदयविषे विचार उपजा है, सो बढ़ता जाता है, अरु अविद्यारूपी गुणोंके फलको काटि डारैगा अरु सब शुभ गुण आनि आश्रय करैंगे, जैसे जलकारि पूर्ण हुये तालका सब पक्षी आनि आश्रय करते हैं ॥ हे रामजी ! जिसको सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ है, अरु निर्मल बोधकारि यथादर्शन हुआ है, तिसको इंद्रियोंकेविषे चलाइ नहीं सकते, जबलग स्वरूपका प्रमाद होता है, तबलग आधि दुःख इनको होता है, अरु जब स्वरूपविषे स्थित होता है, तब शरीर अरु मनके दुःख इसको यथा नहीं

कारि सकते, जैसे बिजुरीको ग्रहण कोऊ नहीं करता, जैसे पुष्टिकारि मेघोंको मुष्टिविषे कोऊ पकड नहीं सकता, जैसे आकाशके चंद्रमाको मुष्टिविषे कोऊ नहीं पकड सकता, जैसे मूढ स्त्री चंद्रमाको मोहनेको समर्थ नहीं होती, तैसे ज्ञानवान्को दुःख कोऊ वशकारि नहीं सकता॥ हे रामजी! जो हस्ती मदकारि मत्त है, अरु मद मस्तकते झरता है, अरु भँवरे तिसके आगे शब्द करते है, मच्छरोंके प्रहार अरु स्त्रियोंके श्वास तिसको नहीं छेदि सकते, तैसे ज्ञानवान्को विषयोंके रागद्वेष चलाय नहीं सकते, अरु जिस हस्तीके मस्तकसो मोती निकसते हैं, ऐसे बलवान् हस्तीको नखोंसाथ विदारणेहारा जो सिंह है,जैसे उस सिंहको हरण मारि नहीं सकता, तैसे ज्ञानवान्को दुःख चलाय नहीं सकता, अरु जिसके फूत्कारेसाथ वनके वृक्ष जल जाते हैं, ऐसा जो सर्प है, जैसे वह सर्पको दर्दुर ग्रासि नहीं सकते, तैसे ज्ञानवान्को रागद्वेप चलाय नहीं सकते, अरु जैसे कोऊ राजा सिंहासनपर बैठेको तस्कर दुःख दे नहीं सकते, तैसे जो ज्ञानी स्वरूपविषे स्थित है, तिसको इंद्रियोंके विषय दुःख दे नहीं सकते, अरु जो विचारते रहित देहाभिमानी हैं, आत्मतत्त्वको नहीं प्राप्त हुए, तिनको विषय उडाइ ले जाते हैं, जैसे सूखे पत्रको पवन उडाइ ले जाता है, अरु ज्ञानवान्को चलाय नहीं सकते, अरु जैसे पर्वत मंदिर पवनकारि चलायमान नहीं होते,तैसे ज्ञानवान् सुख दुःखविषे चलायमान् नहीं होते, अरु जो विचारते रहित है, सो देशके परिणामभावविषे स्थित मानता है, अरु जगद्भाव है, संसारभाव पदार्थोंविषे मनुष्य जन्मविषे गुरुशास्त्रका मार्ग तिसकी ओरते सोइ रहा है, अरु मूढ हो रहा है,खाने पीनेविषे सावधान है, अरु विचारते शून्य है, सो मृतकसमान है, मृतक कहाता है, यह विचार इसको कर्तव्य है, जो मैं कौन हों, अरु यह जगत् क्या है, कैसे उत्पत्ति हुआ है, अरु कैसे निवृत्त होवैगा, इसप्रकार संतोंका संग अरु अध्यात्मशास्त्रकारि विचारकारि जो पुरुष दृश्यभावको त्यागिकारि आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है, सो परमपदको पाता है, जैसे दीपके प्रकाशकारि पदार्थको पाता है, तैसे विचारकारि आत्मतत्त्व पाता है॥ हे रामजी! जो शास्त्रविचारकारि आत्मतत्त्वका बोध होता है, सो ज्ञान कहाता है, सो ज्ञान ज्ञेयके साथ अभिन्नरूप है, अध्यात्मविद्याके विचार करिकै

आत्मज्ञान प्राप्त होता है, जैसे दूधसों मथिकरि माखन काढता है, तैसे विचारकरि आत्मज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञेय इसके अंतर होता है, सो ज्ञेय परब्रह्मस्वरूप है, सत्य है, असत्यकी नाई होकरि स्थित है, ज्ञानवान् तिसको पाइकरि तृप्त होता है, अरु जीवन्मुक्त होकरि अपने आपविषे प्रकाशता है, जैसे चक्रवर्ती राज्यविषे आनंदकरि तृप्त होता है, तैसे ज्ञानवान् ब्रह्मानंदविषे इंद्रियोंकी इच्छाते रहित शोभता है, शब्द स्पर्श रूप रस गंध पांचों इंद्रियोंमें आसक्त नहीं होता, सुंदर राग तंत्रीके शब्दविषे स्त्रियोंके गाने विषे और भी जो कोकिला पक्षी हैं, अरु गंधर्व गंधर्वीविषे लेकरि गायन है, तिनकी किसीविषे आसक्त नहीं होता, अरु जेते कछु स्पर्श हैं सुंदर फूल अग्र चंदन मंदार कल्पवृक्षोंके फूलोंकी सुगंधि अरु सुंदर स्त्रियोंका स्पर्श करना, अप्सरा नागकन्या अरु स्वर्णके द्रवत्वकी नाईं जिनके अंग हैं, तिनका स्पर्श करना, अरु हीरा मणि भूषण नानाप्रकारके वस्त्र हैं, तिनविषे वधमान नहीं होता, जैसे चंद्रमा सुंदर अरु शीतल है, परंतु सूर्यमुखी कमलोंको विकास नहीं करि सकता, तैसे सुंदर स्पर्श ज्ञानीके चित्तको हर्षवान् नहीं करते, जैसे मरुस्थलविषे हंस प्रसन्न नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् स्पर्शविषे नहीं प्रसन्न होते, अरु ज्ञानवान् रसादिकोंविषे भी वधमान नहीं होता, दूध दही घृतादिक जो रस हैं अरु भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य चार प्रकारके भोजन हैं, अरु कटु तीक्ष्ण मीठा खारा जितने रस हैं, तिनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं करते, किसीविषे वधमान नहीं होते, आकाश बोधकरि नित्य तृप्त है, किसी भोगकी इच्छा नहीं करते, जैसे ब्राह्मण कूकरका मास खानेकी इच्छा नहीं करते तैसे ज्ञानवान् उर्वशी रंभा मेनका आदिक अप्सराकी इच्छा नहीं करता, अरु गंधकी इच्छा भी नहीं करता, चंदन अगर कस्तूरी मंदार वृक्षके फूल सुगंधिकी इच्छा नहीं करते, जैसे मच्छी मरुस्थलकी इच्छा नहीं करती, तैसे ज्ञानवान् सुगंधिकी इच्छा नहीं करता, अरु रूपकी इच्छा भी नहीं करते, सुंदर स्त्रिया बाग तालाब नदिया इत्यादिक जो रूपवत पदार्थ हैं, तिनकी इच्छा नहीं करता, जैसे चंद्रमा बादलोंकी इच्छा नहीं करते तैसे ज्ञानवान् रूपकी इच्छा नहीं करते, औरकी क्या बात है, रुद्र यम विष्णु ब्रह्मा समुद्र कैलास मंदराचल रत्न मणि कांचन यह जो बड़े

बड़े पदार्थ है, तिनकी इच्छा नहीं करता, जैसे राजा नीच पदार्थोंकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् पदार्थोंकी इच्छा नहीं करता, समुद्रके गर्जने सिंहके गर्जनेते विजलीके गर्जनते आदि भयानक शब्द हैं, तिनको सुनकरि भयमान नहीं होता, जैसे शूरमा धनुष्यका शब्द सुनकरि भयमान नहीं होता, जैसे ज्ञानवान् मतवाले हस्ती अरु वैताल पिशाचके शब्द सुन अरु इंद्रके वज्रका शब्द देवता सुनता हुआ कंपायमान नहीं होता, सत् स्वरूपकी स्थितिते चलायमान कदाचित् नहीं होता, अरु जो आरेसे शरीरको काटिये अरु खड्गसे कणकण करिये, वाणोसे वेधा जावै, तौ भी कंपायमान नहीं होता, उसको राग द्वेष किसीविषे नहीं होता, शरीरपर एक ओर जलता अगार राखिये, अरु एक आर फूलोका स्पर्श राखिये तौ भी हर्ष शोकवान् नहीं होता, अरु एक ओर खड्गधारावत् तीक्ष्ण स्थान होवै, अरु एक ओर पुष्पशय्या होवै तिसको दोनो तुल्य है, एक ओर शीतल स्थान होवै, एक ओर तप्तशिला होवै, दोनो उसको तुल्य है, एक ओर मारनेवाला विष होवै, दूसरी ओर जिवानेवाला अमृत होवै, सो दोनों उसको तुल्य है ॥ हे रामजी ! संपदा प्राप्त होवै, भावै आपदा प्राप्त होवै, भावै मृत्यु प्राप्त होवै, इनविषे व्यवहार करता भी दृष्ट आता है, परतु अतरते हर्षशोक नहीं, उसका मन अंतरते मुक्त है, सदा सम रहता है ॥ हे रामजी ! लोहके जंबुरासाथ उसका मांस तोडिये, अरु नरकविषे डारिये, अरु ऊपर शस्त्रोकी वर्षा होवै, तौ भी ज्ञानवान् पुरुष भयको न पावैगा, अरु न उद्वेगवान् व्याकुल होवैगा, न दीन होवैगा, ज्ञानवान् इनविषे सदा सममन रहता है, पहाडकी नाईं धैर्यवान् स्थित रहता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान् रागद्वेषते रहित है, देह अभिमानते मुक्त जो हुआ है, तिसका शरीर अग्निविषे पडै, अथवा खाईविषे गिरै, अथवा स्वर्गविषे होवै, उसको दोनों तुल्य है, हर्षशोकते रहित है ॥ हे रामजी ! जिसको स्वरूपविषे दृढ स्थिति भई है, सो चलायमान नहीं होता, जैसे मेरु स्थित है, उसको पवित्र पदार्थ होवै, अथवा अपवित्र होवै, पथ होवै अथवा कुपंथ होवै, विष , अथवा अमृत होवै, मीठा, खट्टा, सलोना, कडुवा, दूध दही, घृत,

रस, रक्त, मांस, मद्य, अस्ति, तृण आदिक जो भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य भोजन हैं, सो सम है न इष्टविषे रागवान् होता है, न अनिष्टविषे दोषवान् होता है, जो प्राणोंके निकसनेको सन्मुख आवै, अरु दूसरा प्राणोंकी रक्षानिमित्त आवै, तो दोनोंको आत्मस्वरूप शांत मन मधुररूप देखता है, रागद्वेषते रहित है, रमणीय अरमणीय पदार्थोंको सम देखता है, संसारकी आस्था त्यागि दीनी है, बोधस्वरूपविषे निश्चय भया है, चित्त निराग पदको प्राप्त भया है, सब जगत् वसको आत्मस्वरूप भासता है. शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंध पंच विषयोंके भोग अवसर अपना नहीं पाते, जैसे दर्पणको देखने लगें तो प्रतिबिंब भासता है, दर्पणकी सूरत नहीं रहती, तैसे विषयोंविषे आत्मा देखता है, विषयोंकी सूरत नहीं रहती, अरु जो अज्ञानी है, तिसको इंद्रियां ग्रास लेती हैं जैसे तृणोंको मृग ग्रासि लेता है, अरु जिसने आत्मपदविषे विश्रांति पाई है, तिसको इंद्रियां ग्रास नहीं सकतीं ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूपी समुद्रविषे जो पडा है, अरु वासनारूपी लहरोंसे मिलिकरि उछलता है अरु गिरता है, तिसको आशारूपी तदुआ ग्रास लेता है, हाय हाय करता है शांतिको प्राप्त नहीं होता है,अरु जो विचार करिकै आत्मपदको प्राप्त भया है, सो विश्रांतिको पाइ. चलायमान नहीं होता जैसे सुमेरु पर्वत जलके समूहकरि चलायमान नहीं होता तैसे वह संकल्प विकल्पविषे चलायमान नहीं होता, सर्व संकल्पकी सीमा आत्मपदविषे विश्रांति जिसको भई है, सो उत्कृष्टताको प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! तिसको यह जगत् ज्ञानमात्र भासता है, संवित्मात्र जानिकरि विचार करता है, न किसीका ग्रहण त्याग करता है तातें भ्रांतिको त्यागिकरि संवित्मात्रही तेरा स्वरूप है, किसका त्याग करता है, किसका ग्रहण करता है, जो आदिविषे भी न होवै, अंतविषे भी न रहै, मध्यविषे कछु भासै सो भ्रममात्र जानिये इसप्रकार जानिकरि भावअभावकी बुद्धिको त्यागिकरि नि संवेदनरूप होइकरि संसारसमुद्रको तरि जाहु. मन बुद्धि इंद्रियां करिकै कर्म करो, भावै न करो, निःसंग होडुगे तब तुमको लेप न लगेगा ॥ हे रामजी ! जिसका मन अभिमानते रहित हुआ है, सो कर्म करता भी लेपायमान नहीं होता, जैसे मन और ठौर गया होता है

तौ विद्यमान् शब्द अथवा रूप पदार्थोंको होते भी नहीं जानता, तैसे जिसका मन आत्मपदविषे स्थित हुआ है, तिसको सुख दुःख कर्म नहीं लगता, जो पुरुष अभिमानते रहित है, सो कर्मोंविषे सुखदुःखको भोगता दृष्ट आता है, परंतु उसको स्पर्श नहीं करता, देखो तो यह बालक भी जानते है, जो मन और ठौर जाता है, तौ सुनता भी नहीं सुनता तैसे वह पुरुष करता भी नहीं करता ॥ हे रामजी ! जिसका मन असंग हुआ है, सो देखता है, परतु नहीं देखता, सुनता है, परतु नहीं सुनता, स्पर्श करता है, परतु नहीं करता है, सूँघता है, रस लेता है, परतु नहीं लेता, इत्यादिक जो कछु चेष्टा है, सो कर्त्ता भी अकर्त्ता है, उसका चित्त आत्मपदविषे लीन भया है, जैसे कोऊ पुरुष देशांतरको जाता है, सो उस देशविषे व्यवहार कर्म करता है, परंतु उसका चित्त गृहविषे रहता है, तैसे ज्ञानवान्का चित्त आत्मपदविषे रहता है, यह बात मूर्खभी जानता है, कि जैसा वेग मनविषे तीव्र होता है, तिसीकी सिद्धता होती है, सोई भासता है, और नहीं भासता ॥ हे रामजी ! सर्व अनर्थोंका कारण संग है, ससारके सगकरि जन्ममरणके बंधनको प्राप्त होता है ताते सब अनर्थोंका कारण ससारका सग है, सब इच्छाका कारण संग है, अरु सब ——का कारण संग है, सगत्यागकरि मोक्षरूप अजन्मा होता है, …यागिकरि जीवन्मुक्त होइकरि विचरु ॥ राम उवाच ॥ हे …मयरूपी कुहाड़के नाशकर्त्ता शरत्कालका पवन, संग … सक्षेपते मुझको कहो ॥ वसिष्ठउवाच ॥ हे रामजी ! …र्थ है, सो हर्षशोकको देनेहारे हैं, जिस मलीन वास… है, सो वासना संग कहाता है ॥ हे रामजी ! जो … अरु ससारकी सत्य प्रतीति होती है, तिस …द्वेष सहित ग्रहण करता है, ऐसी मलिन …वन्मुक्तकी वासना हर्षशोकते रहित शुद्ध …पकी वासना जन्ममरण नहीं होता ॥ …भिमान नहीं होता, अरु स्वरूप… …राग द्वेष नहीं करता, उसकी